भारतीयविद्या-श्रेणी-ग्रंथः ३३

# मनुस्मृतिः

मेधातिथि-सर्वज्ञनारायण-कुल्लूक-राघवानन्द-नन्दन-
रामचन्द्र-मणिराम-गोविन्दराज-भारुचि

इति व्याख्यानवकेन समलंकृता

◎

## द्वितीयो विभागः

(३–४ अध्यायात्मकः)

◎

भारतशासनस्य शिक्षणविभागस्यार्थसाहाय्येन प्रकाशिता

◎

– संपादक –

जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे

एम्.ए., एल्एल्.बी., ॲड्व्होकेट (सु. को.)

इत्यनेन

भारतीयविद्याभवनस्य संमान्यनियामकेन परिष्कृता

१९७५

भारतीय विद्या भवनम्

कुलपति के. एम्. मुनशीपथः, चौपाटी

मुम्बई ४०० ००७

© सर्वाधिकाराः स्वायत्ताः

प्रथमावृत्तिः १९७५

मूल्यम् : रु. ६०

भारते मुद्रिता
वी. वरदराजन्, असोसिएटेड ॲडव्हर्टाइझर्स ॲण्ड प्रिन्टर्स
५०५ सानेगुरुजी मार्ग, मुंबई ४०० ०३४

Bhāratīya Vidyā Series—Vol. No. 33

# MANU-SMṚTI

With nine commentaries by Medhātithi, Sarvajñanārāyaṇa, Kullūka, Rāghavānanda, Nandana, Rāmacandra, Maṇirāma, Govindarāja and Bhāruci

VOLUME II (Adhyāyas 3-4)

*Edited by*

JAYANTAKRISHNA HARIKRISHNA DAVE

M.A., LL.B., ADVOCATE (SUPREME COURT)

Hon. Director, Bharatiya Vidya Bhavan

*Published with the financial assistance of the Ministry of Education, Government of India*

1975

BHARATIYA VIDYA BHAVAN

Kulapati K. M. Munshi Marg, Chowpatty, Bombay-400 007

© All Rights Reserved
First Edition, 1975

Price Rs. 60

PRINTED IN INDIA
By V. Varadarajan at Associated Advertisers & Printers,
505 Sane Guruji Marg, Bombay-400 034.

# INTRODUCTION

This is the second volume of Manusmṛiti, with nine commentaries by Medhātithi, Sarvajñanārāyaṇa Kullūka, Rāghavānanda, Nandana, Rāmacandra, Maṇirāma, Govindarāja and Bhāruci.

It covers the third and the fourth Adhyāyas of Manusmṛiti.

The Project of Manusmṛiti with these nine commentaries is undertaken by the Bhāratīya Vidyā Bhavan with the financial assistance of the Ministry of Education, Government of India. The Editor expresses warm thanks to the Government of India for the kind and continued financial assistance.

In adhyāya III, the present edition contains 10 more verses than the edition of M. M. Dr. Ganganath Jha.

The printing of this and the remaining volumes was delayed on account of power cuts, paper shortage and other press problems. With the situation easing, further volumes are expected to come out earlier.

Bharatiya Vidya Bhavan,
Kulapati K. M. Munshi Marg,
Bombay-400 007.
14th June, 1975.
V. S. Vaishakha Krishna 5, 2031.

JAYANTAKRISHNA HARIKRISHNA DAVE

# मनुस्मृति-द्वितीय-विभागीयविषयाणामनुक्रमकोशः

## तृतीयोऽध्यायः

| विषयः | अ. श्लो. |
| --- | --- |
| ब्रह्मचर्यव्रतस्य कालमर्यादा | ३–१ |
| वेदाध्ययनसम्पन्नो गार्हस्थ्याधिकृद्भवति | ३–२ |
| वेदधनाद्यधिगतस्य पित्रादिभिः पूजानुष्ठानम् | ३–३ |
| गुरुणाभ्यनुज्ञातः समावर्तनात्परं सवर्णया भार्यया परिणयीत | ३–४ |
| मातुरसपिण्डा पित्रा चासगोत्रा कन्या विवाहे प्रशस्ता .. | ३–५ |
| विवाहे दशकुलानामेषां परिवर्जनम् .. | ३–६ |
| हीनक्रियादिदशकुलानां सनामग्राहं निर्देशः .. | ३–७ |
| विवाहे वर्णादिभिर्निषिद्धाः कन्याः .. | ३–८ |
| नक्षत्रादिनामिकायाः परिणये प्रतिषेधः .. | ३–९ |
| परिणये योग्याः कन्याः .. | ३–१० |
| कन्याया भ्रातृपित्राद्यनभिज्ञाने तां शङ्कया नोद्वहेत् .. | ३–११ |
| प्रथमोद्वाहे सवर्णानियमः .. .. | ३–१२–३ |
| आपदि विकल्पः .. .. | ३–१४ |
| मोहाद्धीनजातिस्त्रीपरिणये निषेधः .. .. | ३–१५ |
| सनिदर्शनं तत्प्रतिपादनम् .. .. | ३–१६ |
| ब्राह्मणेन शूद्रया सममुद्वाहे पतितत्वम्, तत्कर्तृकक्रर्मनिषेधश्च .. | ३–१७–९ |
| स्त्रीविवाहा अष्टविधाः .. | ३–२० |
| अष्टविधोद्वाहानां नामधेयानि .. | ३–२१ |
| षड्विवाहादौ धर्म्याणां निरूपणम् .. .. | ३–२२ |
| षड्विवाहक्रमनिरूपणम् .. .. | ३–२३–४ |
| तेषां धर्म्याधर्म्यत्वं निषेधश्च .. .. | ३–२५ |
| क्षत्रस्योद्वाहे तत्र धर्म्यत्वम् .. .. | ३–२६ |
| ब्राह्मधर्मस्य स्वरूपम् .. | ३–२७ |
| दैवधर्मनिरूपणम् .. | ३–२८ |
| आर्षधर्मस्वरूपम् .. | ३–२९ |
| प्राजापत्यविधिस्वरूपम् .. | ३–३० |
| आसुरधर्मस्वरूपवर्णनम् | ३–३१ |

| विषयः | अ.श्लो. |
|---|---|
| राक्षसविधिस्वरूपम् | ३–३२ |
| पैशाचोद्वाहनिरूपणम् | ३–३३ |
| ब्राह्मादिविवाहेषु क्रमशः शिष्टसंमतपुत्रोत्पत्तिः | ३–३४ |
| द्विजाग्र्याणामद्भिरेव कन्यादानम् | ३–३५ |
| ब्राह्मविवाहोढापुत्रः पितॄनेनस उद्धरति | ३–३७ |
| दैवार्षोढादिपुत्राणां सप्तसप्तपरावराणामुद्धरणकृत्त्वम् | ३–३८ |
| तेषां धर्मिष्ठ–पर्याप्तभोगवत्त्वम् | ३–४० |
| दुर्विवाहेषु संजातसुतानां ब्रह्मधर्मद्वेषोऽनृतवादित्वं च दृष्टचरम् | ३–४१–२ |
| गृह्यकारोक्तः पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासु विहितः | ३–४३ |
| असवर्णोद्वाहे विधिनिरूपणम् | ३–४४ |
| विवाहानन्तरं तदहन्येव दारोपगमने निषेधः | ३–४५ |
| ऋतुकालस्य मर्यादा, तत्र विधिनिषेधौ च | ३–४६–७ |
| युग्मासु रात्रिषु संभोगे पुत्रा अयुग्मासु सुता भवन्ति | ३–४८ |
| पुंस्त्रीबीजन्यूनाधिक्यात्सुतदुहितोत्पत्तिः | ३–४९ |
| दारोपगमे वर्ज्या रात्रयः तथा व्रताचरणे फलम् | ३–५० |
| विवाहे कन्यापित्रा शुल्कग्रहणेऽपत्यविक्रयदोषापत्तिः | ३–५१ |
| स्त्रीधनग्रहीतॄणामधोगतिप्राप्तिः | ३–५२ |
| केचिन्मतानुगुणं गोमिथुनस्वीकृतिप्रतिषेधः | ३–५३ |
| कन्यार्थे धनग्रहणं पूजनं बहुमानप्रदमपापत्वं च | ३–५४ |
| बहुकल्याणेप्सुभिः पितृभ्रातृप्रभृतिभिरपि कन्या भूषयितव्याः | ३–५५ |
| यस्मिन्वंशे स्त्रियः पूज्यन्ते तत्र देवताः प्रसीदन्ति | ३–५६ |
| यत्र कुलस्त्रियः शोचन्ति स नश्यति | ३–५७–८ |
| भूतिकामैरत एव ताः सदाभ्यर्च्याः | ३–५९–६० |
| यदि स्त्री भर्त्रे न रोचेत तर्ह्येष प्रजनं न संपद्यते कुलं च मलिनीभवति | ३–६१–२ |
| कुलानामकुलतापादनेऽपकर्षे च कारणम् | ३–६३–४ |
| कुलनाशे कुलोत्कर्षे च हेतुः | ३–६५–६ |
| वैवाहिकेऽग्नौ पञ्चमहायज्ञान्वाहिकपाकादि विधेयम् | ३–६७ |
| पाकस्थानीयपञ्चसूनादोषनिरूपणम् | ३–६८ |
| पञ्चसूनादोषपरिहारार्थं महर्षिभिः पञ्चयज्ञाः क्लृप्ताः | ३–६९ |
| पञ्चमहायज्ञानां स्वरूपनिरूपणम् | ३–७० |
| एतेषां नित्यमनुष्ठाता सूनादोषसम्बन्धेन न लिप्यते | ३–७१ |
| पञ्चयज्ञानामननुष्ठातुर्निन्दा | ३–७२ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| पञ्चयज्ञानां सनामग्राहं निर्देशः | ३–७३ |
| हुताहुतप्रहुतादीनां विशदतया निरूपणम् | ३–७४ |
| स्वाध्याये नित्ययुक्तत्वप्रशंसनम् | ३–७५ |
| अग्नौ प्रास्ताहुतिः सर्वस्य जगतोऽनुग्रहबीजम् .. .. | ३–७६ |
| पञ्चमहायज्ञाचरणं गृहस्थाश्रमप्रशंसनेनावश्यकर्तव्यमिति प्रतिपादनम .. | ३–७७ |
| गृहस्थाश्रमस्य ज्येष्ठाश्रमत्वमिति सयुक्तिकप्रतिपादनम | ३–७८ |
| इहपरत्रसुखमिच्छता सोऽनुष्ठेयः | ३–७९ |
| ऋषिपितृदेवतादिभिर्गृहिभ्य आशासनम् .. | ३–८० |
| स्वाध्यायेनर्षीन्होमैर्देवान् श्राद्धैश्च पितॄनर्चयेत् .. | ३–८१ |
| पित्रादिश्राद्धकर्मातिदेशः .. .. | ३–८२ |
| पित्रर्थमेकमपि विप्रमाशयेदिति विधिः .. .. | ३–८३ |
| वैश्वदेवस्य गृह्ये यथाविधिहोमादिकरणनिर्देशः .. .. | ३–८४ |
| तद्देवतानामनुक्रमेण नामनिरूपणम् .. | ३–८५–६ |
| अनन्यचित्ततयानन्तरं बलिहरणम् .. .. | ३–८७–९ |
| विश्वेभ्यो देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षेपयेत् .. .. | ३–९० |
| दिवाचारिभ्यो नक्तंचारिभ्यः पृष्ठवास्तुनि बलिं हरेत् .. | ३–९१ |
| पतितादीनां भुवि बलिं शनैर्निर्वपेत् .. | ३–९२ |
| सर्वभूतान्बलिदानेनार्च्यमाणो ब्राह्मणो परंधामर्जुपथा गच्छति .. | ३–९३ |
| बलिकर्मानन्तरमतिथये ब्रह्मचारिणे च भिक्षादानम् | ३–९४ |
| गृही गोदानाद्यत्फलमवाप्नोति तद्भिक्षादानसमम् | ३–९५ |
| विदुषे भिक्षोदकुम्भदानं ससत्कारं प्रशस्तम् | ३–९६ |
| अपात्रे दानं भस्मनि हुतहव्यवन्निष्फलम् | ३–९७ |
| विद्यातपःसमृद्धब्राह्मणाय दानं सर्वथाभ्युदयिकम् .. | ३–९८ |
| अतिथयेऽन्नादिदानं प्रशस्तम् .. | ३–९९ |
| तृणभूम्युदकसूनृतावागादयः कदाचन सतां गेहेऽतिथ्यर्थं नोच्छिद्यन्ते | ३–१०१ |
| अतिथिशब्दार्थस्य सलक्षणं निरूपणम् .. .. | ३–१०२ |
| साङ्गतिकैकग्रामीणादयो वैश्वदेवकालोपस्थिता अप्यतिथयो न भवेयुः .. | ३–१०३ |
| अवश्यं भोजनं लभेतेति बुद्ध्योपस्थितानां निन्दा .. | ३–१०४ |
| प्रदोषान्तोपस्थितातिथिरप्रत्याख्येयः .. .. | ३–१०५ |
| कदन्नमतिथिर्न भोजनीयः .. .. | ३–१०६ |
| बहुष्वतिथिषु युगपदुपस्थितेषु गुणापेक्षमासनादिप्रकल्पनम् .. | ३–१०७ |
| सम्पन्ने वैश्वदेवेऽन्योऽतिथिर्वाभ्युपगच्छेत्तत्र निर्णयः .. .. | ३–१०८ |
| भोजनलिप्सयामुककुलीनोऽमुकस्य पुत्रोऽहमित्यात्मनिवेदनप्रतिषेधः .. | ३–१०९ |

| विषयः | अ. श्लो. |
| --- | --- |
| सखिज्ञाती आत्मसमे गुरुः प्रभुवदुपचर्यः | ३–११० |
| अतिथिधर्मेणोपस्थितः क्षत्रियो भुक्तेषु ब्राह्मणेषु भोजनीयः | ३–१११ |
| वैश्यशूद्रावपि क्षत्रियवत् भोजयेत् | ३–११२ |
| संप्रीत्या गृहागतानितरानपि संभोजयेत् | ३–११३ |
| सुवासिन्यादयोऽतिथ्यन्वगेवाविचारयन्भोजयेत् | ३–११४ |
| पूर्वमेवातिथिप्रभृतिभ्यो भुञ्जानस्य निन्दा .. | ३–११५ |
| विप्रादिषु कृतभोजनेष्ववशिष्टं देवर्षीन्संपूज्य दम्पती भुञ्जीयाताम् | ३–११६–७ |
| अनातुरेणात्मार्थमन्नं न पाचनीयम् | ३–११८ |
| राजर्त्विगादीन् परिसंवत्सरान्मधुपर्केणार्चयेत् | ३–११९ |
| राजा श्रोत्रियश्च प्रारिप्स्यमाने मधुपर्केण संपूज्यौ | ३–१२० |
| सायंसिद्धान्नस्यामन्त्रं पत्न्या बलिदानम् | ३–१२१ |
| पिण्डपितृयज्ञं कृत्वा पिण्डान्वाहार्यकश्राद्धं निर्वर्तयेत् | ३–१२२ |
| अन्वाहार्यकश्राद्धं नाम पितृणां मासिकश्राद्धम् | ३–१२३ |
| तस्मिञ्छ्राद्धे भोजनीयवर्ज्यब्राह्मणनिरूपणम् .. | ३–१२४ |
| श्राद्धे देवानुद्दिश्य द्वौ, पितृकृत्ये त्रीन्ब्राह्मणान् भोजयेन्मास्तु विस्तरः | ३–१२५ |
| सत्क्रियादेशकालशौचादिनाशहेतोर्विस्तरो निषिद्धः | ३–१२६ |
| दातृभिः श्रोत्रियायैव हव्यकव्यानि देयानि | ३–१२७ |
| विद्वांसमेकमपि भोजयन् विपुलफलमाप्नोति | ३–१२९–३० |
| अविद्वान् ब्राह्मणो भोज्यमानः पितॄनधो नयति | ३–१३२ |
| यस्य ईदृशो ब्राह्मणः श्राद्धं भुंक्ते स ईदृशं फलमाप्नोति | ३–१३३ |
| सर्वगुणेभ्यो विद्या प्रशस्तेति प्रतिपादनार्थं गुणविभागकथनम् .. | ३–१३४ |
| पित्र्ये ज्ञाननिष्ठाः पात्रतमाः .. | ३–१३५–६ |
| आत्मनिर्विशेषं श्राद्धे भोजननिषेधः .. | ३–१३७–८ |
| मोहात् मित्रभावात्कुर्वाणस्य श्राद्धमित्रस्य स्वर्गाच्च्युतिः .. | ३–१३९–४० |
| श्राद्धे मित्रसंग्रहकर्तुः संभोजनी न पितॄणामुपकारार्था भवति | ३–१४१ |
| अनृचे हविर्दानमुषरोप्तबीजवद्दप्तुः फललाभदायि न भवति | ३–१४२ |
| विदुषे दक्षिणादानं दातृप्रतिगृहीत्रोश्च फलभाक्त्वमापादयति | ३–१४३ |
| श्राद्धे श्रोत्रियाय भोजनदानं प्रशस्तम् | ३–१४४–५ |
| तद्भोजनमासप्तपौरुषं शाश्वततृप्तिकरं भवति | ३–१४६ |
| हव्यकव्ययोरनुकल्पनिरूपणम् | ३–१४७ |
| पित्र्ये कर्मणि ब्राह्मणपरीक्षां प्रयत्नेन कुर्यात्, न दैवे | ३–१४९ |
| नास्तिकादयो हव्यकव्ययोरनर्हाः | ३-१५०-६७ |
| अनधीयानो ब्राह्मणो हव्ये वर्ज्यः | ३-१६८ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| अपांक्त्येभ्यो दाने दातुः फलोदयो यो भवति तन्निरूपणम् .. | ३-१६९-१८२ |
| अपांक्त्यैर्दूषिता पंक्तिः परिषद्यैर्ब्राह्मणैर्निर्दोषा भवति | ३-१८३ |
| पंक्तिपावनाः श्रोत्रियान्वयजास्तेषां निरूपणम् | ३-१८४-६ |
| श्राद्धे ब्राह्मणनिमन्त्रणादावितिकर्तव्यता .. .. | ३-१८७ |
| निमन्त्रितब्राह्मणस्य कर्तव्यम् | ३-१८८ |
| पितरो निमंत्रितब्राह्मणशरीरं वायुवदनुगच्छन्ति | ३-१८९ |
| निमंत्रितब्राह्मणो हव्यकव्यादावतिक्रामन् सूकरत्वमाप्नोति | ३-१९० |
| निमंत्रितब्राह्मणो यदि सुरतसंभोगे रमेत्तद्दोषनिरूपणम् | ३-१९१ |
| पितॄणां स्वरूपमुत्पत्तिरुपचर्यादिनिवेदनम् .. .. | ३-१९२-२०० |
| ऋषिभ्यः पितॄणां, पितृभ्यो देवमानवानां, देवेभ्यश्च समस्तजगत उत्पत्तिः . | ३-२०१ |
| तेभ्यो रजतपात्रेषु दत्तं जलमपि शाश्वततृप्तिहेतुकं भवति | ३-२०२ |
| दैवकार्यात् पितृकार्यं विशिष्टतरं, तत्तु पितृकार्यस्य पोषकम् | ३-२०३ |
| आरक्षहीनं दैवं रक्षांसि आच्छिन्दन्त्यतो ब्राह्मणं पूर्वमामन्त्रयेत् .. | ३-२०४ |
| दैवनिमन्त्रणमादौ विधाय पित्र्येषु विसर्जितेषु दैवविसर्जनम् .. | ३-२०५ |
| श्राद्धे शुचिर्विविक्तो दक्षिणाप्रवणो देशो गोशकृदुपलिप्तः प्रशस्तः | ३-२०६ |
| तीर्थसरित्समीपपुलिनादिप्रवेशः श्राद्धे पितृसंतोषकरः .. | ३-२०७ |
| श्राद्धे कृताचमनादिविधीन् विप्रान् पृथगुपवेशयेत् | ३-२०८ |
| आसनोपविष्टान्ब्राह्मणान् गन्धमाल्यादिभिरर्चयेत् | ३-२०९ |
| ततस्तैरनुज्ञातोऽग्नौ होमं कुर्यात् | ३-२१० |
| अग्नेः सोमयमाभ्यां पोषणं कृत्वा पितॄन्संतर्पयेत् | ३-२११ |
| अग्न्यभावे विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् .. | ३-२१२-३ |
| अग्नावपसव्यं कृत्वा भुव्युदकं निर्वपेत् .. | ३-२१४ |
| हविःशिष्टत्रीन्पिण्डान्कृत्वा दक्षिणामुख औदकेन विधिना निर्वपेत् | ३-२१५ |
| दर्भेषु तान्न्युप्य हस्तं निर्मृज्यात् .. | ३-२१६ |
| उत्तराभिमुख आचम्य त्रीन्प्राणायामान् कुर्यात् .. | ३-२१७ |
| दर्भेषूदकनिनयनं पिण्डसमीपे कृत्वा पिण्डावघ्राणं कुर्यात् .. | ३-२१८-९ |
| जीवति पितरि पूर्वेषां निर्वपेत् | ३-२२० |
| पितामहे जीवति व्यवस्था .. .. | ३-२२१-४ |
| अन्नपरिवेषणे भोजने च शास्त्रोक्तो विधिर्निषेधश्च .. | ३-२२५-४३ |
| ब्राह्मणैः 'तृप्ताः स्मः' इत्युक्तेऽन्नाद्यं कन्राप्लाव्याग्रतः समुत्सृजेत् | ३-२४४ |
| सपिण्डीकरणश्राद्धविधिः | ३-२४७-८ |
| श्राद्धभोजनोच्छिष्टं वृषलाय दाने फलम् .. | ३-२४९-५० |
| तृप्तान् विप्रान्स्वदितं पृष्ट्वाचान्तानभितो रम्यतामित्यनुजानीयात् | ३-२५१ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| गृहगमनाभ्यनुज्ञातैः स्वधेत्याशीर्वाच्या | ३-२५२ |
| शेषमन्नं द्विजानुज्ञानुगुणं विनियोक्तव्यम् .. | ३-२५३-४ |
| श्राद्धकर्मस्वेतानि वस्तूनि संपादयितव्यानि | ३-२५५ |
| दैविककर्मणि संपदः | ३-२५६ |
| हविःशब्दव्याख्यानम् | ३-२५७ |
| ब्राह्मणान्यथासुखविहारेऽनुज्ञाय पितॄनिमान्वरान्याचेत | ३-२५८ |
| दातारो नोऽभिवर्धन्तामित्यादिमन्त्रबद्धा वराः | ३-२५९ |
| वरयाचनानन्तरं पिण्डव्यवस्था .. | ३-२६० |
| तत्र केचिन्मतम् .. | ३-२६१ |
| पतिव्रताधर्मपत्न्यादिभिः विधिना पिण्डभक्षणम् .. .. | ३-२६२ |
| पुत्रार्थिनी तं भक्षयित्वायुष्मन्तं सुतं सूते .. .. | ३-२६३ |
| ततो ज्ञातिबान्धवादीना भोजनम् .. .. | ३-२६४ |
| ततो गृहबलिरिति धर्मशास्त्रव्यवस्था .. .. | ३-२६५ |
| पितॄणां दीर्घकालतृप्त्यर्थं हविर्दानम् .. .. | ३-२६६-७५ |
| फलातिशये कृष्णचतुर्दशीं वर्जयित्वा दशम्यादयः प्रशस्ततराः .. .. | ३-२७६ |
| युग्जि दिननक्षत्रादीनि सर्वकामप्रदानि .. .. | ३-२७७ |
| श्राद्धे पक्षपूर्वपक्षादपरवदपराह्णादिषु विशेषवचनम् .. .. | ३-२७८ |
| पित्र्ये कर्मणि प्राचीनावीत्यपसव्यादिविधिः .. .. | ३-२७९ |
| रात्र्यादौ श्राद्धविधिनिषेधप्रतिपादनम् .. .. | ३-२८०-१ |
| लौकिके पैतृयज्ञिकहोमस्याहिताग्नेर्दर्शन विना च श्राद्धस्य निषेधः .. | ३-२८२ |
| पाञ्चयज्ञिकश्राद्धस्य वैकल्पिकत्वम् .. .. | ३-२८३-५ |
| द्विजातिकविधानस्याग्रे निरूपणप्रतिज्ञापनम् .. .. | ३-२८६ |


—:०:—

## चतुर्थोऽध्यायः


| | |
|---|---|
| आद्ये ब्रह्मचर्यपूर्वकं गुरुकुले स्थित्वा कृतदारो गृहस्थाश्रममनुतिष्ठेत् | ४-१ |
| भूतानां अद्रोहेणाल्पद्रोहेण वा जीवनोपाय आश्रयितव्यः .. .. | ४-२ |
| अनिन्दितकर्मभिरात्मकुटुम्बनिर्वाहार्थं धनसञ्चयः कार्यः .. .. | ४-३ |
| ऋतामृताभ्यां, मृतप्रमृताभ्यां, सत्यानृताभ्यां वा जीवेत् न तु श्ववृत्त्या .. | ४-४-५ |
| सत्यानृतयुक्तवाणिज्येनापि जीवेन्न कदाचन श्ववृत्त्या .. .. | ४-६ |
| कुसूलधान्यकादिचतुर्षु द्विजानां परः परो लोकजित्तमः .. .. | ४-७-८ |
| तेष्वेको षट्कर्मा भवति, परं कुम्भीधान्यकः प्रशस्ततरः .. .. | ४-९ |
| शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः पार्वायणान्तीया इष्टीर्निर्वपेत् .. | ४-१० |
| ब्राह्मणः स्वजीविकामशठां शुद्धां जीवेत् | ४-११ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| सुखार्थी विप्रः संतोषमास्थाय संयतो भवेत् | ४-१२ |
| स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि व्रतानि धारयेत् | ४-१३ |
| वेदोक्तं स्वीयं कर्म कुर्वन् परमां गतिमाप्नोति | ४-१४-५ |
| इन्द्रियविषयेषु स कामतोऽतिप्रसक्तो न भवेत् | ४-१६ |
| स्वाध्यायविरोधिनोऽर्थान् सर्वथा परित्यजन् कृतकृत्यो भवति | ४-१७ |
| वयाद्युचिता वेषादय आचरन्स लोकवृत्तानुवर्तीह भवेत् | ४-१८ |
| इतिहासपुराणादिशास्त्राणि सदैवावेक्षेत | ४-१९-२० |
| पञ्चमहायज्ञा यावद्गार्हस्थ्यं न हापयेत् .. .. | ४-२१ |
| यज्ञशास्त्रविज्ञाः केचित् महायज्ञाननीहमाना इन्द्रियसंयमेनैव संपादयन्ति .. | ४-२२-३ |
| अन्ये तु ज्ञानचक्षुषा पश्यन्तो ज्ञानेनैव यजन्ते .. | ४-२४ |
| यावज्जीवं सायंप्रातश्च दर्शपौर्णमासादौ जुहुयात् .. | ४-२५ |
| नित्यानि कर्माण्येतावन्ति ब्राह्मणेन संपाद्यानि .. | ४-२६ |
| नियमानुपालनेनानेन स दीर्घमायुर्जीवति .. | ४-२७ |
| नवान्नेनानर्चिता अग्नयो ह्याहिताग्नेः प्राणानेव भक्षयितुमिच्छन्ति | ४-२८ |
| अनर्चितोऽतिथिस्तस्य गेहे न वसेत् | ४-२९ |
| पाषण्डचादयो न स्वागतादिवचनेनाप्यर्हयेत् | ४-३० |
| श्रोत्रियान् हव्यकव्येनार्हयेत् विपरीतान्वर्जयेच्च | ४-३१ |
| गृहमेधी भैक्षजीवनान्ब्रह्मचारिणः कञ्चिदंशं दद्यात् | ४-३२ |
| सम्पन्नेभ्यो धनं गृह्णीयादापदि, क्षुधा संसीदन्वा न त्वन्यतः | ४-३३ |
| शक्तश्चेज्जीर्णमलिनवद्वासा न भवेत् न वा क्षुधा सीदेच्च .. | ४-३४ |
| सदा स्वात्महितेषु युक्तः शुचिः स्वाध्यायरतो भवेत् .. | ४-३५ |
| यज्ञोपवीतसोदककमण्डल्वादिधारणमावश्यकम् | ४-३६ |
| उद्यन्तमादित्यमस्तं यन्तं वा न पश्येत् .. .. | ४-३७-८ |
| प्रस्थाने गौविप्रदैवतादीन्सप्रदक्षिणं गच्छेत् .. .. | ४-३९ |
| कामार्तोऽपि रजोदर्शने स्त्रियं न गच्छेत् तया सहैकशय्यायां वा न शयीत | ४-४० |
| रजस्वलासंभोगे आयुःप्रज्ञातेजोबलादीनां क्षयो भवति .. | ४-४१ |
| रजोवतीं वर्जयत आयुर्बलादयो विवर्धन्ते .. | ४-४२ |
| भार्यया सहाशनादिनिषेधः .. | ४-४३ |
| तेजःकामोऽनावृतां प्रसवन्तीं वा स्त्रियं न पश्येत् .. | ४-४४ |
| नैकवासा नग्नो वा स्नायीत नोत्सर्गः पथि कुर्वीत | ४-४५ |
| विण्मूत्रविसर्जनं गर्तादौ न कुर्वीत | ४-४६-९ |
| मूत्रपुरीषोत्सर्गे विहितो विधिः .. | ४-५०-२ |
| नाग्निं मुखेनोपधमेदमेध्यमग्नौ न प्रक्षिपेच्च | ४-५३-५ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| सन्ध्याकाले भोजनस्वापादिनिषेधः | ४-५५ |
| अप्सु न मूत्रपुरीषादि प्रक्षिपेत् | ४-५६ |
| उत्सन्नजनवासगेहे नैकाकी शयीत | ४-५७ |
| स्वाध्यायभोजनकालयोश्च सबाहुपाणि वासस उद्धरेत् .. | ४-५८ |
| धयन्तीं गां न कस्यचिदाचक्षीत नेन्द्रायुधं वा कस्यचिद्दिवि दर्शयेत् | ४-५९ |
| नाधार्मिके व्याधिबहुले वा ग्रामे वसेन्नच पर्वते चिरं वसेत् .. | ४-६०-१ |
| उद्धृतस्नेहमन्नं नातिसौहित्यं भोक्तव्यं, नातिप्रगे न वास्तमयसमये वा | ४-६२ |
| वृथा चेष्टां न कुर्यान्न वाञ्जलिना जलं पिबेत् | ४-६३ |
| न नृत्यगानादि कुर्यात्, नच वादित्राणि वादयेत् | ४-६४ |
| कांस्यभाण्डे पादप्रक्षालनस्य भिन्नभाण्डे भोजनस्य च निषेधः | ४-६५ |
| परधृतवस्त्रोपानहादिधारणनिषेधः | ४-६६ |
| अदमितैरश्वगजादिभिः क्षुद्व्याधिपीडितधुर्यैश्च न यायात् | ४-६७ |
| दमितैराशुगैः सुलक्षणैर्धुर्यैरपीडयन् गच्छेत् | ४-६८ |
| बालातपप्रेतधूमनिषेधः | ४-६९ |
| नाकारणं मृल्लोष्टतृणादि मृद्नीयात् .. | ४-७० |
| लोष्टमर्दी-तृणच्छेदी-नखखाद्यादयो देहधनादिनाशादिना विनश्यन्ति | ४-७१ |
| गौपृष्ठेन यानादि सर्वथैव विगर्हितम् | ४-७२ |
| प्राकाराद्यावृतं गृहं प्राकारादिलङ्घनं कृत्वा न विशेत् | ४-७३ |
| नाक्षैः क्रीडेत्, हस्तादिना नोपानहौ च हरेत् | ४-७४ |
| अर्केऽस्तंगते तिलमिश्रमोदकादि नाद्यात् | ४-७५ |
| आर्द्रपादस्तु भुञ्जानः शतायुर्भवति | ४-७६ |
| तरुगुल्मलतागहनं दुर्गं नाक्रामेत् | ४-७७ |
| दीर्घमायुर्जिजीविषुर्भस्मास्थ्यादिकं नाधिरोहेत् | ४-७८ |
| पतित-चाण्डाल-पुल्कसादिभिर्न संवसेत् .. | ४-७९ |
| हविःशेषादि शूद्राय न दद्यान्नच तं साक्षादुपदिशेत् .. | ४-८० |
| यः शूद्रस्य धर्मं ब्रूते सोऽसंवृतं नरकं प्रविशति | ४-८१ |
| संश्लिष्टहस्ताभ्यां न स्वशिरः कण्डूयेत् | ४-८२ |
| तैलेन शिरःस्नातः किञ्चिदप्यङ्गं न स्पृशेत् | ४-८३ |
| अक्षत्रियप्रसूतस्य राज्ञो धनं न प्रतिगृह्णीयात् | ४-८४ |
| अराजन्यस्य प्रतिग्रहो भयानकः, स एकविंशतिनरकान् याति | ४-८५-६ |
| तामिस्राद्येकविंशतिनरकाः सनामग्राहमाह .. | ४-८८-९१ |
| रात्रेः पश्चिमे यामे बुध्येत, धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् .. .. | ४-९२ |
| प्रातरुत्थाय कृतशौचविधिः पूर्वापरामपि संध्यामातारकोदयादूर्ध्वमपि जपन्नासीत | ४-९३ |

| विषयः | | अ. श्लो. |
|---|---|---|
| आयुरादिकामो महर्षिवद्दीर्घसन्ध्यामुपासीत | .. | ४-९४ |
| उपाकर्माख्यं कर्म कृत्वा वेदानधीयीत | .. | ४-९५ |
| सार्धेषु चतुर्षु मासेषु यः पुष्यस्तत्रोत्सर्गाख्यं कर्म कुर्यात् | .. | ४-९६ |
| ततः पक्षिण्यां रात्रावनध्यायः | .. | ४-९७ |
| शुक्लपक्षेषु संयतो वेदं, वेदाङ्गानि दा कृष्णपक्षेषु पठेत् | .. | ४-९८ |
| सुव्यक्तं वेदं पठेत्, ब्राह्मे ब्रह्माधीत्य न पुनः सुप्यात् | | ४-९९ |
| द्विजो गायत्र्यादिछन्दस्कृतं मन्त्रमनापदि पठेत् | .. | ४-१०० |
| अधीयानो हि शिष्यः शिष्याध्यापनं च कुर्वाणो गुरुरनध्यायान्वर्जयेत् | | ४-१०१ |
| अनध्यायानाह | .. .. | ४-१०२-२३ |
| देव-मनुष्य-पितृदेवताकत्वं पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदाध्ययनं प्रशस्तम् | .. | ४-१२४-६ |
| विशेषतो ह्येतौ द्वावेवानध्यायौ वर्जयेत् | | ४-१२७ |
| स्नातको द्विजो नामावस्यादिष्वृतावपि सति स्त्रियमुपगच्छेत् | | ४-१२८ |
| भोजनानन्तरं न स्नानमाचरेत् | | ४-१२९ |
| यज्ञे दीक्षितानां, देवतानां, स्नातकाचार्ययोश्च छायां नाक्रामेत् | .. | ४-१३० |
| श्राद्धभुक्तो द्विजश्चिरं चतुष्पथं नाधितिष्ठेत् | | ४-१३१ |
| उद्वर्तनादीनि कामतो नाधितिष्ठेत् | .. | ४-१३२ |
| वैर्यधार्मिकपरदारादींश्च न सेवेत | .. | ४-१३३ |
| परदारगमनमायुष्यक्षयकरम् | .. | ४-१३४ |
| कृशानपि विप्रश्रोत्रियसर्पक्षत्रियान्नावमन्येत | .. | ४-१३५ |
| ते त्ववमानिता निर्दहन्ति | .. | ४-१३६ |
| दुर्दैव्यहमिति नावसादो भावनीयः | .. | ४-१३७ |
| सत्यं प्रियं च ब्रूयात्, एष एव सनातनो धर्मः | .. | ४-१३८ |
| केनचिच्छुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् | .. | ४-१३९ |
| अज्ञातेन सहातिकल्ये नातिसायं वा गच्छेत् | .. | ४-१४० |
| हीनाधिकाङ्गमूर्खवृद्धादीन् न निन्देत् | .. | ४-१४१ |
| कृतभोजनो हस्तादिना गोब्राह्मणाग्नीन्न स्पृशेत् | .. | ४-१४२ |
| गवादीनशुचिः स्पृष्ट्वाचमनादिप्रायश्चित्तं कुर्यात् | .. | ४-१४३-४ |
| गायत्र्यादिजपं विहितहोमं च कुर्यात् | .. .. | ४-१४५-६ |
| वेदाभ्यास एव ब्राह्मणस्य परो धर्मस्तं स सदा समभ्यसेत् | .. | ४-१४७ |
| वेदाभ्यासादिना पूर्वभवस्य जातिस्मरणमनुभवति | .. .. | ४-१४८ |
| पूर्वभवजातिस्मरणेन स वेदमभ्यस्य विरक्तो मोक्षसुखं लभते | .. .. | ४-१४९ |
| अनिष्टनिवृत्त्यर्थं सावित्रान्होमान्कुर्यात् | .. | ४-१५० |
| अग्निगृहस्य दूरान्मूत्रोत्सर्गादि कुर्यात् | .. | ४-१५१ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| पुरीषोत्सर्गादि देवार्चनान्तं कर्म पूर्वाह्ण एव कुर्यात् | ४–१५२ |
| स्वरक्षणार्थममावस्यादिपर्वसु दैवतानि द्रष्टुं गच्छेत् | ४–१५३ |
| गृहागतान्गुरूनभिवादयेत् कृताञ्जलिश्चोपासीत | ४–१५४ |
| वेदस्मृत्युक्तं सदाचारं निषेवेत | ४–१५५ |
| आचारादरिष्टनाशो भवति | ४–१५६ |
| दुराचारी जनोऽल्पायुर्व्याधितश्च भवतीति दृष्टचरम् | ४–१५७ |
| सर्वलक्षणशून्योऽप्याचारवाञ्छतायुर्भवति | ४–१५८ |
| परवशकर्मणस्त्यागः, सुखदुःखयोर्लक्षणं च | ४–१५९–६१ |
| पितामातागुरुप्रवक्त्रादीनां प्रतिकूलाचरणं न कुर्यात् | ४–१६२ |
| वेददेवतादिनिन्दा द्वेषादि च वर्जयेत् | ४–१६३ |
| परस्य क्रुद्धः सन्नोत्क्षिपेत् | ४–१६४ |
| ताडनेच्छया ब्राह्मणायोद्यम्य तमिस्रे शतं वर्षाणि पच्यते .. | ४–१६५–७ |
| अधार्मिको नरो नेह सुखमश्नुते, धनादिनाशं च प्राप्नोति .. | ४–१६९–७० |
| धर्मेणावसादमपि प्राप्नुवन् शास्त्रमर्यादां नातिक्रमेत् .. .. | ४–१७१ |
| अधर्मोऽनुष्ठितो पृथिवीवत् परिपाकमपेक्षते, कालेनोपचीयमानः कर्तुर्मूलानि कृन्तति .. .. | ४–१७२–३ |
| कियन्तं कालं यावत् धनादिलाभं प्राप्यातःपरं स सपुत्रधनादिभिरुच्छिद्यते | ४–१७४ |
| सदाचारादिरतो वाग्बाहूदरसंयतो मनःप्रसादं कुर्यात् .. | ४–१७५–७ |
| स पित्रादिभिराश्रितं मार्गमनुसरंल्लोके न निन्द्यते | ४–१७८ |
| ऋत्विग्बालवृद्धातुरैर्न विवदेत् | ४–१७९–८० |
| तैर्विवादत्यागे स सर्वाल्लोकाञ्जयति | ४–१८१ |
| आचार्यादीनां गृहिभिः सममात्मीयता, तैरधिक्षिप्तः क्षमेत | ४–१८२–५ |
| प्रतिग्रहसमर्थोऽपि तत्र प्रवृत्तिं वर्जयेत् .. | ४–१८६–७ |
| अविदुषो प्रतिग्रहे भस्मीभवनम् | ४–१८८–९१ |
| बैडालव्रतिकद्विजाय दाननिषेधः | ४–१९२ |
| बैडालव्रतिकादित्रये दानमनर्थकरम् | ४–१९३ |
| तद्दातृप्रतीच्छकयोरनर्थकारित्वम् .. | ४–१९४ |
| बैडालव्रतिकलक्षणम् .. | ४–१९५ |
| [यस्य धर्मध्वज उच्छ्रितः, पापानि च प्रच्छन्नानि स बैडालव्रतिकः | ४–१९५] |
| बकव्रतचरलक्षणम् .. | ४–१९६ |
| बैडालव्रतिकादित्रयस्यान्धतामिस्रपतनम् .. | ४–१९७ |
| पापं कृत्वा व्रतेन पापप्रच्छादने परिणतिः .. .. | ४–१९८–९९ |
| अलिङ्गी यः परिव्राजकवृत्तिमुपजीवति तस्य फलम् .. | ४–२०० |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| परकीयजलाशये स्नातुः परिणतिः .. | ४–२०१ |
| यानशय्यासनाद्यदत्तान्युपभुञ्जानस्य फलम् .. | ४–२०२ |
| नद्यादिषु स्नानं प्रशस्तम् | ४–२०३ |
| यम-नियमाचरणे फलम् | ४–२०४ |
| अश्रोत्रियप्रारब्धे ब्राह्मणभोजनप्रतिषेधः | ४–२०५ |
| देवानां प्रतिकूले हविर्हवने शिष्टगमनं निषिद्धम् | ४–२०६ |
| दृष्टिदोषदुष्ट-केशकीटादिसंसृष्टान्नप्रतिषेधः | ४–२०७–२० |
| एवंविधभोजने प्रायश्चित्तम् | ४–२२१–२ |
| शूद्रपक्वान्नग्रहणनिषेधः, आमान्नमेकरात्रिकं गृह्णीयात् | ४–२२३ |
| श्रोत्रियादीनां देवैर्मीमांसित्वान्नव्यवस्थेत्थं कृता | ४–२२४ |
| प्रजापतिरागत्याह विषमं समीकरणं मा कृढ्वमिति | ४–२२५ |
| इष्टापूर्तकर्मकरणे प्रशंसनम् | ४–२२६ |
| पात्रमासाद्य दानधर्मकरणं प्रशस्तम् | ४–२२७ |
| दानं तारयति सर्वस्मादेनसः | ४–२२८–३६ |
| यज्ञो निष्फलोऽनृतेन भवति | ४–२३७ |
| यथा पिपीलिका मृत्संघातं शनैस्संचिनुते तद्वद्धर्मः संचेतव्यः .. .. | ४–२३८ |
| न पुत्रदारादिपरिवारो जन्मान्तरे सहायको भवति, तत्र धर्म एव केवलस्तिष्ठति | ४–२३९–४१ |
| धर्मोऽत एव संचिनुयाच्छनैर्येन दुस्तरं दुःखं सुतरं भवति | ४–२४२ |
| धर्मपरायणं पुरुषं धर्मः स्वर्गलोकं प्रापयति | ४–२४३ |
| उत्तमैः सह सम्बन्धं कुर्वन्निह श्रेष्ठत्वमश्नुते | ४–२४४–६ |
| मूलफलमधूनि सर्वतः कुलटादिवर्जं गृह्णीयात् | ४–२४७ |
| आहृताभ्युद्यतां भिक्षां दुष्कृतकर्मणोऽपि गृह्णीयात् .. | ४–२४८ |
| यस्तां भिक्षां न स्वीकरोति तस्य हव्यकव्यादि पितृदेवादयो न भुञ्जंते .. | ४–२४९–५० |
| आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्सदा साधुभ्यो गृह्णीयात् .. | ४–२५२ |
| यो यस्य कृषिं करोति स तस्य भोज्यान्नो भवति | ४–२५३ |
| शूद्रस्यात्मनिवेदनप्रकारः | ४–२५४ |
| शिष्टेष्वन्यथानिवेदकः स सर्वेष्वधिकपापकृत्तमः | ४–२५५–६ |
| महर्षिपितृदेवानामानृण्यं कृत्वा पुत्रे विन्यस्य गृह एव वसेत् | ४–२५७ |
| एकाकी रहसि हितमात्मभावं चिन्तयन्मोक्षमश्नुते | ४–२५८ |
| गृहमेधिनो ब्राह्मणस्य स्नातकविध्युपसंहारः | ४–२५९ |
| एवं वृत्तमनुसरन् क्षीणपाप इहामुत्र सर्वोत्कर्षं प्राप्नोति .. | ४–२६० |


**इति चतुर्थोऽध्यायः ।।**

# मनुस्मृतिः

## व्याख्यानवकोपेता

*

## तृतीयोऽध्यायः ३

---*---

**षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।**
**तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** द्विविधो ब्रह्मचारी पूर्वत्र प्रतिपादितः, नैष्ठिक उपकुर्वाणश्चेति । "आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्" (अ० २ श्लो० २४४) इत्यनेन नैष्ठिक-ब्रह्मचर्यमुक्तम् । "आ समावर्तनात्" (२।१०८) इति पक्षान्तरमपि सूचितम् । तत्र नैष्ठिकस्य नामधेयस्य प्रतिलम्भेनैव निमित्तवता अवधिशेषः सुगमितः । निष्ठां समाप्तिं गच्छति 'नैष्ठिकः' । श्रुत्यैव कालो विहितः "आ समाप्तेः" इति । उपकुर्वाणस्य "अनेन क्रमयोगेन" (अ० ६ श्लो० ८५) । "तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः । वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः" (अ० २ श्लो० १६५) इति संख्याया अविवक्षायां चैकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तादिशाखाध्ययनं यथाशक्तिप्राप्तं नियम्यते । **त्रैवेदिकं व्रतं चर्यम्** । त्रयाणां वेदानां समाहारस्त्रिवेदी, तद्ग्रहणप्रयोजनं **त्रैवेदिकम्** । ग्रहणक्रिया वृत्तावन्तर्भवति, वेदाधिगमस्य प्राग्विहितत्वात् । व्रतं ब्रह्मचारिधर्मकलापः । **चर्यं** चरितव्यम् । कृत्ये विधौ ।

एवमाहरणादीनां ग्रहणान्ततायां प्राप्तायामाह **षट्त्रिंशदाब्दिकमिति** । गृहीतेऽपि वेदे कालः पूरयितव्यः ।

"यदि स्वाध्यायाध्ययनविध्यर्थो धर्मः, तस्य च स्वाध्यायविधेर्ग्रहणे निवृत्तिः, किमर्था तर्हि द्वादशवार्षिकी ग्रहणोत्तरकालं व्रतचर्यानुवृत्तिः ?" अत्यल्पमिदमुच्यते । दर्शपूर्ण-मासादिष्वप्याग्नेयादियागेभ्यः पराञ्चि यान्यङ्गानि तत्राप्येतद्वक्तव्यम् । समस्ताङ्गानुष्ठान एवारादुपकारकाद्यङ्गयुक्ताद्विशिष्टक्रमकाद्विध्यर्थसंपद्यवगतायां परिचोदनाशब्दादेव विधिः सम्पद्यते । अथ "महतो लघीयांसस्तदर्धिकपादिकग्रहणावधयः पक्षाः सन्ति । तेषु सत्सु कः खलु महाप्रयासमतिचिरकालं तावद् द्वादशवार्षिकं व्रतचरणमाद्रियेत ?" इति चेत्—फलभूमार्थिनोऽङ्गभूयस्त्वमनुष्ठास्यन्ति । तदुक्तम् 'प्रयत्नविशेषात्फलविशेषण भवितव्य'-मिति ।' "ननु च नार्थावबोधादृते ग्रहणद्वारेण स्वाध्यायाध्ययनस्य किञ्चिदपरं फलमस्ति । एवं ह्याहुः—'न तस्याध्ययनमात्रं तत्र भवन्तो याज्ञिकाः फलं समामनन्ती'ति । तथा "दृष्टो हि तस्यार्थः कर्मावबोधनं नाम" इति **शबरभाष्ये** । तस्य च न कश्चिद्विशेषो दृश्यते ।" यद्येवं ग्रहणकालेऽप्यन्तरेण व्रतधर्मानुष्ठानं ग्रहणानुष्ठानप्रसङ्गः । कश्चैवमाह 'अर्थावबोधार्थः स्वाध्यायविधिरिति ?' । स्वाध्यायविधिः स्वार्थ एव । नान्यस्यान्यार्थतायां प्रमाणमस्ति । अर्थावबोधो हि ग्रहणे सति वस्तुस्वभावत उत्पद्यते न विधितः ।

"अथ किं स्वर्गादिफलार्थिनोऽयं विधिः ? ।" एतदपि कथं भविष्यति ? "का तर्हीयं वाचोयुक्तिः—फलविशेषेणेति ?"

एषा वाचोयुक्तिः। संस्कारविधिस्तावदयं स्वाध्यायप्रधानः, तस्य स्वाध्याये कर्मण्युत्पन्नत्वात्। संस्कारविधयश्च न साक्षादधिकारमर्हन्ति, किन्तु संस्कार्यद्वारेण साधिकारविध्यन्तरमनुप्रविशन्ति। यथा व्रीहिमवहन्तीति दर्शपूर्णमासाधिकारविषयाग्नेयादियागसाधनभूतपुरोडाशप्रकृतिव्रीहितुषकणविप्रमोचनादिसंस्कारद्वारेण दर्शपूर्णमासापूर्वसम्बन्धमनुभवति अवघातः, न तन्निरपेक्षः, स एव कर्तव्यतया प्रतीयते। एवमिह वेदस्य संस्कार्यत्वं नान्यत्राशेषभूतस्य निर्वहति। दृष्टः स्वाध्यायाध्ययनानन्तरमर्थावबोधः। अत इदमध्ययनमर्थावबोधपर्यन्तमवघात इव तण्डुलनिष्पत्तिपर्यन्तः। एतावांस्तु विशेषः— प्रकरणेऽधीतत्वादवघातो झटिति लब्धाधिकारविध्यन्तरसम्बन्धः। अयं त्वनारभ्याधीतत्वादवबोधपर्यवसायी सकलफलकर्मानुष्ठानोपयोगितया गम्यमानोऽधिकारः। तथा विध्यर्थनिर्वृत्तिरेव फलविशेषोऽभिप्रेतः। विधेर्हि पुरुषार्थत्वं व्युत्पन्नावगमम्, तत्साक्षाद्भवतु वा परम्परया वेति न विशेषः। गम्यमानाधिकारत्वाच्च स्वतन्त्र एवायं विधिः स्वात्मानमनुष्ठापयति, यद्यपि नित्यकामश्रुतिष्वर्थावबोध उपयुज्यते।

ये त्वर्थावबोधद्वारेण ज्योतिष्टोमादिविध्येककार्यत्वमिच्छन्ति तत्फलस्यैव च प्रयत्नविशेषादतिशयमाहुस्तेषामाचार्यकरणविधिना किमपराद्धम् येन महता यत्नेन तदेककार्यता निषिध्यते ? अप्रामाण्यं वेदस्य भवतीति चेदस्तु। न प्रयोजनवशेन युक्तिसामर्थ्यायातोऽर्थो हातुं शक्यते। युक्तिस्तु युक्त्यन्तरेण बलीयसा बाध्यते। "आचार्यकरणविध्येककार्यत्वे त्वस्य विधिरूपतैव हीयते, स्वार्थस्याविवक्षितत्वात्"। तत्तुल्यं ज्योतिष्टोमाद्यनुप्रवेशेऽपि।

यदा तु स्वतन्त्रोऽयं विधिः स्वार्थानुष्ठापकस्तत्समानस्कन्धस्तदा स्वयमेवेतिकर्तव्यतया युक्तोऽनुष्ठीयते।

तत्र ये विकल्पिताः कल्पा लघीयांसो गरीयांसश्च, तेषां लघीयसा सिद्धे गरीयसामनुष्ठानं विध्यर्थ एव विशेषमावहति। यथाऽऽधाने "एका देया तिस्रो देया' इत्यादि। अनुष्ठिते चास्मिन्विधौ स्वसामर्थ्याच्छ्रुतो वा भवतु प्रतीयमानो वा कल्प्यो वा, प्रमाणभेदोऽयं न सम्बन्धभेदः सर्वथोभयतः स्पर्शतो न मुच्यामहे—यद्यस्य विधिः स्वार्थानुष्ठापको ज्योतिष्टोमाद्युपकारकत्वञ्च।

"ननु किमिदं पूर्वापरविरुद्धं प्रलप्यते ? प्रागुक्तम्—न साक्षात्संस्कारविधयोऽधिकारसम्बन्धिनः, इदानीं तु स्वतन्त्र एवायं विधिः स्वार्थानुष्ठापक इति। 'यथायं विशेषश्रुतेनान्वयिना न सम्बध्यते, गम्यमानस्त्वधिकारः संस्कारविधीनामप्यविरुद्ध' इति। नायं विशेषो यद्यस्य विधिप्रयुक्तमनुष्ठानमर्थावबोधांश इष्यते। पाठमात्रस्याचार्यविधिप्रयुक्तत्वात्संस्कारविधीनामधिकारसम्बन्धोऽभ्युपगतः स्यात्। अथ विध्यन्तरोपकारकत्वात्तत्प्रयुक्तमनुष्ठानं, तथा सत्यधिकृतस्याध्ययनं स्यान्नाधीतवेदस्याधिकारः। तदा च शूद्रस्याधिकारो दुर्निवारः। न चाध्ययनानन्तरं वेदार्थश्रवणं प्राप्नोति। यदैव हि यदृच्छया कुतश्चिदधिगतं भवति

'ज्योतिष्टोमनाम कर्म वैदिकं स्वर्गफलमिति', तदैव तदितिकर्तव्यतां शिक्षेत्, तत्काल एव च तदुपयोगिनो मन्त्रान्याजमानानधीयीत ।"

अत्र केचिदाश्रयिन्यायेन (मी. सू. ४।१।१८) परिहरन्ति। यथैव हि स्विष्टकृदादय उभयरूपाः संस्कारार्थकर्मतया, एवं स्वाध्यायाध्ययनमप्यभिधानविनियोगानुसारितया क्रियाफलावबोधदर्शनेन च संस्कारकर्म फलवत्कर्मार्थकर्म। अतः साधिकारत्वसिद्धिः! "कः पुनरधिकारी ?"। उपनीतस्त्रैवर्णिको माणवक इति ब्रूमः। ब्रह्मचारिधर्मेषु ह्येतदाम्नायते। लिङादयो ह्यविनाभूतनियोज्यार्थविध्यर्थप्रतिपादकाः। तत्र विशेषाकाङ्क्षायां क्वचिच्छब्दसमर्पितो विशेषो भवति—'स्वर्गकामो यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति'। क्वचिदश्रुतोऽप्यन्विताभिधानसामर्थ्यबलेन कल्प्यो विश्वजिदादिषु। क्वचित्प्रकरणाद्वस्तुसामर्थ्याद्विध्यन्तरपर्यालोचनयाऽपि च प्रतीयते। तदेतदिह सर्वमस्ति। प्रकृतो ब्रह्मचारी! वस्तुसामर्थ्येन चार्थविबोध उपजायते। स च सर्वविधिषूपयुज्यते, विदुषोऽधिकारात्।

तदिदमपरे न मृष्यन्ति। संस्कारविधित्वेनैवास्य प्रतीयमानाधिकारता। यतः संस्कारकर्माणि संस्कार्यार्थतयाऽनुष्ठीयन्ते। यदि च संस्कार्ये न दृश्येत विशेषस्ततः सक्तुवत्संस्काररूपता हीयेत। अस्ति चात्र फलवत्कर्मावबोधलक्षणो विशेषः। यत्तु "स्विष्टकृदादिव"दिति, तत्प्रकृतिप्रत्ययविज्ञानागम्यत्वरूपहानितया युक्तोभयरूपता।

तस्मात्स्थितं स्वतन्त्रोऽयं विधिर्माणवकस्येति। अतश्च स्वत एवानुष्ठेयो नावघातादिवद्दर्शपूर्णमासाद्यधिकारनियोगाक्षेपेण। एवमनेकवेदाध्ययनमपि द्रष्टव्यम्। तत्रापि ह्येकेन वेदेन निर्वृत्ते विध्यर्थे किमित्यनेकवेदाध्ययनम्? फलभूम्ना तु युज्यते। फलं च पूर्ववत्, न तु वाक्यशेषाधीतं पयोदध्यादि। एवं स्थित एकवेदाध्यायिनः स्वशाखानधीतानां मन्त्राणां कर्मोपयोगिनां कर्मानुष्ठानकाले सामर्थ्यात्तदाक्षिप्तमध्ययनमनुज्ञातं भवति। यद्यप्यधीतवेदस्याधिकारे "अधीत" इति।

अन्ये तु 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येय' इति 'निष्कारण' इत्येतस्याधिकारपदतां मन्यन्ते। 'निष्कारणः', कारणं प्रयोजनमनुद्दिश्य, नित्यकर्मवत्कर्तव्यम्। न ह्यस्याधिकारसमर्पकत्वमन्तरेण विषयद्वारेण क्रियाकारकतद्विशेषणत्वादिनाऽन्वयः संभवति। तस्मात्सत्यपि संस्कारविधित्वे गम्यमानाधिकारत्वं श्रूयमाणाधिकारत्वं वाऽविरुद्धम्।

अपरे तु संस्कारविधित्वादनधिकारतामेव ज्यायसीं मन्यन्ते। अनुष्ठानविशेषलाभार्थो ह्यधिकार उपास्यते। स चेह संस्कार्यविशेषदर्शनादेव सिद्धः। संस्कारविधयः प्रयोजनापेक्षाः। क्रियाफलमेवात्र विधिसाध्यम्। तच्च कर्मस्थं ग्रहणलक्षणं दृश्यत एवाविरुद्धम्। अश्रुते विभाग स्मृत्यन्तराद्विभागावगतिः "प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानीति"। "के पुनरत्र त्रयो वेदा अभिप्रेताः? ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद इति। "अथ किं नाथर्वणो वेद इति?"

क एवमाह?। किंत्वत्र यथाश्रुतसंस्कार्यत्वनिबर्हणायामर्थावबोधनिष्ठतया तस्य विधेरनुष्ठानलाभः। अवबोधो हि सकलकर्मानुष्ठानोपयोगीति। आथर्वणश्चाभिचा-

र्थ्युपदेशबहुलः । तस्मान्न ज्योतिष्टोमादिकर्माणि विधीयन्ते । नापि तेषां किञ्चिदङ्गम् । त्रय्यैव हौत्राध्वर्यवौद्गात्रादिसकलतदङ्गपरिसमाप्तिः । प्रधानोत्पत्तिविधयश्च त्रय्यामेव ज्योतिष्टोमादीनां सन्ति । ब्रह्मत्वमपि त्रय्यामेव विद्यते । त्रिशब्दश्च संख्यावचनः । न च संख्याशब्दाः कञ्चिद्धर्ममेकमनपेक्ष्य प्रवर्तन्ते । अतो येषामेवेह कार्योपदेशपरता त एव त्रिशब्देनाभिगदितुं शक्यन्ते । न चाथर्वणस्य तत्कार्यानुप्रवेशः । न तत्र प्रधानविधयो ज्योतिष्टोमादीनां, नाङ्गविधयः । श्येनादिष्वभिचारयज्ञेषु त एवर्त्विजः सैवान्याऽपीतिकर्तव्यता । विशेषोऽपि यः सोऽपि त्रय्यामेवोपदिष्टः । अतो ऋग्यजुर्भ्यामृक्सामभ्यां चैकत्र कर्मणि समावेशाभावात् त्रिवेदीव्यपदेशानुपपत्तेर्नाथर्वणस्येह ग्रहणम् स्वाध्यायशब्दवाच्यत्वात्त्वध्ययनविधेस्तद्विषयत्वमविरुद्धम् ।

**तदर्धिकम्** । षट्त्रिंशत्संख्या प्रत्यवमृश्यते । ततोऽर्धमष्टादशवर्षाणि । अत्रापि विभागकल्पना षड्वर्षाणि । अत्रापि **पादिकम्** । पादश्चतुर्भागभागिनी सैव संख्या । नव वर्षाणि । तेषां चतुर्थो भागः । प्रतिवेदं त्रीणि । "कथं पुनस्त्रिभिर्वर्षैर्वेदः शक्यो ग्रहीतुम्? !" भवति कश्चिन्मेधावितमः । अपर आह । न ग्रहणस्वरूपप्रयुक्ता धर्माः, किं तर्हि तद्विषयेण विधिना प्रयुज्यन्ते । तत्रानिवृत्ते ग्रहणे यदि कानिचिदहानि नियमानुपालनमध्ययनकाले क्रियते तावत्सम्पाद्यत एव शास्त्रार्थः । भवेत्स्वाध्यायविध्यर्थं तावत्तैवाङ्गकलापानुष्ठानम् । असमाप्तग्रहणस्य तद्व्रतनिवृत्तौ व्रतस्नातकव्यपदेशः । अतः कालविशेषविधानं युक्तम् । त्रिभिर्वर्षैर्विना न व्रतस्नातको भवति । यद्यपि "स्नानं वेदसमाप्ताविति" केचित्स्मरन्ति, तथापि तदर्थव्रतसमाप्तावपि प्रयोग उपचाराद्युक्त एव । तदयुक्तम्; सत्यपि विधिप्रयुक्ते यावदध्ययनभावितैव व्रतानां युक्ता । अध्ययनसंयोगेन हि तानि चोद्यन्ते । यावदध्ययनं भवितुमर्हन्ति । वचनादेव हि त्रिसांवत्सरी व्रतचर्या प्रागपि ग्रहणाद्यद्येतत्पृथग्वाक्यम् । अथ तु ग्रहणान्तिकमेवेत्येकं वाक्यं, ततो नास्त्यगृहीते वेदे व्रतनिवृत्तिः । एवकारेणैवमेव पक्षमनुमन्यते ।

"यदि नास्त्यगृहीते वेदे तन्निवृत्तिः, कथं तर्हि 'व्रतस्नातको' 'वेदस्नातक' इति भेदेन व्यपदेशः?" । चतुर्थे वक्ष्यामः । षट्त्रिंशदब्दाः समाहृताः "षट्त्रिंशदब्दं,' तत्रभवं **षाट्त्रिंशदाब्दिकम्** । एवं **त्रैवेदिकम्** । तदर्धपरिमाणं **तदर्धिकम्** । एवं **पादिकं ग्रहणान्तिकमिति** । सर्वत्र "अत इनि ठनौ" (पा० सू० ५।२।११५) इति मत्वर्थीयः । न तु यस्य यत्परिमाणं तत्तस्यास्तीति शक्यतेऽपदेष्टुम् ।। १ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । क्रमप्राप्तं गार्हस्थ्याश्रमधर्मं प्रक्रमते **षट्त्रिंशदाब्दिकमिति** । षट्त्रिंशद्वर्षनिर्वर्त्यं वेदत्रयाध्ययनार्थं व्रतं ब्रह्मचर्याश्रमनियतधर्मरूपं **चर्यं** चरणीयम् । 'नियमेनाधीतं वीर्यवत्तरं भवती'ति श्रुतेः एकदेशस्यापि व्रतेनाध्ययने प्राशस्त्यात् । अशक्तस्य **तदर्धिकं** अष्टादशाब्दिकं वा नवाब्दिकमिति त्रिःप्रकारं व्रतं स्नानं केवलविद्यास्नानं कर्तुमिच्छतो **ग्रहणान्तिकम्** । अर्थादुभयनिष्पत्तौ विद्याव्रतस्नानसिद्धिरिति स्फुटत्वान्नोक्तम् । आथर्वणिकस्य तु त्रयीनिष्कर्षत्वात् एतद्व्रतेनैव व्रतसिद्धिरिति मन्तव्यम् ।। १ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वत्र 'आ समाप्तेः शरीरस्ये'त्यनेन नैष्ठिकब्रह्मचर्यमुक्तम्। न तत्रावध्यपेक्षा 'आ समावर्तनादि'त्यनेन वोपकुर्वाणकस्य सावधि ब्रह्मचर्यमुक्तम्। अतस्तस्यैव गार्हस्थ्याधिकारः। तत्र कियदवधिर्विधौ ब्रह्मचर्ये तस्य गार्हस्थ्यमित्यपेक्षायामाह **षट्त्रिंशदाब्दिकमिति**। त्रयो वेदा ऋग्यजुःसामाख्यास्तेषां समाहारः त्रिवेदी, तद्विषयं व्रतं स्वगृह्योक्तनियमसमूहरूपं षट्त्रिंशद्वर्षं यावद्गुरुकुले चरितव्यं **षट्त्रिंशदाब्दिकमिति** षट्त्रिंशदब्दशब्दात्कालाट्ठञ्। अस्मिंश्च पक्षे 'समं स्यादश्रुतत्वादिति' न्यायेन प्रतिवेदशाखं द्वादशवर्षाणि व्रतचरणम्, **तदर्धिकम**ष्टादशवर्षाणि तत्र प्रतिवेदशाखं षट्। **पादिकं** नववर्षाणि तत्र प्रतिवेदशाखं त्रीणि यावता कालेनोक्तावधेरूर्ध्वमधो वा वेदान्गृह्णाति तावत्कालं वा व्रताचरणम्। विषमशिष्टत्वेऽपि पक्षाणामेका देया(ति)स्तिस्रो देया षड् देया इतिवन्नियमफले न्यूनापेक्षो विकल्पः। तथाच श्रुतिः 'नियमेनाधीतं वीर्यवत्तरं भवती'ति। ग्रहणान्तिकपक्षसंदर्शनात्पूर्वोक्तपक्षत्रये ग्रहणादूर्ध्वमपि व्रतानुष्ठानमवगम्यते। अथर्ववेदस्यर्ग्वेदांशत्वेऽपि 'ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमथर्वाणं चतुर्थ'मिति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थवेदत्वेन कीर्तनात् 'अङ्गानि वेदाश्चत्वार' इति **विष्णु**पुराणादिवाक्येषु च पृथङ्निर्देशाच्चतुर्थवेदत्वेऽपि प्रायेणाभिचाराद्यर्थत्वात् यज्ञविद्यायामनुपयोगाच्चानिर्देशः। तथाहि ऋग्वेदेनैव हौत्रं कुर्वन्यजुर्वेदेनाध्वर्यवं सामवेदेनौद्गात्रं यदेव त्रय्यै विद्यायै सूक्तं तेन ब्रह्मत्वमिति श्रुतेस्त्रयीसंपाद्यत्वं यज्ञानां ज्ञायते। अयं च मानवस्त्रैवेदिकव्रतचर्याविधिर्नाथर्ववेदव्रतचर्यां निषेधयति तत्परत्वे वाक्यभेदप्रसङ्गाच्छ्रुत्यन्तरे वेदमात्रे व्रतश्रवणाच्च। यदाह योगि**याज्ञवल्क्यः** (आचार. २।३६) 'प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा'॥ १॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्रह्मचर्येणैव निष्ठां समाप्ति मरणं गतो नैष्ठिक इति समाख्ययैव गार्हस्थ्यनिवृत्तिः सिद्धा। उपकुर्वाणस्य गार्हस्थ्यं तद्ब्रह्मचर्यस्य कालविकल्पं चाह **षट्त्रिंशदिति द्वाभ्यां**। वेदार्थानुष्ठाने स एव मुख्याधिकारीति। मानं पूर्वं वेदादीत्युक्तमधुना मेयं वक्तव्यमिति मानमेययोः संगतिः। **त्रैवेदिकं** त्रयाणां वेदानां समाहारस्त्रिवेदी तद्ग्रहणप्रयोजनं त्रैवेदिकं **व्रतं** विशेष्यं।' षट्त्रिंशत्संवत्सरैरदृष्टार्थैर्वेदत्रयस्य सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्मे'ति न्यायात् शाखात्रयस्याध्ययनमवश्यंभावीति मेधागतवैजात्या**त्तदर्धिकम**ष्टादशवर्षसाध्यं **पादिकं** नववर्षसाध्यं समं स्यादश्रुतत्वादित्यादिन्यायेन वा प्रतिशाखं स्वतन्त्रमदृष्टार्थं गृहीतेऽपि वेदे व्रतमिति विशेषणम्। तथाच द्वादश षट् त्रीणि वर्षाणि वेदव्रताचरणम्। अत एवोक्तम् "तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितै"रिति। दुर्मेधसो नियमव्यावृत्तिमाह **ग्रहणान्तिकमेव वेति**। एतद्व्रतजातं निर्विघ्नताध्ययनसमाप्त्यर्थमिति **भट्टपादाः**॥ १॥

(५) **नन्दनः**। एवं प्रतिपादितस्य ब्रह्मचर्यस्याध्येतृसामर्थ्यानुरूपान्कालविकल्पानाह **षट्त्रिंशदिति**। षट्त्रिंशदब्दानां समाहारः षट्त्रिंशदब्दं, तत्र भवं **षट्त्रिंशदाब्दिकम्**। **त्रैवेदिकमिति** पदमप्येवम्। कृत्स्नवेदसंग्रहणार्थं त्रिशब्दः। पञ्च पाण्डवा इत्यत्र पञ्चशब्दवत्। मन्त्रत्रैविध्यनिबन्धनं हि वेदानां त्रित्वम्। तेन चतुर्थोऽपि वेदमन्त्रो मन्त्रात्मा त्रिशब्देन संगृह्यते। **व्रतं चर्यं** चरितव्यम्। तदर्धिकमष्टादशाब्दाः। एवं **पादिकं ग्रहणान्तिकम्**॥१-२॥

(६) **रामचन्द्रः**। अतःपरं गृहस्थाश्रममारभते। **गुरौ** समीपे **षट्त्रिंशदाब्दिकं** षट्त्रिंशद्वर्षपर्यन्तं कुर्याच्च। त्रयाणां वेदानां समाहारस्त्रिवेदी तद्गुणं प्रयोजनं **त्रैवेदिकं व्रतं** चरित्वं **द्वादशाब्दिकं षट्** षट्पर्यन्तं वा व्रतं ब्रह्मचर्यं चरेत्। ग्रहणान्तिकमेव वा व्रतं चरेत्। ग्रहणक्रिया व्रतेऽन्तर्भवति, वेदाधिगमस्य प्राग्विहितत्वात् ।। १ ।।

(७) **मणिरामः**। उपकुर्वाणस्य ब्रह्मचारिणः कियदवधि ब्रह्मचर्यावस्थेत्यपेक्षायामाह **षट्त्रिंशदाब्दिकमिति**। **त्रैवेदिकं व्रतं** स्वगृह्योक्तनियमसमूहरूपं **षट्त्रिंशदाब्दिकं गुरौ** गुरुकुले **चर्यं** चरितव्यम्, कर्तव्यमिति यावत्। तेन प्रतिवेदं द्वादशवर्षाणि व्रतं भवतीति सिद्धम्—इत्येकः पक्षः। पक्षान्तरमाह **तदर्धिकं** षट्त्रिंशदर्धिकं अष्टादशवर्षरूपम्। तत्र प्रतिवेदं षट् वर्षाणीति – द्वितीयः पक्षः। तृतीयमाह **पादिकं वा** षट्त्रिंशतः चतुर्थांशं नववर्षाणि वा; तत्र प्रतिवेदं त्रीणि वर्षाणीति—तृतीयः पक्षः। यदि सौबुध्दयात् स्वल्पकालेनैव वेदावगमः कुबुद्ध्या बहुकालेन वा तदा किं कर्तव्यं तत्राह **ग्रहणान्तिकमेव वा**। एवं चत्वारः पक्षाः। यज्ञादीनां वेदत्रयसाध्यत्वात् त्रैवेदिकमित्येवोक्तम्। न त्वथर्ववेदीयव्रतचर्यनिषेधार्थम्। स्मृत्यन्तरे सर्ववेदे व्रतश्रवणात् ।। १ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। षट्त्रिंशदाब्दिकं उपकुर्वाणः कः ब्रह्मचारिणो गार्हस्थ्याधिकारात् कियदवधिनि ब्रह्मचर्ये कृते गार्हस्थ्यमाश्रयणीयमित्यत आह **षट्त्रिंशदाब्दिकमिति**। षट्-त्रिंशद्वर्षसंभवं गुरुगृहे ऋग्यजुस्सामाख्यवेदत्रयविषयं प्रतिशाखं द्वादशवर्षाणि **व्रतं** नियमसमूहः चरितार्थं, **तदर्धिकं** चाष्टादश प्रतिशाखं षडिति, **पादिकं** वा नव प्रतिशाखं त्रीणीति यावता वा कलिनोक्तावधेरूर्ध्वमधो वा वेदान् गृह्णीयात् तावत्कालं चरितव्यम्। नियमफलापेक्षो विकल्पः "नियमेनाधीतं वीर्यवत्तरं भवति" इति श्रुतेः।

अत्र चाथर्ववेदस्य "नेता एते अथर्वाङ्गिरसी" इत्यादिश्रुतेः, "श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः" इत्यादिस्मृतेश्च दृद्धव्यवहारे च इतरवेदवत् निरुपपदवेदशब्दप्रयोगात् "अङ्गानि वेदाश्चत्वार" इति धर्मः (धर्मस्थानत्वस्य) तेष्वपि चतुर्षु व्यवहारात् सत्यपि वेदत्वे शान्त्यादिप्रयोजनत्वेन प्रायेण दृष्टार्थत्वात् "ऋग्वेदेनैव हौत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवं सामवेदेनोद्गीथं यदेव त्रय्यै विद्यायै संश्लेषं तेन ब्रह्मत्व" मिति श्रुतेः त्रय्यैव क्रियापरिसमाप्तेः ग्रहणम्। 'वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्य' इति एकशाखाध्ययनेनैव स्वाध्यायनिवृत्तौ पुण्यातिशयापेक्षया ।। १ ।।

**वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।**
**अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ।। २ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। त्रैवेदिकमध्ययनमुक्तम्। एकद्विवेदाध्ययनमप्राप्तं विकल्प्यते। वेदशब्दः शाखावचनो व्याख्यातः। 'तिस्रः शाखा अधीयीत द्वे एकां वैकैकस्माद्वेदान्न त्वेकस्मादेव'। त्रयी त्रिविद्येति पठ्यते। **अधीत्य,** गृहीत्वा, वेदमुक्तया व्रतचर्यया। **गृहस्थाश्रममावसेत्**। गृहस्थाश्रमस्य स्वरूपं वक्ष्यति "उद्वहेत द्विजो भार्याम्" (श्लो. ३।४) इत्यादि। **आवसे-**

दनुतिष्ठेत्। अनेकार्था धातवः। आङ् मर्यादायां वर्तते। कृतदारपरिग्रहो रूढ्या गृहस्थ उच्यते। 'गृह'शब्दो दारवचनस्तत्र तिष्ठति। तस्य यो विहितः पदार्थसमूहो विधिनिषेधात्मकः स आश्रमशब्देनोच्यते। यथोपनीतस्य ब्रह्मचर्याश्रम आ समावर्तनात्, कृतविवाहस्य गार्हस्थ्यमिति।

अविप्लुतमखण्डितं ब्रह्मचर्यं स्त्रीसंप्रयोगनिवृत्तिर्यस्य स एवमुच्यते। वाक्यभेदश्चात्र द्रष्टव्यः। आख्यानव्यवहारेण—**अविप्लुतब्रह्मचर्यो** भवेद्गृहस्थाश्रमं च प्रतिपद्येत। एकवाक्यतायां कदाचन विप्लवे गार्हस्थ्याधिकार एव हीयेत। अद्य पुनः पुरुषार्थतया विधानेन तदतिक्रमे प्रायश्चित्तेन युज्यते न त्वधिकारी न भवति।

अधीत्यावसेदिति च पौर्वापर्यमात्रं विवक्षितम्, नाध्ययनसमनंतरभाविता विवाहस्य ल्यप्कार्यात्पौर्वापर्यविधानादानन्तर्यं न शब्दार्थः। अतश्च स्वाध्यायाध्ययनविवाहयोरन्तराले व्याकरणादिशास्त्रश्रवणं वेदार्थज्ञानार्थं लभ्यते। विद्वानेव हि गार्हस्थ्येऽधिक्रियते, न यथाऽध्ययनविधौ मूर्खः। यद्यपि बाल्यावस्थायां तिर्यक्समानधर्मा स्वमधिकारं प्रतिपत्तुमसमर्थस्तथापि पित्राऽऽचार्येण वाऽनुष्ठाप्यते। वस्तुतस्तयोरेवाधिकारः। अपत्यानुशासने पितुरधिकारोऽपत्योत्पत्तिविधेस्तावताऽभिनिर्वर्त्यत्वात्। अनुशासनं च विधिनिषेधाधिकारद्वयप्रतिपादनम्। तत्र यत्प्रतिपाद्यमानोऽपि नावबुध्यते, तदन्ध इव हस्तग्राहिकया कार्यते। यथाऽग्निसंस्पर्शकूपादिपाताद्गाढहस्तावष्टम्भादिना धार्यते एवमदृष्टादपि मद्यपानादेः। यथा वाऽनिच्छन्नौषधपानादौ प्रवर्त्यते एवं शास्त्रीयेष्वपि पदार्थेषु। यदा त्वीषद्व्युत्पन्नस्तदैवं नियुज्येत 'इदमिदं कर्तुमर्हसीति'। एवं सत्यधीतवेदो माणवकः पित्राचार्येणैवं प्रतिबोधयितव्यो "गृहीतवानसि वेदं त्वमिदानीं तदर्थजिज्ञासायामधिक्रियसे ततस्तदङ्गानि श्रोतुमर्हसीति" एतावता पितुरपत्योत्पादनाधिकारनिवृत्तिः। तदुक्तं 'कियता पुनरुत्पादितो भवति यावता स्वयमधिगतकृत्यो भवतीति'।

अतः स्थितमेतत्—नाधीत्यैव विवाहो यावद्वेदार्थो नाधिगतः। एवं च पदयोजना कर्तव्या। **अधीत्य** अध्ययने निवृत्तेऽपि **अविप्लुतब्रह्मचर्यः** स्यात्। प्राप्तायां च निवृत्तौ पुनर्वचनं नियमान्तराणां मधुमांसवर्जनादीनां निवृत्तिपरम्। तेन यावदध्ययनं तावत्सर्वे नियमा अनुष्ठातव्याः। समाप्ते त्वध्ययनेऽर्थावबोधकाले स्त्रीनिवृत्तिरेव करणीया, स्त्री-सेवा न विधातव्या। ब्रह्मचर्यशब्दो यद्यपि ब्रह्मग्रहणार्थं यद्व्रतग्रहणं तत्र व्युत्पाद्यते तथापि स्त्रीनिवृत्तिपर एवास्य तत्र प्रयोग इति दर्शयिष्यामः।

**यथाक्रमम्**। य एवाध्येतॄणां पाठक्रमः प्रसिद्धस्तेनैव, प्रथमं चतुःषष्टिस्ततो ब्राह्मणं पितृपितामहाद्यभिजनप्रबन्धोपक्रमं भवति। न हीदृशेऽर्थे वक्तारो न कुलेन न शीलेन न क्रमेणेति। एतेन चैतत्प्रतिपादितं भवति—या एव पित्रादिभिः शाखाऽधीता सा न त्याज्येति ॥ २ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विद्यास्नानपक्षे शक्त्यपेक्षो विकल्पः। **यथाक्रमं** वेदत्रयाध्ययनपक्षे ऋग्वेदादिक्रमेणैव एकवेदाध्ययने तु यच्छाखीयसंस्कारैः संस्कृतस्तस्य। एवादावध्ययनमित्यर्थः ॥ २ ॥

(३) **कुल्लूकः**। वेदशब्दोऽयं भिन्नवेदशाखापरः। स्वशाखाध्ययनपूर्वकवेदशाखात्रयं द्वयमेकां वा शाखां मन्त्रब्राह्मणक्रमेणाधीत्य। **गृहस्थाश्रमं** गृहस्थविहितकर्मकलापरूपमनुतिष्ठेत्। कृतदारपरिग्रहो गृहस्थः, गृहशब्दस्य दारवचनत्वात्। **अविप्लुतब्रह्मचर्य** इति। पूर्वविहितस्त्रीसंयोगमधुमांसभक्षणवर्जनरूपब्रह्मचर्यानुवादोऽयं प्रकृष्टाध्ययनाङ्गत्वख्यापनार्थः। पुरुषशक्त्यपेक्षश्चायमेकद्वित्रिशाखाध्ययनविकल्पः। यद्यपि व्रतानि वेदाध्ययनं च नित्यवदुपदिशता मनुनोभयस्नातक एव श्रेष्ठत्वादभिहितस्तथापि स्मृत्यन्तरादन्यस्नातकोऽपि बोद्धव्यः। तदाह **हारीतः** 'त्रयः स्नातका भवन्ति– विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चे'ति। यः समाप्य वेदमसमाप्य व्रतानि समावर्तते स विद्यास्नातकः; यः समाप्य व्रतान्यसमाप्य वेदं समावर्तते स व्रतस्नातकः। उभयं समाप्य समावर्तते यः स विद्याव्रतस्नातकः।' **याज्ञवल्क्यो**ऽप्याह (३।५१) 'वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वे'ति ॥ २ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शाखामात्राध्ययनमवश्यंभावीति त्रिंशदधिकैकादशशतशाखानां वेदचतुष्टयपरिमाणत्वात् पुरुषायुषमध्येऽप्यध्येतुमशक्यत्वाद्वेदशब्दः शाखापरः। 'सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्म' इति **न्यायात्** सर्वशाखाविधित्वं च 'सिद्धमध्येतृभेदतः' इति **भट्टस्वरसात्**। अन्यथैकैकस्य संपूर्णवेदाध्ययने पुनरनुवाद एव। वेदाध्ययनविधिरध्यापनाङ्गमिति **गुरुः**। अर्थावबोधाङ्गमिति **भट्टाः**। अक्षरावाप्तिपरमिति **वेदान्तिप्रभृतयः**। एतन्मतमेव साधु। 'योऽनधीत्ये'त्यादिनिन्दार्थवादेनाध्ययनस्य नित्यतावगमात्तत्र ऋग्वेदेन हौत्रं कुर्यात्। यजुर्वेदेनाध्वर्यवम्। सामवेदेनौद्गात्रम्। सदैवतं तथैव विद्यया सूक्तमय्या त्रय्येवे'ति **स्मृतेः**। तेन ब्रह्मत्वमित्यतो वेदत्रयसाध्यत्वात्सर्वकर्मणामतो न प्रवेशोऽथर्ववेदस्य अत एव वेदानधीत्येति यथाक्रमं स्वशाखानुक्रमेण। **अविप्लुतब्रह्मचर्यः** अक्षतब्रह्मचर्यः ॥ २ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तद्यथा **वेदेति**। **गृहस्थः अविप्लुतब्रह्मचर्यो**ऽस्खलितब्रह्मचर्यो **गृहस्थाश्रममावसेत्**। किं कृत्वा ? वेदशब्दः शाखावयवे व्याख्यातः। वेदान्ते वेदौ वा वेदं वा यथाक्रमं शाखाक्रमेणाधीत्य ॥ २ ॥

(७) **मणिरामः**। सर्वेषां सर्वदा अध्ययननियमे प्राप्ते विकल्पानाह **वेदानिति**। स्वशाखाध्ययनपूर्वकं वेदशाखात्रयं द्वयं एकं वा **यथाक्रमं** मन्त्रब्राह्मणक्रमेणाधीत्य **गृहस्थाश्रममावसेत्**। कृतदारपरिग्रहो **गृहस्थः** तस्याश्रमं गृहस्थविहितकर्मसमूहं कुर्यादित्यर्थः ॥ २ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वेदानिति**। शाखात्रयं द्वयं चैकां वा स्वशाखापूर्वक्रमेण मन्त्रब्राह्मणपौर्वापर्यस्थितिक्रमेण **चाधीत्य** अखण्डित**ब्रह्मचर्यो**ऽसंजातस्त्रीसंप्रयोगः गार्हस्थ्यं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥

**तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ।**
**स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ।। ३ ।।**

(१) **मेधातिथिः । तं ब्रह्मदायहरं** प्रथमं गवाऽर्हयेत् । ब्रह्म च दायश्च ते उभे हरति स्वीकरोतीति **ब्रह्मदायहरः** । दीयत इति 'दायो' धनं, 'ब्रह्म' वेदो, 'हरण'मधिगमः । गृहीतवेदः पित्रा कृतविभागो गार्हस्थ्यं प्रतिपद्यते, निर्धनस्यानधिकारात् । यदि तु पिता निर्धनस्तदा सान्तानिकतया धनमर्जयित्वा विवाहयेत् । अन्ये तु ब्रह्मैव दायो 'ब्रह्मदाय' इति पूर्वोक्तविध्यनुवादं मन्यन्ते । **पितुरिति** । 'ननु चाचार्यस्य माणवकाध्यापनेऽधिकार उक्तः, किमिदमुच्यते पितुर्ब्रह्मदायहरमिति ?' । उच्यते । यस्य पिता विद्यते तस्य स एवाचार्यः । अभावे पितुरशक्तौ वाऽन्यस्याधिकारः । आचार्यान्तरोपादानेन पितुरधिकारो निवर्तत एव ; स्वयं वाऽध्यापयत्वन्योपादानेन वेति न विशेषः ।

यदप्याहुः—"वरो दक्षिणेत्युपनयने नित्यवद्दक्षिणाम्नानात्परकर्तृकत्वमेवेति"— तदसत् । उपनयने ह्ययं विधिः 'वरो दक्षिणेति' । उपनेता च पिता वाऽऽचार्यो वा, तौ द्वावपि स्वाधिकार-प्रवृत्तौ नानत्यन्तरमपेक्षेते । आनमनार्थं हि दक्षिणादानम् । न चाधिकारान्तरतः प्रवृत्तस्यान-तिरुपयुज्यते । तेनायं दक्षिणाशब्द आनमनार्थाभावादर्थाद्धिरण्यदानवददृष्टार्थदानोपलक्षणार्थो विज्ञेयः । पित्रैव चासौ तावता धनेन स्वामी कर्तव्यो येन वरदानमस्य संपद्यते ।

अथायमाग्रहः— "नानत्यर्थाद्दानादृते दक्षिणाशब्दस्योपपत्तिः । न वा मुख्ये सति लक्षणा न्याय्येति" । एवं तर्हि यस्य पिता न तत्स्थानीयो नाचार्यः स यदाऽऽत्मानमुपनयेत् सत्यकामवत्तद्विषयो दक्षिणाविधिर्भविष्यति । तस्यापि चेषदपेतशैशवस्यात्मसंस्कारायास्त्येवा-धिकार इति प्रतिपादितम् । तस्मादुभयथा पितुरधिकारः, स्वयमुपनयमानस्यान्यमाचार्य-मुपाददानस्य वा । **प्रतीतम्** अभिमुखीभूतं गृहाश्रमप्रतिपत्तौ । न तु नैष्ठिकं, समाप्ताध्ययन-विध्यर्थमपि ग्रामप्रतिपत्तौ । **स्रग्विणम्** । यावन्तः केचन गृह्यकारैर्मधुपर्ककर्मणि धर्मा आम्नातास्तेषां प्रदर्शनार्थमेतत् । **तल्प आसीनं** महार्हपर्यङ्कशयनोपविष्टम् । पूजाधिकारार्हं शयनम् । **गवा** मधुपर्केण । मधुपर्कोऽसौ विधिः । पाक्षिक आम्नातः । अतो गोशब्देन तत्साधनकर्मविशेषो लक्ष्यते । **अर्हयेत्** पूजयेत् । अधिकारात्पिताऽऽचार्यो वा । **प्रथमं** पूर्वं विवाहात् । **प्रतीतं स्वधर्मेणे**त्यनुवादः । स्वधर्मेण 'ब्रह्मदायहरं,' 'स्वधर्मेण चार्हयेदिति,' संबन्धे न विशेषः ।। ३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **ब्रह्म** वेद **प्रतीतं** प्राप्तवन्तं अधिगतवन्तमिति यावत् । **दायहरं** वित्तहरं **पितुः** पितृरिक्थग्रहणार्हम् । अनैष्ठिकमिति यावत् । प्रथमं यस्य गृहेऽसावु-पस्थितः सान्तानिकत्वेनार्थार्थितया स **गवाऽर्हयेत्** इति गोशब्दस्तत्सहचरितमधुपर्कपरः **स्रग्विणं तल्प आसीनमिति** । माल्यासनविशेषाभ्यामर्चाभिप्रेता । तल्पे तूलिकादिमति शय्या-रूपे आसने ।। ३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तं ब्रह्मचारिधर्मानुष्ठानेन ख्यातम्। दीयत इति दायः, ब्रह्मैव दायो ब्रह्मदायः, तं हरतीति **ब्रह्मदायहरं, पितुः** पितृतो गृहीतवेदमित्यर्थः। पितृतोऽध्ययनं मुख्यमुक्तं पितुरभाव आचार्यादेरप्यधीतवेदं मालयालङ्कृतमुत्कृष्टशयनोपदिष्टं गोसाधन-मधुपर्केण पिताऽऽचार्यो वा विवाहात्**प्रथमं** पूजयेत्॥ ३॥

(४) **राघवानन्दः**। **तं** ब्रह्मचारिणं **प्रतीतं स्वधर्मा**नुष्ठानेन ख्यातम्। **ब्रह्मदाय-हरं पितुः** पितृतो गृहीतवेदम्। अथवा **स्वधर्मेणैव** ब्रह्म वेदं प्रतीतं प्राप्तवन्तम्, **पितुर्दायहरं** नैष्ठिकव्यावृत्त्यर्थं पितुर्दायहरमित्युक्तं, पितृतोऽध्ययनस्यानावश्यकत्वात्। **स्रग्विणं** समलङ्-कृतं, **तल्पे** शय्यायां **गवा** गोगता मधुपर्केण **पिता** आचार्यो वा **अर्हयेत्** पूजयेत्॥ ३॥

(५) **नन्दनः**। **पितुः** सकाशात् **ब्रह्मदायहरं** ब्रह्म वेदस्तदर्थं दायो दानं दक्षिणा। ब्रह्मदायस्तं हरतीति **ब्रह्मदायहरं** पितुः सकाशाद्गुरुदक्षिणां गृहीत्वा गुरवे दत्तवन्तमित्यर्थः। **प्रतीतं** प्रतिगतं ब्रह्मचर्यान्निवृत्तमिति यावत्। **स्रक्शब्दः** सर्वालंकाराणामुपलक्षणम्। गोशब्दोऽश्वादीनाम्। **अर्हयेत्** कन्याप्रदो गृही वा॥ ३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **तं प्रथमं** पूजयेत्। कीदृशं गुरुं? **स्वधर्मेण** ख्यातं। पुनः कीदृशं? **ब्रह्मदायहरं** ब्रह्मैव वेद एव धनं यस्य तस्य दाय अंशः तस्य हरं हरति स्वीकरोति तं। पुनः कीदृशं? **स्रग्विणं**। पुनः कीदृशं? **तल्पमासीन**मासनस्थम्॥ ३॥

(७) **मणिरामः**। **तं** ब्रह्मचारिणं **स्वधर्मेण प्रतीतं** ब्रह्मचारिधर्मानुष्ठानेन ख्यातं **ब्रह्मदायहरं** पितुः ब्रह्मैव दायः तं हरतीति तथा पितृतो गृहीतवेदमित्यर्थः। मुख्यं पितृतः, तदभावे आचार्यादेरध्ययनमिति मन्वभिप्रायः। **स्रग्विणं** मालालङ्कृतम् **तल्प आसीनं**। उत्कृष्टासनोपविष्टं गोयुक्तमधुपर्केण पिता आचार्यो वा **प्रथमं** विवाहात् पूजयेदित्यर्थः॥ ३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तमिति**। **तं** कृतब्रह्मचर्यं ब्रह्मचर्यावस्थानोदितधर्मानुष्ठाना-नुशयेन प्रतिख्यातं "तस्मात् पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः" इति श्रुत्या **पितुः** प्रथमकल्पिकत्वात् पितुः सकाशात् तदभाव आचार्यं अधीतवेदं कृतमाल्याद्यलङ्कारं परार्ध्यशयनोपविष्टं पिता तदभावे आचार्यादिः गृह्योक्तस्वरूपगोसाधनकमधुपर्काख्यकर्मणा गार्हस्थ्यप्रतिपत्तेः प्राक् पूजयेत्। दीयत इति दायः, ब्रह्मैव दायो ब्रह्मदायः, तं हरतीति **ब्रह्मदायहरः**॥ ३॥

**गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि॥**
**उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ ४॥**

(१) **मेधातिथिः**। सत्यामपि वेदव्रतसमाप्तौ **गुरुणाऽनुमतः** अभ्यनुज्ञातः स्नायात्। **स्नान**शब्देन गृह्योक्तसंस्कारविशेषो लक्ष्यते, ब्रह्मचारिधर्मविधिः। यथा चात्र लक्षणा तथा प्राग्व्याख्यातम्। तदहरेव **गृह्यकारोक्तं** कंचिन्मधुपर्कपूजाविहितसंस्कारं प्राप्य **समावृत्तो** 'गुरुकुलात्पितृगृहं प्रत्यागत' इत्यनुवादः। **उद्वहेते**त्येतद्विधिशेषमेतत्सर्वं प्राप्तमेव, न तु **समावर्तनं** विवाहाङ्गम्। तेन यः पितृगृह एवाधीतवेदस्तस्य समावृत्त्यसम्भवेऽपि भवत्येव

विवाहः। केचित्समावर्तनं विवाहाङ्गं स्नानं मन्यन्ते। "क्त्वाश्रुत्या भेदप्रतिपत्तिरिति" चेदेवं तर्हि समावर्तनं विवाहाङ्गं स्नानसंस्कारं वक्ष्यति। सविशेषं हि तत्र स्नानमाम्नातमेव "स्नातकेनेत्यादि"। अथवा यमनियमत्यागाभिप्रायं समावृत्तिवचनम्। **समावृत्तः** प्राक्तनी-मेवावस्थां नियमरहिता प्रतिपन्न इत्यर्थः। विशेषाभिप्रायं च नियमत्यागवचनम्। ब्रह्म-चारिणो हि सातिशया यमनियमा न तथोत्तरेषाम्। **यथाविधीति** स्वधर्मेणेतिवत्। **उद्वहेत द्विजो भार्याम्**। उद्वहेतेति विवाहविधिः। संस्कारकर्म विवाहः, भार्यामिति द्वितीयानिर्देशात्। "न च प्राग्विवाहाद् भार्या सिद्धाऽस्ति यस्या विवाहसंस्कारः क्रियेत, चक्षुष इवाञ्जनसंस्कारः। किं तर्हि निर्वर्त्यते विवाहेन?" यथा यूपं छिनत्तीति, छेदनादयः संस्कारा यस्य क्रियन्ते स यूपः, एवं विवाहेनैव भार्या भवतीति। विवाहशब्देन पाणिग्रहणमुच्यते। तच्चात्र प्रधानम्। एवं हि स्मरन्ति "विवाहनं दारकर्म पाणिग्रहणमिति"। इहापि वक्ष्यति (श्लो. ४३) "पाणिग्रहणसंस्कार" इति लाजहोमाद्यङ्गम्। तच्च गृह्यादखिलं ज्ञातव्यम्। "नोद्वहेत्कपिलां कन्यामिति" (३।८) कन्याग्रहणात्कन्याया अयं संस्कारः, न स्त्रीमात्रस्य। कन्याशब्दश्चात्र प्रकरणेऽप्रवृत्तपुंसं प्रयोगायां योषिति वर्तत इति वक्ष्यामः। **सवर्णां** समानजातीयाम्। **लक्षणान्विताम्** 'लक्षणानि' अवैधव्यप्रजाधनसूचकानि वर्णरेखातिलकादिचिह्नानि ज्योतिः-शास्त्रावगम्यानि, तैः 'अन्वितां' युक्तां, शुभलक्षणान्वितामित्यर्थः। यद्यप्यनिष्टसूचकमपि लक्षणं भवति। किंतु सूचकैरेव शस्तैस्तादृशीं विवाहयेत्, अतः प्रशस्तलक्षणा लक्षणवती द्रष्टव्या। अभिप्रेतसूचक एव लक्षणशब्दो लोके प्रयुज्यते। सलक्षणोऽयं पुरुषः सलक्षणा स्त्रीति या शुभलक्षणा सैवमुच्यते। कामिनः खेदनिवृत्तिः। "सहधर्मश्चरितव्यः" इति तया सह सर्वधर्मेष्वधिकाराददृष्टपुरुषार्थसिद्धिस्तदधीना।

अत्र केचिन्मीमांसन्ते— "रागिणः पूर्वोक्तेन प्रकारेण दृष्टसिद्ध्यर्थं विवाहं स्वतः कुर्वन्ति। तेषां च कृतविवाहानां सम्भवेत्स द्विजातिकर्मविधित्वेन कर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थो विवाहः। यस्य कथंचित्स्त्रीनिष्ठा निवृत्ता, न तस्य विवाहः। असति विवाहे कर्मानधिकारादन-धिकृतस्य चाननुष्ठाने दोषाभावात्पुरुषार्थानुष्ठानान्यननुतिष्ठतोऽनाश्रमिणोऽप्यवस्थानम-विरुद्धम्।"—तदेतदसत्। यथैव कामः पुरुषार्थस्तथैव धर्मोऽपि पुरुषार्थत्वे प्रयोजकः। सर्वोऽपि पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं प्रवर्तते। यदि चैतदेवं स्यात्संवत्सरमनाश्रमी भूत्वेत्यादि नोपपद्येतेति। निपुणं चैतदाश्रमविकल्पावसरे षष्ठे निर्णेष्यामः॥ ४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गुरुणेत्यादिना व्रतं तत्कर्तव्यं संक्षिप्योक्तम्। **स्नात्वा** व्रतविद्यासमापननिमित्तं वैधर्म्यस्नानं गुरुकुल एवं कृत्वा **समावृत्तः** गुरुगृहात्पितृ-गृहानागतः। **यथाविधि** स्वगृह्योक्तहोमादिकर्मपूर्वकं स्नात्वेत्यन्वयः। **लक्षणम**वैधव्यादि चिह्नम्॥ ४॥

(३) **कुल्लूकः**। **गुरुणा** दत्तानुज्ञः स्वगृह्योक्तविधिना कृतस्नानसमावर्तनः **समान-वर्णां** शुभलक्षणां कन्यां विवहेत्॥ ४॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रकृतमुपसंहरति **गुरुणेति द्वाभ्यां**। **समावृत्तः** समावर्तन-मौञ्जीत्यागप्रक्रिया गृह्योक्ता तया युक्तः। **द्विजस्त्रैवर्णिकः सवर्णां** समानजातिम्। **लक्षणान्वितां** वक्ष्यमाणगुणां दुर्लक्षणहीनां च ।। ४ ।।

(५) **नन्दनः**। ।। ४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **द्विजः सवर्णां लक्षणान्वितां भार्यामुद्वहेत्**। कीदृशो द्विजः? **समावृत्तो** गुरुकुलादागतः, किं कृत्वा? **गुरुणाऽनुमत** आज्ञप्तः सन् **स्नात्वा** ।। ४ ।।

७ **मणिरामः**। **अनुमतः** दत्ताज्ञः **यथाविधि** स्वगृह्योक्तविधिना **स्नात्वा समावृत्तः** कृतस्नानसमावर्तनसंस्कारः ।। ४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **गुरुणेति**। गुर्वनुज्ञातः गृह्यशास्त्रविध्यनतिक्रमेण कृतगृह्योक्तस्वरूपस्नानसमावर्तनाख्यकर्म द्विजः समानजातीयां प्रशस्तलक्षणां **भार्यामुपयच्छेत्** ।। ४ ।।

**असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।।**
**सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मण्यमैथुनी ।।५।।**

(१) **मेधातिथिः**। यादृशी कन्या वोढव्या तामिदानीं दर्शयति **मातुर्याऽसपिण्डा पितुश्च याऽसगोत्रा सा दारकर्मणि प्रशस्ता**। 'सपिण्ड'ग्रहणं मातृबन्धूपलक्षणार्थम्। मातुर्हि सापिण्ड्यं स्त्रीणां स्मृत्यन्तरे तृतीयपुरुषावधि। न तु त्रिभ्य ऊर्ध्वं मातृबन्धुभ्यो विवाह इष्यते। किं तर्हि? पञ्चमादूर्ध्वम्। एवं हि **गौतमः** पठति (अ० ४ सू० ३ । ५) "ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो मातृबन्धुभ्यः पञ्चमादिति"। तेन यथाश्रुतिसमन्वयाभावात् सपिण्ड-शब्दः स्मृत्यन्तरवशेन मातृसम्बन्धितया व्याकरणीयः। तेनैवमुक्तं स्यात् 'मातुरन्वयजा जाया न भवति'। अवधिश्च गौतमीय एव। तेन मातामहप्रमातामहयोर्याऽन्वये जाता सा पुत्रसन्ततेर्बान्धवसामीप्यात्पञ्चमीं यावन्न विवाहयितव्या। अतो मातृष्वसृतद्दुहितॄणां मातामहसंततिजानां च सर्वासां प्रतिषेधो, बन्धुत्वाविशेषात्।

**असगोत्रा च या पितुः**। गोत्रं वसिष्ठभृगुगर्गादिवंशः स्मर्यते। समानगोत्रा वसिष्ठा न वसिष्ठैर्विवहन्ते, न गर्गा गर्गैः। वासिष्ठे तु मातृसगोत्राया अपि प्रतिषेधः। "परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा। कृत्वा तस्याः समुत्सर्गं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्। मातुलस्य सुतां चैव मातृगोत्रां तथैव च"। **गौतमेन** तु पठ्यते (अ० ४ सू० २) 'असमानप्रवरैर्विवाह' इति। तत्र गोत्रसमत्वे सत्यपि प्रवरभेदश्चेद्युज्यते विवाहः, तदयुक्तम्। यतः स्मृत्यन्तरे ह्युभयं निषिध्यते "असमानार्षगोत्रजा"मिति (याज्ञ० आ० ५३)"। आर्षं प्रवर इत्येकोऽर्थः।

"कथं पुनर्गोत्रभेदे समानार्षेयत्वम्। किमिति न भवति यदि स्मर्यते?। श्रुतिस्मृति-प्रमाणकोऽयमर्थो न प्रत्यक्षगोचरो, येन विरोधः स्यात्।

"के पुनरमी प्रवरा नाम ? । अत्यल्पमिदमुच्यते । इदमपि वक्तव्यं–किं पुनरेतद्ब्राह्मणत्वं नाम ? तथा कतरदेतद्गोत्रं नाम ? । यथैव समाने पुरुषत्वे ब्राह्मणत्वादिविशेषः, एवं समाने ब्राह्मणत्वे वसिष्ठादिगोत्रभेदः, प्रतिगोत्रं च समानार्षेयाणि । यस्यैतद्गोत्रं तस्य तैः शब्दैः प्रवराश्रयणं कर्तव्यम् । एवं विवाहनिषेधेऽपि । स्मरन्ति च **सूत्रकाराः** गोत्रभेदसम्बन्धेन प्रवरान्, 'यस्यैतद्गोत्रं तस्येमे प्रवरा' इति । गोत्रभेदस्तु तद्गोत्रजैरेव । स्मर्यते–'वयं पराशरा वयमुपमन्यव' इति । यद्यपि गोत्रवत्प्रवरानपि स्मरन्ति, तथापि बहुत्वात्कदाचिद्विस्मरेयुरिति गोत्रमुपलक्षणीकृत्य प्रवरस्मृतिरुपनिबद्धा । गोत्रं तु स्मरन्ति । न च तस्य किञ्चिदुपलक्षणमस्ति 'य एवंरूपस्तस्येदं गोत्रमिति' । एतावत्तत्र स्मरणम् । यावद्गोत्रं सन्ततिसमानजातीयत्वम् । एष च गोत्रप्रवरभेदः ब्राह्मणानां न राजन्यविशाम् । तथाहि **कल्पसूत्रकारः** "पौरोहित्याद्राजन्यवैश्ययोरिति" । यद्यपि गोत्रविशेषव्यपदेशे सति प्राप्तप्रतिषेधेनापि प्रवराधिकारे वचनमिदमुपपद्यते, किं तु न तेषां गोत्रस्मरणमस्ति ।

"कस्तर्हि क्षत्रियवैश्ययोर्विवाहेऽपि बन्धूनामवधेर्नियमः ?" उच्यते । सर्ववर्णविषयमेतत् "ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुभ्यः" इति ।

इहाप्यसगोत्रा च-शब्दादसपिण्डा । तथा चानुवर्त्यमानः सपिण्डशब्दः पूर्ववद्बन्धुसम्बन्धोपलक्षणार्थः । तेन पितृष्वसुरन्वयस्त्रीणामन्यासां च प्रपितामहसन्ततिस्त्रीणामासप्तमात्पुरुषात्प्रतिषेधः सिद्धो भवति । सप्तमपुरुषावधयः सपिण्डाः स्मर्यन्ते ।

अन्ये तु 'गोत्रं' वंशमाहुः । न तत्रावध्यपेक्षा । यावदेतज्ज्ञायते वयमेकवंशा इति तावदविवाहः । अस्मिन्नपि पक्षे असपिण्डा चेत्यनुवर्तते । तेन पूर्ववत्पितृष्वस्रादिदुहितॄणां प्रतिषेधः । "अस्मिंस्तु पक्षे समानार्षगोत्राणां प्रतिषेधो दुर्लभः । न हि तत्रैतदस्ति वयमेकवंश्या इति" । उच्यते । ऐतिहासिकेन तद्दर्शनेन समर्थयन्ते । तत्र हि वर्णयन्ति । "ऋषिर्वसिष्ठादिराद्यो वंशस्य कर्ता तद्गोत्रास्ततः प्रसूताः प्रवरा इति तत्पुत्रपौत्रास्तपोविद्याद्यतिशयगुणयोगेन प्रख्याततमाः ।" स्मृत्यन्तरादेष एव नियमः ।

इदं त्वत्र निरूप्यं–यदेतत्समानप्रवरैरिति तत्र नामधेयतस्तावत्समानत्वं न संख्यातः । नामधेयसमानत्वे च किं यत्र सर्वाण्येव समानानि तत्र प्रतिषेध उतैकस्मिन्नपि समाने? । तत्र यदि समुदितानां प्रवरत्वं, तत्र समाने कस्मिंश्चिद्भिन्नेऽन्यस्मिन्नन्यः समुदायः सञ्जात इत्यसमानप्रवरत्वाच्च प्रतिषेधः । एवं चोपमन्यूनां पराशराणां च स्याद्विवाहः । भिन्नं तयोर्गोत्रम् । एक उपमन्यवः, अपरे पराशराः, पूर्वेण च न्यायेन प्रवरभेदः । उपमन्यूनां वासिष्ठभारद्वाजैकपादिति प्रवराः, पराशराणां वासिष्ठगार्ग्यपराशर्येति । अत्रैकैकस्य प्रवरत्वमेकस्मिन्नपि समाने प्रतिषेधः । तद्यथा माषा न भोक्तव्या, मिश्रा अपि न भुज्यन्ते । किं पुनरत्र युक्तम् ? । एकैकस्य प्रवरत्वम् । तथाहि सामानाधिकरण्यं दृश्यते । एकं वृणीते त्रीन्वृणीत इति प्रतिपन्न एकः । तत्साम्येऽप्याहैषामविवाह इति । द्विजातिग्रहणमुपलक्षणार्थम् । शूद्रस्यापि आ सप्तमात्पितृतः पञ्चमान्मातृत इत्यस्ति । दारकरणं दारक्रिया **दारकर्म** । तत्र **प्रशस्ता** प्रशंसया विहितेत्यर्थः ।

**अमैथुनी**। मिथुने भवा मैथुनी, न मैथुनी अमैथुनी। पितुरिति संबध्यते, पितृबीजादेवोत्पन्ना जातमात्रा। नियोगे विहितस्तत उत्पन्नाया नास्ति पूर्वोक्तविशेषणैर्निषेधः, अतः पृथङ्निषिध्यते **अमैथुनीति**। ततो नियोगोत्पन्ना कामतो न विवाह्या, मैथुनीत्वात्।

अन्ये तु **अमैथुने** इति पठन्ति। धर्मार्थे दारकर्मणि प्रशस्ता, न मैथुने। स्तुतिश्चेयं न प्रतिषेधः। ईदृशी योढा सा सत्यपि मैथुने धर्मार्थैव भवति ॥ ५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समान एकः पिण्डो जनको येषां ते **सपिण्डशब्देनात्र** ग्राह्याः। तथा च साक्षात्परंपरया वा यो मातृजनकपिण्डो देहस्ततो येषां जन्म ते **मातुः सपिण्डा** इति। मातुः पञ्चमात् परतोऽर्वाक् षष्ठादिष्वपि विवाहनिषेधप्रसक्तौ स्मृत्यन्तरान्नियमः। यथा **याज्ञवल्क्यः** (आचार० ५३) 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथे'ति। अस्यार्थः—मातृतः परस्यानवरस्यां च मातृसहिततत्सपिण्डधारायां पञ्चमादूर्ध्वं परतः स्त्रियमुद्वहेदिति। एवं च मातुः पूर्वे ये चत्वार उत्तरोत्तरक्रमेण सपिण्डास्तथा तत्सन्तानेऽप्यर्वाचीनाः प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारस्तथा मातृतोऽर्वागपि चत्वारस्तत्सन्तानभूताश्च प्रत्येकं चत्वारः सपिण्डास्तदन्तर्भूता कन्या न विवाह्येति सिद्धयति। एवं पितृतः सप्तमादित्यत्रापि व्याख्येयम्। **मनुना** 'ह्यसगोत्रा च या पितु'रिति चकारात् असपिण्डा चेत्यनुकृष्टम्। तथा च तत्रापि अवध्यपेक्षायां **याज्ञवल्क्यवचनादेव** नियमः। तेन यथा मातृसपिण्डेषु पञ्चसङ्ख्यावधेस्तथा पितृसपिण्डेषु सप्तसङ्ख्येति।

यत्तु **स्मृत्यन्तरे** मातृतः पञ्चमीं पितृतः सप्तमीमुद्वहेदित्युक्तं, तन्मातापितरौ विहाय गणनयेति ग्राह्यम्। एतच्च याज्ञवल्क्यवचनार्थेन मातुः पञ्चमादूर्ध्वं पितुश्च सप्तमादूर्ध्वं विवाह्यत्वं मातृसगोत्रत्वाभाव एवेत्यसगोत्रेत्यनेन दर्शितम्। अत एव च सपिण्डपदस्यैकपिण्डप्रभवपरता न तु ज्ञातिपरता, ज्ञातीनां सगोत्रपदेनैव लाभात्। तथा च सपिण्डपदेन मातापित्रोर्ये मातुलादयस्तेऽपि लभ्यन्ते। अत्र च पितृसगोत्रमात्रे विवाहनिषेधार्थ'मसगोत्रा च या पितु'रिति श्रुतितः पित्रा सहागोत्रपदस्य पितुरन्वयो दर्शितः। मातृपक्षे तु यद्यपि 'असपिण्डा च या मातु'रिति चकारेणासगोत्रत्वाकर्षणात्पितृपक्ष इव सामान्यतो मातुः सगोत्रमात्रे विवाहनिषेधः प्राप्तस्तथापि स्मृत्यन्तरे मातुः सगोत्रामप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि। 'जन्मनाम्नोरविज्ञान उद्वहेदविशङ्कित' इत्यभिधानात्। यावदस्मिन्मातृकुलजादेस्तन्नाम्नोऽस्यां जन्मेति ज्ञायते। तावन्मातृसगोत्राणामविवाह्यत्वम्। तदूर्ध्वं तु न दोष इति। अत्र हि स्मृतिवाक्ये पूर्वार्धेन सामान्यतो मातृसगोत्राया अविवाह्यत्वं मतान्तरमाशङ्क्य 'जन्मनाम्नो'रित्युत्तरार्धे स्वमतमुक्तमिति मातुः कन्यात्वसमये सगोत्रां मातामहसगोत्रामित्यर्थः। **दारकर्मणि** भार्यासाध्ययज्ञादिकर्मणि निमित्ते विवाहं कर्तुं **प्रशस्ता**। अनिन्दिता तथा **मैथुने** स्त्रीपुंससाधारणसाध्ये सुरतकर्मण्यपि **सैव प्रशस्ता**ऽनिन्दिता। यद्यप्येतदपि दारकर्मैव तथापि पृथक् ग्रहणं विधिलङ्घनेन परदारप्रवृत्तस्यापि मातृसपिण्डादिगमनेऽधिकप्रायश्चित्तार्थम्। द्विजातीनामिति तत्र प्राधान्यादुक्तं शूद्रस्यापि तत्परित्यागेनैवोद्वाहः। वरस्य कन्यकायाश्च यस्मात्सन्तानभेदस्तेन सह यत्र न सपिण्डता तत्रैव विवाह्यमिति दर्शयितुं मातापित्रोर्गोत्रसपिण्डवर्णनमिति नैकत्र निवृत्तौ विवोढुमाशङ्केत्येवं दर्शयितुम् ॥ ५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **मातुर्या सपिण्डा** न भवति। सप्तमपुरुषपर्यन्तं सपिण्डतां वक्ष्यति, **'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तत'** इति। तेन मातामहादिवंशजा जाया न भवतीत्यर्थः। चशब्दान्मातृसगोत्रापि मातृवंशपरंपराजन्मनाम्नोः प्रत्यभिज्ञाने सति न विवाह्या। तदितरा तु मातृसगोत्रा विवाह्येति संगृहीतम्। तथा च **व्यासः** 'सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि। जन्मनाम्नोरविज्ञाने उद्वहेदविशङ्कितः'॥ यत्तु **मेधातिथिना** वसिष्ठनाम्ना मातृसगोत्रानिषेधवचनं लिखितम् 'परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा। तस्यां कृत्वा समुत्सर्गं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥ मातुलस्य सुतां चैव मातृगोत्रां तथैव चे'ति, तदपि मातृवंशजन्मनामपरिज्ञानविषयमेव। **असगोत्रा च या पितुरिति।** पितुर्या सगोत्रा न भवति। चकारात् पितृसपिण्डापि पितृव्यादिसन्ततिभवा या न भवतीत्यर्थः। **सा द्विजातीनां** दारत्वसंपादके विवाहे **प्रशस्ता मैथुनसाध्ये** अग्न्याधानकर्मपुत्रोत्पादनादौ चेति॥ ५॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **असपिण्डेति।** **असपिण्डा** 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे (वि)निवर्तते' इति। तेन मातामहकुलजा न स्यात्। चकारान्मातृसगोत्रा च। जन्मनाम्नोरविज्ञाने त्याज्या नान्यथा। तथा च **व्यासः** 'सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि। जन्मनाम्नोरविज्ञाने उद्वहेदविशङ्कित' इति। **वसिष्ठादिस्मृतिरपि** एतदनुरोधेन नेया। "ऊरू विजहीता" मित्यादिश्रुत्युक्तापत्योत्पादनकर्मणि **मैथुने** मिथुनसाध्ये अग्न्याधानादौ च॥ ५॥

(५) **नन्दनः।** सवर्णास्वपि नियममाह **असपिण्डेति।** सपिण्डतां वक्ष्यति साप्तपौरुषीं, 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तत' इति। **अमैथुनी** अक्षतयोनिः॥ ५॥

(६) **रामचन्द्रः।** अथ विवाहार्हामाह **पञ्चमादिति युग्मेन। मातृतः** मातुः सन्ताने पञ्चमादूर्ध्वं तथा पितृतः पितुः सन्ताने सप्तमादूर्ध्वं मातुः संताने **असपिण्डा** चशब्दान्मातुर**सगोत्रा पितुः** सन्ताने असगोत्रा॥ ५॥

(७) **मणिरामः। असपिण्डा च या मातुः** मातुर्या वक्ष्यमाणा सपिण्डा न भवति, चकारात् मातृगोत्रापि या न भवति **असगोत्रा च या पितुः**, चकारात् पितृसपिण्डा या न भवति **सा प्रशस्ता** मैथुने स्त्रीपुरुषसाध्यकर्मणि अग्न्याधानपुत्रोत्पादनरूपे॥ ५॥

(८) **गोविन्दराजः। असपिण्डेति।** 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते' (५।६०) इत्यपि वक्ष्यति। अतो **मातुरसपिण्डा** मातामहप्रमातामहान्वयजाता या न भवति या च मातामहीप्रमातामह्याद्यन्वयजाता न भवति, **पितुश्च या** समान**गोत्रा न भवति,** चशब्दात् सपिण्डाच्च पितृष्वस्रादिसन्ततिजाता या न भवति **सा द्विजातीनां मैथुनादौ दारकर्मणि** योग्या॥ ५॥

**महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ॥**
**स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** वक्ष्यमाणस्य प्रतिषेधस्य निन्दार्थवादोऽयम्। 'समृद्धिः' सम्पत्तिः। 'धनं' विभवः। **महान्त्यपि** प्रकृष्टान्यपि। धनविशेषणार्थमाह **गोऽजाविधनधान्यतः।** तृतीयार्थे तसिः। गोऽजाविधनेन च धान्येन च। धनग्रहणं गोऽजादीनां विशेषणार्थम्। धनरूपा ये गोऽजादयः। कूटसंपन्नता हि धान्यम्। 'स्त्रीसम्बन्धो' विवाहः। स्त्री-प्राप्त्यर्थं सम्बन्धः **स्त्रीसम्बन्धः** ॥ ६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। धनं** सुवर्णादि। एतेन गुणान्तरवद्वित्तवत्तयापि विवा-ह्यतेति दर्शनम् ॥ ६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** उत्कृष्टान्यपि **गवादिभिः समृद्धान्यपीमानि दश कुलानि** विवाहे त्यजेत् ॥ ६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच भार्यामित्यनेन प्राप्तानि कन्योत्पादककुलानि वर्ज-नीयतयाऽऽह **महान्तीति** द्वाभ्यां। **धान्यतः** धान्यादिभिः **समृद्धानि** युक्तानि। **अविमर्षः।** **स्त्रीसंबन्धे** स्त्रीकर्मकविवाहे ॥ ६ ॥

(५) **नन्दनः। एतानि** वक्ष्यमाणानि ॥ ६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। सा द्विजातीनां** ब्राह्मणक्षत्रियविशां **मैथुने** दारकर्मणि अग्न्या-धानादिधर्मपुत्रार्थं दारकर्मणि च **प्रशस्ता** सापिण्डयेन रहिता एकः पिण्डो देहो यस्याः सा सपिण्डा, न सपिण्डा **असपिण्डा।** 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं सापिण्डयं (वि)निवर्तत' इत्यर्थः। 'चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां पञ्चमो न तु पञ्चमीं' चतुर्थः पञ्चमीं नोद्वहेदित्यर्थः। वर्ज्यान्याह **महान्तीति। गोऽजाविधनधान्यतः समृद्धानि महान्त्यपि** अग्न्याधान-सहितान्यपि **स्त्रीसंबन्धे दशैतानि वर्जयेत्** ॥ ६ ॥

(७) **मणिरामः। एतानि** वक्ष्यमाणानि **दश कुलानि।** एतादृशान्यपि **स्त्री-संबन्धे वर्जयेत्** ॥ ६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। महान्तीति।** इमानि **दश** वक्ष्यमाणानि **कुलानि** उत्कृष्टा-न्यपि **वर्जयेत्।** तथा गोछागाविमहिषीधान्यैः **समृद्धान्यपि** तच्छीलप्रजोत्पत्ति-व्याधिसंक्रान्तिपरिहारार्थं शास्त्रनोदनासामर्थ्याददृष्टदोषपरिहारार्थं च दारसंबन्धीनि **वर्जयेत्** ॥६॥

**हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।**
**क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥**

(१) **मेधातिथिः । हीनाः** त्यक्ताः **क्रिया** यस्मिन् कुले जातकर्मादयः संस्कारा न क्रियन्ते, नित्याश्च पञ्चयज्ञादयः । **निष्पुरुषं** स्त्रीप्रसु । यत्र प्रायेण वा कन्या जायन्ते, न पुमांसः. **निश्छन्दः** वेदाध्ययनवर्जितम् । **रोमशार्शसम् ।** द्वन्द्वैकवद्भावेन कुलद्वयं निर्दिष्टम् । बहुदीर्घैर्बाह्वादिषु लोमभिर्युतम् । **अर्शांसि** गुदेन्द्रियगतान्यधिमांसनिबद्धानि, तानि हि रोगरूपत्वात्पीडाकराणि । **क्षयो** राजयक्ष्मा व्याधिः । **आमयावी** मंदाग्निर्यस्य भुक्तमन्नं सम्यङ न जीर्यति । अपस्मारः स्मृतिभ्रंशाद्युपघातकृत् । **श्वित्रं** शरीरगता च्छेदवती श्वेतता । **कुष्ठं** प्रसिध्दम् । सर्व एते व्याधिविशेषवचनाः शब्दा रोमशादारभ्य मत्वर्थीयप्रत्ययान्ता निर्दिष्टाः । पूर्वैर्व्याख्यातृभिर्दृष्टमूलताऽस्य प्रतिषेधस्य वर्णिता । मातुः कुलं द्विपदोऽनुहरन्ति । ततो हीनक्रियादीनां या प्रजा साऽपि तच्छीला स्यात् । व्याधयश्च संक्रामन्ति । एवं हि वैद्यके पठ्यते "सर्वे संक्रामिणो रोगा वर्जयित्वा प्रवाहिकाम्" ॥ ७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । निश्छन्दो** निर्वेदं । **आमयो**ऽग्निमान्द्यं, **कुष्ठं** मांसादिक्लेदं कायौदुम्बरादि । **हीनक्रियं** कुलं यत्र प्रायस्तादृशा एव । एवमुत्तरत्र हीनक्रियमित्यादीनि कुलानि पञ्च विगृहीकृतानि । यथा कुष्ठादिकुलानि पञ्चेत्येवं दशकुलानीति योज्यम् ॥ ७ ॥

(३) **कुल्लूकः ।** तानि कानीत्याह **हीनक्रियमिति ।** जातकर्मादि**क्रियारहितं** स्त्रीजनकं वेदाध्यापनशून्यं बहुदीर्घरोमान्वित**मर्शो** नामव्याधियुक्तम्, **क्षयो** राजयक्ष्मा मन्दानला**पस्मारश्वित्रकुष्ठयुक्तानां** च **कुलानि वर्जयेदिति** पूर्वक्रियासंबन्धः । दृष्टमूलता चास्य प्रतिषेधस्य मातुलवदुत्पन्ना अनुवहन्ते । तेन हीनक्रियादिकुलात्परिणीतायां संततिरपि तादृशी स्यात् । 'व्याधयः सञ्चारिण' इति वैद्यकाः पठन्ति । 'सर्वे संक्रामिणो रोगा वर्जयित्वा प्रवाहिका'मिति । अवेदमूला कथमियं प्रमाणमिति चेत्, न; दृष्टार्थतयैव प्रामाण्यसंभवात् । तदुक्तं **भविष्यपुराणे** 'सर्वा एता वेदमूला दृष्टार्थाः परिहृत्य तु' ; **मीमांसाभाष्यकारेणापि** स्मृत्यधिकरणेऽभिहितम् 'ये दृष्टार्थास्ते तत्प्रमाणं, त्वदृष्टार्थास्तेषु वैदिकशब्दानुमान'मिति ॥ ७ ॥

(४) **राघवानन्दः । हीनक्रियं** पित्रादेशैर्जातकर्मादिराहित्यं यत्र । **निष्पुरुषं** स्त्रीजननप्रधानं । **निश्छन्दो** वेदाध्ययनशून्यं । **रोमशं अर्शसं** अर्शोरोगयुक्तं । **क्षयो** राजयक्ष्मा, **कासः** तद्युक्तं । **आमयावि** नित्यमन्दानलयुक्तं । **अपस्मारो** वायुविशेषस्तद्युक्तं । **श्वित्रि** श्वेतत्वग्विशेषयुक्तम् ॥ ७ ॥

(५) **नन्दनः । हीनक्रियं** श्रौतस्मार्ताचारहीनम् । **निष्पुरुषं** स्त्रीशेषम् । तद्वर्जयेत् । कुतः ? संतत्यभावानुसारात् । **निश्छन्दो** निरध्ययनम् । **रोमशं** रोमबहुलम् तद्वर्जयेत् ।

कुतः ? निर्ऋतिरूपत्वात्। तथाहि श्रुतिः 'निर्ऋत्यै विकृतदेहरूपं रोमशपशुमालभेत सा ह्यस्याः स्वा तनु'रिति, अर्शोऽस्यास्तीत्यर्शसं तद्वर्जयेत्। कुतः ? व्याधिसंक्रान्तिभयात्। एतेन क्षयादीनि व्याख्यातानि। **क्षयि** (यिनं) क्षयरोगयुक्तं। **आमया** महोदरादयः। तद्युक्त**मामयावि**। **कुलानीति** व्यस्तम्। चकारः प्रत्येकं संबध्यते ॥ ७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तानि दश कुलान्याह **हीनक्रियमिति**। जातकर्मादिसंस्कारपञ्चयज्ञरहितं कुलं **निष्पुरुषं निश्छंदो** निर्गतश्छन्दो वेदो यस्मात्तन्निश्छन्दः। **रोमशार्शसं** अर्शोरोगो वर्तते यत्र तदर्शसंकुलं। गुह्ये रोमरूपत्वात् रोमसहितं यत्र **क्षय आमयो** वा कुलमपस्मारि **श्वित्रकुष्ठि** एतानि **कुलानि** वर्जयेत् ॥ ७ ॥

(७) **मणिरामः**। तान्येवाह **हीनक्रियमिति**। जातकर्मादिक्रियारहितं स्त्रीणामेवोत्पादकं, वेदरहितं, यद्दीर्घरोमान्वितं अर्शोव्याधियुक्तं क्षयरोगिणं मन्दाग्नि, अपस्मारि गलत्कुष्ठं श्वेतकुष्ठि, यतो 'व्याधयः संचारिण' इति वैद्यकाः पठन्ति, अतो हीनक्रियादि-' कुलान् विवाहितायाः सन्तानमपि तादृशं भविष्यतीति सा न ग्राह्या ॥ ७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **हीनक्रियमिति**। यागादिरहितं कुलं स्त्रीजनकं वेदशून्यं प्रचुरतरदीर्घरोमाञ्चितं अर्शआद्याख्यव्याध्युपेतं राजयक्ष्म-मन्दाग्नि-अपस्मारि-**श्वित्रिकुष्ठीनां** च संबन्धीनि **कुलानि वर्जयेत्** ॥ ७ ॥

**नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ॥**
**नालोमिकां नातिलोमां न वाचालां न पिङ्गलाम् ॥ ८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वः कुलाश्रयप्रतिषेधः। अयं तु स्वरूपाश्रयः। यस्याः कद्रुवर्णाः कनकवर्णा वा केशाः सा **कपिला**। **अधिकाङ्गी** षडङ्गुलिः। **रोगिणी** बहुरोगा, दुष्प्रतिकारव्याधिगृहीता च। भूम्नीनिः मत्वर्थीयो नित्ययोगे वा। **अलोमिका** अकेशा। लोमानि केशा अप्युच्यन्ते। बाहुमूले जङ्घाद्वये वा। सर्वलोम्नामभावः। **वाचाला** स्वल्प एव वक्तव्ये बहुलं परुषं च भाषते। **पिङ्गला** अक्षिरोगेण मण्डलाक्षी कपिलपिङ्गलाक्षी वा ॥ ८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **न रोगिणीं** स्वतः क्षयादिव्याधिमतीं। पूर्वं कुले तेषां प्रायिकत्वेन कन्यानां संभावनामात्रेणाविवाहितोक्ता। अत्र तु तस्यां तन्निश्चयेनेति विशेषः। **पिङ्गला**भामारक्तगौरवर्णाम् ॥ ८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कुलाश्रयं प्रतिषेधमभिधाय कन्यास्वरूपाश्रयप्रतिषेधमाह **नोद्वहेदिति**। **कपिलकेशां** नित्यव्याधितामविद्यमानलोमां प्रचुरलोमां **बहुपरुषभाषिणीं पिङ्गलाक्षीं कन्यां** नोपयच्छेत् ॥ ८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वर्जनार्थं कन्यां विशिनष्टि **नेति द्वाभ्यां**। **कपिलां** कपिलकेशां वर्णतो वा। **नाधिकाङ्गीं** षडङ्गुलादिकां। न्यूनाङ्गीं चतुरङ्गुलादिकां। **न वाचाटां** न बहुभाषिणीं। **न पिङ्गलां** चक्षुषोः मार्जारचक्षुषीमित्यर्थः ॥ ८ ॥

(५) **नन्दनः। कपिलां** केशाक्षिभिस्त्वचा च **पिङ्गलाम्** ।। ८ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** कनकवर्णाः केशा यस्याः सा तां। **कपिलां** च **कन्यां नोद्वहेत्,** एतादृश्यः नोद्वाह्याः कपिलादिपिङ्गलान्ताः। **वाचाटां** परुषभाषिणीम् ।। ८ ।।

(७) **मणिरामः।** कुलदोषमुक्त्वा कन्यादोषमाह द्वाभ्याम् **नोद्वहेदिति। कपिलां** कपिलकेशां, **वाचाटां** बहुपरुषभाषिणीं पिङ्गलां चक्षुषोः पिङ्गलाम् ।। ८ ।।

(८) **गोविन्दराजः। नोद्वहेदिति। कपिलां** षडङ्गुल्या **अधिकां** व्याधिनाऽधिष्ठितां अविद्यमानलोमां बहुभाषिणीं **पिङ्गलां** वर्णां कन्यां नोपयच्छेत् ।। ८ ।।

**नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।।**
**न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ।। ९ ।।**

(१) **मेधातिथिः। ऋक्षं** नक्षत्रं तन्नामिका, 'आर्द्रा' इत्यादि। **वृक्षनाम्नी** 'शिंशपा' 'आमलकी'ति। **नदी,** गङ्गा, यमुना, तन्नाम्नी, ऋक्षाणि च वृक्षाश्च नद्यश्चेति द्वन्द्वः, तासां नामानीति षष्ठीसमासः। ततो द्वितीयेन नामशब्देनोत्तरपदलोपी समासः। **अन्त्यनामिका** 'बर्बरी' 'शबरी' इत्यादि। **पर्वता** विन्ध्यमलयादयः। पूर्ववत्समासात्क-प्रत्ययः। **पक्षिनाम्नी** 'शुकी' 'सारिका'। **अहिः** सर्पस्तन्नाम्नी, 'व्याली' 'भुजङ्गी'। **प्रेष्या** 'दासी' 'चेटी' 'दरनी'। **विभीषणं** नाम भयजनकं, 'डाकिनी' 'राक्षसी' ।। ८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अन्त्यश्चाण्डालादिः तज्जातिनाम्नीं चाण्डालीत्या-दिनाम्नीम्। **पर्वतनामिकां** विन्ध्यहिमेत्यादिनाम्नीं। **प्रेष्यनाम्नीं** दासीत्यादिनाम्नीं। **भीषणनाम** चामुण्डेत्यादि ।। ९ ।।

(३) **कुल्लूकः। ऋक्षं** नक्षत्रं तन्नामिकामार्द्रारेवतीत्यादिकामेवं तरुनदीम्लेच्छ-पर्वतपक्षिसर्पदासभयानकनामिकां कन्यां नोद्वहेत् ।। ९ ।।

(४) **राघवानन्दः। नर्क्षवृक्षेति।** तारा अश्विनी आमलकी हरीतकी नदी दृषद्वती इत्यादिनाम्नीम्। **अन्त्यो** म्लेच्छः, तेन यवनी म्लेच्छेति। **पर्वतनामिकां** शिलामयीम्। **पक्षि**र्गरुडा। **अहिः** पन्नगी। **प्रेष्या** अमुकदासी। **भीषणनामिकां** उग्रेत्यादिकाम् ।। ९ ।।

(५) **नन्दनः। ऋक्षनाम्नी** आर्द्रेत्यादि। **वृक्षनाम्नी** शिंशपेत्यादि। **नदीनाम्नी** गङ्गेत्यादि। **अन्त्यनाम्नी** मातङ्गीत्यादि। **पर्वतनाम्नी** विन्ध्येत्यादि। **पक्षिनाम्नी** शुकीत्यादि। **अहिनाम्नी** नागीत्यादि। **प्रेष्यनाम्नी** दासीत्यादि। **भीषणनाम्नी** हिडिम्बेत्यादि। अदृष्टार्थोऽयं निषेधः ।। ९ ।।

(६) **रामचन्द्रः। ऋक्षनाम्नीं** नक्षत्रनाम्नीं न विवाहयेत्। **अन्त्यजनाम्नीं पर्वत-नाम्नीं** च नोद्वहेत्। **भीषणनाम्नीं** भयानकनाम्नीं न विवाहयेत् ।। ९ ।।

(७) **मणिरामः**। **ऋक्षं** नक्षत्रम्, **अन्त्यः** म्लेच्छः **अहिः** सर्पः, **प्रेष्यः** दासः, एतन्नामिकां नोद्वहेत् ।। ९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। नक्षत्रवृक्षनदीम्लेच्छपर्वतपक्षिसर्पदासभयानकनामिकां कन्यां नोद्वहेत् ।। ९ ।।

**अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।।**
**तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत् स्त्रियम् ।। १० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अव्यङ्गाङ्गीम्**। अव्यङ्गान्यङ्गानि यस्याः सैवमुच्यते। अव्यङ्गशब्दोऽवैकल्यवचनः, प्रवीणोदारादिशब्दवत् यदपि व्युत्पाद्यतेऽविकलान्यङ्गानि यस्येति, अतश्चाङ्गशब्दस्य द्वितीयस्यावयविनि शक्ततौचित्येन, संस्थानस्य परिपूर्णता साऽव्यङ्गशब्देनोच्यते। **सौम्यं** मधुरं **नाम**। 'स्त्रीणां सुखोद्यम्' अत्र दर्शितम्। **हंस** इव **वारण** इव गच्छति। यादृशी हंसानां हस्तिनां च विलासवती मन्थरा गतिः सा यस्याः। **तनु**शब्दो नाल्पवचनः, किं तर्हि? आनुपरिमाणे वर्तते। तन्वङ्गी सोच्यते या नातिस्थूला नातिकृशेति। **मृदूनि** सुस्पर्शा कठिनापरुषाण्यङ्गानि। यस्याः सा। **तामुद्वहेत्स्त्रियं** कन्याधिकारात्कन्याम्। यद्येवं 'नालोमिकामि'त्यादिप्रतिषेधोऽनर्थकोऽस्मादेव विधानात्', या नैवंरूपा तस्या अविवाह्यता सिद्धा।

सत्यमेवम्। एक एवार्थो द्वाभ्यां विधिमुखेन प्रतिषेधमुखेन चोद्यमानस्तु स्पष्टो बुध्यते।

कन्याशब्दश्चात्र प्रकरणादननुभूतसंभोगासु स्त्रीषु प्रवर्तते। तथा च **वसिष्ठः** "अस्पृष्टमैथुनां तादृशीं भार्यां विन्देतेति"। न चान्येन संस्कृताऽन्येन **पुनः** संस्कर्तुं शक्या, कृतस्य करणाभावात्। अतश्चोढाया अप्रवृत्तभर्तृसंयोगायाः कथंचित्स्वैरिणीत्वे भर्तृप्रवासादिना नान्येन विवाहोऽस्ति सत्यपि कन्यात्वे। तथा चेदृशी वसिष्ठोक्तिमध्ये पठिता। अन्यत्राप्युक्तम् (याज्ञ० आचार० ५२) "अनन्यपूर्वां यवीयसीं भ्रातृमतीं स्त्रियमुद्वहेत्"। इति ।। १० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अव्यङ्गाङ्गीं** अङ्गेष्वपि यस्या न व्यङ्गत्वं अङ्गाङ्गेष्वपि नखादिषु यस्या वैकल्यं नास्तीत्यर्थः। तथा विभीषणनामत्वाभावेऽपि सौम्यं शांतं नाम यस्याः सा विवाह्या। तथा विभीषणनामनिषेधः प्रत्यवायाधिक्यार्थः। तनवः सूक्ष्माः केशाः शिरोरुहाः। अत्र येषु दृष्टविरोधित्वं दोषाणां तेषु सत्स्वपि विवाहे भार्यात्वसिद्धिर्यत्र दृष्टविरोधादर्शनं तद्दोषवत्या विवाहे भार्यात्वमेव न सिद्धयतीति कश्चित्,—तत्तु प्रमाणाभावात् नक्षत्रनामत्वादावपि भार्यात्वसिद्धिप्रसंगेन व्यवहारविरोधाच्चायुक्तम्। केवलं निषेधात् दृष्टे विरोधशून्येषु दोषेषु परिणेतुः पापोत्पत्तिमात्रमनुमन्तुं युक्तमिति ।। १० ।।

(३) **कुल्लूकः**। अविकलाङ्गीं मधुरसुखोद्यनाम्नीं हंसगजरुचिरगमनामनतिस्थूललोमकेशदशनां कोमलाङ्गीं कन्यामुद्वहेत् ।। १० ।।

(४) **राघवानन्दः।** उद्वहनयोग्यामाह **अव्यङ्गेति।** न्यूनाधिककुब्जाद्यङ्गरहिताम्। सौम्यनाम्नीं शशिनीचन्द्रिकेत्यादिनाम्नीं, **हंसवारणगामिनीं** हंसवत् वारणो हस्ती तद्वद्गमनशीलाम्। अत्र विधिनिषेधौ अभ्युदयानभ्युदयफलौ ।। १० ।।

(५) **नन्दनः।** अङ्गशब्दोऽवयवे शरीरे च ।। १० ।।

(६) **रामचन्द्रः। एतादृशीं** उद्वहेत्! **अव्यङ्गाङ्गीं** अव्यङ्गमङ्गं यस्याः सा तां। **सौम्यनाम्नीं** सौम्यं नाम यस्याः सा तां अच्छिन्नाङ्गीमित्यर्थः ।। १० ।।

(७) **मणिरामः।** कन्यागुणमाह **अव्यङ्गाङ्गीमिति।** सौम्यनाम्नीं मधुर-नाम्नीम् ।। १० ।।

(८) **गोविन्दराजः। अव्यङ्गाङ्गीमिति।** अविकलाङ्गीमप्रसन्ननाम्नीं राजहंस-गजरुचिरगमनां अनतिस्थूलरोमकेशदन्तां कोमलाङ्गीं कन्यां परिणयेत्। विधिनिषेध-भयाभिधानं निर्दोषसगुणकन्योपयमनेऽभ्युदयार्थम् ।। १० ।।

**यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वै (वा) पिता ।।**
**नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ।। ११ ।।**

(१) **मेधातिथिः। यस्या भ्राता** नास्ति **तां न** विवहेत्। **पुत्रिकाधर्मशङ्कया,** पुत्रिकात्वशङ्कया। पुत्रिकाधर्मः कदाचिदस्याः कृतो भवेत्पित्रेत्यनया शङ्कया, अनेन संदेहेन। "कथं चेयं शङ्का भवति?"। **यदि न विज्ञायेत पिता,** देशान्तरे प्रोषितो मृतो वा। सा च मात्रा पितृसपिण्डैर्वा दीयते। प्राप्तकाला पितर्यसन्निहित एतैरपि दातव्येति स्मर्यते। स्मृतिं चोत्तरत्र दर्शयिष्यामः। पितरि तु संविज्ञायमाने नास्ति पुत्रिकात्वशङ्का। स हि स्वयमेवाह "कृता वा न कृता वेति"। वाशब्दश्चेच्छब्दार्थे द्रष्टव्यः। यदि पिता न विज्ञायेत तदा कन्यका न वोढव्या। अन्ये तु स्वतन्त्रमेतत्प्रति-षेधद्वयमाचक्षते। यदि **पिता न विज्ञायेत,** अनेनेयं जातेति, गूढोत्पन्नायाः प्रतिषेधः। एवं च सम्बन्धः। **यस्या भ्राता** नास्ति तां पुत्रिकात्वशङ्कया **नोपयच्छेत। न विज्ञायेत** इत्यत्र पुत्रिकाशङ्कयेत्येतन्न सम्बध्यते।

अस्मिन्प्रकरणे यत्र नास्ति दृष्टिगतः प्रतिषेधः यथा "असपिण्डा च" इत्यत्र श्लोके, तदतिक्रमे विवाहस्वरूपानिवृत्तिरेव। अतः सगोत्रादिविवाहः कृतोऽप्यकृत एव। विध्यवगत-रूपत्वादाधानवद्विवाहस्य विध्यतिक्रमरूपादक्रमात्। यथाऽऽधानविधौ यत्किंचिदङ्गं न ज्ञातं तदभावे नाहवनीयादिनिर्वृत्तिः, एवं सगोत्रादिकाया न भार्यात्वम्। तस्मात्त्याज्यैव कृततादृशसंस्कारप्रतिरूपिकाऽपि। तत्रभवन्तो वसिष्ठादयः प्रायश्चित्तमपि स्मरन्ति तादृशविवाहे। यद्यपि कर्मण एव तदङ्गप्रतिषेधातिक्रमे वैगुण्यं, न साक्षात्पुरुषस्य दोषः, तथापि वाचनिकं प्रायश्चित्तम्। अथवा सगोत्रागमनं निषिद्धम्। तदर्थे व्यापारे प्रवर्तमाने यदुक्तं तत्प्रायश्चित्तं भवेत्। यस्तु हीनक्रियादिप्रतिषेधस्तस्य दृष्टदर्शनमूलत्वान्निवर्तते विवाहः, भवत्यसौ भार्या, नास्ति तस्यास्त्यागः। एवमर्थ एव 'महान्त्यपीति', पूर्वस्मा-

त्प्रतिषेधाद्भेदः स्तदनार्थं पठितः। एवमेव च शिष्टसमाचारः। कदाचित्कपिलादि-रूपानुपयच्छति न सगोत्राम् ।। ५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। न भवेन्नोत्पद्येत, न **विज्ञायेत** कुलप्रवृत्तादिना प्रसिद्धिः सन्तत्यन्तराभावेनापरिभाषितपुत्रिकाशङ्कया आद्याया न विवाहः। द्वितीयस्या अधर्म-शङ्कया व्रात्यकन्यादिपरिणयकृतपापशङ्कयेति क्रमादन्वयः। अत्र पितेति विशेषोक्ते-र्मातुरविज्ञानेऽपि न तादृशो दोष इत्यपि दर्शितम् ।। ११ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अत्र विधिनिषेधयोरभिधानमनिषिद्धविहितकन्यापरिणयनमभ्यु-दयार्थमिति दर्शयितुमाह **यस्या इति**। यस्याः पुनर्**भ्राता** नास्ति तां पुत्रिकाशङ्कया नोद्वहेत्। 'यदपत्यं भवेदस्यास्तन्मम स्यात्स्वधाकर'मित्यभिसंधानमात्रादपि पुत्रिका भवति, 'अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येके' इति **गौतम**स्मरणात्। यस्या वा विशेषेण **पिता न ज्ञायते**ऽनेनेयमुत्पन्नेति तामपि नोद्वहेत्। अत्र च **पुत्रिकाधर्मशङ्कयेति** न योजनीयमिति केचित्। **गोविन्दराज**स्त्वाह भिन्नपितृकयोरप्येकमातृकयोर्भ्रातृत्वप्रसिद्धेः सभ्रातृकत्वेऽपि यस्या विशेषेण पिता न ज्ञायते तामपि **पुत्रिकाशङ्कयैव** नोद्वहेदिति। **मेधातिथिस्तु** एकमेवेमं पक्षमाह – यस्यास्तु भ्राता नास्ति तां पुत्रिकाशङ्कया नोपयच्छेत्, पिता चेत् न ज्ञायते प्रोषितो मृतो वा; वा-शब्दश्चेदर्थे, पितरि तु विद्यमाने तदीयवाक्यादेव पुत्रिका-त्वाभावमवगम्या भ्रातृकापि वोढव्येति। **अस्माकं** तु विकल्पस्वरसादिदं प्रतिभाति। यस्या विशेषेण पिता न ज्ञायते तामपि जारजत्वेनाधर्मशङ्कया नोद्वहेत्। अत्र च पक्षे **पुत्रिकाधर्मशङ्कयेति** पुत्रिका चाधर्मश्च तयोः शङ्का पुत्रिकाधर्मशङ्का, तयेति यथासंख्यं योजनीयम्। अत्र च प्रकरणे सगोत्रापरिणयने "सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेन्मातृवदेनां बिभृयादिति परित्यागश्रवणात्परिणीय सगोत्रां चेति प्रायश्चित्तश्रवणाच्च तत्र तत्सम-भिव्याहृते च मातृसपिण्डापरिणयनादौ भार्यात्वमेव न भवति, भार्याशब्दस्याहवनीया-दिवत्संस्कारवचनत्वात्। येषां पुनर्दृष्टगुणदोषमूलके विधिनिषेधाभिधाने यथा हीनक्रिय-मिति न तदतिक्रमे भार्यात्वाभावः। अत एव **मनुना** 'महान्त्यपि समृद्धानी'त्यादि पृथक्करणं कृतम, एतन्मध्यपतितश्च 'नर्क्षवृक्षनदीना' (३।९) मित्यादिप्रतिषेधोऽपि न भार्यात्वाभावफलकः, किं त्वत्र शास्त्रातिक्रमात्प्रायश्चित्तमात्रम् ।। ११ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पुनरयोग्यां तामाह **यस्यास्त्विति**। **न ज्ञायते पिता** प्रसिद्धितो हृदयतो वा। तत्र हेतुः **पुत्रिकेति**। पुत्रिकात्वेन मनसा नियुक्ता अथवा निःशङ्काप्राज्ञातपितृ-कत्वेन जारजमद्यपजाद्यधर्मशङ्कयेति। पुत्रिका च अधर्मश्च तयोः शङ्कया वा ।। ११ ।।

(५) **नन्दनः**। अपुत्रेण पित्रा जनिष्यमाणानां दुहितृपुत्राणां स्वसंतानसंकल्पः **पुत्रिकाधर्मः**। भ्रातुरभाव एव पुत्रिकाधर्मशङ्का भवति, सति पुत्रे पुत्रिकाधर्मस्य शास्त्रैरननुमतेनाकिंचित्करत्वात्। **ज्ञाते पितरि** तु जातापि पुत्रिकाधर्मशङ्का कथंचिन्नि-वर्तयितुं शक्यते। न पुनरज्ञाते तेनोक्तं न विज्ञायेत वा पितेति ।। ११ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यस्याः कन्यायाः **भ्राता न भवेत् पिता वा न विज्ञायते** तां कन्यां **प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया नोपयच्छेन्**नोद्वहेत् ।। ११ ।।

(७) **मणिरामः।** इदानीं उद्वहेन्नोद्वहेदिति यत् विधिनिषेधाभिधानां तत् अनिषिद्धविहितकन्यापरिणयनस्य अभ्युदयार्थं इति दर्शयितुमाह **यस्या इति।** यस्याः **भ्राता** नास्ति तां पुत्रिकाशङ्कया नोद्वहेत्। 'यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वधाकरं' इत्यभिसन्धानमात्रादपि पुत्रिका भवति "अभिसन्धानमात्रात् पुत्रिकेत्येके" इति **गौतम**वचनात्। तथा विशेषेण यस्याः **पिता न ज्ञायते** अनेनेयमुत्पन्नेति तामपि **धर्मशङ्कया** नोद्वहेत् ॥ ११ ॥

(८) **गोविन्दराजः। यस्या इति। यस्या भ्राता नास्ति** तां "यदपत्यं भवेदस्याः तन्मम **स्यात्स्वधाकरं**" "इत्यभिसन्धिमात्रात् पुत्रिकेत्येके" इत्येवं **मनुगौतमो**क्तपुत्रिकाविधि**भ्रान्त्या नोद्वहेत्।** भ्रात्रभावे हि पितरि विज्ञायमानेऽपि पुत्राभावात् कदाचिदसौ पित्रा **पुत्रिका** कृता स्यात्! सत्यामपि वा ऽभ्रातृकप्रसिद्धौ 'अनेनैवमुत्पन्नेयं ने'ति **यस्या** जनको विशेषेण **न ज्ञायते** तामपि **पुत्रिका**त्वभ्रान्त्या **नोद्वहेत्।** जनके हि सम्यक् ज्ञायमाने भिन्नपितृकयोरप्येकमातृकाया भ्रातृत्वप्रसिद्धेः अस्ति जनककृते पुत्रिकात्वाशङ्का एतदुक्तमुभयोर्विशेषणम्। पुत्रिकायाश्च न परिपूर्णं भार्यात्वं, अत एव निषेधात्। "अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचि" इति व्याख्यातं **चैतन्निरुक्तकृता**—"अभ्रातृकेव पुंसः पितृनेति अभिमुखी सन्तानकर्मणे पिण्डदानाय भवति" इति।

अत्र च प्रकरणे येषां विधिनिषेधानां दृष्टगुणदोषानुषंगो नास्ति यथा "असपिण्डा च या मातुः" इति तदतिक्रमे भार्या न भवति, भार्याशब्दस्याहवनीयादिवत् संस्कारशब्दत्वात्। येषां पुनः दृष्टगुणदोषदर्शनेन विधिनिषेधाभिधानं यथा हीनक्रियं इति न भवति, तदतिक्रमे भार्यात्वाभावः केवलनियमातिक्रमात् प्रायश्चित्तमात्रं भवति।

यच्चैतत् "नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं" (३।९) इत्यादि तदपि दृष्टगुणदोषानुविधायि विधिनिषेधप्रकरणमध्यपाठात् तदेकयोगक्षेममेव। तथाच मनुना सपिण्डादिप्रतिषेधमभिधायानन्तरं 'महान्त्यपि समृद्धानी'(३।६)त्यादि पृथक्करणमुपक्रम्य हीनक्रियमित्यादि 'नर्क्षवृक्षे'त्यादि चैतत्प्रकरणेऽभिहितम् ॥ ११ ॥

**सवर्णाऽग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ॥**
**कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः ॥ १२ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** "उद्वहेत द्विजो भार्याम्" इति सत्यपि द्वितीयानिर्देशे भार्यायाः प्रधानत्वे गुणकर्मत्वे च विवाहस्य विवक्षितमेकत्वम्, अनुवादगतोद्देश्यत्वात्, यथा यूपं छिनत्तीति। यस्यान्यतः स्वरूपमवगतं तस्यान्यत्र कार्यान्तरविघातार्थमनूद्यमानस्य यथावगतस्वरूपस्यैवानुवादो भवति, यथा ग्रहं संमार्ष्टीति, पूर्वावगतिसापेक्षत्वादनुवादस्य। निर्ज्ञातसंख्याका हि ग्रहा—'दश एतानध्वर्युः प्रातःसवने ग्रहान्गृह्णाति' इत्यादिवाक्यैः, कार्यं चावागतं ग्रहैर्जुहोतीति। अतोऽवगत्यन्तरापेक्षत्वाद्ग्रहशब्दस्य न विवक्ष्यते संख्या। इह तु भार्यालक्षणोऽर्थो नान्यतः सिद्धोऽस्मादेव वाक्यादवगन्तव्योऽतो यथाश्रुति प्रतीयते, प्रातिपदिकार्थवत्संख्याऽपि विवक्षितेति। पञ्चमे चैतद्विस्तरतस्तर्केण वक्ष्यते। स्थितायां

संख्याविवक्षायां द्वितीयस्याः कृतेऽपि पाणिग्रहणे न भार्यात्वम्, यथा सत्यावहनीये न द्वितीय आहवनीयः। इष्यते च क्वचिन्निमित्ते भार्यान्तरपरिग्रहस्तदर्थमिदमारभ्यते। एतदेवाभिप्रेत्य **गौतमेन** पठितम् "धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीत, अन्यतरापाये तु कुर्वीत" इति।

**सवर्णा** समानजातीया। सा तावदग्रे प्रथमतोऽकृतविजातीयदारपरिग्रहस्य **प्रशस्ता।** कृते सवर्णाविवाहे यदि तस्यां कथंचित्प्रीतिर्न भवति, अथवाऽपत्यार्थो व्यापारो न निष्पद्यते तदा कामहेतुकायां प्रवृत्ताविमा वक्ष्यमाणाः सवर्णावराः श्रेष्ठाः शास्त्रात्तु ज्ञातव्याः। अत एकत्वस्य सवर्णानियमस्य चायमपवादः। "ननु न सवर्णाविवाहे पारतंत्र्यं प्रतीयते ! न सवर्णायां बहुत्वम् !" एकत्वसंख्यातिक्रमस्तावत्प्रतीयते। असवर्णाभ्यनुज्ञाने-नाप्यातिक्रान्तं चेत्कः सवर्णाया निषेधकः ?। तथा **गौतमे**नाविशेषेणैव पठितम् "अन्यतरापाये तु कुर्वीतेति"। उत्तरश्लोके "सा च स्वा चेति" सवर्णाविवाहोऽस्ति।। १२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अग्रे** प्रथमं **सवर्णेव दारकर्मणि प्रशस्ता** हेतुः। नासवर्णा तादृक् श्रेयोर्थित्वाभावेन तु **कामतः प्रवृत्तौ क्रमशो** यथा पूर्वं **इमाः वराः** श्रेष्ठाः।। १२ ।।

(३) **कुल्लूकः।** ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां **प्रथमे** विवाहे कर्तव्ये **सवर्णा** श्रेष्ठा भवति। **कामतः** पुनर्विवाहे **प्रवृत्तानामेता** वक्ष्यमाणा आनुलोम्येन **श्रेष्ठा** भवेयुः।। १२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** त्रैवर्णिकस्य सवर्णावर्णभेदेनोद्वाहस्यानेकत्वात्क्रमाकाङ्क्षायामाह **सवर्णेति। दारकर्मणि** दारसाध्ये अपत्योत्पत्तौ धर्मादौ च। **इमाः** 'सा चे'त्यादिना वक्ष्यमाणास्तिस्रः **अवरा** निकृष्टाः अग्रे कृतसवर्णायामरुचावाह **कामत** इति न क्रमवैपरीत्यपरम्।। १२ ।।

(५) **नन्दनः।** सवर्णोद्वाहनियमेन प्रतिषिद्धमसवर्णोद्वाहमधिकारिविशेषेण प्रति-जानाति **सवर्णेति। क्रमशः अग्रे सवर्णा प्रशस्ता** तदन्वनन्तरा, तदन्वेकान्तरा, तदनु द्व्य-न्तरेत्यर्थः। **अवराः** हीनवर्णाः। **इमा** वक्ष्यमाणाः।। १२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। अग्रे** प्रथमतः **द्विजातीनां सवर्णा दारकर्मणि प्रशस्ता। कामतः प्रवृत्तानां क्रमशः अवराः** हीनाः **इमाः** वक्ष्यमाणलक्षणाः **स्युः**।। १२ ।।

(७) **मणिरामः। अग्रे** प्रथमे **दारकर्मणि इमाः** वक्ष्यमाणाः **क्रमशः** आनुलोम्येन **वराः** श्रेष्ठाः, न तु प्रातिलोम्येन विवाहिता इत्यर्थः।। १२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। सवर्णेति। द्विजातीनामादौ** पाणिग्रहणे समानजातीया युक्तेत्युक्तम्। **कामात्** पुनर्दारकर्मणि **प्रवृत्तानां इमाः** वक्ष्यमाणवर्णक्रमेण श्रेष्ठाः **स्युः**।। १२ ।।

**शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ।।**
**ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ।। १३ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** वर्णभेदे सति सवर्णानियमः। यथैव ब्राह्मणस्य क्षत्रिया-दिस्त्रियो भवन्ति। एवं **शूद्रस्य** जातिन्यूना रजकतक्षकादिस्त्रियः प्राप्ताः। अतः सवर्णे-यमुच्यते। उत्कृष्टजातीया तु पूर्वत्र क्रमग्रहणादप्राप्ता। **सा च** शूद्रा **स्वा च** वैश्या वैश्यस्य। **ते च** वैश्याशूद्रे **स्वा** च राजन्यस्य। एवम**ग्रजन्मनो** ब्राह्मणस्य। ब्राह्मणक्रमेण निर्देशे कर्तव्ये शूद्रप्रक्रमेण निर्देशः पूर्वोक्तमेवार्थं उपोद्बलयति। यदुक्तं "विकल्प आनुपूर्व्येण नावश्यं समुच्चयः" ।। १३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** तदाह शूद्रैवेति। **स्वा** स्वजातीया ।। १३ ।।

(३) **कुल्लूकः। शूद्रस्य शूद्रैव भार्या** भवति। नतूत्कृष्टा वैश्यान्यस्तिस्रः। **वैश्यस्य** च **शूद्रा वैश्या** च भार्या मन्वादिभिः स्मृता। क्षत्रियस्य **वैश्या शूद्रे** क्षत्रिया च। **ब्राह्मणस्य क्षत्रिया वैश्या शूद्रा** ब्राह्मणी च। **वसिष्ठोऽपि** "शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जमि"ति द्विजातीनां मन्त्रवर्जितं शूद्राविवाहमाह ।। १३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** शूद्रस्यापि तथात्वे रागतः प्राप्ते परिचष्टे **शूद्रैवेति। सा** शूद्रा **स्वा** वैश्या। **ते च** शूद्रावैश्ये च **स्वा** क्षत्रिया च **तिस्रो** राज्ञः। **ताश्च** शूद्रावैश्या-क्षत्रियाः **स्वा** च ब्राह्मणी **अग्रजन्मनो** ब्राह्मणस्य ।। १३ ।।

(५) **नन्दनः।** एवकारेण केवलशूद्रभार्यत्वं शूद्रस्यैव नान्यस्येति सूचितम्। **स्वशब्दग्रहणेन** सवर्णायामूढायामेवासवर्णा वोढव्येति प्रत्येकं निर्देशेन **नोत्तरां** वोढव्येति ।। १३ ।।

(६) **रामचन्द्रः। शूद्रस्य शूद्रैव भार्या। विशः** वैश्यस्य **सा शूद्री स्वा** वैश्या **स्मृते** उक्ते। **राज्ञः** क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च। **अग्रजन्मनो** ब्राह्मणस्य **तास्तिस्रः** क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च एतास्तिस्राः **स्वा** च ब्राह्मणी **ज्ञेया** ।। १३ ।।

(७) **मणिरामः। सा च शूद्रा** च **स्वा च** वैश्या च। **ते च** वैश्याशूद्रे **स्वा च** क्षत्रिया च। **ताश्च** क्षत्रियवैश्यशूद्राः **स्वा** ब्राह्मणी। **अग्रजन्मनः** ब्राह्मणस्य ।। १३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। शूद्रेति। शूद्रस्य शूद्रैव भार्या** भवति, नोत्कृष्टापकृष्टे शूद्रा वैश्या च वैश्यस्य मन्वादिभिः स्मृता। वैश्या शूद्रा क्षत्रिया च क्षत्रियस्य, क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणी च ब्राह्मणस्य। 'शूद्रामप्येके मन्त्रवर्ज'मिति **वसिष्ठ**स्मरणात् मन्त्रवर्जिता एषां द्विजातीनां भवति ।। १३ ।।

**न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।।**
**कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ।। १४ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यद्यप्यत्यन्तरूपवती शूद्रा, विप्रराजन्यौ च वीरप्रकृती दशमीमपि दशामश्नुवीयातां तथापि शूद्रां नाधिवोढारौ । अत्रार्थवादः । **कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते** न क्वचिदितिहासोपाख्यानेऽप्यु**पदिश्यते** वर्ण्यते । **आपदि** गरीयस्यामधिकायामापदि । पूर्वत्रानुज्ञाताऽनेन प्रतिषिद्धा, अतो विकल्पः ।

"ननु च शास्त्रलक्षणयोरेकविषयसन्निपाते षोडशिग्रहणाग्रहणवद्विकल्पो युक्तो न तु रागलक्षणायाः प्रवृत्तेर्निषेधेन" । न च शूद्रा शास्त्रलक्षणा । केवलं रागतस्तत्र प्रवृत्तिरप्रतिषिद्धेति पूर्वशास्त्रस्यार्थः । निषेधस्तु शास्त्रलक्षण इत्यविवाह्यैव शूद्रा । एतदेवाभिप्रेत्य **याज्ञवल्क्येन** (आचार० ५६) पठितम् "यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः । नैतन्मम मतमिति" । अत्रोच्यते–सर्वत्रोपदेशानर्थकतयैव विकल्प आश्रीयते । यदि चात्यन्तमेव शूद्राप्रतिषेधः स्यात्तदा क्षत्रियवैश्ये एव प्रतिप्रसूयेयाताम् आपद्यभ्यनुज्ञाने । प्रतिप्रसवशास्त्रम् (श्लो० १३) अयं च प्रतिषेधः––द्वयमपि व्यर्थं स्यात्सवर्णाया नियमेन सिद्धत्वात् । तदिदमनुज्ञानं प्रतिषेधश्च स्वं स्वं विरुध्यमाने विकल्प्येते ।

"ननु च विकल्पे कामचारः । तस्य च प्रतिप्रसवत एव सिद्धेः प्रतिषेधो वक्तव्यो नैव" । न यथाकामतः क्षत्रियावैश्ययोर्विवाह इव शूद्रायाः, अन्यत्रापदो गरीयस्याः । इदं तु प्रतिपत्तुं युक्तं यत्सवर्णानियमेनासवर्णानिवृत्तेरर्थतः कृतायाः पुनः शूद्रानिवृत्तिरसवर्णानिवृत्तेरनित्यत्वं ज्ञापयति । अनित्यत्वे चापदि सवर्णाया अलाभे वा भवति चायमवगमः 'शूद्रा न वोढव्या, इतरे तु वोढव्ये' ।। १४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** अत्र शूद्राविवाहेन केवलमसवर्णविवाहदोषः । किंतु दोषान्तरमपीत्याह **न ब्राह्मणेति । आपद्यपि** दुर्भिक्षादौ शूद्राविवाहेन धनसंभवान्निस्तारसंभवेऽपीत्यर्थः । **वृत्तान्ते** प्रस्तावे यथा भार्यान्तरोद्वाहासंभवेन संतानाविच्छेदस्तदापीत्यर्थः । **उपदिश्यते** अनुज्ञायते ।। १४ ।।

(३) **कुल्लूकः । ब्राह्मणक्षत्रिययो**र्गार्हस्थ्यमिच्छतोः सर्वथा सवर्णालाभे **कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्त** इतिहासाख्यानेऽपि **शूद्रभार्या** नाभिधीयते । पूर्वसवर्णानुक्रमेणानुलोम्येन विवाहाद्यनुज्ञानादयं निषेधः प्रातिलोम्येन विवाहविषयो बोद्धव्यः । ब्राह्मणक्षत्रियग्रहणं चेदं दोषभूयस्त्वार्थमनन्तरं द्विजातय इति बहुवचनाद्वैश्यगोचरनिषेधस्यापि वक्ष्यमाणत्वात् ।। १४ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** ब्राह्मणादित्रयाणां रागतः शूद्रोद्वाहमनूद्य ब्राह्मणक्षत्रिययोर्निषेधति **नेति द्वाभ्यां । वृत्तान्ते** इतिहासादौ ।। १४ ।।

(५) **नन्दनः ।** अथ ब्रह्मक्षत्रियाभ्यां सवर्णायां प्रथममुद्वोढुमशक्यायामसवर्णापि वोढव्या, न कदाचिदपि प्रथमं शूद्रेत्याह **न ब्राह्मणेति । आपत्** सवर्णया अनन्तराया

वाऽप्यलाभः । **वृत्तान्ते** वृत्तमाचारो धर्म इति यावत्, **अन्तः** निर्णयः धर्मशास्त्र इत्यर्थः । **भार्या नोपदिश्यते** भार्यात्वेन नोपदिश्यते, किन्तु काम्यत्वेनेत्यर्थः ।। १४ ।।

(६) **रामचन्द्रः । ब्राह्मणक्षत्रिययोः** तिष्ठतोः । **आपद्यपि** स्ववर्णाया अलाभेऽपि **शूद्रा भार्या नोपदिश्यत** इत्यर्थः ।। १४ ।।

(७) **मणिरामः ।** आनुलोम्येनानुज्ञां दत्वा प्रतिलोम्येन विवाहनिषेधमाह **नेति ।** **आपद्यपि ।** सर्वं या सवर्णालाभेऽपि । **कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते** इतिहासादावपि ।। १४ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नेति । ब्राह्मणक्षत्रिययोः** गार्हस्थ्यप्रतिपत्तये सवर्णामलभमानयोः **कस्मिंश्चिदपी**तिहासाख्याने **शूद्रा भार्या नो**पवर्ण्यते । एवं च शूद्रानिषेधात् ब्राह्मणक्षत्रिययोः सवर्णाऽलाभे अस्ति क्षत्रियवैश्योद्वाह इति गम्यते । तत्रापि च धनपद्यादौ क्षत्रप्रवृत्तिदर्शनात प्रथमं ब्राह्मणस्य क्षत्रियोद्वाहः । तदलाभे वैश्योद्वाहः ।। १४ ।।

**हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः ।।**
**कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ।। १५ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** पूर्वस्य प्रतिषेधस्य शेषोऽयं निन्दार्थवादः । **हीनजातिः** शूद्रैव, तस्या एव प्रकृतत्वात्, **ससन्तानानि शूद्रतामिति** निगमनात् । त एते **द्विजातयः मोहा**द्धनलोभजादविवेकात्कामनिमित्तत्वाद्वा **कुलानि** शूद्रतां गमयन्ति । तस्यां जाताः पुत्राः शूद्रा भवन्त्येव तत्पुत्रपौत्रा इति । अत उच्यते **ससन्तानानीति ।** सन्तानोऽपत्योत्पत्तिप्रबन्धः पुत्रपौत्रादिः ।। १५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । हीनजातिं** शूद्रां । **कुलानि** पित्रादिरूपाणि **ससन्तानानि** ब्राह्मणीजातस्वपुत्रादीनि वृषलतां नयन्तीति सर्वसाधारणो दोष उक्तः ।।१५ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** सवर्णामपि परिणीय **हीनजातिं** शूद्रां शास्त्राविवेकात्परिणयन्तो ब्रह्मक्षत्रियवैश्यास्तत्रोत्पन्नपुत्रपौत्रादिक्रमेण **कुलान्येव** ससंततिकानि **शूद्रतां** गमयन्ति । अत्र 'द्विजातय' इति बहुवचननिर्देशान्निन्दया वैश्यस्यापि निषेधः कल्प्यते । ब्राह्मणक्षत्रिययोस्तु पूर्वत्रैव निषेधकल्पनात्तन्निन्दामात्रार्थतैव ।। १५ ।।

(४) **राघवानन्दः । हीनजातिं** शूद्रां । तदुत्पन्नपुत्रपौत्रादिना शूद्रतां नयन्तीति **कुल्लूकः । मेधातिथिस्तु** सर्वत्रोपदेशानर्थक्याद्विकल्प इति । केचिदिमं निषेधं क्रमवैपरीत्यमिति व्याचक्षते,—तन्न; वक्ष्यमाणमतभेदेनोपपत्तेः ।। १५ ।।

(५) **नन्दनः ।** न केवलं ब्राह्मणक्षत्रिययोरेव निषेधः, किन्तु वैश्यस्यापीति सूचयितुमर्थवादमाह **हीनेति । हीनजातिं** संस्कारहीनोत्पत्तिं शूद्रां **द्विजातयो** मन्त्रसंस्कारयुक्ताः **स्त्रियमुद्वहन्तः** प्रथमभार्यात्वेनोद्वहन्तस्तस्यामुत्पन्नेनापत्येन **कुलं** संततिं **शूद्रतां** जातकर्मादिसंस्कारहीनतामाशु नयन्ति ।। १५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **द्विजातयो हीनजातिं स्त्रियं मोहादज्ञानादुद्वहन्तः कुलानि** सन्तानानि **शूद्रत्वरूपतामाशु** शीघ्रं **नयन्ति** ।। १५ ।।

(७) **मणिरामः**। शूद्राविवाहे दोषमाह **हीनजातिमिति। मोहात्** शास्त्रविवेकात्। सवर्णामविवाह्य **हीनजातिमुद्वहन्तः। द्विजातय** इत्यनेन वैश्यस्यापि प्रातिलोम्येन शूद्राविवाहे दोषः कल्प्यते ।। १५ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अत्रार्थवादः। हीनजातिस्त्रियमिति।** शूद्रतामित्युपादानात् **हीनजातिं** शूद्रां शास्त्रार्थपरिज्ञानात् उपयच्छमाना **द्विजातयः कुलानि** पुत्रपौत्रादिप्रबन्धात् चिरन्तनकालभाविसन्तानानि **शूद्रतां गमयन्ति** तथाविधानामेव नत्रोत्पादात्। अत्र 'द्विजातय' इति वचनात् वैश्यस्याप्यकृतसवर्णाविवाहस्य शूद्रानिषेध इति गम्यते। ब्राह्मणक्षत्रिययोः पुनः प्रत्यवायातिशयः पूर्वं प्रतिषेधारंभसामर्थ्यात् ।।१५ ।।

**शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च ।।**
**शौनकस्य सुतोत्पत्त्या, तदपत्यतया भृगोः ।। १६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। शूद्रां विन्दति परिणयति **शूद्रावेदी** स **पतति** पतित इव। **अत्रिरुतथ्यस्य तनयः** पुत्रस्तयोरेतन्मतमित्युपस्करः। अयं तावदर्धश्लोकः पूर्वप्रतिषेधशेषः। **शौनकस्य सुतोत्पत्त्या।** शास्त्रान्तरमिदम्। अभ्यनुज्ञाय शूद्रायाभृतावुपगमनं निषेधति, सुतोत्पत्तिर्हि ऋतौ युग्मासु रात्रिषु भवति। ऋतौ शूद्रां न गच्छेदित्यर्थः।

**तदपत्यतया भृगोः**। इदमपि स्मृत्यन्तरम्। तान्येव शूद्रोत्पन्नान्यपत्यानि यस्य स तदपत्यः, तद्भावस्तदपत्यता। **भृगोरेतन्मतम्**। ऋतावप्युपपन्नतरासु जातापत्य उपेयात्। पतितत्ववचनं चात्र निन्दैव, न त्वस्य पतितधर्मता -'पतितस्योदकमित्यादि'। एतच्च वक्ष्यामः ।। १६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अथ गोत्रविशेषनियतं दोषमाह **शूद्रावेदीति। शूद्रावेदी** शूद्रापरिणेता अत्रेः संज्ञकस्य मुनेर्मते सन्तत्यनुत्पत्त्यापि **पतित**द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनमिति **गौतमो**क्तपातित्ययोगी भवति। **उतथ्यतनयो गौतम**स्तदगोत्रजस्येति सुतोत्पत्त्येत्यनेन व्यवहितेनान्वितम्। शौनकस्येत्यपि तदपत्यतयेत्यनेनान्वितम्। तेन **गौतमगोत्रस्य पुत्रोत्पत्त्या शौनकभृग्वादीनां तु पौत्रोत्पत्त्या** शूद्रतुल्यत्वहेतुर्द्विजातिधर्महानिरूपं पातित्यमित्यर्थः। एतच्च तत्तदगोत्रकर्तॄणां तेन तेन प्रकारेण पूर्वं पातित्यस्योत्पन्नत्वात्तैरेव नियमितम्। अत एव **भविष्ये** "शूद्रामारोप्य शय्यां तु पतितोऽत्रिर्बभूव ह। उतथ्यः पुत्रजननात्पतितत्वमवाप्तवान् ।। पुत्रस्य पुत्रमासाद्य शौनकः शूद्रतां गतः। भृग्वादयोऽप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयुः ।।" अत्र च भृग्वादय इत्यादिपदादत्रिगौतमव्यतिरिक्तानां सर्वेषां ग्रहणं; केचिच्चात्रेस्तनयस्येति षष्ठचर्थे व्याचक्षते। एवमुत्तरेष्वपि तत्तु व्याख्यानं व्यवस्थितार्थानभिधानेन शूद्रावेदनस्यादोषत्वमापादयन्निषेधविध्यानर्थक्यस्य प्रसंजकतया हेयमेव ।। १६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रां विन्दति परिणयतीति **शूद्रावेदी** स **पतति** पतित इव भवति। इदम**त्रे**र्मत**मुतथ्यतनयस्य गौतमस्य** च। अत्र्यादिग्रहणमादरार्थम्। एतद्ब्राह्मणविषयम्। 'शूद्रायां **सुतोत्पत्त्या** पतती'ति **शौनकस्य** मतमेतत्क्षत्रियविषयम्। शूद्रात्**सुतोत्पत्त्या** पततीति **भृगो**र्मतमेतद्वैश्यविषयम्। एतस्य महर्षिमतत्रयस्य व्यवस्थासंभवे विसदृश-पतनविकल्पायोगात्। **मेधातिथिगोविन्दराजयोस्तु** मतं शूद्रावेदी पततीति पूर्वोक्त-शूद्राविवाहनिषेधविशेषः। सुतोत्पत्त्या पततीति दैवाज्जातशूद्राविवाहे 'ऋतौ नोपेयात्' इति विधानार्थमृतुकालगमने सुतोत्पत्तेः। तदपत्यतयेति तु तान्येव शूद्रोत्पन्नान्यपत्यानि यस्य स तदपत्यस्तस्य भावस्तपदत्यता तया पतति। एतेनेदमुक्तं भवति—ऋतावुप-यन्नितरासु जातापत्य उपेयात्॥ १६॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेव मतभेदेनाह **शूद्रावेदीति**। शूद्रां विन्दते परिणयते इति **शूद्रावेदी**। **अत्रेः उतथ्यतनयस्य गौतमस्य** च मते विवाहमात्रेण पतति। **शौनकस्य** तु मते **सुतोत्पत्त्या**। अत एव दैवाज्जातशूद्राविवाहे 'ऋतौ नोपेयादि'ति वचनं संगतम्। तत् एवर्तुतः शूद्रायां, जातमपत्यसामान्यं चास्य अत इदमपि वक्ष्यमाणं संगच्छते। "जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयत" इति। **तदपत्यतया**। शूद्रा-पत्यापत्यत्वेनेति **भृगोर्मतं**। उदितानुदितहोमवत विप्रराजन्यविशां यथाक्रमं व्यवस्थित-संबन्ध इति केचित्,—तन्न; उत्तरत्र विप्रविषय एव निन्दार्थवादानां दृष्टेः॥ १६॥

(५) **नन्दनः**। अत्र मतान्तराण्युपन्यस्य स्वमतं सिद्धान्तयति **शूद्रावेदीति**। शूद्रां भार्यात्वेन विन्दतीति **शूद्रावेदी**। तेन **पततीत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च मतम्**। शूद्रामूढवानप्युतथ्यतनयो गौतमः। शूद्रायां **सुतोत्पादनेन** पतति न पुनस्तस्या उद्वहनेनेति **शौनकस्य** मतम्। शूद्रामूढवानपि तस्यां सुतोत्पत्तिभयादृतौ तां नोपेयादित्यर्थः। तदपत्यतया भृगोरित्येतत्स्वमतम्। कुतः? भृगुमुखेन शास्त्रस्यास्य प्रोच्यमानत्वात्। **तदपत्यतया** तस्यां शूद्रायामेवापत्यं यस्य स तदपत्यः, तस्य भावः तदपत्यता। तया पततीति भृगोर्मम मतम्। 'शूद्रापत्यैश्च केवलै'रिति (श्लो. ६४) वक्ष्यति। '**रामो द्विर्नाभिभाषते**' इत्युक्तिवदस्मच्छब्दरहितापि स्वमतप्रकाशनपरेयं **भृगो**रित्युक्तिः॥१६॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रां विन्दति परिणयति **शूद्रावेदी पतति** पतित इव भवति। **च** पुनः **उतथ्यतनयस्य** दीर्घतमसः मते **शूद्रावेदो** शूद्रायाः परिणेता द्विजः पतति। एतद् ब्राह्मणविषयं, अर्धश्लोकः पूर्वप्रतिषेधः। शेषः शौनकशास्त्रान्तरमिति ज्ञायते। **शौनकस्य** मते **सुतोत्पत्त्या पतति** शूद्र एव केवलमपत्यम्। यद्वा स एवापत्यं तदपत्यं स एव मुख्यः पुत्र एव तत्क्षत्रियविषयम्। **भृगोर्मते तदपत्यतया** पौत्रोत्पत्त्या ब्राह्म-ण्यादिपुत्रस्याभावात्पूर्वोक्तशूद्रस्य विवाहनिषेधशेषः। सुतोत्पत्त्या पतति दैवात् शूद्रा-विवाहे 'ऋतौ नोपेयादि'ति विधानार्थं ऋतुकालागमने सुतोत्पत्ति शूद्रे केवलमपत्यं। एतद्वैश्यविषयम्॥ १६॥

(७) **मणिरामः**। **शूद्रावेदी** शूद्रां विन्दति परिणयतीति शूद्रावेदी सन् **पतति** पतित इव भवति। **अत्रेः** इदं मतं **उतथ्यतनयस्य गौतमस्य** च मतं एतदब्राह्मणविषयम्।

तथा च ब्राह्मणः प्रतिलोमविवाहमात्रेण पतितो भवति इत्यर्थः। क्षत्रियविषय आह **शौनकस्येति।** शूद्रायां पुत्रमुत्पाद्य क्षत्रियः पतितो भवतीति शौनकस्य मतमित्यर्थः। वैश्यविषये आह **तदिति।** पौत्रोत्पत्त्या वैश्यः पतितो भवतीति भृगोर्मतमित्यर्थः।। १६।।

(८) **गोविन्दराजः।** मतान्तराण्याहुः **शूद्रावेदीति।** अत्रेरुतथ्यपुत्रस्य च गौतमस्यैतन्मतं यत् शूद्रोद्वोढा पतितो भवतीति। निन्दया प्रतिषेधानुमानम्। नह्य-कस्मात् निन्दा प्रवर्तत इति। तन्मतेनायं शूद्राया अत्यन्तप्रतिषेधः। शौनकस्य पुनर्मतं यत् शूद्रासुतोत्पत्त्या पततीति। अतश्च तन्मतेऽनर्तौ नामुपेयात्। भृगोः पुनर्मतं यत् केवलशूद्रापत्यतया पततीति। एवं च तत्पक्षे इतरासु जातापत्यः शूद्रामृतौ व्रजेत्।। १६।।

**शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।।**
**जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते।। १७।।**

(१) **मेधातिथिः।** अर्थवादोऽयम्। यदि पुत्रमुत्पादयति **तस्यां** ततो **ब्राह्मण्यादेव हीयते।** अपत्यस्याब्राह्मणत्वमिति निन्देव। **सुतमिति** च पुल्लिङ्गनिर्देशात्सुतोत्पत्ते-रित्यत्र समानसंहितत्वेऽपि पुत्रोत्पत्तिरेवाभिप्रेता। तथा च दर्शितं "युग्मा रात्रयो वर्ज्याः" इति।। १७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** प्रसंगादधिविन्नायामपि शूद्रायां मैथुने दोषमाह **शूद्रामिति। आरोप्येति।** कारणेन कार्यं मैथुनमुक्तम्। **अधोगतिं** नरकं। **ब्राह्मण्यात्** ब्राह्मण-कर्मणः।। १७।।

(३) **कुल्लूकः।** सवर्णामपरिणीय दैवात्स्नेहाद्वा शूद्रापरिणेतुर्ब्राह्मणस्य शयन-निषेधोऽयं निन्दया निषेधस्मृत्यनुमानात् **शूद्रां** गत्वा **ब्राह्मणो** नरकं गच्छति। **जनयित्वा सुतं तस्या**मित्यृतुकालगमननिषेधपरम्। **ब्राह्मण्यादेव हीयत इति** दोषभूयस्त्वार्थम्।। १७।।

(४) **राघवानन्दः।** तानेवाह **शूद्रामिति त्रिभिः।।** १७।।

(५) **नन्दनः।** केवलशूद्रभार्यत्वं तदपत्यत्वं च ब्राह्मणस्य दोषातिशयावहमित्याह **शूद्रामिति। शयनमारोप्य** केवलशूद्रामूढ्वेत्यर्थः। **तस्यां** केवलशूद्रायाम्।। १७।।

(६) **रामचन्द्रः।।** १७।।

(७) **मणिरामः।** शूद्राविवाहमकृत्वा दैवात् शूद्रापरिणेतुः ब्राह्मणस्य निषेधमाह **शूद्रामिति।।** १७।।

(८) **गोविन्दराजः। शूद्रामिति। शूद्रां** गत्वा **ब्राह्मणो** नरकं व्रजति, इत्यत्यन्त-प्रतिषेधः। शेषोऽर्थवादः। **सुतं** शूद्रायामुत्पाद्य **ब्राह्मण्यादेव** भ्रश्यतीत्ययं सुतोत्पत्ति-निषेधार्थवादः। एवं चेहार्थवादो यो ब्राह्मणग्रहणादत्यन्तप्रतिषेधः सुतोत्पत्तिनिषेधो ब्राह्मणविषयादेव।। १७।।

**दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु ।।**
**नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति ।। १८ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** सार्वकालिकोऽयं निषेधः । यदि कथंचिच्छूद्राऽपि व्युह्यते तदैतानि कर्माणि **तत्प्रधानानि** न कर्तव्यानि । न च तया सह त्रैवर्णिकस्त्रीवद्धर्मेऽधिकारोऽस्तीत्यर्थः । भार्यात्वादधिकारे प्राप्ते निषेधोऽयम् । अतः स्वधर्मे धनं विनियुञ्जानस्य न तदीयानुज्ञापयुज्यते, यथा द्विजातिस्त्रीणाम् । अन्यत्र त्वर्थकामयोः साऽप्यनतिचरणीयैव । प्रेष्यात्वत्तत्कर्मोपयोगो न निषिध्यते, श्राद्धादान्नवहननादिकार्ये तत्र न दोषः स्यात् । परिवेषणादि न कारयितव्या । तत्र **दैवं** कर्म दर्शपूर्णमासादि, देवतोद्देशेन च ब्राह्मणभोजनं, व्रतवदित्यत्र यथा व्याख्यातम् । **पित्र्यं** श्राद्धोदकतर्पणादि । **आतिथेयम**तिथेराराधनं भोजनपाद्यादि ।

"ननु च सजात्या स्थितयाऽन्ययेत्यस्त्येव प्रतिषेधः" । नैव । स्थितयेति तत्र श्रूयते । ऋतुमत्यां सवर्णायां कथंचिद्वाऽसंनिहितायां प्राप्नोति क्षत्रियावैश्यावत् । अपि च नासावधिकारे प्रतिषेधः, किं तर्हि ? आज्यावेक्षणादौ । पत्न्यवेक्षितमाज्यं भवतीत्यङ्गत्वेनोपादीयते । पत्नीत्यत्र क्रत्वर्थेषु यया कयाचिदुपात्तया सिद्धिरनियमेन प्राप्ता । यथा बह्वीषु सवर्णासु यया कयाचित्सवर्णया क्रियते एवमसवर्णयाऽपि मा कारीत्येवमर्थोऽसौ प्रतिषेधः ; प्राधान्यमधिकारित्वात् । **नाश्नन्ति पितृदेवास्तमिति** कर्मनैष्फल्यमाह । **न च स्वर्गं स गच्छति ।** यद्यप्यतिथिरश्नाति तत्फलं स्वर्गादि न भवतीति । स्वर्गग्रहणमतिथिपूजाफलोपलक्षणार्थम्, अनुवादश्च 'धन्यं यशस्य'मित्यादि ।। १८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** यदुक्तं 'कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्त' इति दोषकथनेन स्पष्टयितुमाह **देवेति । तत्प्रधानानि** भार्यान्तराभावात् । **न च स्वर्ग**मित्यातिथेयविषये दोष उक्तः । तत्र 'नादन्त्यतिथयं' इत्यभिधानयोगात् ।। १८ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** यदि कथंचित्सवर्णानुक्रमेणाक्रमेण वा शूद्रापि परिणीयते तदा भार्यात्वेन प्रसक्तानि तत्कर्तृकानि **दैवेत्यनेन** निषिध्यन्ते । दैवं होमादि, **पित्र्यं** श्राद्धादि, **आतिथेय**मतिथिभोजनादि, एतानि यस्य शूद्रासम्पाद्यानि तद्धव्यं कव्यं **पितृदेवा नाश्नन्ति । न च** तेनातिथ्येन **स गृही स्वर्गं याति ।** 'यस्तु तत्कारयेन्मोहात्स जात्या स्थितयान्यया' (९।८७) इति सवर्णायां सन्निहितायां निषेधं वक्ष्यति । अयं त्वसन्निहितायामपीत्यपुनरुक्तिः ।। १८ ।।

(४) **राघवानन्दः । दैवं** होमादि । **पित्र्यं** श्राद्धादि । शूद्रास्तत्सुताश्च प्रधानतया येषु तानीति । **नच स्वर्गं** ब्राह्मण्याभावेन स्वर्गसाधनकर्माभावात् ।। १८ ।।

(५) **नन्दनः ।** एतमेवार्थं विशदयति **दैवेति । यस्य** द्विजस्य **तत्प्रधानानि** शूद्राप्रधानानि **तस्य** तत्प्रदेयं पित्र्यमातिथेयं च देयम् । **पितृदेवा** नादन्ति **नाश्नन्ति ।**

आतिथेयस्यापि देवपित्र्यर्थत्वादुक्तं 'पितृदेवा' इति। ततश्च **स्वर्गं न गच्छति**। 'न ब्राह्मणक्षत्रिययो'(३।१४)रित्यारभ्य यदिदं शूद्राभार्यत्वं निषिध्यते तत्केवलशूद्राभार्यत्वविषयमिति **तत्प्रधानानी**त्यनेन स्पष्टीकृतम्। नहि त्रैवर्णिकस्य तत्स्त्रीभार्यस्य दैवपित्र्यातिथेयानि शूद्राप्रधानानि भवन्तीति च ॥ १८ ॥

(६) **रामचन्द्रः। यस्य** पुंसस्तस्या मुख्यतया **प्रधानानि** कृतानि **दैवपित्र्यातिथेयादी**न्येतानि **पितरो देवाश्च नादन्ति** न भक्षयन्ति च पुनः **सोऽपि** पुमान्**स्वर्गं न गच्छति** ॥ १८ ॥

(७) **मणिरामः**। यदि सवर्णानुक्रमेण परिणीता तथापि तां दैवादिकार्ये न योजयेदित्याह **दैवेति**। **तत्प्रधानानि** शूद्रासंपादितानि। अयं निषेधः सवर्णायामविद्यमानायां बोध्यः, सन्निहितायां निषेधस्य वक्ष्यमाणत्वादित्यपौनरुक्त्यम् (अपौनरुक्तिः)। ॥ १८ ॥

(८) **गोविन्दराजः। दैवपित्र्यातिथेयानि इति**। "यस्तु तत्कारयेन्मोहात् सजात्या स्थितयाऽन्यया"। (९।८७) इति निषेधं वक्ष्यति। अतोऽसन्निहितायामपि सजात्यायां यागश्राद्धातिथिदानानि यस्य शूद्रया दत्तानि तद्धव्यकव्यं **पितृदेवा** नोपजीवन्ति। **न च** तेनातिथेयेन स गृहस्थः **स्वर्गं गच्छति** ॥ १८ ॥

**वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥**
**तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अर्थवादोऽयम्। वृषल्याः फेनो **वृषलीफेनो** वक्त्रासवः, स पीतो येन। पलाण्डुभक्षितादिवत्परनिपातः। पाठान्तरम्—'वृषलीपीतफेनस्य'। पीतः फेनो यस्येति विग्रहः, वृषल्या पीतफेनः। 'तृतीयेति' (पा०सू० २।१।३०) योगविभागात्समासः। पीतः फेनो वाऽनेनेति विग्रहे वृषल्या इति षष्ठीसमास : (पा०सू० २।२।८)। अर्थस्तु सर्ववृत्तिष्वेक एव। संप्रयुज्यमानयोरधरपरिचुम्बनाद्यवश्यंभावि, तेन च सहचारिणा धर्मेण मैथुनसम्बन्धो लक्ष्यते। प्रकरणाच्च विवाहप्रतिषेधशेषोऽयं, न पृथग्वाक्यम्। तत्त्वे हि चुम्बनादिवर्जं संयोगधर्मो बहुमतः स्यात्। तस्माद्गच्छञ्छूद्रां चुम्बनादिपरिवर्जनेन न किंचिच्छास्त्रार्थमनुलंघते। **तस्यां चैव प्रसूतस्य** ऋतौ तु गच्छत इत्यर्थः। **निष्कृतिः** शुद्धिर्नास्ति इति निन्दातिशयोऽयम् ॥ १९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वृषलीफेनपीतस्य** पीतवृषलीमुखफेनस्य। **निःश्वासो** वृषल्या एव। एतेन प्रधानमैथुनाभावेऽपि प्राप्याङ्गमात्रेण दोष उक्तः। **प्रसूतस्यो**त्पन्नापत्यस्य **निष्कृति**र्निस्तारः। पापात् **न विधीयते** नानुमतो विना प्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥ १९ ॥

(३) **कुल्लूकः।** वृषलीफेनोऽधररसः स पीतो येन स **वृषलीफेनपीतः।** 'वाहिताग्न्यादिषु' (पा. २।२।३७) इत्यनेन समासः। अनेन शूद्राया अधररसपानं निषिध्यते। **निःश्वासोपहतस्य** चेति तया सहैकशय्यादौ शयननिषेधः। **तस्यां** जातापत्यस्य **शुद्धिर्नोपदिश्यत** इत्यृतुकालगमननिषेधानुवादः ॥ १९ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच, **वृषलीफेनपीतस्य** शूद्राधरसुधापायिनः चुम्बनेन भोगकाले। तन्निःश्वासेनोपहतं स्पृष्टं शरीरं यस्य तस्य। **प्रसूतस्य** स्वयमेवापत्यतया जातस्य। **निष्कृतिः** शुद्धिः। ऐहिकामुष्मिकयोः कर्मणोर्नाधिकार इति भावः ॥ १९ ॥

(५) **नन्दनः।** उक्तं निगमयति **वृषलीति। वृषलीफेनपीतस्य** पीतवृषलीलालाजलस्य। वृषलीभोगोपलक्षणमेतत्। **प्रसूतस्य** जातापत्यस्य द्विजस्य। **निष्कृतिः** प्रायश्चित्तम्। एवकारेण त्रैवर्णिकस्त्रियामप्रसूतस्य शूद्रायामेव प्रसूतस्य प्रायश्चित्ताभाव इति सूचितम् ॥ १९ ॥

(६) **रामचन्द्रः। वृषलीफेनपीतस्य** रतिसमये शूद्राया अधरपानस्य च पुनर्निः**श्वासोप**हतस्य तया सहैकशय्यानिषेधः। **तस्यां** वृषल्यां **प्रसूतस्य** जातस्य **निष्कृतिर्न विद्यते।** सवर्णामपरिणीय दैवाच्छूद्रापरिणेतुर्ब्राह्मणस्य निषेधः। ऋतुकालगमननिषेधानुवादः। 'आत्मा वै जायते पुत्र' इति श्रुतेः ॥ १९ ॥

(७) **मणिरामः। वृषलीफेनपीतस्य। वृषली** शूद्रा, तस्याः **फेनः** अधररसः **स पीतो येन** स तथा। अधरपाननिषेधार्थमिदमुक्तम्। **निःश्वासोपहतस्ये**त्यनेनैकशय्याशयननिषेधः। **तस्यामिति** ऋतौ गमननिषेधानुवादः ॥ १९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। वृषलीफेनपीतस्येति।** शूद्रया कृतपरिचुंबनस्य तयैव च एकपर्यङ्कादौ मुखश्वासापवित्रीकृतस्य तस्यामेव चोत्पन्नापत्यस्य संशुद्धिः नोपदिश्यत इति पूर्वोत्तरावर्धश्लोकौ अत्यन्तनिषेधात् भृगुमतार्थवादौ ॥ १९ ॥

**चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान् ॥**
**अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ २० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** वक्ष्यमाणस्य संक्षेपोपन्यासः। हिताश्चाहिताश्च। केचिद्धिताः केचिन्न। **अष्टाविति** संख्यानिर्देशः। **समासः** संक्षेपः। स्त्रीसंस्कारार्था विवाहाः **स्त्रीविवाहाः।** "कः पुनरयं विवाहो नाम?"। उपायतः प्राप्तायाः कन्याया दारकरणार्थः संस्कारः सेतिकर्तव्यताङ्गः सप्तर्षिदर्शनपर्यन्तः पाणिग्रहणलक्षणः ॥ २० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। हिताहितान्** हितानहितांश्च। तत्र केचित्सर्वेभ्यो वर्णेभ्यो हिताः केचिदहिताः। केचित् कस्मैचिदेव तादृशा इति वक्ष्यति ॥ २० ॥

(३) **कुल्लूकः। चतुर्णामपि वर्णानां** ब्राह्मणादीनां परलोक इहलोके **च** कांश्चि**द्धितान्**कांश्चि**दहितानिमान**भिधास्यमानान**ष्टौ** संक्षेपेण भार्याप्राप्तिहेतून्विवाहाञ्छृणुत ॥ २० ॥

(४) **राघवानन्दः**। विप्रादीनां तानेवोद्वाहानष्टसङ्ख्याकान् ब्राह्मादीनाह **चतुर्णामपीति द्वाभ्यां। हिताहितान्**स्वर्गनरकसाधनान् **स्त्रीविवाहान्** स्त्रीकर्मकान्। अनेन स्वयंवरविवाहो नाष्टसु गण्यत इति भावः ॥ २० ॥

(५) **नन्दनः**। अथ विवाहभेदानाह **चतुर्णामिति**। यथा विवाह **इह प्रेत्य** च **हितानत्र** (अ)**हितान्**विपरीते ॥ २० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **चतुर्णां वर्णानां प्रेत्य इह लोके च हिताहितानिमांस्त्री-विवाहानष्टौ निबोधत** ॥ २० ॥

(७) **मणिरामः**। स्पष्टम् ॥ २० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **चतुर्णामिति। चतुर्णामपि** ब्राह्मणादिवर्णानां परलोके-हलोकयोः कांश्चिद्**धिताहितान् इमान्** वक्ष्यमाणान् भार्याप्राप्तिहेतून् **विवाहान्** संक्षेपेण शृणुत ॥ २० ॥

**ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।**
**गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। संख्ययाऽष्टावित्युद्दिष्टानां नामधेयानीमानि। **अधम**ग्रहणं पैशाचस्य निन्दार्थम् ॥ २१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। येन विवाहेनोत्पन्नया संतत्या ब्रह्मलोकप्राप्तिः स **ब्राह्मः**। एवं **दैवोऽपि** ॥ २१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। त एते नामतो निर्दिश्यन्ते—ब्राह्मराक्षसादिसंज्ञा चेयं शास्त्र-संव्यवहारार्था स्तुतिनिन्दाप्रदर्शनार्था च। ब्रह्मण इवायं ब्राह्मः। रक्षस इवायं राक्षसः। न तु ब्राह्मादिदेवतात्वं विवाहानां संभवति। पैशाचस्याधमत्वाभिधानं निन्दाति-शयार्थम् ॥ २१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तेषां संज्ञामाह **ब्राह्म इत्यादि** ॥ २१ ॥

(५) **नन्दनः**। आर्षात् प्राजापत्यस्य श्रैष्ठ्यं फलतो वक्ष्यति। वृत्तभङ्ग-भयात्क्रमभङ्गः ॥ २१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ब्राह्म**संज्ञः १ **दैव**संज्ञः २ **आर्ष**संज्ञः ३ **प्रजापति**संज्ञः ४ **आसुर**संज्ञः ५ **गान्धर्व**संज्ञः ६ **राक्षस**संज्ञः ७ **पैशाच**संज्ञः ८ उक्तेष्वेतेष्वष्ट-मोऽधमः ॥ २१ ॥

(७) **मणिरामः**। विवाहानां नामान्याह **ब्राह्म इति** ॥ २१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ब्राह्म इति**। स्तुतिनिन्दाप्रतिपादनोऽयमेषां ब्राह्मादिव्य-पदेशः। नत्वसाधारण्येन ब्रह्मादिदेवतासंबन्ध एषां विद्यते ॥ २१ ॥

**यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ ॥**
**तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** धर्मादनपेतो **धर्म्यः**, शास्त्रविहित इत्यर्थः। **यस्य च** विवाहस्य **यौ गुणदोषौ** इष्टानिष्टफलहेतुत्वाद् **गुणदोषौ। प्रसवे**ऽपत्यजन्मनि। **गुणाऽगुणाः**, **अगुणा** दोषाः। वोढुरेव स्वर्गनरकादिलक्षणौ गुणदोषौ, तत्प्रयोजनमर्थात्स्वर्गादिकम्, या ईदृशा एव भवन्ति। गतार्थमपि भूयः प्रतिपत्तये कथयन्ति ॥ २२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। धर्म्याः** धर्मानपेताः। **गुणदोषौ** विवाहमात्रेण प्रसूतिं विनापि तच्च प्रशस्तत्वाप्रशस्तत्वाभिधानादर्थादभिहितमिति विशेषतो नोक्तम्। **प्रसवे** सन्ततौ ॥ २२ ॥

(३) **कुल्लूकः।** धर्मादनपेतो **धर्म्यः।** यो विवाहो **धर्म्यो यस्य** विवाहस्य **यौ गुणदोषा**विष्टानिष्टफले तत्तद्विवाहोत्पन्नापत्येषु ये गुणागुणास्तत्सर्वं युष्माकं **प्रकर्षेणाभिधास्यामि।** वक्ष्यमाणानुकीर्तनमिदं शिष्याणां सुखग्रहणार्थम् ॥ २२ ॥

(४) **राघवानन्दः। यस्य वर्णस्य** विप्रादयो **विवाहो** यावत्सङ्ख्यो विहितो यस्मिंश्च यो दोषस्तं ब्रूते **य** इति **पञ्चभिः। यस्य** विवाहस्य **प्रसवे** तदुदितापत्ये ॥ २२ ॥

(५) **नन्दनः। यो** विवाहो **यस्य वर्णस्य धर्म्यो** यस्य विवाहस्य **यौ च गुणदोषौ। प्रसवे** पुत्रे ॥ २२ ॥

(६) **रामचन्द्रः। यो यस्य वर्णस्य** विवाहो **धर्म्यो** धर्मार्हः **यस्य वर्णस्य यौ गुणदोषौ** भवतस्तद्युष्माकमृषीणां संततौ **प्रसवे गुणागुणौ वक्ष्यामि** पुत्रोत्पादन इत्यर्थः ॥ २२ ॥

(७) **मणिरामः। यः** विवाहः **धर्म्यः** धर्मादनपेतो धर्म्यः, यस्य विवाहस्य **गुणदोषौ** इष्टानिष्टफले। **प्रसवे च** तत्तद्विवाहोत्पन्नापत्येषु च ॥ २२ ॥

(८) **गोविन्दराजः। ये यस्य धर्म्या इति। ये** विवाहा **यस्य वर्णस्य** धर्मानपेता **यस्य च** विवाहस्य **यौ गुणदोषौ** वोढुरिष्टानिष्टफलदातारौ प्रतिनियतविवाहोत्पन्नायत्तेषु च ये **गुणदोषौ तत्सर्वं** युष्माकं **प्रवक्ष्यामि** ॥ २२ ॥

**षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ॥**
**विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥ २३ ॥**

(१) **मेधातिथिः। षड्**विवाहा ब्राह्मणस्या**नुपूर्व्या।** आनुपूर्वी क्रमः, नामोद्देशक्रमेण। **क्षत्रस्य।** क्षत्रियवचनः क्षत्रशब्दः। तस्य **चतुरोऽवरा**नुपरितनानासुरगान्धर्वराक्षसपैशाचा**न्विद्यात्।** वैश्यशूद्रयोस्ताने**वाराक्षसा**न्राक्षसं वर्जयित्वा ॥ २३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । गान्धर्वान्ता **विप्रस्य षट्** धर्म्या धर्मादनपेताः ।' प्रशस्ताः स्त्वाद्याश्चत्वार इति वक्ष्यति । **अवरानन्यांश्चतुरः** । तत्र पैशाचस्य शूद्रेष्वपि निन्दितत्वात्प्राजापत्यादयश्चत्वारो ग्राह्याः । **तानेव** चतुरस्तेषु तु मध्ये न राक्षसमिति व्युदासात् । त्रयः प्राजापत्यासुरगान्धर्वाः शिष्यन्ते ।। २३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मणस्य ब्राह्मादिक्रमेण **षट्** । **क्षत्रियस्यावरा**नुपरितनानासुरादींश्चतुरः । **विट्शूद्रयोस्तु तानेव** राक्षसवर्जितानासुरगान्धर्वपैशाचान्धर्मादनपेताञ्जानीयात् ।। २३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **षडिति** गान्धर्वपर्यन्तान् । **अवरा**नासुरादिपिशाचान्तान् **चतुरः तानेवा**सुरादीन् राक्षसं वर्जयित्वा तानासुरगान्धर्वपैशाचान् । तेन विट्शूद्रयोस्त्रीन् ।। २३ ।।

(५) **नन्दनः** । ब्राह्मादीन्**षड्**विवाहान्**विप्रस्य धर्म्यान्विद्यात्**, **अपरान्** पाश्चात्यानासुरादीन्**क्षत्रियस्य तानेव** पाश्चात्यानेव राक्षसवर्जं **विट्शूद्रयोः** ।। २३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **विप्रस्य षट्** विवाहा **आनुपूर्व्येण** क्रमेणोक्ताः । **क्षत्रस्यावरा**नासुरादींश्**चतुरो** विवाहान् **विट्शूद्रयोस्तानेव चतुरोऽवरा**नासुरादीन्**धर्म्यान् विद्यात्** । **न राक्षसान्** । तद्यथा—ब्राह्मः १ दैवः २ आर्षः ३ प्राजापत्यः ४ आसुरः ५ गान्धर्वः ६ षट् विप्रस्य विवाहाः ७ क्षत्रस्य चतुरः आसुरः १ गान्धर्वः २ राक्षसः ३ पैशाचः ४ ।। २३ ।।

(७) **मणिरामः** । **आनुपूर्व्या** ब्राह्मादिक्रमेण । **अवरान्** आसुरादीन् **अराक्षसान्** राक्षसरहितान् आसुरादीन् एतेषा**मेतान् धर्म्यान् विद्यात्** जानीयादित्यर्थः ।। २३ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **षडिति** । **षडादितः** क्रमावस्थितान् **विप्रस्य क्षत्रियस्य** चोपरितनान् चतुरः (चत्वारो), **विट्शूद्रयोः** पुनः राक्षसवर्जितान् **तानेव** धर्मादनपेतान् जानीयात् ।। २३ ।।

**चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः ।।**
**राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ।। २४ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । आसुरगान्धर्वयोरयं निषेधो **ब्राह्मणस्य** पुनर्ब्राह्मादिविधानेन । एवं **क्षत्रियस्य** राक्षस एवैको न गान्धर्वासुरौ । आसुर एव **वैश्यशूद्रयोः** । विहितप्रतिषिद्धानां विकल्पः । ततश्च नित्यवद्विहिताभावे विकल्पितेषु प्रवृत्तिः । यस्य च यो विहितः स तद्विवाहाभावमनपेक्ष्य प्रथमत एवं यदि विहितप्रतिषिद्धेषु प्रवर्तेत, तत्र पुरुषो दुष्येदपत्यं चानाभिप्रेतमुत्पद्येतेति शास्त्रकारेण दर्शितं 'प्रसवे च गुणागुणान्' इत्यादिना । न तु सपिण्डादिपरिणयवत् विवाहस्वरूपा निवृत्तिः ।। २४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** प्रशस्तानुत्तमसन्ततिहेतुतया। अत्र **ब्राह्मणस्य चत्वार** इति प्रथमः कल्पः। षडित्यनुकल्पः। **एकं क्षत्रियस्य राक्षस** एक इति कल्पः। सप्राजापत्याद्याश्चत्वार इत्यनुकल्पः। एवं **वैश्यशूद्रयो**र्ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

(३) **कुल्लूकः। ब्राह्मणस्य** प्रथमं पठितान्ब्राह्मादींश्चतुरः। **क्षत्रियस्य राक्षसमेकमेव। वैश्यशूद्रयोरासुरं।** एताञ्छ्रेष्ठाञ्ज्ञातारो जानन्ति। अत एव ब्राह्मणादिष्वासुरादीनां पूर्वविहितानामप्यत्राप्युपादानं जघन्यत्वज्ञापनार्थम्। तेन प्रशस्तविवाहासंभवे जघन्यस्यापि परिग्रह इति दर्शितम्। एवमुत्तरत्रापि विगर्हितपरित्यागो बोद्धव्यः ॥ २४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्रैव प्रशस्तानाह **चतुर इति। चतुरः** प्राजापत्यान्तान्। **कवयः** क्रान्तदर्शिनः। **एकं** प्रधानं प्रशस्तम्। एव**मासुरं वैश्यशूद्रयोः** प्रशस्तमित्यर्थः ॥ २४ ॥

(५) **नन्दनः। चतुर इति।** मतान्तरमिति ॥ २४ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** तत्र विशेषमाह **चतुर इति। ब्राह्मणस्य चतुर** आद्यान्विवाहान्**कवयो विदुः।** ब्राह्मदैवार्षप्राजापत्यसंज्ञा इति। **क्षत्रस्यैकं राक्षससंज्ञं वैश्यशूद्रयोरासुरमेक**मिति ॥ २४ ॥

(७) **मणिरामः।** प्रशस्तानाह **चतुर इति।** तथा च प्रशस्तालाभे जघन्यविवाहः कर्तव्य इत्याशयो मनोर्बोध्यः ॥ २४ ॥

(८) **गोविन्दराजः। चतुर इति। ब्राह्मणस्याद्यांश्चतुरः। क्षत्रियस्य राक्षसमेकं वैश्यशूद्रयोश्चासुरं** स्मृत्यर्थोपनिबन्धनकाराः **प्रशस्तान्** मन्यन्ते। अत्र चासुरादीनां ब्राह्मणादिषु पूर्ववाक्यविहितानामिह निराकरणात् विकल्पतो नित्यासंभवे वैकल्पिकेषु प्रवृत्तिः। एवमुत्तरत्रापि वेदितव्यम् ॥ २४ ॥

**पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ॥**
**पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ॥ २५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** क्षत्रियादिविषयेयं स्मृतिर्न ब्राह्मणविषया, राक्षसे विरोधात्। न हि वधभेदने ब्राह्मणः कर्तुमर्हति। अस्याचरणस्य क्षत्रियादिविषयतयोपपत्तेः। **पञ्चानां तु** विवाहानां प्राजापत्यात् प्रभृति **त्रयो विवाहा धर्म्याः। द्वौ** न कर्तव्यौ पैशाचश्चासुरश्च। प्राजापत्यः क्षत्रियादीनामप्राप्तोऽपि विधीयते। राक्षसोऽपि वैश्यशूद्रयोः। आसुरपैशाचयोः प्रतिबोधः।

इयमत्र व्यवस्था—ब्राह्मणस्य षड् विवाहाः। तत्र ब्राह्मः सर्वतः श्रेष्ठस्ततो न्यूनौ देवप्राजापत्यौ ताभ्यामप्यार्षस्ततोऽपि गान्धर्वस्ततोऽप्यासुरः। येषामयं श्लोको ब्राह्मणविषयोऽपि तेषां राक्षसोऽपि ब्राह्मणस्य क्षत्रियवृत्ताववस्थितस्य भवति। विकर्मस्थस्यापि वधभेदनाभ्यां प्रायश्चित्तीयता न तु राक्षसो विवाह इति ते मन्यन्ते।

तत्र ब्राह्मणस्य श्रैष्ठ्यं फलेनैव दर्शितम्। निषेधाभावेन चेतरेषां त्रयाणां न्यूनता **फलापचयवचनादेव**। आसुरस्य पुनर्वैश्यशूद्रयोर्विधानेन परिसंख्या ब्राह्मणक्षत्रिययोः प्रतीयते। षडिति च विधानम्। अतो विकल्पः। स च व्यवस्थया, इतरासंभवेन तस्याश्रयणं तुल्यम्! विकल्पो हि व्रीहियववदनेकविवाहविधानेन च समुच्चयासंभवादेव सिद्धः। इति वा संभवे क्रियेत चेत्तथापि धर्मापत्ययोर्न्यूनफलोऽसौ। अथ क्षत्रियस्य राक्षसो मुख्यश्चतुर्भिः श्लोकैरविकल्पेन विधानात्। चतुर इत्यनेनासुरगान्धर्वपैशाचा अपि, 'राक्षसक्षत्रियस्यैक'-मित्यनेन ते प्रतिषिद्धाः। अतो विकल्पिताः, न मुख्याः। प्रकृतापेक्षत्वाच्च राक्षसैकविधिः। प्राजापत्ये नास्ति परिसंख्यानम्। अतः प्राजापत्योऽपि क्षत्रियस्य राक्षसतुल्यः। एवं वैश्यशूद्रयोरपि प्राजापत्यो नित्यवदाम्नातो न प्रतिषिद्धः। आसुरपैशाचौ तु तयोर्विहित-प्रतिषिद्धौ। 'राक्षसोऽप्यराक्षसानि'त्यनेन प्रतिषिद्धः 'त्रयो धर्म्या' इत्यनेन विहितः। ब्राह्मणस्य पैशाचो नैवास्ति, क्षत्रियादीनां ब्राह्मदैवार्षा इति स्थितम्॥ २५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आपत्कल्पं ब्राह्मणस्याह **पञ्चानामिति**। क्षत्रस्य चतुरो-ऽवरानित्युपक्रान्ताः प्राजापत्यादयः पञ्च, तेषामपि मध्ये **त्रयो धर्म्या विप्रस्य**। अत्र ह्यासुरस्य वैश्यशूद्रयोरेव मुख्यत्वात् पैशाचस्य च सर्वेषां निन्दितत्वात्। आपद्यनन्तरं क्षत्रवर्णमुख्य-धर्माश्रयणस्य युक्तत्वाद्राक्षसो युक्तो **नासुरपैशाचाविति** तात्पर्यम्॥ २५॥

(३) **कुल्लूकः**। इह पैशाचप्रतिषेधादुपरितनानां पञ्चानां प्राजापत्यादीनां ग्रहणम्। तेषु मध्ये प्राजापत्यगान्धर्वराक्षसा**स्त्रयो धर्मानपेतास्तत्र** प्राजापत्यः क्षत्रि-यादीनामप्राप्तो विधीयते। ब्राह्मणस्य विहितत्वादनूद्यते। गान्धर्वस्य च चतुर्णामेव प्राप्तत्वादनुवादः। राक्षसोऽपि वैश्यशूद्रयोर्विधीयते। ब्राह्मणस्य क्षत्रियवृत्त्यवस्थितस्याप्या-सुरपैशाचौ न कर्तव्यौ। कदाचनेत्यविशेषाच्चतुर्णामेव निषिध्यते। अत्र यं वर्णं प्रति तस्य विवाहस्य विधिनिषेधौ तस्य तं प्रति विकल्पः, स च विहितासंभवे बोद्धव्यः॥ २५॥

(४) **राघवानन्दः**। **पञ्चानां** प्राजापत्यादीनां मध्ये **त्रयो धर्म्या** धर्मादनपेताः। प्राजापत्यगान्धर्वराक्षसा यथोक्तालाभे विप्रक्षत्रिययोरपि **द्वावधर्म्यौ** धर्मादपेतौ **पैशाचासुरौ न कार्याविति** तात्पर्यम्। तत्र क्षत्रियवृत्तिस्थविप्रस्य राक्षसः। आसुरपैशाचौ शूद्र-विशोर्विकल्पितौ। ब्राह्मस्तु ब्राह्मणस्यैवेति भावः॥ २५॥

(५) **नन्दनः**। मतान्तरमाह **पञ्चानामिति**। पाश्चात्यानां ग्रहणं पैशाच-श्चैवेति **लिङ्गात्**। **पञ्चानां** प्राजापत्यादीनां मध्ये **त्रयः** प्राजापत्यगान्धर्वराक्षसा **धर्म्याः पैशाचश्चासुरश्चैव द्वावधर्म्यौ**। ततश्च तौ न कर्तव्यौ **कथञ्चन** आपद्यपि **न कर्तव्याविति**। अत्र कर्तृविशेषानिर्देशादस्य मतस्य सर्ववर्णसाधारणत्वं गम्यते। **इह** कविषु मध्ये॥ २५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **पञ्चानां** विवाहानां मध्ये **त्रयो** धर्मार्हाः प्राजापत्यासुर-गान्धर्वराक्षसपैशाचाः ५, एतेषु पञ्चसु मध्ये **त्रयो धर्म्याः**। प्राजापत्यासुरगान्धर्व-संज्ञास्त्रयो धर्मार्हाः ३, **द्वावधर्म्यौ** राक्षसपैशाचसंज्ञौ। वर्णक्रममाह प्राजापत्यं क्षत्रि-

यादीननप्राप्तौ विधीयते, ब्राह्मणस्याभिहितत्वादनूद्यते; गान्धर्वस्य तु चतुर्णामेव प्राप्तानुवादः। राक्षसोऽपि वैश्यशूद्रयोर्विधीयते, ब्राह्मणस्य तु क्षत्रियवृत्त्यवस्थितस्यासुरपैशाचौ न कर्तव्यौ ॥ २५ ॥

(७) **मणिरामः**। पञ्चानामुपरितनानां प्राजापत्यादीनां मध्ये त्रयः प्राजापत्यगान्धर्वराक्षसास्त्रयो धर्म्याः। द्वौ राक्षसपैशाचौ। तत्र क्षत्रियादीनां प्राजापत्यो विधीयते, अप्राप्तत्वात्। ब्राह्मणस्य तु प्राप्तत्वादनूद्यते। गान्धर्वस्य सर्वत्र प्राप्तत्वानुवादः। राक्षसोऽपि क्षत्रियवैश्ययोः। क्षत्रियवृत्त्युपजीविनो ब्राह्मणस्य विधीयते। आसुरपैशाचौ तु सर्वेषामेव निषिध्येते ॥ २५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पञ्चानामिति**। इह पैशाचनिषेधात् प्राजापत्यादयः पञ्च गृह्यन्ते। **पञ्चानां** प्राजापत्यादीनां मध्यात् **त्रयो** धर्मादनपेताः, **द्वौ** त्वधर्म्या**विह** शास्त्रे स्मृतौ **पैशाचासुरौ**। तावापद्यपि न कर्तव्यौ ॥ २५ ॥

**पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ॥**
**गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥ २६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पृथक्पृथग**ित्यनुवादः, पूर्वेणैव सिद्धत्वात्। **मिश्राविति** विधीयते, निरपेक्षाणामितरेषां गान्धर्वराक्षसयोर्विहितत्वात्। व्रीहियववदप्राप्ते मिश्रणवचनमिदम्। व्रीहिभिर्यजेत यवैर्जेत्येकयागप्रयोगविषयत्वेनेतरेतरानपेक्षद्रव्यविधानाद्विकल्पो, न मिश्रीभावः। मिश्रीभावे हि न व्रीहिशास्त्रार्थोऽनुष्ठितः स्यान्न च यवशास्त्रार्थः। एवमिहैकस्यां कन्यायां स्वीकर्तव्यायां युगपदुपायद्वयमप्राप्तं विधीयते।

तस्य विषयः—यदा पितृगेहे कन्या तत्रस्थेन कुमारेण कथञ्चिद् दृष्टिगोचरापन्नेन दूतीसंस्तुतेन तद्गताऽपि तथैव, परवती न च संयोगं लभते, तदा वरेण संविदं कृत्वा 'नय मामितो येन केनचिदुपायेने'त्यात्मानं नाययति, स च शक्त्यतिशयाद्धत्वा छित्त्वा चेत्येवं हरति, तदा 'इच्छयोऽन्योन्यसंयोग' इत्येतदप्यस्ति गान्धर्वरूपं, 'हत्वा छित्त्वेति' च राक्षसरूपम्।

तावेतौ विवाहौ क्षत्रियस्यैव भवतः। **धर्म्यौ** क्षत्रियस्य तौ पूर्वचोदितावित्यनुवादः।

अन्ये त्वाहुः—यः क्षत्रियो बहुविवाहान्कुरुते स कांचिद् गान्धर्वेण विवाहेन परिणयते, कांचिद्राक्षसेनेत्येष मिश्रपक्षः। अथवा सर्वा एवान्यतरेणेति पृथक्पृथक् अनेन चैतज्ज्ञायते। क्षत्रियस्यानयोरेवानियमेन प्रवृत्तिः, प्राजापत्यादीनां तु य एव प्रथमं कृतस्तेनैवान्यापि विवाह्या ॥ २६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षत्रियस्य कल्पानुकल्पावुक्तावधुनाऽऽपत्कल्पमाह **पृथगिति**। पृथगसंकीर्णौ **मिश्रौ** संकीर्णौ। यथा प्रथमं गान्धर्वेण परिगृह्य तद्बन्धुविरोधप्रवृत्तेषु युद्धेन हरणम्। अत्र मिश्रावित्यापत्कल्पः। पृथगिति त्वनुकल्पानुवादमात्रमसंकीर्णात्संकीर्णस्य निन्दितत्वप्रदर्शनार्थम्। तेन वर्णान्तराणामप्यसंकीर्णविवाहासंभवे आपदि संकीर्णस्यापि

करणमिति दर्शितम्। पैशाचस्य तु कैश्चिदप्यकरणीयस्य विवाहगणमध्ये **गणनम्, वैश्यशूद्रयोरापदि** तस्यापि प्राप्त्यर्थमिति ग्राह्यम्। मातृतः पितृतो वोभयोरेकस्य **कूटस्थेन** सह सपिण्डतासद्भावे विवाहासंभव एवेत्येतत्प्रदर्शयितुं वा ॥ २६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पृथक् **पृथगिति** प्राप्तत्वादनूद्यते। **मिश्राविति** विधीयते। **पृथक्पृथग्विमिश्रौ** वा पूर्वविहितौ **गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रस्य धर्मौ मन्वादिभिः स्मृतौ**। यदा स्त्रीपुंसयोरन्योन्यानुरागपूर्वकसंवादेन परिणेता युद्धादिना विजित्य तामुद्वहेत्तदा गान्धर्वराक्षसौ मिश्रौ भवतः ॥ २६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'राक्षसं क्षत्रियस्ये'त्युक्तत्वादनुवादो **मिश्राविति**। वरकन्ययोः पूर्वं परस्परसंवादे सति परिपन्थिनां विजित्योद्वहनात्तौ **गान्धर्वराक्षसौ मिश्रौ** भवतः। यथा रुक्मिण्या विवाहः ॥ २६ ॥

(५) **नन्दनः**। **पृथक्पृथग्वा** केवलो गान्धर्वः केवलो वा राक्षस इत्यर्थः। केवलो गान्धर्वो यथा दुष्यन्तशकुन्तलयोः। केवलो राक्षसो यथा विचित्रवीर्याम्बिकयोः। **मिश्रो** यथा फाल्गुनसुभद्रयोः। **पूर्वचोदितौ** पूर्वैर्विहितौ। अनेन मतान्तरमिदमित्य-वगम्यते ॥ २६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षत्रियस्य विवाहमाह **पृथगिति**। **विवाहो पूर्वनोदितौ** कार्यौ पृथक् पृथक् गान्धर्वो वा विवाहः **मिश्रौ** वा गान्धर्वराक्षसौ **क्षत्रस्य धर्म्यौ** तौ **स्मृतौ** 'आसुरो द्रविणादानात् गान्धर्वः समयान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यका-च्छलादि'ति (विवाह० ६१) इति **याज्ञवल्क्यः** ॥ २६ ॥

(७) **मणिरामः**। **पृथक् पृथक् विमिश्रो वा** पूर्वविहितौ **गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रस्य धर्म्यौ स्मृतौ**। मन्वादिभिरिति शेषः। यदा स्त्रीपुंसोः परस्परानुरागपूर्वकसंवादेन परिणेता युद्धादिना विजित्य तां विवाहयेत् तदा गान्धर्वराक्षसौ मिश्रौ भवतः ॥ २६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पृथगिति**। **गान्धर्वराक्षसाख्यौ विवाहौ** पूर्वोक्तौ तौ **पृथक् पृथक् मिश्रौ वा क्षत्रस्याधर्म्या**विति पूर्वं सिद्धम्। **मिश्रौ धर्म्यौ तस्य तौ स्मृतौ** इत्यनेनोच्यते। तत्रेतरेतरानुरागपूर्वं यदा कन्या वरेणात्मानं संविदा युद्धादिनाऽपहारयति तदा गान्धर्वराक्षसौ मिश्रौ भवतः ॥ २६ ॥

**आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम्॥**
**आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इदानीं स्वरूपमेतेषामाह **आच्छाद्येति**। आच्छादनविशेषो-ऽभिप्रेतः, अन्यस्यौचित्येनैव प्राप्तत्वात्। उत्कृष्टेनाच्छादनेन यथादेशं यथासंभवं यथा-योग्येन वाससा परिधाप्य। **अर्चयित्वा**। अनेनालंकरणकटककर्णिकादिना प्रीतिविशेष-सत्कारविशेषैरर्चनं कृत्वा। एतेनाच्छादनार्हणेन कन्याया वरस्य चान्यतरसम्बन्धे प्रमाणभावादुभयोरुपयोगः कार्यः। **श्रुतशीलवते**। अन्येऽपि स्मृत्यन्तरोक्ता वरगुणा

द्रष्टव्याः "युवा धीमाञ्जनप्रियः । यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्व" इति । **स्वयं** प्रागयाचितः । **स्वपुरुषप्रेषणैराहूयान्तिकदेशमानाय्य** वरम्, **यद्दानं स ब्राह्मो धर्मो** विवाहः । अविशेषवचनोऽपि धर्मशब्दः पूर्वापेक्षितत्वात् तत्पर एव द्रष्टव्यः । 'अयाचितलाभोऽभ्यर्हणापूर्वको ब्राह्मो विवाह' इति लक्षणार्थः ।

"ननु चेदमयुक्तं स्त्रीस्वीकारार्थो विवाह इति" । यावद्विवाहपर्यन्तं चैतद्दानम् ! नाकृते विवाहे दानार्थनिर्वृत्तिः । स हि तस्याः प्रतिग्रहकालः । न चासति प्रतिग्रहे दानं परिसमाप्यते । न स्वत्वनिवृत्तिमात्रं दानम् । परस्वत्वापत्तिपर्यन्तं हि तत् । तथा च वक्ष्यति "तेषां तु निष्ठा विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे" इति । एवं विवाहकाल एव कन्या दातव्या । तथा च गृह्यकारस्तस्मिन्नेव काले ब्राह्मविवाहे काण्डिकधर्मं दर्शयति । यत्तु प्राग्विवाहाद्दानं तदुपसंवादनवचनमात्रम् । न हि तस्मिन्नक्रियमाणेऽभिप्रेतकालेऽवश्यं विवाहनिर्वृत्तिः । कश्चित्प्रागनिरूपिते न दद्यादपि, इतरो वा कदाचिन्न प्रतिगृह्णीयात् । तस्मात्प्राग्विवाहादुपसंवादः कर्तव्यः तदा त्वयेयं देया मया चेयं वोढव्येति । यथैवान्तःक्रतुः सोमक्रयं चोदिततत्सिद्धार्थोऽर्थाद्बहिष्क्रियते ।

ये तु मन्यन्ते—"यथैव गवादेर्द्रव्यस्यादृष्टार्थतया दीयमानस्य मन्त्रपूर्वकेण प्रतिग्रहेण दानमपि निर्वर्तते—तेनैवेदमुक्तं "ददातिषु चैवं धर्मेष्विति"—एवं चेह प्रतिग्रहमन्त्रस्थानीयो विवाह इति । तथा च उपयमनं विवाह इत्येकोऽर्थः । उपयमनं च स्वकरणम् । एवं ह स्म भगवान्पाणिनिः स्मरति (पा० सू० १ । ३ । ५६) "उपाद्यमः स्वकरण" इति । अतो विवाहः कन्यास्वीकारार्थः ।

तदयुक्तम् । स्वीकृताया विवाहो भार्याकरणार्थः । नानेन कर्मणा प्रतिगृह्णीयादिति विधिरस्ति । न च वैवाहिका मन्त्रा प्रतिग्रहप्रकाशकाः, यथा "देवस्य त्वाप्रतिगृह्णामीति" । यत्तु स्वकरण इति तन्न विरुद्धम् । विवाहस्याप्यस्ति स्वकरणरूपता । दानेन स्वत्वमात्रे प्रतिपन्ने विवाहेन विशिष्टं स्वत्वं क्रियते । नेयं गवादिद्रव्यवत् 'स्वं' यथेष्टविनियोज्यतया, अपि तु जायात्वेन । विशिष्ट एव हि स्वस्वामिभावो जायापतिलक्षणसम्बन्धः । तथा च दर्शयिष्यति । "मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं. . .विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणमिति" (५ । १५२) ।। २७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । आच्छाद्य** वाससा कन्यां । एतेन यथाशक्त्यलंकरणमुपलक्षितम् । **अर्चयित्वा** वरं मधुपर्केण **स्वयम**र्हयित्वा स्पृहाप्रयुक्तिमात्रेण । **शीलमविपरीतचेष्टा** । आहूय न तु वराभ्यर्थनया ।। २७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । आच्छादनमात्रस्यैवौचित्यप्राप्तत्वात्सविशेषवाससा कन्या **वरा** वाऽऽ**च्छाद्या**लंकारादिना च पूजयित्वा विद्याचारवन्तमप्रार्थकवरमानीय तस्मै **कन्यादानं ब्राह्मो** विवाहो मन्वादिभिरुक्तः ।। २७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । उक्तविवाहानां लक्षणान्याह **आच्छाद्येति** । वासोलङ्काराभ्यां कन्या**माच्छाद्य अर्चयित्वा च** वरमिति ब्राह्मे । धनादिभिरभिसन्धित्वाद्ब्राह्मो **धर्मो** धर्मैकहेतुत्वात् एवमुत्तरत्र ।। २७ ।।

(५) **नन्दनः।** अथ ब्राह्मादीनां लक्षणान्यष्टभिः श्लोकैराह **आच्छाद्येति। आच्छाद्य** कन्यां परिधाप्य भूषणादिभि**श्चार्हयित्वा श्रुतशीलवते** श्रुतं वेदशास्त्रपरिज्ञान-शीलं तदर्थानुष्ठानं तद्वते वराय कन्यापित्रा स्वयमेव **वरमाहूय** तस्मै वराय कन्याया **यद्दानं** स ब्राह्मो धर्मः। धर्मसाधनत्वाद्विवाह एव धर्मशब्देनात्रोच्यते। ब्रह्मशब्दोऽत्र धर्मवर्जनः। धर्मातिशययुक्तत्वाद्ब्राह्मत्वम् ।। २७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** अष्टानां विवाहानां स्वरूपमाह **आच्छाद्येति।** वस्त्रै**राच्छाद्य** परिधाय **अर्हयित्वा** आभरणाद्यलङ्कृतां कृत्वा **श्रुतिशीलवते** वराय **स्वयमाहूय कन्याया** दानं दीयते स **ब्राह्मसंज्ञो** विवाहो **धर्म्यः** प्रकीर्तितः। "ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशति"मिति **याज्ञवल्क्यः।।** उभयतः मातृतः पितृतः ।। २७ ।।

(७) **मणिरामः।** ब्राह्मस्य लक्षणमाह **आच्छाद्येति। आच्छाद्य** वस्त्रेण वरकन्ये **अर्चयित्वा** अलङ्कारादिना स्वयं अप्रार्थकं वरं आनीय तस्मै कन्यादानं ब्राह्मो विवाहः ।। २७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। आच्छाद्य चार्चयित्वेति।** वासोविशेषैः कन्यामाच्छाद्या-लङ्कारादिभि**श्चार्हयित्वा श्रुताचारवन्तं** वरं याच्ञारहितं **स्वयमानीय** यत्तस्मै **कन्यादानं स ब्राह्मो** विवाहो मन्वादिभिः स्मृतः ।। २७ ।।

**यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।।**
**अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ।। २८ ।।**

(१) **मेधातिथिः। वितते** प्रारब्धतन्त्रे ज्योतिष्टोमादौ **यज्ञे** तत्कर्मकारिणे **ऋत्विजे**ऽध्वर्यवे **सुताया** दुहितुर्दानम्। **अलंकृत्ये**त्यनुवादः। कन्यादानस्य सर्वस्यैवं-रूपत्वात्। "आच्छाद्यालंकृतां विवाहयेदिति" सामान्योऽयं विधिः। "ननु गौश्चा-श्वश्चाश्वतरश्चेत्याद्यृत्विग्भ्यो दक्षिणात्वेन श्रुतम्। न क्वचित्कन्यादानं क्रत्वर्थत-या चोदितम्"। किमत्र क्रत्वर्थतया। प्रवृत्ते यज्ञे ऋत्विजे यां ददाति स दैवो विवाहः। अस्ति चोपकारगन्धस्तदीयकरणम्। अकर्मोद्देशेनापि दीयमानं तत्कर्मकरणप्रवृत्तस्य जनयत्येवानुमानविशेषम्। एतावतोपकारसम्बन्धेन ब्राह्माद्दैवो न्यूनः ।। २८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। यज्ञे** यज्ञमध्ये **ऋत्विजे दानं** स्वयज्ञस्य सम्यङ्नि-ष्पत्त्यभिसंधानेन **सुतादान**मुभयस्यापि लक्षणस्य पितापुत्रीमनुक्रमेदित्यादिविधिना ब्राह्म इव दानवाक्यमुच्चार्यम्। एवं "दीक्षितो न ददाती"ति दाननिषेधः, एतदन्यदानविषय इति ग्राह्यम् ।। २८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** ज्योतिष्टोमादि**यज्ञे** प्रारब्धे यथाविध्यृत्विजे कर्मकर्त्रे**ऽलंकृत्य** कन्यादानं **दैवं** विवाहं मुनयो ब्रुवते ।। २८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **वितते** कर्तव्यतया प्रारब्धे। **अलङ्कृत्ये**त्यनुवादः। अलङ्कृतां विवाहयेदिति सामान्योक्तेः। **दैवं** देवकर्मसंबन्धित्वात् देवोद्देश्यत्वाद्वा ॥२८॥

(५) **नन्दनः**। **सुतामलंकृत्य** यद्दानं तद्दैवं **धर्मं** विदुः। देवकार्याधिकृताय दानात्तस्य दैवत्वम् ॥ २८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वितते** विस्तीर्णे **यज्ञे ऋत्विजे सम्यक्कर्म कुर्वते अलङ्कृत्य सुतादानं** कन्यादानं क्रियते तं दैवं दैवसंज्ञं विवाहं **धर्म्यं** प्रचक्षते ॥ २८ ॥

(७) **मणिरामः**। दैवमाह **यज्ञे** त्विति। **वितते** प्रारब्धे **सम्यक्** यथाविधि ॥ २८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यज्ञ इति**। ज्योतिष्टोमादियागे प्रारब्धे अर्थवदृत्विजे प्रचरति यदलङ्कृत्य कन्यादानं क्रियते तं दैवं विवाहं मन्वादय **आचक्षते** ॥ २८ ॥

**एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ॥**
**कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ २९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्त्रीगवी पुङ्गवश्च **मिथुनम्। एकं द्वे वा** वराद्गृहीत्वा कन्याया दानमार्षो **धर्मः**।

**धर्मत** इति। **धर्म** एवायं, नात्र विक्रयबुद्धिः कर्तव्या, उच्चनीचपणापाकरणाभावादित्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **गोमिथु**नं स्त्रीपुंसौ **द्वे** वा मिथुने **धर्मत आदाय**। **आर्षो**ऽयं **धर्म** इति बुद्ध्या न तु लोभेनादानं वेतनकल्पार्थमेव नतु स्वार्थं। तच्च कुलधर्मबुद्ध्यैव विधिवदिति वाक्यमुच्चार्येत्यर्थः। अलंकरणं तु कन्याया नात्रास्ति तत्र विशेषविधेरेव लाभात् ॥ २९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्त्रीगवी पुंगौश्च **गोमिथुनं** तदेकं **द्वे वा वराद्धर्मतो** धर्मार्थं यागादिसिद्धये कन्यायै वा दातुं न तु शुल्कबुद्ध्या गृहीत्वा यद्यथाशास्त्रं **कन्यादानं** स **आर्षो** विवाहो विधीयते ॥ २९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। आर्षं लक्षयति **एकमिति**। गोयुगं स्त्रीपुंसौ **मिथुनं द्वे** इति स्त्रीपुंगोचतुष्टयं **वराद्व**रगृहादादाय कन्यायाः सौन्दर्यादिगुणदोषानपेक्ष्य नियतपणत्वेन गृहीत्वा। पूर्वमृषिभिराचरितत्वा**दार्षम्**। ऋष गताविति धातोरेवंगतागतिकत्वाद्वा। **धर्म** एवायं नात्र व्यतिक्रम (विक्रय) इति **मेधो**क्तेः। 'तत्राल्पं वा बहु वेति विक्रयस्तावदेव त्वि'ति मनूक्तेः ॥ २९ ॥

(५) **नन्दनः**। **धर्मत आदाय** धर्मार्थमादाय नार्थार्थं **यत्कन्याप्रदानमार्षो धर्मः** विक्रयदोषभयादृषिभिरनुक्तवेतनैरेव विद्या दीयते शुश्रूषादिकं शिष्यात् किञ्चिदादीयते च। आर्षेऽपि कन्या दीयते। वरात्किञ्चिदादीयते च। तेन दानादानसामान्येनास्यार्षत्वम् ॥ २९ ॥

(६) **रामचन्द्रः । वरादेकं गोमिथुनमादाय** स्वीकृत्य **द्वे वा** गृहीत्वा । **धर्मतः** धर्मार्थं यागादिसिद्ध्यर्थं **विधिवत्कन्याप्रदानं** क्रियते स **आर्षसंज्ञः धर्म्यो** धर्मार्हो विवाह उच्यते । "आदायार्षस्तु गोद्वय" मिति **याज्ञवल्क्यः** (विवाह० ५९) ।। २९ ।।

(७) **मणिरामः** । आर्षमाह् एकमिति । **गोमिथुनं** गोवृषश्चेति मिथुनं **धर्मतः** धर्मार्थम् । यागादिसिद्धये कन्यायैव वा दातुम् ।। २९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । एकमिति** । गोबलीवर्दमेकं **द्वे** वा **वरात् धर्मतः** यागाद्यावश्यककर्तव्यधर्मनिमित्तं गृहीत्वा **यत् कन्याया** यथाशास्त्रं **प्रदानं** विधीयते **स आर्षो** विवाह **उच्यते** ।। २९ ।।

**सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।।**
**कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ।। ३० ।।**

(१) **मेधातिथिः । 'सह** धर्मो युवाभ्यां कर्तव्य' इति वचनेन परिभाषां कृत्वा नियम्य यद्दानं स प्राजापत्यः । धर्मग्रहणमुपलक्षणार्थम् । धर्मे चार्थे च कामे च तुल्ययोगक्षेमतोति मिथोऽस्य परिभाषावचनस्यार्थः । धर्मशब्द एवोच्चार्यते—'सह धर्मश्चर्यतामिति', न तु 'धर्मार्थकामाः सहेति' । स तु धर्मशब्दः स्मृत्यन्तरवशादर्थकामयोरुपलक्षणार्थो व्याख्यातः । 'यद्येनां नातिचरसि धर्मार्थकामेषु तदा तुभ्यमियं दीयते' इति कृतसंवित्कायाभ्युपगततदर्थाय विवाहकाले यद्दानं तत्रैवं समुच्चारयितव्यं **'सह धर्मं चरतामिति'** । अर्थकामयोरभिप्रेतेऽपि सहत्वे तदप्रकृतत्वादनुच्चारणम् । तथा च **गौतमः** (अ० ४ सू० ७) प्राजापत्ये "सह धर्मं चरतामिति" मन्त्रः । मन्त्रग्रहणेन चैतद्दर्शयत्यधिकृतरूपमेव प्रयोक्तव्यं, मन्त्रवत । न हि महासत्त्वानामर्थकामविषये संहितत्वं परिभाषितुं युक्तम्—गम्यते तु स्मृत्यन्तरेभ्यः । अनयैव संविदा दोषेणास्य न्यूनता । अस्ति ह्यत्र दातुर्वरादुपकारलिप्सा ।

स्वशब्देनैतद्वचनं वाच्यते, न पुनरयं दातुरेव वचननियमः । **अनुभाष्येत्यनेनैव** सिद्धत्वाद्वाचेत्यनर्थकं स्यात् । अनुभाषणे वागिन्द्रियस्य साधनत्वात् । तथा च **गृह्यकारः "एतद्वः** सत्यमित्युक्त्वा वरं वाचयेदेतन्नः सत्यमिति" । अनुशब्दश्च प्राप्तार्थस्यैव वाचा निश्चयमाह ।। ३० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । उभावेव** न तु भार्यान्तरेणापि सहेति । **अनुभाष्य** नियम्य । **अभ्यर्च्य** मधुपर्केण । एतैश्चैतादृक्परिभाषणेन दृष्टस्वार्थाभिसंधिनिमित्ततया कन्यालंकाररहिततया च ब्राह्मदैवाभ्यां हीनमार्षाच्चोत्कृष्टमत्रार्थग्रहणाभावात्कन्यानुकंपामात्रकत्वाच्च परिभाषणस्य । अत एव आर्षोढाजः सुत इति फलेऽप्याधिक्यं वक्ष्यते । दैवे तु यद्यपि यज्ञसिद्ध्यभिसन्धिरस्त्येव । तथापि धर्मसिद्ध्यर्थं प्रवृत्तस्यास्य धर्महेतुतया आर्षप्राजापत्याभ्यामुत्तमत्वम् । प्राजापत्ये कन्यासुखाभिसंधिना परिणयनान्तरनिषेधे तात्पर्यादभिसंधैर्धर्मार्थतैवेति ।। ३० ।।

(३) **कुल्लूकः**। **सह** युवां **धर्मं कुरुतमिति** सुताप्रदानकाले **वचसा**। पूर्वं नियम्या**र्चयित्वा यत्कन्यादानं** स **प्राजापत्यो** विवाहः **स्मृतः** ।। ३० ।।

(४) **राघवानन्दः**। प्रदानकाले वचसा **धर्मं चरतामिति** पूर्वं नियम्य **अभ्यर्च्य** सत्कृत्य, गन्धादिना कन्यावराविति शेषः। वस्त्रादेरनावश्यकत्वाद्ब्राह्मादेर्भेदः। प्रजामात्रोद्देश्यत्वात् प्रजापतिदैवत्याद्वा **प्राजापत्यः** ।। ३० ।।

(५) **नन्दनः**। **उभौ** युवा **सह धर्मं चरतं**, न पृथगिति **वाचाऽनुभाष्य** अहं गृहस्थाश्रमस्थ एव धर्मं चरिष्यामि। नान्याश्रमस्थ इति वरं प्रतिश्राव्येत्यर्थः। यदि न्यूनता दक्ष्यमाणा नोपपद्येत। अभ्यर्च्य, वरमिति शेषः। **यत्कन्याप्रदानं**। स **प्राजापत्यो विधिः** विधीयत इति विधिः **विवाह** उच्यते। गार्हस्थ्यप्राधान्यनिबन्धनं प्राजापत्यत्वं गार्हस्थ्यप्रधानो हि प्रजापतिः ।। ३० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **उभौ** स्त्रीपुरुषौ **सह धर्मं चरतं** इति **वाचा**। **अनुभाष्योक्त्वा अभ्यर्च्यालङ्कृत्य कन्याप्रदानं** क्रियते। **प्राजापत्यविधिः स्मृतः** (स) प्राजापत्यसंज्ञः विवाह उक्तः ।। ३० ।।

(७) **मणिरामः**। प्राजापत्यमाह **सहोभाविति**। **अनुभाष्य** वरं प्रार्थयित्वा ।। ३० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सहेति**। सह युवां **धर्मं** कुरुतं इति प्रदानकाले **वाचोक्त्वा** यदर्चापूर्वं **कन्यादानं स प्राजापत्यो विधिः स्मृतः** ।। ३० ।।

**ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।।**
**कन्याऽऽप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ।। ३१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **ज्ञातिभ्यः** कन्याया एव पित्रादिभ्यः **कन्यायै च** स्त्रीधनं **दत्त्वा कन्याया आप्रदानम्** आनयन**मासुरो** विवाहः। **स्वाच्छंद्यात्** स्वेच्छातः, न शास्त्रत इत्यार्षाद्भेदमाह। तत्र हि शास्त्रं नियामकमस्ति 'एकं गोमिथुनमिति'। इह तु कन्याया रूपसौभाग्यादिगुणापेक्षं छन्दः ।। ३१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शक्तितः** न तु एकगोमिथुनादिनियतं द्रविणम्। **कन्याया आप्रदानं** आदानं **स्वाच्छन्द्यान्न**त्वार्षवद्वाक्यादिना विधितः। अत्र **ज्ञातिभ्य** इति वचनात् माता पित्रन्यज्ञातिभ्योऽर्थदाने नासुरत्वम्। तथा **कन्यायै चैवेति** समुच्चितं व्युच्चितं वा ग्राह्यं तदर्थमेवैवकारः। तेन कन्याया एव च यद्दत्वा परिणयनं सोऽप्यासुर इत्यर्थः ।। ३१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। कन्याया **ज्ञातिभ्यः** पित्रादिभ्यः **कन्यायै** यद्यथाशक्ति धनं **दत्त्वा कन्याया आप्रदानमादानं** स्वीकारः **स्वाच्छन्द्यात्स्वेच्छया** न त्वार्ष इव शास्त्रीयधनजातिपरिमाणनियमेन **स आसुरो** विवाह उच्यते ।। ३१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। आसुरं लक्षयति **ज्ञातिभ्य इति**। **ज्ञातिभ्यः** कन्यायाः पित्रादिभ्यः **द्रविणं** धनं। पणसङ्ख्यानियमं व्यवच्छिनत्ति **शक्तित** इति। **कन्याप्रदानं** तत्स्वीकारः

**स्वाच्छन्द्यात्** स्वेषामिच्छया। असुः प्राणस्तं राति रमयति वा **असुरं** धनं व्ययितव्यत्वेन यस्यास्तीत्यासुरः। **धर्म**शब्दोऽत्र विरोधिलक्षणया ॥३१॥

(५) **नन्दनः।** कन्याया **ज्ञातिभ्यः स्वशक्तितो**ऽभ्यर्थितवते वराय **स्वाच्छन्द्या**ल्लोकशास्त्रमर्यादातिलङ्घनेन **कन्याप्रदानं स आसुरो**ऽधर्म्यः। परवित्तापहारस्वाच्छन्द्य निबन्धनमासुरत्वम्। असुरा हि स्वाच्छन्द्येन परवित्तमपहरन्ति ॥३१॥

(६) **रामचन्द्रः।** **द्रविणं** द्रव्यं **ज्ञातिभ्यो दत्वा कन्यायै वा** दत्वा **शक्तितः।** एतादृशः कन्याया **प्रदानं स्वच्छन्दा**त्स्वेच्छातः आसुरसंज्ञो विवाहः अधर्म उच्यते। 'आसुरो द्रविणादाना'दिति (आचार० ६१) **याज्ञवल्क्यः** ॥३१॥

(७) **मणिरामः।** आसुरमाह **ज्ञातिभ्य इति। ज्ञातिभ्यः** कन्याया ज्ञातिभ्यः। पित्रादिभ्यः **कन्यायै** च यथाशक्ति धनं **स्वाच्छन्द्यात्** स्वेच्छया न त्वार्षगोमिथुनरूपं दत्वा **कन्याप्रदानं** कन्यायाः आप्रदानं स्वीकारः स **आसुरः** ॥३१॥

(८) **गोविन्दराजः। ज्ञातिभ्य इति। कन्यायै** कन्या**ज्ञातिभ्यः** यथाशक्ति धनं **दत्वा** यत् **कन्यायाश्चाप्रदानं** आदानं स्वीकारं स्वेच्छातो नार्षवद्धनजातिपरिमाणानियमेन **आसुरो** विवाह उच्यते ॥३१॥

**इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।**
**गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ ३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः। इच्छया** च वरस्य कुमार्याश्च प्रीत्या परस्परसंयोग एकप्रदेशे संगमनम्। तस्येयं निन्दा **मैथुन्यः कामसम्भवः।** मिथुनप्रयोजनो 'मैथुनः', तस्मै हितो **मैथुन्यः।** एष एवार्थो विस्पष्टीकृतः **कामसम्भव इति।** सम्भवत्यस्मादिति सम्भवः, कामः सम्भवोऽस्येति ॥३२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। मैथुन्यो** मैथुनमात्रोद्देशप्रवृत्तः प्रथमं यतः **कामसंभवः** पश्चात्तु होमादिना भार्यात्वसिद्धौ धर्मार्थितापि तस्य भवति। तथाहि–सर्वेष्वेव द्विजातिविवाहेषु होमादिनैव भार्यात्वसिद्धिः। यद्वक्ष्यति (८।२२७) 'पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दाररक्षणम्। तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पद' इति। तथाच **देवलः** 'गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः। कर्तव्यस्तु त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिक' इति। तथा शौनकपरशिष्टे विशेषोऽप्युक्तः। 'गान्धर्वासुरपैशाचा विवाहो राक्षसश्च यः। पूर्वं परिणयस्तेषां पश्चाद्धोमो विधीयत' इति॥ ३२ ॥

(३) **कुल्लूकः। कन्याया वरस्य** चान्योन्यानुरागेण यः परस्पर**संयोग** आलिङ्गनादिरूपः **स गान्धर्वो** ज्ञातव्यः। संभवत्यस्मादिति संभवः। यस्मात्कन्यावरयोरभिलाषादसौ संभवत्यत एव **मैथुन्यो** मैथुनाय हितः। सर्वविवाहानामेव मैथुन्यत्वेन यदस्य मैथुन्यत्वाभिधानं तत्सत्यपि मैथुने न विरोध इति प्रदर्शनार्थम्॥ ३२ ॥

(४) **राघवानन्दः।** गान्धर्वं लक्षयति **मैथुन्यो** मिथुनाय हितः। कामसम्भवः तयोः काम इच्छा तत **एव** भवति। नान्तरीयिका पुत्रोत्पत्तिः **गान्धर्वः** गन्धर्वैरा-चरितत्वात् ।। ३२ ।।

(५) **नन्दनः।** मिथुने साधुर्हितो **वा मैथुन्यः** मैथुनपर्यन्त इत्यर्थः। **कामसंभवः** भोगसंभवः नार्थलोभादिसंभवः। कन्याया वरस्य **चेच्छयान्योन्यसंयोगः स गान्धर्वो** विधिः गान्धर्वत्वमस्य विधेः। कामपरत्वनिबन्धनं, गंधर्वा हि कामपराः। "स्त्रीकामा वै गन्धर्वा" इति श्रुतेः। स्मरति च इति भगवान् **वाल्मीकिः** 'तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वा' इति ।। ३२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। कन्याया वरस्य** च द्वयो**रिच्छया अन्योन्यसंयोगः** संभोगः भवेत्स विवाहो **गान्धर्व**संज्ञो **विज्ञेयः। मैथुन्यो** मैथुनार्हः **कामसंभवः** अन्योन्यं कामात्संभवो यस्य सः गान्धर्वः, 'समयान्मिथ' इति (याज्ञ० विवाह० ६१) **योगी** ।। ३२ ।।

(७) **मणिरामः।** गान्धर्वमाह **इच्छेति। इच्छया** परस्परानुरागेण। **अन्योन्य-संयोगः** आलिङ्गनादिरूपः। कामात् संभवतीति **कामसंभवः।** सर्वेषामेव विवाहानां मैथुन्यत्वेन यदत्र पृथक् मैथुन्यत्वाभिधानं तत् मैथुने जातेऽपि न दोष इति प्रदर्शनार्थम् ।। ३२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। इच्छयेति।** कन्यावरयोः परस्परानुरागात् यः संयोगः मैथुनाचरणं स मैथुनाय हितः कामनिमित्तको गान्धर्वो विवाहो बोद्धव्यः। इह गान्धर्वादौ मुख्यमेवोपगमनम्। तुशब्दस्तथा प्रतीते। न च "पाणिग्रहणका मन्त्राः कन्यात्वे च प्रतिष्ठिताः" इति वचनात् संस्कारपरिलोपः। "या गर्भिणी संस्क्रियते" "वोढुः कन्या-समुद्भवः" "अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूसंस्कृता पुनः" इत्यादि मनुयाज्ञवल्क्योक्तसहोढ-कानीनपौनर्भवकक्षणेषु संस्कारदर्शनात्। गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः। "कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः" इति च **देवल**स्मरणात्। तथा "गान्ध र्वासुरपैशाचा विवाहा राक्षसाश्च याः (ये)। पूर्वं परिणयस्तेषां पश्चाद्धोमो विधीयते।" इति **बह्वृचगृह्य**परिशिष्टदर्शनात्। भारतादौ च मुख्योपगमनवत्। एवं च 'पाणि-ग्रहणका मन्त्राः' इत्यादि नरान्तरोपभुक्तकन्याविषयेऽवतिष्ठते। "पुनर्वैवाहिको विधिः कर्तव्य" इत्यादिवचनात् गमनोत्तरकालमकृतसंस्कारादिजातीनां भार्या न भवति, शूद्रस्य भवत्येव, "त्रिभिर्वर्णैः": इत्युपादानात् तथाविधस्य पुत्रस्य रिक्थभाग् (भाक्त्वद)-दर्शनात् ।। ३२ ।।

**हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।।**
**प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ।। ३३ ।।**

(१) **मेधातिथिः। प्रसह्या**भिभूय कन्यापक्षाद्बलात्कारेण **कन्याया हरणं राक्षसो** विवाह इत्येतावदत्र विवक्षितम्। **हत्वे**त्याद्यनुवादः। **प्रसह्या**पजिहीर्षतो यदि कश्चि-त्प्रतिबन्धो वर्तते तदा प्राप्तमेव हननादि। हन्तुः शक्त्यतिशयं ज्ञात्वा स्वात्मभयादु-पेक्षेरंस्तदा भवत्येव राक्षसो न वधाद्यवश्यं कर्तव्यम्।

**हत्वा** दण्डकाष्ठादिना ताडयित्वा। **छित्त्वा** खड्गादिप्रहारेणाङ्गानि खण्डशः कृत्वा। **भित्त्वा** प्राकारदुर्गादि। **क्रोशन्तीं रुदतीं** कन्यामनिच्छा(च्छन्ती)म्। अयं गान्धर्वाद्विशेषः। 'अनाथाऽपह्रिये परित्रायध्वम्' इत्याद्युच्चैः शब्दकरणं 'क्रोशनम्'। रोदनमश्रुकणमोक्षः। उद्विजितायाः स्त्रिया धर्मोऽयम् ॥ ३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **हत्वा** विरोधिनः। **छित्त्वा** तेषां बाहुपदादि। **भित्त्वा** प्राकारादि। एतत् कन्याबन्धुविरोधस्योपलक्षणम्। **क्रोशन्तीं** रुदन्तीमिति कन्यानिच्छोपलक्षणम्। **गृहा**दिति प्रायिकं। **प्रसह्य** बलादिति। चौरिकानयनव्युदासः। चौरिकायां तु वधादिकरणेऽपि पैशाचत्वम् ॥ ३३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **प्रसह्य** बलात्कारेण **कन्याया हरणं राक्षसो** विवाह इत्येव लक्षणम्। यदा तु हर्तुः शक्त्यतिशयं ज्ञात्वा पित्रादिभिरुपेक्ष्यते तदा नावश्यकं हननादि। यदि कन्यापक्षः प्रतिपक्षतां याति तदा हननादिकमपि कर्तव्यमित्यर्थः प्राप्तमनूद्यते। कन्यापक्षान्विनाश्य तेषामङ्गच्छेदं कृत्वा प्राकारादीन्**भित्त्वा** "हा पितर्भ्रातरनाथाहं ह्रिय" इति वदन्तीमश्रूणि मुञ्चन्तीं यत्कन्यां गृहादपहरत्यनेन कन्याया अनिच्छोक्ता, गान्धर्वाद्विवेकार्थम् ॥ ३३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** राक्षसमाह **हत्वेति।** **प्रसह्य** बलात्कारेण **कन्याहरणं राक्षसः।** रक्षसामयं स्वभावो विधिः प्रकारो वा। हत्वेत्याद्युपलक्षणं, तदभावे बलाद्धरणेऽपि स्यात्। तत्र **हत्वेति** दण्डपातेन। **छित्त्वेति** खड्गेन। **भित्त्वेति** शरेण ॥ ३३ ॥

(५) **नन्दनः।** विवाहनिरोधकान्हत्वा **च्छित्त्वा भित्त्वा च कन्यां प्रसह्य** परिभूय **यद्धरणं स राक्षसो विधिः।** हिंसाप्राधान्यात् राक्षसत्वं, हिंसाप्रधाना हि राक्षसाः ॥ ३३ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **हत्वा** ज्ञातिप्रतिबन्धकान्। **छित्त्वा** कपाटादीन्। **भित्त्वा** गृहादीनि। **क्रोशन्तीं रुदतीं।** गृहात्**प्रसह्य कन्याहरणं** क्रियते यत्र तत्र **राक्षसो विधि**रुच्यते राक्षससंज्ञो विवाह उच्यते। "राक्षसो युद्धहरणादिति" (विवाह० ६१) **योगीश्वरः** ॥ ३३ ॥

(७) **मणिरामः।** राक्षसमाह **हत्वेति।** **भित्त्वा** प्राकारादीन् हननादिकं नावश्यकं किन्तु यदि कन्यापक्षीयाः प्रतिबन्धं कुर्वन्ति तदा हननादि कर्तव्यम्। लक्षणं तु **प्रसह्य** बलात्कारेण गृहात् कन्यापितुः कन्याहरणमित्येव। आक्रोशन्तीम् 'हा पितः हा भ्रातः अनाथाहं ह्रिये इति' वदन्तीम्। गृहादिति स्वयंवरादीनामुपलक्षकम् ॥ ३३ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **हत्वेति।** **हत्वा** कन्यापक्षीयान् प्रमाथ्य **छित्त्वा** अप्रमाथ्य अङ्गच्छेदादीन्कृत्वा **भित्त्वा** प्राकारादीन् "हा मातः हा पितः अनाथा अपह्रिये" इत्येवमाह्वयन्तीं अश्रुजलाविलनयनां यः कन्यां **गृहादाहरति तदपि** भूयः **कन्याहरणं राक्षसो** विवाहः ॥ ३३ ॥

**सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वो रहो यत्रोपगच्छति ॥**
**स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽधमः ॥ ३४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** राक्षसपैशाचयोरनिच्छा तुल्या। राक्षसे हननं, पैशाचे वञ्चनम्। **सुप्तां** निद्रयाऽभिभूताम्। **मत्तां** क्षीबां मद्यपरवशाम्। **प्रमत्तां** वातसंक्षोभेण नष्टचेतनाम्, **रहो**ऽप्रकाशमु**पगच्छति** मैथुनधर्मे प्रवर्तते स **पैशाचो विवाहः सर्वविवाहानां पापिष्ठः** पापहेतुः। धर्मापत्यं न तत. संपद्यते। इह गान्धर्वराक्षसपैशाचानां प्रकृतविवाहसाभानाधिकरण्यात्संयोगहरणोपगमा एव पाणिग्रहणसंस्कारनिरपेक्षा 'विवाहा' इति मन्यन्ते। तेषां ब्राह्मादिष्वपि दानविवाहयोः सामानाधिकरण्यात्संस्कारो विनिवर्तते। यथा च न निवर्तते तथा दर्शितम्। लक्षणया विवाहप्रयोजनदाने विवाहशब्दः। गान्धर्वे तु भगवता कृष्णद्वैपायनेन दुष्यन्तशकुन्तलासङ्गमने वर्णितम् "अनग्निकममन्त्रकम्" इति, तद्दर्शनेन पाणिग्रहणसंस्कारोऽस्ति, मन्त्रादिवर्जितस्तु।

पैशाचे पुनर्विवदन्ते—"मुख्यं चोपगमनम्। न च कन्यात्वमपैति, संस्कारैस्तद्विनिवर्तनात्। अतश्च 'पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः' (अ. ८ श्लो० २२६) इति प्रतिषेधस्याप्रवृत्तेरस्त्येव मन्त्रवत्संस्कारसम्बन्धः। स च प्रतिषेधः कृतः संस्कारप्रतिषेधार्थः। सा हि मन्त्रैः संस्कृतत्वाद्व्यपगतकन्याभावा। अत एव भवतु प्रथममुपगमस्ततोऽकन्यादोषो नास्ति। तथा च कानीनः कर्ण इति दर्शनम्। यदि तु पुरुषप्रयोगेण कन्यात्वमपेयात्कथमियं वाचोयुक्तिः 'कन्यायाः पुत्रः कानीन' इति ?। अथ त्वसंस्कृता कन्योच्यते, ततो युक्तम् 'कर्णादयो ह्यनूढायाः पुत्रा' इति। मुख्येऽभ्युपगमने कन्याया अपत्योत्पत्तेः सम्भवः। वर्ण्यते चेतिहासादिषु तथाभूताया विवाहः। 'अथ मद्यमदादिना निर्वृत्ते रतिसम्बन्धे किमर्थः संस्कारः? इति।' अत्रोच्यते—यद्यपि स्त्रीपुंसधर्मो निवृत्तोऽतिक्रान्तश्च कन्यागमनप्रतिषेधस्तथापि तया सहाधिकारार्थं पुनश्च गमने कन्यागमनं मा भूदिति तदर्थं संस्कारकरणम्। कन्यागमनप्रतिषेधातिक्रमसम्बन्धेन पुरुषार्थतयाऽपि निन्द्यते विवाहोऽयम्।"

तदयुक्तम्। यतोऽयं लोके कन्याशब्दः पुंसाऽसंप्रयुक्तां स्त्रियमाचष्टे, न संस्कारभावसापेक्षाम्। अकृतसंस्कारा अपि पुरुषैः क्षतयोनयो न 'कन्या' इति व्यवह्रियन्ते। तासां च वेशश्रितानां गमने न कन्यागमनदोषः। यद्यपि कुमारीकन्याशब्दौ प्रथमवयोवचनाविष्येते तथापि विवाहविधावनुपभुक्तपूर्वामेव स्त्रियमाचक्षाते। तथा च कुमारवेशधारिणीं नातिप्रकाशप्रवृत्तपुंसंप्रयोगां भार्यात्वेनार्थ्यमानोऽन्यैरवबोध्यते—'नैषा कुमारी नष्टोऽस्याः कौमारो भावः'। संस्कारपरिलोपश्च स्यात्। गर्भाधानं हि मन्त्रवत्कर्तव्यं "विष्णुर्योनिं कल्पयतु" (ऋग्वेद १०।१८४।१) इति क्लृप्तायाश्च कल्पनमशक्यम्। तत्रायथार्थो मन्त्रप्रयोगः स्यात्। न चानूढायाः पैशाचधर्मे मन्त्रप्रयोगः, ऊढायास्तच्छ्रवणात्। न च पैशाचवर्जमन्येषु विवाहेषु तत्कल्पयितुं युक्तमविशेषश्रवणात्।

तस्मान्मुख्योपगमपक्ष एवमादयो बहवो दोषाः प्राप्नुवन्ति। अत आलिङ्गनोपगूहनपरिचुम्बनादिषूपगमनार्थेषु व्यापारेषु साहचर्यात्तादर्थ्याच्चोपपूर्वो गमिर्द्रष्टव्यः। यत्तु

"कानीनः पुत्र" इति मुख्यार्थासम्भवाल्लक्षणया संस्काराभावप्रतिपत्तिः। यत्तु संस्कारदर्शनं तत्तु क्वचिदेव। यद्यपि "या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती" ति (मनु. ९।१७३) तत्र य एवोपगन्ता स एव न संस्कर्ता। न त्वसौ पैशाचो विवाहः। पैशाचे हि येनैव समुपभुक्ता तस्मा एव दीयते, स एवैनां संस्करोतीति। गर्भिण्यास्तु संस्कारो वाचनिकः। एतच्च सर्वं निपुणतरं पुनर्नवमे वक्ष्यते।

अपरे मन्यन्ते। "सत्यं मुख्यमुपगमनमुख्यत्वे तु गमनप्रतिषेधानुपपत्तिरिति।" यदि हि मुख्यमुपगमस्तदा स एव विवाहोऽन्यस्यानन्तरोक्तेन न्यायेनाभावात्। ततश्च नास्ति तस्य प्रतिषेधस्य विषयो, यतः इच्छया गान्धर्वो हठाद्राक्षसोऽन्यथा पैशाचः। न चान्यः प्रकारोऽस्ति, येन स विषयः प्रतिषेधस्य स्यात्। अस्ति त्वस्य विषयः—यत्र हठाद्रहसि गमनं, या वा पितृभ्यां दीयते न चोपसंस्क्रियते। न चासौ गान्धर्वः, कन्येच्छाया अभावात्। अत एव भर्तुरपि न कन्यागामित्वं, विषयान्तरस्य संभवात्।

तस्मात्क्षतयोन्याः संस्कारनिषेधाद्ब्राह्मादिवदुपायत्वात्तद्वच्च विवाहशब्दोपपत्तेः प्रकरणसामर्थ्याद्गौण एवोपगमार्थः।

एषां च भेदः। अप्रार्थितोपनतो भूमिहिरण्यादिवद्ब्राह्मः। ऋत्विक्त्वेन विशेषेण दैवः। गोमिथुनेनार्षः। याच्ञयाऽयाच्ञया वा 'सहोभौ चरतां धर्म'मिति वचनव्यवस्थया प्राजापत्यः। शेषाः सुबोधभेदाः।

ब्राह्मादीनामिदमर्थे तद्धितः। ब्रह्मादिसम्बन्धिता च स्तुत्याऽऽरोप्यते। एवं सर्वेषु पैशाचः, 'पिशाचानामयं युक्त' इति निन्दा।। ३४।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सुप्तामि**त्यादि। कन्यानिच्छोपलक्षणम्। **मत्तां** मद्येन। **प्रमत्तां** अन्यचित्तां क्रीडादिना। **उपगच्छति** नयति वा **प्रथितः पापिष्ठः** पापिष्ठतया प्रसिद्धः। अत्र च पुत्रिकाविधिविवाहो नवमोऽन्य एव, एष्वनन्तभावात्। अत्र तु तदपरिगणनं तत्संवोढुः प्रयोजनाभावात्, एकापत्यादौ नियमेन तु दाने द्वितीयाद्यपत्यं वोढुरेव भवति। तदा च तस्य धर्माभिसन्धिकृतत्वसाम्यादार्षत्वमेवेति।। ३४।।

(३) **कुल्लूकः।** निद्राभिभूतां मद्यमदविह्वलां शीलसंरक्षणेन रहितां विजनदेशे **यत्र** विवाहे मैथुनधर्मेण प्रवर्तते **स पापहेतुर्विवाहानां** मध्येऽधमः **पैशाचः** ख्यातः।।३४।।

(४) **राघवानन्दः।** पैशाचमाह **सुप्तामिति। मत्तां** मद्यमदविह्वलाम्। **प्रमत्तां** शीलरक्षणे अनवहिताम्। मात्राद्यशिक्षितत्वेन। **रहसि** विजने देश **उपगच्छति** मैथुनमाचरति **स पापिष्ठः।** पापहेतुत्वात्तद्विवाहस्य **पैशाचः** पिशाचः प्रेतस्तदाचरितत्वात्।। ३४।।

(५) **नन्दनः। सुप्तां** कन्याम्। **यत्र** यदिति यावत्। **स पैशाचो विवाहः।** सुप्तमत्तप्रमत्तकन्याभोगिनिबन्धनं पिशाचत्वम्। पिशाचा हि सुप्तमत्तप्रमत्तानाविशन्ति।। ३४।।

(६) **रामचन्द्रः**। पैशाचविवाहमाह **सुप्तामिति। यत्र रहः** यस्मिन् रहसि एकान्तस्थाने **मत्तां** मद्यादिना **प्रमत्तां** वा अनवहितां **सुप्तां** कन्या**मुपगच्छति** भोगेन प्राप्नोति। विवाहानां मध्ये **स पैशाचो विवाहः। पापिष्ठः** पापजनकः **प्रथितः** प्रसिद्धः अष्टमः। **पैशाचः** 'कन्यकाच्छलादि'ति (विवाह. ६१) **योगीश्वरः**।। ३४।।

(७) **मणिरामः**। पैशाचमाह **सुप्तामिति। मत्तां** मद्यादिना विह्वलाम्। **प्रमत्तां** शीलरक्षणेऽसावधानां, **रहः** एकान्ते। **यत्र** विवाहे **उपगच्छति** मैथुनधर्मेण प्रवर्तते **स पैशाचः**।। ३४।।

(८) **गोविन्दराजः। सुप्तामिति। सुप्तां** निद्रोपेतां **क्षीबां** शीलरक्षणानिबर्हणां निर्जने प्रदेशे यस्मिन् विवाहे **उपगच्छति** स पापहेतुः **विवाहानां** मध्ये **पैशाचो**ऽष्टमः ख्यातः।। ३४।।

**अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते ।।**
**इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ।। ३५ ।।**

(१) **मेधातिथिः। द्विजाग्र्याणां** ब्राह्मणानां **कन्यादानं** कन्यां ददता**मद्भिरेव दानं** शस्यते। ब्राह्मणाय यदा कन्यां ददाति तदाद्भिरेव दद्यात्। "कथं पुनरापोदानकरणम्?। न हि ताभिर्विना दानमस्ति "अद्भिर्वाच्यं नमःपूर्वं भिक्षादानं ददाति वै। एवं धर्मेष्विति" नियमात्।

अथवा अद्भिरेवेत्यवधारणेनार्षासुरप्राजापत्यानपवदति। तत्र हि न केवला आपः करणं, गोमिथुनादिद्रव्यग्रहणमपि संविद्व्यवस्था च। तेनैतदुक्तं भवति–यथा गोहिरण्यादि द्रव्यं दीयते, न किंचित्परिभाष्यते–इयं गौस्त्वयैवं संवाहनीयेदृशानि तृणान्यपि देयानि', एवं कन्यापि देया, न दुहितृस्नेहेन जामाता परिभाषणं कारयितव्यः। न च तस्माद्धनं ग्रहीतव्यमिति। क्षत्रियादीनां **तु** इतरेतरकाम्यया परस्परेच्छया यदि कन्यावरयोः परस्परमभिलाषो भवति तदा दानं कर्तव्यं, नेतरथा ब्राह्मविवाहवत्। अन्ये तु व्याचक्षते–धनं वा गृहीत्वाऽद्भिरेव वेत्येष इतरेतरकाम्यार्थः। अस्मिन्पक्षे ब्राह्मस्य सर्वविषयता ज्ञापिता भवति।। ३५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। 'प्रदानं स्वाम्यकारक'मिति वचनात् क्षत्रियादिभ्योऽपि दानप्रसक्तौ विशेषमाह **अद्भिरेवेति। अद्भिर्यत्कन्यादानं** तत् **द्विजाग्र्याणां** विप्राणामेव, तेषामेव प्रतिग्रहसंभवात् **इतरेषां** त्वप्रतिग्राहकत्वात्। कन्याज्ञातिभिः कन्यया वा सहान्योन्येच्छामात्रेण विनापि दानाद्विवाहसिद्धिरित्यर्थः। **काम्या** कामना। एतच्च लक्षणं यथोक्तविध्यर्थनिष्पत्तिमात्रेणेति तु ग्राह्यम्। राक्षसेऽन्योन्येच्छाभावात्।। ३५।।

(३) **कुल्लूकः**। उदकदानपूर्वकमेव ब्राह्मणानां **कन्यादानं** प्रशस्तं, क्षत्रियादीनां पुनर्विनाप्युदकं परस्परेच्छया वाङ्मात्रेणापि कन्यादानं भवति। उदकपूर्वकमपीत्यनियमः।। २५।।

(४) **राघवानन्दः** । संप्रति तत्तद्दानप्रकारमाह **अद्भिरिति** । **अद्भिरेवे**त्यवधारणं नार्घादिव्यावृत्त्यर्थं । न तत्र केवलमापः गवादेरपि प्रवेशात् । विनाप्युदकं वाङ्मात्रेणापि ।। ३५ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ कन्याप्रदानमाह **अद्भिरिति** । **इतरेतरकाम्यया** परस्परेच्छया । गान्धर्वादिषु नायं विधिः प्रदानाभावात् ।। ३५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **द्विजाग्र्याणां** ब्राह्मणक्षत्रियविशां **कन्याप्रदानमद्भिरेव** जलैरेव जलपूर्वं प्रशस्यते । **इतरेषां** वर्णानामनुलोमप्रतिलोमजातीनां **इतरेतरकाम्यया** परस्परेच्छया कन्याप्रदानम् ।। ३५ ।।

(७) **मणिरामः** : ब्राह्मणानामुदकपूर्वमेव कन्यादानं प्रशस्तम् । क्षत्रियादीनां परस्परेच्छया विनाप्युदकं वाङ्मात्रेणापि कन्यादानं भवतीत्यर्थः ।। ३५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **अद्भिरेव** द्विजातीनां **कन्यादानं प्रशस्यते** । इति ब्राह्मणानां उदकदानपूर्वमेव कन्यादानं प्रशस्तमित्युच्यते । क्षत्रियादीनां पुनः परस्परेच्छया विनाप्युदकं वाङ्मात्रेणापि दानमिष्यते ।। ३५ ।।

**यो यस्यैषां विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः ।।**
**सर्वं शृणुत तं विप्राः सम्यक् कीर्तयतो मम ।। ३६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । यदुक्तं "गुणदोषौ च यस्य याविति" (३।२२) तत्स्मारयति । बहवो वक्तव्यतया प्रतिज्ञातास्तत्र वक्ष्यमाणैः श्लोकैरयमर्थ उच्यत इति विशेषज्ञानार्थं युक्तः पुनरुपन्यासः । **एषां विवाहानामिति** निर्धारणे षष्ठी । एवं विवाहानां यस्य **विवाहस्य यो गुणः कीर्तित** आचार्येण **मनुना सर्वं शृणुत तं** गुणं **विप्राः** । भृगुर्महर्षीनामन्त्रयते । **सम्यगवैपरीत्येनानाकुलं कीर्तयतः** कथयतः ।। ३६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **गुणः** पुत्रोत्पत्तिद्वारा ।। ३६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यद्यपि "गुणदोषौ च यस्य या"विति गुणाभिधानमपि प्रतिज्ञातमेव, तथापि बहूनामर्थानां तत्र वक्तव्यतया प्रतिज्ञातत्वाद्विशेषज्ञापनार्थः पुनरुपन्यासः । **एषां विवाहानामिति**, निर्धारणे षष्ठी, **एषां** मध्ये **यस्य** विवाहस्य **यो गुणो मनुना** कथितस्तत्सर्वं **हे विप्राः मम** कथयतः **शृणुत** ।। ३६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । 'प्रसवे च गुणागुणानि'त्युक्तं तद्गुणानाह **य इति त्रिभिः** । **मम** मत्तः ।। ३६ ।।

(५) **नन्दनः** । **एषां विवाहानां** मध्ये **यस्य** विवाहस्य यो **गुणः** फलम् ।। ३६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **यस्य** वर्णस्य **एषां विवाहानां यो** गुणः **कीर्तितः** हे **विप्रास्तं सर्वं** गुणं **मम कीर्तयतः सम्यक् शृणुत** ।। ३६ ।।

(७) **मणिरामः** । एवं विवाहानां मध्ये यस्य विवाहस्य यो गुणः **मनुना** कथितः तत्सर्वं **विप्राः मम** कथयतः **सर्वे शृणुते**त्यर्थः ।। ३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **य इति** । एषां विवाहादीनां मध्यात् यस्य विवाहस्य यत्फलं मनुना कथितं तत्सर्वं **मम** यथावत् कथयतो **विप्राः शृणुत** ।। ३६ ।।

**दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ।।**
**ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयत्येनसः पितॄन् ।। ३७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **पूर्वे वंश्याः** पितृपितामहादयः । **अपरे** पुत्रपौत्रादयः । तान् **मोचयत्येनसो** नरकादियातनाभ्य उद्धरति । ब्राह्मेन विवाहेन ऊढा तस्यां यो जातः पुत्रः स **सुकृतकृत्**पुण्यकृद्यदि भवति । **पितॄन्**परलोकगतान् । पितृशब्दोऽयं प्रेतपर्यायः । न हि पुत्रादिसन्ततेरन्यथा पितृव्यपदेशसम्भवः । **दश**शब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते **पूर्वापर**शब्दाभ्याम् । **एकविंशकमिति** निर्देशात् । अर्थवादश्चायम् । तेनानागतान-नुत्पन्नान्कथं मोचयतीति न वाच्यम् । पूर्वेषां त्वपत्यकृतेन शुभेन श्राद्धादिना भवत्येव पापान्मोक्ष इति श्राद्धाधिकारे कथयिष्यते । अतो 'दशापरानेनसो मोचयती'त्येतदुक्तं भवति—दश पुरुषा यस्मिन्कुलेऽपापा जायन्त इत्यालम्बनम् ।। ३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्र **ब्राह्मी**पदेन कन्याया बुद्धिस्थत्वात्तस्याः पित्रा-दयः प्रथमसंबन्धितया **पूर्व**पदेनोच्यन्ते । **अपर**पदेन तु पश्चात्संबन्धितया कन्याया भर्तृश्वशुरादयः । तेन मातामहप्रभृतीन् **दश दश** च पितृप्रभृती**नात्मानं** च **ब्राह्मीपुत्रः** पूर्वजन्मकृतदुर्ब्राह्मणत्वहेतोरेनसस्तारयतीत्यर्थः । यथा **देवलः** "दातुः प्रतिग्रहीतुश्च पुनात्यासप्तमं कुल"मिति । **याज्ञवल्क्यो**ऽपि (आचार. ५८) 'तज्जः पुनात्युभयत' इत्याह । **ब्राह्मी** ब्राह्मविवाहोढा । **सुकृतकृदिति** दुष्कृतकारित्वे तस्य नैतत्फलमस्तीत्यर्थः । त्रिधा च पुत्रः । औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रज इति । तत्र औरसपुत्रमधिकृत्यैतत्फलमुक्तं । पुत्रिकायां ततो न्यूनं । ततोऽपि क्षेत्रजे पुत्रे फलमित्येवमन्यत्राप्युन्नेयम् ।। ३७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । **दश पूर्वान्**पित्रादीन्**वंश्यान्पितॄन्**पुत्रादीन्**दशात्मानं** **चैकविंशकं** ब्राह्मविवाहोढा**पुत्रो** यदि **सुकृतकृद्**भवति तदा पापा**न्मोचयति** पित्रादीन्नरकादुद्धरति । पुत्रादयश्च तस्य कुले निष्पापा जायन्त इति मोचनार्थस्तेषामनुत्पत्तेः पापध्वंसस्या-शक्यत्वात् ।। ३७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **वंश्यान्** स्ववंशजातान् । **परान्** पुत्रादीन् । तद्वंश्यानां पापायोगित्वं सूचितम् । **सुकृतकृत्** श्राद्धादिकृत् चेत् न प्रजातमात्रेणेति ध्वनिः ।। ३७ ।।

(५) **नन्दनः** । **ब्राह्मी** ब्राह्मविवाहोढा ।। ३७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । पितृतः **दशपूर्वान्**वंश्यान्**दशापरानेकविंशकमात्मानं ब्राह्मणी-पुत्रः** ब्राह्मविवाहोत्पन्नः पुत्रः **सुकृतकृतः** सुकृतं करोतीति सुकृतकृत् सुकृतोत्पादकः **सन्पितॄनेनसः** पापा**न्मोचयेत्** ।। ३७ ।।

(७) **मणिरामः। ब्राह्मीपुत्रः** ब्राह्मविवाहोढापुत्रः **पूर्वान्** पित्रादीन्। **परान्** स्वपुत्रादीन्। पुत्रादयो निष्पापा भवन्तीत्यर्थः। एवमग्रेऽपि ॥ ३७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। दश पूर्वान्परानिति** ब्राह्मविवाहोढपुत्रः यदि सुकृतकृद्भवति तदा **दश पूर्वान्** पित्रादीन् अन्वयिनो मृतान् **दश चापरान्** पुत्रादीन् **आत्मानं चैकविंशकं** पापान्मोचयति। न चाकृताभ्यागमकृतविप्रणाशावत्र नोदनीयौ। श्राद्धादिवत् वचनगम्यत्वादमुष्यार्थस्य पुत्रादीनां चापापाचाराणां उत्पत्तिमात्रेणैवैषां विमोक्षः तदानीमनुत्पन्नत्वात् ॥ ३७ ॥

**दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान् ॥**
**आर्षोढाजः सुतस्त्रीन् षट् षट् कायोढजः सुतः ॥ ३८ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** दैवेन विधिनोढा 'दैवोढा', तस्यां जातो **दैवोढाजः सुत** पुत्रः। '**कः**' प्रजापतिः स देवता यस्य विवाहस्य स 'कायः'। संस्कारकर्मणि ग्रहणलक्षणेऽसत्येव देवतासम्बन्धे प्रजापतेर्देवतात्वमध्यारोप्यते भक्त्या। यदपि तत्र प्राजापत्यो यागोऽस्ति स तु पूर्वविवाहसाधारणः न कायव्यपदेशे कारणम्। आसुरादिषु च न काचिद्गतिः स्यात्। न ह्यासुरेभ्यो विवाहेभ्यो यागोऽस्ति। **कायोढज** इति ह्रस्वत्वं "ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलमिति" (पा० ६।३।६३)।

"ननु च यद्यन्न्यूनफलं तत्तत्पश्चान्निर्दिष्टम्। तत्रार्षस्य प्राजापत्यात्पश्चादभिधानं युक्तम्"। अस्त्यत्र कारणं येनाधिकफलस्य प्राजापत्यस्य पश्चान्निर्देशः। "पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या" (३।२५) इत्यत्र प्राजापत्यस्य ग्रहणमिष्यते, इतरथाऽऽर्षस्य स्यात् ॥ ३८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** दैवादिषु तु तादृग्विवाहोढस्त्री जातपुत्रिका पुत्रानादाय फलमुक्तं दैवोढजासुत इत्यादिना **दैव**विवाहेन या **ऊढा** तस्यां या पुत्रिका **जाता** तस्याः पुत्र इत्यर्थः। अर्थाच्च तत्राप्यौरसे ततोऽधिकं फलं क्षेत्रजे त्वल्पमित्युन्नेयम्। **कायः** प्राजापत्यः। अत्र च स्मृत्यन्तरेष्वधिकपुरुषपावनोक्तिरभिसन्धिशुद्ध्यादिनोपपाद्या; आसुरादिषु तु विवाहेषु जाताः पितृमात्रस्य पुन्नामनरक-तारकहेतवो नान्येषां पावयितार इत्यर्थसिद्धित्वान्नोक्तम् ॥ ३८ ॥

(३) **कुल्लूकः। दैव**विवाहोढायाः पुत्रः स **परान्**पित्रादीन् **सप्तावरान्**पुत्रादींश्च। **आर्ष**विवाहोढायाः पुत्र**स्त्री**न्पित्रादीं**स्त्रींश्च** पुत्रादीन्। प्राजापत्यविवाहोढायाः पुत्रः **षट्** पित्रादीन् **षट्** पुत्रादीन्। आत्मानं चैनसो मोचयतीति पूर्वस्यैव सर्वत्रानुषङ्गः। **कायोढज इति।** 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुल'मिति ह्रस्वत्वम्। ब्राह्माद्यष्टविवाहोद्देशक्रमानुसारेण मन्त्रफलस्यार्षस्येह बहुफलप्राजापत्यात्पूर्वाभिधानम्। ब्राह्मादिविवाहोद्देशश्लोक एव कथमयं क्रम इति चेत् 'पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या' इत्यत्र प्राजापत्यग्रहणार्थम्। अन्यथा त्वार्षस्यैव ग्रहणं स्यात् ॥ ३८ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **दैवोढाजः** दैवविवाहाज्जातः। **त्रीनिति।** गोशुल्कग्रहणापराधात्। **कायोढजः** कस्य प्रजापतेरयं विवाहः। **कायोढ**स्तस्माज्जातः प्राजापत्यज इत्यर्थः ।। ३८ ।।

(५) **नन्दनः।** **कायोढजः** प्राजापत्येनोढायाः **सुतः**। ह्रस्वो वृत्तभङ्गपरिहारार्थः ।। ३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **दैवोढाजः** सुतः दैवविवाहोत्पन्नः सुतः **सप्तावरान् पूर्वां**श्चेत्यर्थः। चतुर्दश पुरुषान्पवित्रयतीत्यर्थः। **आर्षोढाजः** सुतः आर्षविवाहोत्पन्नः **सुत**स्त्रीन्पूर्वान्वंश्यांस्त्रीनपरान्वंश्यान्पुनाति। **कायोढजः सुतः** प्राजापत्यविवाहोत्पन्नः सुतः **षट्पूर्वान् वंश्यान्**सहात्मना इति **योगीश्वरः** ।। ३८ ।।

(७) **मणिरामः।** **दैवोढाजः** दैवविवाहोढायाः पुत्रः सप्त सप्त। आर्षोढायाः पुत्रः त्रींस्त्रीन्। **कायोढाजः** प्राजापत्यविवाहोढायाः पुत्रः षट् षट् इत्यर्थः ।। ३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **दैवोढाज इति।** दैवविवाहोत्पन्नः पुत्रः सप्त परान् पित्रादीन् सप्त अवरान् पुत्रादीन् पापान्मोचयति। आर्षविवाहोत्पन्नश्च **त्रीन्** पित्रादीन् त्रींश्च पुत्रादीन्। तथा प्राजापत्यविवाहोढाजोत्पन्नश्च **षट्** पुत्रादीन् षट् पित्रादींश्च ।। ३८ ।।

**ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।।**
**ब्रह्मवर्चसिनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ।। ३९ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** 'प्रसवे च गुणागुणानि'त्युक्तं, तदिदम्— **अनुपूर्वशः** आनुपूर्व्येणेत्यस्मिन्नर्थे स्मृतिकारैः प्रयुज्यते। श्रुताध्ययनविज्ञानसम्पत्तिनिमित्ते च पूजाख्याती 'ब्रह्मवर्चसम्', तद्वन्तो **ब्रह्मवर्चसिनः।** इन्नन्तोऽयम्। 'शिष्टानां सम्मता अनुमता अगर्ह्या अद्विष्टाः, प्रिया इति यावत्। अतश्चामत्यर्थत्वात् 'मतिबुद्धी'त्यस्याविषयत्वेन, 'क्तेन च पूजाया'मित्येतेन नास्ति समासप्रतिषेधः। सम्बन्धसामान्यविवक्षायां च षष्ठी ।। ३९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** ब्राह्मणस्य चत्वार आद्याः प्रशस्ता उक्तास्तदुपपादयति **ब्राह्मादिष्विति। अनुपूर्वशः** तत्तद्विवाहापकर्षक्रमेणापकृष्यमाणगुणाः ।। ३९ ।।

(३) **कुल्लूकः।** 'प्रसवे च गुणागुणानि'ति यदुक्तं तदुच्यते **ब्राह्मादिषु** चतुर्षु **विवाहेषु** क्रमावस्थितेषु श्रुताध्ययनसाम्पत्तिकतेजोयुक्ताः **पुत्राः शिष्टप्रिया जायन्ते।** प्रियार्थत्वाच्च संमतशब्दस्य 'क्तेन च पूजाया'मिति न षष्ठीसमासप्रतिषेधः। सम्बन्धसामान्यविषया षष्ठीयं समस्यते ।। ३९ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तेष्वेव गुणान्तरमाह **ब्राह्मादिष्विति** द्वाभ्यां। **ब्रह्मवर्चसिनः** वेदाध्ययनजवीर्ययुक्ताः ।। ३९ ।।

(५) **रामचन्द्रः। चतुर्षु ब्राह्मादिषु विवाहेषु अनुपूर्वशः** ब्राह्मदैवार्षप्राजापत्येषु चतुर्ष्वेव विवाहेषु **पुत्रा ब्रह्मवर्चसिनो** जायन्ते ।। ३९ ।।

(६) **मणिरामः** । 'प्रसवे च गुणागुणानि'ति यदुक्तं तदाह **ब्राह्मेति** । **अनुपूर्वशः** क्रमावस्थितेषु ।। ३९ ।।

(७) **गोविन्दराजः** । **ब्राह्मादिष्विति** । **रूपसत्त्वगुणोपेता इति** : ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्षु क्रमावस्थितेषु अध्ययनादिसंपत्तेजोयुक्ताः साधुप्रियालावण्येन द्वादशाध्यायवक्ष्यमाणलक्षणेन सत्त्वेन दयादिभिः श्रीगुणैर्युक्ताः धनिनः ख्यातिमन्तः संपन्नस्रगनुलेपनादिभोगानुष्ठातारः पुत्रा जायन्ते शतं वर्षाणां जीवन्ति ।। ३९-४० ।।

**रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ॥**
**पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥४०॥**

(१) **मेधातिथिः** । **रूपं** मनोहराकृतिः । **सत्त्वं** नाम **गुणो** द्वादशे वक्ष्यते । ताभ्या**मुपेता** युक्ताः । आढ्या **धनवन्तः** । श्रुतशौर्यादिगुणयुक्ततया ख्याताः **यशस्विनः** । **पर्याप्तभोगाः** स्रगनुलेपनगीतवाद्यादिभिः सुखसाधनैरविकलैर्नित्ययुक्ताः । सुखसाधनैः पूर्वोक्तैरवियोगो 'भोग':, स 'पर्याप्तो' अक्षतः समग्रो येषां ते 'पर्याप्तभोगाः' । धर्मानुष्ठानतत्परा **धर्मिष्ठाः** । धर्मशब्दः केषांचिद्गुणवचनः । अतो गुणवचनादित्या-तिशायिकः **शतं** वर्षाणि **जीवन्ति** ।। ४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **सत्त्वगुणाः** सात्विकधर्मा ज्ञानादयः । **पर्याप्तभोगाः** प्राप्तकृत्स्नभोगाः ।। ४० ।।

(३) **कुल्लूकः** । **रूपं** मनोहराकृतिः **सत्त्वं** द्वादशाध्याये वक्ष्यमाणं **गुणा** दया-दयः, तैर्युक्ता **धनिनः** । ख्यातिमन्तो यथेप्सितवस्त्रस्रग्गन्धलेपनादिभोगशालिनो धार्मिकाश्च पुत्रा जायन्त इति पूर्वमनुवर्तते **शतं** वर्षाणि **जीवन्ति** ।। ४० ।।

(४) **राघवानन्दः** । **सत्त्वगुणा** द्वादशाध्याये वक्ष्यमाणाः । **रूपं** सौन्दर्यं **सत्त्वं** बलं वा **पर्याप्तभोगा** इति भोगिनः । भोग्योपस्थितावपि दुष्कृतिनां न भोग-सिद्धिः ।। ४० ।।

(५) **नन्दनः** । ब्राह्मादिषु चतुर्षु विवाहेष्वामुष्मिकं फलं प्रत्येकमुक्तम्, इदानीमैहिकं च समुदाये फलं श्लोकद्वयेनाह **ब्राह्मादिष्विति** । **सत्त्वगुणोपेताः** सात्त्विकाः । **पर्याप्तभोगाः** पूर्वसुखभोगाः ।। ४० ।।

(६) **रामचन्द्रः** । एतादृशाः भवन्ति **पर्याप्तभोगधर्मिष्ठाः** ।। ४० ।।

(७) **मणिरामः** । **पर्याप्तभोगाः** यथेप्सितवस्तुभोगशालिनः ।। ४० ।।

(८) **गोविन्दराजः** ।। ४० ।।

**इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥**
**जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ ४१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। ब्राह्मादिव्यतिरिक्तेषु गान्धर्वादिविवाहेषु नृशंसमनृतं च वदन्ति **नृशंसानृतवादिनः**। **नृशंसं** मातृभगिन्यादावश्लीलाक्रोशवचनम्। **अनृतं** प्रसिद्धम्। नृशंसं चानृतं च नृशंसानृते। ते वदितुं शीलमेषामिति शब्दव्युत्पत्तिः। **ब्रह्मधर्मो** वेदधर्मो वेदार्थस्तं द्विषन्ति निन्दन्ति वा न श्रद्दधते वा। अत एव **दुर्विवाहेष्विति** निन्दा ॥ ४१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शिष्टेष्वनुशिष्टेषु**, अपदिष्टेष्विति यावत्। **नृशंसो** हिंस्रः ॥ ४१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मादिभ्यश्चतुर्भ्योऽन्येष्वासुरादिषु चतुर्षु विवाहेषु क्रूरकर्माणो मृषावादिनो वेदद्वेषिणो यागादिधर्मद्वेषिणः पुत्रा **जायन्ते** ॥ ४१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मदैवतार्षप्राजापत्यभिन्नेषु दोषानाह **इतरेष्विति**। **शिष्टेष्द-वशिष्टेषु**। **नृशंसाः** क्रूराः। तत्कर्माणो वा। **ब्रह्म** वेदः। ब्राह्मणजातिर्वा। **धर्म-**श्चाग्निहोत्रादिस्तद्विषयः ॥ ४१ ॥

(५) **नन्दनः**। **इतरेष्ववशिष्टेष्वप्रशस्तेषूपविवाहेषु**। **नृशंसानृतवादिनः** पुरुषवादिनः। **ब्रह्मद्विषः** ब्राह्मणद्विषः। अननुज्ञातविवाहविषये निन्दा। इतरथा हि क्षत्रियादिषु गान्धर्वराक्षसाद्युपशासनानर्थक्यप्रसङ्गः ॥ ४१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **शिष्टेष्वितरेषु** चतुर्षु विवाहेषु **नृशंसानृतवादिनः**। **ब्रह्मधर्मद्विषः सुता जायन्ते** आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचेषु चतुर्ष्विति ॥ ४१ ॥

(७) **मणिरामः**। **इतरेषु** ब्राह्मादिविवाहेभ्यश्चतुर्भ्योऽन्येषु आसुरादिषु **ब्रह्मधर्मद्विषः** वेदयज्ञद्वेषिणः ॥ ४१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **इतरेष्विति**। ब्राह्मादिभ्यश्चतुर्भ्योऽन्येषु आसुरादिषु दुष्ट-विवाहेषु क्रूरकर्माणोऽनृतवादिनो वेदयागादिद्वेषिणश्च **सुता जायन्ते** ॥ ४१ ॥

**अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ॥**
**निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। समासतो विवाहानां फलप्रदर्शनमेतत्। ये यस्य विवाहा विहितास्तेऽनिन्दितास्तैरूढानां या प्रजा पुत्रादिलक्षणा **साऽनिन्द्या** भवति, प्रशस्येत्यर्थः। **निन्दितैः** प्रतिषिद्धैः **निन्दिता** गर्हिता। **तस्माद्**दुःखभागिनी प्रजा मा भूदिति **निन्द्या-न्विवर्जयेत्** ॥ ४२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यद्वर्णस्य यो विवाहो विहितः सोऽ**निन्दितः**। निन्दितोऽन्यः। एवं सवर्णाविहितविवाहे केवलं प्रजा निन्द्या भवति। भार्यात्वं तु सिद्ध्यत्येवेति **कथितम्** ॥ ४२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। संक्षेपेण विवाहानां फलकथनमिदम्। अगर्हितैर्भार्याप्राप्तिहेतुभि- **र्विवाहैरगर्हिता** मनुष्याणां संततिर्भवति। गर्हितैस्तु गर्हिता तस्माद्गर्हितविवाहान्न कुर्यात्॥ ४२॥

(४) **राघवानन्दः**। न गिरा गिरेति न्यायेन निन्दितविवाहान्निषेधति **अनिन्दितै- रिति**। एवं क्रव्योद्गायतीति विधौ य आत्मानं गिलेदित्याद्यर्थवादस्तथा अनिन्दित- विवाहः कार्य इत्यत्र निन्दितविवाहनिषेधोऽर्थवादः॥ ४२॥

(५) **नन्दनः**। उक्तमेवार्थं संक्षिप्य दर्शयति **अनिन्दितैरिति**॥ ४२॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैः अनिन्द्या** स्तुत्या **प्रजा भवति** पुत्रा भवन्तीत्यर्थः। आसुरादि**निन्दितैर्विवाहैर्निन्दिता** प्रजा भवति **नृणां तस्मान्निन्द्यान्वि- वाहान्वर्जयेत्**॥ ४२॥

(७) **मणिरामः**। संक्षेपतो विवाहफलमाह **अनिन्दितैरिति**॥ ४२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अनिन्दितैरिति**। अगर्हितैः भार्याप्राप्तिहेतुभिः विवाहैः अगर्हितानि मनुष्याणामपत्यानि भवन्ति। गर्हितैश्च गर्हितानि भवन्ति। **तस्मात् गर्ह्यान् विवर्जयेत्** न कुर्यात्॥ ४२॥

**पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते॥**
**असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि॥ ४३॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पाणिग्रहणं** नाम गृह्यकारोक्तः **संस्कारः सवर्णासु** समान- जातीयासूह्यमानासू**पदिश्यते** शास्त्रेण विधीयते, कर्तव्यतया प्रतिपाद्यते। **असवर्णासु** यदुद्वाहकर्म तत्रायं वक्ष्यमाणो **विधिर्ज्ञेयः**॥ ४३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सवर्णास्विति** सामान्योक्त्या शूद्राणामप्यग्निसाक्षि- कममन्त्रकं पाणिग्रहणमात्रं कर्तव्यत्वेनाभिमतम्॥ ४३।

(३) **कुल्लूकः**। समानजातीयासु गृह्यमाणासु हस्तग्रहणलक्षणः संस्कारो गृह्यादिशास्त्रेण विधीयते। विजातीयासु पुनरुह्यमानासु विवाहकर्मणि पाणिग्रहण- **स्थानेऽयमन्तरश्लोके** वक्ष्यमाणो **विधिर्ज्ञेयः**॥ ४३॥

(४) **राघवानन्दः**। **असवर्णासु** पाणिग्रहणभावेन प्रकारान्तरं वक्तुं सवर्णास्वेव 'गृह्णामि ते सौभगत्वाय' (ऋ. १०।८५।३६) इति पाणिग्रहणं विधत्ते **पाणीति द्वाभ्यां**। अयं वक्ष्यमाणः शर इत्यादिः॥ ४३॥

(५) **नन्दनः**। अथ विवाहाङ्गविशेषमाह **पाणिग्रहणेति**। करेण करस्य ग्रहणं पाणिग्रहणम्। पाणिग्रहणमेव संस्कारः **पाणिग्रहणसंस्कारः**। **अयं** वक्ष्यमाणः॥ ४३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **पाणीति**। **सवर्णासु** स्त्रीषु **पाणिग्रहणसंस्कार उपदिश्यते**।

तद्यथा ब्राह्मणस्य ब्राह्मण्याः पाणिग्रहणमिति सवर्णास्वित्यर्थः। असवर्णासु स्त्रीषु विवाहेषु ब्राह्मणस्यायं विधिरुद्वाहकर्मणि ज्ञेयः ।। ४३ ।।

(७) **मणिरामः। सवर्णासु** सजातीयासु **पाणिग्रहणरूपः संस्कारः** स्वगृह्यादिशास्त्रेण विधीयते । **असवर्णासु** विजातीयासु **अयं** अग्रिमश्लोकोक्तो विधिः **ज्ञेयः** ।। ४३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। पाणिग्रहणसंस्कार इति।** हस्तग्रहणात्मकसंस्कारः गृह्योक्तः समानजातिषु गृह्यमाणासु शास्त्रेणोच्यते असजातिषु पुनः उह्यमानासु विवाहकर्मणि अयं वक्ष्यमाणो विधिः पाणिग्रहणस्थाने विज्ञेयः ।। ४३ ।।

**शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया ।।**
**वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ।। ४४ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** ब्राह्मणोह्यमानया **क्षत्रियया शरो** ब्राह्मणपाणिपरिगृहीतो **ग्राह्यः।** पाणिग्रहणस्थाने शरस्य विधानात्। **प्रतोदो** बलीवर्दानामायासः क्रियते, येन वाह्यमानाः पीड्यन्ते हस्तिनामिवाङ्कुशः। **वसनस्य** वस्त्रस्य **दशा ग्राह्या शूद्रया! उत्कृष्टजातीयैर्ब्राह्मणादिवर्णैर्वेदने** विवाहे ।। ४४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। क्षत्रियाधृतं शरं वैश्यया** च धृतं **प्रतोदं** पाणिग्रहणमन्त्रैर्वरो गृह्णीयात्। शूद्राविवाहे तु शूद्रा वरस्य वसनाञ्चलममन्त्रिकं गृह्णीयात्। 'शूद्रामप्येके मन्त्रवर्ज'मिति स्मृतेः। **उत्कृष्टः** स्वर्णोत्कृष्टवर्णः। एतेन क्षत्रियेण वैश्यायाः शूद्रायाश्च वैश्येन च शूद्राविवाहेऽयमेव क्रम इति कथितम् ।। ४४ ।।

(३) **कुल्लूकः। क्षत्रियया** पाणिग्रहणस्थाने ब्राह्मणविवाहे ब्राह्मणहस्तपरिगृहीतकाण्डैकदेशो ग्राह्यः। **वैश्यया** ब्राह्मणक्षत्रियविवाहे ब्राह्मणक्षत्रियावधृत**प्रतोदै**कदेशो ग्राह्यः। **शूद्रया** पुनर्द्विजातित्रयविवाहे प्रावृत**वसनदशा** ग्राह्या ।। ४४ ।।

(४) **राघवानन्दः। शरः** पाणिना **क्षत्रियया** गृहीतो यस्तं पाणिस्थानीयं विप्रो गृह्णीयान्न तु विप्रस्तस्य शरः। क्षत्रियाविषय इति कन्यापाणिस्थाने शरस्य विधानात्। अन्यथा मन्त्रलिङ्गविरोधः। अतः 'क्षत्रियया शरो ब्राह्मणपाणिपरिगृहीतो ग्राह्यः' इति **मेधातिथेः** प्रलापः। एवं प्रतोदादिषु प्रतोदो बलीवर्दादिचालनसाधनः। **उत्कृष्टवेदने** द्विजादिकर्तृकविवाहे ।। ४४ ।।

(५) **नन्दनः। वर्णोत्कृष्टस्य वेदने** सवर्णादुत्तरोत्तरस्य वर्णस्य लाभे विवाह इति यावत् ।। ४४ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** तद्यथा **उत्कृष्टवेदने** विप्रस्य वेदने विवाहे **क्षत्रियया शरो ग्राह्यः। विप्रस्य वेदने वैश्यया प्रतोदो** ग्राह्यः। विप्रस्य वेदने **शूद्रया वसनस्य** वस्त्रस्य **दशा ग्राह्या। 'वेदने** त्वग्रजन्मन' इति **योगीश्वरः।** एवं क्षत्रस्य वेदने वैश्यया प्रतोदो ग्राह्यः। पुनरेवं **वैश्यस्य** वेदने शूद्रया **वसनस्य दशा ग्राह्या** ।। ४४।।

(७) **मणिरामः।** **क्षत्रियया** पाणिग्रहणस्थाने **उत्कृष्टवेदने** उत्कृष्टब्राह्मणहस्तस्थशरस्यैकदेशो ग्राह्यः। **वैश्यकन्यया** ब्राह्मणक्षत्रियहस्तस्थ**प्रतोद**स्यैकदेशो ग्राह्यः। **शूद्रया तु** ब्राह्मणादित्रयाणां उपरिस्थितोत्तरीयवसनस्य दशा ग्राह्येत्यर्थः।। ४४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। शर इति। क्षत्रियया** पाणिग्रहणस्थाने ब्राह्मणपाणिगृहीतशरप्रान्तो ब्राह्मणोद्वाहे **ग्राह्यः। वैश्यया** च ब्राह्मण[क्षत्रिय] पाणिपरिगृहीतदात्रादितोदनमयःप्रान्तं ब्राह्मणक्षत्रियोद्वाहे **ग्राह्यम्। शूद्रया** पुनर्द्विजात्युद्वाहे तत्तत्प्रावृतवस्त्रदशा ग्राह्या।।४४।।

**ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।।**
**पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ।। ४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** उक्तो विवाहः। तस्मिन्निर्वृत्ते समुपयाते दारत्वे तदहरेवेच्छयोपगमे प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थमिदमारभ्यते। न विवाहसमनन्तरं तदहरेव गच्छेत्, किं तर्हि? ऋतुकालं प्रतीक्षेत। गृह्यकारैस्तु "अत ऊर्ध्वमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावधःशायिनौ स्याताम्—त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा" इति (आश्व० गृ० १।८।१०-११) पठितम्। तत्र सत्यपि संवत्सरस्यान्तराऽऽपतिते ऋतौ गमनं नास्ति। एवमस्मत्कालादूर्ध्वमसत्यृतौ गमनं नास्ति। एवमेते स्मृती अविरोधिन्यौ भवतः। त्रिरात्रादीनां तु विकल्पः अत्यन्तरागपीडितयोर्गमनं, धैर्यवतोस्तु ब्रह्मचर्यम्। **ऋतुर्नाम** स्त्रीणां शोणितदर्शनोपलक्षितः शरीरावस्थाविशेषो गर्भग्रहणसामर्थ्यः काल उच्यते। उपलक्षणत्वाच्च दर्शनस्य निवृत्तेऽस्मिन्वक्ष्यमाणकालानुवर्ती भवत्येव। तस्य काल 'ऋतुकालः'। साहचर्याद्वा काल एव ऋतुः। तथा च समानाधिकरणसमासः। ऋतुकालेऽभिगन्तुं व्रतमस्येत्यृ**तुकालाभिगामी**। 'व्रते' इति णिनिः (पा० सू० ३।२।२०) यथा स्थण्डिलशायी अश्राद्धभोजीति **स्यात्** भवेदित्यर्थः। यद्यप्यस्तिपरा विधिविभक्तिस्तथाप्युपगमव्यापारं विदधाति, **अभिगामी** स्यादभिगच्छेदित्यर्थः। न ह्यनुपगच्छन्नभिगामी भवति।

कीदृशं पुनरेतद्व्रतम्?। किमृतावभिगन्तव्यमेव, अथर्तावेव गन्तव्यमिति। एतदुक्तं भवति—किमयं नियम उत परिसंख्येति। "ननु च व्रतमिति शास्त्रतो नियम उच्यते। तत्रैव चायं णिनिः। अतः परिसंख्या कथमाशंक्यते?" उच्यते। परिसंख्यायामपि शास्त्रीयत्वं नियमरूपता च विद्यत इति दर्शयिष्यामः।

"कस्तर्ह्यनयोर्विशेषः?" विधिविशेषो नियमः। "अथ विधिः कः?"। यः शब्दः कर्तव्यताबोधकः "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः" (मैत्रा. ६।३६) इति। न ह्यग्निहोत्रस्यैतद्वचनमन्तरेणान्यतः कुतश्चित्कर्तव्यतावगमः। 'नियमः' पुनर्यत्रादृष्टसिद्ध्यर्थस्य वचनमन्तरेण पाक्षिकी प्राप्तिः। यथा "समे यजेतेति" दर्शपौर्णमासादियागविधानाद्देशमात्रमाक्षिप्तम्, न हि कश्चिद्देशमनाश्रित्य यागप्रयोगः संभवति। द्विविधश्च देशः समो विषमश्च। तत्र यदा तावत्समे यजेत तदैतद्वचनमनुवाद एव। यदा त्विच्छाया निरङ्कुशत्वाद्विषमे यियक्षति तदैतद्वचनं समदेशं विदधदर्थवत्। विहिते समे विषमस्या-

नाश्रयणमविधानात् । एतत्सामर्थ्यात्तन्निवृत्तिः । विधिनिबन्धने ह्यनुष्ठाने किमित्यविहितं क्रियेत । तत्करणे हि न यथाचोदितानुष्ठानसिद्धिः ।

इदं चात्र स्मार्तमुदाहरणम् । प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत । भुञ्जानस्य यदृच्छया यां कांचिद्दिशमाश्रित्य भोजनं प्राप्तम् । तत्र कदाचित्प्राची कदाचिदितरा या कांचित्प्राप्ता । तत्र यदा प्राची न तदेतरा, यदेतरा न तदा प्राचीति । तत्राप्राप्तिपक्षे विध्यर्थं वचनं प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीतेति । तत्रातिक्रमाच्छास्त्रार्थं जहाति । एवमिह यदृच्छयोपगमनमृतावनुपगमनं, पक्षे विधीयमानमुपगमनमननुष्ठीयमानं, शास्त्रातिक्रमकारितां जनयेत् । यथाऽन्ये शास्त्रविहितार्था अतिक्रम्यमाणाः प्रायश्चित्तहेतवो भवन्ति तथाऽगमनम् । अथर्तावनृतौ च गमने रागतः प्राप्ते वचनम् 'ऋतावुपेयादि'ति, तदैवं वचनं भृग्यते 'ऋतावेवोपेयादनृतौ न गच्छेत्' ।

यथा 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या' इति क्षुत्प्रतिघातेनार्थेन शशकादिष्वपि पञ्चनखेषु भक्ष्यता प्रसक्ता तद्व्यतिरिक्तेष्वपि वानरादिषु । न च तत्र पर्यायेणैव प्रवृत्तिः । युगपत्तत्र चान्यत्र च प्रसक्तौ 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या' इति वचनमितरपरिसंख्यानार्थं संपद्यते । एवमिह परिसंख्येति ।

"ननु च परिसंख्यां दोषत्रयवतीमाचक्षते । त्रयो हि तत्र दोषाः प्रादुःष्युः, स्वार्थत्यागः परार्थकल्पना प्राप्तबाधश्च । 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या' इति यदाऽन्वयतः पञ्चनखविषयं भक्षणं प्रतीयते तदा तत्तूक्तं भवति, तद्व्यतिरिक्तनिषेधपरत्वाद्वाक्यस्य । अश्रुतश्च निषेधः अतः परार्थकल्पना अर्थित्वाच्च सर्वविषयं भक्षणं यत्प्राप्तं तस्य बाधः । एवमेतेन परिसंख्यायां त्रयो दोषाः" । नैतत्सारम् । सत्यर्थित्वे श्रुतार्थासंभवे वाक्यस्यानर्थक्यं मा भूदित्येतत्परता न विरुद्धा ।

विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति ।
तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्या नखिष्विव ।

किं पुनरत्र युक्तम् ?।

'तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ' परिसंख्यालक्षणस्य विद्यमानत्वात्परिसंख्येति । ऋतावपि गमनं प्राप्तमनृतावपि न तु यदर्तौ तदानृताविति । यथा सत्यर्थित्वे यत् भोजनं तत्र नियमोऽ- 'श्राद्धम्' न पुनराहारत्यागेन अश्राद्धमेव भुञ्जान आस्ते । एवमिह सति खेदे यद्गमनं तत्र नियमोऽनृतौ न गच्छेदित्यवगच्छति । अर्थित्वाच्च गमने प्रसक्ते कालविधानपरतैव युक्ता वाक्यस्य । अन्यथाऽनारब्धोऽर्थ उपदिष्टः स्यात् । किंचापत्योत्पत्तिविधेः कृतविवाहस्यानुष्ठेयत्वादृतौ च तत्संभवात्प्राप्तमेव गमनम् । उत्पन्नपुत्रस्य च न द्वितीयपुत्रोत्पादनं वैधम् । अपत्यमुत्पादयेदित्येकत्वविवक्षायां विध्यर्थनिवृत्तेः । न च गमनमेवादृष्टार्थतया शक्यं विधातुम् । संस्कारविधित्वाधिकारश्रवणात्कल्पनायाश्च शक्यत्वात्, अपत्योत्पत्तिविध्याक्षेपादृतौ गमनस्य । यच्चात्रर्तावुपेयादिति तदनृतुप्रतिषेधार्थम् । तत्रानुवादः, परं परिसंख्या । तत्र ह्यर्थान्तरलक्षणयाऽप्यर्थवत्ता भवति ।

एवं च कृत्वा गौतमीयेनाविप्रतिपत्तिः। एवं तत्रोक्तम् 'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' (अ० ५ सू० १-२) इति। 'सर्वत्र वे'त्येष विकल्पः कामचारानुज्ञानार्थः। न पुनः सर्वदर्तावनृतौ च नियमोपपत्तिः। यदि च पूर्वत्रर्तावुपेयादिति नियमः, 'सर्वत्र वे'त्यत्रापि स एवोपेयादित्यनुप्रयुज्यमानशब्दो नियमार्थः प्राप्नोति एकप्रक्रमत्वात्। नहि स एव शब्दः पुनरनुच्चार्यमाणो भिन्नार्थो भवितुं युक्तः। न चर्तोरन्यत्र नियमार्थतोपपद्यते इत्युक्तम्। तस्मादृतौ गमनवचनमनृतौ प्रतिषेधार्थम्; तत्रानुत्पन्नपुत्रस्य विध्यन्तरान्नियम एव। उत्पन्नपुत्रस्तु यथाकामी।

अनृतौ प्रतिषिद्धे गमने भार्येच्छया पुनः प्रतिप्रसूयते **पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रत् इति**। तदिति भार्यायाः प्रत्यवमर्शः। तच्चित्तग्रहणं व्रतमस्येति **तद्व्रतः। रतिकाम्यया**। विनाऽप्यपत्यार्थेनोत्पन्नपुत्र ऋतावनुत्पन्नपुत्रो वाऽनृतौ सुरतसम्भोगेच्छया **तद्व्रत एनां व्रजेन्**नात्मेच्छयेत्यर्थः। अथवा तच्छब्दो रतिकाम्ययेत्यत्राप्यपेक्ष्यते, स्मृतिशास्त्रत्वादस्य। तद्रतिकाम्यया पर्ववर्जमन्यत्रापि व्रजेत्। तत्रैवाकारश्लेषो द्रष्टव्यः, 'अरतिकाम्यया', आत्मन इति शेषः। यथा तु व्याख्यातं तथा न किञ्चिदत्राप्रश्लेषेणापि वा तच्छब्दस्य समासोपसर्जनस्यासम्बन्धेन। पर्वाणि वक्ष्यति (४।१२८) 'अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीमिति'। **स्वदारनिरतः**। स्वदारेषु निरतः स्यात्तत्प्रीतिभावनापरः। अथवा स्वदारेष्वेव रमते: न परदारान्रमयेदिति परदारप्रतिषेधः। सदा। यावज्जीवमेतद्व्रतं परिपालनीयम्। अतः स्थितमेतत्! त्रीणि वाक्यान्यत्र—ऋतुकालाभिगामी स्यादित्येतदेकम्, अनुत्पन्नपुत्रस्य नियमानुवादरूपम्। द्वितीयम् भार्याप्रयुक्तस्य पर्ववर्जमृतावनृतौ च, न सुरतेच्छया। स्वदारनिरत इति तृतीयम्। एषां च पदयोजना—ऋतुकालाभिगामी स्यादपत्यार्थम्, रतिकाम्यया तु तद्व्रत एनां व्रजेत् स्वदारनिरतश्च स्यात्।।४५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ऋतुकालमात्राभिगमने चेत्यसंपत्तौ स्वदारनिरत इति पक्षान्तरम्। तत्र च **पर्ववर्जमिति** विशेष उक्तः। **तद्व्रतः** पर्ववर्जस्वदारगमनमात्रगृहीतव्रतः **रतिकाम्यया** स्वस्य भोगार्थितया नतु तादृग्धर्मलाभस्तत्रेत्यर्थः।।४५।

(३) **कुल्लूकः। ऋतुर्नाम** शोणितदर्शनोपलक्षितो गर्भधारणयोग्यः स्त्रीणामवस्थाविशेषः। **तत्कालाभिगामी** स्यादित्ययं नियमविधिः, न तु परिसंख्या; स्वार्थहानिपरार्थकल्पनाप्राप्तबाधात्मकदोषत्रयदुष्टत्वात्। ऋतुकालेऽपि रागतः पक्षे गमनप्राप्तौ यस्मिन्पक्षे प्राप्तिस्तत्र विधिः समे यजेतेतिवत्। अतएव ऋतावगमने दोषमाह **पराशरः** "ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां ब्रह्महत्यायां पतते नात्र संशयः"। अनुत्पन्नपुत्रस्य चायं नियमः। "ब्राह्मणो ह वै जायमानस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवा जायते यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेनर्षिभ्य" इत्येतत्प्रत्यक्षश्रुतिमूलत्वेऽस्य संभवति मूलान्तरकल्पनस्यायुक्तत्वात्। 'तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रिय'मिति च वक्ष्यति। ततोप्येतच्छ्रुतिमूलत्वमवगम्यते। पुत्रोत्पादनशास्त्रस्य चैकपुत्रोत्पादनेनैव चरितार्थत्वात् 'कामजानितरान्विदु'रिति दर्शनादजातपुत्रस्यैव नियमः। "दशास्यां पुत्रानाधेही'ति मन्त्रस्तु बहुपुत्रप्रशंसापरः। जातपुत्रस्याप्यृतुकालगमननियमो न दशस्वेवावतिष्ठते" "स्वदारनिरतः

सदेति "नित्यं स्वदारसंतुष्टः स्यान्नान्यभार्यामुपगच्छेदि"ति विधानात्परिसंख्यैव वाक्यानर्थक्यात्स्वस्वदारगमनस्य प्रशस्तत्वात्। ऋतावगमने दोषाश्रवणाच्च न नियमविधिः 'पर्ववर्जं व्रजेच्चैना'मिति। पर्वाण्यमावास्यादीनि वक्ष्यन्ते। तानि वर्जयित्वा भार्याप्रीतिर्व्रतं यस्य स तद्व्रतोऽनृतावप्युपेयात्। अत एव रतिकाम्यया न तु पुत्रोत्पादनशास्त्रबुद्ध्या तस्माद्विधित्रयनिदम्। ऋतावुपेयादेव। अन्यभार्यां नोपगच्छेत्। अनृतावपि भार्याप्रीतये गच्छेदिति। अत्र च **गौतमः**– 'ऋतावुपेयादनृतौ च पर्ववर्जम्।' **याज्ञवल्क्योऽ**प्याह (आचार. ८१)– 'यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्'। पर्ववर्जमित्यृतावनृतौ चोभयत्र संबध्यते ।।४५।।

(४) **राघवानन्दः**। तस्यैव कृतदारस्य नियमं वदन्नादौ स्त्रीविषयं तमाह **ऋतुकालेति षड्भिः**। **तद्व्रतः** भार्याप्रीतिर्व्रतं यस्य। अत एवाह **रतिकाम्यया** ।।४५।।

(५) **नन्दनः**। कृतोद्वाहस्य स्त्रियं प्रति नियममाह **ऋतुकालेति**। **ऋतुर्नाम** गर्भग्रहणक्षमः स्त्रीणामवस्थाविशेषः। **सदेति** सर्वत्र संबध्यते। तस्यायमर्थः। **सदर्तुकालाभिगामी** स्यान्नकदाचिदप्यृतुकालं लङ्घयेत्। व्रते णिनिप्रत्ययः। **सदा स्वदारनिरतः** स्यात् न कदाचित्स्त्र्यंतरं गच्छेत्। अनृतुकालेऽपि रतिकाम्यया भोगेच्छया तद्व्रतस्थया भार्यया प्रार्थितश्चेत् पर्ववर्जं सदा गच्छेत्। न कदाचिद्रतिप्रार्थनां लङ्घयेदिति ।।४५।।

(६) **रामचन्द्रः**। **सदा स्वदारान्निरतः सन्नृतुकालाभिगामी** स्यादिति वचनात्परदारनिषेधः। **एनां** स्त्रियं **पर्ववर्जं व्रजेद्**गच्छेत्। ततस्तस्यास्तच्चित्तग्रहणं व्रतमस्येति **तद्व्रतः**। **रतिकाम्यया** नित्यं गच्छेदित्यर्थः।" यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्नि"ति **योगीश्वरः**। इन्द्रदत्तवरमित्यर्थः ।।४५।।

(७) **मणिरामः**। **ऋतुर्नाम** शोणितदर्शनोपलक्षितो गर्भधारणयोग्यः स्त्रीणामवस्थाविशेषः। **तत्काले** स्त्रीगमनं कुर्यात्। अयं च नियमविधिः। तथा च ऋतौ स्वदारान् गच्छेदित्यर्थः। स्वदारनिरतः सदेति परिसंख्या। तथा चान्यदाररतो न स्यादित्यर्थः। **पर्ववर्जं,** पर्वाणि अमावास्यादीनि वक्ष्यमाणानि तानि वर्जयित्वा **तद्व्रतः** भार्याप्रीतिः व्रतं यस्य सः तद्व्रतः **रतिकाम्यया** स्त्रीप्रीतिकाम्यया अनृतावपि एनां स्त्रियं व्रजेत् तथा च ऋतुकाले नियमेन स्त्रीगमनं कुर्यात्। अन्यथा प्रत्यवायी स्यात्। अन्यकाले तु रतिकामना चेद्भवति तदा गच्छेत्। तदभावे तु अगमने न दोषः। इति निष्कृष्टार्थः ।।४५।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ऋतुकालाभिगामीति**। ऋतुः गर्भाधानसमर्था स्त्रियोऽवस्था। तत्काले भार्यां अजातपुत्रो नियमत उपगच्छेत्, अनुपगमने दोषश्रवणात्। तथा च **पराशरः** 'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ।।' किञ्च "त्रिभिः ऋणैः ऋणवा जायते यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः स्वाध्यायेन ऋषिभ्य इत्येतच्छ्रुतिः मूलं त्वस्य संभवति मूलान्तरकल्पनाया अन्याय्यत्वम्। तथा च पुत्रार्थी संविशेदित्यनेनैतच्छ्रुतिमूलत्वमस्याचार्य आविष्करिष्यति। एवं चैतन्मूलत्वादप्यस्य नियमत्वमवसीयते। जातपुत्रस्य त्वनियमः, एकपुत्रोत्पादने विधेश्चरितार्थत्वात्। तथा च 'कामजांस्तु' इति दर्शनात्। "नैकपुत्रं दद्यात्। प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि सन्तानाय पूर्वेषां" इति

च। यत्तु "दशास्यां पुत्रानाधेहि" इति तत् बह्वपत्यप्रशंसापरं; जातपुत्रस्यापि ऋतुकाले नियमगमने कथं दशत्वे वाऽवतिष्ठेत्? एवं च नियमोऽयं नत्वनृतुकाले गमननिषेधार्था परिसंख्येति।

कः पुनरनयोर्भेदविशेषो नियमः? परिसंख्येति, तत्राप्राप्तप्रापको विधिर्नियमः। पक्षे प्राप्ति चाहुः। समे यजेतेतिवत्। अत्र हि दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेतेत्येवमादियागचोदनावाक्यत एव पक्षे यागाधिकरणभूतसमदेशप्राप्तिरस्त्येव, अधिकरणं विना यागानुपपत्तेः समे यियक्षमाणस्यैतद्वचनमुदास्ते स्वत एव प्रवृत्तेः। विषमे तु यियक्षमाणस्य समाप्राप्तावेतद्वचनं समार्थविधायकत्वेनार्थवत्। एवं च विधिफलमेव श्रुतेर्नियमः।

अपरे तु प्राप्तस्य पुनर्वचनं नियममाहुः यथा 'सर्वत एवात्मानं गोपायेत्' इति। तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्या भवति। यथा पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या इति। अस्त्यत्र शशादीनां (इतरेषां च) जिघांसाप्रयुक्तत्वात् युगपत् भक्षणप्राप्तिः। अतः परे न भक्ष्या इति परिसंख्यायन्ते। यद्यपि स्वार्थहानिपरार्थकल्पनाप्राप्तबाधदोषाक्रान्तत्वं परिसंख्यायाः तथापि वाक्यार्थानर्थक्यापत्तिभयतः तथाश्रयणं वरमित्यसावप्याश्रीयते। स्वार्थहानिः विधिप्रतिपादकश्रवणेऽपि विध्यर्थपरित्यागः। तत्र च आद्यापेतवाक्यप्रमेयभूतस्य प्रतिषेधकल्पना। पञ्च व्यतिरिक्तपञ्चनखानां जिघांसाप्रयुक्तस्य भक्षणबाधनमिति प्राप्तबाधः।

एवं चेह ऋतावनृतौ चार्थित्वात् प्राप्तौ सत्यां अनृतौ न गच्छेदित्येवं यद्यपि परिसंख्या तु (न) मापद्यते (न) नियमरूपता पाक्षिकत्वाभावात् तथाप्यगमने दोषश्रवणात् नियमार्थतैव न्याय्या। स्वदारसन्तुष्टश्च नित्यं स्यात् न स्त्र्यन्तरमुपागच्छेदिति ऋतौ उपगच्छेदिति भार्याऽगमनप्राप्ता च भार्याऽगमनपरिसंख्यैषा अमावास्यादिपर्ववर्जमनृतावपि भार्यां तत्संरक्षणवतः सन्ततिकाम्यया विनाप्यपत्योत्पत्तिं तत्सुरतसंभोगेच्छया नियमत उपेयात्। यत्तु 'अमावास्यामष्टमीं च' (४।१२८) इत्यादि वक्ष्यति तत् 'ऋतुकालाभिगामी स्यादि' त्यनेनार्तौ पर्वस्वपि गमनप्राप्तौ निषेधार्थम्। 'तथा चानृतावि'ति तत्र च वक्ष्यति ।।४५।।

**ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।।**
**चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ।।४६।।**

(१) **मेधातिथिः**। ऋतुलक्षणार्थं श्लोकोऽयम्। वैद्यकादिशास्त्रावगम्योऽयमर्थो न विधिमूल एव। एवं "युग्मासु पुत्राः" इत्येतावपि श्लोकौ। **षोडशरात्रयस्ताः** स्त्रीणां मासि मासि स्वाभाविक ऋतुः। प्रमाणान्तरमूलत्वाच्चाश्रुतमपि मासि मासीति गम्यते। स्वभावे भवः **स्वाभाविकः** स्वस्थप्रकृतीनां यो भवति। व्याध्यादिना कस्याश्चित्प्राप्तकालोऽपि निवर्तते, घृततिलाद्यौषधीप्रयोगेण रतिवशेन चाकालेऽपि संवर्तते। अतः स्वाभाविक ऋतुस्ता रात्रय उच्यन्ते। **चतुर्भिरितरैः**। चत्वार्यहानि यानि सद्भिर्विगर्हितानि, प्रतिषिद्धस्त्रीस्पर्शसंभाषणादीनि, तानि च प्रथमशोणितप्रदर्शनात्प्रभृति। अहर्ग्रहणं च सर्वाहोरात्रोपलक्षणार्थम्। तैः सह ।।४६।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **स्वाभाविकः** स्त्रीस्वभावनियतः कस्याश्चित्त्वाधिक्यमपि व्याध्यादिना शोणिताधिक्येन भवतीत्यर्थः। इतरै रजःकालीनैश्चतुर्भिः सहेति वदन्नवशिष्टान्यहानि द्वादशेति दर्शयति। **रात्रय** इति वचनमुपगमयोग्यद्वादशाहोरात्रेषु रात्रावेव **गमनं न** दिवेति कथयितुम्। **अहोभिरिति** त्वहोरात्रोपलक्षणम्॥४६॥

(३) **कुल्लूकः।** अत्र रात्र्यहःशब्दावहोरात्रपरौ। शोणितदर्शनात्प्रभृतिस्त्रीसंपर्कगमनानिन्दितैश्**चतुर्भिरन्यैरहोरात्रैः** सह षोडशाहोरात्रा मासि मासि स्त्रीणामृतुः, स्वभावे भवः **स्वाभाविकः**, व्याध्यादिना तु न्यूनाधिककालोऽपि भवति॥४६॥

(४) **राघवानन्दः।** ऋतोरवधिमाह **ऋतुरिति। स्वाभाविकः** औत्सर्गिकः रोगभोगादिना न्यूनाधिकसंभवात् शोणितोपलक्षितशरीरावस्थाविशेषो गर्भग्रहणसमर्थ **ऋतुस्तद्दर्शनात्। सद्विगर्हितैश्**चतुर्भिरहोरात्रैः सह अविगर्हिता त्रय इति **षोडश**। स्वीकृतभार्यस्य तदहस्तस्यां गमनप्रसक्तौ ऋत्ववधिकरणं त्रिरात्रादिपालनार्थम्। यथा **आश्वलायनसूत्रम्** 'अत ऊर्ध्वमक्षारलवणाशिनौ स्यातां त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वे'ति॥४६॥

(५) **नन्दनः।** कः पुनः स्त्रीणामृतुकाल इत्यपेक्षायामाह **ऋतुरिति। सद्विगर्हितैरितरैश्चतुर्भिरहोभिः सार्धं** गमने प्रतिषिद्धैः प्रथमैश्चतुर्भिः रात्रैः सह प्रथमाश्चतस्रः पञ्चम्यादयो द्वादश इत्येवं **षोडश रात्रयः** षोडशाहोरात्राः। स्वाभाविको न व्याध्यादिनिमित्तादुत्पन्नः स्त्रीणामृतुर्भवति॥४६॥

(६) **रामचन्द्रः।** तत्र विशेषमाह **ऋतुस्त्विति। स्त्रीणां** गर्भाधानयोग्यावस्थोपलक्षितः **काल ऋतुः स्वाभाविकः षोडशरात्रयः** स्मृता रजोदर्शनदिवसादारभ्य षोडशाहोरात्रयः **सद्भिर्विगर्हितैः चतुर्भिः** सार्धं **इतरैर्द्वादशभिर**होभिः सार्धमित्यर्थः॥४६॥

(७) **मणिरामः।** ऋतुकालमाह **ऋतुरिति**। अत्र रात्र्यहःशब्दौ अहोरात्रपरौ ज्ञेयौ। रजोदर्शनात् प्रभृति सद्विगर्हितैः शिष्टनिन्दितैः **चतुर्भिः इतरैः** अन्यैः प्रथमाद्यैः **अहोभिः**अहोरात्रैः सार्धं सह **षोडशरात्रयः** षोडशाहोरात्राः मासि मासि स्त्रीणां ऋतुः **स्वाभाविकः** स्वभावे भवः स्वाभाविकः, व्याध्यादिना तु न्यूनाधिककालोऽपि भवति॥४६॥

(८) **गोविन्दराजः। ऋतुरिति।** चतुर्भिर्दिवसैः उत्तमजननिन्दितैः सह षोडशाहोरात्राणि स्त्रीणां रोग्या(गा)द्यजनितऋतुक्रमः॥४६॥

**तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।**
**त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः॥ ४७॥**

(१) **मेधातिथिः। तासां** रात्रीणां या **आद्याः** प्रथमशोणितदर्शना**च्चतस्रस्ता निन्दिताः**, न तत्र **गमनमस्ति**। तिसृषु तावत्स्पर्शोऽपि नास्त्यशुचित्वात्। चतुर्थ्यां तु स्नाताया वसिष्ठवचनात्सत्यपि शुचित्वे रतिसम्भोगो नास्ति, चतसृणां गर्हितत्ववचनात्। **या चैकादशी** या च **त्रयोदशी** साऽपि निन्दिता, एवं प्रतिषिद्धगमना। ऋतुदर्शनात्प्रभृत्येकादशीत्रयोदश्यौ गृह्येते, न चन्द्रतिथी, **तासामिति**। निर्धारणविषयत्वेन रात्रीणां सम्बन्धात्समानजातीयश्च

निर्धार्यतया प्रतीयते, 'कृष्णा गवां सम्पन्नक्षीरेति'। षड्रात्रगमनप्रतिषेधोऽयमदृष्टार्थः। **शेषाः प्रशस्ता दशरात्रयः**। षण्णां प्रतिषेधाद्दशसु प्राशस्त्यं सिद्धमेवानूद्यते ।।४७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **एकादशी त्रयोदशीति** षोडशदिनसमुदायापेक्षया। **प्रशस्ता** अनिन्दिता ।।४७।।

(३) **कुल्लूकः**। **तासां** पुनः षोडशानां रात्रीणां शोणितदर्शनात्प्रभृत्या**द्याश्चतस्रो रात्रय एकादशी त्रयोदशी** च रात्रिर्गमने निन्दिता। अवशिष्टा **दशरात्रयः प्रशस्ता** भवेयुः ।।४७।।

(४) **राघवानन्दः**। वर्ज्यमाह **तासामिति**। तन्धिरार्थः। एकादशी तु दशदिनापेक्षया तथा त्रयोदशी च दशदिनान्यवशिष्टानि ।।४७।।

(५) **नन्दनः**। तासु षोडशसु प्रशस्ता रात्रीराह **तासामिति**। तासां षोडशानां रात्रीणां मध्ये **आद्याश्चतस्रो** रात्रय **एकादशी त्रयोदशी** च रात्रिर्निन्दिता, इति। **शेषा दशरात्रयः** प्रशस्ताः ।।४७।।

(६) **रामचन्द्रः**। **तासां** षोडशरात्रीणां मध्ये **आद्याश्चतस्रः** निन्दिताः; **पुनरेकादशरात्रिर्निन्दिता, एकादश**दिवसस्येत्यर्थः। तथा **त्रयोदशी** रात्रिर्निन्दिता, शेषा **दशरात्रयः प्रशस्ता** उक्ताः ।।४७।।

(७) **मणिरामः**। **तासां** षोडशरात्रीणां मध्ये ।।४७।।

(८) **गोविन्दराजः**। **तासामिति**। **तासां** पुनः षोडशानां रात्रीणां **आद्याश्चतस्रः** ऋतुदर्शनात् प्रभृति **चैकादशीत्रयोदश्यौ** च निन्दिताः। अतस्तासु न गन्तव्यम्। **शिष्टा दशरात्रयो** गमने **प्रशस्ताः स्युः** ।।४७।।

## युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।।
## तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ।। ४८ ।।

(१) **मेधातिथिः**। तासु दशसु या युग्मा रात्रयः षष्ठ्यष्टमी दशमी द्वादशी चतुर्दशी षोडशी तासूपगच्छतः पुत्रा जायन्ते। **अयुग्मासु स्त्रियो** दुहितरः। तस्मात्पुत्रोत्पत्तिसिद्ध्यर्थं युग्मासु **संविशेद्** भजेत मैथुनधर्मेण **स्त्रियमार्तवे**। अनुवादोऽयम्। अयमपि नियम एव—अनुत्पन्नपुत्रस्यायुग्मास्वगमनम् ।।४८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **युग्मासु** षष्ठ्यादिरात्रिषु **पुत्रा जायन्ते**। **संविशेदु**पगच्छेत् ।।४८।।

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वोक्तास्वपि दशसु षष्ठ्यष्टम्याद्यासु रात्रिषु गमने पुत्रा उत्पद्यन्ते। **अयुग्मासु** पञ्चमीसप्तम्यादिषु दुहितरः। अतः **पुत्रार्थी युग्मा**स्वृतुकाले भार्यां गच्छेत् ।।४८।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव प्रासंगिकं दृष्टं फलमाह **युग्मास्विति**। **स्त्रियोऽयुग्मास्विति** च्छेदः। **विशेन्नि**विष्टमना गच्छेत्। अन्यथाङ्गवैकल्यादि स्यादपत्यस्य ।।४८।।

(५) **नन्दनः**। प्रशस्तासु रात्रिषु दशसु संवेशने फलमाह **युग्मास्विति**। **संविशेत्** संगच्छेत् ।।४८।।

(६) **रामचन्द्रः**। दशरात्रीणां मध्ये **युग्मासु** रात्रिषु गच्छतः **पुत्रा जायन्ते**। **अयुग्मासु** रात्रिषु गच्छतः **स्त्रियः** कन्या भवन्ति। तस्मात्कारणात्**पुत्रार्थी** आर्तवे काले **युग्मासु स्त्रियं संविशेद्**गच्छेत् रात्रिग्रहणं दिवसप्रतिषेधार्थम् ॥४८॥

(७) **मणिरामः**। संविशेत् गच्छेत् ॥४८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **युग्मास्विति**। युग्मासु षष्ठचष्टम्याद्यासु गच्छतः पुत्रा जायन्ते। **अयुग्मासु** सप्तमीनवम्याद्यासु स्त्रियः। अतः पुत्रार्थी युग्मासु ऋतुकाले भार्यां व्रजेत् यास्वल्पीभावादार्तवस्य। तथा **चायुर्वेदः** 'युग्मास्वल्पीभवत्यार्तवमयुग्माम् तस्मात्पुत्रस्य दुहितुर्जन्मोत्पद्यते' ॥४८॥

## पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥
## समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥ ४९ ॥

(१) **मेधातिथिः**। **शुक्रं** वीर्यं पुरुषस्य रेतः **स्त्रियाः** शोणितम्। उक्तं भगवता **वसिष्ठेन** (अ० १५ सू० १) "शुक्रशोणितसम्भवः पुरुष" इति। स्त्रीबीजादधिके पुम्बीजेऽयुग्मास्वपि पुत्रो जायते, युग्मास्वपि स्त्रीबीजस्याधिक्ये कन्यैव। अयुग्मास्वपि रात्रिषु पुत्रार्थिनो गमनानुष्ठानार्थमेतत्। यदा परिपुष्टमात्मानं वृष्याहारयोगेन समधिकवीर्यं मन्येत स्त्रियाश्च कथंचिदपचयं तदा पुत्रार्थी गच्छेदित्युपदिष्टं भवति। आधिक्यं चात्र न परिमाणतः, किं तर्हि? सारतः।

**समेऽपुमान्** मिश्रीकृते **पुंस्त्रियौ**। **अपुमान्** नपुंसकमिति केचित्। अन्ये साम्य इति पठन्ति। उभयोः साम्येऽपुमानेव। **पुंस्त्रियौ** वा। गर्भाधान्यां यदा वायुर्द्रवरूपत्वात्संसृष्टे शुक्रशोणिते समं विभजेत एकत्र भागमन्यत्र तावदेव तदा यमौ जायेते। तत्र समे विभागेऽपि स्त्रीबीजाधिक्ये स्त्री, पुम्बीजाधिक्ये पुमान्। **क्षीणे** बीजे सारतः **विपर्ययो**ऽग्रहणं गर्भस्य, नपुंसकोत्पत्तिर्वा ॥४९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र व्यभिचारो दृश्यते, तेन अत्र कारणमाह **पुमानिति**। **स्त्रियाः शुक्रे** शोणिततां गते। **समे**ऽपुमान्नपुंसकम्। **पुंस्त्रियौ** यमौ। एतच्चोभयोरतिवृद्धबहुशुक्रत्वेऽपि तदपेक्षया पुंसोऽधिकशुक्रत्वे पुमांसौ। स्त्रिया अधिकशुक्रत्वे स्त्रियावित्यपि ग्राह्यम्। **क्षीणे**ऽनयोः शुक्रे रोगादिना **क्षीणे** स्वभावतो वाऽल्पे **विपर्ययो**ऽपत्यानुपपत्तिः ॥४९॥

(३) **कुल्लूकः**। **पुमानिति**। **पुंसो** बीजे**ऽधिके**ऽयुग्मास्वपि पुत्रो जायते स्त्रीबीजेऽधिके युग्मास्वपि दुहितैव। अतो वृष्याहारादिना **निजबीजाधिक्यं** भार्यायाश्चाहारलाघवादिना बीजाल्पत्वमवगम्य युग्मास्वपि पुत्रार्थिना गन्तव्यमिति दर्शितम्। स्त्रीपुंसयोस्तु बीजसाम्ये**ऽपुमान्नपुंसकं** जायते। **पुंस्त्रियाविति यमौ** च। निःसारेऽल्पे चोभयोरेव बीजे गर्भस्यासंभवः ॥४९॥

(४) **राघवानन्दः।** **पुमानिति।** युग्मास्वपि भवत्यधिके रजसि स्त्री भवेदधिके **स्त्रिया** इति, रजसीति शेषः। **अपुमान्नपुंसकं** **पुंस्त्रियौ** पुमांसौ स्त्रियौ स्त्रीपुमांसौ चेति स्वरसतो दृष्टत्वात्। **क्षीणे** निःसारे **अल्पे** च **विपर्ययो**ऽपत्याभावः ।।४९।।

(५) **नन्दनः।** **समे अपुमानिति** पदच्छेदः। **अपुमान्नपुंसकः।** पुमांश्च स्त्री च **पुंस्त्रियौ।** **क्षीणे** सारतः। **अल्पे** परिमाणतः **विपर्ययः** अनुत्पत्तिः। यत एवमतः पुत्रार्थिना तामुपवासयता स्वयं सौहित्ययुक्तेन स्वशुक्राधिक्ये यत्नः कार्य इत्यभिप्रायः ।।४९।।

(६) **रामचन्द्रः।** **पुंसः** पुरुषस्याधिके **शुक्रे** **पुमान्पुत्रो** भवति। **स्त्रिया** रजोधिके **स्त्री** कन्या भवति। रजःशुक्र**समे** **पुमान्नपुंसकः** षण्डो भवति वा **पुंस्त्रियौ** भवतः। **यमौ** कन्या-पुत्रौ। पुमानेव स्त्र्याकारः। **क्षीणे** वा शुक्रे **अल्पे** वा रजसि **विपर्ययः** गर्भस्यासंभव अनुत्पत्तिः ।।४९।।

(७) **मणिरामः।** इदानीं स्ववीर्याधिक्यं स्त्रीणां वीर्याल्पत्वं च ज्ञात्वा स्त्रीगमनं कार्यम्। अन्यथा युग्मास्वपि कन्योत्पत्तिरेव भवतीति दर्शयितुमाह **पुमानिति।** **पुंसः अधिके शुक्रे पुमान्।** **स्त्रिया अधिके** शुक्रे स्त्री। **समे** उभयोः समे वीर्ये **अपुमानिति** नपुंसकम्। **पुंस्त्रियो** वा पुत्रकन्ये वा **क्षीणे** उभयोर्वीर्याभावे **विपर्ययः** गर्भस्यासंभवो भवतीत्यर्थः ।।४९।।

(८) **गोविन्दराजः।** **पुमानिति।** पुंसोऽधिकबीजे अयुग्मास्वपि रात्रिषु पुमान् स्त्र्याकृतिः दुर्बलो हीनाङ्गो जायते, आयुर्वेद एवाभिधानात्। स्त्रीबीजे त्वधिके युग्मास्वपि स्त्री पुरुषाकृतिः दुर्बला हीनाङ्गी वा जायते आयुर्वेददर्शनात्। समे स्त्रीपुरुषबीजे युग्मास्वयुग्मास्वपि नपुंसकं जायते ।।४९।।

**निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।।**
**ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ।।५०।।**

(१) **मेधातिथिः।** **निन्द्यासु षट्स्वन्यासु** चानिन्द्यास्वप्यष्टासु **रात्रिषु स्त्रियो वर्जयन्**परिहरन्द्वे रात्री अवशिष्टे यदि गच्छति, पर्ववर्जं, तदा **ब्रह्मचार्येव भवति** ब्रह्मचर्यफलं प्राप्नोति। **यत्र तत्राश्रमे वसन्।** अर्थवादोऽयम्। न तु वानप्रस्थाद्याश्रमेषु रात्र्यभ्यनुज्ञा जितेन्द्रियत्वविधानात्सर्वाश्रमेषु गार्हस्थ्यादन्येषु वीप्सायाश्चार्थवादतयाऽप्युपपत्तेः। एताश्च रात्रयो वर्ज्या न क्रमेणैव। किं तर्हि? यथेच्छया पर्ववर्जं गमनं यथा न भवति तथा रात्रिद्वयम-भ्यनुज्ञायते। 'किं पुनर्ब्रह्मचर्यस्य फलम्?।' विशेषाश्रवणात्स्वर्गः। क्वचित्तु श्रूयते—"न ब्रह्मचारी प्रत्यवैतीति"। स्वल्पैरतिक्रमैर्न दुष्यतीति ।।५०।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** प्राक् निन्दितत्वेनोक्तासु षट्सु रात्रिषु **तथान्यासु** प्रशस्ततयोक्ता-नामपि दशानां मध्ये **अष्टासु स्त्रियो** वर्जयन्नस्मिन्नृतुषोडशकमध्ये रात्रिद्वयमेवोपगच्छन्नित्यर्थः। **यत्र तत्रे**ति वचनात्। गार्हस्थ्य इव सपत्नीकवानप्रस्थेऽपि ऋतुगमनमस्तीति गम्यते; अन्यथा गार्हस्थ्येऽपीत्येवावक्ष्यत् ।।५०।।

(३) **कुल्लूकः।** **निन्द्यासु** पूर्वोक्तासु षट्सु रात्रिष्व**न्यासु** च निन्द्यास्वपि यासु कासुचिदष्टासु स्त्रियो वर्जयन्द्वे रात्री अवशिष्टे। पर्ववर्जिते व्रजन्नखण्डित**ब्रह्मचार्येव** भवति। **यत्र तत्राश्रमे वसन्निति** वानप्रस्थापेक्षया। तस्य हि भार्यया सह गमनपक्षे ऋतुगमनं प्रसक्तम्। न च वनस्थभार्याया ऋतुर्न भवतीति वाच्यम्। 'वनं पञ्चाशतो व्रजेदि'ति 'त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीं ज्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा' 'त्र्यधिकवर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत् त्रिगुणः पुमानि'त्यादि शास्त्रपर्यालोचनया तत्संभवात्। **मेधातिथिस्तु** यत्र तत्राश्रमे वसन्नित्यनुवादमात्रं गृहस्थेतराश्रमत्रये जितेन्द्रियत्वविधानाद्रात्रिद्वयाभ्यनुज्ञानासंभवादित्याह। **गोविन्दराजस्तु**तानुत्पन्नपुत्रस्याश्रमान्तरस्थस्यापीच्छया पुत्रार्थं रात्रिद्वयगमने दोषाभावप्रतिपादनार्थमेतत्। यत्र तत्राश्रमे वसन्निति वचनात्पुत्रार्थी संविशेदिति च प्रस्तुतत्वात्पुत्रस्य च महोपकारकत्वादित्याह। 'हन्त **गोविन्दराजेन** विशेषमविवृण्वता। व्यक्तमङ्गीकृतमृतौ स्वदारसुरतं यतेः' ॥५०॥

(४) **राघवानन्दः।** निन्दिता एकादशी त्रयोदशी आद्याश्चतस्र इति षट्सु अष्टासु च अनिन्दितासु निशासु एवं रात्रिद्वयमवशिष्यते। तयोर्गच्छन् **ब्रह्मचार्येव** भवतीत्यर्थवाद इति **मेधातिथिः।** **गोविन्दराजस्तु** ऋतावुपेयादेव अन्यभार्यां न व्रजेत्, अनृतावपि भार्याप्रीतये व्रजेदिति पर्ववर्जमित्युभयत्र संबध्यते। अत एव **गौतमः** 'ऋतावुपेयादनृतौ च प्रतिषिद्धवर्जं'। **याज्ञवल्क्योऽ**पि (आचार. ८१) 'यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्।' सन्तत्यभावे आश्रमान्तरयोः कुटीचकवानप्रस्थयोरपि यत्र तत्राश्रमे वसन्निति स्वरसात् तादृशदिनद्वये गमनं युक्तम्। तद्दिनद्वयमष्टमीं वा चतुर्दशीमित्याद्यपर्वोक्तेरिति पञ्चाशदुत्तरं वनं प्रति भार्यया सह गमनविधानेन स्त्रियाः पुत्रोत्पादनयोग्यकालत्वात् 'पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रिय'मिति साधारण्याच्च। यत्तु 'गृहस्थ एवैषां योनिरिति गौतमसूत्रं व्याख्यातं च **हरदत्ते**नेत्येषामपत्यं चण्डाल इति तदप्राप्तपत्नीविषयम्। स्वपत्न्यां न दोषोऽन्यथा यत्र तत्रेति मनुवचनविरोधः। 'कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः' इति (गीता १।४०) **श्रीकृष्णो**क्तेः। नाप्यर्थवादो द्रव्यसंस्काराङ्गकर्मस्वेव स इति। गृहस्थानां तु दिनषट्कं प्रशस्तम्। तदुक्तं **याज्ञवल्क्येन,** (आचार. ७९) 'षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्। ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेदि'ति ॥५०॥

(५) **नन्दनः।** **निन्द्याः** प्रथमाश्चतस्र एकादशी त्रयोदशी तासु **अष्टासु चान्यासु** स्त्रीजननिमित्तप्रतिनिषिद्धास्वयुग्मासु पञ्चमीसप्तमीनवमीपञ्चदशीप्रभृतिषु प्रजाफलरहितासु चतसृषु चेत्यर्थः। एकविंशीप्रभृतीनामृतोरकालत्वादष्टास्वित्युक्तम्। यत्रतत्राश्रमे गृहस्थाश्रमे वसन्नपि। एवमुद्वोढुर्न यम उक्तः ॥५०॥

(६) **रामचन्द्रः।** **निन्द्यास्वन्यासु** अयुग्मासु रात्रिषु **स्त्रियो** वर्जयेदित्यर्थः। अवशिष्टासु गच्छन्**ब्रह्मचारी** भवति। **यत्र तत्राश्रमे वसन्ब्रह्मचार्येव** भवति भवेदित्यर्थः। अयमर्थवादो न तु वानप्रस्थाद्याश्रमेषु गार्हस्थ्यादन्येषु स्त्रियो गमनम् ॥५०॥

(७) **मणिरामः।** **निन्द्यासु** पूर्वोक्तासु षड्रात्रिषु अन्यासु च अनिन्द्यास्वपि दश रात्रिषु मध्ये अष्टासु रात्रिषु स्त्रियो वर्जयन् द्वे रात्री अवशिष्टे पर्ववर्जिते व्रजन् अखण्डितब्रह्मचर्यो भवति। यत्रतत्राश्रमे वसन् इति वानप्रस्थापेक्षया। तस्य हि भार्यया सह गमनपक्षे

ऋतुगमनस्य प्रसक्तत्वात्। तथा च गृहस्थो वानप्रस्थश्च षोडशाहोरात्रिमध्ये निन्द्यदिवसानि पर्व च वर्जयित्वा यस्मिन् कस्मिन् दिनद्वये चेदृतुगमनं करोति तदा तौ ब्रह्मचर्यौवेव ज्ञातव्याविति निष्कृष्टार्थः ॥५०॥

(८) **गोविन्दराजः**। निन्द्यासु षट्सु **अन्यासु** चाष्टासु रात्रिषु यासु कासुचिन्न क्रमेणैव स्त्रियं परिहरन् रात्रिद्वयेऽवशिष्टे गच्छन् गार्हस्थ्यादाश्रमान्तरेऽपि वसन् **ब्रह्मचार्येव भवति** न ब्रह्मचर्यखण्डनदोषोऽस्य भवतीत्युत्पन्ननिनिष्टपुत्रस्य आश्रमान्तरस्थस्यापि इच्छया पुत्रार्थं रात्रिद्वयगमने यत्र तत्राश्रमे वसन्नपि पुत्रार्थी संविशेदिति प्रस्तुतत्वात् पुत्रस्य च महोपकारकत्वेन श्रवणात् यत् आश्रमान्तरेऽत्यन्तब्रह्मचर्योपदेशादयुक्तमेतदित्याहुः; तदसत्, अस्यापि शास्त्रगोचरत्वात् ॥ ५० ॥

**न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ।**
**गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आसुरे शुल्कप्रतिषेधोऽयं, उत्तरत्र च कन्यार्थसंग्रहोपादानात्। **विद्वान्** ग्रहणदोषज्ञः। कन्यापिता स्वल्पमप्यर्थं धनं न गृह्णीयात्। गृह्णानोऽपत्यविक्रयदोषेण युज्यते। कः पुनरेष शुल्को नाम? आभाषणपूर्वं बलाद्गृहीतम्। यत्र तुच्चनीचपणापणो भवति, कन्यागुणापेक्षमूल्यव्यवस्था, स क्रय एव। इह तु महागुणाया अपि कन्यायाः स्वल्प धनम्। अनाभाषणपूर्वं वा ग्रहणम्। 'न विक्रयस्यैष धर्मे' इत्यतो विक्रयाध्यारोपेण निन्द्यते ॥५१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **लोभेन** लोभात्। न त्वार्षधर्मबुद्ध्या ॥५१॥

(३) **कुल्लूकः**। **कन्यायाः पिता** धनग्रहणदोषज्ञोऽल्पमपि धनं कन्यादाननिमित्तकं **न गृह्णीयात्**। यस्मा**ल्लोभेन तद्गृह्णन्नपत्यविक्रयो** भवति ॥५१॥

(४) **राघवानन्दः**। आर्षासुरोद्वाहयोः शुल्कदानमुक्तं तत्स्वमतेन दूषयति **नेति त्रिभिः**। **शुल्कं** कन्यामूल्यम्। **लोभेन** तत्कुर्वन्न**पत्यविक्रयी** उपपातकी स्यात्। गोवध इत्यपत्यविक्रयस्य उपपातकत्वेन आम्नानात् ॥५१॥

(५) **नन्दनः**। अथ कन्याप्रदातुर्नियममाह **न कन्याया** इति ॥५१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **लोभेन शुल्कं** गृह्ण**न्नरोऽपत्यविक्रयी** स्यात्। अपत्यविक्रयपापभुग्भवतीत्यर्थः ॥५१॥

(७) **मणिरामः**। **विद्वान्** वरसंबन्धिधनग्रहणदोषज्ञः ॥५१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। **कन्यायाः पिता** धनग्रहणदोषज्ञः स्वल्पमपि कन्यादानविनिमयरूपधनं न गृह्णीयात्। यस्मा**ल्लोभेन** तद् **गृह्णन् अपत्यविक्रयी** भवेत् ॥५१॥

**स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।।**
**नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ।।५२।।**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्यैव शेषः। स्त्रीनिमित्तानि धनानि, कन्यादाने वराद्यानि गृह्यन्ते। **ये बान्धवाः** पित्रादयः **मोहादुपजीवन्ति**। यथोक्तं 'ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वेति'। सुवर्णरजतादि 'धनम्'। **नारीयानानि**। यानमश्वादि। **वस्त्रं वा**। एतावन्मात्रमपि न जातूपजीवनीयं वासो यानादि, किं पुनर्बहु। उपजीवतां फलमाचष्टे। ते **पापाः** शास्त्रप्रतिषिद्धसमाचरणाद**धोगतिं** नरकं **यान्ति**।

अथवा **स्त्रीधनानीति** नवमे दर्शयिष्यति। तानि ये मोहादुपजीवन्ति **बान्धवाः**, पिता तत्पक्षाश्च, भर्ता भर्तृपक्षाश्च। एवं यानादि। एवं वस्त्रम्। स्त्रीणां वृद्धौ संनिधानाच्छाब्दः संनिधिः कल्प्यते, यथा "राजपुरुषः कस्य राज्ञः" इति ।।५२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्त्रीधनानि** स्त्रीदाननिमित्तेन प्राप्तानि धनानि। एवं **नारीयानानी**त्यत्रापि ।।५२।।

(३) **कुल्लूकः**। कन्यादाननिमित्तकशुल्कग्रहणनिषेधप्रसङ्गान्नवमाध्यायाभिधेयस्त्रीधनग्रहणनिषेधोऽयम्। **ये बान्धवाः** पतिपित्रादयः कलत्रदुहित्रादिधनानि **गृह्णन्ति नारी स्त्री यानान्य**श्वादीनि **वस्त्रं** चेति प्रदर्शनार्थम्, सर्वमेव धनं न ग्राह्यम्, **ते गृह्णानाः** पापकारिणो नरकं गच्छन्ति ।।५२।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **स्त्रीति**। **स्त्रीधनानीति** कैमुत्यन्यायेन प्रासंगिकम्। **बान्धवाः** पतिपुत्रादयः। **नारीयानानीति** 'कन्यायै चैव शक्तितः' इत्युक्तत्वात् विभवे सतीति शेषः ।।५२।।

(५) **नन्दनः**। न केवलं कन्यायाः पितुरेवायं शुल्कग्रहणप्रतिषेधः। किन्तु बान्धवानामपीत्याह **स्त्रीधनानीति**। स्त्रीनिमित्तानि **धनानि** स्त्रीधनानि, कन्यादानलब्धानीति यावत्। **नारी** शुल्करूपेण गृहीता दासी ।।५२।।

(६) **रामचन्द्रः**। नार्याः कन्याया यानानि **नारीयानानि** सुवर्णरजतादि **धनं मोहात्** सेवन्ते नार्या **वस्त्रं वा ते पापा अधोगतिं यान्ति** ।।५२।।

(७) **मणिरामः**। नवमाध्यायाभिधेयस्त्रीधनग्रहणनिषेधमाह **स्त्रीधनेति**। **ये बान्धवाः** पतिपित्रादयः **स्त्रीधनानि** वस्त्रदुहित्रादिधनानि **उपजीवन्ति** गृह्णन्ति स्त्री **नारी यानानि** अश्वादीनि वस्त्रं चेति तु प्रदर्शनार्थमुक्तम्। तथा च सर्वमेव धनं न ग्राह्यमित्यर्थः ।।५२।।

(८) **गोविन्दराजः**। **स्त्रीधनानीति**। दुहितृभगिन्यादिसंबन्धीनि हिरण्यानि दासीवाहनवस्त्राणि वा पित्रादय उपभुंजते। अतस्ते **पापाः** पापकर्माणो नरकं व्रजन्ति। प्रसङ्गात् स्त्रीधनोपजीवनप्रतिषेधः ।।५२।।

**आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ।।**
**अल्पोऽप्येवं महान्वाऽपि तावानेव स विक्रयः ।।५३।।**

(१) **मेधातिथिः**। स्त्रीगवी च पुंगवश्च **गोमिथुनम्**। **केचिदाहु**रेतदादेयमिति। मनोस्तु मतम्— **मृषैव तत्** मिथ्या, नादेयमित्यर्थः। **अल्पोऽप्येवम्**। अल्पसाधनोऽल्पः। **एवं महान् भवति**। **तावानेव विक्रयः** ।।५३।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शुल्कं** शुल्कत्वेन पित्रैव ग्राह्यम्, न कन्यया; तेन लोभादपि तस्य ग्रहणे दोषाभाव इति केचिदाहुः। **तन्मृषा**ऽसत्यम्। यावताऽल्पस्यापि मूल्यस्य लोभेन ग्रहणे **विक्रय** एव स्यान्न च विना लोभं वैधं तद्ग्रहणं संभवति। विधेरभावादित्यर्थः ।।५३।।

(३) **कुल्लूकः**। आर्षे विवाहे गोमिथुनं शुल्कं वराद्ग्राह्यमिति केचिदाचार्या वदन्ति, तत्पुनरसत्यं; यस्मादल्पमूल्यसाध्यत्वा**दल्पो वा** भवतु, बहुमूल्यसाध्यत्वा**न्महान्वा** भवतु, **स** ताव**द्विक्रयो** भवत्येव। यत्पुनः गोमिथुन 'एकं गोमिथुनं' इति (२९) पूर्वमुक्तं तत्परमतमिति **गोविन्दराजः** 'तदयुक्तम्। मनुमते लक्षणमार्षस्य न स्यादेव, वराद्गोमिथुनग्रहणपूर्वककन्यादानस्यैवार्षविवाहलक्षणत्वात्। मन्वभिमतमन्यदेवार्षलक्षणम् एकं गोमिथुन' मिति परमतमिति चेत् 'एकं गोमिथुनं द्वे चेत्येतत्परमतं यदि। तदा मनुमतेनार्षलक्षणं किं तदुच्यताम्। अष्टौ विवाहान्कथयन्नार्षोढासंततेर्गुणान्। मनुः किं स्वमतेनार्षलक्षणं वक्तुमक्षमः ?।।'

**मेधातिथिस्तु** पूर्वापरविरोधोपन्यासनिरासमेव न कृतवान्। तस्मादस्माभिरित्थं व्याख्यायते—आर्षे विवाहे गोमिथुनं शुल्कमुत्कोचरूपमिति केचिदाचार्या वदन्ति। मनोस्तु मतं नेदं, शास्त्रनियमितजातिसंख्याकं ग्रहणं न शुल्करूपं, शुल्कत्वे मूल्याल्पत्वमहत्त्वेऽनुपयोगिनी विक्रय एव तदा स्यात्। किंत्वार्षविवाहसंपत्त्या अवश्यकर्तव्ययागादिसिद्धये कन्यायै वा दातुं शास्त्रीयं धर्मार्थमेव गृह्यते। अत एवार्षलक्षणश्लोके 'वरादादाय धर्मत' इति धर्मतो धर्मार्थमिति तस्यार्थः। भोगलोभेन तु धनग्रहणं शुल्करूपमशास्त्रीयम्। अत एव 'गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेने'ति निन्दामुक्तवान्। तस्मात्पौर्वापर्यपर्यालोचनादार्षे धर्मार्थगोमिथुनं ग्राह्यं, न तु भोगार्थमिति मनुना स्वमतमनुवर्णितम् ।।५३।।

(४) **राघवानन्दः**। **आर्षे गोमिथुनं** यच्छुल्कं। अल्पत्वमहत्त्वयोरप्रयोजकत्वेन। तावतैव विक्रयादिति केचिदाचार्या आहु**स्तन्मृषैव**। आर्षलक्षणे धर्मत इत्युक्तेरिति शास्त्रोक्तं विरुद्धं न भवतीत्यर्थः। **मेधातिथिस्तु** पूर्वापरविरुद्ध एवेत्याह। अतो गोमिथुनद्वयस्य धर्मार्थतैव। ततोऽतिरेके विक्रयः। इच्छाविक्रये न्यूनाधिक्यं प्रयोजकं, अन्यथोद्वाहानामष्टधात्वविरोधः। नियमविधौ च दुरदृष्टादृष्टेरिति हृदयम् ।।५३।।

(५) **नन्दनः**। **गोमिथुनं शुल्कमाहु**रनुजानते **तन्मृषा** तदयुक्तम्। **अल्पो** वा **महान्वा** द्रव्यलोभादादाने शुल्कस्य विक्रय एव तस्मादयुक्तमिति ।।५३।।

(६) **रामचन्द्रः**। **आर्षसंज्ञे** विवाहे **गोमिथुन**शुल्कं **केचिदाहुस्तन्मृषैव** मिथ्यैव **अल्पो वा** शुल्को **महान्वा** शुल्कस्तावानेव स विक्रयसंज्ञः ।।५३।।

(७) **मणिरामः** ! इदानीं आर्षविवाहे गोमिथुनं ग्राह्यमिति यदुक्तं तत् धर्मार्थमेव ग्राह्यं, न भोगार्थमित्याह **आर्षे इति** । मृषैव आर्षविवाहे गोमिथुनं शुल्कमिति ये आहुः– तन्मतं मिथ्यैवेत्यर्थः । तथा च धर्मार्थगृहीतं तच्छुल्कं न भवति । भोगलोभेन गृहीतमेव शुल्कमिति मनुना स्वमतमुद्घाटितमिति बोध्यम् ।।५३।।

(८) **गोविन्दराजः** । **आर्षे इति** । **आर्षे** विवाहे **गोमिथुनं शुल्कं** वराद्ग्राह्यमिति केचिदाचार्याः प्राहुः--तत्पुनरसत्यं, यस्मादल्पार्थं साध्यत्वादल्पो वा भवतु बहुमूल्यसाध्यत्वान् महान् वा भवतु सर्वथा विक्रयस्तावदसौ भवति । 'एवं एकं गोमिथुन'मित्येतत् परमतमित्यवसीयते ।।५३।।

## यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ।।
## अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ।। ५४ ।।

(१) **मेधातिथिः** । "किं वराद्धनाधिगमो विक्रयो भवति ?" । नेति ब्रूमः । **ज्ञातयः** कन्यायामधिकृताः स्वार्थ**माददते** गृह्णन्ति तदा **स विक्रयः** । **अर्हणं** कन्यार्थे धनग्रहणं कन्यानां **तदर्हणं** पूजनं भवति । बहुमानः कन्यानामात्मनि भवति, 'ईदृश्यो वयं यद्धनं दत्वा विवाह्यामहे' । अन्यत्रापि पूज्या भवन्ति 'सुभगा एता' इति । आभरणादि वा तेन धनेन कर्तव्यमतोऽभ्यर्हिताः शोभावत्यो भवन्ति । **आनृशंस्यम**पापत्वं केवलं न स्वल्पोऽप्यधर्मगन्धोऽस्ति । अतोऽनेनार्थवादेन कन्यार्थं धनग्रहणं विधीयते ।।५४।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यदा त्वार्षे कन्यायै गोमिथुनं तथा अनुरागोत्पत्त्यर्थं कन्यायै भूषणादि स्वेच्छया विवाहात्प्रागेव वरो ददाति, ज्ञातयस्तु वित्तं न गृण्हन्ति तदा ज्ञातीनां विक्रयदोषो नास्ति । यावता कुमारीणां पूजार्थं तद्दानं तथा आनृशंस्यं करुणारूपं तद्वित्तदानं वरेण स्वेच्छया कृतमतो ज्ञातीनां न दोषकरमित्यर्थः । यद्वा यत्राददते तत् कुमारीणां पूजनमानृशंस्यं करुणाप्रवृत्तिजन्यपुण्यहेतुश्चेति व्याख्यातम् । आसुरस्तु विवाहः कन्याया अलंकारस्य विवाहात्पूर्वं दाने भवत्येव तल्लक्षणयोगादिति ग्राह्यम् ।।५४।।

(३) **कुल्लूकः** । 'आर्षे गोमिथुनं शुल्क'मित्युक्तम् । इदानीं कन्यार्थमपि धनस्य दानं न शुल्कमित्याह **यासामिति** । यासां कन्यानां प्रीत्या वरेण दीयमानं धनं पित्रादयो न गृह्णन्ति, किंतु कन्यायै समर्पयन्ति, सोऽपि न **विक्रयः** । यस्मात्**कुमारीणां** पूजनं **तदानृशंस्यम**हिंसकत्वं **केवलं** तदनुकम्पारूपम् ।।५४।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैव व्यतिरेकमाह **यासामिति** । यच्च 'कन्यायै चैव शक्तित' इत्युक्तं तदपि न शुल्कमित्याह **अर्हणमिति** । **आनृशंस्यं** वक्ष्यमाणस्त्रीक्रूरत्वनिवृत्त्यर्थम् ।।५४।।

(५) **नन्दनः** । कन्याया भूषणाच्छादनार्थं वराद्धनादानं न दोषावहमित्याह **यासामिति** । **यासां** कन्यानाम् । **आददते** उपजीवन्ति । **केवलं** निश्चितम् ।।५४।।

(६) **रामचन्द्रः** । **यासां** नारीणां **ज्ञातयः शुल्कं नाददते** विक्रयसंज्ञो न भवति । **आनृशंस्यम**पापत्वं करुणारूपम् ।।५४।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं कन्यार्थं यद्धनं गृह्यते तदपि न शुल्कमित्याह **यासामिति**। यासां कन्यानां प्रीत्या वरेण दीयमानं धनं **ज्ञातयः** पित्रादयः न **आददते** स्वभोगार्थं किन्तु कन्यायै समर्पयन्ति, सोऽपि न विक्रयः। यस्मात् **कुमारीणामर्हणं** पूजनं तत् **आनृशंस्यं केवलं** तदनुकंपा-रूपम् ।।५४।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यासामिति**। **यासां** कन्यानां पुनः पित्रादयः आत्मार्थं दानं दत्तं वरान्न गृह्णन्ति अपितु प्रसन्नैः भर्त्रादिभिः अर्पणपूर्वकं कन्यार्थं दत्तं गृह्यते, नासौ विक्रयः; किं तर्हि ? पूजनं तत्, कन्यानां **केवलं** विक्रयस्पर्शशून्यं अनुकम्पारूपं तत् ।।५४।।

**पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।।**
**पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ।। ५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। न केवलं वरादादाय दातव्यं कन्याबन्धुभिरपि तु तैरपि दातव्यम्। **पितृभिः** साहचर्यात्पितृशब्दः पितामहपितृव्यादिषु वर्तते, ततो बहुवचनम्। व्यक्त्यपेक्षं वा बहुवचनम्। एवं **पतिभिः** श्वशुरादिभिर्व्यक्त्यपेक्षं वा। **देवराः** पत्युर्भ्रातरः। **पूज्याः**। पुत्रजन्माद्युत्सवेषु निमन्त्रणपूर्वकमानाश्रयबहुमानमादरेण भोजनादिना पूज्याः। **भूषयितव्याः** वस्त्राद्यलंकारेणाङ्गलेपनादिभिर्मण्डयितव्याः। अत्र फलं **बहुकल्याणमीप्सुभिः**। कल्याणं कमनीयं पुत्रधनादिसंपदरोगताऽपरिभव इत्यादि बहुशब्दात्सर्व**मीप्सुभि**रा-प्तुमिच्छुभिः प्राप्तुकामैः। फलार्थो विधिरयम् ।।५५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अर्हणस्य कर्तव्यतां प्रपञ्चयति **पितृभिरिति**। कन्याव्यक्ति-भेदापेक्षया बहुवचनम्। पूज्याः सम्मानादिना ।।५५।।

(३) **कुल्लूकः**। न केवलं विवाहकाले वरेण दत्तं धनं समर्पणीयं किंतु तदुत्तरकालमपि पित्रादिभिरप्येता भोजनादिना **पूजयितव्याः** वस्त्रालंकारादिना **भूषयितव्याश्च** बहुधना-दिसंपदं प्राप्तुकामैः ।।५५।।

(४) **राघवानन्दः**। प्रसंगात् प्रकारान्तरेण तासामर्हणमाह **पितृभिरिति**। पूज्याः सत्कर्तव्या वाचा, **भूषयितव्या** वस्त्रालङ्कारादिभिः। भर्त्रा भार्यापि संतोषिता कल्याणदा भवति। **बहुकल्याणमीप्सुभि**रपर्याप्तमङ्गलाङ्घ्रिभिः ।।५५।।

(५) **नन्दनः**। उक्तं चैतत्पञ्चभिः श्लोकैः समर्थयति **पितृभिरिति** ।।५५।।

(६) **रामचन्द्रः**। **पितृभि**रुभयत्र पूज्याः भोजनादिना ।।५५।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं विवाहकाले पित्रादिभिः कन्यायै यद्दत्तं वस्त्रालंकारादि तद्दत्तमेव। पुनरपि यावज्जीवं देयमेवेत्याह **पितृभिरिति**। **पूज्या** भोजनादिना। **भूष-यितव्याः** अलंकारादिना ।।५५।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पितृभिरिति**। पितृ-भ्रातृ-भर्तृभिः बह्वीं सम्पदमाप्तुकामैः **स्त्रियः पूज्याः** अलंकर्तव्याश्च ।।५५।।

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥**
**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **देवता रमन्ते** तुष्यन्ति प्रसीदन्ति। प्रसन्नाश्च स्वामिन एवाभिप्रेतेन फलेन योजयन्ति। **यत्र तु न पूज्यन्ते तत्र सर्वाः क्रियाः** यागहोमदानाद्या देवताराधनबुद्धया चोपहारादयो याः क्रियन्तेऽ**फलास्ता** इत्यर्थवादः ॥५६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अफलाः** मन्दफलाः ॥५६॥

(३) **कुल्लूकः**। **यत्र** कुले पित्रादिभिः स्त्रियः पूज्यन्ते तत्र **देवताः** प्रसीदन्ति। **यत्र** पुनरेता न पूज्यन्ते तत्र देवताप्रसादाभावाद्यागादिक्रियाः सर्वा **निष्फला** भवन्तीति निन्दार्थवादः ॥५६॥

(४) **राघवानन्दः**। तासां पूजनमेवाह **यत्रेति** पञ्चभिः। देवता लक्ष्म्यादयः कलहशून्यत्वात् **अफलाः** क्रियाः। यत्कर्तव्यं तदनया सहेति वचनात् तासां साहित्यबोधनेन नित्यमपरितोषादश्रद्धाकृतत्वेन फलराहित्यमिति ॥५६॥

(७) **मणिरामः**। स्त्रीणां पूजनफलमाह **यत्रेति** ॥५६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यत्रेति**। यस्मिन् कुले पित्रादिभिः स्त्रियः पूज्यन्ते तत्र **देवताः** प्रसीदन्ति। यत्र पुनरेता **न पूज्यन्ते** तत्र देवताप्रसादाभावात् यागादिक्रियाः **सर्वा निष्फला** भवन्तीति ॥५६॥

**शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥**
**न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **जामयः** कुलस्त्रियः। **तत्कुलं** कुटुम्बसमुदायः ॥५७॥

(३) **कुल्लूकः**। जामिः स्वसृकुलस्त्रियोरित्या**भिधानिकाः**। यस्मिन्कुले भगिनीगृहपतिसंवर्धनीयसन्निहितसमपिण्डस्त्रियश्च पत्नीदुहितृस्नुषाद्याः परितापादिना दुःखिन्यो भवंति **तत्कुलं** शीघ्रं निर्धनी भवति, दैवराजादिना च पीड्यते। यत्रैता न शोचन्ति तद्धनादिना नित्यं वृद्धिमेति। **मेधा[1]तिथि-गोविन्दराजौ** तु नवोढा दुहितृस्नुषाद्या जामय इत्याहतुः ॥५७॥

(४) **राघवानन्दः**। **जामयः** भ्रातृपत्नीस्वसृपत्नीदुहितृस्नुषाद्याः सभर्तृकाः परिभवादिना दुःखिताः **शोचन्ति अश्रूणि** मुञ्चन्ति। व्यतिरेके गुणमाह **नेति**। **तत्कुलम्** ॥५७॥

(५) **नन्दनः**। **जामयः** स्वसारः ॥५७॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यत्र** यस्मिन्कुल **एता** जामयो न **शोचन्ति तत्कुलं** हि निश्चयेन **सर्वदा वर्धते** ॥५७॥

---

1. श्लोकस्यास्य मेधातिथिव्याख्याऽस्मदीयादर्शे न लभ्यते। **सम्पादकाः**।

(७) **मणिरामः**। अपूजने निन्दामाह **शोचन्तीति**। **जामयः** भगिन्यः स्वकुलस्त्रियश्च ॥५७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **शोचन्तीति**। यस्मिन् कुले नवोढा दुहितृस्नुषाद्याः सशोका भवन्ति तत्कुलं क्षिप्रमेव **विनश्यति**। यत्र पुनरेताः शोकार्ता न भवन्ति तत् सर्वकालं वृद्धिमेति ॥५७॥

**जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥**
**तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **गेहानि** स्थानानि ॥५८॥

(३) **कुल्लूकः**। **यानि गेहानि** भगिनीपत्नीदुहितृस्नुषाद्या अपूजिताः सत्योऽभिशपन्तीदमनिष्टमेषामस्त्विति तान्यभिचारहतानि धनपश्वादिसहितानि **नश्यन्ति** ॥५८॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच-**जामय इति कृत्या** अभिचाररताभिर्हतानीव ॥५८॥

(५) **नन्दनः**। **कृत्या**ऽभिचारक्रिया ॥५८॥

(७) **मणिरामः**। अदृष्टान्तदोषमाह **जामय** इति ॥५८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **जामय इति**। यानि गृहाणि न नवोढादुहित्राद्याश्च **अपूजिताः** सत्यो(द्यो)**ऽभिशपन्ति तानि** अभिचारविशेष**हतानीव** सर्वनाशं **नश्यन्ति**।

**तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥**
**भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥५९॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उत्सवेषु** विवाहादिषु। **सत्कारेण** वाचिकप्रशंसया। **सत्कारेष्विति** पाठे इतरेषां संमाने प्रकृत इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मादेवं **तस्मा**त्कारणा**देता भूषणाच्छादनाशनैर्नित्यं सत्कारेषु** कौमुद्यादिषूत्सवेषूपनयनादिषु समृद्धिकामैर्नृभिः सदा पूजनीयाः ॥ ५९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **तस्मादेता जामयो भूतिकामै**रैश्वर्यकाङ्क्षिभिः। **सत्कारेषु** बान्धवादीनां पूजासू**त्सवेषु** विवाहादिषु ॥ ५९ ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तमर्थं निगमयति **तस्मादिति**। यत एवमतः कन्याया भूषणाद्यर्थं वराद्धनादानमविरुद्धम् ॥ ५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सत्कारेषु** स्वसृकुलस्त्रीणां **उत्सवेषु** कौमुद्यादिषु विवाहादिषु ॥ ५९ ॥

(७) **मणिरामः**। **संस्कारेषु** उपनयनादिषु। **उत्सवेषु** कौमुद्यादिषु ॥ ५९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यस्मादेवं **तस्मात्-एताः सदाऽभ्यर्च्याः** इति। **भूतिकामैर्नरैर्नित्यं संकरेषूत्सवेषु च**। तस्मात्कारणात् एताः संकरेषु कौमुदीमहानवम्यादिषु उपनयनादिषु च सर्वकामैः मनुष्यैः आभरणवस्त्रभोजनैः **नित्यं** अभिपूजनीयाः ॥५९॥

**सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ॥**
**यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **कुले** गृहे ॥ ६० ॥

(३) **कुल्लूकः**। **भार्यया** भर्ता इति हेतौ तृतीया, यत्र कुले **भार्यया भर्ता** प्रीतो भवति स्त्र्यन्तराभिलाषादिकं न करोति **भार्या** च स्वामिना प्रीता भवति तस्मिन्कुले चिरं श्रेयो भवति। कुलग्रहणान्न केवलं भार्यापती एवं पुत्रपौत्रादिसंततिः श्रेयोभागिनी भवति ॥ ६० ॥

(४) **राघवानन्दः**। संप्रति दम्पत्योः स्नेहमलङ्करोति **संतुष्ट** इति त्रिभिः। **भर्त्रा भार्या** संतोषिता **यस्मिन्** तत्र **कुले** एतत्तयोः संतोषरूपम् ॥ ६० ॥

(५) **नन्दनः**। भूषणाच्छादनादिभिः स्त्रीणां पूज्यत्वे हेत्वन्तरं श्लोकत्रयेणाह **संतुष्ट इति** ॥ ६० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **संतुष्टो भार्यया भर्ता** स्त्र्यन्तराभिलाषी न। हेतौ तृतीया। यस्मिन्कुल एतदानुकूल्यं **तत्र** तस्मिन्कुले **कल्याणं** वर्धते ॥ ६० ॥

(७) **मणिरामः**। सन्तुष्ट इत्यादिश्लोकचतुष्टयं स्पष्टम् ॥ ६० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सन्तुष्ट इति**। **यस्मिन् कुले** स्वभार्यया हेतुभूतया नित्यं **भर्ता** निवृत्ताभिलाषः **भार्यापि** च यत्र **नित्यं** स्व**भर्त्रा** हेतुभूतेन अनुपजातनरान्तराभिलाषा तत्राविचलं मङ्गलं भवति ॥ ६० ॥

**यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥**
**अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥६१॥**

**[यदा भर्ता च भार्या च परस्परवशानुगौ ॥**
**तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगतम् ॥]**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **न रोचेत** पुरुषस्य नाभिलाषं जनयति। **प्रजननं** संततिः ॥ ६१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दीप्त्यर्थोऽत्र रुचिः। **यदि स्त्री** वस्त्राभरणादिना शोभाजनकेन दीप्तिमती न स्यात्तदा स्वामिनं पुनर्न हर्षयेदेव। हिशब्दोऽवधारणे, अप्रहर्षात्पुनः स्वामिनः **प्रजननं** गर्भधारणं न संपद्यते ॥ ६१ ॥

(४) **राघवानन्दः । स्त्री न रोचेत** भर्त्रे इति शेषः । **प्रजनः** पुत्रः । अरुच्या तस्यामगमनात् ।। ६१ ।।

(५) **नन्दनः । न रोचेत** पुंसे ।। ६१ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** हिर्निश्चये, स्त्री **यदि न रोचेत स्त्री पुमांसं न प्रमोदयेत्** पुंसोऽप्रमोदात्**प्रजनं** जननं न **प्रवर्तते** ।। ६१ ।।

(७) **गोविन्दराजः । यदीति ।** यदि **स्त्री** सुगन्धलेपनादि कान्तिमती न भवेत् तदा भर्तारं न प्रहर्षयेत् । भर्तुः अप्रहर्षाच्च गर्भग्रहणं न भवति ।। ६१ ।।

**स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।।**
**तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।।६२।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः । रोचमानायां** भूषणादिना दीप्यमानायाम् । **रोचते** शोभते ।। ६२ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** स्त्रियां मण्डनादिना कान्तिमत्यां भर्तृस्नेहविषयतया परपुरुषसंपर्कविरहात्तत्कुलं दीप्तं भवति । तस्यां पुनररोचमानायां भर्तृविद्विष्टतया नरान्तरसंपर्कात्सकलमेव कुलं मलिनं भवति ।। ६२ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** अत्रार्थवादः **स्त्रियामिति । सर्वं** प्रजनप्रमोदादि ।। ६२ ।।

(५) **नन्दनः । स्त्रियां** पुंसे **रोचमानायां सर्वं** तत्कुलं जगते **रोचते** । यत एवं तस्मादपि कन्या भूषयितव्या । भूषणार्थज्ञातिभिर्वराद्धनादानं न दोषावहमिति स्थितम् ।। ६२ ।।

(६) **रामचन्द्रः । स्त्रियां रोचमानायां** सक्तायां भूषणादिना दीप्यमानायां **कुलं रोचते** उज्ज्वलं भवति ।। ६२ ।।

(७) **गोविन्दराजः ।** किंच **स्त्रियां** तु **रोचमानायामिति ।** स्त्रियां वेषादिना कान्तिमत्यां भर्तृमनोहरतया परपुरुषसंपर्काभावात् तत्कुलमुज्ज्वलं भवति । तस्यां पुनररोचमानायां भर्तृद्विष्टतया नरान्तरसंकल्पतः सकलमेव कुलं मलिनीभवति ।। ६२ ।।

**कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।।**
**कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।६३।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः । कुत्सितैर्विवाहैः** स्ववर्णनिषिद्धैः **क्रियालोपैः** कर्तव्यतानाचरणैः । **ब्राह्मणातिक्रमेणा**धिक्षेपादिना एतैर्विनश्यन्ति कुलतां त्यजन्ति ।। ६३ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** आसुरादिविवाहैर्यथावर्णनिषिद्धैर्जातकर्मादि**क्रियालोपैर्वेदापाठेन ब्राह्मणापूजनेन** प्रख्यातकुलान्यपकर्षं गच्छन्ति ।। ६३ ।।

(४) राघवानन्दः। शुल्कदानेन उद्वाहनिन्दनं प्रकृतं तत्रैव प्रासंगिकमाह **कुविवाहैरिति** त्रिभिः। आसुरराक्षसादिविवाहैः। **क्रियालोपैश्च** क्रिया जातकर्मादिः। **ब्राह्मणानामतिक्रमेण** तिरस्कारादिना। **अकुलतां** अप्रशस्तकुलताम् ॥ ६३ ॥

(६) रामचन्द्रः। त्रिभिः **कुविवाहैरासुरादिभिः** ॥ ६३ ॥

(८) गोविन्दराजः। **कुविवाहैरिति**। आसुरादिविवाहसंस्काराभाव-वेदानध्ययन-ब्राह्मणापूजनैः प्रख्यात**कुलान्यपकर्षं** यान्ति। तस्मादेतत्परिहरणीयम् ॥ ६३ ॥

**शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ॥**
**गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥६४॥**

(२) सर्वज्ञनारायणः। **शिल्पादिभिस्तु** कुलान्यकुलतामल्पकुलतां यान्ति। **यानि** च मन्त्रतो वेदतो हीनान्यल्पवेदाध्येतृणि। **शिल्पेन** शिल्पजीवनेन **व्यवहारेण** ऋणदानादि· जीविकया। **शूद्रापत्यैः केवलैः** कृत्स्नैः सवर्णविवाहे सत्यपि शूद्रापत्यमात्रोत्पत्त्या। **गोभिर्गो**रूपै**रश्वै**रश्वरूपै**र्यानैः** ॥ ६४ ॥

(३) कुल्लूकः। चित्रकर्मादि**शिल्पेन** कलया धनप्रयोगात्मक**व्यवहारेण** **केवल-शूद्रापत्येन** **गवाश्वरथक्रयविक्रयादिना** **कृषिराजसेवाभ्यां** **कुलानि** विनश्यन्तीत्युत्तरेण संबन्धः ॥ ६४ ॥

(४) राघवानन्दः। **शिल्पेन** चित्रकर्मादिना। **व्यवहारेण** क्रयविक्रयऋणादि-दानेन। **शूद्रापत्यैरिति** पूर्वनिषेधानुवादः। स्वपुत्राभावाद्दासदासीपुत्रैर्वा। केवलशब्द-प्रयोगात् गोभिरित्यादिभिर्विक्रीतैः अनुपयुक्तैर्वा। **कृष्या** केवलया। **राजोपसेवया** सततमिति शेषः ॥ ६४ ॥

(५) नन्दनः। प्रशस्ता निन्दिताश्च विवाहा उक्ताः। तेषु निन्द्या न केवल-मुद्वोढुरेव दोषावहाः, किंतु तत्कुलविनाशहेतवश्चेत्याह **कुविवाहैरिति**। क्रियालोपादयो दृष्टान्तार्था वेदानध्ययनमेषु दुष्टकरमिति प्रसङ्गाच्छ्लोकद्वयेनाह **शिल्पेनेति**। **शिल्पेन** छत्रादिनिर्माणेन। **व्यवहारेण** वाणिज्येन। **केवलैस्त्रै**वर्णिकस्त्रीपुत्ररहितैः। **यानैर्या**न-भूतैर्गवामुष्ट्राणां च यानभूतानामारोहणेनेत्यर्थः ॥ ६४ ॥

(६) रामचन्द्रः। **शिल्पेन व्यवहारेण** धनप्रयोगेण **शूद्रापत्यैश्च** शूद्रायामपत्यो-त्पादनैः **गोभिर्ग**वां विक्रयणादिभिः ॥ ६४ ॥

(७) मणिरामः। कुलनाशकानाह **शिल्पेनेति** द्वाभ्याम्। **शूद्रापत्यैश्च केवलैः** केवलशूद्राविवाहेन। गवादिभिः क्रयविक्रयादिना कुलान्याशु विनश्यन्तीत्युत्तरेणा-न्वयः ॥ ६४ ॥

(८) गोविन्दराजः। **शिल्पेन व्यवहारेणेति**। **अयाज्ययाजनैश्चेति**। चित्र-कर्मादिशिल्पधनप्रयोग-केवलशूद्रापत्य-गवाश्वरथक्रयविक्रयादि-कृषिराजसेवा-व्रात्यादि-याज-नयागादिकर्माभाव-शुद्धिमन्त्रानध्ययनैः क्षिप्रमेव कुलान्यपकर्षं यान्ति ॥ ६४–६५ ॥

**अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम् ।**
**कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥६५॥**

(३) कुल्लूकः । अयाज्यव्रात्यादियाजनैः **कर्मणां** श्रौतस्मार्तादीनां **नास्तिक्येन** शास्त्रीयफलवत्कर्मसु, फलाभावबुद्धिर्**नास्तिक्यम्**, वेदाध्ययनशून्यानि **कुलानि** क्षिप्रमपकर्षं गच्छन्ति । अत्र च विवाहप्रकरणे निवाहनिन्दाप्रसङ्गेन क्रियालोपादयो निन्दिताः । निन्दया चैतन्न कर्तव्यमिति सर्वत्र निषेधः कल्प्यते ॥ ६५ ॥

(४) **राघवानन्दः** । **नास्तिक्येना**श्रद्धया । **कर्मणां** श्रौतस्मार्तानां त्यागेन । मन्त्रत आवश्यककर्मोपयुक्तगायत्र्यादिमन्त्रै**र्हीनानि** ॥ ६५ ॥

(५) **नन्दनः** । **कर्मणां नास्तिक्येन** पुण्यपापफलाभावनिश्चयेन । **एतैः** शिल्पादिभिः । **कुलानि मन्त्रतो** हीनानि चेदकुलतां **यान्ति** न तु मन्त्रयुक्तानीति ॥ ६५ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । **यानि कुलानि मन्त्रतो** वेदतः । **हीनानि** ॥ ६५ ॥

(७) **मणिरामः** । फलवत्कर्मसु फलाभावबुद्धिः **नास्तिक्यम्** ॥ ६५ ॥

(८) **गोविन्दराजः** ॥ ६५ ॥

**मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।**
**कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षंति च महद्यशः ॥६६॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्र मन्त्रपाठसमृद्धौ दोषान्तराणामपि मन्दता भवतीत्याह **मन्त्रतस्त्विति** । **कुलसंख्यां** कुलगणनां यान्ति **कर्षन्ति** आकर्षन्ति ॥ ६६ ॥

(३) **कुल्लूकः** । इदानीं क्रियालोपादिगतप्रासङ्गिककुलनिन्दानुप्रसक्त्या कुलोत्कर्षमाह **मन्त्रेति** । यद्यपि धनेन कुलमिति लोके प्रसिद्धं तथाप्यल्पधनान्यपि कुलानि वेदाध्ययनतदर्थज्ञानानुष्ठानप्रसक्तान्युत्कृष्टकुलगणनायां गण्यन्ते, महतीं तु ख्यातिमर्जयन्ति ॥ ६६ ॥

(४) **राघवानन्दः** । उत्कर्षवैपरीत्ये गुणमाह **मन्त्रतस्त्विति** । **समृद्धानि** मन्त्रतदर्थज्ञानादियुक्तानि । **कुलसङ्ख्यां** महत्कुलत्वेन सङ्ख्यायन्ते । अनियत्तां **कर्षन्ति** अर्जयन्ति ॥ ६६ ॥

(५) **नन्दनः** । यत एवं ततो मन्त्रसमृद्धावादरः कर्तव्य इत्यभिप्रायेणाह **मन्त्रतस्त्विति** ॥ ६६ ॥

(७) **मणिरामः** । इदानीं कुलोत्कर्षहेतुमाह **मन्त्र इति** । **कुलसङ्ख्यां** उत्कृष्टकुलगणनामध्ये **गच्छति** गण्यते । **कर्षति** अर्जयन्ति ॥ ६६ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **मन्त्रत इति** । यद्यपि धनेन कुलमिति प्रवादः । तथापि वेदाध्ययनावबोधतदर्थानुष्ठानयुक्तानि पुनः कुलानि अल्पधनान्यपि उत्कृष्टकुलमध्ये

गुण्यतां प्राप्नुवन्ति महतीं ख्यातिमर्जयन्ति। विवाहप्रसंगेन प्रसक्तानुप्रसक्तिकमेतत्सर्वमुक्तम् ॥ ६६ ॥

**वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।**
**पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥६७॥**

(१) **मेधातिथिः**। अतिक्रान्तं विवाहप्रकरणम्। कृतो विवाहो यस्मिन्न**ग्नौ** तत्र **कुर्वीत गृह्यं कर्म**, अग्निसाध्यमष्टकापार्वणश्राद्धहोमादि गृह्यस्मृतिकारैरुक्तम्। **पञ्चयज्ञा** वक्ष्यमाणास्तेषां विधानमनुष्ठानम्, तस्मिन्नेवाग्नौ। "यद्यप्यविशेषेण पञ्चयज्ञविधानमित्युक्तं तथापि वैश्वदेवहोमोऽग्निसाध्यः, उदकतर्पणादौ तु न किंचिदग्निना कार्यम्। कथं तर्हि निर्देशोऽग्नौ पञ्चयज्ञविधानं कार्यमिति ?"

केचिदाहुरेकाऽपि सप्तमी विषयभेदाद्भिद्यते। तस्मात्पञ्चयज्ञैकदेशे पञ्चयज्ञशब्दः प्रयुक्तः। अथवा **पञ्चयज्ञविधानमि**त्यत्राग्नाविति न संबध्यते। वैश्वदेवहोमस्य पूर्वेणैवाग्न्यधिकरणस्य सिद्धत्वात्। एवं सम्बन्धः क्रियते–'गृही तु पञ्चयज्ञविधानं कुर्यात्'। **अग्नौ** तु **वैवाहिके** गृह्यकर्मपक्तिं **चान्वाहिकी**मग्नावित्यपेक्ष्यते।

गृहशब्दो दारवचनः। **गृही** तु स कृतदारपरिग्रहो भार्याद्वितीय इदमिदं कुर्यादिति। विवाहे चाग्निः कैश्चिद्गृह्यकारैररणिनिर्मन्थनादाधातव्य इत्युक्तम्। अपरैर्यतः कुतश्चिद्दीप्यमानमानीय होतव्यमिति। अनेन तस्मिन्गृह्यमिति वचनेन धारणमग्नेरर्थादुक्तं भवति।

अत्र केचिदाहुः–"शूद्रस्यापि वैवाहिकाग्निधारणमस्ति, तस्यापि पाकयज्ञाधिकारात्। न चात्र जातिविशेष उपात्तः, केवलं 'गृहीति' श्रुतम्। शूद्रोऽपि गृही, तस्यापि दारपरिग्रहस्योक्तत्वात्। एतदेवान्यत्र पठितं 'कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही' (याज्ञ० १-९७) इति।

अत्रोच्यते–'गृह्यं कर्म वैवाहिकोऽग्नाविति' श्रुतम्। न च 'गृह्यं' नाम किंचित्कर्मास्ति। तत्र गृह्यस्मृतिकारोक्तं 'गृह्यमिति' लक्षणया मन्तव्यम्। गृह्यकारैश्च त्रैवर्णिकानामेव कर्माम्नातं, न शूद्रस्य। "उक्तानि वैतानिकानि गृह्याणि वक्ष्याम" इति। उक्तानुकीर्तनस्य एतदेव प्रयोजनं 'येषामेव वैतानिकेष्वधिकारस्तेषामेव गृह्येष्विति', न पुनर्यथाऽन्यैर्व्याख्यातं तद्धर्मप्राप्त्यर्थम्। तादर्थ्ये हि विवक्षिते 'तस्याग्निहोत्रेण प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्याताविति' नावक्ष्यत्। न च गृहे भवं गृह्यमिति युक्तम्। शालावचनो गृहशब्दो दारवचनो वा ? । न तावत्कस्यचित्कर्मणः शालाऽधिकरणत्वेन विशेषतः समाम्नाता यद्गृह्यमित्यनूद्य गृहिणो विधीयेत। यदपि गृहसंस्कारकं वास्तुपरीक्षादि तदपि त्रैवर्णिकानामेव न शूद्रस्य। अथ दारवचनस्तत्रापि गृहीत्यनेनैव गतत्वान्न किंचित्।

यदपि स्मृत्यन्तरं (याज्ञ. १.९७) "कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही। दायकालाहृते वाऽपि श्रौतं वैतानिकाग्निषु" इति, अत्रापि किंचित्स्मार्तमिति विशेषानुपादानादन्यसापेक्षतैव। न हि सर्वमग्नौ स्मार्तं कर्म संभवति। न च होमविषयत्वे प्रमाणमस्ति। न ह्यवश्यमग्न्यधिकरण एव होमः। तस्माद्गृह्यकारोक्तं **गृह्यमिति** वक्तव्यम्। एते हि स्मृतिगृह्यकारविहितं कर्मानुवदतः। तथा च कुतः शूद्रस्याग्निपरिग्रहः। किं च "श्रौतं वैतानिकाग्निषु" इति अपरं तत्राम्नायते, तत्र अवश्यमयं त्रैवर्णिकविषय एषितव्यः। स एव पूर्वत्र चातुर्वर्ण्यपर उत्तरत्र त्रैवर्णिकपर इत्येकस्य शब्दस्य तात्पर्यभेदोऽभ्युपगतः स्यात्। न चाभेदे संभवति भेदो न्याय्यः। अन्वहं भवाऽऽन्वाहिकी। प्रतिदिवसं यः पाको भुक्त्यर्थः स तस्मिन्नेवाग्नौ कर्तव्यः॥ ६७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **दैवाहिके** यत्राग्नौ लाजहोमः कृतस्तस्मिन् **गार्ह्यं** गृह्योक्तं विवाहोत्तरकालीनं स्वकीयं कर्म नित्यनैमित्तिकशान्तिकपौष्टिकरूपम्। **पञ्चयज्ञविधानं** गार्ह्यत्वेऽपि पृथगुक्तम्। प्रवसता ऋत्विगादिभिर्गृह्याग्नावेव तत्कर्तव्यमित्येतदर्थम्। पञ्चयज्ञपदं वैश्वदेवमात्रपरम्। **पांक्त** स्वान्नपाकं। **गृही** गृहे निवसन्॥६७॥

(३) **कुल्लूकः।** विवाहप्रकरणमतिक्रान्तम्। इदानीं वैवाहिकाग्नौ संपाद्य महायज्ञविधानं चेति वक्तव्यतया प्रतिज्ञातं महायज्ञाद्यनुष्ठानमाह **वैवाहिक इति।** विवाहे भवो **वैवाहिकः।** आध्यात्मिकादित्वाट्ठञ्। तस्मिन्नग्नौ गृह्योक्तं कर्म सायंप्रातर्होमाष्टकादि यथाशास्त्रमग्निसंपाद्यं च पञ्चमहायज्ञान्तर्गतवैश्वदेवाद्यनुष्ठानं प्रतिदिनसंपाद्यं च पाकं गृहस्थः कुर्यात्॥ ६७॥

(४) **राघवानन्दः।** विवाहस्य प्रासंगिकमुक्त्वा यदुद्दिश्य कृतं तदाह **वैवाहिक इति।** विवाहकाले भवो **वैवाहिकः** आवसथ्याख्यः तस्मिन्। **गृह्यं** सायंप्रातर्होमाष्टकापार्वणश्राद्धादिहोमं च। विवाहोत्तरकालीनो भिन्नः 'श्रौतः जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीते'ति श्रुतेः। **पञ्चयज्ञानां** तर्पणादीनां यदेकदेशो वैश्वदेवाख्यस्तस्यैव **विधानमनु**ष्ठानाख्यं तदग्नौ कुर्वीत। **पंक्ति** पाकं। **आन्वाहिकीं** प्रतिदिननिष्पाद्याम्॥ ६७॥

(५) **नन्दनः।** अथ गृहस्थधर्मः प्रस्तूयते **वैवाहिक इति।** विवाहो यस्मिन्कृतः स वैवाहिकोऽग्निरौपासनाग्निः **गार्ह्यं कर्मा**क्षतहोमपाकयज्ञादिकम्। भूतमनुष्यब्रह्मयज्ञानामग्नौ करणमग्निसमीपे करणम्॥ ६७॥

(६) **रामचन्द्रः।** अथ वैश्वदेवविधिः। **वैवाहिकेऽग्नौ गार्ह्यं** गार्ह्यसंज्ञं **कर्म यथाविधि कुर्वीत** कुर्यात्। **पञ्चयज्ञविधानं** च वैश्वदेवसंज्ञं कुर्यात् **पंक्ति** स्वान्नपाकं गृहधर्मपंक्ति। **आन्वाहिकीं** प्रतिदिवसं **गृही** कुर्यात्॥ ६७॥

(७) **मणिरामः।** विवाहप्रकरणं व्यतीतम्। महायज्ञविधानमाह **वैवाहिक इति।** विवाहे भवो वैवाहिकः तस्मिन्नग्नौ **गृह्यं कर्म** सायंप्रातर्होमादि **पञ्चयज्ञविधानं च** पञ्चयज्ञान्तर्गतवैश्वदेवाद्यनुष्ठानं च। **पंक्ति चान्वाहिकीं** प्रतिदिनं संपाद्यं पाकं **गृही** गृहस्थः। तस्मिन्नग्नौ कुर्यादित्यर्थः॥ ६७॥

(८) **गोविन्दराजः । वैवाहिक इति ।** अष्टकादि गृह्योक्तं कर्म यथाशास्त्रं वक्ष्यमाणपञ्चयज्ञानुष्ठानं चाग्निसंपाद्यं प्रात्यहिकं पाकं विवाहभवेऽग्नौ गृहस्थः कुर्वीत ।। ६७ ।।

**पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।।**
**कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ।।६८।।**

(१) **मेधातिथिः ।** पञ्चयज्ञविधेरधिकारनिर्देशोऽयम् । सूना इव सूनाः । मांसविक्रयार्थपशुवधस्थानमापणादयो वा मांसस्योत्पादकतयाऽनुष्ठीयमानाः पापहेतवः । एवं चुल्ल्यादयोऽपि पापहेतुत्वादध्यारोपेण सूनासमाः । न हि तेषां शास्त्रप्रतिषेधः साक्षात् । नापि सामान्यः कश्चित्प्रतिषेधोऽस्ति । न हि तापघाताय कस्यचिन्न स्पृहा स्यात् । न काचित्तत्साध्यक्रिया दृश्यते या वचनान्तरेण निषिद्धा । न चास्मादेव वचनात्प्रतिषेधानुमानम्, उत्तरेणैकवाक्यतावगमात् । प्रतिषेधपरत्वे वाक्यभेदः स्यात् । किं चैतत्पदार्थसाध्यामर्थक्रियां यः पदार्थान्तरेण साधयेत्तस्याप्राप्तिपञ्चयज्ञानाम् । न च लक्षणान्युक्तानि येन तत्समानकार्यस्यान्यस्यापि प्रतिषेध उच्येत । यो वा परकीयमन्नमद्यात् नद्यादावुदकार्थे कुर्यात् न तस्यैते यज्ञाः स्युः । यदि च चुल्ल्यादीनां निषेधोऽभिप्रेतः स्यात्तदा प्रतिषेधार्थीयमेव पदमधीयीत किमनुमानेन । स्वशब्दाद्धि बलीयसी प्रतिपत्तिः । प्रायश्चित्तार्थत्वे त्वेकादशेऽभिधानं युक्तम् । निषेधैरेवाननुष्ठानमेव स्यात् । अपरिहार्यत्वाच्च चुल्ल्यादीनामशक्यो निषेधः । असति च निषेधे कुतः प्रायश्चित्तम् ? । तस्मान्न दोषविघातार्थे पञ्चमहायज्ञाः । किं तर्हि ? नित्यसम्बन्धेषु चुल्ल्यादिधारणेऽपि तद्दोषः तन्निष्कृत्यर्थतया नित्यार्थतया नित्यत्वं यज्ञानामाह ।

**बध्यते ।** आदिवर्णं वेत्येतदन्तोष्ठ्यं पठ्यते । हन्यते दुष्कृतेन, शरीरधनादिना नाश्यते । सम्बध्यते वा पापेन—परतन्त्रीकरणं वा बध्नातेरर्थः । **वाहयन् ।** स्वकार्ये व्यापारणं 'वाहनम्'। यस्य चुल्ल्यादेर्यदौचित्यप्राप्तं स्वसाध्यं कार्यं तत्ताभिः कुर्वन्वाहयन्नित्युच्यते । **चुल्ली** पाकस्थानं भ्राष्ट्रादि । **पेषणी** दृषदुपलो वा । **उपस्करो** गृहोपयोगि भाण्डं कुण्डकटाहादि । **कण्डनी** यया व्रीह्यादि कण्ड्यते । **कुम्भो** जलाधारः ।। ६८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । सूनाः** प्राणिघातस्थानानि । **चुल्ली** पाकेन माषादिबीजानां प्ररोहशक्तिप्रतिबद्धजीवनत्यागहेतुत्वात् । एवं **पेषणी** पेषणशिला पेषणेन । उपकिरत्यशुद्धानीति उपस्करोऽवस्करहेतुः संमार्जनी, भूयिष्ठपिपीलिकादिहिंसाहेतुः । **कण्डन्युलूखलं** वितुषीकरणात् । उदकुम्भो जलाशयस्थजन्तूनामुद्धरणेन घातनात् । **बध्यते** पापेन निबध्यते **वाहयन्** प्रवर्तयन् ।। ६८ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** पशुवधस्थानं सूना । सूना इव सूना हिंसास्थानगुणयोगाच्चुल्ल्यादयः पञ्च, **गृहस्थस्य** हिंसाबीजानि हिंसास्थानानि **चुल्ल्युद्वाहनी** **पेषणी** दृषदुपलातिमिकोपस्करो गृहोपकरणकुण्डसंमार्जन्यादिः । **कण्डन्युलूखलमुसले । उदकुम्भो** जलाधारकलशः याः स्वकार्ये योजयन्पापेन संबध्यते ।। ६८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** यदुद्दिश्य पञ्चयज्ञास्तन्नामसङ्ख्यामाह **पञ्चसूनेति द्वाभ्यां।** सूना हिंसा तद्योगाच्चुल्ल्यादयः। तत्रोखा **चुल्ली** तथा पेषणी सपुत्रशिला। **उपस्करः** संमार्जन्यादिः। **कण्डनी** उलूखलमुसलादि। **उदकुम्भो** जलपूर्णकलशादिः। **वाहयन्**स्वकार्येणैता योजयन् **बध्यते** संबध्यते। प्राणिवधेनेति शेषः। **वध्यते** जन्तुरिति वा।। ६८।।

(५) **नन्दनः।** होमाभावात्पञ्चमहायज्ञानामवश्यकर्तव्यत्वे कारणं श्लोकद्वयेनाह **पञ्चेति।** सूयन्तेऽस्मिन्प्राणिन इति **सूना** हिंसास्थानमिति यावत्। **वाहयन्**प्रवर्तयन्**बध्यते** पाशेन।। ६८।।

(६) **रामचन्द्रः। गृहस्थस्य पञ्चसूनाः** प्रत्यहं **चुल्ली** चुल्लिः **पेषणी** पिष्टपेषणी **कण्डनी** मुसलोलूखलस्थानम्। **उदकुम्भं** कुम्भस्थानं। **उपस्करः** शूर्पादिः। याः सूना **वाहयन्**प्रवर्तयन्। **बध्यते** 'एतानि वाहयन् विप्रो बध्यते तु मुहुर्मुहु'रिति **यमः**।। ६८।।

(७) **मणिरामः। उपस्करः** गृहोपकरणकुण्डसंमार्जन्यादिः। **कण्डनी** उलूखलमुसले। यास्तु स्वकार्ये योजयन्। पापेन संबध्यते एतत्सर्वं गृहस्थस्य सूनास्थानम्, सूना इव सूना पशुवधस्थानमित्यर्थः।। ६८।।

(८) **गोविन्दराजः। पञ्चसूनेति।** पचनदृषत्शूर्पोलूखलाद्याः पञ्च गृहस्थस्य सूना इव घातनस्थानानि यानि स्वकार्ये योजयन् पापेन संबध्यते। एवं चास्मात् सूनावचनात् तासां निष्कृत्यर्थमिति च निष्कृतिवचनात् सूनादोषैर्न लिप्यत इति तद्दोषाभिधानात् अधर्महेतुत्वमासां तन्निष्कृत्यर्थत्वं महायज्ञानामित्यवसीयते, शास्त्रैकगोचरत्वात् धर्माधर्मयोः। न चैवं सति महायज्ञानामनित्यतापत्तिः देवतातिथिभृत्यानां ऋषयः पितरो देवता इत्येवमादिभिरेषां नित्यत्वप्रतिपादनात् सन्ध्योपासनवदुभयार्थत्वमेषाम्।। ६८।।

**तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।।**
**पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।।६९।।**

(१) **मेधातिथिः। तासां** चुल्ल्यादीनां सूनानां निष्कृत्यर्थे तदुत्पन्नदोषनिर्यातनार्थे **क्रमेणा**धिलेपनं चुल्ल्यास्तक्षणं पेषण्या इत्येवमादि'क्रमः'। **महर्षिभिः क्लृप्ताः** कर्तव्यतया स्मृताः **पञ्च महायज्ञाः**। प्रत्यहं **गृहमेधिनां** गृहस्थानाम्। गृहमेधिशब्दो गृहस्थाश्रमे वर्तते। **प्रत्यहमिति**। अनुपादानात्कालविशेषस्य, यावज्जीवमिति प्रतीयते। अतश्च नित्यत्वसिद्धिः। **महायज्ञा** इति कर्मनामधेयमेतत्।। ६९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** क्रमेण चुल्ल्यादिसूनानामध्यापनादीनि निष्कृत्यर्थानि।।६९।।

(३) **कुल्लूकः। तासां** चुल्ल्यादिस्थानानां यथाक्रमं **निष्कृत्यर्थ**मुत्पन्नपापनाशार्थं गृहस्थानां **पञ्चमहायज्ञाः** प्रतिदिनं मन्वादिभिरनुष्ठेयतया स्मृताः। एवं च निष्कृत्यर्थमित्यभिधानाद्धिंसास्थानत्वेन च कीर्तनात्सूनादोषैर्न लिप्यत इति वक्ष्यमाणत्वात्पञ्चसूनानां पापहेतुकत्वं पञ्चयज्ञानां च तत्पापनाशकत्वमवगम्यते। प्रत्यहमित्यभिधानात्प्रतिदिनं तत्पापक्षयस्यापेक्षितत्वात्सन्ध्यावन्दनादिवन्नित्यत्वमपि न विरुध्यते।। ६९।।

(४) **राघवानन्दः।** **क्रमेण** यथासंख्यं संख्यानतिक्रमेण। **निष्कृत्यर्थं** तत्तदुत्पन्न-पापनाशार्थं। **गृहमेधिनां** मेधा गृहोत्पन्ना हिंसा तया युक्तानां क्लृप्ताः कर्तव्यतयेति शेषः ॥६९॥

(५) **नन्दनः।** **तासां** सूनानां हिंसानामित्यर्थः ॥ ६९ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **तासां** पञ्चसूनानां सर्वासां क्रमेण **महर्षिभिर्निष्कृत्यर्थं** प्रायश्चित्तार्थं **पञ्च** (**महा**)**यज्ञाः** क्लृप्ताः कथिताः गृहमेधिनां प्रत्यहं अहरहः कुर्यादित्यर्थः ॥ ६९ ॥

(७) **मणिरामः।** **तासां** चुल्ल्यादीनां **निष्कृत्यर्थं** उत्पन्नपापनाशार्थं, प्रत्यहमित्यनेन सन्ध्यावन्दनवत् पञ्चयज्ञानामपि नित्यत्वम् ॥ ६९ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **तासामिति।** **तासां** चुल्ल्यादीनां सूनानां यथाक्रमं **निष्कृत्यर्थं** तदुत्पन्नपापनिर्हरणार्थं **प्रत्यहं पञ्च महायज्ञाः** गृहस्थानां मन्वादिभिः स्मृताः ॥ ६९ ॥

**अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥**
**होमो दैवो बलिर्भौतो, नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥७०॥**

(१) **मेधातिथिः।** एषामयं स्वरूपविधिः। **अध्यापन**शब्देनाध्ययनमपि गृह्यते येन 'जपोऽहुत' इत्यत्र (श्लो० ७४) वक्ष्यति। न च जपोऽपि शिष्यानपेक्षते। सामान्येन च श्रुतं 'स्वाध्यायेनर्षिभ्य' इत्यृणावेदनश्रुतौ। अत उभे अध्यापनाध्ययने यथासंभवं **ब्रह्मयज्ञः।** **तर्पण**मन्नाद्येनोदकेन वेति वक्ष्यति (श्लो० ८२)। **होमो** वक्ष्यमाणाभ्यो देवताभ्योऽग्नौ। **बलिः** शिष्ट उलूखलादौ च। स **भौतः** भूतादिदेवताऽस्येति **भौतः।** नामधेयमेतत्कर्मविशेषस्य। दिवाचारिभ्यो भूतेभ्य इति हि तत्र बलिहरणं भूतशब्देन विहितम्। साहचर्यात्सर्व एष कर्मगणो भूतयज्ञशब्देनोच्यते। यथा चातुर्मास्येष्वेकं हविर्वैश्वदेवमामिक्षा कृत्स्नमेव च पर्व वैश्वदेवेन यजेतेति। बलिशब्दोऽनग्निहोमे वर्तते। देवेज्या बलिरिति स्मरन्ति।

अतिथीनां पूजनमाराधनं **नृयज्ञः।** "ननु च स्वाध्यायः कथं 'यज्ञः'?। न हि तत्र देवता इज्यन्ते नापि श्रूयन्ते। केवलं वेदाक्षराण्यविवक्षितार्थान्युच्चार्यन्ते। उक्तं चाम्नाय-शब्दाभ्यासे "केचिदाहुरनर्थकानीति"। सत्यम्। स्तुत्यां यज्ञशब्दो महच्छब्दश्च। अतिथि-पूजायामपि भाक्तो यज्ञशब्दः। यद्यप्यतिथेर्देवतात्वं संभवति। तथाप्युत्पत्तौ भोजयेत्पूजयेदिति च श्रुतं नातिथिभ्यो यजेतेति। 'यथा पुरुषराजाय कर्म वा' इति।

एते पञ्चयज्ञा न युगपत्प्रयोज्याः, एकाधिकारासम्बन्धात्पृथगधिकारश्रवणात्। एकाधिकारसम्बन्धत्वे त्रिषु चतुर्षु वा कृतेषु न किंचित्कृतं स्याद्यावत्कृतं च न कृतम्। यथाऽऽग्नेयाग्नीषोमीयोपांशुयाजानां दर्शपूर्णमासयागानामेकद्व्यनुष्ठाने नाधिकारसिद्धिः। यथाऽत्रैव वैश्वदेवहोमे स्विष्टकृदन्तानां देवतानां कस्याश्चिदन्तराये न होमाधिकारनिवृत्तिः। एकैकस्य चात्राधिकारः श्रुतः। 'स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्' (श्लो० ७५)—— 'दैवे च नित्ययुक्तः

स्यादिति'। अधिकारपदानुषङ्गेण पृथक्प्रयोगः। आतिथ्ये चाधिकारान्तरं श्रुतं 'धन्यं यशस्यमिति'।

तत्र चत्वारः स्वाधीनाः, आतिथ्यं तु संनिहितेऽतिथौ। न चातिथिर्निमन्त्रयितव्यः, आतिथ्याभावात्। स्वयमुपस्थितो ह्यतिथिर्भवतीति वक्ष्यामः। तस्मात्पञ्चानामन्यतमानुष्ठाने इतरेषामननुष्ठानाद्यदि नाम प्रत्यवेयान्न तु कृतमकृतं भवति। अतोऽनग्निकत्वाद्वैश्वदेवेऽनधिकृतस्य स्वाध्यायोदकतर्पणादौ भवत्येवाधिकारः। अग्निपरिग्रहस्य च स्मृत्यन्तरे कालान्तरस्यापि श्रुतत्वान्नावश्यं विवाहे एव परिग्रहः। एवं हि स्मृतिः "भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा" इति।

"ननु चाकृतविवाहस्य दायकालमाधानं भविष्यति"। भवति ह्येतदेवं यद्याधानविधिः स्वार्थः स्यात्। अग्न्यर्थं त्वाधानम्। अग्निश्च कर्मार्थः। कर्माणि च भार्याद्वितीयस्य, न केवलस्य, श्रुतानि। यदपि कैश्चिद्गृह्यकारैः 'परमेष्ठिप्राणाग्निमाधाय श्राद्धं कुर्यादि'त्युक्तं भवति तदपि सभार्यस्यैव। स एवास्य दायकालः। न चानग्निकस्य श्राद्धं नास्ति। अनुपनीतस्यापि ह्येतद्विहितमन्यत्र स्वधानिनयनादिति। न च तस्याधानमस्ति, विदुषोऽधिकारादिदानीं चाविद्यत्वात्। श्राद्धं तु वचनान्निषादस्थपतिवद्यथाशक्ति कार्यमिति। पितृव्यादिनाग्निपरिग्रहे तु विदुषां संभवान्नावैद्यस्याधिकारः। अथ श्राद्धप्रकरण एवाग्न्याधानं विहितं "दा तदङ्गत्वेनाधाय निष्पन्ने श्राद्धे परित्यागो भविष्यति। केचित्तु स्मृत्यन्तरमुदाहरन्ति तल्लौकिकेऽप्यग्नौ वैश्वदेवहोमः कर्तव्यः"। शुष्कान्नैरपरे॥ ७०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अध्ययनस्य ब्रह्मचारिप्रकरणे विहितत्वाद**ध्यापनमपि** ब्रह्मयज्ञस्तत्रापि त्वध्ययनस्य संभवादिति दर्शयितुमुक्तम्। **तर्पणं** पितॄणां जलेनान्नेन वा। **होमो दैवो** यज्ञः॥ ७०॥

(३) **कुल्लूकः**। अध्यापनशब्देनाध्ययनमपि गृह्यते, "जपोऽहुत"मिति वक्ष्यमाणत्वात्। अतोऽ**ध्यापन**मध्ययनं च **ब्रह्मयज्ञः**। 'अन्नाद्येनोदकेन वे'ति **तर्पणं**'वक्ष्यति स **पितृयज्ञः**। अग्नौ **होमो** वक्ष्यमाणो देवयज्ञः। **भूतबलिर्भूत**यज्ञः। **अतिथिपूजनं** मनुष्ययज्ञः। अध्यापनादिषु यज्ञशब्दो महच्छब्दश्च स्तुत्यर्थं गौणः॥ ७०॥

(४) **राघवानन्दः**। तान् सलक्षणान् महायज्ञानाह **अध्यापनं** अध्ययनं च लक्षणया वेदाभ्यासस्यैव नित्यत्वात्। **होमो** गृह्याग्नौ **बलिः** भूतोद्देशेन उलूखलादौ होम इति **मेधातिथिः**॥ ७०॥

(५) **नन्दनः**। के पुनस्ते महायज्ञा इत्यपेक्षायामाह **अध्यापनमिति**। अध्ययनमेवा**ध्यापनम्**। **तर्पणं** श्राद्धादीनामप्युपलक्षणम्॥ ७०॥

(६) **रामचन्द्रः**। पञ्चयज्ञानाह **अध्यापनमिति**। **अध्यापनं** ब्रह्मयज्ञसंज्ञं। **तर्पणं** जलान्नैः। **पितृयज्ञ**संज्ञः। **होमः** अन्वहं **दैवः**, लोकबलिः **भौतयज्ञः**। **अतिथिपूजनं नृयज्ञसंज्ञः**॥ ७०॥

(७) **मणिरामः**। पञ्चयज्ञस्वरूपमाह **अध्यापनमिति**। अध्यापनशब्देनाध्ययनमपि गृह्यते। **होमः** वैश्वदेवरूपः। **बलिः** भूतबलिः॥ ७० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। ते च **अध्यापनमिति**। 'जपोऽहुत' इति वक्ष्यमाणः। अध्यापनशब्देनाध्ययनमपि गृह्यते। स **ब्रह्मयज्ञः**। पितृतर्पणं **पितृयज्ञः**। अग्नौ होमो **दैवयज्ञः**। भूतबलिर्**भूतयज्ञः**। अतिथिभो(पू)जनं मनुष्ययज्ञः। एते वक्ष्यमाणाः कर्तव्यताविशेषा इह स्वरूपमात्रेण निर्दिष्टाः॥ ७० ॥

**पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।**
**स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥७१॥**

(१) **मेधातिथिः**। नित्यत्वमत्र विधीयते। अन्यदनूद्यते। विगुणा अप्येते यथाशक्ति कर्तव्याः। एतदपि नित्यत्वात्प्राप्तमेव। तस्माद्यथासम्भवं **शक्तित** इति। आद्यादित्वात्तसिः। **हापयतीति** प्रकृत्यर्थ एव, णिजर्थस्याविवक्षितत्वात्। अथवा हननं हा, संपदादित्वात् क्विप्; तामापयतीति ण्यत्, आप्नोतेः कर्तरि क्विप्, तदन्तात्प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच्। **न हापयति** न त्यजेदित्यर्थः। **स्वगृहे वसन्न**वश्यभाविनीषु सूनासु च न तत्पापेन संबध्यत इति प्रशंसा॥ ७१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **न हापयति** न त्यजति॥ ७१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **शक्तित** इत्येतद्विधानार्थोऽयमनुवादः। अनुकल्पेनापि यथासम्भवमेते कर्तव्याः। **हापयतीति** प्रकृत्यर्थ एवं छान्दसत्वाण्णिच्, जहातीत्यर्थः॥ ७१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तानां स्तुतिनिन्दाभ्यां नित्यत्वख्यापनार्थमाह **पञ्चैतानिति** द्वाभ्यां। **न हापयति** न त्यजति॥ ७१ ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तार्थोपसंहारार्थः। श्लोकः **पञ्चैतानिति**। **न हापयति** न परित्यजति। **नित्यं गृहे वसन्न**प्यवर्जनीयाः॥ ७१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एतान्पञ्च महायज्ञान्यो** गृही **न हापयति** न त्यजति **सः गृहेऽपि वसन्नित्यं** पञ्च**सूनादोषैर्न लिप्यते**॥ ७१ ॥

(७) **मणिरामः**। **न हापयति** न जहाति। **शक्तितः** अनुकल्पेनापि यथासंभवमेते कर्तव्याः, न तु हातव्या इत्यर्थः॥ ७१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पञ्चेति**। **एतान् पञ्च महायज्ञान्** यो यथाशक्ति न जहाति स सर्वकालमपि गृहे वसन् चुल्ल्यादिसूनाजनितैः पापैर्न संबध्यते॥ ७१ ॥

**देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।**
**न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति॥ ७२॥**

(१) **मेधातिथिः**। अननुष्ठाननिन्दया प्रकृतविधिस्तुतिः। केचिच्चतुर्थ्या पठन्ति "देवतातिथिभृत्येभ्यः पितृभ्यश्चात्मने तथा। न निर्वपति पञ्चभ्यः।" इति। निर्वापो ह्यत्र

दानं, न तादर्थ्योपकल्पनमात्रम्। तत्सम्बन्धेन प्रधानत्वाच्चतुर्थी युक्ता। एतेभ्यो यः प्रत्यहं न **ददात्युच्छ्वसन्नपि** प्राणन्नपि श्वासप्रश्वासवानपि न **जीवति** मृत एव, जीवितफलाभावात्।

भृत्याश्चात्र "वृद्धौ तु मातापितराविति" (मनु. ११।१०) श्लोकनिर्दिष्टा वेदितव्याः, न दासाः, कर्मनिमित्तत्वात्तेभ्यो दानस्य। अथवा गर्भदासादयो वार्द्धके कर्मस्वशक्ता अपि नियमतो लक्ष्यन्ते। भरणं जीर्णगवादीनामवश्यमिति विभागे वक्ष्यामः। उक्तं च **गौतमेन** "भर्तव्यस्तेन क्षीणवृत्तिः"।

देवताभ्यश्च निर्वापोऽग्नौ होमः, स्थण्डिले च बलिहरणं तु वैश्वदेवेभ्यो दर्शपूर्णमासदेवताभ्य इव वा "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" इति सम्बन्धादन्यः को वाऽस्ति निर्वापः?। अतो देवताग्रहणेन गृहीतत्वाद्भूतानाम् पृथगुपादानम्।

आत्मग्रहणं दृष्टान्तः। यथाऽऽत्मनो भोजनेन विना नास्ति जीवितं तदर्थमन्नोपयोगोऽवश्यंभावी जीवितस्येष्टविषयत्वा'त्सर्वत एवात्मानं गोपायेदि'ति विधेश्च, एवं देवतादिभ्योऽपीति ॥ ७२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। देवतानां देवयज्ञेन **न निर्वपति** न ददाति। **भृत्यानां** भूतानां। **आत्मनो** ब्रह्मयज्ञेन निर्वपति न ददाति। नात्मानं तत्फलबंधिनं करोति तस्य स्वाभ्युदयसाधनत्वादिति एवं पञ्चयज्ञा उक्ताः ॥ ७२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **देवता**शब्देन भूतानामपि ग्रहणं। तेषामपि बलिहरणे देवतारूपत्वात्। **भृत्या** वृद्धमातापित्रादयोऽवश्यं संवर्धनीयाः 'सर्वत एवात्मानं गोपायेदि'ति श्रुत्यात्मपोषणमप्यवश्यं कर्तव्यम्। देवतादीनां पञ्चानां योऽन्नं न ददाति **स श्वसन्नपि** जीवितकार्याकरणान्न **जीवतीति** निन्दयाऽवश्यकर्तव्यता बोध्यते ॥ ७२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **भृत्यानां** भूतानां बलिं। **आत्मन**श्चाध्ययनमिति शेषः। न **निर्वपति** नैतेभ्यो ददाति। भस्त्रादिवत् श्वसञ्जीवन्नपि न **जीवति**, जीवनोचितकार्याभावात् ॥ ७२ ॥

(५) **नन्दनः**। अर्थप्राप्ताः पञ्चसूना अकुर्वन्नपि पञ्चमहायज्ञानामवश्यकर्तव्यत्वे कारणान्तरमाह **देवतेति**। देवतातिथिभूतानामिति पाठः। आत्मा ब्रह्मेति पर्यायस्तस्य निर्वापः पृथक्करणं प्रदानं यजनमिति यावत्। आत्मयज्ञो हि ब्रह्मयज्ञः, तथाहि ब्राह्मणं (शत. ब्रा.) "तस्य वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्मन उपभृच्चक्षुर्ध्रुवा मेधा स्रुवः सत्यमवभृथः स्वर्गलोक उदयनीय" इति ॥ ७२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। देवताशब्देनात्र ग्रहणं भूतानां एतेषां पञ्चानां यो **न निर्वपति स उच्छ्वसन्न जीवति** मृतक इत्यर्थः ॥ ७२ ॥

(७) **मणिरामः**। **देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्चेति** पञ्चानां यः **न निर्वपति** अन्नं न ददाति **स उच्छ्वसन्नपि** जीवितकार्याकरणात् न जीवतीत्यर्थः। तथा चैतेषामन्नादिना भरणं पोषणं कर्तव्यमेव ॥ ७२ ॥

(८) **गोविन्दराजः। देवतातिथिभृत्यानामिति।** देवताशब्देन भूतानामपि ग्रहणम् तेषामपि देवतात्वात्। तथा ऋषीणामपि देवतानामिति ग्रहणं तेषामपि देवतात्वस्मरणात्। भृत्याः। "वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्।" इत्युक्त्वा एषां देवतादीनां पञ्चानां यो न ददाति सः प्राणान् धारयन्नपि **न जीवति** जीवितकार्याभावात् ।। ७२ ।।

**अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च।**
**ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ।। ७३ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** एतैः शब्दैः करमांचिद्वेदशाखायामेतेषां विधानम्। अतः श्रुतिमूलतां पञ्चयज्ञविधानस्य दर्शयितुं तत्प्रसिद्धया पुनर्निर्दिशति।

यश्चाहुतादिशब्दैरुद्दिश्य तत्प्रकरणे दा कश्चिद्धर्मो विहित इह नोक्तः, सोऽपि ग्रहीतव्य इति संज्ञान्तरनिर्देशे द्वितीयं प्रयोजनम्। यथा ब्रह्मयज्ञश्राद्धोद्वाहपरिक्रियेत्यादि ।। ७३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अहुतं चेत्यादि पञ्चयज्ञानां श्रौतं संज्ञान्तरम् ।। ७३ ।।

(३) **कुल्लूकः।** नामभेदेऽपि वाक्यभेद इति दर्शयितुं पञ्चमहायज्ञानां मुन्यन्तरकृतान्यहुतादीनि संज्ञान्तराण्यभिधेयानि तानि स्वयं व्याचष्टे ।। ७३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** एतानेव शास्त्रान्तरप्रणीतनामभेदेन कीर्तयति अहुतं **चेति।** संज्ञाभेदेऽपि न पदार्थभेद इत्याह **पञ्चयज्ञानिति** ।। ७३ ।।

(५) **नन्दनः।** शास्त्रान्तरेषु विहितान्यहुतादीनि पञ्चमहायज्ञानामेव नामान्तराणि न कर्मान्तराणामित्यभिप्रायेणाह **अहुतमिति** ।। ७३ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** द्वाभ्यामाह अहुतमिति। **अहुतं प्रहुतं ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च** युक्तान्पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ।। ७३ ।।

(७) **मणिरामः।** पञ्च (महा) यज्ञानां नामान्तराण्याह **अहुतं चेति** ।। ७३ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** एवं चाकरणनिन्दया एषां नित्यतामाह **अहुतं च हुतं चेति।** उत्तरश्लोके एषां व्याख्यार्थो भविष्यति। एतानेव पञ्चमहायज्ञान् एभिर्नामान्तरैः मुनय आचक्षते। नाममात्रभेदो न वस्तुभेद इत्येतत्प्रतिपादयितुं संज्ञान्तरप्रदर्शनमेतत् ।। ७३।।

**जपोऽहुतो,' 'हुतो' होमः, 'प्रहुतो' भौतिको बलिः।**
**'ब्राह्म्यं हुतं' द्विजाग्र्यार्चा, 'प्राशितं' पितृतर्पणम् ।। ७४ ।।**

(१) **मेधातिथिः। योऽयमहुतो** नाम यज्ञ उक्तः स **जपो** वेदितव्यः। "स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन्" इति श्रवणाद्वेदाध्ययनं जपार्थः। यद्वा मानसे व्यापारे स्मरणम्। उभयत्रापि जपतिः पठ्यते—व्यक्तायां वाचि मानसे चेति। अग्नौ होमो **हुतम्**। भूतबलिः **प्रहुतम्**।

यद्यप्ययं होमस्तथाप्यग्नौ बाहुल्येन होमानां प्रसिद्धेर्भूतयज्ञो न होम इत्याशङ्कायां प्रहुत इत्युक्तम्। प्रकर्षेणासौ होम इति स्तुत्या। द्विजाग्र्याणां ब्राह्मणानामर्चा **ब्राह्म्यं हुतम्** आतिथ्यकर्म **द्विजाग्र्यर्चा** ।। ७४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **जपोऽहुतो** होमाभावात्। **हुतो** होमात् **प्रहुतः** प्रगतहुतः प्रेति प्रगतार्थे। ब्रह्मणि ब्राह्मणे हुतं **ब्राह्मं**। प्रकर्षेण विप्रैरश्यतेऽत्रेति **प्राशितम्** ।। ७४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **अहुत**शब्देन ब्रह्मयज्ञाख्यो जप उच्यते। **हुत**शब्देन देवयज्ञाख्यो होमः। **प्रहुत**शब्देन भूतयज्ञाख्यो भूतबलिः। **ब्राह्महुत**शब्देन मनुष्ययज्ञाख्यो ब्राह्मणश्रेष्ठस्यार्चा **प्राशित**शब्देन पितृयज्ञाख्यं नित्यश्राद्धम् ।। ७४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एतद्व्यनक्ति **जप इति**। **अहुत** इति च्छेदः। योऽयं पूर्वमहुतमित्युक्तः स **जपः** स्वाध्यायो वेदितव्य इत्यन्वयः। एवमुत्तरत्र। **ब्राह्मं** ब्रह्म ब्राह्मणजातिस्तस्येदं तस्यैनातिथित्वात् **ब्राह्मं** हुतं तच्च **द्विजाग्र्यार्चे**त्यन्वयः। **पितृतर्पणं** नित्यश्राद्धस्याप्युपलक्षणम् ।। ७४ ।।

(५) **नन्दनः**। तेषां तथात्वं दर्शयति **जपोऽहुत इति**। **जपो** ब्रह्मयज्ञः सोऽहुतसंज्ञः। **होमो** हुतसंज्ञः। **भौतिको बलि**र्भूतयज्ञः। **द्विजाग्र्यार्चा** मनुष्ययज्ञः स ब्रह्महुतसंज्ञः। **पितृतर्पणं** पितृयज्ञः। स **प्राशित**संज्ञः ।। ७४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। गायत्री**जपः**। अहुतसंज्ञः। **हुतं** दैवः **होमः**। भूतबलिः **प्रहुत**संज्ञः विप्रार्चा **ब्रह्महुतं**। **पितृतर्पणं** नित्यश्राद्धं **प्राशित**संज्ञम् ।। ७४ ।।

(७) **मणिरामः**। अहुतादीन् व्याचष्टे **जप इति**। जपः ब्रह्मयज्ञाख्यः। **होमः** वैश्वदेवाख्यः। **द्विजाग्र्यार्चा** मनुष्ययज्ञाख्यः। **पितृतर्पणं** नित्यशुद्धम् जलतर्पणं च ।। ७४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **जप इति**। **अहुत**शब्देन **जपो** ब्रह्मयज्ञाख्यः स्मृतः। **हुतश्च होमो** देवयज्ञः, **प्रहुतश्च भौतिको बलिः** भूतयज्ञः **ब्राह्मं हुतं द्विजाग्र्यस्य** ब्राह्मण**स्यार्चा** अतिथियज्ञः **प्राशितं च पितृतर्पणम्** पितृयज्ञः। यदि कथंचित् सकलमहायज्ञमहानुष्ठानासंपत्तिस्तदा ।। ७४ ।।

**स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।।**
**दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ।। ७५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं 'पञ्चसु महायज्ञेष्वेकैकस्मिन्पृथगधिकारो न समुदाय एकोऽधिकार' इति तदनेन प्रकटीकरोति। यदा दारिद्र्यादिदोषादन्यतो वा कारणात्कथंचिदसंपत्तौ नातिथ्यादिपूजा घटेत, ततः **स्वाध्याये** नित्ययुक्तेन भवितव्यम्। **दैवे कर्मणि** वैश्वदेवदेवताभ्योऽग्नौ होमो 'दैवं कर्म'। भूतयज्ञपितृयज्ञयोः सत्यपि 'दैवत्वे', प्रकरणादग्नावेव होमो 'दैव'मुच्यते।

अत्र अर्थवादमाह **दैवे कर्मणि युक्तः** तत्परो **बिभर्ति** धारयति। **चराचरं** स्थावरं जङ्गमं च। सर्वस्य जगतः स्थितेर्हेतुर्भवतीत्यर्थः ।। ६५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पंचयज्ञाशक्तावाह **स्वाध्याय** इति। **दैवे** होमे **कर्मणि बिभर्ति** ।। ७५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यदि दारिद्र्यादिदोषेणातिथिभोजनादिकं कर्तुं न क्षमते तदा ब्रह्मयज्ञे **नित्ययुक्तो** भवेद्दैवे **कर्मण्यग्नौ** होमे च। होमस्य स्तुतिमाह 'यतो दैवकर्मपरः' इदं स्थावरजङ्गमं धारयति ।। ७५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। दारिद्र्यवशात् पञ्चानामशक्तौ द्वयमावश्यकमित्याह **स्वाध्याय इति**। **दैवे** होमे। देवकर्मणः फलातिशयार्थं तत्स्तौति **दैव इति** ।। ७५ ।।

(५) **नन्दनः**। एतेषु महायज्ञेषु ब्रह्मदेवयज्ञयोरप्रमत्ततरेण भवितव्यमित्याह **स्वाध्याय इति**। **स्वाध्याये** ब्रह्मयज्ञे। पञ्चमहायज्ञेषु मध्ये ब्रह्मयज्ञदेवयज्ञयोरवश्यकर्तव्ययोर्द्वयोरपि देवयज्ञं विशेष उत्तरार्धेनोक्तः ।। ७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **स्वाध्याये** वेदाध्ययने नित्ययुक्तः स्याद्दैवे पञ्चसु यज्ञेषु इह **कर्मणि** युक्तः स्यात् दैवे कर्मणि युक्तः स्यात्। **दैवे कर्मणि युक्तः** सन्निदं **चराचरं बिभर्ति** ।। ७५ ।।

(७) **मणिरामः**। दारिद्र्यादिना अतिथिभोजननित्यश्राद्धकरणसामर्थ्याभावेऽपि ब्रह्मयज्ञादित्रयं त्ववश्यमेव कर्तव्यमित्याह **स्वाध्याय इति**। दैवकर्मस्तुतिमाह **दैवे कर्मणीति** ।। ७५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। "स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् दैवे पित्र्ये च कर्मणि। उभयत्रापि युक्तो हि' (३।७५) इति। ब्रह्मयज्ञदेवयज्ञानुष्ठाने नित्यं यत्नवान् स्यात्। तस्मादेवं यज्ञानुष्ठानपर इदं स्थावरजङ्गमरूपं जगत् धारयति ।। ७५ ।।

**अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।।**
**आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।। ७६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। कथं पुनरग्न्याहुत्या सर्वस्य जगतः स्थितिर्भवतीत्यत आह **अग्नौ** यजमानेन **प्रास्ता** क्षिप्ताऽऽहुतिर्हूयमानं चरुपुरोडाशाद्युच्यते। **आदित्यम**दृश्येन रूपेण प्राप्नोति। सर्वरसानामाहर्ताऽऽदित्योऽत आहुतिरसस्यादित्यप्राप्तिरुच्यते। अतः स रस आदित्यरश्मिषु कालेन परिपक्वो वृष्टिरूपेण जायते। **ततोऽन्नं** व्रीह्यादि। ततः **प्रजाः** सर्वप्राणिनः। एवमग्नौ जुह्वत्सर्वजगदनुग्रहे कर्ता यजमानः। पूर्वस्य विधेः शेषोऽयं, न पुनर्यथाश्रुतार्थनिष्ठः। तत्त्वे हि वृष्टिकामस्याधिकारः स्यात्। न च तच्छ्रुतम्। प्रकृतशेषतयाऽन्वयसंभवे न कल्पनाया अवसरः ।। ७६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अग्नौ प्रास्ताहुतिरिति**। वक्ष्यमाणक्रमेणाग्न्यादित्ययोरन्योन्यतेजःसंबन्धादग्निगताहुत्या आदित्याप्यायनं तस्माच्चाप्यायिता वृष्टिः ।। ७६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। कुत एतदित्याह **अग्नाविति**। यजमानेनाग्नावाहुतिः सम्यक् क्षिप्ता रसाहरणकारित्वादादित्यस्यादित्यं प्राप्नोति। स चाहुतिरस **आदित्याद्वृष्टिरूपेण जायते**। ततोऽन्नं तदुपभोगेन जायन्ते **प्रजाः**॥ ७६॥

(४) **राघवानन्दः**। बिभर्तीदमित्युक्तं तदेव कुतस्तत्राह **अग्नाविति**। अधिकारिणा अग्नौ हुताऽऽहुतिः सूक्ष्मात्मना **आदित्यमुपतिष्ठते** इत्याहुत्यपूर्वसाध्यं जगदिति भावः॥७६॥

(५) **नन्दनः**। कथं बिभर्तीत्यपेक्षायामाह **अग्नाविति**। **प्रास्ता** प्रक्षिप्ता॥ ७६॥

(६) **रामचन्द्रः**। सम्यगग्नौ **प्रास्ता** प्रक्षिप्ता आहुतिरादित्य**मुपतिष्ठते**। संतुष्टादादित्यात् **वृष्टिर्जायते**। **वृष्टेरन्नं** भवति। तत अन्नादन्नभक्षणात्**प्रजा** जायन्ते॥ ७६॥

(७) **मणिरामः**। कथं बिभर्तीत्याह **अग्नाविति**। **प्रास्ता** क्षिप्ता॥ ७६॥

(८) **गोविन्दराजः**। तथा च **अग्नौ प्रास्ताहुतिरिति**। अग्नावाहुतिः **सम्यक्** यथाविधि प्रक्षिप्ता हुता रसाहरणरूपत्वादादित्यस्य आदित्यं प्राप्नोति स आहुतिरसः कालेन परिपक्वः आदित्याद्**वृष्टिरूपेण जायते**। ततोऽन्नं, तदुपभोगेन च **प्रजा जायन्ते**॥ ७६॥

**यथा वायुं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः॥**
**तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते इतराश्रमाः॥७७॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपरेण प्रकारेण महायज्ञानामवश्यकर्तव्यतां दर्शयति। **वायुः** प्राणस्तमा**श्रित्य सर्वे जीवन्ति**। न ह्यप्राणस्य जीवितमस्ति, प्राणधारणमेव 'जीवनम्'। जन्तुशब्दः प्राणिमात्रवचनः। **सर्व**ग्रहणं देवर्षीणामप्यतिशययुक्तानां वाय्वायत्तमेव जीवनम्। एवं गृहस्थः प्राणतुल्यः सर्वाश्रमिणाम्। अतः सर्वोपजीवनीयेन भवितव्यमिति विध्यर्थः।

**इतर**ग्रहणाद्यद्यपि गृहस्थादन्य आश्रमिणः प्रतीयन्ते, तथापि न गृहस्थप्रतिषेधार्थमेतत्। स्नातकस्य हि विशेषेणातिथ्यादिदानं विहितम्। तस्मादितरग्रहणं गृहस्थाश्रमतुल्यार्थम्। न च श्रूयते नात्मनात्मनि वर्तन्ते शरीरकुटुम्बस्थितिं प्राप्नुवन्ति। इतरे च त **माआश्रमा इतराश्र** इति समासः॥ ७७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वायुं** प्राणमन्नादिपाकविहरणादिहेतुम्॥ ७७॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा प्राणाख्यवाय्वाश्रयेण सर्वप्राणिनो जीवन्ति तथा गृहस्थाश्रयेण सर्वाश्रमिणो निर्वहन्ति॥ ७७॥

(४) **राघवानन्दः**। "यथा वै क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते। एवं सर्वाणि भूतानि अग्निहोत्रमुपासत" इति श्रुत्वा अत्राग्निहोत्रोपलक्षितं गृहस्थाश्रमं प्राकरणिकत्वात्स्तौति **यथेति**। **वायुं** प्राणं। तद्दत्तभिक्षोपजीवित्वात् ब्रह्मचारिसंन्यासिनाम्। वानप्रस्थस्याविरक्तस्य पूर्वं गृहस्थविद्याद्युपयोगित्वात्। विरक्तस्य तु 'गृहमेधिषु चे'त्यादि वक्ष्यमाणरीत्या गृहस्थोपजीवित्वाच्च॥ ७७॥

(५) **नन्दनः**। अधिकारिप्रशंसाद्वारेण पञ्चमहायज्ञानामेव प्रशंसां श्लोकाभ्यामाह **यथेति**। **वर्तन्ते** जीवन्ति ॥ ७७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यथा सर्वजन्तवः इतर आश्रमा आश्रित्य वर्तन्ते**। ॥ ७७ ॥

(७) **मणिरामः**। गृहस्थाश्रमस्तुतिमाह **यथेति**। **वायुं** प्राणाख्यवायुं **वर्तन्ते** जीवन्ति **वर्तन्ते** निर्वहन्ति। तथा च सर्वाश्रमिणां गृहस्थः प्राणतुल्यः ॥ ७७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अपि च "यथा वायुं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्त इतराश्रमाः"। यथा प्राणवाय्ववलम्बनेन सर्वप्राणिनो जीवन्ति, एवं **गृहस्थाश्रममाश्रित्य** अवलम्ब्याश्रमान्तराणि ध्रियन्ते ॥ ७७ ॥

**यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।**
**गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८॥**

(१) **मेधातिथिः**। **यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेन** वेदार्थव्याख्यानजन्येनान्नेन च **धार्यन्त** उपक्रियन्ते **गृहस्थेन तस्माज्ज्येष्ठः** श्रेष्ठ **आश्रमो गृहम्**। गृहीति पाठे बहुव्रीहिः, गृहमिति पाठ विशेषणसमासो, 'ज्येष्ठाश्रम' इति। अत्रापि गृहस्थैरवेत्यौचित्यानुवादो, न वानप्रस्थादीनामध्यापनादिप्रतिषेधः। वानप्रस्थस्य तावद्विहितमेतत् 'एतानेव महायज्ञान्निर्वपेदिति'। प्रव्रजितस्य यद्यपि 'समो भूतेषु हिंसानुग्रहयोः—अनारम्भी' (गौतम. ३।२४-२५) इत्यनुग्रहः प्रतिषिद्धस्तथापि वेदार्थव्याख्यानं भिक्षुशास्त्रे विहितम्। ज्ञानवैराग्यभावनाभ्यासातिशयविधानाच्च तयोर्नातिप्रयत्नो वेदार्थव्याख्याने। ब्रह्मचारिणस्स्वार्थलोपान्नाध्यापकत्वं, भैक्षवृत्त्युपदेशाच्च कुतोऽन्नदानम्। अतो गृहस्थानामेव प्रायेण तत्संभवादेवमुक्तं गृहस्थैरेव ॥६८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतदेव व्युत्पादयति **यस्मादिति**। गृहस्थस्यैवाध्यापनाधिकारात्त्रयोऽपि ज्ञानेन। वनस्थस्यापि भिक्षाश्रमणोपदेशात्। त्रयोऽप्यन्नेन **च धार्यन्त** इत्यर्थः। ज्येष्ठे गुरुतया पोषकतया च ॥ ७८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। गृहस्थः प्राणतुल्यः सर्वाश्रमिणामित्युक्तं तदेवोपपादयति **यस्मादिति** - यस्माद्गृहस्थव्यतिरिक्तास्त्रयोऽप्याश्रमिणो वेदार्थव्याख्यानान्नदानाभ्यां नित्यं गृहस्थैरेवोपक्रियते **तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो** गृहस्थः ज्येष्ठ आश्रमो यस्य स तथेति बहुव्रीहिः ॥ ७८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तमेव पुनः श्रेष्ठत्वेन स्तौति **यस्मादिति**। **ज्ञानेन** वेदविद्योपादानेन। **त्रयोऽपि** ब्रह्मचारिवानप्रस्थसंन्यासिनः। श्रेष्ठ इति ज्येष्ठ इति वाऽतिशयोक्तिः सर्वान्नाधिकारार्था अत्रैषां परस्परोपकारकता निरस्ता ॥ ७८ ॥

(५) **नन्दनः**। **ज्ञानेन** ज्ञानप्रदानेनाध्यापनेनेति यावत्। अनेन ज्ञाप्यते गृहस्थादेवानापद्यध्येतव्यमिति ॥ ७८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अन्नेन ज्ञानेन** वेदार्थव्याख्यानेन यस्मात्कारणात् **त्रयोऽप्याश्रमिणः अन्वहं गृहस्थैरेव धार्यन्ते तस्मात्कारणाद्गृही** गृहस्थाश्रमो **ज्येष्ठाश्रम** उच्यते ॥ ७८ ॥

(७) **मणिरामः**। प्राणतुल्यत्वमेवोपपादयति **यस्मादिति**। **ज्ञानेन** अध्यापनेन ॥७८॥

(८) **गोविन्दराजः**। एवं च **यस्मादिति**। **यस्मात्** गृहस्थव्यतिरिक्ताः **त्रयोऽप्याश्रमिणो** वेदार्थोपदेशान्नदानाभ्यां गृहस्थैरेवोपक्रियन्ते तस्मात् **श्रेष्ठाश्रमो** गृहस्थः। गृहा पत्नी मेधो यज्ञः। गृहाधीनो मेधो यस्य गृहमेधी। गृहायां तिष्ठन्तीति गृहस्थाः। गृहा अस्यास्तीति गृही ॥ ७८ ॥

**स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥**
**सुखं चेहेच्छताऽत्यन्तं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥७९॥**

(१) **मेधातिथिः**। **स** गृहाश्रमः। **प्रयत्नेन संधार्योऽ**नुष्ठेयोऽक्षयस्वर्गकामेनेह **च सुखमिच्छता**। **अत्यन्तं** यस्य सुखस्यान्तो नास्ति। अत्यन्तशब्दो नित्यतां गमयति। य आश्रमोऽ**धार्यो**ऽशक्यो धारयितुं **दुर्बलेन्द्रियैः**।

एतदुक्तं भवति—यतः स्त्रीसंभोगसुसंस्कृतभोजनादि गृहस्थस्यावश्यंभावि ततश्चेन्द्रियाणां विषयासक्तौ दोषः। अत उच्यते प्रयत्नेन आश्रमान्तरेभ्यो धारयितव्यः। अत्रापि महानिन्द्रियसंयमः। अनृतौ न गन्तव्यं, परदारा न गन्तव्याः, शेषान्नं भोक्तव्यम्। विषयसंनिधाने यो नियमः स दुष्करः।

**स्वर्गमक्षयमिति**। नानेन सर्वेषां गृहस्थकर्मणां स्वर्गफलतोच्यते, केषांचिन्नित्यत्वात्केषांचित्फलान्तरश्रवणात्। येऽप्यश्रुतफलाः स्वर्गफलतया कल्प्यन्ते तेषामपि केवलानामनुवादे न कश्चिद्विशेषणे हेतुः। तस्माद्विहिताभिप्रेतफलानुवादोऽयम्। न चाधिकारान्तरमिदम्। तेषामेव यावज्जीविकं स्वर्गकामस्येति च शक्यं वक्तुम्। **सुखं चेहेच्छते**त्यविधेयेन तुल्यत्वावगमात्। न हीह सुखकामेनेत्येतच्छक्यं कर्मफलतया ज्ञातुं, विशेषस्यानिर्देशात्। सर्वा हि प्रीतिर्ग्रामपुत्रादिलाभैर्विशेषैरवच्छिन्ना प्रतीयते। अनवच्छेदेन प्रीतिमात्रं चेत्स्वर्ग एव। न च तस्यैहिकत्वम्। तस्माद्दृष्टसुखाप्तिकामानुवादोऽयम्। अनिकेता ह्यन्य आश्रमिणो वृक्षमूलनिकेतनाः परगृहवासिनो दुःखमासते। तस्मादयं तावदनुवादः तत्तुल्यतयाऽयमप्यनुवाद एव ॥ ७९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अक्षयं चिरभोग्यं। **अधार्यो** धारयितुमशक्यः ॥ ७९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत एवमतः **स** गृहस्थाश्रमः **स्वर्गसुखमिच्छता** अनन्तमिव चिरस्थायित्वादिहलोके च स्त्रीसंभोगस्वाद्वन्नादिभोजन**सुखं सन्ततमिच्छता प्रयत्नेना**नुष्ठेयः। योऽसंयतेन्द्रियैर्धारयितुं न शक्यते ॥ ७९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एव गार्हस्थ्याश्रमे यत्न आस्थेय इत्याह **स इति**। **स** गार्हस्थ्यधर्मः **संधार्योऽ**नुष्ठेयः। **अक्षय्यमिच्छता,** 'तत्कर्तव्यं तदनया सहे'त्युक्तेः इह च सुखं स्त्र्यधीनमित्यनुभवसिद्धम्। **अधार्य** इति च्छेदः। **दुर्बलेन्द्रियैः** असंयतेन्द्रियः॥ ७९ ॥

(५) **नन्दनः**। यत एवं तस्माद्गृहस्थाश्रम एव **धार्यो** नाश्रमान्तराणि पञ्चयज्ञरहितानीत्यभिप्रायेणाह **स इति**। **प्रयत्नेना**पद्यपि ॥ ७९ ॥

(६) **रामचन्द्रः। स** गृहस्थाश्रमः **प्रयत्नेनाक्षयं स्वर्गमिच्छता संधार्यः** अत्यन्तसुख**मिहेच्छता संधार्यः** यो गृहस्थाश्रमो **दुर्बलेन्द्रियैरधार्यः** धारयितुं न योग्य इत्यर्थः ॥७९॥

(७) **मणिरामः।** एवं **स** च गृहस्थाश्रमः, स कः? यः **दुर्बलेन्द्रियैः** असंयतेन्द्रियैः **अधार्यः** धारयितुमशक्यः ॥ ७९ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** यत एवमतः **स सन्धार्यो गृहस्थेनेति। स** गृहस्थाश्रमः स्वर्गसंबन्धमनन्तमिहलोके सुरतसंभोगस्वाद्वन्नातिसुखमनन्त**मिच्छता** प्रयत्नेनानुष्ठेयोऽसंयतेन्द्रियैः धारयितुं **न शक्य** इति गृहस्थाश्रमफलकथनम् ॥ ७९ ॥

## ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ॥
## आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥ ८० ॥

(१) **मेधातिथिः।** एते **कुटुम्बिभ्यो** गृहिभ्यः सकाशादर्थयन्ते आदित्सन्ति। आत्मोपकारलिप्साऽऽशासनमाकाङ्क्षा। अतस्तेभ्यो देवादिभ्यः **कार्यं** कर्तव्यं विहितहोमादि **विजानता** शास्त्रस्थितिम्। 'कुटुम्बं' दाराः। प्राकृतपुरुषेणापि या सहायासोपनिबद्धा सा न युक्ता विफलीकर्तुं किं पुनर्देवतास्तुतिः ॥ ८० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। कुटुम्बिभ्यो** गृहिभ्यः **आशासते।** तत्र **ऋषयः** स्वस्वदृष्टवेदभागस्वाध्यायेनात्मनः सुखोत्पत्तिं कांक्षन्ते। **तेभ्यस्ता**नुद्दिश्य ॥ ८० ॥

(३) **कुल्लूकः।** एते गृहस्थेभ्यः सकाशात्प्रार्थयन्ते, अतः शास्त्रज्ञेन **तेभ्यः** कर्तव्यम् ॥ ८० ॥

(४) **राघवानन्दः।** उक्तानर्थवादपुरःसरं पञ्चयज्ञोपजीवकानाह **ऋषय इति त्रिभिः। आशासते** वेदाध्ययनश्राद्धादिकमाकांक्षन्ते। **कुटुम्बिभ्यः** गृहस्थेभ्यः। आशासानेभ्य**स्तेभ्यो विजानता** गृहस्थेन **कार्यं** कर्तव्यं। यत्तूत्तरश्लोके वक्ष्यमाणवेदाध्ययनादि ॥ ८० ॥

(५) **नन्दनः।** अथ पञ्चमहायज्ञानामेवावश्यकर्तव्यत्वे कारणान्तरमाह **ऋषय इति। विजानता कुटुम्बिना। तेभ्यः** ऋष्यादिभ्यः। **कार्यं** कर्तव्यमिति ॥ ८० ॥

(६) **रामचन्द्रः। ऋषयः पितरो देवाः। भूतानि अतिथयः तथा तेभ्यः** कुटुम्बिभ्यः गृहिभ्यः। सकाशादा**शासते** सुखमभिलषन्ति, **विजानता** पुंसा शास्त्रस्थितिं तेभ्यः **कार्यं** कारणीयमित्यर्थः ॥ ८० ॥

(७) **मणिरामः। कुटुंबिभ्यः** गृहस्थेभ्यः। **आशासते** प्रार्थयन्ते। अतः **विजानता** शास्त्रज्ञेन गृहस्थेन **तेभ्यः** ऋष्यादिभ्यः **कार्यं** भरणपोषणं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ८० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** न चानित्यतापत्तिः, यत आह **ऋषय इति।** ऋषिप्रभृतयो गृहस्थेभ्यः सकाशात् यतोऽर्थयन्ते यतः शास्त्रज्ञेन एभ्यः कर्तव्यम् ॥ ८० ॥

**स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।।**
**पितॄञ्छ्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ।। ८१ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** "स्वाध्यायमधीयीत" इति य एवार्थः स एव स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् इति। यद्भवति श्रद्धादरेण पाद्यार्घमाल्यानुलेपनेन तदत्रोच्यते। स्तुतिवचनं चेदम्। न चोभयोरपि स्वाध्यायऋषिपूजयोः करणम्। अग्न्यादिदेवतास्तावका मन्त्रा ऋषीनभिष्टुवन्ति। तस्मात्प्रशंसामात्रम् **ऋषीन्स्वाध्यायेनार्चयेदिति**।

अथवा नेह मरीच्यादय ऋषयोऽभिप्रेताः, किं तर्हि? वेदा एव। स्वाध्यायशब्दश्च क्रियाशब्दो नात्र वेदवचनो यथा 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इति। तेनैतदुक्तं भवति–'अध्ययनेन वेदान् पूजयेत्' यथाविध्यभ्यस्येत्। अन्यथा पूजाया असंभवात्। अत्राप्यर्चा भक्ति एव। न हि होमे देवता प्रधाना, कारकं हि देवतेति।

**पितॄन् श्राद्धेन**। अत्र यथाश्रुत एव नियोगः। स च श्राद्धविधौ निर्णेष्यते। **नॄन्** अतिथिभिक्षुप्रभृतीन् **अर्चयेत्**, अर्चापूर्वकमन्नं तेभ्यो दद्यादित्यर्थः ।। ८१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **भूतानि** बलिहोमभागित्वेन देवताभूतानामपि बलिभागितया भूतपदाभिधेयत्वात् बलिकर्मणि देवतोद्देशेन कर्तव्यम् ।। ८१ ।।

(३) **कुल्लूकः।** किं तत्तदाह **स्वाध्यायेनेति**। नानाप्रकारत्वादर्चनजप स्वाध्यायादेरर्चनार्थत्वमुचितम्। महायज्ञान्तर्गतैः स्वाध्यायादिभिर्ऋषिदेवपित्रतिथिभूतानि यथाशास्त्रं पूजयेत् ।। ८१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तदेव ससंप्रदानकमाह **स्वाध्यायेनेति**। **अर्चयेत्**प्रीणयेत्। **श्राद्धेनेति** तर्पणस्याप्युपलक्षणम्। **बलिकर्मणा** भूतेभ्यो दत्तेनान्नेन ।। ८१ ।।

(५) **नन्दनः।** किं कर्तव्यमित्यपेक्षायामाह **स्वाध्यायेनेति** ।। ८१ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **श्राद्धेन** **पितॄनन्नैस्तर्पयेत्** **बलिकर्मणा** **भूतानि** प्रीणयेदित्यर्थः ।। ८१ ।।

(७) **मणिरामः।** कथं कर्तव्यं तदाह **स्वाध्यायेनेति** ।। ८१ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** किं तदित्याह **स्वाध्यायेनेति**। नानाप्रकारत्वादर्चनस्य स्वाध्यायादेरर्चनार्थत्वमविरुद्धं पूर्वोक्तमहायज्ञार्थैः स्वाध्यायादिभिः ऋषिदेवपित्रतिथिभूतानि यथाशास्त्रमर्चयेत् ।। ८१ ।।

**दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।।**
**पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।। ८२ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **दद्यात्** कुर्यात्। **अहरहः** प्रतिदिवसम्। **श्राद्धम्** नाम्ना धर्मातिदेशः। श्राद्धं नाम पित्र्यं कर्मामावास्यायां विहितम्।

तदीयेतिकर्तव्यता श्राद्धमित्यनेन नाम्नाऽतिदिश्यते। **अन्नाद्येनेति**। 'तिलैर्व्रीहियवैः' (मनु. ३।२६७) इत्यादेरनुवादोऽयम्। उत्तरत्र विवक्षितार्थः। **उदकेनेति**। **पयः** क्षीरम्॥ ८२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। श्राद्धं** श्रद्धया पितृकर्म **अन्नाद्येन** श्रद्धयोत्त्कृष्टेन **तथोदकेन** अन्नाद्यवददुष्टेनेति मुख्यकल्पानुकल्पौ। परे त्वनुकल्पाः **पयसा** जलेन तर्पणकाले दत्तेन संपादनम्। तथा अन्नाभावे **मूलैः फलैर्वा** श्राद्धदत्तैरिति। केचित्त अन्नाद्यभावे उदकफलमूलक्षीराणामन्यतमेन नित्यश्राद्धं कर्तव्यमित्यस्यार्थमाहुः। **पितृभ्यः प्रीतिर्मिति** तत्प्रीतिहेतोर्विहितस्यैव मूलस्य फलस्य वा ग्रहणार्थम्॥ ८२॥

(३) **कुल्लूकः**। तत्र पितृयज्ञं तावदाह **कुर्यादिति**। प्रत्यहं यथासंभवं श्राद्धं कुर्यात्। श्राद्धशब्दोऽयं कर्मविधिवाक्यवर्ती। कौण्डपायिनामयनीयाग्निहोत्रशब्दवद्वक्ष्यमाणपार्वणश्राद्धधर्मातिदेशार्थः। **अन्नाद्येनेति** तिलैर्व्रीहिभिर्यवैरित्यादेरुपादानम्। **पयः** क्षीरम्॥ ८२॥

(४) **राघवानन्दः। अहरहःश्राद्धं** नित्यश्राद्धम्। 'यदन्नः पुरुषो राजन् तदन्नाः पितृदेवता' इति न्यायमाश्रित्याह **उदकेनेत्यादि**। **पयो** दुग्धं **प्रीतिं** श्रद्धा**मावहन्**॥ ८२॥

(५) **नन्दनः**। पितृञ्छ्राद्धेनेत्येतत्प्रपञ्चयति **कुर्यादिति**। **अन्नाद्येन** मुख्यकल्प उक्तः। **उदकेनाधमः पयोमूलफलैर्**मध्यम इति विवेकः॥ ८२॥

(६) **रामचन्द्रः**। अथ नित्यश्राद्धमारभ्यते **दद्यादिति**। **अहरहःश्राद्धं अन्नाद्येन उदकेन** च अन्नाभावे **पयसा** वा **मूलफलैर्वापि**। किं कुर्वन्? **प्रीतिमावहन्**॥ ८२॥

(७) **मणिरामः**। पितृयज्ञमाह **कुर्यादिति**। अन्नाद्येनेत्यादिशब्दात् तिलव्रीहियवादयो बोध्याः॥ ८२॥

(८) **गोविन्दराजः**। तेषु पितृयज्ञनिरूपणार्थं तावदाह **दद्यादहरहरिति**। **पितृभ्यः प्रीतिमुत्पादयन् अन्नोदकक्षीरमूलफलैः** यथासंभवं प्रत्यहं श्राद्धं कुर्यात्॥ ८२॥

**एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थं पाञ्चयज्ञिके॥**
**न चैवात्राशयेत्कंचिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम्॥ ८३॥**

(१) **मेधातिथिः**। श्राद्धशब्देन विधानात्सर्वस्मिंस्तद्विधाने प्राप्ते कश्चिदितिकर्तव्यताभागो निवर्त्यते। **न चैवात्राशयेत्कंचित्**। नात्रान्वाहिके श्राद्धे वैश्वदेवं प्रति विश्वान्देवानुद्दिश्य द्विजभोजनम्।

अत्र केचिदाहुः। प्राप्ते भोजन **आशयेदिति** पुनर्वचनमपूर्वत्वमस्य दर्शयति। तेनैतावदेवैतच्छ्राद्धं यत्पितॄनुद्दिश्य ब्राह्मण एको भोज्यते, न त्वन्या काचिदर्घपात्रादिहोमाद्येतिकर्तव्यताऽस्ति। 'ब्रह्मचर्यं' 'स्वाध्यायनिषेध' इत्येवमादि न भवति।

**एकमप्याशयेद्विप्रम्**। त्रयाणां नियमादेकैकमुभयत्रेत्यस्याविधित्वादप्राप्त एको विधीयते। एकमपि भोजयेत्, सति संभवे बहूनपि। **पित्रर्थं** पितृतृप्त्यर्थम्। **पाञ्चयज्ञिकम्**। पञ्चयज्ञभवं पाञ्चयज्ञिकं, तदन्तर्गतम्। **पाञ्चयज्ञिक**शब्दः श्राद्धे प्रयुक्तः। न ह्येतत् पाञ्चयज्ञिकं तर्पणम्। तेन तर्पणभोजनयोः समुच्चयः। अस्य तु विकल्पो भविष्यति–'यदेव तर्पयत्यद्भिरिति' (३।२८३) ॥ ८३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **एकमपीति**। पित्राद्येकैकोद्देशेनैकैकं ब्राह्मणं भोजयेदिति पार्वणवत् प्राप्तमेव। तावता ब्राह्मणभोजनारंभे **पित्रर्थं** पित्राद्यर्थं **पाञ्चयज्ञिये** पाञ्चयज्ञिके संबन्धिश्राद्धे। **न चैवेति**। अत्र नित्यश्राद्धे ब्राह्मणासंभवेऽपि वैश्वदेवस्थाने द्विजं नाशयेदिति विश्वेषां देवानां नित्यश्राद्धप्रीणनं नास्तीति दर्शितम् ॥ ८३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पितृप्रयोजने पञ्चयज्ञान्तर्गत एकमपि ब्राह्मणं भोजयेत्। अपिशब्दात्संभवे बहूनपि। पार्वणधर्मग्रहणाच्च वैश्वदेवब्राह्मणभोजनप्राप्तावाह **न कंचिद्वैश्वदेवार्थं** ब्राह्मणमत्र भोजयेत् ॥ ८३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। श्राद्धं हि ब्राह्मणभोजनात्मकं तत्र कति ब्राह्मणा भोजनीया इत्यपेक्षायामाह **एकमिति**। **पाञ्चयज्ञिके** पञ्चयज्ञान्तर्गते नित्ये श्राद्धे। **आशयेत्** भोजयेत्। पार्वणधर्मत्वादस्य देवब्राह्मणप्रसक्तौ निषेधति **न चेति** ॥ ८३ ॥

(५) **नन्दनः**। अत्र पितृयज्ञाद्युक्तेषु मध्ये वैश्वदेवं प्रति वैश्वदेवहोमः स्यात्। द्विजं किंचिदप्यन्नं भोजयेत्। अन्यद्धविरुत्पाद्य भोजयेदित्यर्थः ॥ ८३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **पाञ्चयज्ञिके** कर्मणि **चैकं विप्रं** पितृतृप्त्यर्थं**नाशयेत्** भोजयेत्। अथ वैश्वदेविकं च द्विजं **वैश्वदेवं नाशयेन्न** भोजयेत्। एकं न भोजयेदित्यर्थः। किंतु युग्मम् ॥ ८३ ॥

(७) **मणिरामः**। **पाञ्चयज्ञिके** पित्रर्थे पञ्चयज्ञान्तर्गते नित्यश्राद्धे। **अपि**-शब्दात् सामर्थ्ये बहूनपि भोजयेत्। तथा च पार्वणवत् कुर्यात्। तत्र वैश्वदेवब्राह्मण-भोजनप्राप्तावाह **न चैवेति**। **वैश्वदेवं प्रति** वैश्वदेवार्थे ॥ ८३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एकमिति**। पञ्चयज्ञान्तर्गते पितृप्रयोजने **एकमपि** शक्त्या सति संभवे बहूनपि विप्रान् भोजयेत्। श्राद्धशब्दनोदनात् वैश्वदेवब्राह्मणभोजने प्राप्ते आह **न चैवेति**। विश्वान् देवानुद्दिश्य अन्यं ब्राह्मणं न किञ्चिद्भोजयेत् ॥ ८३ ॥

**वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ॥**
**आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥८४॥**

(१) **मेधातिथिः**। विश्वेदेवार्थो **वैश्वदेवः** पाक उच्यते। सर्वार्थो विश्वदेव-शब्दोऽपि सम्प्रदानमात्रोपलक्षणार्थः। तेनातिथ्याद्यर्थताऽप्युक्ता भवति। **सिद्धस्य** होमम**आभ्यो** वक्ष्यमाणाभ्यो **देवताभ्यः कुर्यात्**। सिद्धशब्देन देवतोद्देशेन 'देवस्य त्वे'ति

मन्वन्ननिर्वापो न कर्तव्य' इति दर्शयति, केवलं सर्वार्थे निष्पन्नपाके होमादि कर्तव्यमिति विध्यर्थः। **गृह्येति** यथाविधिहोमादिकरणनिर्देशः। **विधिपूर्वकम्**—समाचारप्राप्तां परिसमूहनपर्युक्षणादिरूपामितिकर्तव्यतामाह। **ब्राह्मण**शब्दस्त्रैवर्णिकाधिकारप्रदर्शनार्थः। **अन्वहं** नित्यमित्यर्थः। देवताग्रहणं स्वाहाकारप्राप्त्यर्थम्। षष्ठीनिर्देशादग्नेरिदमिति प्रयोगः स्यात्। देवताशब्दे तु—स्वाहाकारेण वा देवेभ्यो हविः संप्रदीयत इति। याज्यान्ते पुनर्वषट्कारस्य विधानात्, स्मार्तहोमे त्वभावः। स्वाहाकारस्तु सर्वत्र। तस्मिंश्च सत्यग्नये स्वाहेति प्रयोगः॥ ८४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नित्यश्राद्धमुक्त्वा वैश्वदेवाभिधानादयमेव क्रियाक्रमो मनोरपेक्षित इति लक्ष्यते। **वैश्वदेवस्य** विश्वदेवयोग्यस्य आरलवणादिव्यतिरिक्तस्यान्नस्य। **गृह्ये** वैवाहिकेऽग्नौ **सिद्धस्ये**त्यन्वयः। तत्र होमस्य पूर्वमेव विहितत्वात्॥ ८४॥

(३) **कुल्लूकः**। विश्वेदेवार्थः सर्वदेवतार्था **वैश्वदेवस्तस्य** पक्वस्यान्नस्यावसथ्याग्नौ स्वगृह्यविहितपर्युक्षणादीतिकर्तव्यतापूर्वक**माभ्यो** वक्ष्यमाण**देवताभ्यो ब्राह्मणः** प्रत्यहं **होमं कुर्यात्**। ब्राह्मणग्रहणं द्विजातिप्रदर्शनार्थं, त्रयाणां प्रकृतत्वात्॥ ८४॥

(४) **राघवानन्दः**। सम्प्रति वैश्वदेवविधिमाह **वैश्वदेवेति नवभिः**। **सिद्धस्य** पक्वस्य। हविष्यस्येति शेषः। **आभ्यो** वक्ष्यमाणाभ्यः। **ब्राह्मणो** द्विजातिः॥ ८४॥

(५) **नन्दनः**। कथं पुनर्वैश्वदेवः कर्तव्य इत्यपेक्षायामाह **वैश्वदेवस्येति**। **वैश्वदेवस्य सिद्धस्य** सर्वदेवार्थं पक्वस्यान्नस्य **ब्राह्मणः** द्विजः॥ ८४॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सिद्धस्या**न्नस्य **वैश्वदेवस्य** वैश्वदेवार्थस्य **गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकं आभ्यो देवताभ्यः**। **ब्राह्मणो होमं कुर्यात्**॥ ८४॥

(७) **मणिरामः**॥ ८४॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वैश्वदेवस्येति**। वैश्वदेवार्थस्यान्नस्य सतो वैवाहिकेऽग्नौ कालान्तराहिते वा परिसमूहनादि गृह्योक्तेतिकर्तव्यतापूर्वकं **आभ्यो** वक्ष्यमाणाभ्यो **देवताभ्यः** प्रत्यहं **ब्राह्मणो होमं कुर्यात्**, ब्राह्मणग्रहणं द्विजप्रदर्शनार्थं, त्रयाणां प्रकृतत्वात्॥ ८४॥

**अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः॥**
**विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च॥८५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आदा**वित्यनुवादः। पाठक्रमेणैवाग्नेरादौ सिद्धत्वात्ते पृथगाहुती। **तयोश्च समस्तयो**रग्नीषोमाभ्यामिति, **विश्वेभ्यो देवेभ्य** इति प्रयोगः। एकैवाहुतिर्धन्वन्तरये स्वाहा॥ ८५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **समस्तयो**रग्नीषोमयोः। अत्र च सर्वत्र चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, निर्देशे तु चतुर्थ्येव कार्या॥ ८५॥

(३) **कुल्लूकः।** वचनद्वयं स्वाहाकारप्रधानो होम इति **कात्यायन**स्मरणादादावग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेति निरपेक्षदेवताकं होमद्वयं कृत्वाऽग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति समस्तदेवताकं होमं कुर्यात्ततो **विश्वेभ्यो देवेभ्यो धन्वन्तरये** ।। ८५ ।।

(४) **राघवानन्दः।** **अग्ने**रित्यादिषष्ठी चतुर्थ्यर्थे। **तयोर**ग्नीषोमयोः। 'स्वाहाकारप्रधानो होम' इति **कात्यायनोक्तेरयं** प्रयोगः। अग्नये स्वाहा एवं सोमायाग्नीषोमाभ्यां विश्वेभ्यो देवेभ्यः धन्वन्तरये ।। ८५ ।।

(५) **नन्दनः।** अग्नेरग्नये **सोमस्य** सोमाय **तयोस्समस्तयो**रग्नीषोमाभ्यां **विश्वेषां देवानां** विश्वेभ्यो देवेभ्यः ।। ८५ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **आदौ** प्रथमतः। **अग्नेः सोमस्या**हुतिं जुहुयात्। अग्नये स्वाहा १ सोमाय स्वाहा २ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ३ विश्वेषां चैव देवानां **विश्वेभ्यो देवेभ्यः** स्वाहा ४ **धन्वन्तरय** एव च धन्वन्तरये स्वाहा ५ ।। ८५ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **कुह्वै चैवेति।** स्वाहाकारप्रदा(धा)ना होमा' इति स्मरणात् अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा इत्येव**मादौ** कृत्वा ततोऽग्नीषोमाभ्यां स्वाहेत्यग्नीषोमयोः समस्तयोर्होमं कुर्यात्। तदनु विश्वेभ्यो देवेभ्यो हुत्वा धन्वन्तरये कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यां अन्ते अग्नये स्विष्टकृत इत्येवं गृह्येऽग्निविशेषणत्वात् स्विष्टकृत एते स्वाहाकारान्तहोमाः कार्याः ।। ८५-८६ ।।

**कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च ।।**
**सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ।।८६।।**

(१) **मेधातिथिः।** **सह द्यावापृथिव्योः** द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहेति। **तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः।** **स्विष्टकृदिति** गुणपदम्। अग्निश्च गुणीभूतः स्वतः। स्मृत्यन्तरे 'अग्नये स्विष्टकृत' इति वचनात्, श्रुतौ सर्वहोमेष्वेव चाम्नानात्। **अन्तत** इति पाठात्सिद्धे वचनं—स्मृत्यन्तरेऽधिकानामाहुतीनामाम्नानात्सति समुच्चये प्राक्स्विष्टकृत आवापः कर्तव्य इति—दर्शयितुम्।

"ननु चैकत्वाद्धोमस्य देवताविकल्पो युक्तः"। कुतः पुनरेकत्वं होमस्य ?। इयमेव होमानामुत्पत्तिः "अग्नेः सोमस्य च" इत्यादि। तत्र चोत्पत्तावेव देवताविशेषेणावरुद्धत्वाद्भिन्ना एव होमाः प्रतीयन्ते ।। ८६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **सह** एकाहुति**र्द्यावापृथिव्योः।** **स्विष्टकृत** इत्यत्राग्नय इति प्रथमं विशेष्यपदं प्रक्षेप्यम् ।। ८६ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यामग्नये स्विष्टकृत** इत्येवं स्वाहाकारान्तान्होमान्कुर्यात्। श्रुत्यन्तरेष्वग्निविशेषणत्वेन स्विष्टकृतो विधानात्केवलं स्विष्टकृन्निर्देशेऽप्यग्निविशेषणत्वेनैव प्रयोगः। पाठादेवान्तत्वे सिद्धे स्विष्टकृतेऽन्तत इत्यभिधानं स्मृत्यन्तरीयहोमसमुच्चयेऽप्यन्तत्वज्ञापनार्थम् ।। ८६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **कुहू्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यामग्नये स्विष्टकृत** इति पाठक्रमादेवान्तत्वे प्राप्ते अन्तपदं स्मृत्यन्तरहोमसमुच्चयेन स्विष्टकृतोऽन्तत्वख्यापनार्थम्। **सहेति** द्यावापृथिवीभ्यामेकप्रयोगसूचनार्थं बह्वृचे गृह्ये इन्द्रायेत्यादिप्रयोगदर्शनात्॥ ८६॥

(५) **नन्दनः**। **सह द्यावापृथिव्योः** समस्ताभ्यां द्यावापृथिवीभ्याम्॥ ८६॥

(६) **रामचन्द्रः**। कुहू्वै अमायै स्वाहा ६। पौर्णमास्यै अनुमत्यै स्वाहा ७। प्रजापतये स्वाहा ८। द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ९। ततः स्विष्टकृते स्वाहा १०॥ ८६॥

**एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम्॥**
**इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत्॥८७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सम्यग**नन्यचित्ततया देवताध्यानपरः। एवमेताभ्यो देवताभ्योऽग्नौ हुत्वा ततः सर्वासु दिक्षु यथासंख्यं **प्रदक्षिणम्**। प्रथमं प्राच्यां ततो दक्षिणस्यां इत्येष प्रदक्षिणावर्तः। इन्द्रः अन्तकः अप्पतिः इन्दुः—प्रतिदिशम्। अपरश्चाह—"अहावभागिन्दुरिति। यदि नैतेन शब्देन बलिहरणं स्यात्कथमिन्दोर्हविर्भाक्त्वम्? बलिहरणं च होम एवेति व्याख्यातम्"। वृत्तभङ्गभयाच्चात्र न शब्दस्य रूपविवक्षेति स्मृत्यन्तरोपात्तैरेव शब्दैरुद्देशः कर्तव्यः। **सानुगेभ्यः**। 'अनुगा' अनुचरास्तत्पुरुषाः। तथा चेन्द्रपुरुषेभ्य इत्यादिप्रयोगः॥ ८७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **हविर्हविष्यम्**। इन्द्रादीनां चतुर्णां मध्ये एकैकस्मै प्रदक्षिणं पूर्वाद्येकैकदिशि **सानुगेभ्यः**॥ ८७॥

(३) **कुल्लूकः**। एवमुक्तप्रकारेण सम्यगनन्यचित्तो देवताध्यानपर एव होमान्कृत्वा सर्वासु प्राच्यादिषु **दिक्षु प्रदक्षिणमिन्द्रादिभ्यः** सपुरुषेभ्यो **बलिं हरेत्**— तथा प्राच्यामिन्द्राय नमः इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः। दक्षिणस्यां यमाय नमः। यमपुरुषेभ्यो नमः। पश्चिमायां वरुणाय नमः वरुणपुरुषेभ्यो नमः। उत्तरस्यां सोमाय नमः। सोमपुरुषेभ्यो नमः। यद्यपि शब्दावगम्यत्वाद्देवतात्वस्यान्तकाप्पतीन्दुशब्दैरेवोद्देशो युक्तस्तथापि बह्वृचानुष्ठानसंवादाद्बह्वृचगृह्ये च यमाय यमपुरुषेभ्यः वरुणाय वरुणपुरुषेभ्यः सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति प्रतिदिशमिति पाठाद्यथोक्त एव प्रयोगः॥ ८७॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **इन्द्रेति**। इन्द्राय इन्द्रपुरुषेभ्यः प्राच्याम्। अन्तकोऽत्र यमः यमाय यमपुरुषेभ्य इति दक्षिणस्याम्। अप्पतिर्वरुणः। एवं वरुणाय वरुणपुरुषेभ्य इति पश्चिमायाम्। उत्तरस्यां सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति पञ्चदशाहुतयः। शूद्रपक्षे नमोऽन्ताः। 'नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेदि'ति स्मरणात्॥ ८७॥

(५) **नन्दनः**। इन्द्राय सानुगाय स्वाहेति पूर्वस्यां दिशि। अन्तकाय सानुगायेति दक्षिणस्याम्। अप्पतये सानुगायेति प्रतीच्याम्। इन्दवे सानुगायेत्युत्तरस्यामिति। **सर्वदिक्षु प्रदक्षिणक्रमेण बलिं हरेत्**कुर्यात्॥ ८७॥

(६) **रामचन्द्रः।** एवंप्रकारेण सम्यक् हुत्वा बहिर्मण्डलात् बहिरेतन्मण्डलं **सर्वदिक्षु प्रदक्षिणं** मण्डलं **कुर्यात्।** इन्द्राय स्वाहा इन्द्रपुरुषाय स्वाहा इति पूर्वे। अन्तकाय स्वाहा यमपुरुषाय स्वाहा इति दक्षिणे। अप्पतये वरुणाय स्वाहा वरुणपुरुषाय स्वाहा इति पश्चिमे। इन्दवे स्वाहा इन्दुपुरुषाय स्वाहा इति उत्तरे। **बलिं** हरेत् दद्यात्॥ ८७॥

(८) **गोविन्दराजः।** **एवमिति।** एवमुक्तप्रक्रियया सम्यक् प्रतिदैवतं **हविर्हुत्वा** प्राच्याद्यासु **सर्वासु दिक्षु** प्राच्यां इन्द्राय नमः इन्द्रपुरुषेभ्यो दक्षिणस्यां यमाय यमपुरुषेभ्यः पश्चिमायां वरुणाय वरुणपुरुषेभ्यः उत्तरस्यां सोमाय सोमपुरुषेभ्य इत्येव प्रदक्षिणावर्तं इन्द्रादिभ्यः सानुचरेभ्यो बलिं दद्यात्, गृह्य एवं दर्शनात् इन्द्रान्तकादिशब्दाभिधानं छन्दोभङ्गभयात्॥ ८७॥

**मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि॥**
**वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत्॥८८॥**

(१) **मेधातिथिः।** अत्रेतिकरणः स्वरूपविवक्षार्थः। **अप्स्वि**त्यधिकरणम्। **अद्भ्य इति** देवतानिर्देशः। **वनस्पतिभ्य इति मुसलोलूखले।** द्वन्द्वैकवद्भावेन विकल्पितमाधारद्वयम्। निर्देशे गुणवृत्त्या प्रधानभूताया आहुतेरावृत्तिर्युक्ता। न च मुसलोलूखलस्यैकीकृतस्याहुतिसम्बन्धः शक्यः कर्तुम्, पृथक्त्वस्य तत्राप्युपलम्भात्। न हि क्षीरोदकवत् अनयोर्व्यामिश्रणसम्भवः। तत्र यद्युलूखले क्रियते नेतरत्र होमः कृतः, अथोलूखले न मुसले। न च भागश आहुतिः सम्भवति, नियतपरिमाणत्वात्। द्वन्द्वनिर्देशेऽत्र संयुक्तयोरन्यतरत्र होमो युक्तः॥ ८८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **द्वारि** गृहद्वारि। अप्स्वप्स्थापनस्थाने **मुसलोलूखले** मुसल उलूखलं निधाय तत्रेत्यर्थः॥ ८८॥

(३) **कुल्लूकः।** इतिशब्दः स्वरूपविवक्षार्थः। **मरुद्भ्यो** नम इति **द्वारे** बलिं दद्याज्जलेऽद्भ्य इति। **मुसलोलूखल** इति। द्वन्द्वनिर्देशात्सहयुक्तयोरन्यतरत्र वनस्पतिभ्य इति बलिं दद्यात्, गुणानुरोधेन प्रधानबलिकर्मावृत्तेरन्याय्यत्वात्॥ ८८॥

(४) **राघवानन्दः।** **मुसलोलूखल** इति द्वन्द्वनिर्देशाद्वनस्पतीनामेकं स्थानम्॥८८॥

(५) **नन्दनः।** **द्वारि** गृहद्वारे। **अप्सु**उदधानीसमीपे। **मुसलोलूखले।** मुसलोलूखलस्थान इत्यर्थः॥ ८८॥

(६) **रामचन्द्रः।** **द्वारि** मण्डलद्वारि **मरुद्भ्यः** स्वाहा इतिकरणं शब्दरूपविवक्षार्थं। **अप्सु** उदकस्थापनस्थाने अद्भ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा **मुसलोलूखले** हरेत्। स्थापयेदिति केचित्॥ ८८॥

(८) **गोविन्दराजः।** **मरुद्भ्य इति द्वारि हरेदिति।** मरुद्भ्य इत्येवं द्वारप्रदेशे **अद्भ्य** इत्येतदपां मध्ये **वनस्पतिभ्य** इत्येवं **मुसलोलूखले** द्वन्द्वैकवद्भावात् विकल्पेनान्यत्र बलिं दद्यात् ॥ ८८ ॥

**उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।**
**ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **उच्छीर्षकं** प्रसिद्धदेवताशरणं शीर्षस्थानं, तत्र **श्रियै** बलिं **कुर्यात्।** **पादतः** अधोभागे गृहस्य **भद्रकाल्यै।** तस्या अपि स्थानं द्वारस्य पूर्वभागे। अन्ये **उच्छीर्षकं** गृहस्थशयनस्य शिरोभागमाहुः। पादौ चास्याधोभागम्। तेन खट्वा-दानयं होमो, भूप्रदेशे वा गृहस्थशयनस्थाने। **ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्याम्।** सत्यपि द्वन्द्वनिर्देशे पृथगेते आहुती, 'ब्रह्मणे' 'वास्तोष्पतय' इति च। यत्र तूभयदेवतात्वमग्नीषोमवत्तत्र सहग्रहणं समस्तग्रहणं वा करोति, 'तयोश्चैव समस्तयोः' (८५) 'सह द्यावापृथिव्योश्चेति' (८६) प्रसिद्धसाहचर्यात्। **'वास्तु'**गृहं, **तन्मध्ये** ॥ ८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **उच्छीर्षके** शय्यादेशस्य शिरःस्थाने। एवं **पादतः।** **ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां** मिलिताभ्याम् ॥ ८९ ॥

(३) **कुल्लूकः।** वास्तुपुरुषस्य शिरःप्रदेश उत्तरपूर्वस्यां दिशि श्रियै बलिं दद्यात्। तस्यैव पाददेशे दक्षिणपश्चिमायां दिशि **भद्रकाल्यै।** अन्ये तु **उच्छीर्षकं** गृहस्थशयनस्य शिरःस्थानं भूभागं **पादत** इति तस्यैव चरणभूप्रदेशमाहुः। ब्रह्मणे वास्तोष्पतय इति गृहमध्ये। द्वन्द्वनिर्देशेऽपि ब्रह्मवास्तोष्पत्योः पृथगेव देवतात्वम्। यत्र द्वन्द्वे मिलितस्य देवतात्वमपेक्षितं तत्र सहादिशब्दं करोति यथा 'सह द्यावापृथिव्योश्चे'ति ॥ ८९ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **उच्छीर्षके** वास्तुपुरुषस्य शिरःप्रदेशे उत्तरपूर्वस्यां दिशि। **पादत** इति **नैरृत्यां।** गृहस्थशयनस्य शिरःपादयोरित्यपरे,–तत्तुच्छं; शयनस्यानियत-त्वात् उत्तरत्र वास्तुश्रवणात्। ब्रह्मणे वास्तोष्पतये च ॥ ८९ ॥

(५) **नन्दनः।** **उच्छीर्षके** शिरउपधानस्थाने। **पादतः** पादोपधानस्थाने। **ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां** ब्रह्मणे वास्तोष्पतय इति, सहेतिवचनाभावात्। **वास्तुमध्ये** गृहमध्ये ॥ ८९ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **उच्छीर्षके** शय्याप्रदेशमस्तकस्थाने पूर्वे श्रियै स्वाहा कुर्यात्। तु पुनः **पादतः पश्चिमतो भद्रकाल्यै** जुहुयात्। **ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां** 'ब्रह्म जज्ञान'मिति 'वास्तोष्पते'रिति द्वाभ्यां **वास्तुमण्डलमध्ये** स्वाहा बलिं **हरेद्**द्यात् ॥ ८९ ॥

(७) **गोविन्दराजः।** **उच्छीर्षक** इति। वास्तुपुरुषस्य शिरःप्रदेशे उत्तरपूर्वस्यां दिशि **श्रियै तस्यैव** पादप्रदेशे दक्षिणपश्चिमायां **भद्रकाल्यै ब्रह्मणे वास्तोष्पतये चेति** गृहमध्ये द्वन्द्वनिर्देशेऽपि आङ्निर्देशाभावात् देवताद्वयम् ॥ ८९ ॥

**विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।।**
**दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्य एव च ।। ९० ।।**

(१) **मेधातिथिः । चशब्दादेकैवेयमाहुतिः । विश्वेभ्यो देवेभ्य** इति गृहाकाशे, गृहान्निष्क्रम्य वा । **दिवा** दिवाचारिभ्यः, नक्तं **नक्तंचारिभ्यः । भूतेभ्य** इत्यनुषज्यते । केचिदेते आहुती सायंप्रातर्विभागेनाहुर्दिवाचरेभ्य इति, –तदयुक्तम् । सायममन्त्रहोमं वक्ष्यति । "एतेन मन्त्रप्रतिषेधेन शब्दोद्देश्यता मा भून्मानसस्तूद्देशः केन निवार्यते ? । न च तेन विना होमसिद्धिः" । एतदेव तु वक्तव्यं कुतोऽयं विभागावगमः ? गृह्यकारैरेवमुक्तमिति चेदस्तु ।। ९० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** विश्वेषां देवानां भूमावेव । **दिवाचारिभ्यो** दिवा **नक्तंचारिभ्यो** नक्तं **बलिमाकाशं उत्क्षिपेदि**त्यन्वयः ।। ९० ।।

(३) **कुल्लूकः । विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्य** इति शब्दादेकैयमाहुतिः । विश्वेभ्यो देवेभ्यो नम इति गृहाकाशे बलिं दद्यात् । **दिवाचरेभ्यो भूतेभ्य** इति दिवा **नक्तंचारिभ्य** इति नक्तम् । बह्वृचगृह्यदर्शनादियं व्यवस्था ।। ९० ।।

(४) **राघवानन्दः । आकाशे** अन्तरिक्षे । **क्षिपेदूर्ध्वं** क्षिपेत् ।। ९० ।।

(५) **नन्दनः । दिवाचरेभ्यो दिवा नक्तंचारिभ्यो** नक्तम् ।। ९० ।।

(६) **रामचन्द्रः । विश्वेभ्यो देवेभ्य आकाश** ऊर्ध्वं बलिं **क्षिपेत्** । तथा दिवाचरादीनामूर्ध्वं बलिं क्षिपेत् ।। ९० ।।

(७) **गोविन्दराजः । विश्वेभ्य इति ।** विश्वेभ्यः वैश्वदेवेभ्यः इति चशब्दादेकेयमाहुतिः । **विश्वेभ्योदेवेभ्य** इति नाम्नाऽऽकारः प्रक्षिपेत् । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्य इति देवा, नक्तंचरेभ्यो भूतेभ्य इति नक्तं" इति गृह्यदर्शनात् एतादाधारान्तरस्यावचनात् आकाशस्य च प्रस्तुतत्वात् आकाश एव ।। ९० ।।

**पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वान्नभूतये ।।**
**पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ।। ९१ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** पूर्वयोराहुत्योः शेषोऽयम् । आधारविधानार्थमाद्योऽर्धः श्लोकः । आवासकस्योपरि य आवासस्तत्**पृष्ठवास्तु** । एकशालाया अप्युपरिभागः । तत्र **बलिं कुर्वीत** दिवाचारिभ्यो नक्तंचारिभ्यश्च । **सर्वान्नभूतये** । तादर्थ्ये चतुर्थी, न सम्प्रदाने । होमाद्यश्रुतत्वाद्बलिशब्दस्य पूर्वशेषत्वादाधारापेक्षत्वाच्च पूर्वयोराहुत्योः । न क्वचिदपि वैश्वदेवे 'सर्वान्नभूति'र्देवतात्वेन स्मृत्यन्तरे श्रुता । **तस्मादयमस्यार्थः**–'सर्वेषामन्नानां क्लृप्त्यर्थमेतच्च कर्तव्यं, एतस्मिन्बलिहरणे कृते सर्वाण्यन्नानि भवन्ति' । अवयवप्रसिद्धया त्वर्थावगमे उपपद्यमाने समुदायार्थकल्पनमयुक्तम् । देवतापेक्षया वाऽदृष्टः कश्चिदर्थः कल्पयितव्यः ।

**बलिशेषम्।** शेषग्रहणात्पात्रे समुद्धृत्य ततो होमः कर्तव्यः, न तु स्थालीस्थादेव बलिदानानि ग्रहीतव्यानि। **दक्षिणतः** दक्षिणस्यां दिशि, तदभिमुख इति यावत्। **सर्वं** यावन्मात्रं गृहीतम्॥ ९१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** सर्वानुभूतिरुपश्रुतिस्तस्यै पृष्ठे **वास्तुनि** गृहवास्तु-पृष्ठभागे! 'सर्वान्नभूतय' इति क्वचित्पाठस्तत्र तत्पदवाच्यैव देवता॥ ९१॥

(३) **कुल्लूकः।** गृहस्योपरि यद्गृहं तत्**पृष्ठवास्तु** बलिं दातुः पृष्ठदेशे भूभागे वा तत्र **सर्वात्मभूतये** नम इत्येव बलिं दद्यात्। उक्तबलिदानावशिष्टं सर्वमन्नं दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणामुखः स्वधा **पितृभ्य** इति **बलिं** हरेत्। प्राचीनावीतिना चायं बलिर्देयः, 'स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं दक्षिणामुखो निनयेदिति' बह्वृचगृह्यवचनात्॥ ९१॥

(४) **राघवानन्दः।** पृष्ठवास्तुनि वायव्यकोणे स एव वास्तोः पृष्ठदेशः। गृहस्योपरि यदुच्चं तस्मिन्निति केचित्। **सर्वात्मभूतये** स्वाहेति **शेषं** सर्वमन्नं **पितृभ्यः** स्वधेति प्राचीनावीती **हरेत्** दद्यात्। शेषं दक्षिणा निनयेदिति बह्वृचगृह्योक्तेः। तथैव दिशि दक्षिणस्याम्॥ ९१॥

(५) **नन्दनः। पृष्ठवास्तुनि** बहिर्वास्त्वित्यर्थः। **सर्वात्मभूतये** सर्वभूततृप्त्य-र्थम्॥ ९१॥

(६) **रामचन्द्रः। पृष्ठे** गृहपृष्ठभागे। तादर्थ्ये चतुर्थी, न संप्रदाने। **सर्वान्नभूतये** ऐश्वर्याय **बलिं कुर्वीत। बलिशेषं पितृभ्यः सर्वं दक्षिणतो हरेत्** कुर्यात्॥ ९१॥

(७) **गोविन्दराजः। पृष्ठे वास्तुनि कुर्वीतेति।** वेश्मन उपरि वेश्मनः पृष्ठे वास्तुप्रदेशे वा तत्र **सर्वान्नभूतये** नम इत्येवं बलिं कुर्यात्। बल्यर्थे घृतान्नशेषं सर्वं दक्षिण-स्यां दिशि 'स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती'त्येवं गृह्यदर्शनात् **पितृभ्यो हरेत्**॥ ९१॥

**शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्॥**
**वयसाञ्च कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि॥ ९२॥**

(१) **मेधातिथिः।** अन्नं पात्रे समुद्धृत्य श्वादीनामुपकाराय भुवि निःक्षिपेत्। **पापरोगिणः** कुष्ठिक्षय्यादयः। **वयांसि** पक्षिणः। **शनकैर्भू**म्युत्थितरजसा यथा न संसृज्येत। भूग्रहणं न पात्रप्रतिषेधाय, किं तर्हि? श्वपचपतितकुष्ठिभ्यो न हस्ते दातव्यम्। उपकार-विधानं चेदम्। अत एव षष्ठ्याऽयं श्लोकः पठ्यते, न चतुर्थ्यन्तेन। पक्षिणां तादृग्देशे विधातव्यं यत्राबिभ्यतः श्वादिभ्यः खादन्ति। **कृमीणामिति**। तादृशे देशे यत्र तेषां सम्भवः॥ ९२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** एतच्च वैश्वदेवार्थोद्धृतादन्नादन्येन तच्छेषस्य सर्वस्य पितृभ्यः प्रतिपादितत्वात्। तत्काले च श्वादीनामन्नार्थिनामागमन एव शनैर्भुवि दानम्। **पतिताः** पातकिनः प्रायश्चित्तीयभैक्षाचरणकर्तारः। **श्वपचामिति** चाण्डालादिसंकर-

जात्युपलक्षणम् । **पापरोगिणः** कुष्ठ्यादयः । **कृमोणां** पिपीलिकादीनां **शनकैर्यथा** नोपघातो **भवेत्** ।। ९२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अन्यदन्नं पात्रे समुद्धृत्य **श्वपतितादिभ्यः शनकैर्यथा** रजसा न संगृह्यते तथा **भुवि** दद्यात् । **पापरोगी** कुष्ठी क्षयरोगी वा ।। ९२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । अन्नान्तरमादाय **पापरोगिणां** कुष्ठक्षयादियुक्तानां ! **निर्वपेत्** दद्यात् । ग्रन्थान्तरस्वरसाच्चतुर्दशबलीनामेव नित्यत्वम् ।। ९२ ।।

(५) **नन्दनः** । **शुनां** श्वभ्यः । एवमुत्तरत्रापि । **शनकै**रशिथिलमित्यर्थः ।। ९२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **श्वादीनां शनकैर्भुवि निक्षिपेत्** ।। ९२ ।।

(७) **गोविन्दराजः** । **शुनां चेति** । तदनु अन्यदन्नमुध्दृत्य **श्वपतितश्वपाक**कुष्ठ्यादिकाक**कृमीणां शनकै** रजोवगुण्ठनपरिहारेण **भुवि** निक्षिपेत् ।। ९२ ।।

**एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ।**
**स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथर्जुना ।। ९३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वस्योपसंहारः । सर्वग्रहणादन्येषामपि मृगकुक्कुटमार्जारादीनां ग्रामे सम्भवतामन्नेनोपकर्तव्यम् । अर्चतिरनुग्रहे न पूजायां, श्वादीनां तदसम्भवात् । अवज्ञानप्रतिषेधार्थे चैवमुपात्तं, नानुगृह्णातीति पठितम् । **परं स्थानं** धाम ब्रह्म प्राप्नोति । **पथर्जुना** न संसारयोनीर्बह्वीर्भ्राम्यति । "किं पुनरेतत्फलविधानम् ?" । नेति ब्रूमः । नित्योऽयं विधिरित्युक्तम् । नित्ये च फलश्रवणमर्थवादः । न ह्यत्र विधिः श्रूयते । गच्छतीति वर्तमानापदेशोऽयम् ।

**तेजोमूर्तिः** केवलतेजःशरीरः, न पाञ्चभौतिकं शरीरमभिसम्बध्यते, बोधस्वभाव एव भवति । निष्कलमषता वाऽनेन लक्ष्यते, शुद्धप्रकृतिर्भवतीत्यर्थः । भूतानुकम्पनं चेदम् । असति शास्त्रातिक्रमे पापसम्बन्धस्याभावाच्छुद्धता युक्ता । इतरथा पापस्य मलरूपत्वान्न तेजोमूर्तिः । असति च पापे परं धाम श्रेष्ठमदुःखरूपं प्राप्नोतीत्येतदपि युक्तमेव ।। ९३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **परं स्थानं** ब्रह्मलोकं । **तेजोमूर्तिः** हिरण्यगर्भदेहः । **ऋजुना पथा** अर्चिरादिमार्गेण ।। ९३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । **एवमुक्तप्रकारेण यः** । **सर्वभूतान्यन्नदानादिना नित्यं** पूजयति **स परं स्थानं** ब्रह्मात्मकं **तेजोमूर्ति**प्रकाशमवक्रेण वर्त्मनाऽर्चिरादिमार्गेण प्राप्नोति ब्रह्मणि लीयते इत्यर्थः । ज्ञानकर्मभ्यां मोक्षप्राप्तेः तेजोमूर्तिरिति सविसर्गपाठे प्रकृष्टब्रह्मबोधस्वभावो भूत्वेति व्याख्या ।। ९३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । सार्थवादं बलिमुपसंहरति **एवमिति** । परं भुवर्लोकात् **ऋजुना** अवक्रेण । उत्तरमार्गेणेति केचित्—तन्न, विद्याकर्मसाध्यत्वात्तस्य । किंतु धूम-

मार्गेणात्र संवत्सराप्रवेशादृजुत्वं स्तुतिः। "अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति"। तथा "कर्मणा पितृलोकः" "न तत्र दक्षिणायनिना विद्वांसस्तपस्विन" इत्यादिश्रुतेर्विरोधः। ब्राह्मण इत्युपलक्षणमन्येषाम्। यद्वा ब्राह्मणो ब्रह्मबुभूषुः नित्यकर्मणा शुद्धिद्वारा चातुर्वर्ण्यमोक्षहेतुत्वात्। तथा ऋजुनेति भूतार्थवादः॥ ९३॥

(५) **नन्दनः**। बलिहरणफलमाह **एवमिति**। **ब्राह्मणः** द्विजः॥ ९३॥

(६) **रामचन्द्रः**। एवं यो ब्राह्मणः **सर्वभूतानि नित्यमर्चयति** पूजयति **स तेजोमूर्तिः** सन् **ऋजुना** यथा अर्चिरादिमार्गेण **परं स्थानं** धाम **गच्छति**॥ ९३॥

(७) **गोविन्दराजः**। **एवमिति**। **एवं** उक्तनीत्या अभिहितसर्वभूतानि नित्यमन्नादिना यः पूजयति सः तेजश्शरीरो भूत्वा स्पष्टेन मार्गेण येनाशुप्राप्येन शरीरपातसमनन्तरमेव तेन ब्रह्मलोकं गच्छति इति पञ्चयज्ञफलकथनम्, न चानित्यतापत्तिरित्युक्तम्॥ ९३॥

**कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्॥**
**भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे॥ ९४॥**

(१) **मेधातिथिः**। अतिथिलक्षणं वक्ष्यति। तमभ्यागतं सन्तं **पूर्वमाशयेत्** भोजयेत् सर्वभोक्तृभ्यो गृहसन्निहितेभ्यः। **भिक्षां भिक्षवे** च यावमानाय दद्यात्। भिक्षाशब्देन स्वल्पपरिमाणमन्नदानमुच्यते। उक्तं हि "प्रसृतिर्भिक्षा"। अन्तःपुरप्रसिद्धं चैतत्। **ब्रह्मचारिणे विधिवत्**। अन्यस्मा अपि पाखण्डादिरूपाय भिक्षवे न विधिवद्दातव्या। ब्रह्मचारिणे तु विधिवत्स्वस्तिवाचनपूर्वं भिक्षादानमित्येष विधिः।

अथवा **भिक्षुः** परिव्राड्, **ब्रह्मचारी** प्रथमाश्रमी। चशब्दश्चास्थाने, वृत्तानुरोधात्। ब्रह्मचारिणे चेति पठितव्यम्। एवं तु वानप्रस्थाय न दानं स्यात्। तस्माद्भिक्षते इति 'भिक्षुः', तस्यैव विशेषणं ब्रह्मचारिग्रहणम्। तेन त्रिभ्योऽप्याश्रमिभ्यो भिक्षादानं नियमतोऽनुज्ञातं भवति। पाखण्डादीनां तु पतितादिवत्। सर्वग्रहणेन भिक्षोपकारो यथाशक्ति विहित एव॥ ९४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पूर्वमात्मनः**। **भिक्षवे** यतये॥ ९४॥

(३) **कुल्लूकः**। एवमुक्तप्रकारेणैतद्बलिकर्म कृत्वा गृहभोक्तृभ्यः **पूर्वमतिथिं** भोजयेत्। **भिक्षवे** परिव्राजे **ब्रह्मचारिणे** प्रथमाश्रमिणे च **विधिवत्स्वस्तिवाच्य** 'भिक्षादानमप्पूर्वं' इति **गौतमाद्युक्तविधिना** भिक्षां दद्यात्। ग्रासप्रमाणा च भिक्षा भवति, 'ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षे'ति **शातातपवचनात्**। सम्भवे त्वधिकमपि देयम्॥ ९४॥

(४) **राघवानन्दः**। अधुना बलिमनुवदन् नृयज्ञविधेः कालमाह **कृत्वेति**। **पूर्वं** भोजनात् **ब्रह्मचारी** गृही 'वानप्रस्थो भिक्षु' रिति स्मरणात् **भिक्षुः** संन्यासी तस्मै **ब्रह्मचारिणे** च **विधिवत्** 'ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षे'ति **शातातपोक्तेस्तत्परिमाणदानस्यावश्यकत्वात्**॥ ९४॥

(५) **नन्दनः**। अथ मनुष्ययज्ञं प्रपञ्चयति **कृत्वैतदिति**। **विधिवत्स्वस्ति** वाचयित्वेत्यर्थः॥ ९४॥

(६) **गोविन्दराजः।** **कृत्वेति**। एवं उक्तस्वरूपेण **एतद्बलिकर्म** कृत्वा सर्वगृहभोक्तृभ्यः **पूर्वं अतिथिं** पूजयेत्। भिक्षणशीलाय ब्रह्मचारिणे समकालमेव 'स्वस्तिवाच्य भिक्षादानं अप्पूर्वं' इति **गौतमोक्त**विधानेन भिक्षां दद्यात् ॥ ९४ ॥

**यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः।**
**तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** नित्यं भक्तदानमर्थिने शक्तितो दातव्यम्। इदं त्वधिकारान्तरम्। यद्गुरवे गां दत्त्वा फलमाप्नोति तद्भिक्षां दत्त्वा, गोव्रतस्याविशिष्टमिति। स्मृत्यन्तरे सर्वफलता पापप्रमोवनार्थताऽपि गोदानस्य श्रुता। यावतामल्पोपकाराणां महोपकारैः फलसाम्यमुच्यते, तेषां लोकवत्परिमाणतः फलविशेषोऽवगन्तव्यः। प्राप्यते तदेव फलम्, न तु चिरकालम्। अवाच्यो ह्ययं न्यायः—"पणलभ्यं हि कः प्राज्ञः क्रीणाति दशभिः पणैः" इति। समानफलत्वे महाप्रयासानर्थक्यं प्राप्नोति। "अगुर्यथाविधीति" केचित्पठन्ति। तत्र नञल्पवचनो द्रष्टव्योऽल्पगुरिरिति। **पुण्यं** धर्मस्तस्य **फलम्** ॥ ९५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** पुण्यरूपफलं **पुण्यफलम्** ॥ ९५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **गुरवे गां** दत्वा **विधिव**त्स्वर्णशृङ्गिकादिविधानेन **यत्फलं प्राप्नोति** तद्गृहस्थो विधिना **भिक्षादानात्प्राप्नोति** ॥ ९५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** भिक्षादाने अतिशयफलमाह **यदिति**। **द्विज** इति त्रैवर्णिकः। तेषां पक्वान्नस्य ग्राह्यत्वात् ॥ ९५ ॥

(५) **नन्दनः।** **अगोः** गोहीनाय ॥ ९५ ॥

(६) **गोविन्दराजः।** **यत्पुण्यफलमिति**। 'अल्पगुर्हेमशृङ्गी' त्यादि **याज्ञवल्क्योक्त**विधिना गां दत्वा यत्पुण्यफलं "गोदो ब्रध्नस्य विष्टपं" इति प्राप्नोति तदेव द्विजगृहस्थः भिक्षां दत्वा प्राप्नोति ॥ ९५ ॥

**भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥**
**वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** अथ विधिवदित्युक्तं सोऽयं विधिरुच्यते। अप्रकृतस्योदपात्रस्य श्रवणं, सर्वदा नृणां, न भिक्षादानस्यैवेति दर्शयितुम्। **सत्कृत्य** पूजयित्वा। विधिः पूर्वो यस्य दानस्य **तद्विधिपूर्वकम्**। पूर्वशब्दः कारणवचनः? शास्त्रनिमित्तकमेतदित्यर्थः। इतिकर्तव्यता वा **विधिः**, सा पूर्वं कर्तव्या। उक्तं च पूर्वं भिक्षादानं, ददाति **सत्कृत्य** पूजयित्वा। वेदस्य **तत्त्वार्थः** पारमार्थिको निःसंशयोऽर्थस्तं 'तस्मै ब्राह्मणायोपपादयेद्दद्यात्। **ब्राह्मणायेति** जातिनियमः, **विदुष** इति गुणनियमः। तेन यत्किंचिद्दातव्यं तद्ब्राह्मणाय, तस्मै च वेदार्थविदे पूजापूर्वकमित्यर्थत्रयविधानं सर्वं ददात्यर्थोद्देशेन, पौरुषेयत्वान्नानाकारार्थविधानम् ॥ ९६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वेदस्य तत्त्वार्थो** वास्तवार्थो ब्रह्म **तद्विदुषे**।। ९६ ।।

(३) **कुल्लूकः।** प्रचुरान्नाभावे ग्रासप्रमाणां भिक्षामपि व्यञ्जनादिना **सत्कृत्य** तदभावे जलपूर्णपात्रमपि फलपुष्पादिना **सत्कृत्य तत्त्वतो** वेदतदर्थज्ञानवते **ब्राह्मणाय** स्वस्तिवाच्येत्यादि **विधिपूर्वकं दद्यात्**।। ९६ ।।

(४) **राघवानन्दः।** निशिष्टपात्रे तस्यावश्यकत्वमाह **भिक्षामिति। सत्कृत्य** पञ्चग्रासाभावे ग्रासमात्रमपि व्यञ्जनैः संस्कृत्य देयम्। तदभावे उदकमात्रं **वा** फलादिभिः सत्कृत्य **वेदतत्त्वार्थविदुषे** वेदस्य तत्त्वार्थो बाधाप्रतियोगि ब्रह्म **तद्विदे**। तदुक्तम् 'एकोऽपि ब्रह्मविद्भुङ्क्ते जगत्तर्पयतेऽखिलम्। तस्माद्ब्रह्मविदे देयं यदस्ति वसु किंचने'ति ।। ९६ ।।

(५) **नन्दनः।** अनुकल्पमाह **भिक्षामिति**।। ९६ ।।

(६) **रामचन्द्रः। उपपादयेत्** अयाचितं दद्यात्।। ९६ ।।

(७) **गोविन्दराजः। भिक्षामिति।** फलपुष्पादिना सत्कृत्य पारमार्थिकवेदार्थज्ञाय ब्राह्मणाय स्वस्तिवाच्येत्यादिविधिपूर्वकं प्रतिपादयेत् इति ब्रह्मचारिभिक्षादानाद् विध्यन्तरमिदम्। तथा च **वसिष्ठः** "श्रोत्रियाय अन्नं दत्वा ब्रह्मचारिणे" इत्याह ।। ९६ ।।

## नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ।।
## भस्मभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ।। ९७ ।।

(१) **मेधातिथिः।** प्राप्ते दाने दोषः। पूर्वेण यादृशे देयं तत्पात्रमुक्तम्। अनेनापात्रे ददतः प्रतिषेधः। **नश्यन्ति** निष्फलानि भवन्ति। **हव्यानि** देवतोद्देशेन यानि ब्राह्मणभोजनादीनि क्रियन्ते। पित्र्यकर्माङ्गभूतान्यन्यानि **कव्यानि** श्राद्धानि। **भस्मभूतेषु।** भस्मतां प्राप्ता भस्मभूताः। उपमाने वा 'भूत'शब्दः, 'भस्मानीव', यथा 'काष्ठभूत' इति। "किं पुनर्भस्मना साम्यम्"। यथा तत्र क्वचिदुपयुज्यतेऽवकररूपमपोह्यमेवमीदृशो ब्राह्मणः क्रियाभ्योऽपोहितव्य इति तात्पर्यार्थः।

**नराणामविजानतां नश्यन्तीति** सम्बन्धः। **मोहाद्दत्तानि दातृभिः।** अविजानतां मोहादिति चानुवादः। यच्छास्त्रेणापोहितं तन्मोहादेव क्रियते।। ९७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। हव्यं** देवार्थमन्नं, **कव्यं** पित्रर्थं। **अविजानतां** पात्रगुणदोषौ। **भस्मभूतेषु** प्रकाशगुणशक्तिशून्येषु। **मोहात्** भ्रमात्।। ९७ ।।

(३) **कुल्लूकः। मोहाद्यत्पात्रानभिज्ञतया** देवपितुद्देशेनान्नानि वेदाध्ययनतदर्थज्ञानानुष्ठानतेजःशून्यतया भस्मरूपेष्विव पात्रेषु दत्तानि दातृभिर्निष्फलानि भवन्ति।। ९७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** विद्वत्प्रशंसार्थमन्यनिन्दामाह **नश्यन्तीति।** फलमदत्वा **नश्यन्ति। अविजानतां** पात्रमिति शेषः। **भस्मीभूतेषु** वेदतदर्थज्ञानशून्यतया तादृश-

फलाजनकत्वान्निन्दामात्रम्। अतादृशेष्वपि देयम्, अन्यथा 'अन्नस्य क्षुधितं पात्र'मिति वचनविरोधः ।। ९७ ।।

(५) **नन्दनः। अविजानतां दातृणां हव्यकव्यानि नश्यन्ति। भस्मीभूतेषु** निस्तेजस्केषु ।। ९७ ।।

(६) **रामचन्द्रः। अविजानतां** मूर्खाणां **नराणां मोहात् दातृभिर्दानशीलैर्दत्तानि भस्मीभूतेषु** विप्रेषु वेदाध्ययनतदर्थज्ञानरहितेषु भस्मतुल्येषु **विप्रेषु दत्तानि हव्यकव्यानि विनश्यन्ति** ।। ९७ ।।

(७) **गोविन्दराजः। नश्यन्तीति**। यानि पितृदैवोद्देशेन अन्नानि **मोहात्** दानशास्त्रानभिज्ञतया **दातृभिः** अध्ययनविधियज्ञानुष्ठानतेजःशून्यत्वात् **भस्मरूपेषु विप्रेषु दत्तानि** तानि तेषां दानशास्त्रानभिज्ञानां मनुष्याणां निष्फलीभवन्ति ।। ९७ ।।

**विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।।**
**निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ।। ९८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** कीदृशाः पुनः ? अभस्मभूतास्तानाह **विद्यातपोभ्यां समृद्धास्त**द्व्यतिरिक्ता भस्मभूताः। समृद्धिरतिशयिनी सम्पत्तिः। बहुविद्यया महता च तपसा युक्ता एवमुच्यन्ते। समुदायसम्बन्धिनी अपि विद्यातपसी सम्बन्धिसम्बन्धादवयवभूतमुखैः सामानाधिकरण्यं प्रतिपद्येते। विप्राणां मुखान्यग्नय इत्यत्र व्याघ्रादेराकृतिगणत्वात्समासः।

यथाऽग्नौ हुतं फलवद्भस्मनि हुतं निष्फलमेवमीदृशं भोजनं ब्राह्मणमुखनिक्षिप्तं हुतमिति भोजनमेव स्तुत्योच्यते। यागहोमादिमहाफलतया प्रसिद्धम्। अतः प्रख्याततमगुणेनाप्रख्यातमुपमीयते।

**निस्तारयति दुर्गात्**। 'दुर्गं' व्याधिशत्रुराजपीडादिजीवितमुपस्थितम्। ततो 'निस्तारयति' रक्षति। न तेन संमृश्यते। महतश्च पापात्परलोकेऽपि नरकादिगतेस्त्रायते। न केवलमाभ्युदयिककर्मदृक्पात्रविषयम्। प्रायश्चित्तार्थमपि तद्गुणायैव दातव्यम् ।। ९८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** विप्रेषु मुखानि विप्रमुख्यानि तद्रूपेष्वग्निषु मुखशब्दोऽयं मुख्यार्थेऽपि पठ्यते। वक्रार्थत्वं तु तपःसमृद्धेष्वित्ययोगाद्धेयं। **दुर्गात्** इह लौकिकदुःखहेतोः पापात्। **महतः किल्बिषात्** पारलौकिकदुःखहेतोः ।। ९८ ।।

(३) **कुल्लूकः। विद्यातपस्तेजःसंपन्नविप्राणां मुखानि** होमाधिकरणत्वेनाग्नितया निरूपितानि हव्यकव्यादिप्रक्षिप्तमिह लोके दुस्तराद्व्याधिशत्रुराजपीडादिभयान्महतश्च पापादमुत्र नरकात् त्रायते ।। ९८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तस्माद्विद्वत्सु देयमिति निगमयति **विद्येति**। विप्राणां मुखान्येवाहवनीयाद्यग्नयः। तेषु विप्रमुखाग्निषु परंपरया विद्यादियुक्तेषु हुतं तदुद्दिश्य

दत्तमन्नादि तारयतीत्यन्वयः । दुर्गादापद्गणात् महतः "अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टीति" (८।३१७) वक्ष्यमाणत्वात् ।। ९८ ।।

(६) रामचन्द्रः । विप्रस्य मुखमेवाग्निस्तेषु **विप्रमुखाग्निषु** । कीदृशेषु मुखेषु ? **विद्यातपोभिः समृद्धेषु** ।। ९८ ।।

(७) गोविन्दराजः । **विद्यातपःसमृद्धेष्विति** । ज्ञानानुष्ठानतेजःसम्पन्नेषु **विप्रमुखेषु** अग्नितुल्येषु हव्यकव्यादि यत् प्रक्षिप्तं तदिह दुस्तरात् शत्रुव्याध्याद्यभिभवात् अमुत्र च महतः पापात् त्रायते ।। ९८ ।।

**संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।।**
**अन्नं चैव यथाशक्ति संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ।। ९९ ।।**

(१) मेधातिथिः । **सम्प्राप्ताय** स्वयमुपस्थिताय, न तु निमन्त्रिताय । न हि निमन्त्रितोऽतिथिर्भवति । प्राप्तिदेशं च वक्ष्यति (१०३ श्लो.) "भार्या यत्राग्नयोऽपि वा" इति । **आसनोदके** दद्यात् । पादधावनोपयोगि प्रथममुदकं तत आसनम् भोजनं च । **यथाशक्ति संस्कृत्ये**त्यन्नविशेषणम् । सविशेषमन्नं संस्कृत्य **दद्या**द्भोजयेत् । **विधिपूर्वकम्** विधिः पूर्वो यस्मिन्दाने तदेवमुच्यते । विधिः शास्त्रं तत्पूर्वं निमित्तं प्रमाणमित्यर्थः ।। ९९ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः । उदकं पादप्रक्षालनार्थम् । **विधिपूर्वकं आपस्तम्बो**क्तातिथ्यधर्मेण । 'तत्र ह्यग्निरिव ज्वलन्नतिथिरभ्यागच्छती'त्यादिना व्रीहियवान्यतरनिर्वापपाकादिरूपमातिथ्यमुक्तम् ।। ९९ ।।

(३) कुल्लूकः । स्वयमागताय **त्वतिथये आसनं** पादप्रक्षालनाद्युदकं यथासम्भवं व्यञ्जनादिभिः सत्कृतं चान्नं 'आसनावसथावि' (३।१०७) त्यादिवक्ष्यमाण**विधिपूर्वकं दद्यात्** ।। ९९ ।।

(४) राघवानन्दः । आतिथ्यस्य नित्यत्वमनुवदंस्तदकरणे प्रत्यवायमाह **संप्राप्तायेति** । **संप्राप्ताय** गृहमागताय ।। ९९ ।।

(५) नन्दनः । अतिथिपूजाप्रकारमाह **संप्राप्तायेति** ।। ९९ ।।

(६) गोविन्दराजः । **संप्राप्तायेति** । स्वयमुपस्थितायातिथये आसनाचमनादि उदकान्नं च व्यजनविशेषैः यथासंभवं सत्कृत्य "आसनावसथौ" इत्यादिवक्ष्यमाणविधिपूर्वकं दद्यात् ।। ९९ ।।

**शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।।**
**सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ।। १०० ।।**

(१) मेधातिथिः । अत्यन्तदरिद्रस्याप्यतिथिपूजाव्यतिक्रमो न युक्तः । **शिलान्** केदारलवनशेषान् । **उञ्छत** उच्चिन्वतः । एतच्च वृत्तिसंकोचोपलक्षणार्थम् । **पञ्चाग्नीनपि**

**जुह्वतः** । अनेन शास्त्रानुष्ठानसंपन्नोऽत्यन्तदरिद्रश्च यद्यतिथिमागतं न पूजयत्यन्नदानादिना, तदा तदनुष्ठानं स वृत्तिसंयमो निष्फलतामेति । ततश्च **सर्वं सुकृतं** पुण्य**मादत्ते** अतिथिर्गृह्णाति निष्फलीकुरुते । **अनर्चितो वसन्** । तस्मादर्चयेदिति विध्यर्थः । वसन्निति लिङ्गात्सायमागते विधिरयम् । पञ्चाग्नयस्त्रेता गृह्यः सभ्यश्च । "अथ कोऽयं सभ्यो नामाग्निः?" । एवं ह स्माहुः । ग्रामान्तरे प्रोषितस्य यत्र लौकिकपाकः क्रियते महासाधनस्य बहुवेश्मसु यो गृह्यागारादेव शीतापनोदार्थं विह्रियते स सभ्यः । "होमस्तर्हि तत्र कः ?" यावता "तस्मिन्गृह्याणि" इति नियमः ।" अस्मादेव वचनात् वैश्वदेवहोमः प्रोषितस्य लौकिकेऽप्यस्तीति मन्यन्ते । 'व्रीहियवैः शुष्कधान्यैर्यत्र लेलिहानं सुसमिद्धं पश्येत्तत्राभिजुहुयादि'ति स्मृतिवचनमुदाहरन्ति ।

इह भवन्तस्त्वाहुः उपनिषत्सु पञ्चाग्निविद्योक्ता । तत्र तेषां कल्पिताग्निरूपाणि । तद्रूपेण यदुपासनं यच्च वेदनं स 'होम' इति कल्प्यते । सा हि सर्वश्रौतेभ्यः कर्मभ्योऽतिशयफलेष्यते ! एवं हि तत्राम्नायते (छां. ५।१०।१६) "स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा च । एते पतन्ति चत्वारः संसर्गी च" इति । पञ्चानामपि यत्फलं तदतिथावाराधितेऽविमुखीकृते नश्यतीति प्रशंसातिशयेनावश्यकर्तव्यतां दर्शयति । यद्यपि प्रातराशेऽप्यतिथिभोजननियमः, सायं तु तद्व्यतिक्रमे प्रायश्चित्ताधिक्यम् । **'यथाशक्तीति'** पूर्वश्लोकेऽन्नविषयं ये न मन्यन्ते, त एवमाहुर्यथाशक्त्यतिथयः पूजयितव्यः, एको द्वौ बहव इति ।। १०० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **शिलान्**सस्यमञ्जरी**रुञ्छत** आकृष्य गृह्यत इति हि वृत्तिसंकोचेन तपश्चर्योक्ता । अतिथित्वेन गतोऽन**र्चितो वसन्**न्यत्रापि ।। १०० ।।

(३) **कुल्लूकः** । लूनकेदारशेषधान्यानि **शिल**स्तानपि उच्चिन्वतो वृत्तिसंयमान्वितस्य । 'त्रेताऽऽवसथ्यः सभ्य'श्चेति पञ्चाग्नयः सभ्यो नामाग्निः शीतापनोदार्यर्थं यस्तत्र प्रणीयते । पञ्चस्वग्निषु होमं कुर्वाणस्य वृत्तिसंकोचं पञ्चाग्निहोमार्जितपुण्यमनर्चितोऽ**तिथिर्वसन्गृ**ह्णाति । अनया च निन्दयातिथ्यर्चनस्य नित्यता गम्यते ।। १०० ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैवार्थवादमाह **शिलानिति** । केदारे अवशिष्टधान्यं **शिलाः, तान्युञ्छतः** आदानं कुर्वतः । सभ्यावसथ्याहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निसंज्ञकान् । **पञ्चाग्नीन् जुह्वत**स्तस्य **सुकृतं** यदुत्पन्नं **तत्सर्वमादत्ते** आत्मसात्करोति **अनर्चितो** वक्ष्यमाणतृणाद्यैरपि ।। १०० ।।

(५) **नन्दनः** । अतिथिपूजामकुर्वतो निन्दामाह **शिलानपीति** । व्रीहिकणिशानि **शिलास्तानुञ्छत** उपाददतः शिलेन जीवत इत्यर्थः । अनेनैवं ज्ञायते शिलवृत्तित्वं पञ्चाग्नित्वं च प्रशस्ततरमिति ।। १०० ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **शिलां** शिलावृत्तिं **उञ्छतः** कुर्वतः । **नित्यं पञ्चाग्नीञ्जुह्वतः** बलिवैश्वदेवादीन्कुर्वतः एतादृशस्य गृहे **अनर्चितः** विप्रः रात्रौ **वसन् सर्वं सुकृतं आदत्ते** स्वीकुर्यात् ।। १०० ।।

(७) **गोविन्दराजः।** **शिलानप्युञ्छतो नित्यमिति।** अतिदौर्गत्या वृत्तिसंयमातिशयार्थितया शिलान् क्षेत्रफलदोषानप्युच्चिन्वतः सभ्यावसथ्याभ्यां सह त्रेतया पञ्चस्वप्यग्निषु होमं वा कुर्वाणस्य सर्ववृत्तिसंकोचपञ्चाग्निहोमार्जितं पुण्यं अनर्चितोऽतिथिर्वसन् स्वीकरोति। अदानदोषकथनेन नियमानाह सभ्यो नामाग्निः महासाधन इति। शीताद्यपनुत्त्यर्थं यस्तत्र तत्र विहीयते ।। १०० ।।

**तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।।**
**एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।१०१।।**

(१) **मेधातिथिः।** यदि दारिद्र्यात्सायमन्नदानं न घटते तदा नैवं मन्तव्यम्—'प्रधानमतिथेर्भोजनं, तच्च मे नास्तीति, किमनेन मद्गृहे प्रविष्टेने'ति। यतोऽशक्तस्य तृणादिदानेनाप्यतिथिपूजाविधिः स्यात्। अथवा नायं विधिर्भोजन एव पर्यवस्यति, किं तर्हि ? निवत्स्यतः शयनादि दातव्यम्। तृणग्रहणं स्रस्तरोपलक्षणार्थम्। **भूमि**रासनशयनविहारस्थानम्। **सूनृता वाक्** प्रियहितवचनं, कथाप्रस्तावादि वा। एतान्यप्यन्नाभावे सतामागतस्यातिथे**र्नोच्छिद्यन्ते,** किंतु दीयन्ते सर्वकालम् ।। १०१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **तृणानि** शयनार्थानि **भूमि**स्तदास्तरणार्थं। **सूनृता** प्रिया **वाक्।** **नोच्छिद्यन्ते** किन्तु दीयन्ते ।। १०१ ।।

(३) **कुल्लूकः।** अन्नासंभवे पुनस्तृणविश्रामभूमिपादप्रक्षालनाद्यर्थजलप्रियवचनान्यपि धार्मिकगृहेष्वतिथ्यर्थं न **कदाचिदुच्छिद्यन्ते।** अवश्यदेयानीति विधीयते। तृणग्रहणं शयनीयोपलक्षणार्थम् ।। १०१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** अन्नदानाशक्तौ प्रतिनिधितया प्रकारान्तरमाह **तृणानीति। सूनृते**ति विशेषणादन्नसंपत्तौ मिथ्या विनयो न कार्यः। **नोच्छिद्यन्ते** प्रायशो गृहे न विनाभावीनीत्यर्थः ।। १०१ ।।

(५) **नन्दनः।** मुख्यकल्पाभावेऽतिथिरनुकल्पेनाप्यर्चनीय इत्यभिप्रायेणाह **तृणानीति। तृणा**न्यासनाभावे, **भूमिः** शयनाभावे। **उदकं** पादाभ्यञ्जनाभावे। **सूनृता** कल्याणी **वाग**न्नाभावे ।। १०१ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** अन्नासंभवे पुनः **तृणानीति। तृणानि** विश्राम**भूम्या**चमनाद्युदकप्रियसत्यवचनानि साधुगृहेषु अतिथ्यर्थं न कदाचि**दप्युच्छिद्यन्ते।** अतोऽन्नाभावे एतान्यवश्यं देयानि ।। १०१ ।।

**एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।।**
**अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।।१०२।।**

(१) **मेधातिथिः।** नातिप्रसिद्धो लोकेऽतिथिशब्दार्थ इति तदर्थलक्षणमाह **एकरात्रं वसतः** परगृहेऽतिथित्वम्। तच्च ब्राह्मणस्य **न** जात्यन्तरे। द्वितीयेऽह्नि पूजाविधौ

कामचारः। अभ्युदयविशेषार्थिनस्तदधिकारः, न नैयमिकः। तथा चापस्तम्बः (२।७।१६) "एकरात्रिं वासयेत्। पार्थिवाँल्लोकानभिजयति द्वितीयामान्तरिक्षाँस्तृतीयां दिव्यान्" इति फलकामस्य द्वितीयादिरात्रिष्वधिकारं दर्शयति। अत्रैव निर्वचन दार्ढ्यार्थमाह **अनित्यं हि स्थितिः**। तिष्ठतेरिपूर्वस्यायं शब्दः। औणादिकः कथंचिद्व्युत्पत्तिः॥ १०२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तद्ग्रामे द्वितीयदिनवासे तस्य नातिथित्वमित्यर्थः। **अनित्य स्थित** इत्यत्रार्थेऽतिथिपदं निपात्यत इत्यर्थः॥ १०२॥

(३) **कुल्लूकः**। अप्रसिद्धत्वादतिथिलक्षणमाह **एकेति**। एकरात्रमेव परगृहे निवसन् **ब्राह्मणोऽतिथिर्भवति**। अनित्यावस्थानान्न विद्यते द्वितीया तिथिरस्येति अतिथि-रुच्यते॥ १०२॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तातिथेर्लक्षणमाह **एकरात्रमिति**। **एकरात्रिमभिव्याप्य वसन् ब्राह्मण** एवातिथिः, वासाय न विद्यते द्वितीया तिथिर्यस्येति सोऽतिथिः। सर्वत्र ब्राह्मणपदग्रहणात् क्षत्रियादयो नातिथयः॥ १०२॥

(५) **नन्दनः**। कालतोऽतिथिनियममाह **एकेति**। **एकरात्रं वसन्नपि ब्राह्मण-श्चेदतिथिर्न** क्षत्रियादिः, अत्र हेतुमतिथिशब्दनिर्वचनेनाह अनित्यशब्दादकारमिकारं तकारं चादाय स्थितशब्दात्थकारमिकारं चादाय सन्निवेश्यातिथिरित्युच्यते॥ १०२॥

(८) **गोविन्दराजः**। अप्रसिद्धत्वादतिथिलक्षणमाह **एकरात्रमिति**। **ब्राह्मण एकरात्रं** परगृहे **वसन् अतिथिः** यतिः स्मृतः यदस्याहनित्यावस्थानेन न विद्यते द्वितीया तिथिरस्येत्येवमतिथिरुच्यते॥ १०२॥

**नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा॥**
**उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा॥ १०३॥**

(१) **मेधातिथिः**। एकस्मिन्ग्रामे यो वसति **वैश्वदेवकालोपस्थितोऽपि नातिथिः**। **सांगतिकः** सहाध्यायी सख्युरन्यः। तस्य ह्युत्तरत्र (११० श्लो०) विधिर्भविष्यति "वैश्यशूद्रौ सखा चेति"। योऽपि सर्वेण संगच्छते विचित्रपरिहासकथादिभिः, स सांगतिक-शब्देन युक्तः प्रतिषेद्धुं प्रागदृष्टपूर्वोऽपि। न च गृहस्थस्य प्रोषितस्यास्य सर्वलक्षणलक्षितो-ऽप्यतिथिः। किं तर्हि? **उपस्थितं गृहे विद्यात्**। यत्रास्य नित्यं स्थानम्, वसतिस्थानं यदुच्यते। प्रोषितस्यापि **भार्या यत्राग्नयश्च** तत्रासंनिहितस्यापि गृहस्थस्य भवत्येवातिथिः। अतो यथा संविधायाग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादिषु प्रवसति, तद्वदतिथयेऽपि संविधातव्यम्।

**वाशब्दा**त्त्वेवं प्रतीयते—भार्याग्निभिः सह यदा प्रवासस्तदा भवत्येव ग्रामान्तर-स्थस्याप्यतिथिः। असंनिहितस्यापि गृहे भार्याग्निषु सत्सु। ततश्च यदि भार्यया सह प्रवसे-दग्नयश्च गृह एव भवेयुस्तदा नातिथिपूजानियम इति। वाशब्द **उपस्थितं गृहे विद्यादि**त्ये-तदपेक्षया, न परस्परापेक्षया भार्याग्नीनाम्॥ १०३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **एकग्रामीण**मेकग्रामे चिरनिवासिनम्। **सांगतिकं** संगतिः संबन्धः तत्पुरस्कारेणागतम्। तथा यत्र यस्य प्रवासिनोऽपि **भार्या अग्नयो** वा सह **गच्छन्ति** तदन्यतमं स्वे **गृह उपस्थित**मागतमप्य**तिथिं** न **विद्या**न्नातिथिधर्मेणार्चयेत्। 'अग्नयोऽपि वे'ति वचनादभार्यस्याप्यग्नयः संभवन्तीति गम्यते। श्रूयते च 'श्रुतौ अपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरे-दि'ति ॥ १०३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** एकग्रामनिवासिनं लोकेषु विचित्रपरिहासकथादिभिः संगत्या वृत्त्यर्थिने भार्याग्नियुक्तो गृहे वैश्वदेवकालोपस्थितमपि **नातिथिं विद्यात्**। एतेन भार्याग्निरहितस्य प्रवासिनो नातिथित्वमिति बोधितम् ॥ १०३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्रैव व्यतिरेकमाह **नैकेति।** विप्रमप्येकग्रामवासिनं। **सांगतिकं** विचित्रविद्येतिहासकथाभिः संगत्या प्रत्यर्थिनं। भार्याग्नियुक्ते **गृहे उपस्थितमतिथिं विद्यात्।** अत एव भार्याग्निविरहितस्य नातिथ्यकार्यताऽऽवश्यकेति गतिस्थानकल्पो वा तेन भार्यायाः सत्त्वमावश्यकम् ॥ १०३ ॥

(५) **नन्दनः।** देशतोऽतिथिनियममाह **नैकेति।** अतिथिलक्षणयुक्तमप्येकग्रामवासिनं तथा **सांगतिकं** संगतेन चरन्तं क्वचिदतिथित्वेन संगतपूर्वमिति यावत्तं **नातिथिं विद्यात्। यत्र** स्वकीये परकीये वा गृहे **भार्याग्नयोऽपि** सन्ति तत्रोपस्थितमतिथिं विद्यात नान्यं दिप्रोषिताग्निभार्यस्याभ्याशमागतम् ॥ १०३ ॥

(६) **रामचन्द्रः। एकग्रामीणं विप्रं गृह उपस्थितं** वैश्वदेवसमये प्राप्त**मतिथिं** न विद्यात्तथा **सांगतिकं** सहाध्यायी च चित्रकथाभिः सह संगच्छते तमतिथिं न विद्यात्। गृहमागतमपीत्यर्थः। **यत्र भार्या वाऽग्नयोऽपि** वा वर्तन्ते **तत्रागतम्** ॥ १०३ ॥

(८) **गोविन्दराजः। नैकग्रामीणमिति।** समानग्रामनिवासिनं यं च संगत्या लोकयात्रया चरितं विचित्रपरिहासकथाजीवनं यस्य स **भार्याग्नयः** तस्मिन्नेव ग्रामे संप्राप्तः तं वैश्वदेवकालेऽपि सम्प्राप्त**मतिथिं न विद्यात्** ॥ १०३ ॥

**उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः।**
**तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनः ॥**
**परपाकान्नपुष्टस्य सततं गृहमेधिनः।**
**दत्तमिष्टं तपोऽधीतं यस्यान्नं तस्य तद्भवेत् ॥ १०४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** 'उपासनं' तदभ्यासः। यो ब्राह्मणोऽनयैव बुद्ध्या तत्र तत्रोपतिष्ठेत यथाऽतिथिरवश्यं भोजनं लभेत तस्येयं निन्दा। यस्तच्छीलः 'परस्य' संबन्धिनं 'पाक'मन्नमुपास्ते, न तु कदाचित्। **तेन** कर्मणा **प्रेत्य पशुतां** बलीवर्दादिजातिं **व्रजति** प्राप्नोति **अन्नादिदायिनस्तद्**गृहे दन्तितां गर्दभतामश्वतां वा प्राप्नोति। गृहस्थस्यैष दोषः, उत्पन्नस्थालीपाकस्य ॥ १०४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। उपासते** आमन्त्रणं विनाऽतिथिधर्मेण ।। १०४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** अतिथिप्रकरणादातिथ्यलोभेन ये गृहस्थाः ग्रामान्तराणि गत्वा परान्नं सेवन्ते ते निषिद्धपरान्नदोषानभिज्ञाः। तेन परान्नभोजनेन जन्मान्तरे **अन्नादिदायिनां पशुतां व्रजन्ति**। तस्मादिदं न कुर्यादिति निषेधः कल्प्यते ।। १०४ ।।

(४) **राघवानन्दः। गृहस्थो** भूत्वा आतिथ्यलोभेनातिथिर्न स्यादित्याह **उपासत इति**। उपासनं तात्पर्येण प्रवृत्तिः। **अबुद्धयः** पशुत्वप्राप्तिमविद्वांसः। दातारः श्लाघ्या इत्याह **पशुतामित्यादि। तेनातिथ्यलोभमात्रेण** ।। १०४ ।।

(५) **नन्दनः।** इदानीमतिथिप्रसङ्गाद्गृहस्थानामतिथिरूपेण परपाकभोजनप्रतिषेधार्थं निन्दार्थवादमाह **उपासत इति। उपासते परपाकं** परेषां पक्वान्नम्। **तेन** परपाकोपासनेन। तस्मात्परपाकभोजनप्रसक्तिर्न कार्येति ।। १०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः। उपासते** तेन कारणेन अन्नाद्यदातॄणां ते **प्रेत्य पशुतां** गर्दभतां **व्रजन्ति** ।। १०४ ।।

[**परपाकेति। इष्टं** यागादि **दत्तं** दानं **अधीतं** वेदाध्ययनं। एतज्जन्यपुण्यं **यस्यान्न** भक्षयति।]

(८) **गोविन्दराजः। उपासत इति।** आतिथेयोद्देशत एव ग्रामान्तराणि गत्वा ये **गृहस्थाः** दुर्मेधसः औदरिकतया परान्नं सेवन्ते तेन परान्नभोजनेन ते जन्मान्तरे **अन्नाद्यदायिनां** गृहे **पशुतां व्रजन्ति** इति फलप्रतिपादनपरमेतत्। अतः परपाकोपसेवनं न कार्यम् ।। १०४ ।।

**अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।।**
**काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ।। १०५ ।।**

(१) **मेधातिथिः। सायं**कालोऽस्तमयादिः प्रदोषांतः। तस्यां वेलाया**मतिथि**रागतो-**ऽप्रणोद्यः** अप्रत्याख्येयः, भोजनशयनासनादिभिः प्रतिपूज्यः। केन? **गृहमेधिना।** 'मेधो' यज्ञः। 'गृहमेधो' महायज्ञानामियमाख्या। तत्राधिकारी **गृहमेधी,** गृहस्थ इति यावत्। **सूर्योढ** इत्यर्थवादः, सूर्येणोढः प्रापितः। दैवोपनीतत्वादवश्यं पूजार्हः। **काले** द्वितीये वैश्वदेव-काले प्राप्तः, **'अकाले' वा** सायं, भोजने निर्वृत्तेऽपि। **नास्य** गृहस्थस्या**नश्नन्**गृहे **वसेत्।** यदि शेषमस्ति तन्निवेदनीयम्। न चेद्, द्विः पाकः कर्तव्यः ।।। १०५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अप्रणोद्यो**ऽनिराकार्यः। सूर्येणोढो यद्देहमधिष्ठाय सूर्यश्चरति स **सूर्योढः**। स च सायं य आगच्छति स भवति। अत एव श्रुतौ 'एष ह वै स एकातिथि'रित्येकशब्देन सूर्यं परामृश्यैकातिथित्वं तस्योक्त्वा तस्मादाहुर्न सायमतिथिमपनुद्येत्युपसंहृतम्। तत्काले अतिथिबाहुल्याभावादेकातिथित्वम्। गृहधर्म एव मेधो यज्ञोऽस्येति **गृहमेधी** गृहस्थः। **काले** वैश्वदेवान्ते ।। १०५ ।।

(३) **कुल्लूकः।** सूर्येऽस्तमिते गृहस्थेनातिथिर्न प्रत्याख्येयः। **सूर्येणोढः** प्रापितो रात्रौ स्वगृहगमनाशक्तेः। द्वितीयवैश्वदेव**काले** प्राप्तोऽ**काले** वा सायंभोजने निवृत्तेऽपि। **नास्य** गृहेऽतिथिरनश्नन्वसेदवश्यमस्मै भोजनं देयम्। प्रत्याख्याने प्रायश्चित्तगौरवार्थोऽयमारम्भः। अत एव **विष्णुपुराणे** "दिवाऽतिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप। तदेवाष्टगुणं प्रोक्तं सूर्योढे विमुखे गते।" **गोविन्दराजस्तु** प्रतिषिद्धातिथिप्रतिप्रसवार्थत्वमस्याह।। १०५।।

(४) **राघवानन्दः।** अतिथिमनुवदंस्तस्यापरिहार्यकालमाह **अप्रणोद्य** इति। **अप्रणोद्यः** अप्रत्याख्येयः। यतः **सूर्योढः।** अस्तं गच्छता सूर्येण प्रापितः। अतो विप्रकृष्टस्वगृहे गमनाशक्तो नानन्दन्वसेदित्याह **कालेति।** **अकाले** सायंभोजननिवृत्तौ। काल इवाकालेऽपि नानश्नन्वसेदिति वा।। १०५।।

(५) **नन्दनः।** सायन्तनातिथिर्विशेषेण नोपेक्षणीय इत्याह **अप्रणोद्य इति। सूर्योढः** सूर्येण प्रापितोऽस्तं गच्छता सूर्येण देशान्तरगमनाशक्तिमापाद्य प्रापित इत्यर्थः। **गृहमेधाः** पञ्चमहायज्ञास्तद्वान्गृहमेधी तेन। **अप्रणोद्यो**ऽप्रेपणीयः। **काले** वैश्वदेवानन्तर-काले। **अकाले** वैश्वदेवात्पूर्वस्मिन्काले स्वभोजनादुत्तरस्मिंश्च काले।। १०५।।

(६) **रामचन्द्रः।** कीदृशोऽतिथिः?। **सूर्योढः** देहमधिष्ठाय सूर्यश्चरति स सूर्योढः सूर्येणानीत इत्यर्थः। **गृहमेधिना** गृहस्थेन, गृहमेधो महायज्ञः, तेन गृहस्थेन **काले** द्वितीय-वैश्वदेवकाले प्राप्तः। **अकाले** वा सायंभोजनाभावे प्राप्तः। **अनश्नन्** सन्नस्य **गृहस्थस्य गृहे न वसेत्।।** १०५।।

(७) **गोविन्दराजः। अप्रणोद्य इति।** यस्मादयमादित्येनास्तं गच्छता प्रापितो-ऽतिथिः, तदानीं स्वगृहगमनाशक्तेः, स **गृहमेधिना** गृहानुष्ठेयपञ्चयज्ञवता गृहस्थेन न प्रत्या-ख्येयः। स च वैश्वदेव**काले** प्राप्तः तदुत्तरकाले वा **नास्य** गृहस्थस्य **अन्नमनश्नन् गृहे वसेत्।** अवश्यमस्याशनं देयम्, अयं च प्रतिषिद्धातिथिप्रतिप्रसवार्थमारंभः, अन्यथा "वैश्वदेवं हि नामैतत् सायं प्रातर्विधीयते" (३।१२१) इति वक्ष्यमाणेनैव सायमतिथिदानसिद्धौ अनारम्भः स्यात्।। १०५।।

**न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।।**
**धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।। १०६।।**

(१) **मेधातिथिः।** सूपघृतदधिशर्करादि यदुत्कृष्टमन्नं **तत्स्वयं नाश्नीया**दतिथौ संनि-हिते यावत्तस्मै न दत्तम्। यत्तु आतुरस्य यवागूरसकटुकादि तदनिच्छते न देयम्। तादृ-शमदत्तमश्नतो न दोषः। सर्वथा न संस्कृतमन्नं स्वयं भोक्तव्यम्। कदन्नमतिथिर्न भोजनीय इत्येवंपरमेतत्। धनाय हितं, धनस्य निमित्तं वेति **धन्यम्।** एवं यशस्यादयः शब्दाः। अर्थ-वादोऽयं नित्यत्वादतिथिभोजनस्य, सति संनिधानेऽतिथेः, पूर्वशेषत्वाच्च। स्तुतित्वेनान्वये संभवति नाधिकारान्तरकल्पना युक्ता।। १०६।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** धन्यं धनहेतुः।। १०६।।

(३) **कुल्लूकः**। यद्घृतदध्याद्युत्कृष्टमतिथिर्न प्रत्याचष्टे तत्तस्मा अदत्वा न **स्वयं** भोक्तव्यम्। धनाय हितं धनस्य निमित्तं वा **धन्यम्**। एवं **यशस्या**दयोऽपि शब्दाः। अतिथि-भोजनफलकथनमिदम्। न चानावश्यकतापत्तिः। 'सर्वं सुकृतमादत्त' (३।१००) इत्यादि-दोषश्रवणात् ।। १०६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। आतिथ्यस्य फलवादमनूवदंस्तत्कर्तुर्नियमं सार्थवादमाह **नेति**। तन्मधुरादि **धन्यं** धनाय हितं। एवमुत्तरत्र धन्यादिचतुष्टयस्य महाफलत्वेनाव्याजेनातिथ्यं कार्यमिति भावः ।। १०६ ।।

(५) **नन्दनः**। नियमान्तरमाह **वा इति**। **अतिथिपूजनं** स्वभोज्येन कृतम् ।। १०६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तदैश्वर्ये स्वयं नाश्नीयात्। ततः किं यदन्नमतिथिं न **भोजयेत्**। अतिथिभोजनस्य फलमाह अतिथिभोजनं **यशस्यं आयुष्यं स्वर्ग्यं** भवति ।। १०६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। यदतिथये रोचते तत् तस्मा अदत्वा आत्मना नाश्नीयात्। अतिथिभोजनं च धनख्यात्या दुःस्वर्गनिमित्तमित्यातिथेयफलकथनं नत्वनित्यतापत्तिः 'सर्वं सुकृतमादत्ते' इत्याद्युक्तत्वात् ।। १०६ ।।

**आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनम् ।।**
**उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ।। १०७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। बहुष्वतिथिषु युगपदुपस्थितेष्वितरेतरं समहीनज्यायस्त्वासनादि-प्रकल्पनं गुणापेक्षं, नाविशेषेण। **आसनं** बृस्यादि। **आवसथं** विश्रामभूमिः। **शय्या** खट्वादि। **अनुव्रज्या** गच्छतोऽनुगमनम्। **उपासनं** तत्समीपे कथाप्रस्तावेन संनिधानम्। एतदु**त्तमेषूत्तमम्**। दूरमनुव्रज्येत 'उत्तमः', नातिदूरं 'मध्यमः,' कतिचित्पदानि 'हीनः' ।। १०७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उपासनं** तत्समीप उपवेशनम्। **हीनेति** मन्दगुणे। **समे** नात्युत्कृष्टापकृष्टगुणे **समं** नात्युत्कृष्टापकृष्टम् ।। १०७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **आसनं** पीठं चर्म वा। **आवसथो** विश्रामस्थानम्। **शय्या** खट्वादि। **अनुव्रज्या** गच्छतोऽनुगमनम्। **उपासना** परिचर्या। एतत्सर्वं बहुष्वतिथिषु युगपदुपस्थिते-ष्वितरेतरापेक्षयोत्कृष्टापकृष्टमध्यमं कुर्यात्, न पुनः सर्वेषां समम् ।। १०७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव प्रकारभेदमाह **आसनेति**। **आवसथोऽत्र** गृहं। आतिथ्यस्य ब्राह्मणेष्वेव नियमनात् गुणादिनोत्तमादिनियमः ।। १०७ ।।

(५) **नन्दनः**। अतिथीनां तारतम्येन पूजातारतम्यं कर्तव्यमित्याह **आसनेति**। **उत्तमे**ऽतिथावुत्तमं **हीनत्वं** स्वापेक्षया ।। १०७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अतिथिसेवामाह **आसनेति**। **आसनावसथौ** आसनं च **आवसथं** गृहं च **शय्यां** च पुनरनुव्रजनं। एतदतिथेः उपासनं पूजनं कुर्यात्। **हीने हीनं** कुर्यात्। **समे समं** कुर्यात् ।। १०७ ।।

(८) **गोविन्दराजः ! आसनावसथाविति ।** युगपदनेकातिथ्यवस्थाने सति ह्यासनस्थान-विश्रामस्थान-श्रद्धादि-शयना-नुगमनपरिचरणं इतरेतरापेक्षयोत्कृष्टमध्यमेषु उत्कृष्टा-पकृष्टममध्यमं कुर्यात् । अन्नं पुनस्तुल्यमेव, तत्र विशेषाश्रवणात् ।। १०७ ।।

**वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ।।**
**तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ।। १०८ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** सर्वार्थमन्नं **वैश्वदेव**शब्देनोच्यते । तस्मिन्निर्वृत्ते निष्पन्ने, भुक्त-वत्सु सर्वेषु, निःशेषितेऽन्ने, **यद्यन्योऽतिथि**रागच्छेत्तस्मै दद्यात्पुनः पक्वान्नम् । न तु तस्मात्पाक-**बलिं हरेत् ।** अग्नावपि होमो नेष्यते, न केवलं बलिहरणम् । यतः सायंप्रातः पाके होमो बलिहरणम्, न चान्तरालिके । तथा च वक्ष्यति (१२१ श्लो०) "सायं त्वन्नस्य" इति । एवं च यद्यप्यसकृदह्नः पचेत्तथापि न प्रतिपाकं वैश्वदेवमावर्तेत । **यथाशक्ति** संस्कारविशेषेणे-तरथा वा ।। १०८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । वैश्वदेवे** होममात्रे । **अन्यो** द्वितीयोऽपि । **अन्नं** बल्यर्थो-पक्लृप्तमपि **न बलिं** हरेदन्नान्तराभावे । एतेन मनुष्ययज्ञस्य भूतयज्ञापेक्षयाऽभ्यर्हि-ततोक्ता ।। १०८ ।।

(३) **कुल्लूकः । अन्य**शब्दनिर्देशादतिथिभोजनपर्यन्तं वैश्वदेवे कृते यद्यपरोऽतिथि-रागच्छेत्तदा तदर्थं पुनः पाकं कृत्वा **तस्यान्नं** दद्यात् । बलिहरणं ततो नात्र कुर्यात् । बलि-निषेधादन्नसंस्काराभावो वैश्वदेवस्यावगम्यते । अन्नसंस्कारपक्षे कथमसंस्कृतान्नभोजनमनुजा-नीयात् ? ।। १०८ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** अकाल इत्युक्तं तत्र कथं तन्नोपवासस्तत्राह **वैश्वदेवे त्विति ।** वैश्वदेवपूर्वकं दम्पत्योर्भोजने **निर्वृत्ते** इति ज्ञेयम् । अन्यथा तदन्नेनातिथिभोजने स्वार्थ एव पाकः स्यादत एव स्वपाकसंस्कारार्थो वैश्वदेवो नात्ममात्रसंस्कारार्थः । **यथाशक्ति** पक्त्वा ।। १०८ ।।

(५) **नन्दनः । वैश्वदेवे निर्वृत्ते** सिद्धेऽग्नौ यस्मिन्नन्ने वैश्वदेवहोमादिकं कृतं तस्मिन्निःशेषं भुक्त इत्यर्थः । **अन्नं** पुनःसाधितम् । पुनःसाधितस्यान्नस्य संस्कारार्थं **न बलिं हरेत्** ।।१०८।।

(६) **रामचन्द्रः । पाकं** कृत्वाऽन्नं दद्यात् । **पुनर्बलिं** हरेत् । वैश्वदेवं न कुर्यात् ।। १०८ ।।

(८) **गोविन्दराजः । वैश्वदेव इति ।** कृतेऽतिथिभोजनपर्यन्ते **वैश्वदेवे यद्यपरोऽ-तिथिराव्रजेत्** तस्मै तदा **चान्नं यथाशक्ति** पुनः पक्त्वा **प्रदद्यात् ।** बलिहरणं च ततोऽन्नान्न कुर्यात् । बलिहरणनिषेधादात्मसंस्कारार्थता वैश्वदेवस्याभिप्रेतेत्यवसीयते । अन्नसंस्कारपक्षे कथमसंस्कृतान्नभोजनमनुजानीयात् ? ।। १०८ ।।

**न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ।।**
**भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ।। १०९ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** प्रासङ्गिकोऽतिथेरयमुपदेशः । **भोजनार्थ**मेतत्कुलीनोऽमुष्य पुत्रोऽस्मीति न **निवेद**येन्न कथयेत् । **स्वे कुलगोत्रं** आत्मीयं 'कुलं' पितृपितामहाद्यभिजनो, 'गोत्रं' गर्गभार्गवादि, नामधेयं वा । 'गोत्रस्खलितं' नामान्तरविवक्षायां यन्नामान्तरमुदाह्रियते तदुच्यते । अध्ययनमपि स्मृत्यन्तरप्रतिषिद्धं, तदपि न निवेद्यम् । अस्यार्थवादः । भोजनार्थं—'भोजनं लिप्से प्रख्यातकुलजातित्वा'दित्यनेनार्थेन हेतुना कुलगोत्रे **शंसन्कथयन्वान्ताशी,** वान्तभुगुद्गीर्णमश्नाति निगिरतीत्येव**मुच्यते बुधैः** ।। १०९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** कुलं तादृशिष्टदेशस्थानोत्पन्नत्वं । **भोजनार्थ** इति पुनरभिधानं धनार्थमभिधाने दोषाभावज्ञापनार्थम् **वान्ताशी** वान्ताशनप्रायश्चित्तार्हत्वात् ।।१०९।।

(३) **कुल्लूकः । भोजन**लाभार्थं ब्राह्मणः **स्वकुलगोत्रं न निवेदयेत् ।** यस्माद्भोजनार्थं ते कथयन्नुद्गीर्णाशीति पण्डितैः कथ्यते ।। १०९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** आतिथ्यभोक्तुर्नियममाह **नेति । स्वे** स्वकीये । तत्कृतौ निन्दामाह **भोजनार्थमिति ।** ते **कुलगोत्रे** निवेदयित्वा वान्तभक्षणतुल्यपापी स्यादिति भावः।।१०९।।

(५) **नन्दनः ।** अतिथिं प्रत्याह **न भोजनार्थमिति । विप्रो**ऽतिथिभूतः । **वान्ताशी ।** स हि **कुलगोत्रे** उद्गीर्यन्नश्नाति ।। १०९ ।।

(६) **रामचन्द्रः । विप्रः स्वे** स्वकीये **कुलगोत्रे भोजनार्थं** वा स्वप्रशंसां न निवेदयेत् । ते **कुलगोत्रे** भोजनार्थं प्रशंसन्बु**धैर्वान्ताशीत्युच्यते** ।। १०९ ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** प्रसङ्गात् भोक्तृधर्ममाह **न भोजनार्थं इति । भोजन**लाभार्थं **विप्रः स्वे कुलगोत्रे** न कथयेत् यस्मात् भोजनार्थं ते कथयन् उद्गीर्णाशीति विद्वद्भिः कथ्यते ।। १०९ ।।

**न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ।।**
**वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च ।। ११० ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** क्षत्रियो **ब्राह्मणस्या**ध्वनीनोऽपि प्रथमभोजनकाल उपस्थितोऽपि **नातिथिः,** अतो न तस्मै नियमतो देयम् । एवं वैश्यशूद्राभ्यामपि । **सखिज्ञाती** आत्मसमे, नातिथी । **गुरुः** प्रभुवदुपचर्यः । "निवेद्य पचनक्रिया" इत्युक्तम् (गौतम. ५।२६) ।। ११० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । ब्राह्मणस्य नातिथिः ।** सवर्णानां तु भवत्येव **सखा** मित्रं । **ज्ञातयः** संबंधिनः । **गुरुः** पिता ।। ११० ।।

(३) **कुल्लूकः । ब्राह्मणस्य** क्षत्रियादयोऽतिथयो न भवन्ति । क्षत्रियादीनां ब्राह्मणस्योत्कृष्टजातित्वान्मित्रज्ञातीनामात्मसंबन्धाद्गुरोः प्रभुत्वात् । अनेनैव न्यायेन क्षत्रियस्यो-

त्कृष्टो ब्राह्मणः सजातीयश्च क्षत्रियोऽतिथिः स्यान्नापकृष्टौ वैश्यशूद्रौ। एवं वैश्यस्यापि द्विजातयोऽतिथयो न शूद्रः ।। ११० ।।

(४) **राघवानन्दः।** 'अतिथिर्ब्राह्मण' इत्युक्तं तद्व्यतिरेकं प्रासङ्गिकमनुवदति **न ब्राह्मणस्येति।** गृह इति विशेषणादरण्ये सर्वे अतिथयः अनन्यशरणत्वात् ।। ११० ।।

(५) **नन्दनः।** इदानीमतिथ्यपवादमाह **न ब्राह्मणस्येति।** तुशब्दोऽत्रावधारणार्थः। ब्राह्मणस्यैवातिथयो राजन्यवैश्यशूद्राः। क्षत्रियादीनां तु वर्णोत्कृष्टाः सवर्णश्चातिथयो भवन्त्येव। **सखा** चातिथि**र्ज्ञातयो गुरुश्च** ।। ११० ।।

(६) **रामचन्द्रः। ब्राह्मणस्य** गृहे **राजन्योऽतिथि**र्नोच्यते च पुन**र्वैश्यशूद्रौ सखा** च गुरुरपि, एते अतिथयो न ।। ११० ।।

(७) **मणिरामः।** स्पष्टम् ।।११०।।

(८) **गोविन्दराजः। न ब्राह्मणस्य त्वतिथिरिति। ब्राह्मणगृहे** गुरुमित्रबन्धुक्षत्रियवैश्यशूद्रा नातिथयो भवन्ति। गुरोः प्रभुत्वात् मित्रबन्धूनामात्ममत्वात् क्षत्रियादेश्च हीनजातित्वात् क्षत्रियस्योत्कृष्टः ब्राह्मणः स्यात्। ब्राह्मणक्षत्रियावुत्कृष्टजातीयौ स्यातामेवं वैश्यस्यापि ।। ११० ।।

## यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ।
## भुक्तवत्सु च विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ।। १११ ।।

(१) **मेधातिथिः।** तत्रा**तिथेर्धर्मः**—क्षीणपथ्योदनत्वं परग्रामवासो भोजनकालोपस्थानम्—तादृशेन रूपेण **यदि क्षत्रियो गृह**मागतो भवति, तदा **तमपि भोजयेत्।** भोजनवचनादन्या परिचर्या निवर्तते। प्रियहितवचनं त्वविशेषेण गृहाभ्यागतस्य विहितम्। अयं च तस्य भोजनस्य कालः। **भुक्तवत्सु विप्रेषु** ब्राह्मणेष्वनतिथिषु वा गृहसंनिहितेषु प्रथमंभोजिषु, ततः स भोजयितव्यः। **काममिति** नियमभावमाह काम्योऽयं विधिर्न नित्य इत्यर्थः। कामश्चानिर्दिष्टविशेषफलेषु स्वर्गः। यदि वा "धन्यं यशस्यम्" (श्लो० १०६) इत्याद्यत्र संबन्धनीयम् ।। १११ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अतिथिधर्मेण** वैश्वदेवान्ते **काम**मिच्छया न त्ववश्यम् ।। १११ ।।

(३) **कुल्लूकः।** यदि ग्रामान्तरागतत्वादतिथिकालोपस्थितत्वा**दतिथिधर्मेण क्षत्रियो विप्रगृहमागच्छे**त्तदा विप्रगृहोपस्थित**विप्रेषु** कृतभोजनेषु स्थितेष्विच्छात**स्तमपि भोजयेत्।** ।। १११ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तद्धर्मेण क्षत्रियाद्युपस्थितौ का गतिस्तेषु संभवप्रकारमाह **यदीति त्रिभिः। अतिथिधर्मेणेति।** युक्तार्थे तृतीया। एकरात्रमित्यादिविशेषणविशिष्टः। **कामं** यथेष्टम् ।। १११ ।।

(५) **नन्दनः।** राजन्यादिष्वतिथिधर्मेणागतेषु कर्तव्यं श्लोकद्वयेनाह **यदि त्विति।** **अतिथिधर्मो**ऽदृष्टपूर्वत्वम्। **काममि**ति वचनादनावश्यकता सूचिता।। १११।।

(६) **रामचन्द्रः।** अतिथित्वेनातिथिलक्षणधर्मेण यदा **क्षत्रियः** क्षीणवृत्तिः परग्रामवासः **गृहं आव्रजे**दागच्छेत्। **विप्रेषु भुक्तवत्सु कामं तं** क्षत्रियमपि पश्चा**द्भोजयेत्** ।। १११।।

(८) **गोविन्दराजः। यदीति।** क्षीणपाथेयो ग्रामान्तरवासित्वात् अतिथिधर्मेण यदि **क्षत्रियो** विप्रगृहे आगच्छेत् तदा गृहावस्थितविप्रेषु कृतभोजनेषु **तमपि भोजयेत्** ।। १११।।

**वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ।**
**भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ।। ११२ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** अतिथेर्धर्मोऽतिथिधर्मः। स ययोरस्ति **तावतिथिधर्मिणौ।** अतिथिधर्मश्च प्राग्व्याख्यातः। **कुटुम्बं** गृहं, तत्र प्राप्तावागतौ। वैश्यशूद्रावपि भोजयेत्। क्षत्रियवत्। तयोस्तु भोजनकालः क्षत्रियकालात्परेण। यत आह **भोजयेत्सह भृत्यैस्तौ।** 'भृत्या' अत्र दासा उच्यन्ते। तेषां च भोजनकालो भुक्तवत्स्वतिथिज्ञातिबान्धवेषु सर्वेष्ववर्वाग्दम्पतिभ्याम्। सहशब्द एककालतामात्रलक्षणार्थः।

**आनृशंस्यं** कारुण्यमनुकम्पां **प्रयोजयन्** प्रमाणीकुर्वन्नाश्रयन्निति यावत्। अनेन पूज्यतां वारयति। अनुग्राह्यो ह्यनुकम्प्यो, न पूज्यः। अनुकम्प्येषु यदि च शक्यतेऽनुग्रहः कर्तुं ततः क्रियतेऽभ्युदयार्थिना, न त्वकरणादतिथेरतिक्रमः। एतदुक्तं भवति – यादृशोऽतिथिभोजनादुत्कृष्टो धर्मः अनुकम्प्यानुग्रहान्न तादृशस्ततो निकृष्टः।। ११२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। कुटुम्बे** कुटुम्बवति गृहे न तु प्रवासे। **भृत्यै**र्भृत्यद्वार**भोजयेत्** सह तुल्योपचारौ। क्षत्रिये त्वधिकोपचारार्थं पृथगुक्तिः। **आनृशंस्य**मंहिस्रतां करुणां प्रयोजनं चातिथ्यतिक्रमदोषभयात्।। ११२ ।।

(३) **कुल्लूकः।** यदि वैश्यशूद्रावपि ब्राह्मणस्य **कुटुम्बे** गृहे प्राप्तौ ग्रामान्तरादागतत्वाद्यतिथिधर्मशालिनौ तदा **तावपि** क्षत्रियभोजनकालात्परतो दम्पतीभोजनात्पूर्वं दासभोजनकालेऽनुकम्पामाश्रयन्**भोजयेत्** ।। ११२ ।।

(४) **राघवानन्दः। कुटुम्बे** गृहे। आनृशंस्यं दीयतामिति अकार्पण्यं प्रकटयन्।। ११२ ।।

(५) **नन्दनः। कुटुम्बे** भार्यायाम्। **सह भृत्यैः** स्वभृत्यैः सह भोजनकाल इत्यर्थः। **आनृशंस्यं** प्रकल्पयन् आनृशंस्यार्थं, अनुकम्पार्थमिति यावत्।। ११२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। अपि** निश्चयेन **वैश्यशूद्रौ** चेत्प्राप्तौ **कुटुम्बे** गृहे **अतिथिधर्मिणौ तौ** वैश्यशूद्रौ भोजनकाले **स्वभृत्यैः सह भोजयेत्** ।। ११२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। वैश्यशूद्राविति!** **वैश्यशूद्रावपाथेयावतिथिरूपौ** गृहे प्राप्तौ तदा कारुण्यात् संभोजनीयौ ।। ११२ ।।

**इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ।**
**प्रकृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ।। ११३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। 'सखा' मित्रं स आदिर्येषाम्। आदिशब्दः प्रकारे ज्ञातिबन्धु संगतसहाध्यायिप्रभृतीन्गृह्णाति, गुरुवर्जम्। **संप्रीत्याऽऽगतान्**। अतिथेर्धर्मस्य प्रकृतत्वान्निषेधार्थं संप्रीतिग्रहणम्। **तान्भोजयेत्। प्रकृत्य** प्रकर्षेणान्नं कृत्वा संस्कृत्य। **यथाशक्तीति** उपलक्षणार्थः शक्तिशब्दः। यावती शक्तिर्यादृशं च योऽर्हति तमुद्दिश्य तादृश एव संस्कारः कर्तव्यः।

**भार्यया सह**। यो भर्तुर्भोजनकालः स एव भार्याया अपि, पृथक्तस्या भोजनकालस्याभावात्। एवं ह्युक्तम् "अवशिष्टं तु दम्पती" (३।११६) इति। महाभारते पत्युरूर्ध्वं भार्याया भोजनं दर्शितम्। द्रौपदीसत्यभामासंवादे द्रौपद्या स्त्रीधर्मान्कथयन्त्योक्तं "सर्वेषु पतिषु भुक्तवत्सु शेषान्नमश्नामि"। पतिशेषान्नभोजनं स्त्रीणां धर्मः। तस्मान्न भार्याभोजनकाले सख्यादीनां भोजनं विधीयते। नाप्येकपात्राशनं सहार्थः। किं तर्हि? नैकाकिनस्ते भोजयितव्याः। अपि तु भार्याऽपि तत्र भुञ्जीत। ततश्च 'अवशिष्टं तु दम्पतीति' तदत्र बाध्यते। यदि पत्युः कश्चिदभ्यर्हितः प्रतीक्ष्यः स्यादरुच्या वा न भुञ्जीत, तदा भार्या तद्देशे भुञ्जीत। एवं सौहार्दं प्रकाशितं भविष्यति ।। ११३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सख्यादीन्**पूर्वोक्तान् **सत्कृत्य** संस्कृत्य **भार्यया** परिवेषणकर्त्र्या ।। ११३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। उक्तभोजनकाले क्षत्रियादिव्यतिरिक्तान्सखिसहाध्यायिप्रभृतीन्**संप्रीत्या गृहमागतान्** न त्वतिथिभावेन तस्य प्रतिषेधात्। **यथाशक्ति** प्रकृष्टमन्नं कृत्वा **भार्याया** भोजनकाले **भोजयेत्**। गृहस्थस्यापि स एव भोजनकालः, 'अवशिष्टं तु दम्पती'ति वक्ष्यमाणत्वात्। आत्मना सहेति वक्तव्ये वचनवैचित्र्यमाचार्यस्य। गुरोस्तु भोजनकालानभिधानं प्रभुत्वेन स्वाधीनकालत्वात् ।। ११३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच गृहदारादिषु भुक्तवत्सु **प्रकृत्य** संपाद्य **अन्नं** अत्र **सह भार्ययेति** भार्याभोजनं प्रतिपत्तिकर्म ।। ११३ ।।

(५) **नन्दनः। प्रकृत्य** तत्प्राधान्यं प्रकाश्येति यावत्। **सह भार्यया** भार्यासहितः स्वयं **भोजयेत्**। नान्यं नियुञ्जीत ।। ११३ ।।

(६) **रामचन्द्रः। इतरानप्यागतान्सख्यादीन्भोजयेत्**। तस्मात्**प्रकृत्यान्नं** प्रकर्षेणान्नं कृत्वा **भार्यया सह**। सहेति समानोपचारे सहशब्दः। तैः सह स्वयं भार्यया सह दम्पत्योः शेषभोजनम् ।। ११३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। इतरानिति।** उक्तक्षत्रियादिव्यतिरिक्तान् **सखिबन्धु-** सहाध्यायिप्रभृतीन् **प्रीत्या** हेतुभूतया **गृहमागतान् अन्नं यथाशक्ति** संस्कृत्य भार्या भोजन-काले **भोजयेत्।** आत्मनोऽपि कालः "अवशिष्टं तु दंपती" इति वक्ष्यमाणत्वात्। गुरोस्तु कालान्वभिधानप्रभुत्वेन स्वायत्तकालत्वात्॥ ११३॥

**सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः॥**
**अतिथिभ्योऽन्वगेवैतान्भोजयेदविचारयन्॥ ११४॥**

(१) **मेधातिथिः। सुवासिन्यो** वध्वो नवोढाः स्त्रियः स्नुषा दुहितरश्च। अन्ये तु–'जीवच्छ्वशुरा जीवत्पितृकाश्च प्रसूता अपि सुवासिन्य उच्यन्ते' इत्याहुः। **अतिथि-भ्योऽन्वगेवैताननुगतानेव** भोजयेत्। प्रारब्धभोजनेष्वेवातिथिषु तत्समकालं **भोजयेत्।** अन्ये त्वग्र इति पठन्ति। **अविचारयन्।** कथमतिथिष्वभोजितेषु बाला भुञ्जत इत्येवं विचिकित्सा न कर्तव्या॥ ११४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सुवासिनी** दत्ता वा स्त्री पितृगृहस्थास्वेषु ज्ञातिषु वसतीति। **कुमाराः** पञ्चवर्षन्यूनाः। **अन्वगग्रे।** याज्ञवल्क्ये बालादीन्भोजयित्वाति-थिभोजनोक्तेः। क्वचिदग्र इत्येव पाठः॥ ११४॥

(३) **कुल्लूकः। सुवासिन्यो** नवोढाः **स्त्रियः** स्नुषा दुहितरश्च ताः **कुमारीर्गर्भिणी-श्चातिथिभ्योऽग्रे** पूर्वमेवातिथिभ्यो **भोजयेत्** कथमतिथिष्वभोजितेषु भोजनमेषामिति विचारमकुर्वन्। **मेधातिथिस्त्वन्वगेवेति** पठित्वानुगतानेवैतान्भोजयेदतिथिसमकालमिति व्याख्यायान्ये तु अग्र इति पठन्तीत्युक्तवान्॥ ११४॥

(४) **राघवानन्दः।** "न वै स्वयं तदश्नीयादि"त्यत्रातिथिभोजनपूर्वं प्राप्तं तत्र प्रतिप्रसवमाह **सुवासिनीमिति। सुवासिनीं** नवोढां स्नुषां तादृशीं दुहितरं वा। तदर्थ-मतिथौ प्रश्नोऽपि नास्तीत्याह **अविचारयन्निति**॥ ११४॥

(५) **नन्दनः।** सख्यादिभ्यः पूर्वभोजनीयानाह **सुवासिनीरिति। सुवासिनीः** स्वसृः॥ ११४॥

(६) **रामचन्द्रः। सुवासिन्यादीनेताननतिथ्यादिभ्योऽग्र एवाविचारयन्भोज-येत्**॥ ११४॥

(८) **गोविन्दराजः। सुवासिनीरिति।** जीवच्छ्वशुरपितृकाः स्त्रियः **कुमार्या-तुरगर्भिणीश्च अतिथ्यनुगतानेवाविलम्बमानो भोजयेत्** अग्रत एव (इति) पाठे अतिथिभ्यः पूर्वमेव॥ ११४॥

**अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्तेऽविचक्षणः॥**
**स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः॥ ११५॥**

(१) **मेधातिथिः। एतेभ्यो**ऽतिथ्यादिभ्यो भृत्यपर्यन्तेभ्यो **यो** भोजन**मदत्त्वा पूर्वं** प्रथम**मविचक्षणः** शास्त्रार्थमजानानो **भुङ्क्ते स श्वगृध्रै रद्यते** प्रेतः। **तां जग्धिमात्मनस्तैः** खादनं न जानाति। एवं हि स मन्यते मूढमतिरत्राहमेव भुञ्जे, एवं तु न बुध्यते यदीदृशमशनं तत्स्वशरीरस्य श्वगृध्रैरदनम्। तत्फलत्वादेवमुच्यते ॥ ११५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। एतेभ्यः** सुवासिन्यादिभ्योऽतिथिभ्यश्च। **श्वगृध्रै र्जग्धि** भक्षणं। एतद्दोषकृतं परलोके ॥ ११५ ॥

(३) **कुल्लूकः। एतेभ्यो**ऽतिथ्यादिभृत्यपर्यन्तेभ्योऽन्न**मदत्वा** व्यतिक्रमभोजनदोषमजानन्यः **पूर्वं भुङ्क्ते,** स मरणान्तरं **श्वगृध्रै रात्मनो** भक्षणं **न जानाति**। व्यतिक्रमस्येदं फलमिति वचनवैदग्ध्येनोक्तम् ॥ ११५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तवैपरीत्ये निग्रहं चाह **अदत्त्वेति। अदत्वा** अदापयित्वा भुङ्क्ते। अविचक्षण इति च्छेदः। **जग्धि** भोजनं। स इत्यतिथिविशेषणं तस्यैव प्रथमं भोजनस्य प्राप्तेः ॥ ११५ ॥

(५) **नन्दनः। एतेभ्यो**ऽतिथिसखिसुवासिन्यादिभ्यः। **अविचक्षण** इति पदसन्धिः। **जग्धिं** भक्षणम्। **भुञ्जानो** भोजनादित्यर्थः ॥ ११५ ॥

(६) **रामचन्द्रः। एतेभ्यो**ऽतिथिभ्य **अदत्वा पूर्वं** यः **भुङ्क्ते** भुञ्जानः सन्न**ात्मनः** शरीरं प्रेततः **श्वगृध्रैर्जग्धि** भोजनं न **जानाति। अविचक्षणः** स्वार्थमजानानः ॥११५॥

(७) **गोविन्दराजः। अदत्त्वेति। एतेभ्यो** भृत्यपर्यन्तेभ्य अतिथिभ्यो**ऽदत्वा** यो व्यतिक्रमदोषानभिज्ञः **पूर्वं भुङ्क्ते स भुंजानः** एतत्फलभूतं मरणसमनन्तरप्राप्तमात्मनः **श्वगृध्र**खादनं **न जानाति** ॥ ११५ ॥

**भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि ॥**
**भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ ११६ ॥**

(१) **मेधातिथिः। विप्रा** अतिथयः, **स्वा** ज्ञात्यादयः। तेषु कृतभोजनेषु तदव**शिष्टं दम्पती** जायापती अश्नीयाताम्। **पश्चात्**कदाचित्तेभ्यः कल्पयित्वा शिष्टव्यपदेशे सत्यादौ भोजनं स्यात्तदर्थमुक्तं **पश्चादिति**। दम्पत्योर्भोजनकालविधानार्थमिदम्। आद्योऽर्धश्लोकोऽनुवादः ॥ ११६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। विप्रेष्व**तिथिषु। **स्वेषु** ज्ञात्यादिषु स्वसंबन्धिषु। **भृत्येषु** पोष्येषु ॥ ११६ ॥

(३) **कुल्लूकः। विप्रेष्व**तिथिषु **स्वेषु** ज्ञातिषु **भृत्येषु** दासादिषु कृतभोजनेषु **ततो**ऽन्ना**दवशिष्टं** भार्यापती **पश्चादश्नीयाताम्** ॥ ११६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। भोजनस्य रागतः प्राप्तत्वात् तत्कालविधिमाश्रित्य दम्पत्योस्तद्विशेषमाह **भुक्तवत्स्विति। विप्रेषु** अतिथिपर्यन्तेषु। **स्वेषु** ज्ञातिषु। **भृत्येषु** गर्भदासादिष्विति। नात्रोच्छिष्टाशङ्केत्याह **पश्चादिति** ॥ ११६ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ दम्पत्योर्भोजनकालमाह **भुक्तवत्स्विति**। **स्वेषु** गर्भदासादिषु **भृत्येषु** वैतनिकेषु ।। ११६ ।।

(६) **गोविन्दराजः**। **भुक्तवत्स्विति**। अतिथ्यादिज्ञातिसंबन्धेषु दासेषु कृतभोजनेषु ततोऽन्नावशिष्टं जायापती पश्चादश्नीयाताम् ।। ११६ ।।

**देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्च देवताः ।**
**पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ।। ११७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अनुवादमात्रमिदं पूर्वस्य पञ्चयज्ञानुष्ठानविधेर्गृहस्थभोजनकालस्य च। **अन्ये** त्वर्थान्तरविधानमाहुः वर्णयन्ति। पूर्वत्र जायापत्योरेककालमवशिष्टभोजनं विहितम्, अनेन स्त्रियाः अपोह्य पुंस एव विधीयते। ततश्च पूर्वं भृत्येभ्यः प्राक् पत्युर्भार्या भुञ्जीत। एवं वा कृत्वा भोजयेत्। एतदप्युपपन्नं भविष्यति। इतरथा तैः सह भार्या न भुञ्जीतेत्यर्थकल्पनायां यथाश्रुतपदान्वयभङ्गः स्यात्। यत्तु **महाभारते** दर्शनं तद्दर्शनमेव न विधानं; विधौ विकल्पयिष्यते।

तदयुक्तमनुवादत्वादस्य। न च गृहस्थ इत्येकवचनविरोधः, सहाधिकाराज्जायापत्योः। तत्र च सहार्थस्य प्राधान्यान्न द्विवचनापत्तिः। यथा "ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत" इति सत्यपि भार्यया सहाधिकारे नैकवचनं विरुध्यते। तत्कस्य हेतोः?। एको हि तत्र प्रधानमपरो हि गुणभूतः। न च गुणः स्वसंख्यामुपजनयितुं शक्नोति। अतः प्रधानस्यैकसंख्यत्वात्सत्यपि पत्यर्थानुप्रवेशे एकवचनमेव युक्तम्। एक एव गृहस्थशब्दः पत्न्यां वर्तते, स च सहविवक्षायाम्। सा चैकबुद्धिविषयत्वेन प्रधानयोर्गुणयोर्वा। तस्मान्न पत्न्याः प्राक् पुंसो भोजनम्। अतः स्थितमनुवादोऽयं, प्रतिपत्तिदार्ढ्याय।

येऽपि **गृह्याश्च देवताः पूजयेदि**त्यर्थवादवचनं देवतापदं मत्वा पूजयेदिति सम्बन्धाद्गौणमेवार्चाविधित्वं समर्थयन्ते। न हि मुख्यस्य देवतार्थस्य पूज्यत्वसंभवो, यजिस्तुतिसम्बन्धेनैव देवतात्वस्य मुख्यत्वात्। तथा च 'गृह्या' इत्याह। गृहे भवा 'गृह्याः'। ताश्च प्रतिकृतय एव। न हि यागसंप्रदानभूतानां गृहसम्बन्धितासिद्धिः। तेषामपि देवतार्थो गौणो न पूजार्थः। कुत एतत्? गृहस्थस्य या यष्टव्यास्ता गृह्या इत्युपपद्यते ।। ११७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **गृह्या** देवताः भूतानि ।। ११७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। गृह्याश्च देवता इत्यनेन भूतयज्ञ उक्तः। पञ्चयज्ञानुष्ठानस्य 'अवशिष्टं तु दम्पती'त्यनेन शेषभोजनस्य च विहितत्वात्। वक्ष्यमाणदोषकथनार्थोऽयमनुवादः। अथवा देवानित्यनेनैव भूतयज्ञस्यापि संग्रहः। गृहे भवा **गृह्या देवताः पूजयित्वेति** वासुदेवादिप्रतिकृतिपूजाविधानार्थत्वमस्य ।। ११७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एतदेव सार्थवादं प्रमाणयति **देवानिति द्वाभ्यां**। गृहे भवा **गृह्या देवाः** श्रीवास्तुदेवादयः भूतानि वा। एतेन वास्तुभूतबलिरुक्तः ।। ११७ ।।

(५) नन्दनः। गृहस्थेन यज्ञशिष्टाशनं भोक्तव्यमित्याह देवानृषीनिति ।। ११७ ।।

(६) रामचन्द्रः। गृह्याश्च देवताः 'पूर्वं गृहस्थ एव देवादीन्पूजयित्वा गृहस्थः' पश्चाच्छेषभुग्भवति ।। ११७ ।।

(७) गोविन्दराजः। देवानिति। गृहे भवा गृह्या इत्यन्तेन भूतयज्ञ उक्त इति। वक्ष्यमाणप्रत्यवायकथनार्थोऽयमनुवादः ।। ११७ ।।

**अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।।**
**यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ।। ११८ ।।**

[यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।। तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ।।]

(१) मेधातिथिः। पापं केवलं स भुङ्क्ते, हृदये निधत्ते, गृह्णाति, नान्नस्य मात्रामपि, यः पचेत्पाकं कारयेदात्मकारणादात्मानमुद्दिश्य—'क्षुधितोऽहमिदं वा मह्यं रोचत इति तदेव पच्यताम्'। तस्मादनातुरेण नात्मार्थमन्नं पाचनीयम्। आतुरस्य तु शरीरधारणं येनोपायेन भवति विध्यन्तरातिक्रमेणापि तस्याश्रयणं युक्तम्—"सर्वत एवात्मानं गोपायेत्" इति वचनात्। एवं केचिदस्यार्थमाहुः।

एतदयुक्तं, स्मृत्यन्तरविरोधात्, एवं ह्याहुः— 'यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता' ।।

'दयितमिष्टं' स्पृहणीयम्। यदि च न पच्येत कुलस्तादृशस्य दानसंभवः। तस्मादयमस्यार्थः तदुद्देशस्तावन्नित्यस्य पाकस्य नैव विद्यते। सुहृत्स्वजनादिष्वागतेषु तदुद्देशः। अन्यथा त्वनुद्दिष्टविशेषपाके अतिथ्यादिभ्यो दानं विधीयते। तेनैतदुक्तं भवति—य एतेभ्योऽदत्त्वा भुङ्क्ते तस्यायं दोषः। अथवा सर्वस्मिन्नतिथ्यादिभिर्भुक्ते' नात्मार्थं पुनः पाकः कर्तव्यः। तथा च वसिष्ठः (११।११–१२) 'शेषं दम्पती भुञ्जीयाताम्। सर्वोपयोगे न पुनः पाकः।' यज्ञशिष्टाशनम्। पूर्वस्य शेषभोजनस्य प्रशंसैव। 'यज्ञो' ज्योतिष्टोमादिः, 'शिष्ट'मुपयुक्तशेषं, तस्य चैतदशनम्। तत्तुल्यफलं, यत्सतां शास्त्रानुष्ठानपराणां गृहस्थानामतिथ्यादिभुक्तशिष्टं विधीयते ।। ११८ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। अघं पापहेतुं। आत्मकारणादात्ममात्रकारणात्। एतदन्नं सतां यज्ञशिष्टाशनं पञ्चमहायज्ञावशिष्टत्वेनाशनीयं विधीयते वेदे ।। ११८ ।।

(३) कुल्लूकः। यस्त्वात्मार्थमेवान्नं पक्त्वा भुङ्क्ते देवादिभ्यो न ददाति स पापहेतुत्वात्पापमेव केवलं भुङ्क्ते नान्नम्। तथाच श्रुतिः 'केवलाघो भवति केवलादी''ति यस्माद्यदेव पाकयज्ञावशिष्टमशनमन्नमन्यत् एतदेव साधूनामन्नमुपदिश्यते इति ।। ११८ ।।

(४) राघवानन्दः। आत्मकारणात् स्वभोगहेतोः इज्यते अयमिति देवातिथ्यादिर्यज्ञः। सतां साधूनां। अन्नं अदनीयं विधीयते अन्नस्य रागविषयत्वेऽपि एवंप्रकारकंविधेर्विषयः ।। ११८ ।।

(५) **नन्दनः** । अयज्ञशिष्टाशनं दोषाशनमशास्त्रविहितत्वादित्याह **अघमिति** । **यज्ञशिष्टं** पञ्चमहायज्ञशिष्टम् ।। ११८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **यः पचत्यात्मकारणात्स केवलमघं भुङ्क्ते** । **यज्ञशिष्टाशनं** पाकयज्ञज्योतिष्टोमादिशिष्टान्नं **सतामेतदन्नं** अशनाय योग्यं **विधीयते** ।। ११८ ।।

(७) **गोविन्दराजः** । **अघमिति** । **य** आत्मार्थमेव **पचति** न देवादिभ्यो ददाति स पापहेतुत्वात् पापमेव **केवलं भुंक्ते** नान्नलेशमपि यस्मात् यदेतत्पाक**यज्ञशिष्टाशन** साधूनामन्नमुपदिश्यते ।। ११८ ।।

**राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् ।।**
**अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरान् पुनः ।। ११९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । अतिथिपूजाप्रसङ्गे नान्येषामपि केषांचित्पूज्यानां गृहागतानां पूजाविशेषो विधीयते । **राजा**ऽभिषिक्तो, न क्षत्रियमात्रम् । अतिमहती ह्येषा पूजा, न तां सर्वः क्षत्रियोऽर्हति । न हि स्नातकगुरुभ्यां तस्य सहोपदेशो युक्तः । पूजासाम्यं गुरुणा न तस्य युक्तम् । लिङ्गदर्शनाच्च । "तद्यथैवान्यो मनुष्यराज आगत" इत्यातिथ्येष्टिब्राह्मणम् गोवधो मधुपर्कत्रिधावुक्तो गोघ्नोऽतिथिरिति पुरुषराजविषयं दर्शयति । तेन क्षत्रियेऽक्षत्रिये वा जनपदेश्वरे पूजेयं प्रयोक्तव्या । शूद्रे तु नास्ति मन्त्रवत्त्वम् ।

"ननु च शूद्रस्य मन्त्रोच्चारणं निषिद्धम् । न पुनः शूद्रसंप्रदानके कर्मणि ब्राह्मणादीनाम्" । नैष दोषः । अघ्र्याणामपि "भूतेभ्यस्त्वा" इत्यादिमन्त्रोच्चारणमस्ति ।

"ननु च **महाभारते** शूद्रकर्तृकमपि मधुपर्ककर्म श्रूयते—

'तदर्हमासनं चैव यथावत्प्रत्यवेदयत् ।

मधुपर्कं च गां चैव तस्मै भगवते स्वयम् ।।

'भगवते' वासुदेवाय विदुर इति । तत्साधने दधनि भक्त्या मधुपर्कशब्दः प्रयुक्तः । तादर्थ्यात्तच्छब्दो भवति–'आयुर्वै घृत'मितिवत् । राजशब्दस्तावज्जनपदेश्वरवचनो न क्षत्रियमात्रे वर्तते । **प्रियो** जामातेत्याहुः ।

**स्नातको** विद्याव्रताभ्यामुभाभ्याम् । अन्यथार्त्विग्गुरवः सर्वे स्नातका एव । आश्रमान्तरस्थानां भैक्षचर्या विहिता, न त्वतिथिधर्मेण भोजनम् । अथवाऽचिरनिर्वृत्तवेदाध्ययनः 'स्नातको' गृह्यते । एतानर्हयेत्पूजयेत् । **मधुपर्क**शब्दः कर्मनामधेयम् । गृह्यात्तस्य स्वरूपावगमः । **परिसंवत्सरानिति** राजादिपूज्यविशेषणम् । परिगतोऽतिक्रान्तः संवत्सरो येषां तान् । यदि संवत्सरेऽतीते आगच्छन्ति तदा मधुपर्कार्हा अर्वाङ्न ।

केचिदेवं व्याचक्षते– यदि संवत्सरादर्वागागच्छन्ति तदाऽनतीतेऽपि संवत्सरे प्रथमपूजायाः पुनर्लभन्ते पूजाम् । अन्ये त्वाहुः– सांवत्सरिकी तेषां पूजा, न यावदा-

गमनम्। अस्मिन्पक्षेऽर्वागागमनं न पूजाप्रतिबन्धकम्। पाठान्तरं **परिसंवत्सरादिति**। यावदेव संवत्सरं तावत्परिसंवत्सरात्तत ऊर्ध्वं पुनः पूज्या इत्यर्थः ॥ ११९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **राजा** स्वदेशनृपतिः क्षत्रियः **स्नातको** विद्याव्रतस्नातकः **गुरु**राचार्यः उपाध्यायो वा **प्रियो** मित्रं **परिसंवत्सरा**त्संवत्सरं विहायातिवाह्य संवत्सरादूर्ध्वं स्वगृहागमने **पुनर्मधुपर्केणार्हयेत्**। संवत्सरमध्ये तु नावृत्त्या मधुपर्कः ॥ ११९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अतिथिपूजाप्रसङ्गेन राजादीनामपि गृहागतानां पूजाविशेषमाह **राजेति**। राज्याभिषिक्तः क्षत्रियो राजा। **ऋत्विग्**यज्ञे येन यस्यार्त्विज्यं कृतम्। **स्नातको** विद्याव्रताभ्याम्। **प्रियो** जामाता। राजादीनेतान्गृहागतान्सप्त गृह्योक्तेन **मधुपर्काख्येन** कर्मणा पूजयेत्। परिसंवत्सरादिति संवत्सरं वर्जयित्वा तदूर्ध्वं गृहागतान्पुनर्मधुपर्केण पूजयेत्। 'पञ्चम्यपाङ्परिभि'रिति सूत्रेण वर्जनार्थपरियोगेनेयं पञ्चमी। अत एवैतत्सूत्रव्याख्याने **जयादित्ये**नोक्तं 'अपेन साहचर्यात्परेर्वर्जनार्थस्य ग्रहणमि'ति। **मेधातिथिस्तु** परिसंवत्सराणिति पठित्वा परिगतो निष्क्रान्तः संवत्सरो येषां तान्पूजयेदिति व्याख्यातवान्। उभयत्रापि पाठे संवत्सरमध्यागमने न मधुपर्कार्हता ॥ ११९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। गृहागतानां पूजाप्रकारं कथयंस्तत्कालविशेषमाह **राजेति**। **स्नातको** नवोढापतिः। **प्रियो** जामाता। **परिसंवत्सरान्मधुपर्केण पूजयेदि**त्यन्वयः। तदभ्यन्तरे मधुपर्केण नार्हणम् ॥ ११९ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ मधुपर्कार्हानाह **राजर्त्विगिति**। **स्नातको** गृहस्थः। **प्रियः** सखा। परिगतः संवत्सरो येषां ते परिसंवत्सराः, परिसंवत्सराश्च त आगताश्चेति **परिसंवत्सरागताः** ॥ ११९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्रियः** जामाता **स्नातको** विद्यास्नातकः व्रतस्नातको वा तान्प्रति संवत्सरात्पुनः **पुनर्मधुपर्केणार्हयेत्**। संवत्सरमध्यागमने न मधुपर्कार्हा भवन्तीत्यर्थः। परिसंवत्सरेति पाठे परिशब्दो वर्जनार्थ इति ॥ ११९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अतिथिपूजाप्रसङ्गेनायं राजादीनां पूजाविशेष उच्यते—**राजर्त्विक्स्नातकगुरुप्रियश्वशुरमातुलानिति**। जनपदाभिषिक्तं क्षत्रियं गृहागतं याचकं **ऋत्विजं** यःकश्चिद्गृहस्थो द्विजातिः विद्याव्रतस्नातकं शिष्यो **गुरुं** श्वशुरो जामातरं जामाता **श्वशुरं** भागिनेयो **मातुलं मधुपर्काख्येन** गृह्योक्तरूपेण कर्मणा पूजयेत्। परिमितात् संवत्सरात् संवत्सरेऽतीते पुनर्गृहागतानेतान् पूजयेत्। ये तु स्नातकमाचार्यः पूजयेत् तं प्रतीतमित्युक्तत्वादित्याहुः, तेषां परिवत्सरानिति स्नातकविशेषणं कथं स्यात्? ॥ ११९ ॥

**राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थिते ॥**
**मधुपर्केण सम्पूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥ १२० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यज्ञे निमित्तेऽर्वागपि संवत्सरात्प्राप्त्यर्थोऽयमिति केचित्। अन्ये तु पूर्वस्यैव राजश्रोत्रिययोरुपसंहारमाहुः। अनुपसंहारे हि **नत्वयज्ञ** इति नोपपद्यते।

अत्र **श्रोत्रियो** यः स्नातकः प्रागुक्तो, यदि वा ऋत्विगेव। तस्य हि यज्ञकर्मणि प्रारिप्स्यमाने मधुपर्कदानं विहितम्। यद्यप्यसकृत्संवत्सरस्य सोमेन यजेत, कृतार्घ्या एवैनं याजयेयुः। एवं क्लृप्तमूलैषा स्मृतिर्भविष्यति। इतरथा कल्प्येत मूलम्।

अन्ये तु सर्वानृत्विगादीञ्छ्रोत्रियशब्देन निर्दिष्टान्मन्यन्ते। तथा चाविशेषेण गौतमेन पठितम् (५। २५, २७।) "ऋत्विगाचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानामुपस्थाने मधुपर्क" इत्युक्त्वा "यज्ञविवाहयोरर्वाग्" इति पठितत्वात्। अतश्च सर्वेषामेवार्घ्याणां यज्ञे निमित्तेऽर्वागपि संवत्सरादर्हता स्यात्। **न त्वयज्ञ** इति च प्रतिषेधोऽर्वाक्संवत्सरान्नोर्ध्वमित्येवं ज्ञेयः।

इह द्वितीये पादेऽनेकधा पाठप्रतिपत्तिः। केचित्पठन्ति 'तते यज्ञ उपस्थिता'विति। तेषामयमर्थः -'तते' प्रारब्धे यज्ञे यदि प्राप्तौ भवतो निमन्त्र्यानीतौ, तदेयं मधुपर्कक्रिया तयोः। न पुनः प्रारम्भमाणम्।

एष पक्षः कैश्चिद्दूष्यते। दीक्षितो न ददातीति दीक्षितस्य सर्वदानप्रतिषेधान्मधुपर्कदानमनुज्ञायमानं तद्विरुद्धं स्यात्। न च शक्यं वक्तुं—"दानमेतन्न भवति, अर्हयेदिति नोदनात् पूजैषा विधीयते"। यतोऽस्ति मधुपर्के दधिदानं मांसभोजनादिदानं च। अथोच्यते 'स्वयमेव तत्परकीयं भुज्यत' इति। एवं सति स्तेयदोषः स्यात्। "वचनान्नेति" चेदस्त्येव तर्हि ददात्यर्थः। चोदितं च ददातिः, 'मधुपर्कं च दद्यादिति'। तस्माद्विरुद्धम्। "दीक्षितो न ददातीत्यनेन स्याद्विरोधः यदि यज्ञशब्दः सोमयागेष्वेव वर्तेत। दर्शपूर्णमासादयोऽपि यागाः, तद्विषयोऽयं विधिर्भविष्यति"—नैतद्युक्तम्; एवं सति समाचारविरोधः। न हि शिष्टाः सोमयागेभ्योऽन्यत्र केचिदर्घ्याय मधुपर्कमाहरन्ति— आचारो वेदादरः। अतोऽयमेव पाठो युक्तः 'यज्ञकर्मण्युपस्थित' इति। प्रारभ्यमाणे यज्ञे आगतं शिष्टा मधुपर्केण पूजयन्ति, न प्रवृत्तयज्ञः। अतश्चैतदपि न विचारयामः। सामान्यतः प्राप्तस्य दानस्य भवतु निवृत्तिर्न पुनस्तद्विषयतयैव श्रुतस्य। यज्ञश्चासौ कर्म च तद्यज्ञकर्म, तस्मिन्नुपस्थिते प्राप्ते॥ १२०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र **राजा**ऽन्यदेशनृपतिः क्षत्रिय एव **श्रोत्रियो** विद्यामात्रस्नातः। एतौ संवत्सरादूर्ध्वमपि **यज्ञकर्मण्येवो**पस्थितौ मधुपर्कार्हौ न त्वेवमेवेति स्थितिर्नियमः॥ १२०॥

(३) **कुल्लूकः**। राजस्नातकयोः पूजासंकोचार्थमाह **राजेति**। राजस्नातकौ संवत्सरादूर्ध्वमपि यज्ञकर्मण्येव प्राप्तौ **मधुपर्केण** पूजनीयौ, नतु यज्ञव्यतिरेकेण। जामात्रादयस्तु संवत्सरादूर्ध्वं यज्ञं विनापि मधुपर्कार्हाः, संवत्सरमध्ये तु सर्वेषां यज्ञविवाहयोरेव मधुपर्कः। तदाह **गौतमः** 'ऋत्विगाचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलादीनामुपस्थाने मधुपर्कः, संवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोरर्वाग्राज्ञः श्रोत्रियस्य च'॥ १२०॥

(४) **राघवानन्दः**। तेष्वेव विशेषमाह **राजा चेति**। अनयोर्यज्ञकर्मण्यागमने संवत्सरेऽपि मधुपर्कः। तथा च **गौतमः** 'ऋत्विगाचार्यश्वशुरमातुलादीनामुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे

पुनर्यज्ञविवाहयोरर्वाक् राज्ञः श्रोत्रियस्य चेति। **अर्वाक्** संवत्सरात्। **श्रोत्रियोऽत्र** पूर्वोक्तः स्नातकः ॥ १२० ॥

(५) **नन्दनः।** **स्थितिः** सिद्धान्तः ॥ १२० ॥

(६) **रामचन्द्रः। च** पुनः **राजा** ग्रामादागतः सन् **श्रोत्रियः यज्ञकर्मणि** दर्शपौर्णमासस्यापि वा संवत्सरादूर्ध्वम**उपस्थितौ** प्राप्तौ **मधुपर्केण** संपूज्यौ पूज्यौ भवतः। **अयज्ञकाले** अनिमन्त्रितौ न पूज्यौ। **इति स्थितिर्मर्यादा** ॥ १२० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** राजस्नातकयोः संकोचायेदमाह **राजेति।** राजस्नातकौ **यज्ञकर्मण्येव** सम्प्राप्तौ **मधुपर्केण पूजनीयौ।** नत्वयज्ञे संवत्सरादूर्ध्वमपीति शास्त्रमर्यादा। संवत्सरात्पुनः अर्वाक् यज्ञेऽपि न पूज्यौ पूर्ववाक्योपरि संवत्सरादित्युपादाने। अत्र च नतु यज्ञ इत्युपादानात् राजस्नातकपूजासङ्कोचार्थत्वमस्य प्रतीयते ॥ १२० ॥

**सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥**
**वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ १२१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** उक्तः प्रथमः। इदानीं द्वितीयः पाक उच्यते। **सायं** दिनान्तः प्रदोषस्तत्र सिद्धस्यान्नस्य सर्वः पाञ्चयज्ञिकविधिरावर्तनीयो ब्रह्मयज्ञपितृयज्ञवर्जम्। "ननु च बलिं हरेदित्येतावच्छ्रुतम्। बलिहरणं च प्रसिद्धया भूतयज्ञ एव। तत्र कुतोऽग्नौ होमोऽतिथ्यादिदानं च। अथ—'**वैश्वदेवं हि नामैतदिति** वैश्वदेवशब्दः सर्वार्थतां प्रतिपादयति। विश्वेषां देवानामिदं विधीयते। **सायंप्रातर्यादृशं** प्रातस्तादृशमेव सायमेतदर्थमेव प्रातःशब्दः। अन्यथा प्रातर्विहितमेव, किमनेन सायंप्रातर्विधीयते?।' एवं तर्हि ब्रह्मयज्ञपितृयज्ञावपि कर्तव्यौ।

उच्यते। **अन्नस्य सिद्धस्येति** वचनाद्यदन्नसाध्यं तदेव कर्तव्यम्। न त्वध्ययनसाध्यो ब्रह्मयज्ञो नाप्युदकसाध्यं तर्पणम्। एवं च सम्बन्धः क्रियते—"सिद्धस्यान्नस्य बलिं हरेत् एतद्वैश्वदेवाख्यं कर्मान्नस्य सिद्धस्योभयोः कालयोर्विधीयते'। अन्नशब्दाद्वैश्वदेवशब्दश्चैवं व्याख्यायते।

**अमन्त्रम्।** मन्त्रशब्देन देवतोद्देशशब्दवान् स्वाहाकारान्तः'अग्नये स्वाहे'त्येवमादिर्निषिध्यते। न ह्यन्ये मन्त्रा वैश्वदेवेषु विनियुक्ताः। तेषु च मन्त्रत्वं प्रशंसयोच्यते। न तु स्वाध्यायेऽपठितानां मन्त्रत्वमस्ति। स्वाध्यायैकदेशः कश्चिदृग्यजुःसामाम्नायात्मको वेदाध्यायिभिर्मन्त्र इति व्यवह्रियते। व्यवहारतश्च पदार्थावगमनम्। न च यैः शब्दैर्बलिहरणादि क्रियते ते कुत्रचित्पठ्यन्ते। केवलम्'अग्न्यादिभ्यो देवेभ्यो होमं कुर्यादिति' श्रुतेः। 'स्वाहाकारेण वा वषट्कारेण वा देवेभ्यो हविः संप्रदीयत' इति वाक्यान्तरेण सर्वहोमेषु स्वाहाकारो विहितो, याज्यान्ते वषट्कारो नियमितो—'याज्यायां वषट्करोतीति'। स्वाहाकारशब्दयोगे चतुर्थी स्मर्यते। अतो यागे देवताया उद्देश्यत्वात् उद्देश्यत्वं च देवतायाः शब्दावगम्यरूपत्वात् शब्देनैवोचितत्वादियं घटना क्रियते "अग्नये स्वाहे"त्यादि।

"यद्येवं तेषां निषेधः, कथं तर्हि यागनिर्वृत्तिः ? । न हि 'तुभ्यमिदं न मदीयमिति' यावदुद्देशो न कृतस्तावद्यागस्वरूपनिर्वृत्तिः। न हि त्यागः केवलो याग उद्देशशून्यः।'

सत्यम्। शब्दे निषिद्धे मनसोद्देशं देवतायाः पत्नी करिष्यति। यथा शूद्रो नमस्कारमुच्चारयति। 'अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारोऽमन्त्र' (गोतम० १०।६४) इति नमस्कारेण प्रत्याम्नातः शूद्रस्य मन्त्र इति नमस्कारोऽनुज्ञातोऽस्य, न देवतापदम्। तत्र च देवताया विनियोगात् सिद्धिरित्युक्तम्। इह भवन्तस्त्वाहुः स्वाहाकारो नमस्कारेण प्रत्याम्नातः शूद्रस्य, देवतापदं त्वनिषिद्धम्।

"अथ सायंवैश्वदेवहोमे कः कर्ता ?" उक्तं पत्न्येव सन्निधानाद्बलिहरणवदमन्त्रकं करिष्यतीति ।। १२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अत्र वैश्वदेवहोमे पत्न्या कृते नक्तंचरेभ्य इति **वैकस्मिन्बलौ** दत्ते दैवसिकबल्यन्तरस्थाने पत्न्या अमन्त्रकैकबलिदानमुक्तम्। **वैश्वदेवं हीति। वैश्वदेवं** विश्वेदेवाः सर्वे देवा इन्द्रादयो विश्वेदेवान्तास्तेभ्यः कार्यं बलिकर्म सायंप्रातर्विधीयते, न तु ब्रह्मयज्ञपितृयज्ञयोरिवास्यापि दिवैव क्रिया; अतः सायं पत्न्यैव नक्तंचरव्यतिरिक्तभूतयज्ञस्थाने देवता मनसोद्दिश्य कार्यमेतदित्यर्थः ।। १२१ ।।

(३) **कुल्लूकः।** दिनान्ते **सिद्धस्यान्नस्य पत्न्यमन्त्रं** बलिहरणं कुर्यात्। इन्द्राय नम इति मन्त्रपाठवर्जम्। मानसस्तु देवतोद्देशो न निषिध्यते। यत **एतद्वैश्वदेवं नामान्न**साध्यहोमबलिदानातिथिभोजनात्मकं तत्सायंप्रातर्गृहस्थस्योपदिश्यते ।। १२१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** "वैश्वदेवस्य सिद्धस्ये"त्यत्र बलिकर्मत्वावच्छेदेऽधिकारित्वेन प्राप्तं पतिं पर्युदस्यति **सायमिति**। तथा च देवता मनसैवोद्दिश्येत्याह **पत्न्यमन्त्रमिति।** सायं बलिर्मास्त्विति चेन्नेत्याह **वैश्वदेव** इति ।। १२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः। सिद्धस्यान्नस्य सायं** संध्याकाले **पत्नी अमन्त्रवद्बलिं** हरेत् दद्यात्। बलिहरणं भूतयज्ञः। विश्वेषां देवानामिदं कर्म **वैश्वदेवं** नामैतत्**सायंकाले प्रातः**काले**ऽपि विधीयते।** इति नित्यश्राद्धम् ।। १२१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। सायमिति।** दिनान्तेऽन्नस्य **सिद्धस्य** 'इन्द्राय नम' इत्येवमादि**मन्त्रवर्जं** मनसोद्देशेन **पत्नी** बलिहरणं भूतयज्ञाख्यं कुर्यात्। यस्मादेवं नाम यज्ञाद्यात्मभोजनपर्यन्तं एतत् सायंप्रातः गृहस्थस्योपदिश्यते ।। १२१ ।।

**पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान् ।।**
**पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ।। १२२ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** वैश्वदेविकाद्वैकल्पिकाच्छ्राद्धान्नित्यमिदं श्राद्धान्तरमुच्यते। **चन्द्रक्षये**ऽमावास्यायाम्। तत्रापि न यस्यां कस्यांचन वेलायां। किं तर्हि ? **पितृयज्ञं निर्वर्त्य।** श्रौतो यः पिण्डपितृयज्ञस्तं कृत्वा। एवं च यस्तस्य कालः स एवास्यापि लभ्यते। तदुक्तम्'अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञ' इति। अनाहिताग्नेरप्यौपासनयोगोऽस्त्येव। तथा चाह 'एवम-

नाहिताग्निर्नित्ये श्रपग्नित्वे' त्यादि। **अग्निमान्** वैवाहिकेनाग्निना तद्वान्, दायकालाहृतेन वा। **विप्र**ग्रहणमविवक्षितम्। क्षत्रियवैश्ययोरपीष्यते। एवं स्मृत्यन्तरेषु ह्यविशेषणोक्तम्। **पिण्डान्वाहार्यकमिति**। नामधेयमिदमस्य श्राद्धस्य। पिण्डानामनु पश्चादाह्रियतेऽनुष्ठीयते, तत् 'पिण्डान्वाहार्यकं' भवति। मासश्चानुमासश्च, तयोर्भवं **मासानुमासिकम्**। मासानुमासशब्दसमुदायो मासगतां वीप्सामाचष्टे। मासि मासि कर्तव्यमित्युक्तं भवति। अतश्च नित्यतासिद्धिः। यद्यप्यनुमासशब्दाद्वीप्सावगतिर्भवति, मासशब्दोऽतिरिच्यते, तथापि पद्यग्रन्थे गौरवं नाद्रियते। **श्राद्ध**मित्येतदपि नामैव कुर्यादिति विधिः॥ १२२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पितृयज्ञं** पिण्डपितृयज्ञं **अग्निमान्**। स्मार्तेन श्रौतेन वा। पिण्डेभ्योऽल्पिकां मात्रामन्वाहृत्य ब्राह्मणा अत्र श्राद्धे भोज्यन्त इति पिण्डान्वाहार्यकं मासानुमासात्तु कर्तव्यात्पिण्डपितृयज्ञादनुमासिकं मासि मासि कार्यं पितृकृत्यं मासानुमासिकमिति प्रसंगाद्व्यवहारानुगुणं नामद्वयमुक्तम्। **विप्र** इति क्षत्रियवैश्यकार्यस्य पिण्डपितृयज्ञात्प्रागपि करणे न दोष इत्येतदर्थम्। अत एव उत्तरश्लोके तदामिषेणेति आमिषनियमोक्तिरपि क्षत्रियवैश्यविषयैव। अत एव हि श्लोकान्तरप्रयत्नो विप्रपदस्य तत्रान्वयो मा भूदिति। अत एव च **पुलस्त्यः** 'मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययो'रित्याह॥ १२२॥

(३) **कुल्लूकः**। 'श्राद्धकल्पं च शाश्वत' मित्यनुक्रमणिकायां प्रतिज्ञातं श्राद्धकल्पमुपक्रमते **पितृयज्ञमिति**। साग्निरमावास्यायां पिण्डपितृयज्ञाख्यं कर्म कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्। पितृयज्ञपिण्डानामनु पश्चादाह्रियत इति पिण्डान्वाहार्यकं, श्राद्धं मासानुमासिकं मासश्चानुमासश्च तयोर्भवं प्रतिमासं कर्तव्यमित्यर्थः। अनेनास्य नित्यत्वमुक्तम्। विप्रग्रहणं द्विजातिपरं, त्रयाणां प्रकृतत्वात्॥ १२२॥

(४) **राघवानन्दः**। 'श्राद्धकल्पं च शाश्वत'मित्युक्तम्। तत्र साग्निकस्य कृत्यान्तरमाह **पितृयज्ञं** त्विति। **पितृयज्ञं** 'सायाह्ने पिण्डपितृयज्ञैश्चरन्ती'ति श्रुत्युक्तं कर्म। **चन्द्रक्षये** चन्द्रारम्भककलानां क्षयाक्रान्तान्त्यकलायाममावास्यायां **निर्वर्त्य** कृत्वा। सर्वश्राद्धप्रकृतिपार्वणश्राद्धस्य पिण्डपितृयज्ञानन्तरभावित्वं नाम्ना प्रथयति **पिण्डान्वाहार्यकमिति**। पिण्डं पिण्डपितृयज्ञं तदनु आहार्यं कर्तव्यता यस्य तत्। **मासानुमासिकं** मासं मासं प्रति साध्यम्॥ १२२॥

(५) **नन्दनः**। एवमहरहःकर्तव्यत्वेन पञ्चमहायज्ञा उक्ताः। इदानीं प्रतिमासममावास्यायां कर्तव्यस्य मासिकाख्यस्य श्राद्धस्य विधिमुपदिदिक्षन्नाहिताग्नेस्तत्र विशेषं तावदाह **पितृयज्ञमिति। अग्निमा**नाहिताग्निः। **विप्रो** द्विजः। **चन्द्रक्षये**ऽमावास्यायाम्। **पितृयज्ञं** श्रौतं पितृपिण्डपितृयज्ञं निर्वर्त्य। **पिण्डान्वाहार्यकम्**। पितृयज्ञदत्तानां पिण्डानामनु पश्चादाहार्यं प्रयोज्यम्, आहार्यमेवाहार्यकर्म। **मासानुमासिकम्**। प्रतिमासिकं कुर्यात्॥ १२२॥

(६) **रामचन्द्रः**। अथ श्राद्धप्रकरणम्। **अग्निमान् विप्रः चन्द्रक्षये अमायां पितृयज्ञ**पिण्डा**न्निर्वर्त्य** समाप्य **मासानुमासिकं पिण्डान्वाहार्यकं** स्वपिण्डानां पश्चात् आह्रीयतेऽनुष्ठीयते तत्पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात्। **मासानुमासिकं** च॥ १२२॥

(८) **गोविन्दराजः। पितृयज्ञमिति।** आहिताग्निरमावास्यायां श्रौतं पिण्डयज्ञाख्यं कर्म कृत्वा, 'औपसदाग्निरपि एवमनाहिताग्निर्नित्ये श्रपयित्वे'ति सूत्रवचनात् सूत्रोक्तं तदेव कृत्वा मासि भवं पिण्डपितृयज्ञाङ्गभूतानां पिण्डानामनु पश्चात् आह्रियत इति **पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं** कुर्यात्। विप्रग्रहणं द्विजप्रदर्शनार्थम्, त्रयाणां प्रकृतत्वात्। १२२ ॥

**पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ॥**
**तच्चामिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ १२३ ॥**

**[न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमातृपितृको द्विजः।**
**इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः]**

(१) **मेधातिथिः। अन्वाहार्यं** दर्शपौर्णमासयोः श्रौतयोर्दक्षिणर्त्विजाम्। यदेतन्मासिकं श्राद्धममावास्यायामेतत्पितॄणाम् 'अन्वाहार्यम्'। यथाऽन्वाहार्येणर्त्विजः प्रीयन्ते तद्वत्पितरः श्राद्धेन। एतेन पित्रर्थतां श्राद्धस्याह। यथाऽग्न्यादिदेवतार्थो दर्शादियाग एवं न श्राद्धे पितरः, किं तर्हि? तदुपकारार्थमेव श्राद्धम्। तथा च **पितॄणामिति** षष्ठी। केवले हि देवतात्वे चतुर्थ्या विरहायोगः। पक्षे पाठान्तरमर्थान्तरं च 'पिण्डानां मासिकमिति'।

**अन्वाहार्यं विदुर्बुधाः।** अनेनापि पितृयज्ञवदवश्यकर्तव्यतोच्यते। न त्विदमङ्गम्। तदेत**दामिषेण** मांसेन **कर्तव्यम्। "प्रशस्तेना**प्रतिषिद्धेन विशेषविहितेन वा। द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन" (३।२६८) इति यद्वक्ष्यति। अयं च मुख्यः कल्पः। तदभावे दधिघृतपयोऽपूपादि विधायिष्यते। मांसं च व्यञ्जनम्, भक्तादभोज्यस्य। न पुनरेतदेव केवलं भोज्यं येन वक्ष्यति "गुणांश्च सूपशाकाद्यान्" (३।२२६) तथा "यावन्तश्चैव यैश्चान्नैरिति" ॥ १२३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पिण्डानामिति।** पिण्डपितृयज्ञियपिण्डानामनु पश्चादहार्यं यच्छाद्धं **तन्मासिकम्।** मासि मासि कर्तव्यत्वान्मासिकसंज्ञमपि विदुः। **प्रशस्तेन** श्राद्धयोग्येन। एवं च श्राद्धान्तरेषु नामिषनियम इति दर्शितम् ॥ १२३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** इदानीं नामनिर्वचनेनोक्तमेव पितृयज्ञानन्तर्यं द्रढयति **पितॄणामिति।** इदं मासिकं प्रतिमासभवं श्राद्धं यस्मात्पितृयज्ञपिण्डानामनु पश्चादाह्रियते तेन पिण्डान्वाहार्यकमिदं पण्डिता जानन्ति। ततो युक्तं पितृयज्ञानन्तर्यमस्य। **तच्चामिषेण** वक्ष्यमाणमांसेन **प्रशस्तेन** मनोहरेण पूतिगन्धादिरहितेन **प्रयत्नतः** कर्तव्यम्। पिण्डानां मासिकं श्राद्धमिति वा पाठः, पिण्डानां पितृयज्ञपिण्डानाम्। शेषं तुल्यम् ॥ १२३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** अत्रादौ वक्ष्यमाणपिण्डकल्पस्तदनु विप्रभोजनकल्पः इदं **त्वग्निमतो** जीवत्पितृकस्यापि तेन स्वकं पितरमाशयेदिति वक्ष्यमाणं संगच्छते। पार्वणे तु विप्रभोजनानन्तरं **पिण्डकल्प** उच्छिष्टसंनिधौ चैतत्परस्तात्पिण्डमिष्यत इति। **मेधातिथिस्तु,** एतदेवानुवदन् तत्र कर्तव्यं विधत्ते **पितॄणामिति। प्रशस्तेन** 'पाठीनरोहितावाद्यावि (५।१६) त्यादिवक्ष्यमाणेन ॥ १२३ ॥

(५) नन्दनः। मासिकाख्यस्य श्राद्धस्यैवाऽयं प्रयोगविधिर्नान्यस्येत्याह **पिण्डानामिति। मासिकमेव श्राद्धं** पिण्डानामन्वाहार्यं पश्चात्प्रयोज्यं **विदुर्बुधा** नापरम्। तस्य द्रव्यविशेष उत्तरार्धेनोक्तः। **आमिषेण** मांसेन। **प्रशस्तेन** भक्ष्यतया विहितेन ॥ १२३ ॥

(६) रामचन्द्रः। **पितॄणां** पितृपक्षपिण्डानां **मासिकं श्राद्धं बुधाः अन्वाहार्यसंज्ञं** विदुः। अन्वाहार्यं पितृयज्ञपिण्डानामनु पश्चादाह्रियते तत् पिण्डान्वाहार्यकं। **तत् श्राद्धं प्रशस्तेनामिषेणा**प्रतिषेधेन कर्तव्यं। 'द्वौ मासौ मत्स्यमांसेने'ति वचनात् ॥ १२३ ॥

[ रामचन्द्रः। **नेति**। **प्रमीतपितृमातृको यः श्राद्धं न निर्वपति** न करोति। **मासि मासि** इन्दुक्षये अमायां स **प्रायश्चित्ती भवेत्** ॥ १ ॥]

(८) गोविन्दराजः। **पिण्डानामिति**। अधुना नामवचनेन पिण्डपितृयज्ञानन्तर-करणमस्य समर्थयते **पिण्डानामिति**। अत एव तन्मासिकं श्राद्धं पिण्डानामनु पश्चादाह्रियते ततः **पिण्डान्वाहार्यकमेतद्विद्वांसो** मन्यन्ते। एवं च युक्तं यत् पिण्डपितृयज्ञानन्तरं क्रियत इति। तन्मांसेन विशेषेण विहितेन खड्गमांसादिना **प्रयत्नतः** कार्यं, तदभावे पुनरन्यै-र्हविष्यैः ॥ १२३ ॥

**तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः ॥**
**यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १२४ ॥**

(१) मेधातिथिः। "किं पुनः श्राद्धे होमब्राह्मणभोजनपिण्डनिर्वपणादीनि कर्माणि सर्वाण्येव समप्रधानानि श्राद्धशब्दवाच्यानि, उत किञ्चिदङ्गमत्र किञ्चित्प्रधानम्?"। उच्यते— 'श्राद्धं भोजयेत्'—'श्राद्धं भुक्तमनेनेति' सामानाधिकरण्याद्ब्राह्मणभोजनं मुख्यं प्रतीयते। तथा चाह—

**तत्र** तस्मिञ्छ्राद्धे **ये द्विजोत्तमा** ब्राह्मणा **भोजनीया** ये च परिहर्तव्याः, **यावन्तो** यत्सं-ख्याका 'द्वौ दैव' इत्यादि, **यैश्चान्नैः** "तिलैर्व्रीहियवै"रित्यादि, तदेतत्सर्वमिदानीं **वक्ष्यामि**। तच्छृणुत।

एतदत्र प्राधान्येन संपाद्यम्। एतेन विना श्राद्धं न कृतं भवति। अन्यच्च यच्चाङ्गजात-मारादुपकारकं सन्निपत्योपकारकं वा तस्मिन्नसम्पन्ने श्राद्धं कृतं न भवति, सगुणं तन्न स्यात्। अत एतेषां प्राधान्यख्यापनार्थं पुनरुपन्यासः ॥ १२४ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। **द्विजसत्तमा** इति भृगुणा मुनीनां संबोधनम्। **प्रयत्नत** इति क्वचित्पाठः। **द्विजोत्तमाः**। द्विजेषूत्तमवर्णा ब्राह्मणा इति यावत् ॥ १२४ ॥

(३) कुल्लूकः। तस्मिञ्छ्राद्धे **ये** भोजनीया ये च त्याज्या यत्संख्याका **यैश्चान्नैस्त**त्सर्वं **प्रवक्ष्यामि** ॥ १२४ ॥

(४) राघवानन्दः। 'एकमप्याशयेद्विप्र'मित्यत्रैकत्वविशिष्टब्राह्मणमात्रं प्राप्तं, श्राद्धविशेषे तत्प्रत्याचक्षाणः प्रतिजानीते **तत्रेति**। **तत्र** पिण्डपितृयज्ञे पार्वणश्राद्धे च। **ये** यत्स्वरूपाः। **यावन्तः** सङ्ख्यया **यैर्मुन्यन्नाद्यै**रित्यर्थः ॥ १२४ ॥

(७) रामचन्द्रः। तत्र श्राद्धे ये भोजनीया भोजनार्हाः स्युः यावन्तो यत्सङ्ख्याका ब्राह्मणाः यैरन्नैः 'संस्कार्यास्तानशेषतः' प्रवक्ष्यामि ।। १२४ ।।

(८) गोविन्दराजः। तत्रेति। तस्मिन् श्राद्धे भोजनीया ये च वर्जनीयाः यथासङ्ख्याकाश्च यैश्चान्नैस्तत्कर्तव्यं तत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ।। १२४ ।।

**द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा।**
**भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रवर्तेत विस्तरे ।। १२५ ।।**

(१) मेधातिथिः। यद्यपि प्रतिज्ञातस्य वस्तुनस्तेनैव क्रमेण विशेषकथनं युक्तं, तथापीह स्वल्पवक्तव्यत्वाद्भोजनीया इति प्राप्तं परित्यज्य संख्यानिर्देशोऽनेन क्रियते। देवानुद्दिश्य द्वौ ब्राह्मणौ भोजयेत्। पितॄणां कृत्ये त्रीन्। उभयत्र वा, दैव एवं पित्र्ये चैकम्। यद्यपि 'पित्र्ये' इत्यत्र पितुरिदमिति पितृशब्देन देवताचोदना, तथापि पितृपितामहप्रपितामहा उद्देश्याः। तत्रैकैकस्यैकैकं भोजयेत्, न त्वेवैकं सर्वेभ्यः, पृथक्पृथग्देवतात्वात्। उक्तं च गृह्यकारेण "न त्वेवैकं सर्वेषाम्", "पिण्डैर्व्याख्यातम्" इति। यथैकः पिण्डः सर्वेभ्यो न निरूप्यते तथैव ब्राह्मणोऽपि न भोज्यत इत्यर्थः। इहापि वक्ष्यति, "निमन्त्रयेत त्र्यवरान्" इति। भोजनार्थमेव तन्निमन्त्रणं, नादृष्टार्थम्। अतश्च पितृकृत्ये त्रींस्त्रीनिति द्रष्टव्यम्। तथा चाह "न चावरान्भोजयेत्" इति एवं च कृत्वा 'एकैकमपि विद्वांसम्' इत्येतदप्येवमेव द्रष्टव्यम्। एकैकस्यैकैकमिति।

अपि च नैवात्रैकैकमुभयत्रेत्येतद्विधीयते, विस्तरप्रतिषेधार्थोऽयमनुवादः। यथा "विषं प्रक्षय मा चास्य गृहे भुङ्क्ष्वेति"। "यद्येवं 'द्वौ दैव' इत्येषोऽपि विधिर्न स्यादस्याप्यन्यार्थतयोपपत्तेः। अथायं विधिरप्राप्तत्वादेकैकमित्येषोऽपि कस्मान्न भवति"। अत्राह। मा भूत् द्वयोरेकोऽपि विधिः। "कुतस्तर्हि संख्यावगमः?"। 'निमन्त्रयेत त्र्यवरानिति'। "ननु तत्र दैवग्रहणं नास्ति"। स्मृत्यन्तरात्तर्हि संख्यावगमः। 'अयुजो वा यथोत्साहमिति' 'युग्मान्दैव' इति (याज्ञ.आचार.२२७)। यदि वाऽयं संख्याविधिः स्याद्विस्तरप्राप्त्यभावात्प्रतिषेधोऽनर्थकः। तस्माद्यावद्भिर्ब्राह्मणैर्भोजनैर्विस्तरे ये दोषास्ते न भवन्ति तावन्तो भोजनीयाः। पित्र्येऽयुग्माः दैवे तु द्वावेव। सुसमृद्धोऽप्यत्यर्थमाढ्योऽपि न प्रवर्तेत विस्तरे ।। १२५ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। त्रीन् पित्रादित्रयार्थं क्रमात्, एकैकमिति, पित्रादित्रयोद्देशेनैकः वैश्वेदेवार्थं चैकमिति। एवं यदा त्रयः पित्रर्थं तदा वैश्वदेवेऽपि द्वावेवेति नियतम्। विस्तरे स्मृत्यन्तरोक्ते 'एकैकार्थं त्रयस्त्रय' इत्यादौ ।। १२५ ।।

(३) कुल्लूकः। अत्र यद्यप्युद्देशक्रमेण ये भोजनीया इति वक्तुमुचितं तथाप्यल्पवक्तव्यत्वाद्ब्राह्मणसंख्यामाह द्वाविति। देवश्राद्धे द्वौ ब्राह्मणौ पितृपितामहप्रपितामहानां त्रीन्ब्राह्मणानथवा दैव एकं पित्रादित्रिके चैकं ब्राह्मणं भोजयेत्। उक्तातिरिक्तभोजनसमर्थोऽपि नाधिकभोजनेषु प्रवर्तेत। मेधातिथिस्त्वाह पितृकृत्ये त्रीनिति पितुस्त्रीन्ब्राह्मणान्पितामहस्य त्रीन्ब्राह्मणान्प्रपितामहस्य त्रीन्ब्राह्मणान्भोजयेत्। एकैकमुभयत्र वेति दैव एकं पित्रादित्रयस्य

चैकैकम्। न त्वेकं पित्रादित्रयस्य न त्वेवैकं सर्वेषां पिण्डैर्व्याख्यातमित्याश्वलायनगृह्यविरोधात्। यथैकः पिण्डः पित्रादित्रयस्य न निरूप्यते तथैको ब्राह्मणो न भोजयितव्य इत्यर्थः। तस्मान्न पित्रादित्रयस्यैकब्राह्मणभोजनम्।

तदसत्; गृह्यकारेणैव 'न त्वेवैकं सर्वेषां पिण्डैर्व्याख्यात'मिति पठित्वा 'काममनाद्ये' इत्यभिहितम्। अस्यार्थः—बहुपित्रादिदेवताकश्राद्धानामाद्यं सपिण्डीकरण-मभिमतं तद्व्यतिरिक्तश्राद्धे काममेकः पित्रादीनां ब्राह्मण इत्यर्थः। अथवाऽनाद्येऽदनीय-द्रव्याभाव एको हि भोजयितव्यः। उभयत्रापि व्याख्याने पार्वणादौ पित्रादित्रयस्यैकब्राह्मण-भोजनं गृह्यकृतैवोक्तम्। **वसिष्ठोऽपि** 'यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवतन्त्रं कथं भवेत्। अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च। देवतायतने कृत्वा यथाविधि प्रवर्तयेत्। प्रास्येदन्नं तदग्नौ वा दद्याद्वा ब्रह्मचारिणि' इति। सर्वेभ्य एकब्राह्मणभोजनमाह। तस्माद्यथोक्तैव व्याख्या। "प्रथमे वाद शब्द" इत्यनेन विस्तार इति प्राप्ते 'छन्दःसमानत्वात्स्मृतीनां' सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्पन्ते' इति विस्तर इति रूपम्॥ १२५॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रतिज्ञां व्याकरोति **द्वाविति**। **पितृकृत्ये** पित्रुद्देश्यककृत्ये। **त्रीन्** पितृपितामहप्रपितामहान्। प्रत्येकं तान् प्रति त्रींस्त्रीनिति **मेधातिथिः**। तेन नव। अथवा पितृकृत्यावच्छेदे त्रीन्। तदुक्तम् 'यथैकः पिण्डः सर्वेभ्यो न निरूप्यते। तथैवैक-ब्राह्मणोऽपि न भोजनीयः। मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षण' इत्युक्तेः। एवं माता-महपक्षे दैवे पित्र्ये च श्रद्धया पित्रुद्देशेन द्रव्यत्यागं ब्राह्मणस्वीकारपर्यन्तं श्राद्धम्। अन्यत्र भाक्तमतः आमावासिकश्राद्धं सर्वश्राद्धप्रकृतिः बहुद्रव्यसंपत्तिमानपि बहुब्राह्मणादि न कुर्या-दित्याह **नेति**॥ १२५॥

(५) **नन्दनः**। यावन्त इत्येतद्विवृणोति **द्वौ दैव इति**। **विस्तरे** संख्या-भूयस्त्वे॥ १२५॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणसङ्ख्यामाह **द्वाविति**। **दैवे** विश्वेदेवनिमित्तं द्वौ विप्रौ **पितृकृत्ये त्रीन्** पित्रादिस्थाने त्रयस्त्रयः विप्रा ज्ञेयाः। एकैकमुभयत्र वा पितॄणां एकमेकं वा। विश्वेषां देवानां वा एकं एकं ब्राह्मणं भोजयेत्। **विस्तरे न प्रसज्येत** ये च द्विजा वर्ज्याः स्युर्वर्ज-येत्तान् उक्तान्भोजयेद्विप्रदोषास्ते न भवन्ति॥ १२५॥

(८) **गोविन्दराजः**। यद्यप्युपदेशतः तस्य ये भोजनीयाः स्युः इति प्राप्तं तथापि अल्पवक्तव्यत्वात् सङ्ख्यां तावदाह **द्वाविति**। द्वौ पित्र्याङ्गभूते दैवे पितृपितामहप्रपितामहो-द्देशेन त्रीन् एकैकं वा दैवपित्र्ययोः ब्राह्मणं भोजयेत्। उक्तातिरिक्तभोजनसमर्थोऽर्घे अधिक-भोजने न वै प्रवर्तेत। यत्तु "नत्वेवैकं सर्वेषां पिण्डैर्व्याख्यातं" इति **गृह्यदर्शनात्**, "निमन्त्रयेत त्र्यवरान्" इति चेहाभिधानात्" एकैकमुभयत्र वा" इत्यस्य विस्तरप्रतिषेधार्थवादत्वमाह तदसत्। 'द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीन्' (३।१२५) इत्येतद्विकल्पेन अस्य श्रवणात्। **याज्ञवल्क्ये** च "एकैकमेव च" इति विधिदर्शनात् वसिष्ठे च "यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत्। अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च। देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत्" इत्येकब्राह्मण-भोजनात्। यत्पुनः "नत्वेवैकं" इत्यादिगृह्यवचनं तत् द्रव्यब्राह्मणादिसम्यग्संपद्विषयम्

न त्वन्यप्रतिषेधार्थम्; तथाच एतदनन्तरमेव गृह्यकृत् "काममनाद्य" इत्याह, अदनीयाद्यभावात् काममेकमपि सर्वेषां भोजयेत् इति। एवं च "निमन्त्रयेत् त्र्यवरान्" इत्येतदपि द्रव्यब्राह्मणादिसम्यक्सम्पत्तिविषयं न त्वेकैकविध्यत्यन्ताभावज्ञापकम्। विस्तर इति वृत्तवशात् 'प्रथने वाव शब्दे' इति स्मरणात्॥ १२५॥

**सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पद॥**
**पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥ १२६॥**

(१) **मेधातिथिः**। न चायमदृष्टार्थो विस्तरप्रतिषेधः; किं तर्हि? एतान्दोषानापादयति। विस्तरोऽतो नेष्यते। यदि तु शक्यन्ते सत्क्रियादय उपपादयितु तदा यथोत्साहम्। **सत्क्रिया**ऽन्नसंस्कारविशेषः। **देशो** दक्षिणप्रवणादिः "अवकाशेषु चोक्षेष्विति" (३।२०७) वक्ष्यमाणः। **काल**: अपराह्णः 'मध्याह्नाच्चलिते सूर्ये" इति। **शौच**मात्मब्राह्मणप्रेष्यगतम्। **ब्राह्मणानां सम्पत्** गुणवद्ब्राह्मणलाभः। एते गुणा अवश्यं सम्पाद्याः। ते च विस्तरेण नश्यन्ति। विस्तारो वैगुण्यम् ब्राह्मणबहुत्वे चासौ प्रसज्जति। **तस्मान्नेहेत** न कुर्यात्॥ १२६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सत्क्रियां** पूजां ब्राह्मणानां **देशः** शुचिः। **कालो**ऽमावास्यादिः। **शौचं** दातृग्रहीत्रोः। **ब्राह्मणसंपदं** ब्राह्मणगुणान्। तदुपवेशमानोदेशप्राप्तेस्तावद्ब्राह्मणार्चानुरोधेन कालाप्राप्तेः श्राद्धासंभवाद्देशकालौ हन्तीत्युक्तं। तस्मान्नहेतेतिवदसत्क्रियादिसंभवे बहुत्वं प्रशस्तमिति दर्शयति। अत एव 'न चावरान्भोजये' दिति **गौतमः**॥ १२६॥

(३) **कुल्लूकः**। **सत्क्रियां** ब्राह्मणस्य पूजां **देशं** दक्षिणप्रवणादिवक्ष्यमाणं कालमपराह्णं **शौचं** श्राद्धकर्तृभोक्तृब्राह्मणप्रैष्यगतं गुणवद्ब्राह्मणालाभं च ब्राह्मणविस्तारो नाशयति। तस्माद्ब्राह्मणविस्तरं न कुर्यादितिसत्क्रियादिविरोधजा ब्राह्मणविस्तरनिषेधात्सत्क्रियादिसंभवे पित्रादेरेकैकस्यापि ब्राह्मणत्रयाभ्यनुज्ञानम्। अत एव **गौतमः** (१५।२) "नचावरान्भोजयेदयुजो वा यथोत्साहम्।" **बह्वृचगृह्यकारो**ऽपि (१६।७) अथातः पार्वणश्राद्धे काम्य आभ्युदयिक एकोद्दिष्टे ब्राह्मणानित्युपक्रम्य "एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्व"मित्याह द्वौ द्वावित्याभ्युदयिकश्राद्धविषयं; स्मृत्यन्तरेषु तथा विधानादत्राप्याभ्युदयिकमित्युपक्रमाच्च॥ १२६॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव निन्दार्थवादमाह **सत्क्रियामिति**। **सत्क्रियां** ब्राह्मणपूजां। **देशं** दक्षिणप्रवणादि। **कालं** अपराह्णादि। **शौचं** तत्कर्तृभोक्त्रोः स्नानादि। **ब्राह्मणसंपत्** गुणवद्विप्रलाभः। **एतान्पञ्च विस्तरः** उक्तानां बाहुल्यं **हन्तीति** योजना॥ १२६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सत्क्रिया** अन्नसंस्कारविशेषः। **देशो** दक्षिणाप्रवणं। **कालः** कुतुपादिः। **शौचं** आत्मब्राह्मणगतं। यद्वा मृत्तिकागोमयभस्मादिगृहोपस्करशुद्धिः। **ब्राह्मणसंपदं** ब्राह्मणसमूहं। **श्राद्धे विस्तरो** बाहुल्यं **एतां** सत्क्रियादिपञ्च हन्ति नाशयति तस्य **विस्तरं नेहेत** न कुर्यात्। विस्तरं ब्राह्मणानां बाहुल्यम्॥ १२६॥

(८) **गोविन्दराजः । सत्क्रियामिति ।** ब्राह्मणपूजां चोक्षादिदेशं अपराह्णकालं शौचं गुणवद्ब्राह्मणानां विस्तारो नाशयति । तस्मादुक्तातिरिक्तब्राह्मणभोजनं न कुर्यात् । हेतुनो विस्तरनिषेधात् सत्क्रियादिसंभवेऽधिकब्राह्मणभोजनमप्यस्ति । तथा च **गौतमोक्तिः** "अवरान् न व ब्राह्मणान् भोजयेत् अयुजो वा यथोत्साहं" इति । १२६ ।।

**प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये ।।**
**तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ।। १२७ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** न यथा दैवानि कर्माण्यपि देवतार्थान्येवं पित्र्यं नाम तत्कर्म तत्—किं तर्हि ? **प्रथिता** ख्याता वेदविदाम् **प्रेतकृत्या** प्रेतोपक्रिया । **विधुक्षये** विधुश्चन्द्रस्तस्य क्षय अमावास्या । 'तिथिक्षय' इति पाठान्तरम् । 'विधिक्षय' इति तु पाठो निर्दृष्टः । एवं हि तत्र योजनम्—पित्र्यं नाम 'विधि'चोदितं कर्म—'क्षये' गृहे । **तस्मिन्** कर्मणि पित्र्ये । **युक्तस्य** तत्परस्य । **नित्यं** कर्तुरुपतिष्ठते । **प्रेतकृत्यैव ।** तस्यापि 'प्रेतस्य' 'कृत्या' उपकारः श्राद्धादिः पुत्रैः क्रियते । पुत्रपौत्रादिसन्तत्यविच्छेदः श्राद्धफलमनेन प्रकारेण प्रतिपाद्यते । न च तत्फलकामस्यायमधिकारो, नित्यत्वस्य प्रतिपादितत्वात् । अन्ये त्वधिकारान्तरमिदं सन्तत्यविच्छेदकामस्येच्छन्ति । **लौकिकीयं** कर्तव्यता, स्मार्तेत्यर्थः ।। १२७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । एषा** या प्रेतमुद्दिश्य क्रिया प्रेतक्रिया **क्षये** चन्द्रस्य **विधोः** विहिता कार्यत्वेन पित्र्यं नाम पितृसंज्ञया प्रसिद्धम्, **तस्मिन्युक्तस्यैव** पुंसो नित्यमिह कर्मभूमौ **लौकिकी** विशिष्टलोकप्राप्तिनिमित्ता **प्रेतकृत्या** नित्यश्राद्धरूपा **एति** आगच्छति तदधिकारे सति तत्कर्तुरेव नित्यश्राद्धेऽधिकारो नान्यस्येत्यर्थः । **क्वचित्प्रेतकृत्यैव लौकिकीऽति** पाठः । तत्र तस्मिन्युक्तस्यैवेत्यन्वयः । **केचिदत्र** श्राद्ध उद्युक्तस्य लौकिकी प्रेतकृत्या परायांति निवर्तते, तदकरणेऽपि प्रत्यवायाभाव इत्यस्यार्थमाहुः ।। १२७ ।।

(३) **कुल्लूकः । यदेतत्पित्र्यं** कर्म श्राद्धरूपं प्रथममियं प्रख्याता **प्रेतकृत्या** पितुपकारार्था क्रिया । प्रकर्षेण इतः प्रेतः पितृलोकस्थ एवोच्यते । **विधुक्षये**ऽमावास्यायां **तस्मिन्पित्र्ये** कर्मणि **युक्तस्य** तत्परस्य **लौकिकी** स्मार्तिकी **प्रेतकृत्या** पितुपकारार्था क्रिया गुणवत्पुत्रपौत्रधनादिफलप्रबन्धरूपेण कर्तारमुपतिष्ठते । तस्मादिदं कर्तव्यम् । **गोविन्दराजेन** तु विधिः क्षय इति पठितं व्याख्यातं च योऽयं नाम विधिः पित्र्यं कर्मेति क्षये चन्द्रक्षये गृहे वा तदसांप्रदायिकम् । **मेधातिथिप्रभृतिभिर्गोविन्दराजा**दपि वृद्धतरैरनभ्युपेतत्वात्क्षय इति । संबन्धक्लेशाच्च ।। १२७ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** श्राद्धस्य संज्ञान्तरं कुर्वंस्तत्कर्तुरानृण्यमाह **प्रथितेति । प्रथिता** प्रख्याता **प्रेतकृत्या** पितुपकारार्था क्रिया । **विधुक्षये** अमावास्यायां **लौकिकी** स्मार्ता । **तस्मिन्युक्तस्य** श्रद्दधानस्य **नित्यं** पुत्रपौत्रादिफलप्रबन्धेन श्रद्दधानं कर्तारं प्रत्येतीत्यर्थः ।। १२७ ।।

(५) **नन्दनः ।** विस्तरवर्जनकारणान्तरमप्यस्तीत्यभिप्रायेणाह **प्रथितेति । विधुक्षये** चन्द्रक्षये । यत् **पित्र्यं नाम** कर्म क्रियते सा **ह्येषा प्रेतकृत्येति प्रथिता** लोके प्रसिद्धा । प्रेताः

पितृपितामहादयस्तदर्था क्रिया प्रेतकृत्या प्रेतनिःश्रेयसकरी क्रियेति यावत्। **लौकिकी** लोकविदिता सैषा प्रेतकृत्या। **तस्मिन्विस्तरे** सति। **युक्तस्य** सावधानस्य श्रद्दधानस्येति यावत्। इह **विधुक्षये नित्यं** प्रतिमासमेत्यागच्छति कर्तव्यत्वेनोपतिष्ठते हि यस्मात्। किमुक्तं भवति? अमावास्यायां श्राद्धं प्रेततृप्तिहेतुरिति प्रसिद्धम्। तच्च यदा कदाचिन्न क्रियते किंतु प्रतिमासमनतिपातनीयमेव, प्रतिमासं विस्तरेण प्रसक्तरतिपत्तिं कदाचिदापादयेत्। तस्माद्विस्तरेण न प्रसज्जेतेति ।। १२७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **एषा** प्रेतकृतिः पितृक्रिया कर्म **विधुक्षये** अमायां **प्रथिता** प्रसिद्धा तस्मिन्नन्वाहार्यके **पित्र्ये** कर्मणि **नित्यमुक्तस्य** पुंसः इष्टश्राद्धे कर्माणि **लौकिकक्रिया** प्रेतकृत्या मृतस्य सत्कारः श्राद्धं पुत्रादिभिर्दत्ता कृतकृत्यतामेति प्राप्नोति। प्रेतकृत्यैषेति वा पाठः ।।१२७।।

(७) **गोविन्दराजः।** **प्रथितेति।** योऽयं पित्र्यो नाम विधिः **पित्र्यं** कर्म **एषा प्रेतकृत्या** प्रेतोपकारार्था क्रिया क्षये चन्द्रक्षये गृहे वा नाश्रमान्तरे, सर्वगृहिणां ख्याता। **तस्मिन्** कृत्ये पित्र्ये कर्मणि **युक्तस्य** तन्निष्ठस्य लौकिकी स्मार्ता प्रेतक्रिया इति प्रेत उपक्रियते गुणवत्पुत्रपौत्रप्रबन्धोत्पत्त्या तस्मादेतद्यत्नतः कार्यम् ।। १२७ ।।

**श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ।।**
**अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ।। १२८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **श्रोत्रियः** छान्दसः कृत्स्नमन्त्रब्राह्मणिकां शाखां अधीते यस्तस्मै **हव्यानि** श्राद्धाङ्गभोजनानि विश्वान्देवानुद्दिश्य यानि विहितानि तानि देयानि। **कव्यानि** पितृभ्य उद्दिश्य यानि भोजनानि। **अर्हत्तमाय।** 'अर्हता' पूज्यता योग्यता च। महाकुलीनः पूज्यते, महाकुले जातो विद्यावृत्तसम्पन्नश्च। **तस्मै दत्तं** श्राद्धादन्यदपि **महाफलम्।** एवं वा––अश्रोत्रियाय दानं निष्फलम्––श्रोत्रियाय अभिजनविद्यादिगुणरहिताय स्वल्पफलम् **अर्हत्तमाय महाफलम्** ।। १२८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **हव्यं** वैश्वदेविकमन्नं। **कव्यं** पित्र्यं। **अर्हत्तमाय** वृत्तसंपन्नादपि पूज्याय **श्रोत्रियाय** ।। १२८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** छन्दोमात्राध्यायी **श्रोत्रियस्तस्मै** दैवपित्र्यान्नानि यत्नतो **देयानि।** **अर्हत्तमाय** श्रुताचाराभिजनादिभिः पूज्यतमाय **तस्मै** दत्तं **महाफलं** भवति ।। १२८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** यावन्त इत्युक्त्वा ये भोजनीया इत्युक्तं तानाह **श्रोत्रियायेति।** वेदाध्यायी **श्रोत्रियः।** **हव्यं** होम उत्तरा प्रतिपत्तिर्यस्य तदुपलक्षितं देवदेयं। **कव्यं** कवेः पुत्रा हविष्मन्तः श्राद्धदेवास्तदुपलक्षितं पितृदेयं। **श्रोत्रिय** एव श्रुताचारादिसंपन्नोऽर्हत्तमम् ।।१२८।।

(५) **नन्दनः।** ये भोजनीयाः स्युर्ये वर्ज्या इति यदुक्तं तच्छ्लोकद्वयेन विवृणोति **श्रोत्रियायेति।** तत्र **हव्य**ग्रहणं प्रासङ्गिकं श्राद्धाङ्गवैश्वदेवविषयं वा। अर्हत्तमाय पूज्यतमाय ।। १२८ ।।

(७) **मणिरामः** । **श्रोत्रियाय** छन्दोमात्राध्यायिने **अर्हत्तमाय** श्रुताचारादिभिः पूज्यतमाय ।। १२८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **श्रोत्रियायेति**। दैव पित्र्यादीन्यन्नानि छन्दोमात्राध्यायिनि **देयानि**। छन्दोमात्राध्यायिनि श्रोत्रियशब्दप्रयोगात् नात्यन्तापायननियमः। संभवे पुनः समस्तशाखाध्यायिने दानम् ।। "यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धं बह्वृचं" इत्यादिनियमे सति पुनः श्रोत्रियत्वे सति श्रुतवृत्ताभिजनादियोगे न पूज्यतमाय **विप्राय** देयानि यतस्तस्मै दत्वा पितृतृप्तिद्वारेणातिशयेनोपकारकं भवति ।। १२८ ।।

**एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।।**
**पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ।। १२९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । यदुक्तमर्हत्तमायेति तद्दर्शयति **विद्वांसमेकमपि** **भोजयन् पुष्कलं फलमाप्नोति** । विद्वत्ता च व्याख्याता । वेदार्थवेदनं, यत आह **नामन्त्रज्ञान् बहूनपि** । मन्त्रग्रहणं वेदोपलक्षणार्थम् । असम्भवे पञ्चानां वेदविदुषामेकैकमपि विद्वांसं भोजयेदिति विध्यर्थः । **पुष्कलं** पुष्टं विपुलम् ।। १२९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । विद्वांसं वेदज्ञम् ।। १२९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । दैवपित्र्ययोरेकैकमपि देवतत्त्वविदं ब्राह्मणं भोजयेत् । तदापि विशिष्टं श्राद्धफलं प्राप्नोति न त्वविदुषो बहूनपि । एवं च फलश्रवणाद् ब्राह्मणभोजनमेव प्रधानं पिण्डदानादिकं त्वङ्गमिति **गोविन्दराजः** । वयं तु पित्रुद्देशेन द्रव्यत्यागं ब्राह्मणस्वीकारपर्यन्तं श्राद्धशब्दवाच्यं प्रधानं ब्रूमः । तदेव **मनुना** (३।१२२) 'पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यादि'ति विहितं । **आपस्तम्बेन** तु मन्वर्थस्यैव व्याख्यातत्वात् । तदाह **आपस्तम्बः** 'तथैतन्मनुः श्राद्धशब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिःश्रेयसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे मासि मास्यपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयानि'ति । श्राद्धशब्दं श्राद्धमितिशब्दो वाचको यस्य तत्तथा ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे आहवनीयवत्त्यक्तद्रव्यप्रतिपत्तिस्थानत्वात्पितरो देवता इति नियतापितृदेवताकत्वाच्च श्राद्धस्य। देवताश्राद्धादौ श्राद्धशब्दस्तु तद्धर्मप्राप्त्यर्थो गौणः, कौण्डपायिनामयन इवाग्निहोत्रशब्दः। पुष्कलं फलं प्राप्नोति इति तु पुष्टतरफलार्थिनो गुणफलविधिः। स भोजनस्याङ्गत्वेऽपि तदाश्रयो न विरुद्धः 'आपस्तम्बोऽभ्यधाच्छ्राद्धं कर्मैतत्पितृदैवतम् । मन्वर्थं कथयंस्तस्मान्नेदं ब्राह्मणभोजनम्' ।। १२९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । एवंविधानामसंपत्तावेकोऽपि महाफलद इत्याह **एकैकमिति** । **विद्वांसं** गायत्र्यर्थविदमित्युक्तं । विदुष अलाभे प्रति त्रिकं व्यावर्तयति न त्वेकैकमिति भावः । **अमन्त्रज्ञान**विदुषः ।। १२९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **बहूनपि** ! अमन्त्रज्ञान् वेदाध्ययनरहितान् इत्यर्थः ।। १२९ ।।

(७) **मणिरामः** । **विद्वांसं** तत्त्वविदं, पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धमिति वदता मनुना पित्रुद्देशेन द्रव्यत्यागं ब्राह्मणस्वीकारपर्यन्तं श्राद्धशब्दवाच्यं प्रधानं नतु केवलं ब्राह्मणभोजनं पिण्डदानां वा प्रधानमित्युक्तम् ।। १२९ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** यस्मात्—**एकैकमिति।** **दैवपित्र्योः एकैकमपि** वेदार्थविदं **भोजयेत्।** परिपूर्णं **फलं** पितृतृप्त्याख्यं **प्राप्नोति।** न त्वविदुषो **बहूनपि भोजयन्** पुष्कलं फलमाप्नोति इत्यभिधानात् ब्राह्मणस्य भोजनमत्र प्रधानं पिण्डदानादि तु अङ्गमित्यवसीयते ॥ १२९ ॥

**दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।**
**तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** न वेदपारग इत्येव भोजयितव्यः। किं तर्हि? **दूरात् परीक्षेत** निपुणतो मातापितृवंशद्वयपरिशुद्धिज्ञानम्। यथोक्तं "ये मातृतः पितृतश्च वंशपुरुषं समनुष्ठित-विद्यातपोभ्यां पुण्यैश्च कर्मभिः येषामुभयतो ब्राह्मण्यं निर्णयेयु" रित्येषा 'दूरात्परीक्षा'। तथा तत्त्वतोऽध्ययनविज्ञानकर्मानुष्ठानवेदनं च। वेदस्य 'पारः' समाप्तिः तं गतो **वेदपारगः।** न वेदसंहितां ब्राह्मणमात्रं वा पठन्नर्हो भवति। अस्मादेव दर्शनात् श्रोत्रियशब्देन वेदैक-देशमप्यधीयान उच्यत इति गम्यते। **तीर्थं तद्धव्यकव्यानाम्।** तीर्थमिव तीर्थं, येनोदकं ग्रहीतुमवतरन्ति तत्तीर्थम्। तेन यथा मार्गेणोदकार्थिनो गच्छन्त उदकं लभन्ते एवं तादृशेन ब्राह्मणेन हव्यकव्यानि पितॄन् गच्छन्तीति प्रशंसा। अन्यस्मिन्नपि इष्टापूर्तदाने ब्राह्मणो-**ऽतिथिः**—यथाऽतिथये स्वयमुपस्थिताय निर्विचिकित्सं दीयते, दत्तं महाफलम्, एवमीदृशाय ब्राह्मणाय हव्यकव्ये निर्विचिकित्सं दातव्ये, महाफले भवतः ॥ १३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। दूराद्**दूरग्रामस्थमपि **परीक्षेता**नुसंदध्यात्। **तीर्थ**मवतरणवर्त्म **सोऽतिथिः स्मृत** इति प्रसंगादवेदज्ञस्य वैश्वदेवान्तागतस्यापि अतिथित्वाभाव उक्तः। यत्तु 'न पृच्छेद्गोत्रचरण'मिति स्मृत्यन्तर उक्तम् तत्साक्षात्प्रश्ननिषेधार्थम्। नतु प्रकारान्तरेणापि तदज्ञाननिषेधे तात्पर्यम् ॥ १३० ॥

(३) **कुल्लूकः। दूरादेव** पितृपितामहाद्यभिजनशुद्धिनिरूपणेन कृत्स्नशाखाध्यायिनं **ब्राह्मणं परीक्षेत।** यस्मात्तथाविधो **ब्राह्मणो हव्यादीनां तीर्थं** पात्रं **प्रदाने। सोऽतिथिरेव** महाफलप्राप्तेर्हेतुत्वात् ॥ १३० ॥

(४) **राघवानन्दः।** छन्दोमात्राध्यायी पितृपितामहतः संभावितदोषो न ग्राह्य इत्याह **दूरादेव परीक्षेत** परीक्षणं दोषाभावोपलक्षिताचारादेरीक्षणम्। **तीर्थं** पात्रं तत्र **हव्यं** चतुरवत्तं जुहोतीति। **कव्यं** कविर्नाम पितृणां जनकस्तस्मै। अर्हति कविरुपलक्षणं। मरीच्यादीनाम्। तस्यैव कार्यान्तरार्थं धर्मान्तरमाह **स इति।** प्रदाने श्राद्धस्येति शेषः। एतेनातिथ्यर्चाफलमप्यसूचि ॥ १३० ॥

(५) **नन्दनः।** यत एवं तस्माद्विद्वानेवान्वेक्ष्य इत्याह **दूरादिति। दूरादेव** पात्र-परिग्रहकालात्पूर्वमेव विद्यादिभिः **परीक्षेते**त्यर्थः। **तीर्थं** उत्तमपात्रम्। **सोऽतिथिर**तिथितुल्य-भोजनस्य पात्रं ह्यतिथिः। तेनायमपि भोजनस्य पात्रमित्यर्थः। अथवाऽतिथिशब्देन काले लक्ष्यते। यस्य तिथिर्न विद्यते सोऽतिथिः। तस्यार्हत्तमस्य पात्रस्य हव्यकव्यप्रदानकालः प्रतिपालयितव्ये नास्तीत्यर्थः। तथा च **महाभारते** 'श्राद्धस्य ब्राह्मणः काल' इति ॥ १३० ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **दूरादेव ब्राह्मणं** वेदपारगं **परीक्षेत** पितृपितामहपूर्वकम्। **देवलः** 'पुरुषत्रयविख्यातं श्राद्धे विप्रं नियोजयेत्।' कीदृशं **ब्राह्मणं**? तस्य श्राद्धस्य संबन्धीनि हव्यकव्यानि तेषां तद्धव्यानां प्रदाने तीर्थम्। **तीर्थ**मुदकावतरणमार्गः। यथा तीर्थेनोदकं प्राप्यते तथा तादृशैर्ब्राह्मणैर्हव्यकव्यानि पितॄन्गच्छन्तीति प्रशंसा। **स** ब्राह्मण **अतिथिः स्मृतः** अतिथितुल्यः ॥ १३० ॥

(७) **मणिरामः।** **दूरादेव** पितृपितामहादिशुद्धिनिरूपणेन ॥ १३० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **दूरादिति।** 'ये मातृतो दशपुरुषं पितृतो दशपुरुषं' इत्यादि-सूत्रकारोक्तर्त्विक्परीक्षान्यायेन समस्तशाखाध्यायिनं **ब्राह्मणं परीक्षेत** यस्मात् तस्मात् तथा-विधो ब्राह्मणो **हव्यकव्यानां तीर्थ**मिव (यथा) तीर्थेनोदकावतरणमार्गेणोदकार्थिनो गच्छन्ति एवं तथाविधेन ब्राह्मणेन हव्यकव्यानि देवान् पितॄन् गच्छन्ति। तथाविधो ब्राह्मणः **अतिथि** तुल्यः **स्मृतः**, महाफलत्वात् ॥ १३० ॥

**सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ॥**
**एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ १३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **अनृचां** अनृगर्थविदाम्। उपलक्षणम्—यतोऽनृचानां प्राप्तिरेव नास्ति, श्रोत्रियायैवेति नियमात्। समासान्तः छान्दसत्वान्न कृतः, वृत्तानुरोधाच्च। एवं हि पठन्ति। "अपि माषं मषं कुर्यान्न तु छन्दो विचालयेत्" इति। अथवा अनृचा इति प्रथमाबहुवचनम्। 'अनृचाः सहस्रं यत्र भुञ्जते' इति सम्बन्धः। यथा सहस्रं गाव इति।

**एकः प्रीत**स्तर्पितो भोजितो **मन्त्रवि**द्वेदार्थवित्—**सर्वांस्तान् अनृचानर्हति** स्वीकरोति आत्मसात्करोति, तैरभेदमापद्यते। अभेदे च यत्तेषु सहस्रेषु भोजितेषु फलं तदेकस्मिन्न-वाप्यते इत्यवगतिरुत्पद्यते। निन्देयमविदुषो विद्वद्विध्यर्था। न पुनः सहस्रसंख्यातानामेकस्य च समफलत्वमुच्यते। विदुषां विधानादविदुषां प्राप्तिरेव नास्ति। अथाप्यसति विदुषि 'श्रोत्रियायैवे'त्यनेन पाक्षिकी अविदुषोऽपि प्राप्तिराशंक्येत, तथापि विस्तरस्य प्रतिषेधो मा भूदित्यतो यथाश्रुतार्थसम्भवः ॥ १३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **अनृचाममन्त्राणां यत्र** येषु हव्यकव्येषु **तान्** तानि हव्य-कव्यानि लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः। युक्तो नियुक्तः। **धर्मत** औचित्येन ॥ १३१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **यत्र** श्राद्धे ब्राह्मणानामवेदविदां दशलक्षाणि **भुञ्जते** तत्रैको वेदविद्भो-जनेन परितुष्टो **धर्मतो** धर्मोत्पादनेन **तान्सर्वानर्हति** स्वीकर्तुं योग्यो भवति। तद्भोजनजन्यं फलं जनयतीत्यर्थः। छान्दसत्वादेकवचनम्। अथवा बहुवचनानां स्थाने सहस्रमिति मनोरभिमतम्। **गोविन्दराज**स्त्वाह[1] 'सहस्रं गच्छन्तु भूतानी'ति वेदे ॥ १३१ ॥

(४) **राघवानन्दः।** श्राद्धे वेदपारगं विदधत्फलतः **अनृचां** दशलक्षतस्तस्याधिक्य-माह **सहस्रमिति।** **अर्हति** दशलक्षब्राह्मणभोजनजन्यफलद इत्यर्थः। **धर्मतः** अदृष्टबलतः **प्रीतः** श्राद्धेन तुष्टः ॥ १३१ ॥

---

१ एषोक्तिरस्मदीयादर्शे न दरीदृश्यते।

(५) **नन्दनः**। इदानीमविद्वद्विदुषोर्वैषम्यमुक्त्वार्थवादस्थापनमाह **सहस्राणीति**। **यत्र** हव्यकव्यदानकर्मणि। **अनृचाममन्त्रविदाम्**। **सहस्राणां** सहस्राणि **भुञ्जते**। **मन्त्रविद्वेदार्थवित्**। भुङ्क्ते चेति विपरिणामः। तत्र तान्भुक्तवतः सर्वानृचः स **मन्त्रविद्धर्मतोऽर्हति**। तस्य तेषाञ्च भोजनं फलतः स्तुत्यमित्यर्थः। पात्रे खलु दाता स्वमूलं मृज्यते, तच्च शुद्रे तस्मिञ्छक्यते प्रमार्ष्टुंत्वशुद्ध इति ॥ १३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अनृचां** अनृचपाठानां यत्सहस्रेषु भोजितेषु फलं तदेकस्मिन्नवाप्यते ॥ १३१ ॥

(७) **मणिरामः**। **सहस्रं हि सहस्राणां** दशलक्षाणि **धर्मतः** धर्मोत्पादनेन ॥ १३१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सहस्राणामिति**। **यत्र** दैवपित्र्यादौ **अनृग्विदां** ब्राह्मणानां दशलक्षाणि **भुञ्जते** **तत्रैको** वेदवित् भुक्त्वा **प्रीतस्तुष्टः धर्मतो** धर्मोत्पादनेन तान् **सर्वानर्हति** स्वीकर्तुं योग्यो भवति, तद्भोजनजन्यधर्मानुत्पादयतीत्यर्थः। इति विद्वद्ब्राह्मणभोजनस्तुतिः ॥ १३१ ॥

**ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च ॥**
**न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुध्यतः ॥ १३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'ज्ञानेन' विद्यया 'उत्कृष्ट' अधिकः तस्मै **देयानि** कव्यानि। अयमसौ हस्तरुधिरदिग्धोपमार्थः। रुधिरदिग्धौ हस्तौ रुधिरेणोपमृज्यमानावधिकतरं रज्येते, न निर्मलौ भवतः, एवमविद्वान् ब्राह्मणः भोज्यमानः पितॄनधो नयतितराम् ॥ १३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नहि श्राद्धाकरणजन्यप्रत्यवायित्वमवेदज्ञताप्रत्यवाययुक्तविप्रभोजनेन शुध्यतीत्यर्थः ॥ १३२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। विद्ययोत्कृष्टेभ्यो हव्यानि **कव्यानि च देयानि**, न मूर्खेभ्यः। अर्थान्तरन्यासो नामालङ्कारः। नहि रक्ताक्तौ **हस्तौ** रक्तेनैव विशुद्धौ भवतः, किंतु विमलजलेन; एवं मूर्खभोजनेन जनितं दोषं न मूर्ख एव भोजितोऽपहन्ति, किंतु विद्वान् ॥ १३२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनृचां फलराहित्यं दृष्टान्तेन वदन् वेदज्ञमनुवदति **ज्ञानेति**। ज्ञानं वेदार्थज्ञानमुत्कृष्टं यस्य तस्मै। **कव्यानि** पितृदेयानि **हवींषि** देवदेयानि **असृग्दिग्धौ** रुधिरलिप्तौ **रुधिरेण** न शुध्यत एवमज्ञोऽफलद इति भावः ॥ १३२ ॥

(५) **नन्दनः**। दृष्टान्तेन सूचयन्नाह **ज्ञानेति** ॥ १३२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ज्ञानोत्कृष्टाय** विप्राय **कव्यानि** पितॄणां देयानि **हवींषि** देवानां देयानि। **असृग्दिग्धौ** असृक्स्पृष्टौ **हस्तौ** रुधिरेण नैव **शुध्यतः**। **रुधिरेणैव** प्रक्षालितो न शुध्यतीत्यर्थः ॥ १३२ ॥

(७) **मणिरामः**। **न हि हस्तावि**ति दृष्टान्तेन मूर्खभोजनेन जनितं दोषं न मूर्ख एव भोजितोऽपहन्ति किन्तु विद्वानिति बोध्यम् ॥ १३२ ॥

(८) **गोविन्दराजः। ज्ञानोत्कृष्टायेति।** विद्योत्कृष्टेभ्यो हव्यकव्यानि देयानि नान्येभ्यो यस्मात् यथा रुधिरोपलिप्तौ हस्तौ रुधिरेणैवापगतलेपौ कर्तुं न पार्यते, अपि तूदकेनैव शक्यते, एवं चाज्ञदानमुखेन नात्मा उत्तारयितुं शक्यते अपितु, विद्वद्दानद्वारेणैवेत्यविद्वन्निन्दया विद्वद्दानस्तुतिः ।। १३२ ।।

**यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।।**
**तावतो ग्रसते प्रेतो दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ।। १३३ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** सत्यपि श्राद्धप्रकरणे वाक्याद्भोक्तुरयं दोषानुवादः। तथा चोक्तं "तस्मादविद्वान् बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात्" (४।१९१) इति। **शूलर्ष्टयः** आयुधविशेषाः, **अयोगुडः** आयसः पिण्डः। यदर्थं श्राद्धमारब्धं स दीप्तान् तप्तायःपिण्डान् यमपुरुषैराश्यते। **व्यासदर्शनात्तु** भोजयितुरयं दोषो न भोक्तुः न पितॄणां, न तावन्मृतानामन्यकृतेन प्रतिषेधातिक्रमेण दोषसम्बन्धो युक्तः, अकृताभ्यागमादिदोषापत्तेः। यदि हि पुत्रेण तादृशो ब्राह्मणो भोजितः कोऽपराधो मृतानाम्? "ननु चोपकारोऽपि पुत्रकृतः पितॄणामनेन न्यायेन न प्राप्नोति"। न प्राप्नुयाद्यदि तादर्थ्येन श्राद्धादि नोदितं स्यात्। इह तु अस्ति चोदना, पितुरुपकारकामेनैवं कर्तव्यं, श्येनवत्। यत्तु "तावतो ग्रसते प्रेत" इति तद्भोजयितृसम्बन्धेऽप्युपपद्यते। 'यस्य **ब्राह्मण** ईदृशः श्राद्धं भुंक्ते स इदं फलमाप्नोति' इति युक्तः सम्बन्धः। प्राकरणिकश्चायमविद्वद्भोजनप्रतिषेधः। तदतिक्रमणे कर्मवैगुण्यं, तद्वैगुण्ये च श्राद्धाधिकारान्निवृत्तिरेव दोषः। पितॄणां श्राद्धोपकारालाभः। ततोऽपि विध्यतिक्रमे पुत्रस्य युक्तः प्रत्यवायः। किं तर्हि? तद्भगवतो व्यासस्य वचनम्, "ग्रसते यावतः पिण्डान् यस्य वै हविषोऽविदः। ग्रसते तावतः शूलान् गत्वा वैवस्वतक्षयम्"। पाठान्तरं प्रेत्येति। भोक्तुरेव प्रेत्यता। नाविदुषा दैवपित्र्ययोर्भोक्तव्यम् ।। १३३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** एतेनामन्त्रज्ञस्य भोक्तुरपि प्रत्यवायितोक्ता **ऋष्टिः** खड्गः **अयोगुडो** लोहगुंडकः ।। १३३ ।।

(३) **कुल्लूकः।** अविद्वन्निन्दया विद्वद्दानमेवोक्तं वक्रोक्त्या स्तौति **यावत इति।** यत्सङ्ख्या**कान्ग्रासान्हव्यकव्येष्ववेद**विद्भुङ्क्ते तत्सङ्ख्याकानेव प्रकृतश्राद्धकर्ता ज्वलित**शूलर्ष्ट्या**ख्यायुधलोहपिण्डान्**ग्रसते।** श्राद्धकर्तुरेवेदमविद्वद्दानफलकथनम्। तथा च **व्यासः** 'ग्रसते यावतः पिण्डान् यस्य वै हविषोऽनृचः। ग्रसते तावतः शूलान्गत्वा वैवस्वतक्षयम्' ।। १३३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** न केवलमेवं प्रत्यवायोऽपि स्यादित्याह **यावत इति। यावतो** यावत्सङ्ख्याकान् पिण्डाकारान् **ग्रासान्। अमन्त्रविदवेदाध्यायी भुङ्क्ते तावतः शूलर्ष्टयोगुडान्** शूलाकारा ऋष्टिरस्त्रं तया युक्तान् लोहमयान् गुडान् गुडपिण्डाकारान् ग्रासान् तावतः तावत्सङ्ख्याकान् **प्रेत्य** श्राद्धकर्तेति शेषः। तथा **व्यासः** 'ग्रसते यावतः पिण्डान् यस्य वै हविषोऽनृचः। ग्रसते तावतः शूलान् गत्वा वैवस्वतक्षय"मिति। यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् ।। १३३ ।।

(५) **नन्दनः।** न केवलं भोजयितैव भोजने ज्ञानहीनो वर्जनीयः, किन्तु ज्ञानहीनेनापि स्वयमेव सुतरां भोजनं वर्जनीयमित्याह **यावत इति।** दीप्तानग्निमयान्। अयोगुडान् गुडो द्विमुखं फलं शराग्रम् ।। १३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अमन्त्रविद्द्विप्रः** वेदाध्ययनरहितः। **हव्यकव्येषु यावतः** पिण्डान्ग्रसते ग्रासान् यावतो ग्रसते। **तावतः दीप्तान्स्थूलान् अयोगुडान्** अयोलगुडान् **ग्रसते**। यस्य ब्राह्मण ईदृशः श्राद्ध भुङ्क्ते स इदं फलं प्राप्नोतीति वा। **अविद्वान्भोजने** प्रतिषिद्धः॥१३३॥

(७) **मणिरामः**। **दीप्तशूलष्टर्चयोगुडान्** ज्वलितशूलऋष्टयाख्यायुधलोहपिण्डान् श्राद्धकर्ता **प्रेत्य ग्रसते** इत्यर्थः॥ १३३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यावत इति**। यत्सङ्ख्याकान् **ग्रासान् हव्यकव्येष्ववेदविद्ग्रसते** तत्सङ्ख्याकानेव प्रस्तुतश्राद्धकर्ता ज्वलितान् स्थूलान् **शूलष्टर्चाख्यायुधान्** अयःपिण्डान् **ग्रसते** इति अविद्वद्दानफलकथनम्। तथा च **व्यासो** दातुरेव फलमाह "ग्रसते यावतः पिण्डान् यस्य वै हविषोऽनृचः। ग्रसते तावतः शूलान् गत्वा वैवस्वतक्षयम्"॥ १३३॥

**ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथाऽपरे॥**
**तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे॥ १३४॥**

(१) **मेधातिथिः**। सर्वगुणेभ्यो विद्यां प्रशंसितुं गुणविभागकथनम्, प्रशंसा च विदुषे दानार्था। ज्ञाने विद्यायां 'निष्ठा' प्रकर्षो येषां ते **ज्ञाननिष्ठाः** ज्ञानाधिकारिणः। गमकत्वाद्व्यधिकरणानामपि बहुव्रीहिः। भृशमभ्यस्तवेदार्थास्तत्परा एवमुच्यन्ते। एवं सर्वत्र निष्ठान्तेषु द्रष्टव्यम्। तपश्च स्वाध्यायश्चेति द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। 'तपांसि' चान्द्रायणादीनि, 'स्वाध्यायो' वेदाध्ययनम्। कर्माण्यग्निहोत्रादीनि। सर्व एते गुणाः सर्वेषु समुच्चिता इति द्रष्टव्याः। न हि एकगुणसद्भाव इतरगुणहीनस्य पात्रतामापादयति, किं तु कस्यचित्कोऽपि प्रकर्ष उच्यते। यथा च निष्ठाशब्दः समाप्तिवचनः प्रकर्षं लक्षयति। तन्निष्ठस्तत्पर उच्यते। सर्वगुणसद्भावेऽपि यदि एकत्र प्रकर्षोऽन्ये च गुणाः मध्यमाः, तथा च भवत्येव पात्रम्। अप्रकृष्टे त्वेकस्मिन् सर्वगुणसद्भावेऽपि न पात्रतां लभन्ते।

समुच्चयश्च व्याख्यायते, येन न ज्ञानरहितस्य कर्मानुष्ठानसद्भाव इत्युक्तं द्वितीये। अन्यैस्तु **ज्ञाननिष्ठः** परिव्राजको व्याख्यायते। तस्य हि आत्मज्ञानाभ्यासः कर्मन्यासेन विशेषतो विहितः। **तपोनिष्ठो** वानप्रस्थः। स हि तापस इत्याख्यायते। "ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्यादिति" (६।२३)। **तपःस्वाध्यायनिष्ठा** ब्रह्मचारिणः। **कर्मनिष्ठा** गृहस्थाः। अतश्चानाश्रमिणो निषिध्यन्ते। तथा च पौराणिकाः "चातुराश्रम्यबाह्येभ्यः श्राद्धं नैव प्रयोजयेत्"॥ १३४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ज्ञान**मात्मज्ञानं तन्निष्ठा यतयः। **तपश्चान्द्रायणादि** तन्निष्ठा वनस्थाः। **तपो** गुरुशुश्रूषादि **स्वाध्यायो** वेदाध्ययनं तन्निष्ठा ब्रह्मचारिणः। **कर्म** यज्ञादि तन्निष्ठा गृहस्थाः। अत्राश्रमिवाचि यतय इति पदत्यागेन ज्ञाननिष्ठादिपदेन तदभिधानमाश्रमान्तरवर्तिनां ज्ञाननिष्ठत्वादिगुणवतां प्राप्त्यर्थम्। एतेन वानप्रस्थानां श्राद्धभोजनं गम्यते॥ १३४॥

(३) **कुल्लूकः**। केचिदात्म**ज्ञान**परा ब्राह्मणा भवन्ति। अन्ये प्राजापत्यादितपःप्रधानाः। अपरे तपोऽध्ययननिरताः। इतरे यागादिपराः॥ १३४॥

(४) **राघवानन्दः।** 'ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि चे'(३।१३२) त्युक्तम्। तत्रैव व्यवस्थितविषयार्थं तत्पात्राण्यनुवदन् व्यवस्थितिमाह **ज्ञाननिष्ठा** इति द्वाभ्याम्। **ज्ञान**मध्यात्मं **तप**श्चान्द्रायणादि **स्वाध्यायो** वेदाभ्यासः। **कर्मा**ग्निहोत्रादि **तन्निष्ठा**स्तदेकशरणाः॥ १२४॥

(५) **नन्दनः।** हव्यकव्ययोः पात्रविशेषे नियमं वक्तुं पात्रवैविध्यं तावदाह **ज्ञानेति। ज्ञाननिष्ठाः** अध्यात्मज्ञानिनः। **तपोनिष्ठाः** कृच्छ्रचान्द्रायणादिप्रधानाः। **स्वाध्यायज्ञाननिष्ठा** मन्त्रब्राह्मणार्थविदः। **कर्मनिष्ठा** याज्ञिकाः॥ १३४–५॥

(६) **रामचन्द्रः।** द्वाभ्यामाह **ज्ञाननिष्ठा इति। ज्ञाननिष्ठाः** संन्यासिनः। **तपोनिष्ठाः** वानप्रस्थाः। **तपःस्वाध्यायनिष्ठा** ब्रह्मचारिणः। **कर्मनिष्ठाः** गृहस्थाः॥ १३४॥

(७) **मणिरामः।** चतुर्विधान् ब्राह्मणानाह **ज्ञानेति**॥ १३४॥

(८) **गोविन्दराजः। ज्ञाननिष्ठा इति।** केचिदात्मज्ञानपरा विप्रा भवन्ति। अपरे कृच्छ्रा**दितपः**प्रधानाः। अन्ये तु **तपो**ऽध्ययननिरताः। अपरे यागादितत्पराः॥ १३४॥

**ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः।**
**हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि॥ १३५॥**

(१) **मेधातिथिः।** गुणविभागे प्रयोजनमाह **कव्यानि** पितॄनुद्दिश्य यद्दीयते तत् 'कव्यम्'। तानि **ज्ञाननिष्ठेषु प्रतिष्ठाप्यानि** प्रदेयानीत्यर्थः। यत्नवचनात्तदभावे चतुर्ष्वपि हव्यवत्। पित्र्ये ज्ञाननिष्ठाः पात्रतमाः। उक्तं हि "पात्राणामपि तत्पात्रं" इति, अन्नदानमविशेषेण चतुर्भ्योऽपि इति श्लोकार्थः। **न्यायः** शास्त्रीयो विधिः॥ १३५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** किंतु वन्याहारेणैव तत्कर्तव्यमिति **यत्न**त इत्यसंभवेऽपीत्यर्थः॥ १३५॥

(३) **कुल्लूकः।** ततः किमत आह **ज्ञानेति।** ज्ञानप्रधानेभ्यः पित्र्यर्थान्नानि यत्नाद्दातव्यानि। देवान्नानि पुनर्न्यायावधृतार्थशास्त्रानुसारेण चतुर्भ्योऽपि॥ १३५॥

(४) **राघवानन्दः। प्रतिष्ठाप्यानि** देयानि। **यथान्यायं** पूर्वपूर्वालाभे उत्तरोत्तरस्य ग्राह्यतेति॥ १३५॥

(६) **रामचन्द्रः। ज्ञाननिष्ठेषु** ज्ञाननिष्ठादिषु सर्वेषु चतुर्षु **यत्नतः कव्यानि हव्यानि** च **यथान्यायं** यथाक्रमं **प्रतिष्ठाप्यानि** देयानीत्यर्थः॥ १३५॥

(७) **मणिरामः।** हव्यकव्यदाने विभागमाह **ज्ञाननिष्ठेष्विति। यथान्यायं** न्यायावधृतार्थशास्त्रानुसारेण॥ १३५॥

(८) **गोविन्दराजः।** इति किमाह **ज्ञाननिष्ठेष्विति।** ज्ञानप्रधानेभ्यो यत्नेन पित्रर्थानि देयानि। देवार्थानि पुनः शास्त्रमर्यादानतिक्रमेण चतुर्भ्यो ज्ञाननिष्ठादिभ्योऽपीति॥ १३५॥

**अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ।।**
**अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ।। १३६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । संशयोपन्यासार्थः श्लोकः ।। १३६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **अश्रोत्रियो**ऽनधीतवेदः ।। १३६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यो**ऽश्रोत्रियपितृकः** स्वयं च श्रोत्रियः यः श्रोत्रियपितृकः । स्वयं वाऽ**श्रोत्रियः** ।। १३६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैव प्रासङ्गिकं विशेषमाह **अश्रोत्रिय** इति द्वाभ्यां । **वेदपारगः** शाखाध्यायी ।। १३६ ।।

(५) **नन्दनः** । एवं तावद्गुणवान्पात्रमित्युक्तम् । इदानीं गुणवतो निर्गुणपितृकादगुणोऽपि गुणवत्पितृकः पात्रमित्यर्धाधिकश्लोकेनाह **अश्रोत्रिय** इति । **पुत्रो**ऽश्रोत्रियस्य ।। १३६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **यस्य पिता** अ**श्रोत्रियः** मूर्खः स्यात् **पुत्रः वेदपारगः** स्यात् । यद्वा **पुत्र** अश्रोत्रियः **पिता** वेदपारगः स्यात् । अनयोस्तयोर्मध्ये **यस्य श्रोत्रियः पिता स्याद्वेदपारगः** स्यात् । तस्य पुत्रं ज्यायांसं पूज्यं जानीयादित्यर्थः । 'आत्मा वै जायते पुत्र' इति श्रुतेः । इतरः पुत्रो वेदपारगो मन्त्रपूजनार्थं सत्कारमर्हति ।। १३६-७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **अश्रोत्रिय इति** । यः अश्रोत्रियपुत्रः आत्मना श्रोत्रियो, यः श्रोत्रियपुत्रः आत्मना चाश्रोत्रियः ।। १३६ ।।

**ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ।।**
**मन्त्रसम्पूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ।। १३७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । यस्य पिता अपाठः, स्वयं तु वेदपारगः साङ्गवेदाध्यायी, इतरस्य तु पिता वेदपारगः, स्वयं तु मूर्खः, तयोः कः श्रेयानिति संशयं कृत्वा सिद्धान्तमाह **अनयोः** स्वयंश्रोत्रियपितृमूर्खस्वयंमूर्खपितृश्रोत्रिययोः स्वयंमूर्खपितृश्रोत्रियं **ज्यायांसं** प्रशस्यं श्राद्धे योग्यं जानीयात्, यद्यस्य श्रोत्रियः पिता । इतरो मन्त्रपूजनार्थं, न ब्राह्मणबुद्ध्या, किं तु मन्त्रास्तेन येऽधीतास्ते तत्र पूज्यन्ते । न मन्त्राणां श्राद्धे पूजा विहिता, तस्मान्नासौ भोजयितव्यः ।

श्लोकद्वयेन संशयसिद्धान्तरूपोपन्यासेनार्थवादभंग्या पितृश्रोत्रियत्वमात्मश्रोत्रियत्वं च श्राद्धभोजने कारणमित्येतदुच्यते, न केवलमात्मश्रोत्रियत्वम् । न तु स्वयमनधीयानस्य पितृश्रोत्रियत्वेन भोज्यता विधीयते । तदुक्तं "दूरादेव परीक्षेत" (३।१३०) इति । अत्राध्ययनपरीक्षा पुरुषद्वयविषयाऽनेन नियम्यते । जातिगुणपरीक्षा तु ततोऽधिकपुरुषविषयाऽपि यथा । अतस्तस्यैव विशेषाभिधानार्थत्वादपौनरुक्त्यम् ।। १३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **मन्त्रसंमानना** वेदपूजा **सत्कारं** पूजामात्रम्, हव्यकव्यानि श्रोत्रियायैव देयानीत्युक्तत्वात् पितृश्रोत्रियत्वं श्रुतिमात्रपरम् ।। १३७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** तयोः कः श्रेष्ठ इत्युपन्यस्य विशेषमाह **ज्यायांसमिति। अनयोः** पूर्वश्लोकनिर्दिष्टयोर्मध्ये श्रोत्रियपुत्रं स्वयमश्रोत्रियमपि ज्येष्ठं जानीयात्। पितृविद्यादरपरमिदम्। यः पुनरश्रोत्रियस्य पुत्रः स्वयं च श्रोत्रियः स तदधीतवेदपूजनार्थं पूजामर्हति, वेद एव तद्द्वारेण पूज्यत इति पुत्रविद्यादरपरमिदम्। तस्माद्वचनभङ्ग्या श्रोत्रियपुत्रः स्वयं च श्रोत्रियः श्राद्धे भोजयितव्य इत्युक्तम्। न तु श्रोत्रियपुत्रस्य स्वयमश्रोत्रियस्यैवाभ्यनुज्ञानं श्रोत्रियायैव देयानीति विरोधात्। एवं च 'दूरादेव परीक्षेते'ति विद्याव्यतिरिक्ताचारादिपरीक्षार्थत्वेनावतिष्ठते ।। १३७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** अनयोरश्रोत्रियश्रोत्रियपुत्रयोः। **मन्त्रो** वेदस्तस्य **संपूजनमेव** अश्रोत्रियपुत्रपूजा। अतः श्रोत्रियपुत्रस्यैव पात्रता। एतस्यैव विशिष्टसंस्कारवत्त्वादित्यर्थः ।। १३७ ।।

(५) **नन्दनः।** श्रोत्रियपुत्रं **ज्यायांसं विद्यात्।** पात्रतायामिदं न पूज्यतायामित्युत्तरार्धेनोक्तम्। **इतरो**ऽश्रोत्रियः ।। १३७ ।।

(७) **मणिरामः। इतरः** अश्रोत्रियपुत्रः स्वयं श्रोत्रियः सः **मन्त्रसंपूजनार्थं** वेदपूजनार्थं पूजामर्हतीत्यर्थः ।। १३७ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** तयोः कः श्रेयानित्युपन्यस्याह **ज्यायांसमिति।** अनयोः पूर्वनिर्दिष्टयोर्मध्यात् श्रोत्रियपुत्रं आत्मनाऽश्रोत्रियमपि प्रशस्यतरं जानीयात्। पश्चात् अश्रोत्रियपुत्रः आत्मना च श्रोत्रियः स तदधीतवेदपूजार्थं पूजामर्हति। वेदस्तद्द्वारेण पूज्यते। न त्वसौ पूजार्ह इति पित्रादिविद्यापरीक्षार्थम्। एतच्चाश्रोत्रियदानार्थं। "श्रोत्रियायैव देयानी"ति नियमात्। एवं च 'दूरादेव परीक्षेते' त्येतत् विद्याव्यतिरिक्तजात्यतिशयपरीक्षार्थत्वेनावतिष्ठते ।। १३७ ।।

**न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।।**
**नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ।। १३८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** सत्यामेव श्रोत्रियत्वादिपूर्वगुणसंपदि मैत्र्यादिनिमित्तेन प्रतिषेधोऽयम्। **मित्रं** समानसुखदुःखम् आत्मनिर्विशेषं **न श्राद्धे भोजयेत्। धनैः** अन्यैः **अस्य** मित्रस्य स्वीकारो मैत्रीकरणम्। अविच्छेदो वा मैत्र्यम्, उपकार इति यावत्। न केवलं **न मित्रं** भोजयेत्, यावदरिं शत्रुमपि। **नारिं न मित्रं यं विद्याद्यत्र** न रागो न द्वेषो, न चान्यः कश्चित्सम्बन्धो यत्र प्रीतिनिमित्ता कार्यार्थिता शंक्येत; अरिमित्रयोः प्रदर्शनार्थत्वात्। तथा सम्बन्धाशङ्कयैव मातामहादयोऽनुकल्पपक्षोक्ताः। शत्रावपि मैत्रीकरणार्थदानसम्भावना यदि मैत्रीकरणमिति (संग्रहः)। "अरिसंग्रहणं न कर्तव्यम्।" विस्पष्टार्थं भविष्यति ।। १३८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। मित्रमिति** सौजन्यरूपमैत्र्यसिद्ध्यर्थमित्यर्थः। **नारिमित्यनेन** वैरिणः श्राद्धभोजनीयता निषिद्धा, न **मित्रमिति** मैत्रीनिमित्तकत्वाभावेऽप्यग्निसाक्षिककृतवैधमैत्रीकर्मणो मित्रस्य ।। १३८ ।।

(३) **कुल्लूकः । श्राद्धे न मित्रं भोजयेत् ।** धनान्तरैरस्य मैत्री संपादनीया, न **शत्रुं न च मित्रं** यञ्जानीयात्तं ब्राह्मणं **श्राद्धे भोजयेत्** ।। १३८ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** तत्प्रतियोगिनं निवेदयन्नाह **नेति । अस्य** मित्रस्य धनैः श्राद्धद्रव्यव्यतिरिक्तैः **संग्रहो** मित्रतासंपादनम् । व्यतिरेकमुक्त्वान्वयमाह **यमिति । द्विजं** विप्रं 'ब्राह्मणाश्चाहवनीयार्थं' इत्युक्तेः ।। १३८ ।।

(५) **नन्दनः । धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।** धनैस्तत्संग्रहणीयं मित्रं न श्राद्धेन । एवं वचनादसंग्रहार्थस्य गुणवत्तामात्रहेतुकस्य मित्रभोजनस्यानुज्ञानमर्थात्सिद्धम् ।। १३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** वर्ज्यानाह **नेति ।** मित्रं श्राद्धे न भोजयेत् । यस्य धनैः संग्रहः कार्यः वार्धुषिकः तस्य श्राद्धेऽधिकारो नास्ति । **अरिं** शत्रुं **मित्रं वा यं विद्यात्तं द्विजं श्राद्धे न भोजयेत्** ।। १३८ ।।

(७) **मणिरामः ।** धनैः श्राद्धीयव्यतिरिक्तैः ।। १३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः । न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः । नारिं न मित्रं नाभिभर्तुं विज्ञातं भोजयेद् द्विजम् ।। मित्रं श्राद्धे न भोजयेत् ।** किं तर्हि ? धनान्तरैरस्य मैत्र्यादिस्नेहः कार्यः । **यं** पुनः **शत्रुं न मित्रं नाभिभर्तुं विज्ञातं ब्राह्मणं श्राद्धे भोजयेत्** ।। १३८ ।।

## यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ।।
## तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ।। १३९ ।।

(१) **मेधातिथिः ।** पूर्वप्रतिषेधस्यार्थवादोऽयम् । मित्रशब्दोऽयं भावप्रधानः, 'मित्रप्रधानानि' मैत्रीप्रधानानि । तेनोभयोः अरिमित्रयोः (अवि)शेषः । देवतोद्देशेन दानमदृष्टार्थं वा केवलं ब्राह्मणभोजनं 'हवींषि' इति लक्ष्यते ।

**प्रेत्य फलं नास्ति ।** "ननु चासमानकर्तृत्वात्कार्यानुत्पत्तिः । प्रेणः कर्ता पुरुषः श्राद्धकृत्, अस्तितायाः नञर्थोपहितायाः फलम् ।" केचिदाहुः—प्रेत्येति शब्दान्तरं परलोकवचनं निपातसंज्ञम् । अथवा प्रेणोऽपि फलं कर्तृ 'तस्य फलं प्रेत्य' प्रकर्षेण निकटमागत्यापि 'न भवति' न भोग्यतां याति ।। १३९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । मित्रप्रधानानि** सन्त्युद्देशप्रवृत्तानि । **हवींषि** यज्ञाः ।। १३९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** मित्रशब्दोऽयं भावप्रधानः । यस्य **मैत्रीप्रधानानि** हव्यकव्यानि **तस्य** पारलौकिकं **फलं** न भवतीति फलाभावकथनपरमिदम् । **प्रेत्येति** परलोक इत्यर्थे शब्दान्तरमव्ययमिदं नतु क्त्वान्तम् । तेनासमानकर्तृकत्वे कथं क्त्वेति नाशङ्कनीयम् ।। १३९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** मित्रभोजने निन्दामाह **यस्येति । हवींषि** देवतायै देयानि । ननु श्राद्धस्य फलमेव नास्ति, कथं तदभावोक्तिरिति चेत्—"आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः" (आचार.२७०) इति **याज्ञवल्क्योक्तेरायुरादिकं** फलमस्तीत्यर्थः ।। १३९ ।।

(५) **नन्दनः** । न केवलं श्राद्ध एव मित्रं वर्जनीयं, किंतु दैवेऽपीत्याह **यस्येति** । **मित्रप्रधानानि** मैत्रफलप्रधानानि । गुणदत्ताप्रधानानि । **हवींषि** दैवानि कर्माणि ।। १३९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **यस्य** पुंसः **श्राद्धानि मित्रप्रधानानि तस्य** पुंसः **प्रेत्य श्राद्धेषु हवनीयेषु** च **फलं नास्ति** ।। १३९ ।।

(७) **मणिरामः** । तत्कृते निन्दामाह **यस्येति** ।। १३९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **यस्येति** । यस्य मित्रोपकारपराणि हव्यकव्यानि तस्य पारलौकिकं **फलं** न भवतीति फलाभावकथनपरमेतत्, न केवलं पूर्वमित्रस्य श्राद्धादिना देयं यावत् ।। १३९ ।।

**यः सङ्गतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ।।**
**स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ।।१४०।।**

(१) **मेधातिथिः** । **सङ्गतानि** मित्रभावान् यः कुरुते **श्राद्धेन मोहात्** शास्त्रार्थमजानानः **स स्वर्गात् च्यवते**, न प्राप्नोति स्वर्गमित्यर्थः । असम्बन्धसामान्यात् च्यवत इत्युच्यते । यथा प्राप्तः स्वर्गं ततश्च्युतः स्वर्गेण न सम्बध्यते एवमयमपि । अनेन च श्राद्धफलाप्राप्तिरेव कथ्यते । सर्वशेषता हि तथा भवति । **श्राद्धमित्रः** श्राद्धं मित्रमस्येति । मित्रलाभहेतुत्वात् श्राद्धमेव 'मित्रम्' —अतो बहुव्रीहिः । द्विजानामधमः । द्विजग्रहणं प्रदर्शनार्थम् । शूद्रेणापि न मित्राणि भोजनीयानि । "ननु चाब्राह्मण्यादेव शूद्रस्य मित्रत्वप्राप्तिर्नास्ति ।" केनैषा परिभाषा कृता, शूद्रस्य ब्राह्मणैर्मित्रैर्न भवितव्यम्?' । "समानजातीयानामेव मित्रव्यवहारो नोत्तमजातीयानां हीनजातीयैः सहेति" चेत्—एतदपि न; "एवं ह्याह श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः अस्ति मे पञ्चालेषु क्षत्रियो मित्रम् ।" इति । किं च सम्बन्धोपलक्षणार्थं च मित्रप्रतिषेधो व्याख्यातः । भवन्ति च शूद्रस्य ब्राह्मणा अर्थसम्बन्धिनः, पारशवस्य ज्ञातयोऽपि ।। १४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **श्राद्धमित्रः** श्राद्धोत्पादितमैत्रः ।। १४० ।।

(३) **कुल्लूकः** । स्वर्गफलं श्राद्धस्य दर्शयितुं पूर्वोक्तफलाभावमेव विशेषेण कथयति **य इति** । **यो** मनुष्यः **संगतानि** मित्रभावं शास्त्रानभिज्ञतया । **श्राद्धेन कुरुते** श्राद्धमेव मित्रलाभहेतुत्वान्मित्रं यस्य **स श्राद्धमित्रो** द्विजापसदः । स **स्वर्गलोकाच्च्यवते** तं न प्राप्नोतीत्यर्थः । श्राद्धस्यापि स्वर्गफलत्वमाह **याज्ञवल्क्यः** (१।२७०) "आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः" ।। १४० ।।

(४) **राघवानन्दः** । न केवलं फलं नाप्नोति प्रत्युतानर्थं चर्च्छेदित्याह **य इति** । **संगतानि** मित्रभावं **कुरुते** संपादयति । **श्राद्धेन** श्राद्धीयद्रव्येणैव मित्राणां लाभो यस्य स **श्राद्धमित्रः** । **द्विजाधमश्**चातुर्वर्ण्यः ।। १४० ।।

(५) **नन्दनः** । मित्रस्य हव्येषु परिग्रहो दोषवत्तर इत्याह **य इति** । **संगतानि** संश्लेषान् । **स्वर्गाद्धर्**मान्तरार्जितादपि ।। १४० ।।

(६) **रामचन्द्रः । यः** मानवः **श्राद्धेन मोहात्संगतानि** मित्रभावं गतानि **कुरुते सः स्वर्गलोकाच्च्यवते ;** श्राद्धे मित्रं यस्य सः **श्राद्धमित्रः** सः द्विजाधमः ।। १४० ।।

(७) **मणिरामः । श्राद्धेन संगतानि** मैत्रीभावं, श्राद्धं भोजयित्वा मैत्री न कर्तव्येत्यभिप्रायः ।। १४० ।।

(८) **गोविन्दराजः । य इति ।** 'श्राद्धदानेनानेन सह मैत्री मे भविष्यती'ति एवं यो मनुष्यः शास्त्रानभिज्ञतया **श्राद्धेन** मित्रभावं कुरुते स मित्रहेतुत्वात् श्राद्धं मित्रमस्येति **श्राद्धमित्रो** द्विजापसदः कर्मान्तरार्जितेनापि स्वर्लोके न संबध्यत इति ।। १४० ।।

**सम्भोजनी साऽभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ।।**
**इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ।।१४१।।**

(१) **मेधातिथिः ।** संशब्दः सहार्थे वर्तते । सह भुज्यते यया सा **सम्भोजनी ।** मैत्र्या हि सहभोजनं प्रवर्तते । गोष्ठीभोजनं वा सम्भोजनमिष्यते । पिशाचानामयं धर्मो यत् श्राद्धे मित्रसंग्रहः । रथ्याः पुरुषाः पिशाचाः । **सा** दक्षिणा **इहैव** लोके **आस्ते,** नामुत्र फलं दातुं समर्था । **गौर्यथाऽन्धैकस्मिन्नेव** गृहे तिष्ठति, एवमियं दक्षिणा **इहैवास्ते,** मित्रजनार्थैव भवति । न पितृभ्य उपकारार्थाय प्रभवति । **दानं दक्षिणा** ।। १४१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । संभोजनी** संगत्यर्थभोजनसंबन्धिनी **दक्षिणा** दानं । **पैशाची** पिशाचगामिनी । **इहैव** न पितृलोकं याति ।। १४१ ।।

(३) **कुल्लूकः । सा दक्षिणा** दानक्रिया **संभोजनी** सह भुज्यते यथा सा संभोजनी गोष्ठी बहुपुरुषभोजनात्मिका । पिशाचधर्मत्वात्पैशाची मन्वादिभिरुक्ता । सा च मैत्रीप्रयोजनकत्वान्न परलोकफलेहलोक **एवास्ते** यथाऽन्धा **गौरेकस्मिन्नेव** गृहे तिष्ठति न गृहान्तरगमनक्षमा ।। १४१ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** "न प्रसज्जेत विस्तर" (३।१२५) इत्युक्तस्तत्रैव परिषदि दत्तमदत्तमिति श्रुतिमाश्रित्याह **संभोजनीति ।** सह बहुभिर्भोज्यतया **सा संभोजनी ।** पिशाचानां बहुभिः सह भोजनस्य प्रसिद्धत्वादस्यापि तथात्वमित्याह **पैशाची दक्षिणा** दक्षिणाप्रवणादिसाध्यतया श्राद्धक्रिया श्राद्धस्य प्रकृतत्वात् इह लोके स्थितौ दृष्टान्तः **गौरन्धेति** । एषा यथा **एकवेश्मन्येवावस्थिता** गृहान्तरं न याति तद्वत्पारलौकिकं फलमददती **इहैव** यशोर्थे **तिष्ठतीति** भावः ।। १४१ ।।

(५) **नन्दनः । सा दक्षिणा** तन्मित्रश्राद्धम् । **सम्भोजनी** सम्भोजनरूपा । बहूनामेकत्र भोजनं संभोजनम् । **पैशाची** पिशाचैरुपभोग्येति द्विजैरभिहिता । **इहैवास्ते** इह लोके मित्रमेव सा संगृह्णाति नामुत्र पितॄन् । अन्यत्र गमनाशक्तौ दृष्टान्त उक्तः **गौरन्धेवैकवेश्मनीति** ।।१४१।।

(६) **रामचन्द्रः ।** सह भुज्यते यया सा **संभोजनी** मित्रद्विजे **पैशाची दक्षिणा** अभिहिता उक्ता । पिशाचानुपतिष्ठतीत्यर्थः । केवलं **एकवेश्मनि अन्धा गौरिव** सा दक्षिणा भोजनी

दक्षिणा इहलोके अत्रार्थे आस्ते। परत्र पितृभ्यो **नोपतिष्ठत** इत्यर्थः। 'पिशाचानामयं धर्मो यः श्राद्धे मित्रसंग्रहः'॥ १४१॥

(७) **मणिरामः। या दक्षिणा** दानक्रिया **संभोजिनी** सह भुज्यते यया सा संभोजिनी गोष्ठीति यावत्। सा बहुपुरुषभोजनात्मिका पिशाचधर्मत्वात् **पैशाची द्विजैः** मन्वादिभिः उक्ता। सा मैत्रीप्रयोजनत्वान्न परलोकफला। **इहैव लोके आस्ते** यथा **अन्धा गौः** एकस्मिन्नेव गृहे तिष्ठति न गृहान्तरगमनक्षमा तथेत्यर्थः॥ १४१॥

(८) **गोविन्दराजः। संभोजिनीति।** सा दक्षिणा तद्दानं सह भुज्यते ययेति **सम्भोजिनी** या गोष्ठी पिशाचधर्मत्वात् **पैशाची** मन्वादिभिरुक्ता। सा च मित्रार्थत्वा**दिहलोके एवास्ते अन्धा गौर्यथैकस्मिन्** गृहे। न परलोके प्रत्युपकाराय भवति॥ १४१॥

**यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्॥**
**तथाऽनृचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलम्॥ १४२॥**

(१) **मेधातिथिः। ईरिणं** ऊषरम्। यस्मिन् क्षेत्रे भूमिदोषात् बीजमुप्तं न चोद्गच्छति तदीरिणम्। यत्र **वप्ता** कर्षको न **लभते फलम्।** एवम**नृचे** वेदाध्ययनरहिते **हविर्दैवं** पित्र्यं च दत्वा न लभते **फलम्।** 'अनृच' इति सप्तम्यन्तम्। ऋचो वेदोपलक्षणार्थम्॥ १४२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। ईरिणे** ऊषरे **हविर्दैवं** पित्र्यं वा॥ १४२॥

(३) **कुल्लूकः। ईरिण**मूषरदेशो यत्र बीजमुप्तं न प्ररोहति तत्र यथा **बीजमुप्त्वा कर्षको** न फलं प्राप्नोत्येवमविदुषे श्राद्धदानफलं दाता न प्राप्नोतीति॥ १४२॥

(४) **राघवानन्दः।** अविदुषे दानं न देयमिति सदृष्टान्तमाह **यथेति। ईरिणे** ऊषरे देशे **वप्ता** क्षेत्रे बीजक्षेप्ता **अनृचे** वेदशून्ये **हविरिति** कव्यस्याप्युपलक्षणम्॥ १४२॥

(५) **नन्दनः।** इदानीं हव्येषु मित्रश्रोत्रिययोरश्रोत्रियो वर्जनीयो न मित्रमित्याह **यथेरिण इति**॥ १४२॥

(६) **रामचन्द्रः। यथेरिण** ऊषरे **उप्त्वा फलं बीजं न लभते तथा अनृचे** अनधीयानाय **हविर्दत्वा दाता फलं न लभते**॥ १४२॥

(७) **मणिरामः। ईरिणे** ऊषरे॥ १४२॥

(८) **गोविन्दराजः। यथेति।** यथा ऊषरे भूप्रदेशे धान्यान्युप्त्वा कर्षकः **फलं न** प्राप्नोति एवमश्रोत्रियाय श्राद्धादि दत्वा **दाता न फलं** प्राप्नोति। अश्रोत्रियदाने वैफल्यकथनार्थमेतत्॥ १४२॥

**दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः॥**
**विदुषे दक्षिणां दत्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च॥ १४३॥**

(१) **मेधातिथिः।** "विदुषे या दक्षिणा दीयते सा दातॄन् फलभागिनः कुरुते इति युक्तम्। प्रतिग्रहीतारस्तु कतरत् फलं भुञ्जते? **यदि** तावददृष्टं तदयुक्तम्; अनोदितत्वात्

प्रतिग्रहस्य दृष्टफललाभेन प्रवृत्तेः । अथ दृष्टं, तदविदुषोऽपि दृश्यते" सत्यम्; प्रशंसैषा ! 'ईदृशमेतद्विदुषे दानं यत्प्रतिग्रहीताऽप्यदृष्टफलभाग्भवेत्; सत्यपि दृष्टे किं पुनर्दातेति' । **प्रेत्य** स्वर्गे । इह कीर्तिः—'यथाशास्त्रमनुतिष्ठती'ति जनैः साधुवादो दीयते । **विधि-वदि**त्यनुवादो 'ददाति चैवं धर्मेष्वि'ति ।। १४३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। दातॄन्प्रेत्य फलभागिनः । इह** प्रतिग्रहीतॄन् । अनृचां तु इह भोगसंभवेऽपि प्रत्यवायोदर्कत्वात्फलं सदप्यसदेवेति तात्पर्यम् ।। १४३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । वेदतत्त्वविदे यथाशास्त्रं दत्तमैहिकामुष्मिक**फलभागिनो** दातॄन् करोति । ऐहिकं फलं यथाशास्त्रानुष्ठानेन लोके ख्यातिरूपमानुषङ्गिकमिति **मेधातिथि-गोविन्दराजौ** । वयं त्वायुरादिकमेवैहिकफलं ब्रूमः । 'आयुः प्रजां धनं विद्या' (याज्ञ. १।२७०) मित्याद्यैहिकामुष्मिकादिफलत्वेनापि श्राद्धस्य याज्ञवल्क्यादिभिरुक्तत्वात् । **प्रतिग्रहीतॄंश्च** श्राद्धलब्धधनानुष्ठितयागादिफलेन परलोके सफलान्कुरुते अन्यायार्जितधनानुष्ठितया-गादेरफलप्रदत्वात् । **इह** लोके न्यायार्जितधनारब्धकृष्यादिफलातिशयलाभात्सफलान्कुरुते ।। १४३।।

(४) **राघवानन्दः** । विदुषे तु देयमित्याह **दातॄनिति । विदुषे** वेदार्थविदे दक्षिणा श्राद्धे दीयमाना **दातॄन्** श्राद्धकर्तॄन् **प्रतिग्रहीतॄन्** श्राद्धादेश्यान् । उक्तफलेन **फलभागिनः कुरुत** इत्यन्वयः । वाक्यार्थानुरोधेन पदार्थत्यागस्योचितत्वात् दक्षिणाशब्देन श्राद्धान्नभोजनम् । दृष्टफलत्वादिति भावः ।। १४३ ।।

(५) **नन्दनः** । यत एवं तस्मान्मित्रायापि विदुषे हव्यानि दातव्यानि, न कदाचिदप्य-विदुष इत्याह **दातॄनिति** । तस्मान्मित्रेभ्योऽश्रोत्रियो वर्जनीय इत्यभिप्रायः ।। १४३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । विधिवद्**विदुषे** दत्ता **दक्षिणा प्रेत्य** परलोके **इह** चेहलोके **दातॄन्प्रति-ग्रहीतॄंश्च फलभागिनः कुरुते** ।। १४३ ।।

(७) **मणिरामः** । विदुषे दानस्तुतिमाह **दातॄनिति** ।। १४३ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **विदुषे दक्षिणा दत्ता भवति प्रेत्य चेह च** । वेदार्थविदे च यथाशास्त्रं श्राद्धादि दत्तं पितृतृप्त्याख्यामुत्रिकफलेन कीर्त्यनुषङ्गैहिकफलेन च **दातॄन्** सफला कुरुते । **प्रतिग्रहीतॄंश्च** तत्प्रतिग्रहलब्धधनानुष्ठितयागादिफलेन अमुत्र सफलान् कुरुते । अधर्मार्जितद्रव्यानुष्ठितयागादिनैष्फल्यात् । इह लोके च धर्मार्जितधनकृतकृष्यादिफलविषयान् सफलान् कुरुते इति विद्वद्दानस्य दातृप्रतिग्रहीतृदृष्टादृष्टाफलकथनार्थमेतत् ।। १४३ ।।

**कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।**
**द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ।। १४४ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मित्रं** सोपकारं इहैव लाभसंभवात् अकामानुमतौ कामं, तेनान्यसंभवेऽपि मित्रस्य कथंचिदनुज्ञोक्ता । अभिरूपमुक्ताभिमतरूपशालिनम् ।। १४४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **वरं** विद्वद्ब्राह्मणाभावे गुणवन्मित्रं भोजयेन्नतु विद्वांसमपि **शत्रुं,** यतः शत्रुणा **श्राद्धं भुक्तं** परलोके **निष्फलं** भवति। यथोक्तपात्रासंभवे मित्रप्रतिप्रसवार्थमिदम् ।। १४४ ।।

(४) **राघवानन्दः।** पात्रान्तरालाभे प्रतिप्रसवमाह **काममिति। अभिरूपं** गुणवन्तम्। रिपोः पात्रत्वाभावे हेतुः। **द्विषतेति।** अरिणा **भुक्तं न** केवलं **निष्फलं** अपि त्वयशस्करमित्याह **हीति।** मित्रभोजने यशो दृश्यते ।। १४४ ।।

(५) **नन्दनः।** श्राद्धेऽप्यरिमित्रयोररिरेव वर्जनीयतर इत्याह **काममिति। अभिरूपं** विद्वांसम्। **हविः**शब्दोऽयं सामर्थ्यात्किव्यवचनः ।। १४४ ।।

(६) **रामचन्द्रः। कामं** ऐच्छिकं **श्राद्धे** मित्रमर्चयेत्। अपि निश्चयेन, **अभिरूपं** योग्यं गुणसंपन्नमरिं शत्रुं **नार्चयेत्** हि निश्चयेन। **द्विषता** शत्रुणा **भुक्तं हविः** दातुः **प्रेत्य निष्फलं** भवति ।। १४४ ।।

(७) **मणिरामः।** यद्यन्यो विद्वान्न लभ्यते तदा किं कर्तव्यमत आह **काममिति।** तथा चैतादृशस्थलेऽपि मित्रं चेद्रोचयति तदा न पूर्वोक्तदोष इत्यर्थः ।। १४४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। काममिति।** वरं गुणवद्ब्राह्मणान्तराभावे सगुणं मित्रं **श्राद्धे** भोजयेत् न योग्यमपि शत्रुं, यतोऽरिणा श्राद्धादि **भुक्तं** परलोके **निष्फलं भवतीति।** अन्याभावे गुणवन्मित्रप्रतिप्रसवार्थमेतत्। छन्दोमात्राध्यायिनि श्रोत्रियशब्दप्रयोगात् तदाश्रयणं नैयमिकमुक्तम् ।। १४४ ।।

**यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ।।**
**शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ।। १४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** 'वेदपारग–शाखान्तग–**समाप्तिकाः**' शब्दा एकार्थाः समन्त्रब्राह्मणिकायाः कृत्स्नायाः शाखाया अध्येतृनाचक्षते—न मन्त्रसंहिताया, नापि ब्राह्मणस्य, तदेकदेशस्य वा। वेदैकशाखाध्यायिनोऽपि श्रोत्रिया उच्यन्ते। 'श्रोत्रियाय देय'मित्यत्र, श्रोत्रियश्च वेदाध्यायी, वेदशब्दश्च समन्त्रब्राह्मणिकां शाखामाचष्टे, तदेकदेशमपि अतस्तन्निवृत्त्यर्थमुक्तम् कृत्स्नशाखाध्यायी कथं गृह्येतेत्येवमर्थमिदम्।

"ननु चाश्रमिणो भोजनीया इत्युक्तम्। तत्रानधीतसकलस्वाध्यायानां नैव गार्हस्थ्याद्याश्रमसम्भवः। एवं ह्युक्तं 'वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्य' इति"। ब्रह्मचारिणस्तर्हि प्रक्रान्तवेदाध्ययनस्य असमाप्तिगस्यापि स्यात्। वेदपारगशाखान्तगसमाप्तिकशब्दैरेकार्थैः कार्त्स्न्यं सर्वैरेव प्रतिपाद्यते। एकेनैव सिद्धे वृत्तानुरोधान्नानारूपैकार्थानेकशब्दोच्चारणम्। वेदानां पारं गच्छति। शाखाया अन्तःसमाप्तिरस्यास्तीति **समाप्तिकः। अध्वर्युर्यजुर्वेदशाखाध्यायी,** नायमृत्विग्विशेषवचनोऽध्वर्युशब्दः। 'आध्वर्यवः' प्रवचनमुच्यते, तदध्ययनसम्बन्धात् पुरुषोऽध्वर्युः। **छन्दोगः** सामवेदाध्यायी। स्मृत्यन्तरे त्रिसाहस्रविद्यः **समाप्तिक** उक्तः। तत्र 'सहस्र'शब्दः सहस्रगीतिसम्बन्धात् सामवेदे वर्तते, तस्य इमाः

साहस्र्यस्तिस्रः साहस्र्यः विद्या यस्य स 'त्रिसाहस्रविद्यः'। ताण्डिकमौक्थिक्यं सामगानमिति सहस्रवर्त्मनः सामवेदस्य तिस्रो विद्याः। दशतयी चतुःषष्टि ब्राह्मणं च बह्वृचम्। अन्ये त्वाथर्वणिकनिषेधार्थमिमं श्लोकं मन्यन्ते। कात्स्न्यविवक्षायामेतदेवावक्ष्यत्—'अधीत वेदशाखां यः कृत्स्नां तं भोजयेद् द्विजम्' इति "ननु चाथर्वणिकनिषेधेऽप्येतत्समानम्। तत्रापि शक्यमेवं वक्तुं तन्निषेधे प्रायेण—'न भोज्य आथर्वणिक' इत्येवमेवावक्ष्यत्। स्वशब्देन निषेधप्रतिपत्तिर्लाघवं च"। नैतदेवम्; कमन्यद्विधानेनान्यनिषेधोऽवगम्यते स्वशब्देन वा निषेधः? । विचित्रा धर्मोपदेशस्य कृतिर्मनोः ॥(१४४)१४५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वेदपारगमेकवेदसंबन्धिपूर्णकशाखाध्यायिनम्। शाखान्तगमित्यस्याप्ययमर्थः। अध्वर्युं यजुर्वेदिनं समाप्तिकं शाखापारगं। समाप्तिगमिति क्वचित्पाठः ॥ १४५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। श्रोत्रियायैव देयानीत्यनेन छन्दोमात्राध्यायिनि श्रोत्रियशब्दप्रयोगात्तदाश्रयणमावश्यकमुक्तम्। इदानीं त्वधिकफलार्थं मन्त्रब्राह्मणात्मककृत्स्नशाखाध्यायिनि श्रोत्रिये दानमाह **यत्नेति**। ऋग्वेदिनं मन्त्रब्राह्मणात्मकशाखाध्यायिनं यत्नतो भोजयेत् तथाविधमेव यजुर्वेदिनम्। वेदस्य पारं गच्छतीति **वेदपारगः**। शाखाया अन्तं गच्छतीति **शाखान्तगः**। समाप्तिरस्यास्तीति **समाप्तिकः**। सर्वैरेव शब्दैर्मन्त्रब्राह्मणात्मककृत्स्नशाखाध्येताऽभिहितः ॥ १४५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। श्राद्धभोक्तृषु नियममाह **यत्नेनेति**। **बह्वृचं** ऋग्वेदमन्त्राध्यायिनं। **शाखान्तगं** शाखाध्यायिनं तमेव **अध्वर्युं** यजुर्वेदिनं। सामगं **छन्दोगं** **समाप्तिगं** मन्त्रब्राह्मणोपनिषदन्तगं अथर्ववेदविनिवृत्त्यर्थं विशेषणानीति केचित् ॥ १४५ ॥

(५) **नन्दनः**। पूर्वं श्रोत्रिया एव पात्रमित्युक्तम्। इदानीं तेषु विशेषमाह **यत्नेनेति**। **वेदपारगं** एकस्या ऋग्वेदशाखायाः पारगम्। एतेन शाखान्तगं समाप्तिगमिति पदद्वयमिह व्याख्यातम्। **अध्वर्युर्यजुर्वेदाध्यायी** ॥ १४५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **बहूवृचं** ऋग्वेदाध्यायिनं **वेदपारगं यत्नेन भोजयेत्**। **शाखान्तगं** स्वशाखापारगं वा। **अथाध्वर्युं** यजुर्वेदाध्यापकं वा। **छन्दोगं** सामशाखाध्यायिनं वा। **समाप्तिगं** स्वशाखापारगमित्यर्थः ॥ १४५ ॥

(७) **मणिरामः**। अधिकफलार्थमाह **यत्नेनेति**। **बहृवृचं** ऋग्वेदिनं **अध्वर्युं** यजुर्वेदिनं **समाप्तिकं** समाप्तिरस्यास्तीति समाप्तिकः तं वेदपारग-शाखान्तग-समाप्तिकशब्दैः मन्त्रब्राह्मणात्मककृत्स्नशाखापाठकोऽभिधीयते ॥ १४५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अधुना तु सति संभवे फलविशेषार्थं समस्तशाखाध्यायिनि दानमाह **यत्नेनेति**। समस्तशाखाध्यायिनं **बहृवृचं** तथाविधमेवा**ध्वर्युं छन्दोगं** चैवंविधमेव **यत्नेन श्राद्धे भोजयेत्**। वृत्तवशान्नानाप्रकारैः शब्दैः सकलशाखाध्यायिन एवैते युक्ताः। ये तु छन्दोमात्राध्यायिप्रतिषेधार्थं श्रोत्रियायैव देयानीत्येतद्विशेषणार्थत्वमस्याहुः। तेषां अनेनैव सिद्धे श्रोत्रियायैव देयानीत्येतदनर्थकं स्यात् ॥ १४५ ॥

**एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ॥**
**पितृणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥ १४६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** कश्चिन्मन्येत पितृकृत्ये त्रीनित्युक्तम्। पूर्वश्लोके च नानाशाखाध्यायिन उपात्ताः; तत्र सब्रह्मचारिणां नास्ति प्राप्तिरिति तदाशङ्कानिवृत्त्यर्थमिदम्। **एषां** त्रयाणां त्रैविद्यानाम**न्यतमो** भोजनीयः। एतदुक्तं भवति— समानशाखाध्यायिनो नानाशाखाध्यायिनो वा भोजनीयाः। **अर्चितः** पूजितः प्रार्थित अर्घादिना; **साप्तपौरुषी तृप्तिः।** सप्तपुरुषान्व्याप्नोति। अनुशतिकादेराकृतिगणत्वादुभयपदवृद्धिः। कालमहत्त्वोपलक्षणार्थं चैतत्। दीर्घकाला पितृणां तृप्तिर्भवति। यावत्सप्तपुरुषा आगामिनः पुत्रपौत्रादयो जाता जनिष्यन्ते वा तावत्तथाविधब्राह्मणदानात् पितरस्तृप्यन्ति। **शाश्वती** नान्तरा विच्छिद्य पुनरुद्भवति, किं पुनः सर्वदा स्थितैव ॥ १४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **शाश्वती** चिरस्थायिनी **साप्तपौरुषी** पिण्डतत्तल्लेपभागितया सप्तमपुरुषपर्यन्तगामिनी ॥ १४६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** तद्भोजनेऽधिकं फलमाह **एषामिति। एषां** संपूर्णशाखाध्यायिनां बह्वृचादीनां मध्या**दन्यतमो** यस्य सम्यक् **पूजितः** सञ्छ्राद्धे भुङ्क्ते **तस्य** पुत्रादिसप्तपुरुषाणां **शाश्वत्य**विच्छिन्ना **पितृणां तृप्तिः** स्यात्। **साप्तपौरुषी**त्यनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः, तस्य चाकृतिगणत्वात् ॥ १४६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** एतत्त्रयाणां भोजने पितृतृप्तिविशेषमाह **एषामिति। अर्चितः** श्राद्धादौ शाश्वतं अनवच्छिन्नं 'शतायुर्वै पुरुष' इति श्रुतेः काललक्षणा सप्तशतवर्षपर्यन्ता **साप्तपौरुषी**त्येवं सर्वत्र। आगामिसप्तपुरुषपर्यन्तेति **मेधातिथिः** ॥ १४६ ॥

(५) **नन्दनः। एषां** बह्वृचादीनाम्। **साप्तपौरुषी शाश्वती** तृप्तिः स्यात्, सप्तपुरुषाणां सदातनी तृप्तिः स्यादित्यर्थः। सप्तपुरुषा यमेनोक्ताः त्रयः पूर्वे पराश्चैव ह्यात्मा तत्रैव सप्तमः। ते सप्तपुरुषाः सर्वे तदन्नमुपभुञ्जत इति ॥ १४६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। यस्य** श्राद्ध **एषां** श्रोत्रियाणा**मन्यतमो भुञ्जीत तस्य पितृणां शाश्वती तृप्तिः** स्यात्। **साप्तपौरुषी** सप्तपुरुषपर्यन्तेत्यर्थः ॥ १४६ ॥

(७) **मणिरामः।** तद्भोजनेऽधिकफलमाह **एषामिति। एषां मध्ये अन्यतमः** यः कश्चित् ॥ १४६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। एषामिति।** एषां बह्वृचादीनां मध्यात् **अन्यतमो यस्य** त्वर्चितमनाः **श्राद्धं भुञ्जीत तस्य** पित्रादिसप्तपुरुषव्यापिनी अनवच्छिन्ना **पितृणां तृप्तिः स्यादिति** समस्तशाखाध्यायिभोजनफलकथनम्। अत एव विज्ञायते-यत्रक्वचनावस्थिताः पितरः पुत्राद्युपहृतकव्यैः सुखमासते। इतश्च पितृतृप्तिफलमेतत्; श्राद्धकर्मणि च अकृताभ्यागमकृतविप्रणाशावत्र चोदनीयौ, शास्त्रैकगोचरत्वे वैश्वानरवत्तथैवागमात् ॥ १४६ ॥

**एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ॥**
**अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ १४७ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** पितृयज्ञमित्यारभ्य पञ्चविंशतिमात्राः श्लोका अतिक्रान्तास्तत्रैतावानर्थोऽभिहितः। अमावास्यायां श्राद्धं कर्तव्यम्। श्रोत्रियो विद्वान् साधुचरणः प्रख्याताभिजनः श्रोत्रियापत्यं असम्बन्धी भोजनीयः। परिशिष्टं सर्वमर्थवादार्थम्। **एषो**ऽनन्तरोक्तः **प्रथमो** मुख्यः **कल्पो** विधिः, श्राद्धे यदसम्बन्धिने दीयते। **अयं तु** वक्ष्यमाणो**ऽनुकल्पो ज्ञेयः**। मुख्याभावे योऽनुष्ठीयते प्रतिनिधिन्यायेन सोऽनुकल्प उच्यते। **सदे**त्यादि स्तुत्यर्थः ॥ १४७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रथमः कल्पो** मुख्यः पक्षः ॥ १४७ ॥

(३) **कुल्लूकः।** हव्यकव्ययोरुभयोरेव प्रदाने यदसंबन्धिश्रोत्रियादिभ्यो दीयत इत्ययं **मुख्यः कल्प** उक्तः। **अयं तु** मुख्याभावे वक्ष्यमाणो**ऽनुकल्पो** ज्ञातव्यः सर्वदा साधुभि**रनुष्ठितः** ॥ १४७ ॥

(४) **राघवानन्दः।** कल्पान्तरं वदन्नुक्तमनुवदति **एष इति। प्रथमो** मुख्यः। **अनुकल्प** एषामभावप्रयुक्तः प्रतिनिधिः ॥ १४७ ॥

(५) **नन्दनः। एष** इत्युक्तस्य परामर्शः। **अयमिति**। वक्ष्यमाणस्य। **अनुकल्पोऽपि** प्रशस्त एवेत्युक्तम्। **यः सदा सद्भिरनुष्ठित** इति ॥ १४७ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** हव्यकव्ययोः प्रदाने **एष प्रथमः कल्पः उक्तः। अयं अनुकल्पो** वक्ष्यमाणलक्षणः। **सदा सद्भिरनुष्ठितः** ॥ १४७ ॥

(७) **मणिरामः। प्रथमः कल्पः** मुख्यः पक्षः। **अयं** वक्ष्यमाणः **अनुकल्पः** गौणः पक्षः ॥ १४७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। एष इति।** हव्यकव्यप्रदानेन **एष** मुख्यो विधिः यदसंबन्धिभ्यः श्रोत्रियादिभ्यो दीयत इति। **अयं** वक्ष्यमाणः पुनर्मुख्याभावे विधिर्बोद्धव्यः; मुख्याभावे च सर्वदा साधुभि**रनुष्ठितः** ॥ १४७ ॥

**मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम् ॥**
**दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ १४८ ॥**

(१) **मेधातिथिः। स्वस्त्रीयो** भगिन्याः पुत्रः। **विट्पति**र्जामाता, प्रजावचनत्वात् विट्शब्दस्य। अतिथिरित्यन्ये। स हि सर्वविशां पतिः गृहाभ्यागतो लोकेऽपि विट्शब्देनोच्यते। **बन्धुः** शालः सगोत्रादिः ॥ १४८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। गुरु**माचार्यं। **विट्पतिं** जामातरं। **बन्धुं** मातुलपुत्रादिम् ॥ १४८ ॥

(३) **कुल्लूकः। स्वस्त्रीयो** भागिनेयः। **गुरु**र्विद्यागुरुराचार्यादिः। **विड्**दुहिता

तस्याः **पतिर्विट्पतिर्जामाता**। **बन्धुर्मातृष्वसृपितृष्वसृपुत्रादिः**। एतान्मातामहादीन्दशमुख्यश्रोत्रियाद्यसंभवे भोजयेत् ।। १४८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तमेवाह **मातामहमिति**। **स्वस्त्रीयं** भागिनेयं। **दौहित्रं** दुहितुरपत्यं। **विट्पतिं** जामातरं। **बन्धुं** मातृष्वसुः पुत्रादिकम् ।। १४८ ।।

(५) **नन्दनः**। **विशः** प्रजायाः **पतिरिति** **विट्पतिर्जामाता** ।। १४८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **मातामहादयः** प्रसिद्धाः, **विट्पतिं** पितृगृहे कन्या तस्याः **विट्पतिं** भगिनीपतिमित्यर्थः। **ऋत्विक्** प्रसिद्धः। **याज्यः** शिष्यः **बन्धुः** शालसगोत्रादिः एतान्भोजयेत् ।। १४८ ।।

(७) **मणिरामः**। अनुकल्प एवाह **मातामहमिति**। **विट्पतिं** जामातरं, **बन्धुः** मातृस्वस्रादिपुत्रम्। श्रोत्रियाद्यसंभवे एतान् दश भोजयेदित्यर्थः ।। १४८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **मातामहमिति**। **मातामहमातुलभागिनेयश्वशुरविद्यागुरुदौहित्रर्त्विग्याज्यान्** भोजयेत्। विट् प्रजा तस्याः पतिं **विट्पतिं** जामातरं **बन्धुं** च सगोत्रादिकम् ।। १४८ ।।

**न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।।**
**पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ।। १४९ ।।**

**[तेषां*मन्ये पंक्तिदूष्यास्तथान्ये पंक्तिपावनाः।**
**अपांक्तेयान् प्रवक्ष्यामि कृत्यानर्हान् द्विजाधमान् ।।]**

(१) **मेधातिथिः**। नायं दैवे कर्मणि ब्राह्मणपरीक्षाप्रतिषेधः, किं तर्हि? काणश्लीपद्यादीनां कदाचिद्दैवेऽभ्यनुज्ञानार्थः। **पित्र्ये कर्मणि** श्राद्धकाले प्राप्ते परीक्षां यत्नेन कुर्यात्, न दैवे। कदाचिद्वक्ष्यमाणानपि भोजयेत्। ये चाभ्यनुज्ञायन्ते तान्दर्शयिष्यामः। अन्ये तु वक्ष्यमाणस्य प्रतिषेधप्रकरणस्य यत्नतो वर्जनार्थमुपक्रममात्रं श्लोको, न तु काणादीनां दैवेऽभ्यनुज्ञानार्थः ।। १४९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **न परीक्षेत** दोषगुणौ सूक्ष्मेक्षिकया नावश्यमन्वेष्यौ। **दैवे** वैश्वदेविके तत्रापि स्तेनवृत्तित्वादिकं वक्ष्यमाणमवश्यं परीक्ष्यम्; 'हव्यकव्ययो'रित्यभिधानात् ।। १४९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। धर्मज्ञो **दैवश्राद्धे** भोजनार्थं **न ब्राह्मणं** यन्त्रतः **परीक्षेत** लोकप्रसिद्धिमात्रेणासौ साधुतया भोजयितव्यः। **पित्र्ये** पुनः **कर्मण्युपस्थिते** पितृपितामहाद्यभिजनपरीक्षा कर्तव्येति **प्रयत्नतःशब्दस्यार्थः** ।। १४९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पैत्र्ये ब्राह्मणपरीक्षामनुवदन् दैवे तदभावमाह **नेति**। **दैवे** देवपक्षे देवतादेये श्राद्धे वा ।। १४९ ।।

(५) **नन्दनः**। **प्रयत्नत** इति दैवेऽप्यवकृष्य योजनीयम्। **दैवे** कर्मणि **प्रयत्नतो न परीक्षेत**। अनेन किंचित्परीक्षणमप्रतिषिद्धमित्यवगन्तव्यम् ।। १४९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पितृकर्मणि **प्राप्ते ब्राह्मणान्यत्नतः परीक्षेत** ।। १४९ ।।

[**रामचन्द्रः**। **तेषां*मिति**। ये पङ्क्तिसंदूष्याः पङ्क्तिसन्दूषणकर्तारः ।। १ ।।]

(७) **मणिरामः । दैवे कर्मणि** दैवश्राद्धभोजनार्थम् ।। १४९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नेति ।** धर्मज्ञः **दैवे कर्मणि** भोजनार्थं **ब्राह्मणं न परीक्षेत** लोकप्रसिद्धिमात्रेणैवासौ तथा प्रतिपद्य तत्र भोजनीयः । **पित्र्ये कर्मण्युपस्थिते** 'दूरादेव परीक्षेते'त्युक्तनीत्या **यत्नतः परीक्षेत** ।। १४९ ।।

**ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।।**
**तान् हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ।। १५० ।।**

(१) **मेधातिथिः । स्तेनः** चौरः । **पतितः** पञ्चानां महापातकानां अन्यतमस्य कर्ता । **क्लीबो** नपुंसकः उभयव्यञ्जनो वातरेताः षण्ढश्च । **नास्तिका** लोकायतिकादयः, 'नास्ति दत्तं नास्ति हुतं नास्ति परलोक' इति ये स्थितप्रज्ञास्तेषां 'वृत्तिः' आचारः अश्रद्दधानता, नास्तिकवृत्तिर्वृत्तिर्येषां ते **नास्तिकवृत्तयः ।** उत्तरपदलोपी समासः । नास्तिका इत्येव सिद्धे वृत्तिपदसमाश्रयणं श्लोकपूरणार्थम् । अथवा नास्तिकेभ्यो वृत्तिर्जीवनं येषां त एवमुच्यन्ते । **तान् हव्यकव्ययो**र्दैवे पित्र्ये च **अनर्हान्मनुरब्रवीत् ।** प्रतिषेधादरार्थं मनुग्रहणम् । सर्वधर्माणां मनुनोक्तत्वात् ।। १५० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । स्तेना** अल्पस्तेयवृत्तयः । **पतिता**स्त्यक्तस्ववर्णधर्मतया । पतिततुल्याः । **क्लीबाः** षण्ढाः । **नास्तिकवृत्तयो** नास्ति कर्मफलमित्यभिमानिनः ।। १५० ।।

(३) **कुल्लूकः । स्तेन**श्चौरः स च सुवर्णचोरादन्यः, तस्य पतितशब्देनैव ग्रहणात् **पतितो** महापातकी । **क्लीबो** नपुंसकः । **नास्तिकवृत्ति**र्नास्ति परलोक इत्येवं वृत्तिः यस्य । **एतान्** दैवपितृकृत्ययोरुभयोरेवायोग्यान्**मनुरब्रवीदिति** । मनुग्रहणं निषेधादरार्थं । सर्वधर्माणामेव मनुनोक्तत्वात् ।। १५० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** परीक्षामाह **य इति** सप्तदशभिः । **स्तेना**श्चौराः । **पतिताः** पातित्यहेतवो वक्ष्यन्ते **क्लीबा** नपुंसकाः । कृत्रिमाकृत्रिमभेदेन द्विधा **नास्तिकवृत्तयः ।** नास्ति कं परलोकसुखं इति वृत्तिर्वाङ्मानसयोर्येषां ते । हव्यकव्ययोरिति विषयसप्तमी । **अनर्हान्** न पात्रभूतान् । **हव्यं** देवदेयं, **कव्यं** पितृदेयमित्युक्तम् ।। १५० ।।

(५) **नन्दनः । स्तेना** अत्र स्वर्णादन्यस्य द्रव्यस्यापहर्तारः । **क्लीबाः** षण्ढाः । स्वयमास्तिका अपि नास्तिकेभ्यो वृत्तिर्जीवनं येषामिति तथोक्ता अश्रद्दधाना वा ।। १५० ।।

(६) **रामचन्द्रः । हव्यकव्ययोः** ये स्तेनादयस्तान**नर्हान्मनुरब्रवीत् । स्तेनाः** सुवर्णव्यतरिक्तचौराः ।। १५० ।।

(७) **मणिरामः ।** अपूज्यानाह **य** इत्याद्यष्टभिः श्लोकैः । **स्तेनाः** सुवर्णचौरादन्ये । तस्य पतितशब्देनैव ग्रहणात् । **पतिताः** महापातकिनः ।। १५० ।।

(८) **गोविन्दराजः । ये स्तेनाः पतिताः क्लीबा इति ।** स्तेनादीन् विप्रान् हव्यकव्ययोरुभयोरप्ययोग्यान् मनुराह । चोरान् ब्राह्मणसुवर्णादन्यत्र, तस्य पतितत्वेनोपसंग्रहात् । **पतित**मेकादशे वक्ष्यति सुवर्णादन्यत्र, तस्य पतितत्वेनोपसंग्रहात् । पतितमेकादशे वक्ष्यति क्लीबो नपुंसकम् । नास्ति परलोककर्मेत्येवं वर्तनं येषां ते नास्तिकवृत्तयः ।।१५०।।

**जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ।।**
**याचयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ।। १५१ ।।**

(१) **मेधातिथिः। जटिलो** ब्रह्मचारी। तस्य ह्ययं केशविशेषः पाक्षिको विहितो—"मुण्डो वा जटिलो वा स्यात्" इति। उपलक्षणं च जटा ब्रह्मचारिणस्ततो मुण्डोऽपि प्रतिषिध्यते। तस्य चानधीयानस्य प्रतिषेधः। "ननु 'श्रोत्रियायैव देयानि' इति चानधीयानस्य प्राप्तिरेव नास्ति"।

प्रक्रान्ताध्ययनः अनधीतवेदः अगृहीतवेदश्चेत्प्राप्नुयात्। "ननु च 'वेदपारग' इति वचनात् कुतः प्रक्रान्ताध्ययनस्य प्राप्तिः?"। एवं तर्हि अधीतवेदोऽप्यस्वीकृतवेदोऽनधीयानोऽभिप्रेतः। "व्रतस्थमपि दौहित्रम्" (मनु. ३।२३४) इत्यनेन वा दौहित्रतैवात्र नाध्ययनमिति कश्चिन्मन्येत तदर्थमिदम्। अनधीयानस्य प्रतिषेधाद्विदुषस्तस्याधिकारोऽस्तीत्यवगम्यते। **दुर्बालः** स्खलितलोहितकेशो विकलेन्द्रियो वा। तस्य हि निर्वचनं कुर्वन्ति—दूर्वया शाद्वलेनाप्यलं तस्य वासो भवतीति। स हि दूर्वयेव प्राव्रियते लज्जया च वाससामभावे तावन्मात्रेणाप्यपिदधाति शेफम्। **कितवो** द्यूतकारः। **याजयंति च ये पूगान्** संघान्। व्रात्यस्तोमादिभिर्व्रात्यानां हि संहितानां यागो विहितः। प्रतिषिद्धं च तद्याजनं 'व्रात्यानां कृत्वेति'। वयं ब्रूमः—यः क्रमशः प्रत्येकमपि बहून्याजयति बहुकृत्व आर्त्विज्यं करोति, सोऽपि न भोज्यः। तथा च **वसिष्ठः** "यश्चापि बहुयाज्यः स्याद्यश्चोपनयते बहून्" इति। केचिदाहुः—श्राद्धग्रहणात्पित्र्य एवैषां प्रतिषेधो न तु दैवे। तदयुक्तम्। तदपि श्राद्धांगमेव श्राद्धशब्देन युक्तं वक्तुम् ।। १५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। जटिलं** ब्रह्मचारिणं। मन्त्र**मनधीयानम**ध्ययनाद्विरतं। **दुर्वालो** दुश्चर्मा, शिपिविष्ट इति यावत्। **कितवो** द्यूतरहितः। **पूगान्**समूहान् याजयन्तीत्यनेन याजका विवक्षिताः। तत्र ह्यनेके यजमाना भवन्ति, सत्रे तु यजमानत्वादृत्विजामदोषः ।। १५१ ।।

(३) **कुल्लूकः। जटिलो** ब्रह्मचारी। 'मुण्डो वा जटिलो वा स्यादि'त्युक्तब्रह्मचार्युपलक्षणत्वाज्जटिलत्वस्य मुण्डोऽपि निषिध्यते। **अनधीयानं** वेदाध्ययनरहितं यस्योपनयनमात्रं न वेदादेशः। तेनास्वीकृतवेदस्यापि ब्रह्मचारिणो वेदाध्ययनकर्तुरभ्यनुज्ञानार्थोऽयं निषेधः। अतः 'श्रोत्रियायैव देयानीति' (३।१२८) ब्रह्मचारीतरविषयम्। **दुर्बलो** दुश्चर्मा। **मेधातिथिस्तु दुर्बालमिति** पठित्वा खलतिर्लोहितकेशो वा दुश्चर्मा वेत्यर्थत्रयमुक्तवान्। **कितवो** द्यूतकृत् **पूगयाजकाः** बहुयाजकाः। 'पूगः क्रमुकवृन्दयो'रित्याभिधानिकाः। अत एव **वसिष्ठः** 'यश्चापि बहुयाज्यः स्याद्यश्चोपनयते बहूनि'ति। **ताञ्छ्राद्धे** न **भोजयेदिति** न दैवे निषेधः। यत्रोभयत्र निषेधो मनोरभिमतः, तत्र हव्यकव्यग्रहणमुभयत्रेति वा करोति ।। १५१ ।।

(४) **राघवानन्दः। जटिलं** ब्रह्मचारिणं **अनधीयानं** वेदाध्ययनरहितं। **दुर्बलं** दुश्चर्माणं **दुर्वालं** कपिलकेशमिति **मेधातिथिः। कितवं** द्यूतरतं। **पूगान्**बहून् श्रेणीर्वा ।। १५१ ।।

(५) **नन्दनः। जटिलं** ब्रह्मचारिणम्। तस्य विशेषण**मनधीयानमिति। दुर्वालं** दुश्चर्माणम्। **कितवं** द्यूतकारकम्। **पूगान्** गणान् श्राद्धे निषेधाद्दैवेऽनुज्ञानमर्थात्सिद्धम्॥ १५१॥

(६) **रामचन्द्रः। जटिलो** ब्रह्मचारी। स भोजने प्रतिषिध्यते। **दुर्बलं** दुःखेन बलिनमिति। दुर्वर्णं दुश्चर्माणमित्यर्थः। **पूगाः** श्रेणयः। एतान् श्राद्धे न भोजयेत्॥ १५१॥

(७) **मणिरामः। जटिलं** ब्रह्मचारिणम्। जटिलशब्दो ब्रह्मचार्युपलक्षकः। तेन मुण्डोऽपि निषिद्धः। **दुर्बलः** दुश्चर्मा। **कितवः** द्यूतकर्ता। **पूगयोजकः** बहुयाजकः॥ १५१॥

(८) **गोविन्दराजः। जटिलमिति।** ब्रह्मचारिणं अस्वीकृतवेदं अत्यन्तानध्ययनस्य श्रोत्रियायैव देयानीति नियमे सति प्राप्त्यभावात्। तथा दुश्चर्मद्यूतवृत्त्ययाज्ययाजकान् श्राद्धे न भोजयेत्। दैवे त्वनिषेधः, तथा यत्रोभयनिषेधमिच्छति तत्र हव्यकव्यग्रहणं उभयत्र चेति करोति॥ १५१॥

## चिकित्सका देवलका मांसविक्रयिणस्तथा॥
## विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः॥ १५२॥

(१) **मेधातिथिः।** भिषजः **चिकित्सकाः। देवलकाः** प्रतिमापरिचारकाः। आजीवनसम्बन्धेनैतौ प्रतिषिध्येते। धर्मार्थत्वे तु चिकित्सकदेवलत्वयोरदोषः। **मांसविक्रयिणः** सौनिकाः। द्वितीयान्तपाठे पूर्वश्लोकादाख्यातानुषङ्गः। **विपणेन जीवन्तः** प्रतिषिद्धेन पणेन। प्रतिषिद्धाः पणा दशमाध्याये वक्ष्यन्ते। तेन ये जीवन्ति ते। **वर्ज्याः।** उभयत्र। **मांसविक्रयिणस्तु** धर्मार्थिनपि निषिध्यन्ते। यस्य केनचिन्मांसमुपहृतम्; अन्यस्य च तेनार्थः, उपहृतमांसस्य च घृतेन होमोपयोगिना,—स मांसं घृतेन विनिर्मिमीते,—भवत्यसौ धर्मार्थो विनिमयः। विक्रयशब्दवाच्यता विनिमयस्यापि भवतीत्यत ईदृशा धर्मार्थमांसविक्रयिणोऽपि प्रतिषिध्यन्ते॥ १५२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। चिकित्सकान्** भिषग्वृत्तीन्। **देवलकान्** धनार्थं देवार्चकान् **विपणेन** पण्यवीथ्यां विक्रेयप्रसारणेन जीवन्तः॥ १५२॥

(३) **कुल्लूकः।** चिकित्सको भिषक्। **देवलः** प्रतिमापरिचारकः। वर्तनार्थत्वेनैतत्कर्म कुर्वतोऽयं निषेधो नतु धर्मार्थम्; 'देवकोशोपभोजी च नाम्ना देवलको भवे'दिति **देवलवचनात्। मांसविक्रयिणः** सकृदपि। 'सद्यः पतति मांसेने'ति लिङ्गात्। **विपणेनेति। विपणो** वणिज्या तया जीवन्तः। 'हव्यकव्ययो'रित्यभिधानाद्दैवे पित्र्ये चैते त्याज्याः॥ १५२॥

(४) **राघवानन्दः। देवलकाः** 'देवकोशोपजीवी च नाम्ना देवलको भवेदि'ति **देवलेन** निर्णीताः। **मांसविक्रयिणः** सकृदपि 'सद्यः पतति मांसेने'ति वचनात्। **विपणेन** वाणिज्येन। **वर्ज्याः** पात्रत्वेनेति शेषः॥ १५२॥

(५) **नन्दनः**। 'देवकोशोपजीवी तु नाम्ना देवलको भवेदि'ति स्मृत्यन्तरवचनम्। मांसविक्रयादन्येनापि जीविनो **वर्ज्याः** प्रतिषिद्धाः। क्षीरादिद्रव्यं तद्विक्रयो विपणस्तेन जीवन्तः ॥ १५२ ॥

(६) **रामचन्द्रः। चिकित्सकादयो** हव्यकव्ययोः प्रदाने **वर्ज्याः** स्युः। धर्मार्थे तु चिकित्सकदेवलयोर्दोषाभावः। **विपणेन जीवन्तः** निन्द्यपण्येन जीवन्तः ॥ १५२ ॥

(७) **मणिरामः। देवलः** प्रतिमापरिचारकः 'देवकोषोपभोगी च नाम्ना देवलको भवेदि'ति देवलवचनात्। एतत्कर्म कुर्वत एवायं निषेधो ज्ञेयः ॥ १५२ ॥

(८) **गोविन्दराजः। चिकित्सका देवलका मांसविक्रयिणस्तथेति**। चिकित्सकादयो हव्यकव्ययोरुभयोरपि वर्जनीया भवेयुः। **चिकित्सको** भिषक्, **देवलकः** प्रतिषेधः न धर्मार्थम्, तत्र विहितत्वात्। **मांसविक्रयिणः** सकृदपि। तथाच 'सद्यः पतति मांसेने'ति लिङ्गम्। अन्यथा विपणेन गतार्थं स्यात्, इह च **जीवन्त** इत्युपादानात् मांसेन सकृदपि प्रतीयते। **विपणो** वाणिज्यम् ॥ १५२ ॥

**प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥**
**प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ॥१५३॥**

(१) **मेधातिथिः। प्रेष्य** आज्ञाकरः। ग्रामेण यो यत्रकुत्रचित् कार्येण प्रेष्यते। एवं राजप्रेष्यः। **कुनखी श्यावदन्तकः। प्रतिरोद्धा** गुरोर्वाग्व्यवहारेऽन्यत्र च यो गुरोः प्रतिबन्धे प्रातिकूल्ये च वर्तते। **त्यक्ताग्निस्त्रे**तावसथ्ययोरन्यतरस्यापि। **वार्धुषिः** सत्यन्यस्मिन् जीविकोपाये वृद्धिजीविकः। "वृद्धिस्तु योक्ता धान्यानां वार्धुषित्वं तदुच्यते' इति यत्स्मरणं तत्स्वप्रक्रियामेव। वैयाकरणा हि वृद्धिजीविनो धान्यादन्यत्रापि वार्धुषिकशब्दं स्मरन्ति। ते च शब्दार्थस्मरणे प्रमाणतराः, अभियोगविशेषात् ॥ १५३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रेष्यो** धनार्थमादिष्टकारी। **श्यावदन्तकः** कपिशवर्णदन्तः। **प्रतिरोद्धा** विरोधी। **त्यक्ताग्निस्त्य**क्ताहितत्रेताग्निः। **वार्धुषिर्वृ**द्धिजीवी ॥ १५३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। भृतिग्रहणपूर्वकं ग्रामाणां राज्ञश्चाज्ञाकारी। कुत्सितनखकृष्णदन्तगुरुप्रतिकूलाचरणशीलत्यक्तश्रौतस्मार्ताग्निकलोपजीविनश्च हव्यकव्ययोर्वर्ज्या इति पूर्वस्यैवात्रानुषङ्ग उत्तरत्र च ॥ १५३ ॥

(४) **राघवानन्दः। प्रेष्य इति**। ग्रामस्य राज्ञो वा। **श्यावदन्तकः** श्यामाः स्वत एवैकद्वित्रा दन्ता यस्य सः। **प्रतिरोद्धा गुरोः** प्रतिकूलाचरणः **त्यक्ताग्निः** विधितः स्वीकृताग्निः अविधितस्त्यक्ता। **वार्धुषिर्वृ**द्धिमात्रोपजीवी ॥ १५३ ॥

(५) **नन्दनः**। पूर्वजन्मनि स्वर्णचोरत्वात्**कुनखिनः** प्रतिषेधः। सुरापाना**च्छ्याव-दन्तस्य** प्रतिषेधः। **प्रतिरोद्धा** प्रतिकूलकः। 'समर्थं पण्यमादाय महार्थं यः प्रयच्छति। स वै वार्धुषिको नाम यश्च वृद्ध्या प्रयोजयेत्॥ 'यश्च निन्द्यतरं जीवन्प्रशंसत्यात्मनो गुणान्। स च वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्ह्यते' इति **यम**वचनम्॥ वर्जनीया इति वक्ष्यति ॥ १५३ ॥

(६) **रामचन्द्रः ।** वर्ज्यानाह **प्रेष्य इति ।** ग्रामस्य **प्रेष्यः** प्रेषकः राज्ञः । **गुरोः प्रतिरोद्धा** गुरोः प्रतिकूलः । **त्यक्ताग्निः** अग्नित्यागी त्रेतावसथ्यो त्यागी । वृध्दयोपजीवी **वार्धुषिः** । 'वृध्दया जीवी तु वार्धुषि'रित्यमरः ।। १५३ ।।

(७) **मणिरामः ।** **श्यावदन्तकः** कृष्णदन्तः **प्रतिरोद्धा** प्रतिकूलकर्माचरणशीलः **वार्धुषिः** शिल्पादिकलोपजीवी ।। १५३ ।।

(८) **गोविन्दराजः** ।। १५३ ।।

**यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ।।**
**ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ।। १५४ ।।**

(१) **मेधातिथिः । यक्ष्मी** व्याधितः । राजयक्ष्मगृहीत इत्यन्ये । **पशुपालः** यष्टिहस्तस्तद्वृत्तिजीवनः । **निराकृतिः** सत्यधिकारे महायज्ञानुष्ठानरहितः । अद्यत्वेऽप्यनुपजीव्यः अनद्धा निराकृतिरुच्यते । एवं हि **शतपथे** "यो न देवानर्चति न पितॄन्न मनुष्यान्" इति । यैस्तु पठ्यते "अस्वाध्यायश्रुतधनै (नो) निराकृतिरुदाहृतः" इति न ते शब्दार्थसम्बन्धविदः । तस्येहाप्राप्तिरेव, श्रोत्रियनियमात् । निराकर्ता देवादीनां 'निराकृतिरिति' धात्वर्थानुगमोऽस्ति ! धर्मधर्मिणोश्चाभेदविवक्षायां क्तिनापि प्रयोग उपपन्न इति । निपूर्वोऽयं धातुरपवर्जने वर्तते । निराकृता अपवर्जिता उच्यन्ते, 'भोजनान्निराकृता' 'अधिकारान्निराकृता' इति । अवर्जनं चाकृतिः सा निर्गताऽस्मादिति 'निराकृतिः" संस्थानं चाकृतिस्तथा च कुत्सायां निर्द्रष्टव्यो दुराकृतिर्निषिध्यते । आह च "वाग्रूपवयःशीलसंपन्नः" (गौ. सू. १५।९) । वाक्संपन्नो वाग्मी पटुवागिन्द्रियश्च । बहुजिह्वो न भोज्यः । रूपसंपन्नो मनोहरावयवसंनिवेशः । वयःसंपन्नः । 'युवभ्यो दानं प्रथमं प्रतिवयस इत्येक' (गौ. सू. १५।१०) इति । संज्ञाशब्दो वाऽयं क्तिजन्तः । **ब्रह्मद्विट्** ब्राह्मणानां वेदस्य वा द्वेष्टा ब्रह्मशब्दस्योभयार्थवाचित्वात् । "ब्रह्मापि ब्राह्मणः स्मृतः' इति । **गणः** सङ्घः । सहैकया क्रियया जीवन्ति ये ते गणशब्दवाच्यास्तदन्तर्गताश्चतुर्विद्यब्राह्मणाः । **परिवेत्तृपरिवित्ती** वक्ष्यमाणस्वरूपौ ।। १५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पशुपालो वृत्त्यर्थं । निराकृतिरस्वाध्यायः । **ब्रह्म** ब्राह्मणस्तद्द्विट् । **गणाभ्यन्तरो** गणानां नेता ग्रामणीरिति यावत् । गणानामाधिपत्येन देशान्तरप्रापयितार्थलोभेनेति वा ।। १५४ ।।

(३) **कुल्लूकः । यक्ष्मी** क्षयरोगी । **पशुपालो** वृत्त्यर्थतया च्छागमेषादिपोषकः **परिवेत्तृपरिवित्ती** वक्ष्यमाणलक्षणौ । **निराकृतिः** पञ्चमहायज्ञानुष्ठानरहितः । तथाच **च्छन्दोगपरिशिष्टं** 'निराकर्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः' । **ब्रह्मद्विड्**ब्राह्मणादीनां द्वेष्टा । **गणाभ्यन्तरो** गणार्थोपसृष्टसंबन्धिधनाद्युपजीवी ।। १५४ ।।

(४) **राघवानन्दः । यक्ष्मी** कासविशेषयुक्तः । **पशुपालस्**तदेकजीवी । **परिवित्तिः** वक्ष्यते । **निराकृतिः** पञ्चयज्ञानुष्ठानहीनः । **ब्रह्मद्विट्** वेदविप्रयोर्द्वेष्टा । **गणाभ्यन्तरः** गणार्थोत्सृष्टधनाद्युपजीवी ।। १५४ ।।

(५) **नन्दनः**। **यक्ष्मी** क्षयरोगी तस्य पूर्वजन्मनि ब्रह्महत्वात्प्रतिषेधः। **वृत्त्यर्थं** यः पशून्पालयति स पशुपालः। **परिवेत्तारं** वक्ष्यति। 'अधीत्य विस्मृते वेदे भवेद्विप्रो **निराकृति**'रिति **देवलः**।। 'आधाय योऽग्निमालस्याद्देवादीन्नैभिरिष्टवान्। निराकर्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृति'रिति **कात्यायनः**।। **ब्रह्मद्विट्** ब्राह्मणद्वेषी, **परिवित्ति** वक्ष्यति, **गणाभ्यन्तरो** गणप्रधानो गणस्य नेतेति यावत्।। १५४।।

(६) **रामचन्द्रः**। **यक्ष्मरोगी**। **परिवेत्ता** ज्येष्ठे अकृतदारे सति कनीयान्दारानग्नीन्गृह्णाति स परिवेत्ता। ज्येष्ठस्तु **परिवित्तिः**। **निराकृतिः** नहायज्ञानुष्ठानरहितः देवादीनां निराकर्ता च। **ब्रह्मद्विट्**ब्राह्मणानां वेदस्य वा द्वेष्टा वेदविस्मरणशीलो वा। **गणाभ्यन्तरः** गणवाहः। क्रियया जीवन्ति एते गणशब्दवाच्याः। तदभ्यन्तरगताः।। १५४।।

(७) **मणिरामः**। **यक्ष्मी** क्षयरोगी, **पशुपालः** वृत्त्यर्थं छागादिपोषकः, **परिवेत्ता** विवाहसंस्काररहिते ज्येष्ठे तत्संस्कारयुक्तः कनिष्ठः **निराकृतिः** पञ्चमहायज्ञानुष्ठानरहितः, **परिवित्तिः** परिवेत्तुर्ज्येष्ठभ्राता, **गणाभ्यन्तरः** गणार्थदत्तसर्वधनोपजीवी।। १५४।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यक्ष्मीति**। क्षयी वृत्त्यर्थत्वेन पशुपालः प्रसिद्धः, परिवेत्तृपरिवित्ती च वक्ष्यमाणौ। **निराकृतिः** वेदादीनां निराकर्ता अनुपजीव्यः ब्राह्मणानां द्वेष्टा गणमध्यगतो ब्राह्मणादिभिः इत्येते हव्यकव्ययोः वर्ज्याः स्युः।। १५४।।

**कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ।।**
**पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ।। १५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। चारणनटनर्तकगायकादयः **कुशीलवाः**। **अवकीर्णी** विप्लुतब्रह्मचर्यः। **वृषली** शूद्रा तस्याः पतिः। असत्यामन्यस्यां चात्र मन्यन्ते। वृषल्या एव च यः पतिः, यस्य द्विजातिभार्या नास्ति। "कुत एतत्?"। प्रकरणमन्तरे विगर्हिताचारसंग्रहे श्रूयते "एतान्विगर्हिताचारान्" (३।१६७) इति। शूद्राविवाहश्च सर्वेषामनुज्ञातत्वात्, न गर्हितः। स च कृतसजातीयापरिणयनस्यानुज्ञातः। अतोऽसत्यां सजातीयायां वृषल्या भर्ता प्रतिषिध्यतेऽत्र।

**पौनर्भवः**। 'पुनर्भूः' पुनरूढा। वक्ष्यति नवमेऽध्याये (१७५) "पत्या वा परित्यक्तेति"। **काण** एकेनाक्ष्णा विकलः। **यस्य च उपपति**र्जायाजारोऽवस्थितायां भार्यायामस्ति। उपेक्षया निन्द्यते। तदुक्तं "अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणीति"।। १५५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **कुशीलवो** नटवृत्तिः। **अवकीर्णी** व्रतमध्ये स्खलितब्रह्मचर्यः। पुनर्भूपुत्रः **पौनर्भवः**। **गृहे** भार्यायाम्।। १५५।।

(३) **कुल्लूकः**। **कुशीलवो** नर्तनवृत्तिः। **अवकीर्णी** स्त्रीसंपर्काद्विप्लुतब्रह्मचर्यः प्रथमाश्रमी यतिश्च। **वृषलीपतिः** सवर्णामपरिणीय कृतशूद्राविवाहः। **पौनर्भवः** पुनर्भूपुत्रो वक्ष्यमाणः। **उपपतिर्यस्य** जायाजारो **गृहे**ऽस्ति।। १५५।।

(४) **राघवानन्दः**। **कुशीलवो** नर्तकवृत्तिः। **अवकीर्णी** स्त्रीसंपर्कादुपप्लुत-

ब्रह्मचर्यः। **वृषलीपतिः** सवर्णामपरिणीय कृतशूद्राविवाहः। **पौनर्भवः** पुनर्भूपुत्रः। **यस्योपपतिः** स्वजायाजारः। **गृह** इत्यनेन नान्यत्र तथा दूषणमिति भावः ॥ १५५ ॥

**(५) नन्दनः। कुशीलवो** गायकः। 'गूढलिङ्गयवकीर्णी स्याद्यश्च भग्नव्रतस्तथेति' **देवलः** ॥ **वृषलीपतिः** अनूढत्रैवर्णिकस्त्रीकः केवलशूद्रापतिः। **काणस्य** पूर्वजन्मनि परनेत्रोत्पाटकत्वात्प्रतिषेधः। 'परदाराभिसंयोगात्पुरुषो जार उच्यते। स एवोपपति-र्ज्ञेयो यः सदा संवसेद्गृहे' इति देवलः ॥ १५५ ॥

**(६) रामचन्द्रः। कुशीलवो** नटनर्तकः। **अवकीर्णी** क्षतव्रतः। **पौनर्भवः** पुन-र्भ्वाञ्जातः। परपूर्वापतिः **पुनर्भूः। काणः** एकाक्षी। **यस्य गृहे चोपपतिः** जारः। एते वर्ज्याः ॥ १५५ ॥

**(७) मणिरामः। कुशीलवः** नर्तनवृत्तिः, अवकीर्णी स्त्रीसंसर्गाद्भ्रष्टब्रह्मचर्यः। **वृषलीपतिः** सवर्णामपरिणीय कृतशूद्राविवाहः, **पौनर्भवः** पुनर्भूपुत्रः, उपपतिः स्त्रीजारः ॥ १५५ ॥

**(८) गोविन्दराजः। कुशीलव इति।** नटगायकादिः। कृतस्त्रीसंसर्गयोगो ब्रह्मचारी शूद्राया भर्ता। पुनर्भ्वाः पुत्रो वक्ष्यमाणः, काणः, यस्य च जायाजारो गृहे इत्येते हव्यकव्ययोः परिहरणीयाः ॥ १५५ ॥

**भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।**
**शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ १५६ ॥**

**(१) मेधातिथिः। भृतकाध्यापकः** भृतकः सन् यो स्थितोऽध्यापकः। भृतक इति 'यदीयद्ददासि वेदमध्यापयामीति' यः प्रवर्तते पणेन स भृतकाध्यापकः। एषा हि भृतिः प्रसिद्धा कायवाहादिषु। यस्त्वियता धनेनेदमध्यापयामीति न निश्चित्य वचनव्यवस्थया पूर्वमध्यापयति लभते चाध्यापनार्थं, नासौ 'भृतकाध्यापकः'। अनिरूपितपरिमाणपूर्वं चार्थदाने विहितमध्यापनम्।

एवं **भृतकाध्यापितः।** यो व्युत्पन्नबुद्धिः सत्यकामवत् स्वयं भृतिं दत्वाऽधीते स एवमुच्यते। यस्तु पित्रादिना भृतिं दत्वा उपाध्यायान्तराभावेऽध्याप्यते न तस्य विगर्हिताचार-त्वम्। बालो हि पित्रा प्रतिषिद्धेभ्यो निवर्तनीयः। एतदुक्तं "गुरौ शिष्यश्च याज्यश्चेति"। शूद्रस्य **शिष्यो** व्याकरणादिविद्यासु। **गुरुश्च** शूद्रस्यैव। उपसर्जनीभूतस्यापि सम्बन्धः, स्मृतिशास्त्रत्वात् विगर्हिताचारत्वस्य सर्वशेषत्वात्। शूद्रगुरुत्वं च गर्हितं नान्यत्। वाचा दुष्टः परुषानृतभाषी। अभिशस्त इत्यन्ये। **कुण्डगोलकौ** वक्ष्यमाणौ ॥ १५६ ॥

**(२) सर्वज्ञनारायणः। भृतको** भृत्या परिक्रीतः। स एवाध्यापको यस्य स **भृतका-ध्यापकः।** एवमध्यापितोऽपि। **गुरुश्चैव** शूद्रस्येत्यनुषङ्गः। **वाग्दुष्टः** परुषवादी ॥ १५६ ॥

**(३) कुल्लूकः।** भृतिर्वेतनं तद्ग्राही **भृतकः** सन्योऽ**ध्यापकः** स तथा एवं **भृतकाध्या-पितः। शूद्रशिष्यो** व्याकरणादौ **गुरुश्च** तस्यैव **वाग्दुष्टः** परुषभाषी, अभिशस्त इत्यन्ये। **कुण्डगोलकौ** वक्ष्यमाणौ ॥ १५६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **भृतकाध्यापकः** भृतिं गृहीत्वैव योऽध्यापयति। स **भृतकाध्यापकः।** भृतेन शिष्यपुष्टेन गुरुणा योऽध्यापितः स **भृतकाध्यापितः।** कः कुत्सितार्थे, **शूद्रशिष्यः** शूद्रस्य शिष्यः। **गुरुः** शूद्रस्येति शेषः। **वाग्दुष्टः** परुषभाषी। **कुण्डगोलकौ** वक्ष्यमाणौ ।। १५६ ।।

(५) **नन्दनः।** **भृतकः** भृतिभुक्। अत्र **देवलः** 'भृतकाध्यापितो यश्च भृतकाध्यापकश्च यः। तावुभौ पितरौ ज्ञेयौ स्वाध्यायक्रयविक्रया'दिति ।। **गुरुः** शूद्रगुरुः। **कुण्डगोलकौ** वक्ष्यति ।। १५६ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **भृतकाध्यापकः** वेतनादानेन योऽध्यापयते सः। यः **भृतकाध्यापितः** अध्येता। **शूद्रः शिष्यो** यस्य एतादृशो गुरुः। **कुण्डगोलकौ।** 'पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्तरि गोलकः' ।। १५६ ।।

(७) **मणिरामः।** **भृतकाध्यापकः** वेतनं गृहीत्वा योऽध्यापकः, **भृतकाध्यापितः** वेतनेन योऽध्यापितः, तथा च एतादृशौ गुरुशिष्यावपि निषिद्धावित्यर्थः। **गुरुः** शूद्रगुरुः **कुण्डगोलकौ** अमृते मृते च भर्तरि क्रमेण जारजातौ ।। १५६ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **भृतकाध्यापक इति।** पणपूर्वाध्यापकः, पणपूर्वाध्यापितः, शूद्रशिष्यः तस्यैव च गुरुः, न स्वगुरुः, तस्यानुकल्पे भोज्यत्वेनोक्तत्वात्। परुषभाषी, कुण्डगोलकौ वक्ष्यमाणौ, एते हव्यकव्ययोः वर्ज्याः ।। १५६ ।।

**अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।।**
**ब्राह्मैर्यौनैश्च सम्बन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ।। १५७ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** असति कारणे यः परित्यजति मातरं पितरं आचार्यं च। गुरुशब्दः सामान्यशब्दत्वादुपाध्यायेऽपि प्रवर्तते। यत्तु "तथा सति मातापितृग्रहणं न कर्तव्यं स्यात्, गुरुत्वादेव सिद्धेरत आचार्य एवेह गुरुरिति व्याचक्षते"—तदयुक्तम्; असति मातापितृग्रहणे पितर्येव कृत्रिमाकृत्रिमन्यायेन प्रवर्तेत। पृथगुपादाने तु शास्त्रान्तरवदाचार्यः श्रेष्ठो गुरूणामिति सामान्यशब्दता सिद्धा भवति। परित्यागकारणं च "त्यजेत् पितरं राजघातकम्" इत्यादि। मातापित्रोः परित्यागस्तत्पादसेवादेः शुश्रूषायाः अकरणं, तदाराधने अतत्परत्वम्। गुरोरेवमेव। अध्यापनसमर्थेऽध्यापयितरि च तत्त्यागेनान्यत्राध्ययनम्।

**पतितैः संयोगं गतः** सम्बन्धं कृतवान्। **ब्राह्मैर्**याजनाध्यापनादिभि**र्यौनैः** कन्यादानादिभिः। "ननु च पतितत्वादेवासौ वर्ज्यः।" केचिदाहुः—"संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्" (११।१८०)—अर्वागयं प्रतिषेधः। "अथ केयं वाचोयुक्तिः सम्बन्धसंयोगं गत इति"। नात्र सम्बन्धशब्दो वैशेषिकादिप्रसिद्धया संयोगादिवचनः, किं तर्हि? क्रियैवात्र सम्बन्धहेतुत्वात्सम्बन्धशब्देनोच्यते। याजनादिलक्षणे संयोगशब्दश्च सम्बन्धमात्रमुपलक्षयति ।। १५७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **अकारणा**त्पातित्यं विना। **गुरो**राचार्यस्य **ब्राह्मै**रध्ययनाध्यापनैः। **यौनै**र्योनिसम्बन्धैर्वैवाहिकैः। **पतितैः** सावित्रीपतितैः व्रात्यैः ।। १५७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **मातुः पितुर्गुरूणां** च परित्यागकारणं विना **त्यक्ता** शुश्रूषादेरकर्ता। **पतितैश्**चाध्ययनकन्यादानादिभिः संबन्धैः संपर्कं गतः। पतितत्वादेवास्य निषेध इति चेन्न, संवत्सरात्प्रागिदं भविष्यति, 'संवत्सरेण पततीति' वक्ष्यमाणत्वात् ।। १५७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अकारणं पतितादिप्रयोजकजात्यन्तरादीन्विना गुर्वादीनां **परित्यक्ता संयोगं पतितैर्गतः संयोगं** विद्याग्रहणकन्याग्रहणरूपं । तदुत्तरत्र 'संवत्सरेण पतति' इति स्वयमेव वक्ष्यमाणत्वात्पूर्वपतितापेक्षया अन्यः भाविपातित्ययुक्तः। अतो न पुनरुक्तिः ।। १५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **ब्राह्मैः संबन्धैः संयोगं गतः**। वेदाध्ययनसंबन्धैः संयोगं गतः। तथा **यौनैर्**विवाहसंबन्धैः संयोगं गतः ।। १५७ ।।

(७) **मणिरामः**। **पतितैः** सह **ब्राह्मैः** अध्ययनादिभिः **यौनैः** कन्यादानादिभिः **संबन्धैः संयोगं गतः** ।। १५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अकारणपरित्यक्तेति**। **मातृविद्यागुरूणां** निष्कारणं **परित्यक्ता पतितैश्चा**ध्ययनकन्यादानादिसंबन्धः संपर्कं गतः अर्वागपि संवत्सरात्। संवत्सरेण तु पतितत्वादेव गतार्थता 'संवत्सरेण पतती'ति ।। १५७ ।।

**अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।।**
**समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ।। १५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अगारस्य गृहस्य दग्धा। गरं ददातीति। प्रदर्शनार्थं च गरग्रहणं विषादीनामपि। कुण्डस्य अन्नमश्नाति। एवं गोलकस्य, प्रदर्शनार्थत्वात् कुण्डस्य। सोमं विक्रीणीते। ओषधिः सोमस्तं यो विक्रीणीते, यागार्थमौषधार्थं वा। अन्ये तु सोमसाधनान् ज्योतिष्टोमादियागानाहुः। तेषां च विक्रयो यद्यपि न संभवति, अमूर्तत्वात् क्रियायास्तथाप्यविदुषामेवंविधस्याचारस्य दर्शनादयं प्रतिषेधः। दृश्यन्ते ह्यविद्वांस एवं वदन्तो 'यन्मया सुकृतं कृतं तत्तेऽस्त्विति'। 'सुकृतं' सुकृतैः साधितं धर्मम्। तथा च 'यां च रात्रीमजायेथा यां च प्रेतासि तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तं ते लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीय यदि मे द्रुह्युरिति'। यथैव शपथा एवं दानविक्रयावपि वाचा यः करोति स वर्ज्यते। अकार्यता चात एव ईदृशानां शपथदानविक्रयादीनां वाचा क्रियमाणानामनुमीयते। समुद्र उदधिस्तं यो याति। **बन्दी** स्तुतिपाठकः। **तैलिकः** तिलादीनां बीजानां पेष्टा। **कूटकारकः** साक्ष्येष्वनृतवादी ।। १५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गरदो विषदो विप्रव्यतिरिक्तानाम्। कुण्डाशी कुण्डं षष्टिपलानि तावत्परिमाणतण्डुलान्नभोजी। **समुद्रयायी** नौकया समुद्रसंचारी। **बन्दी** स्तुतिपाठकः। **तैलिकः** तिलयन्त्रप्रवर्तकः। कुटं छद्म तत्कारकः ।। १५८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। गृहदाहकः मरणहेतुद्रव्यस्य दाता। **कुण्डस्य** वक्ष्यमाणस्य योऽन्नमश्नाति। प्रदर्शनार्थत्वात्कुण्डस्य गोलकस्यापि ग्रहणम्। अत एव **देवलः** 'अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः। यस्तयोरन्नमश्नाति स कुण्डाशीति कथ्यते'। सोमलताविक्रेता। समुद्रे यो वहित्रादिना द्वीपान्तरं गच्छति। **बन्दी** स्तुतिपाठकः। तैलार्थं तिलादिबीजानां पेष्टा। साक्षिवादे **कूटस्य** मृषावादस्य कर्ता ।। १५८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** **अगारदाही** अगारो गृहं। **कुण्डाशी** कुण्डस्यान्नभोजी बह्वाशी वा। 'भोमः कुण्डाशी'ति स्मरणात्। **सोमविक्रयी** सोमोऽत्र लताविशेषः। **समुद्रयायी** वहित्रादिना द्वीपान्तरगन्ता। **बन्दी** स्तुतिवृत्तिः। **तैलिकः** तैलार्थे तिलादीनां पेष्टा। **कूटकारकः** कूटसाक्षी भूम्यर्थमिथ्याभाषी ॥ १५८ ॥

(५) **नन्दनः।** '**अगारदाही** स ज्ञेयः प्रेतं दग्ध्वा धनेन यः। स चाप्यगारदाही स्याद्विद्वेषाद्वेश्मदाहकः'। 'अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः। यस्तयोरन्नमश्नाति स **कुण्डाशीति** कीर्त्यते' इति **देवलः**। **कूटकारकः** तुलामानलेख्यादिषु वञ्चनाकरः ॥ १५८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **कुण्डाशी** यस्त्रिपलतण्डुलान्नभोक्ता। **बन्दी** कारागृहस्थितः स्तुतिपाठको वा अनृतपाठकः। **तैलिकः** तैलविक्रयी। **कूटकारकः।** **अगारदाही** गृहदाहकारी। **सोम**लताविक्रयी शूद्रयाजी शूद्रं यो याजयति ॥ १५८ ॥

(७) **मणिरामः।** **कुण्डाशी** कुण्डगृहभोजनकर्ता, गोलकगृहभोजिनोऽप्युपलक्षकमिदम्। 'यस्तयोरन्नमश्नाति स कुण्डाशीति कथ्यते' इति **देवल**वचनात्। **बन्दी** स्तुतिपाठकः। **कूटकारकः** साक्षिवादे कूटस्य मिथ्यावादस्य कर्ता ॥ १५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **अगारदाहीति**। गृहस्य दाहको, मारणद्रव्यदाता **कुण्डस्य** वक्ष्यमाणस्य योऽन्नमश्नाति, **सोमस्य** लतारूपस्य **विक्रेता** **समुद्रं** यो गच्छति, स्तुतीनां पाठकः, तिलादेः पेषकः, लेख्यसाक्ष्यादौ **कूटस्य** कर्ता इत्येत उभयत्र परिहरणीयाः ॥ १५८ ॥

**पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ॥**
**पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥ १५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **पित्रा** यो 'विवदते' परुषं भाषते, राजकुले व्यवहरति पूर्वपक्षोत्तरपक्षभंग्या भागादिनिमित्तम्। तथा च **गौतमः** (१५।१९) "पित्राऽकामेन विभक्तानिति"। "प्रतिरोद्धा गुरोरित्यनेनैतत्कथं पुनरुक्तमुच्यते ?"। अन्यः 'प्रतिरोधः, अन्यश्च विवादः'। यत्किंचित् गुरोरभिप्रेतं वस्तु 'कथमिदं सिध्येदिति' तत्र सम्बन्धिकत्वम् प्रतिरोधः। न्याय्येऽपि वस्तुनि तदिच्छाप्रतिघातः प्रतिरोद्धृत्वम्। प्रतिराद्धेति तत्र पाठान्तरम्। आभिमुख्येन हिंसिता, हस्तादिना गुरोः प्रतिरोद्धा चपेटादिदानेन। अस्मिन्पक्षे स्थितमन्यत्वं विवादस्य।

**कितवो** द्यूतस्य कारयिता सभिकः। यस्तु स्वयंदेविता स प्रागेव निषिद्धः। केकरमन्ये पठन्ति, 'केकरो मद्यप' इति। स च वलितप्रेक्षो अध्यर्धदृष्टिः। कातरमन्ये। स च शुकपक्षतारकः। **मद्यपः** सुराया अन्यस्यारिष्टादेर्मद्यस्य पाता सुरापः पतितत्वेनैव निरस्तः। **पापरोगी** कुष्ठी। स हि लोकेऽत्यन्तनिन्द्यः, पापरोगीत्यभिधातुं युक्तः। अस्मादेव च प्रतिषेधात् यक्ष्मीत्यत्र न सर्वो व्याधिगृहीतो गृह्यते, कस्तर्हि ? क्षयी यदि हि सर्वो गृह्यते तेनैव, सिद्धत्वात्पापरोगीति नाकरिष्यत्। **अभिशस्तः** पातकोपपातकयोः कर्तेति लोके प्रसिद्धः, असत्यपि तत्कर्तृकत्वनिश्चये। **दाम्भिकः** छद्मना धर्मं चरति लोकपक्त्यर्थं, न कर्तव्यमिति कृत्वा करोति। **रसविक्रयी** विषस्य विक्रेता। तस्य ह्येतदभिधानम्–'उपांशुभेदी रसदः' 'रसदः सत्री'त्यादि विषदो रसद उच्यते ॥ १५९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **पित्रा** धनार्थं **विवदमानः।** **कितवः** वृत्त्युद्देशं विना द्यूतकारी। **केकर** इति क्वचित्पाठे वक्रदृष्टिरित्यर्थः। **मद्यं** द्राक्षादिमद्यं। **पापरोगः** कुष्ठभगन्दरा-

दिनिन्दितरोगः । **अभिशस्तो** वचनीयेन युक्तः । **दाम्भिको** दम्भेन कर्मचारी । **रसा** गुडादयः, एतेनाविक्रय्यमुपलक्षितम् ।। १५९ ।।

(३) **कुल्लूकः । पित्रा** सह शास्त्रार्थे लौकिके वा वस्तुनि निरर्थं यो विवदते । **कितवो** यः स्वयं देवितुमनभिज्ञः स्वार्थं परान्देवयति, न स्वयं देविता, तस्योक्तत्वात् । न च सभिकः तस्य द्यूतवृत्तिपदेनाभिधास्यमानत्वात् । **केकर** इति पाठे तिर्यग्दृष्टिः । सुराव्यतिरिक्त-मद्यपाता । कुष्ठी । अनिर्णीतेऽपि तस्मिन्महापातकादौ जाताभिशापः । छद्मनाऽधर्मकारी । **रसविक्रेता** ।। १५९ ।।

(४) **राघवानन्दः । पित्रा विवदमानस्तद्विवादे** शास्त्रीये लौकिके वा रतः । **कितवो** यः स्वार्थेन परान् देवयते । यः सुरातिरिक्तपायी **मद्यपः** सुरापस्य पतितत्वात् क्षिप्रप्रकरणात् । **पापरोगी** कुष्ठादियुक्तः । **अभिशस्तः** आशङ्कितमहापातकः । **दाम्भिकोऽत्र** छद्मना धर्माचरणं यस्य । **रसविक्रयी** रसो गोरसादिः ।। १५९ ।।

(५) **नन्दनः** । अयं **कितवो** वञ्चकः । केचित्पुनरुक्तिभयात् **केकरो मद्यपस्तथेति** पठन्ति, **केकरः** आकेकरतारनेत्रः । तस्य क्रूरनेत्रत्वात्प्रतिषेधः । **मद्यपो** मदकरद्रव्याणां तालासवादीनां पाता । सुरापस्तु पतितप्रतिषेधेनोक्तः । मधुमेहभगन्दरादयः **पापरो-गस्थाः । दाम्भिको** धर्मध्वजः । **रसविक्रयी** विषविक्रयी ।। १५९ ।।

(६) **रामचन्द्रः । पापरोगी** दीर्घरोगी । **अभिशस्तः** कलङ्कीत्यर्थः ।। १५९ ।।

(७) **मणिरामः । कितवः** स्वार्थं अन्यं देवयति सः, तेन न पुनरुक्तिः **पापरोगी** कुष्ठी, **अभिशस्तः** अनिर्णीतेऽपि महापातकादौ जाताभिशापः, **दांभिकः** कपटेन धर्मकारी ।। १५९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । पित्रेति । पापरोग्यभिशस्तश्च जातिको रसविक्रयी** । शास्त्रा-लोकवस्तुषु यः **पित्रा** सह विवदते, **कितवः** अपरः देवयति, इतरस्योक्तत्वात् । **केकर** इति पाठकाचारः । सुराव्यतिरिक्त**मद्यस्य पाता** कुष्ठी, पातकोपपातककर्तृत्वेनोत्पन्नाभिशापो-ऽसत्यपि तत्कारित्वनिश्चये, सव्याजो धर्मानुष्ठाने, **रस**शब्दस्येक्षुरसादावपि प्रसिद्धत्वात् **तद्विक्रयी** विषस्येव तत्राप्यर्थशास्त्रे रसशब्दप्रयोगात् इत्येते उभयत्र परिहर्तव्याः ।। १५९ ।।

**धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ।।**
**मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ।। १६० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । धनुः शरांश्च यः शिल्पीव करोति । **यश्चाग्रेदिधिषूपतिः** दिधिषूशब्दः काकाक्षिवदुभयेन सम्बध्यते । स्मृतिशास्त्रत्वाच्चेदृशः सम्बन्धो लभ्यते । लेखा लोष्टादयोऽपि स्मृत्यर्थं संकेत्यन्ते भवन्ति चार्थकराः । अत एतन्न वाच्यं "कथमेकशब्दः समासान्तर्गतो द्वाभ्यां भिन्नप्रस्थानाभ्यां अभिसम्बध्येत" इति । गौतमेन हि द्वयं निषिद्धम् । इहापि सम्बन्धभेदे लिङ्गम् । द्विपदः समासः । न ह्यग्रेदिधिषूपतिर्नाम कश्चिदस्ति । एतौ च वक्ष्यमाणलक्षणौ ।

**मित्रध्रुक्**। मित्रं यो द्रुह्यति। मित्रस्य यः कार्योपघाते प्रवर्तते। **द्यूतवृत्तिः** द्यूतं वृत्तिर्जीविका यस्य। "ननु कितवो मद्यप' इत्यत्रोक्तमेव"। नावश्यं द्यूतवृत्तिरेव द्यूतस्य प्रयोजकः, किं तर्हि ? यः स्वयं देवितुं न जानाति गुरुभयाद्वा न दीव्यति। व्यसनी स तु देवे शप्ततयाऽन्यं देवयति। तदर्थो द्वितीयः कितवशब्दः। अथवा अकृतश्रीका द्यूतसभास्थाणवो द्यूतवृत्तयः। पुत्र आचार्योऽध्यापको यस्य। मुख्यमाचार्यत्वं न पुत्रे सम्भवति ॥ १६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। द्यूतवृत्ति**र्जीविकार्थं द्यूतकृत्। पुत्र एव यस्याचार्यो धर्मोपदेष्टा स **पुत्राचार्यः** ॥ १६० ॥

(३) **कुल्लूकः। धनूंषि शरांश्च** यः **करोति**। ज्येष्ठाय सोदरभगिन्यामनूढायां या कनिष्ठा विवाहेन दीयते साऽग्रेदिधिषूस्तस्याः **पतिः**। तथात्र **लोकाक्षिः** 'ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामुह्यतेऽनुजा। सा चाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृता। **गोविन्दराजस्तु** भ्रातुर्मृतस्य भार्यायामित्यनेनाग्रे दिधिषूपतिरेव वृत्तिवशादग्रेपदलोपेन दिधिषूपतिरिति मनुना वक्ष्यते स इह ग्राह्य इत्याह। **मित्रध्रुग्यो** मित्रस्यापकारे वर्तते। **द्यूतवृत्तिः सभिकः** पुत्रेणाध्यापितः पिता मुख्येन पुत्राचार्यत्वासंभवात् ॥ १६० ॥

(४) **राघवानन्दः। धनुःशराणां** धनुषः शराणां च **अग्रेदिधिषूपतिः** दिधिषूर्लक्षिष्यते तस्याः पतिः। द्यूतमुपजीव्यं यस्य स **द्यूतवृत्तिः**। केकर इति पाठे तिर्यग्दृष्टिः **पुत्राचार्यः** पुत्रेणाध्यापितः ॥ १६० ॥

(५) **नन्दनः**। ज्येष्ठायां यद्यनूढायामूढाग्रे**दिधिषूः स्मृता**। द्यूतेन जीवनं यस्य स **द्यूतवृत्तिः** ॥ १६० ॥

(६) **रामचन्द्रः। धनुःशराणां कर्ता** चकाराद्विक्रयी च। य **अग्रेदिधिषूपतिः** पुनर्भ्वाः पतिः। 'द्विस्तस्या दिधिषूपति'रित्यमरः। पुत्र आचार्यो यस्य स **पुत्राचार्यः** ॥ १६० ॥

(७) **मणिरामः। अग्रेदिधिषूपतिः** ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामुह्यतेऽनुजा। 'सा चाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृता' ॥ इति **लोकाक्षि**वचनोक्तायाः पतिः। द्यूतवृत्तिः **सभिकः** द्यूतदेविनां वृद्ध्या द्रव्यदातेति यावत्। पुत्राचार्यः पुत्रस्य शिष्यः ॥ १६० ॥

(८) **गोविन्दराजः। धनुश्शराणामिति। धनुश्शरस्य** कारकः। **अग्रेदिधिषूपतिः** 'भ्रातुर्मृतस्य' इति वक्ष्यमाणः। वृत्तवशात् अग्र इत्यध्यलोपेन सत्यभामा भामेतिवत्। यत्तु गौतमीयपर्यालोचनया अग्रेदिधिषूपतिशब्देन द्वयं निषिध्यते—अग्रेदिधिषूपतिः दिधिषूपतिश्च। तत्राग्रेदिधिषूपतिः अनूढाकन्यागामी, दिधिषूपतिस्तद्वोढेत्याहुः-तदसत्, अशब्दार्थत्वात्। न च दिधिषूपतिश्च तद्वोढेति व्याख्यानं युक्तं, "भ्रातुर्मृतस्ये" ति मानवलक्षणविरोधात्। मित्रस्य योऽपकारे वर्तते, **द्यूतवृत्तिः** सभिकः, पुत्रेणाध्यापितः मुख्यस्य पुत्राचार्यत्वस्यासंभवात् ॥ १६० ॥

**भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ॥**
**उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ १६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। व्याधिविशेषवचना एते। **भ्रामरी** अपस्मारी। **गण्डमाली**। कपोले कण्ठे पिटका मालाकारा जायन्ते। **श्वित्री** श्वेतकुष्ठः। **पिशुनः** परमर्मप्रकाशकः

कर्णेजपः । **उन्मत्तः** अनवस्थितचित्तो, धातुसंक्षोभेण पिशाचगृहीतः यत्किंचनवादी यत्किंचनकारी वा । **अन्धः** चक्षुर्विकलः । **वेदनिन्दकः** । "ननु च ब्रह्मद्विट्शब्देनैव ब्रह्मशब्दस्यानेकार्थकत्वात् वेदनिन्दको गृहीत एव" । नैवम् । अन्या निन्दा, अन्यो द्वेषः । चित्तधर्मो द्वेषः, तदुपर्यप्रीतिशब्देन कुत्सनं 'निन्दा' ।। १६१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **भ्रामरी** अपस्मारी । **गण्डमाला** व्याधिभेदः ।। १६१ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अपस्मारी । **गण्डमाला**ख्यव्याध्युपेतः । श्वेतकुष्ठयुक्तः । दुर्जनः उन्मादवान् । अचक्षुः वेदनिन्दाकरः ।। १६१ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **भ्रामरी** अपस्मारी **गण्डमाली** गले गण्डयुतः । **शिवत्री** श्वेतकुष्ठयुक्तः । **पिशुनः** प्रच्छन्नदोषाख्यायी । **वेदनिन्दकः** धिक्शब्दादिवादेन वेदकुत्सकः कुत्सकः ।। १६१ ।।

(५) **नन्दनः** । **भ्रामरी** अपस्मारी । **गण्डमाली** उपचित उद्भूतो मांसपिण्डो गण्डशब्देनोच्यते । तस्य मालेव लम्बमानत्वान्मालात्वम्, तद्वान् **गण्डमाली** ।। १६१ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **भ्रामरी** अपस्मारी **गण्डमाला** कपोलकण्ठे पिटकमालाकारा जायते ।। १६१ ।।

(७) **मणिरामः** । **भ्रामरी** अपस्मारी, **गण्डमाली** गलशोथवान् । **शिवत्री** श्वेतकुष्ठी, **पिशुनः** दुष्टः ।। १६१ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **भ्रामरीति** । अपस्मारी, गण्डमालाख्यव्याध्युपेतः, शिवत्री, सूचकः, धातुसंक्षोभादियुक्तः, अन्धो, वेदस्य कुत्सकः, इत्येते हव्यकव्ययोर्वर्ज्याः स्युः ।। १६१ ।।

**हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।।**
**पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ।। १६२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । हस्त्यादीनां विनेता **दमकः** गतिशिक्षयिता । **नक्षत्रैर्यश्च जीवति** नक्षत्रशब्देन ज्योतिःशास्त्रं लक्ष्यते, तेन जीवति ज्योतिषिकः । **पक्षिणां** श्येनादीनां आखेटार्थं पोषयिता **युद्धाचार्यो** धनुर्वेदोपदेशकः ।। १६२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **हस्त्यादीनां दमकस्त**द्दमनेन जीवनः । **नक्षत्रै**र्ज्योतिषवृत्त्या **युद्धाचार्यः** शस्त्रनियुद्धाद्युपायोपदेष्टा ।। १६२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । हस्तिगवाश्वोष्ट्राणां विनेता । **नक्षत्र**शब्देन ज्योतिःशास्त्रमुपलक्ष्यते तेन यो वर्तते । **पक्षिणां** पञ्जरसंजातानां क्रीडाद्यर्थं पोषिता । युद्धार्थमायुधविद्योपदेशकः ।। १६२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । हस्त्यादीनां दनकः शिक्षकः । **नक्षत्रै**र्ज्योतिःशास्त्रैः **पक्षिणां** पञ्जरस्थानां क्रीडार्थं विक्रयार्थं वा **पोषकः** । **युद्धाचार्यः** युद्धार्थमायुधविद्योपदेशकः । तद्द्वारा विप्रवधादिसंभवात् ।। १६२ ।।

(५) **नन्दनः** । **दमकः** शिक्षकः । **पक्षिणः** पोषयति स पक्षिणां **पोषकः** ।। १६२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **हस्तिगोश्वोष्ट्रादीन्** दमयतीति **दमकः** ।। १६२ ।।

(७) **मणिरामः** । **दमकः** शिक्षकः **पक्षिणां पोषकः** क्रीडार्थं पञ्जरस्थानाम् ।। १६२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **हस्तिगोश्वोष्ट्रदमक इति** । हस्तिगवाश्वोष्ट्राणां विनेता, ज्योतिश्शास्त्रेण जीवनः पक्षिणां वार्तनपूर्वकं क्रीडार्थं पोषयति युद्धशिक्षयिता एते उभयत्र परिहर्तव्याः ।। १६२ ।।

**स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ।।**
**गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ।। १६३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । 'स्रोतांसि' उदकागमाः तेषां **भेदकः** सेतुं भित्वा देशान्तरे व्रीह्यादिसेकार्थं नयति । **तेषां च** स्रोतसामेव **चावरणे रतः** । 'आवरणं' आच्छादनम् । यतः प्रदेशादुदकमुद्भवति तत् स्थगयति । गृहाणां संनिवेशोपदेशकः, वास्तुविद्याजीवी, स्थपतिः सूत्रधारादिः । न त्वात्मनो गृहाणां सन्निवेशयिता । **दूतो** राज्ञः प्रेष्यो दासवद्विनियोज्यः । दूतस्तु सन्धिविग्रहादावेव प्रेष्यते । वृक्षान् रोपयति, मूल्येन । धर्मार्थं तु न दोषः, अविगर्हिताचारत्वात् । विहितं वृक्षारोपणं "दशाम्रवापी नरकं न याति" ।। १६३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **स्रोतसां भेदकः** स्रोतोनिरोधकः स तु भेदकृत् । **देशिक** इति पाठे जलशिराया स्रोतस उपदेष्टेत्यर्थः । **तेषां** स्रोतसां प्रवर्तमानानां । **गृहसंवेशको** वृत्त्यर्थं गृहनिर्माता । **दूतो** दूत्यवृत्तिः । **वृक्षरोपको** वृत्त्यर्थम् ।। १६३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । प्रवहज्जलानां सेतुभेदादिना देशान्तरनेता । **तेषामे**वावरणकर्ता निजगतिप्रतिबन्धकः । गृहवन्निवेशोपदेशको वास्तुविद्योपजीवी । **दूतो** राजग्रामप्रेष्यव्यतिरिक्तोऽपि । **वृक्षरोपयिता** वेतनग्रहणेन न तु धर्मार्थो 'पञ्चाम्ररोपी नरकं न याती'ति विधानात् ।। १६३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **स्रोतसां** नद्यादीनां विमार्गप्रापयिता । **आवरणे** रतः निजगतिप्रतिबन्धकश्च । **गृहसंवेशको** वास्तुविद्योपजीवी । **दूतो** राजैकनियतप्रेष्यः । **वृक्षारोपकः** भृतिमादाय न तु धर्मार्थि, 'पञ्चप्ररोपी नरकं न पश्येदि'त्युक्तेः ।। १६३ ।।

(५) **नन्दनः** । **स्रोतसां भेदकः** स्रोतसां भञ्जकः । **तेषामावरणे रतः** प्रजोपयोगार्हमार्गगमननिरोधतत्परः । स्रोतसां दर्शकस्तथेति वा **पठन्ति** । **स्रोतसां** जलोद्भवस्थानानामुपदेष्टा । **गृहसंनिवेशको** वृत्त्यर्थं गृहाणां निर्माता । **वृक्षारोहको** वृक्षाणामारोढा ।। १६३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **तेषां** वा **आचरणे रतः** । **गृहसंवेशकः** । वृक्षानारोपयति मूल्येन **वृक्षारोपकः** ।। १६३ ।।

(७) **मणिरामः** । **स्रोतसां भेदकः** प्रवहज्जलानां सेतुभेदादिना देशान्तरनेता, **तेषां** स्रोतसामेव **आवरणे** प्रतिरोधने **रतः** **गृहसंवेशकः** गृहसन्निवेशोपजीवी, वास्तुविद्योपजीवीत्यर्थः । **वृक्षारोपकः** वेतनग्रहणेन ।। १६३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **स्रोतसमिति**। उदकागमनसेतुबन्धभेदकः भेदादिना देशान्तरं नेता च। तेषामवच्छादनकृत्, बास्तुविद्याजीवनः **दूतो** राजप्रेष्यव्यतिरिक्तोऽपि। **वृक्षाणां रोपयिता** मूल्येन, न धर्मार्थं "दशाम्रवापी नरकं न याति" इत्यादिनोदनात् ।। १६३ ।।

**श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ।।**
**हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ।। १६४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। श्वभिः क्रीडति **श्वक्रीडी**। क्रीडार्थं शुनो बिभर्ति। श्येनैर्जीवति क्रयविक्रयादिना। प्रागुक्तः पक्षिणां पोषकः पञ्जरादिसंस्थितानां धारयिता। कन्यामकन्यां यः करोति **स कन्यादूषकः**। **हिंस्रः** स्वभावक्रूरः वधरतः। **वृषलवृत्तिः** शूद्रेभ्यः सेवादिना यो जीवति। वृषलपुत्र इति पाठान्तरम्। केवला एव वृषलाः पुत्रा यस्य। "शूद्रापत्यैश्च केवलैः" इति गर्हिताचारः। **गणानां** देवतायाजकः। गणयागाः प्रसिद्धाः ।। १६४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **श्वक्रीडी** श्वभिः क्रीडन्। **कन्यादूषकः** कन्याया अङ्गुल्यादिनाऽकन्यात्वापादकः। वृषल एव पुत्रोऽस्य स तु **वृषलपुत्रः**। गणानामनेकेषांक्रमेण ।। १६४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्रीडार्थं शुनः पोषयति **श्येनैर्जीवति** क्रयविक्रयादिना। कन्याभिगन्ता। हिंसारतः। शूद्रोपक्लृप्तवृत्तिः। **वृषलपुत्र** इति पाठान्तरम्। वृषला एव केवलाः पुत्रा यस्येत्यर्थः। विनायकादि**गणयागकृत्** ।। १६४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **श्वक्रीडी** क्रीडार्थं शुनः पोष्टा। **श्येनजीवी** श्येनेनान्यपक्षिणो घातयित्वा व्यवहारी। पक्षिपोषकस्य निन्दितत्वेऽपि अधिकदूषणार्थं वा। **कन्यादूषकः** अङ्गुल्यादिना योनिविदारकः, अथवा तस्याः परिवादी कुमारीगन्तुरुपपातकित्वोक्तेर्दण्डप्रायश्चित्तापाङ्क्त्यादिभेदेन कुमार्या दूषकाणां पुनरुक्ताद्यभावो ध्येयः। **वृषलवृत्तिः** वृषलावक्लृप्तवृत्तिः वृषलोपजीवी वा **वृषलपुत्र** इति। पाठान्तरं वृषला एव केवलाः पुत्राः पुत्रस्थानीया वा यस्य स तथा। **गणानां** विनायकानां बहुयाजकस्योक्तत्वात्। 'बहूनामुपनेता वा यश्चोपनयते बहूनि'ति निन्दितत्वात् ।। १६४ ।।

(५) **नन्दनः**। श्वभिः क्रीडतीति **श्वक्रीडी**। वृषल एव पुत्रो यस्य स **वृषलपुत्रः**। **गणानाञ्चैव** याजकः नाना जातीयाअनियतवृत्तयः संहता गणास्तेषां याजको याजयिता ।। १६४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **वृषलपुत्रः**। 'निर्धर्मो वृषलो ज्ञेयस्तत्सुतो वृषलात्मजः' ।। च पुनः गणानां याजक एवं विनायकादिगण**याजकः** सर्वेषां याजको वा ।। १६४ ।।

(७) **मणिरामः**। **श्येनजीवी** क्रयविक्रयादिना, **कन्यादूषकः** कुमारिकाभिगन्ता, **वृषलवृत्तिः** वृषला एव पुत्रा यस्येत्यर्थः। **गणानां याजकः** विनायकादिगणानां यागकृत् ।। १६४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। श्वक्रीडीति।** श्वभिः यः क्रीडति, याजकक्रियादिजीवकः कन्याया निन्दकः हिंसारतः, शूद्रजीवनः। वृषलपुत्र इति ना पाठः। चतुर्दश्यादौ विनायकादिगणयागकृत् इत्येव उभयत्र वर्जनीयाः ॥ १६४ ॥

**आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ।**
**कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ १६५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** आचारो गृहाभ्यागतानाम् पूजादिप्रयुक्तिर्लौकिकसमाचारः, तेन वर्जितः। **क्लीबोऽ**ल्परतत्वः, भग्नोत्साहः कर्तव्येषु। **याचनकः** सदैव यो याचते, यश्च याच्ञया परानुद्वेजयति। वस्तुस्वभावोऽयं याच्ञया याच्यमानोद्वेजनम्। 'नन्द्यादिभ्यो ल्युः' (पा. ३।१।१३४), स्वार्थे कः।

**कृषिजीवी** स्वयंकृतया कृष्या जीवति, सति चोपायान्तरे अस्वयंकृतयाऽपि। **श्लीपदी** एकः पादो महान् यस्य। **सद्भिर्निन्दितः** दुर्भगः, विनाऽपि दोषेण सतां द्वेष्यः ॥ १६५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। क्लीबो** धर्मोद्यमशून्यः। **नित्यं याचनको** याचकः। **सद्भिर्विनिन्दितो**ऽकारणेऽपि ॥ १६५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** गुर्वतिथिप्रत्युत्थानाद्याचारवर्जितः। **क्लीबो** धर्मकृत्यादौ निरुत्साहः नपुंसकस्योक्तत्वात् ॥ नित्यं याचनेन परोद्वेजकः। स्वयंकृतया कृष्या यो जीवति वृत्त्यन्तरेऽपि वा संभवत्यस्वयंकृतयापि। श्लीपदी व्याधिना स्थूलचरणः। केनापि निमित्तेन साधूनां निन्दाविषयः ॥ १६५ ॥

(४) **राघवानन्दः। क्लीबो** धर्माद्यनुत्साही नपुंसकस्योक्तत्वात्। **नित्यं याचनकः** श्वस्तनादिषु सत्स्वपि। **कृषिजीवी** स्वयंकृतकृष्या जीवति। **श्लीपदी** व्याधिकृतस्थूलपदः। अशिष्टोऽयमिति निन्दितः ॥ १६५ ॥

(५) **नन्दनः। क्लीब** उपहतशुक्रः पुरुषः ॥ १६५ ॥

(६) **रामचन्द्रः। क्लीबः** धर्मोत्साहरहितः। **कृषिजीवी** कृषिकृत्। **श्लीपदी** पदे महती यस्य स हि। **सद्भिर्निन्दितो** दुर्भगः ॥ १६५ ॥

(७) **मणिरामः। श्लीपदी** व्याधिना पादशोथी ॥ १६५ ॥

(८) **गोविन्दराजः। आचारहीन इति।** प्रत्युत्थानाद्याचारवर्जितः, **क्लीबः** निरुत्साहः, नपुंसकस्योक्तत्वात्, सर्वदा याच्ञास्वभावः। अस्वयंकृतं वापि यः कृष्या वृत्त्यन्तरसंभवेऽपि जीवति, **श्लीपदी** व्याधिविशेषादुच्छूनैकचरणः, साधुभि**र्निन्दितः** केनापि निमित्तेनेत्येतत्। उभयत्र बहिःकार्याः ॥ १६५ ॥

**औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ।**
**प्रेतनिर्यापकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ १६६ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** 'उरभ्रा' मेषास्तैश्चरति क्रयविक्रयादिना व्यवहरति, तद्धनप्रधानो वा । एवं **माहिषिकः** । परः पूर्वो यस्याः, तस्याः 'पतिः' भर्ता । या अन्यस्मै दत्ता अन्येन वा ऊढा तां पुनः यः संस्करोति, पुनर्भवति भर्ता पौनर्भवो नरो भर्ताऽसाविति शास्त्रेण । प्रेतान् यो निर्यापयति वहति । एते यत्नतो **वर्जनीयाः** ।। १६६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । औरभ्रिको** मेषपोषकः । **माहिषिको** महिषपोषकः । **परपूर्वा** प्रागन्यस्मै दत्ता तस्याः **पतिः** परिणेता । **प्रेतनिर्यातको** वृत्त्यर्थे प्रेतवाहः ।। १६६ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** मेषमहिषजीवनः । परपूर्वा पुनर्भूस्तस्याः पतिः । **प्रेत**निर्हारको धनग्रहणेन, न तु धर्मार्थं । 'एतद्वै परमं तपो यत्प्रेतमरण्यं हरन्ती'ति अवश्यश्रुत्या विहितत्वात् ।। १६६ ।।

(४) **राघवानन्दः । औरभ्रिको** मेषजीवी । **माहिषिकोऽपि** तथा । **परपूर्वा** पुनर्भूः तस्याः पतिः अस्याः पुत्रः **पौनर्भव** उक्तः । **प्रेतनिर्यातकः** धनग्रहणेन मृत-निर्हारकः ।। १६६ ।।

(५) **नन्दनः ।** उरभ्रा मेषास्तैर्यो जीवति स **औरभ्रिकः** । एतेन **माहिषिको** व्याख्यातः । **प्रेतनिर्यातको** वृत्त्यर्थं शवनिर्हारकः । **प्रयत्नतः** आपद्यपि ।। १६६ ।।

(६) **रामचन्द्रः । औरभ्रिको** मेषपालकः महिषपालको वा । **परपूर्वापतिः** परपूर्वा पुनर्भूस्तस्याः पतिः **प्रेतनिर्यातकः** प्रेतं लोभेन निर्यातयति प्रेतवाहक इत्यर्थः ।। १६६ ।।

(७) **मणिरामः । औरभ्रिकः** मेषजीवनः, **परपूर्वापतिः** पुनर्भूपतिः **प्रेतनिर्यातकः** प्रेतहारकः धनग्रहणेन न तु धर्मबुद्ध्या ।। १६६ ।।

(८) **गोविन्दराजः । औरभ्रिकः** मेषमहिषजीवी पुनर्भुवो भर्ता मूल्येन प्रेतानां निर्हारकः न धर्मार्थम्, "एतद्वै परमं तपो यं प्रेतमरण्यं हरन्ति" इति श्रुत्या नोदितत्वात् । एते यत्नत उभयत्र वर्जनीयाः ।। १६६ ।।

**एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।।**
**द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ।। १६७ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** विगर्हितो निन्दितः आचारः कर्मानुष्ठानमेषामिति । काणादयः पूर्वदोषलिङ्गेन । स्तेनादयोऽनुभूयमानदोषाः प्रत्यक्षादिना । **उभयत्र** दैवे पित्र्ये च । **वर्जयेत्** परिहरेत् । **अपाङ्क्तेयाः** पङ्क्तिं नार्हन्ति । भवार्थे ढक्कर्तव्यः । अनर्हत्वमेव पङ्क्तावभवनेन प्रतीयते । अन्यैर्ब्राह्मणैः सह भोजनं नार्हन्ति । अत एव 'पङ्क्तिदूषका' उच्यन्ते । तैः सहोपविष्टा अन्येऽपि दूषिता भवन्ति ।। १६७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । एतानन्यांश्च विगर्हिताचारान् । अपाङ्क्तेयानित्येषां** पङ्क्तावपि न भोक्तव्यमित्यर्थः । **उभयत्र** दैवे पित्र्ये च ।। १६७ ।।

(३) **कुल्लूकः । एतान्स्तेनादीन्निन्दिताचारात्काणादींश्च** पूर्वजन्मार्जितनिन्दि-तकर्मशेषलब्धकाणादिभावान्साधुभिः सहैकत्र भोजनाद्यनर्हान्ब्राह्मणापसदान्ब्राह्मणश्रेष्ठः शास्त्रज्ञो दैवे पित्र्ये च त्यजेत् ।। १६७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** उपसंहरति **एतानिति।** **उभयत्र** दैवे पित्र्ये च। **प्रवरः** द्विजातिश्रेष्ठो विप्रः ।। १६७ ।।

(५) **नन्दनः।** **द्विजातिप्रवरविद्वच्छब्दौ** वर्जयितृप्रशंसापरौ। **उभयत्र** दैव-पित्र्योः ।। १६७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **उभयत्र** दैवे पित्र्ये हव्यकव्यादिषु। अपीति निश्चये ।। १६७ ।।

(७) **मणिरामः।** **उभयत्र** दैवे पित्र्ये च **एतांस्त्य**जेदित्यर्थः ।। १६७ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **एतानिति।** एते निन्दिताचाराः स्तेनादयः इहजन्मनि। काणादयश्च "एवं कर्मविशेषेण जायन्ते" इति वक्ष्यमाणत्वात् प्राग्जन्मनि। अत एतान् योग्यब्राह्मणैः सह एकपङ्क्तिभोजनानर्हान् ब्राह्मणापसदान् द्विजश्रेष्ठः शास्त्रज्ञः दैवे पित्र्ये च वर्जयेत् ।। १६७ ।।

**ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।।**
**तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ।। १६८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** यथैते स्तेनादयः पङ्क्तिदूषकाः–एवमनधीयानस्तत्तुल्यदोष इत्येदमर्थं पुनर्वचनम्। अन्ये तु व्याचक्षते– अधीयानानां काणादीनामसति वर्तमाने विगर्हिताचारत्वे दैवे कदाचित् प्राप्त्यर्थम्। 'अनधीयानो ब्राह्मणो वर्ज्यः, यस्तु अधीते तस्मै हव्यं किमिति न दीयते' एवमर्थमेवात्र हव्यग्रहणम्। हव्ये **अनधीयानः** केवलो वर्ज्यः। ये च दृश्यमानगर्हिताचाराः। अतो ये च वचनेन उभयत्र प्रतिषिद्धास्ते दैवे पित्र्ये च वर्ज्याः, न तु पित्र्य एव। तथा च **वसिष्ठः**– "अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः। अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः" ।। इति ।।

**तृणाग्निरिव शाम्यतीति।** तृणाग्निर्यथा न शक्नोति हवींषि पक्तुं, हुतमात्रेण हविषा शाम्यति उद्वाति च। यस्मिन्नग्नौ हुतं न भस्मीभवति। न ततो होमात्फलम्। एवं हि श्रूयते "असमिद्धे न होतव्यम्। अग्निर्वै सर्वा देवता" इति। एवमनधीयानो ब्राह्मणस्तृणाग्नितुल्यः। एतदेवाह न **हि भस्मनि हूयत** इति। यथा तृणाग्निः प्राग् भस्मीभवति, न तत्र हूयते, एवं तादृशो ब्राह्मणो न भोज्यते ।। १६८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **तृणाग्निरिवे**त्यल्पफलहेतुतोक्ता। **भस्मनि** तृणाग्नि-भस्मनि ।। १६८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **तृणाग्निर्यथा** न हविर्दहनसमर्थो हविषि प्रक्षिप्ते **शाम्यति,** निष्फलस्तत्र होमः। एवं वेदाग्निशून्यो **ब्राह्मण**स्तृणाग्निसमस्तस्मै देवोद्देशेन त्यक्तं **हविर्न दातव्यं** यतो **भस्मनि न हूयते।** 'श्रोत्रियायैव देयानी'त्यनेनैवानधीयानस्यापि प्रतिषेधसिद्धौ स्तेनादिपङ्क्तिदूषकत्वज्ञापनार्थं पुनर्वचनम्। **अन्ये** तु दैवे अनधीयान एव वर्जनीयः। अधीयानस्तु काणादिरपि शारीरदोषयुक्तो ग्राह्य इति एतदर्थं पुनर्व-चनम्। अत एव **वसिष्ठः** "अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः। अदूष्यं तं यमः

प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ।।" शारीरैः काणत्वादिभिर्न तु स्वयमुत्पाद्यैः स्तेनत्वादिभिः !! १६८ ।।

**(४) राघवानन्दः**। दैवे तु ब्राह्मणपरीक्षाभावेऽपि वेदविद्यापेक्षितेत्याह **ब्राह्मण इति**। **अनधीयानो** वेदरहितः। **शाम्यति** वेदतेजोरहितत्वात्। हव्यं कव्योपलक्षणम् ।। १६८ ।।

**(५) नन्दनः**। उभयत्र श्रोत्रियत्वमादरणीयमित्याह **ब्राह्मण इति**। **हव्यमिति** कव्यस्याप्युपलक्षणम् ।। १६८ ।।

**(६) रामचन्द्रः**। **तृणस्याग्निर्यथा शाम्यति** तथाऽ**नधीयानो** द्विजः **शाम्यति**। तस्मै द्विजायान्नं न **दातव्यम् नाहि भस्मनि हूयते** तृणाग्निर्यथा हविर्दग्धुं न शक्नोति हुतमात्रेण शाम्यति तथा अस्मिन्नग्नौ हुतं न भस्मीभवति। वेदाध्ययनरहितो भस्मतुल्यो द्विजो भवतीत्यर्थः ।। १६८ ।।

**(७) मणिरामः**। अनधीयानस्य अपांक्तेयत्वज्ञापनार्थं पुनराह **ब्राह्मणस्त्विति** ।। १६८ ।।

**(८) गोविन्दराजः**। **ब्राह्मण इति**। तृणाग्निर्यथा हविषोपशाम्यति न हविर्दहनसमर्थः, ततश्च निष्फलः तत्र होमः, एवं निष्फलत्वात् वेदाध्ययनेन शून्यो ब्राह्मणः तृणाग्नितुल्यः तस्मा उद्देशेन न दातव्यम्। यतो **न भस्मनि** होमः क्रियते। 'श्रोत्रियायैव देयानि' इत्यनेनैव अनधीयाननिषेधसिद्धौ इदं वचनं दैवे काणादीनां छन्दोऽध्यायिनां स्वाचाराणां अभ्यनुज्ञानार्थम्। गर्हिताचारं वर्जयेत् अनधीयानं च। यस्तु स्वाचारोऽधीयानश्च तस्य दैवे काणत्वलिङ्गसंसूचितं प्राग्जन्मार्जितगर्हितकर्मशेषवत्त्वमनपेक्षम्। तथा **वसिष्ठः** 'अथ चेन्मन्त्रसंयुक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः। अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ।।' इति ।। १६८ ।।

**अपङ्क्त्यदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ।।**
**दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।। १६९ ।।**

**(१) मेधातिथिः**। अस्य प्रतिषेधविधेः फलमाह। पंक्तिमर्हन्तीति 'पङ्क्त्याः', न पङ्क्त्याः 'अपङ्क्त्याः'। दण्डयादिदर्शनाद्रूपसिद्धिः। तेभ्यां दाने यः फलोदयः फलोत्पत्तिर्भवति दातुः, तं सर्वमिदानीं ब्रवीम्यवहिता भवतेति ।। १६९ ।।

**(२) सर्वज्ञनारायणः**। अपाङ्क्तदाने अपाङ्क्तेभ्यो दाने कृते ।। १६९ ।।

**(३) कुल्लूकः**। पङ्क्तिभोजनानर्हब्राह्मणाय **दैवे** हविषि **पित्र्ये वा** दत्ते दातुर्यो दानादूर्ध्वं फलोदय**स्तमशेष**मभिधास्यामि ।। १६९ ।।

**(४) राघवानन्दः**। प्रतिज्ञान्तरं प्रतिजानीते **अपाङ्क्त्येति**। अपाङ्क्त्याः विप्रभोजनपङ्क्तौ प्रवेशानर्हाः। **ऊर्ध्वे** परलोके। **फलोदयो** विरुद्धफलप्राप्तिः ।। १६९ ।।

(६) **रामचन्द्रः । अपाङ्क्त्यदाने** अपाङ्क्तेयानां पुंसां दाने **दातुर्यः** फलोदय **ऊर्ध्वं** परे लोके भवेत् तदशेषतः फलं **वक्ष्यामि दैवे पित्र्ये वा कर्मणि** ।। १६९ ।।

(७) **मणिरामः । ऊर्ध्वं** दानोत्तरम् ।। १६९ ।।

(८) **गोविन्दराजः : अपङ्क्त्यदान इति ।** पङ्क्तिभोजनानर्हदा**ने दातुर्य**देनो देवपित्रर्थहविषि फलोत्पत्तिर्भवति तत् साकल्येन **प्रवक्ष्यामि** ।। १६९ ।।

**अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्त्रादिभिस्तथा ।।**
**अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ।। १७० ।।**

(१) **मेधातिथिः । अव्रताः** असंयताः शास्त्राचारवर्जिताः । परिवेत्तृप्रभृतयो यद्यपि शास्त्रबाह्यास्तथापि भेदेन स्मरणार्थं दोषगुरुत्वार्थं वा कथ्यन्ते । अन्ये **चापाङ्क्त्याः** काणश्लीपद्यादयः तैर्यदन्नं भुक्तं श्राद्धे भवति, तद्रक्षांसि देवद्विषो भुञ्जते, न च पितरः । अतो निष्फलं तच्छ्राद्धं भवतीत्युक्तं भवति । रक्षोग्रहणमर्थवादः ।। १७० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अव्रतैरकृ**तस्नातकादिव्रतैः **अन्यैरपाङ्क्तेयैः** । स्मृत्यन्तरोक्तैः ।। १७० ।।

(३) **कुल्लूकः ।** वेदग्रहणार्थं व्रतरहितैस्तथा **परिवेत्त्रादिभिरन्यैश्चापाङ्क्तेयैः** स्तेनादि**भिर्यद्**द्रव्यं **भुक्तं तद्रक्षांसि भुञ्जते ।** निष्फलं तच्छ्राद्धं भवतीत्यर्थः ।। १७० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** तदेवाह **अव्रतैः** वेदार्थव्रतरहितैः **अपाङ्क्तेयैः परिवेत्त्रादिभिः यदन्यै**स्तत्सदृशैः काणाद्यैः । तस्मात्पाङ्क्तेया रक्षोघ्नाः इति भावः । अत एव **वसिष्ठः** 'अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः । अदूष्यस्तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव स' इति ।। १७० ।।

(५) **नन्दनः । रक्षांसि भुञ्जते** न देवा नापि पितरः । तेन तन्निष्फलमित्यभिप्रायः ।। १७० ।।

(६) **रामचन्द्रः । अन्यैरपाङ्क्त्यैः** ।। १७० ।।

(७) **मणिरामः । अव्रतैः** वेदग्रहणार्थं व्रतरहितैः **रक्षांसि भुंजते** निष्फलं भवतीत्यर्थः ।। १७० ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** वेदग्रहणार्थं सावित्र्यादिव्रतरहितैः तथा **परिवेत्त्रादिभिरन्यैश्च** स्तेनादिभिरपाङ्क्यैः **यत्** देवपित्रर्थं **भुक्तं** तत् सुकृतलेशवशेन **रक्षांसि भुञ्जते** न दातुरभिमतफलाय भवति । अव्रतानां च निषिद्धमध्यापठितानामप्यस्मादेव निषेधो बोध्यः ।। १७० ।।

**दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ।।**
**परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ।। १७१ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अग्रे आदौ जातः **अग्रजः** सोदर्यो भ्रातोच्यते । एवं हि पठ्यते— ''पितृव्यपुत्रान् सापत्नान्परनारीसुतांस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने' इति ।

अत्र सोदर्योऽग्रजः। तस्मिन् स्थितेऽकृतदाराग्निसंयोगे। तिष्ठतिः प्रकृतव्यापारनिवृत्तौ प्रयुक्तः। अग्निहोत्रशब्दः कर्मवचनोऽपि तदर्थेऽग्न्याधाने वर्तते।

स्मृत्यन्तरे विशेषः पठ्यते—"उन्मत्तः किल्बिषी कुष्ठी पतितः क्लीब एव च। राजयक्ष्माऽऽमयावी च न योग्यः स्यात्प्रतीक्षितुम्"॥

एतदप्यधिकारोपलक्षणार्थम्। अतश्चापांक्तेयोऽपि गृह्यते। कालविशेषोऽधिको व्यपेक्ष्यते। तथा च स्मृतिः— (गौ. सू. १८/१९)। "अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत, षडित्येके" इति एदा च वर्षसंख्या यदा कनीयान् प्राप्तविवाहकालः ततः प्रभृति द्रष्टव्यः। विवाहकालश्च स्वाध्यायविधिनिवृत्तिः। "ननु च प्रोषिताधिकारे तत्पठितम्। भर्तरि प्रोषिते यः स्त्रीणां प्रवासकालस्तमुपक्रम्य भ्रातरीत्यादि पठितम्"। सत्यम्। वाक्यान्तरे प्रोषितशब्दस्य प्रत्यक्षः सम्बन्धोऽवगतः। वाक्यान्तरे तु सम्बन्धे प्रमाणं वक्तव्यम्। न च तदस्ति। "यथा स्वरितेनाधिकार इति"। न चात्र तच्छब्दोऽस्ति। न च तदपेक्षया विनैव तस्य वाक्यस्यापरिपूर्णत्वम्। वसिष्ठेन चाविशेषेणाग्निशब्देन स्मार्तस्याप्यग्नेर्ग्रहणं कृतम्। केचित्पितर्यप्यकृताधाने विधिमिच्छन्ति। अग्रजशब्दस्य यौगिकत्वात् पिताप्यग्रजो भवतीति। यद्येवमन्योऽपि योऽग्रजस्तत्राप्येवं प्राप्नोति। न चायमग्रजानुजव्यवहारः पितापुत्रयोर्विद्यते। स्मृत्यन्तरेऽपि तु पठ्यते (गौ. १८/१८) "भ्रातरि च ज्यायसीति"। **परिवित्तिः पूर्वजो** ज्येष्ठः॥ १७१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। परिवेत्त्रादिपदानि व्याचष्टे **दाराग्निहोत्रेति**। **दाराग्निहोत्रयोरन्यतरस्य संयोगं** संबन्धम्। **स्थिते** अकृते **अग्निहोत्र**पदं लक्षणया त्रेताग्निपरम्। आधाने च ज्येष्ठानुमतिं विना कृते परिवेत्तृता न तदनुमत्या॥ १७१॥

(३) **कुल्लूकः**। अप्रसिद्धत्वात्परिवेत्त्रादिलक्षणमाह **दारेति**। अग्निहोत्रशब्दोऽयमग्निहोत्राद्याधानपरः यः सहोदरे ज्येष्ठे भ्रातर्यनूढेऽनग्निके च दारपरिग्रहे श्रौतस्मार्ताग्निहरणं च कुरुते **स परिवेत्ता** ज्येष्ठश्च **परिवित्तिर्**भवति॥ १७१॥

(४) **राघवानन्दः**। परिवेत्तृपरिवित्त्योर्लक्षणमाह **दारेति**। **परिवेत्ता** परि ज्येष्ठं त्यक्त्वा आदौ वेत्ता कन्याग्न्योर्लब्धा। यः पूर्वजो ज्येष्ठः स **परिवित्तिः**॥ १७१॥

(५) **नन्दनः**। अथ परिवेत्त्रादिशब्दानामपाङ्क्त्यानुक्रमेणोद्दिष्टानां लोकविषयतां परिजिहीर्षंस्तेषामर्थमाह **दारेति**॥ १७१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **य अग्रजे स्थिते सति दाराग्निहोत्रं कुरुते** स्वीकुर्यात्स **परिवेत्ता विज्ञेयः**। **पूर्वजो** ज्येष्ठः **परिवित्तिसंज्ञो** भवति॥ १७१॥

(७) **मणिरामः**। परिवेत्त्रादिलक्षणमाह **दारेति**। **अग्रजे**ऽनूढे अनग्निके च **स्थिते**॥ १७१॥

(८) **गोविन्दराजः**। परिवेत्त्रादीनप्रसिद्धत्वाल्लक्षयति **दाराग्निहोत्रसंयोगमिति**। यो ज्येष्ठे भ्रातरि अकृतदारके तिष्ठति सति दारश्रौतस्मार्ताग्न्यानयनं कुरुते **स परिवेत्ता**, ज्येष्ठश्च **परिवित्तिर्बोध्यः**॥ १७१॥

**परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते ।।**
**सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ।। १७२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । प्रसङ्गात्परिवेदनसम्बन्धिनामन्येषामपि दोषदर्शनद्वारेण निषेधं करोति निषेधपरिवर्जितः परिभूतो वा वेदनेन **परिवित्तिः**। परिवर्ज्य ज्येष्ठं करोति परिवेदनं **परीवेत्ता । यया कन्यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति ।** दाता याजकश्च येषां नरकगामिनां पञ्चमः। 'दाता' कन्यायाः एव प्रकृतत्वात्पित्रादिः। 'याजको' विवाहे यः करोति होमं यो वा तत्रोपदेष्टा। अथवा तेषामेव परिवेत्तृपरिवित्तितत्कन्या-दातॄणां ज्योतिष्टोमादीनामपि यज्ञानामृत्विक्। तस्माज्ज्येष्ठेन तथा कर्तव्यं यथाऽस्य कनीयसो भ्रातुर्निवाहे विघ्नकर्तृत्वं न भवति। कनीयसाऽपि कालप्रतीक्षा द्वादशाष्ट-षड्वर्षादिविषया कर्तव्या। कन्ययाऽपि तादृशाय दातुं न देयम्। दातृयाजकौ पञ्चमौ येषामिति द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ।। १७२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । यया** कन्यया दाता कन्यायाः **याजकस्तत्र** ब्रह्मत्वेना-र्त्विज्यकारी दातृसहितो याजकः पञ्चमो येषां ते **दातृयाजकपञ्चमाः**। याजकोऽत्र परिवेत्तुर्दर्शपूर्णमासयागेष्वृत्विगित्येके ।। १७२ ।।

(३) **कुल्लूकः । प्रसङ्गात्परिवेदनसंबन्धिनां पञ्चानामप्यनिष्टं फलमाह **परीति । परिवित्तिः परीवेत्ता** च **यया** च कन्यया परिवेदनं क्रियते कन्याप्र**दाता याजकश्च** तद्विवाहहोमकर्ता **स पञ्चमो** येषां ते **सर्वे नरकं** व्रजन्ति ।। १७२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैव प्रासंगिकं दोषमाह **परिवित्तिरिति । यया** स्त्रिया। **परिवेदनं** विवाहः ।। १७२ ।।

(५) **नन्दनः** । परिवेदनसम्बन्धिनोऽपि वर्जनीय इत्यभिप्रायेणाह **परिवित्तिरिति**। दातृसहितो याजकः पञ्चमो येषां ते **दातृयाजकपञ्चमाः** ।। १७२ ।।

(६) **रामचन्द्रः । परिवित्तिः** लघु**परिवेत्ता यया** स्त्रिया सह **परिविद्यते । याजको** विवाहकर्ता आचार्यः **पञ्चमः** । ते **सर्वे नरकं यान्ति** गच्छन्तीत्यर्थः ।। १७२ ।।

(७) **मणिरामः** । प्रसङ्गात् परिवेदनसंबन्धिनामपि अनिष्टफलमाह **परीति । यया** कन्यया **परिविद्यते परिवेत्ता** भवति सापि **याजकः** तद्विवाहहोमकर्ता च। एते पञ्चापि **नरकं** गच्छन्तीत्यर्थः ।। १७२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । प्रसङ्गादेतद्व्यतिक्रमफलमाह **परिवित्तिरिति । परिवि-त्तिपरिवेत्तारौ यया** च कन्यया हेतुभूतया परिवेदनं क्रियते **दाता** च कन्यायाः **याजकश्च** तदुद्वाहहोमस्योपदेष्टा येषां **पञ्चमः** ते नरकं गच्छन्ति ।। १७२ ।।

**भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ।।**
**धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ।। १७३ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** नियोगधर्मेण प्रवृत्तो **भ्रातुर्मृतस्य** तद्भार्यागमने **योऽनुरज्येत** प्रीतिं भावयेत् **कामतः।** नियोगधर्मातिक्रमेण "सकृत्सकृदृतौ" इत्येवं विधिं हित्वा इच्छानुरागगाढालिङ्गनपरिचुम्बनादि कुर्यादसकृद्वा प्रवर्तेत, चेतसा वा विक्रियेत, कामिनीप्रेमदृष्टिबन्धवचनादिलिङ्गेनानुरागित्वेन विभावितो **दिधिषूपतिर्वेद्यः।**

**अग्रेदिधिषूपति**लक्षणं तु स्मृत्यन्तरात् ज्ञेयम्। "जीवत्यग्रेदिधिषूपतिः" इति।

केचित्तु नैवायं समाम्नाये श्लोकोऽस्तीत्याहुः। अपरिपूर्णं च लिङ्गं ब्रुवते। द्वयस्य लक्षणे कर्तव्ये, न कर्तव्यकारिणामेकस्योपपद्यते। स्मृत्यन्तरे चैतदुभयं लक्ष्यते— "परपूर्वापतिं धीरा वदन्ति दिधिषूपतिम्। यस्त्वग्रेदिधिषूर्विप्रः सैव यस्य कुटुम्बिनी॥" न त्विह सम्भवति, परपूर्वापतेः पृथगेव निषिद्धत्वात् तस्मादन्यो दिधिषूपतिः॥ १७३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **धर्मेण** प्रथमं **नियुक्तायां** पश्चाद्यो**ऽनुरज्येत** अपिशब्दाद्रागमात्रेणाऽपि **दिधिषूपति**रग्रेदिधिषूपतिः। एवं च तस्या अपि स्त्रिया दिधिषूरग्रेदिधिषूर्वेति नामोक्तं भवति॥ १७३॥

(३) **कुल्लूकः।** **मृतस्य** भ्रातुर्वक्ष्यमाणनियोग**धर्मेणापि** **नियुक्तायां भार्यायां** "सकृत्सकृदृतावृता"वित्यादिविधिं हित्वा कामेनानुरागं भावयेदाश्लेषचुम्बनादि कुर्यादसकृद्वा प्रवर्तेत **स दिधिषूपति**र्ज्ञातव्यः। अतः श्राद्धनिषिद्धपात्रमध्यपाठादस्यापि हव्यकव्यपात्रयोर्निषेधः कल्पनीयः॥ १७३॥

(४) **राघवानन्दः।** दिधिषूपतिरित्युक्तस्य लक्षणमाह **भ्रातुरिति।** **अनुरज्येत** स्तनालिङ्गनादिना। **नियुक्तायां** पुत्रार्थमपि। 'ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्या योद्वाह्यतेऽनुजा। सा चाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृते'ति॥ तयोः पतिर्वा। **गोविन्दराजस्तु** वृत्तवशादग्रेपदलोपादयमेवाग्रेदिधिषूपतिरिति॥ १७३॥

(५) **नन्दनः।** अनिर्दिष्टस्य दिधिषूपतिशब्दस्यार्थकथनेन दिधिषूपतेरप्यपाङ्क्तेयत्वं गम्यते॥ १७३॥

(६) **रामचन्द्रः।** **मृतस्य भ्रातुर्भार्यायां कामतो योऽनुरज्येत** अनुरक्तो भवेत्। **धर्मेणापि नियुक्ताया**माज्ञप्तायां **स दिधिषूपतिर्ज्ञेयः।** यथा व्यासं धृतराष्ट्रपाण्डुजनकत्वात् परपूर्वापतिं धीरा वदन्ति दिधिषूपतिरिति ज्ञेयः॥ १७३॥

(७) **मणिरामः।** **धर्मेणापि** वक्ष्यमाणनियोगधर्मेणापि **कामतः** "सकृत्सकृदनावृत्तौ" इत्यादिविधिं हित्वा कामेनेत्यर्थः॥ १७३॥

(८) **गोविन्दराजः।** **भ्रातुरिति।** **मृतस्य भ्रातुः** वक्ष्यमाणनियोगे **धर्मेणापि नियुक्तायां भार्यायां यो** नियोगधर्मं हित्वा कामेन हेतुभूतेनानुरागं भावयेत् **सोऽग्रेदिधिषूपतिः** निषिद्धत्वात्। अत्र वृत्तवशात् सत्यभामावच्चाग्रशब्दस्याप्रयोगः॥ १७३॥

**परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ॥**
**पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः॥१७४॥**

(१) **मेधातिथिः**। पत्यौ जीवति तद्गृहे स्थितायां तद्भार्यायां यो गूढोत्पन्नः भंग्या उपपतित्वेन वा पत्युः क्षमया जायते सोऽन्यजातः **कुण्ड** उच्यते। **मृते** तु **गोलकः**। एतावनियुक्तासुताविति केचित् – तदयुक्तम्, तयोरब्राह्मण्यादेवाप्राप्तिः। तस्मान्नियोगोत्पन्नौ कुण्डगोलकौ। "कथं पुनरनियुक्तासुतयोरब्राह्मण्यमितरयोस्तु ब्राह्मण्यम्?"। जातिलक्षणे पत्नीग्रहणात्—'सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्विति'। सम्बन्धिशब्दश्च पत्नीशब्दो भर्तृशब्दवत्। यज्ञसंयोगे च पत्नीशब्दो व्युत्पाद्यते न चान्यदीयया भार्यया सहान्यस्य यज्ञाधिकारः। "यद्येवं नियोगोत्पन्नयोरपि समानन्यायत्वान्नैव ब्राह्मण्यम्"। दशम एतन्निर्णेष्यामः। मा भूद्वा नियुक्तानियुक्तासुतयोः कस्यचिदपि ब्राह्मण्यम्। ननूक्तमसति ब्राह्मण्ये प्राप्त्यभावात्प्रतिषेधानुपपत्तिः। पतितप्रतिषेधादेव एतद्वदिष्यति। द्विजातिकर्मभ्यो हानिः 'पतनम्'। द्विजातिकर्मत्वे सति श्राद्धभोजनस्य कुतः पतिते प्राप्तिः?। आम्नायते च प्रतिषेधो "ये स्तेनपतिता" (१५० श्लो.) इति ।। १७४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। परदारेषु कुण्डगोलकाख्यौ द्वौ सुतावुत्पद्येते। तत्र जीवत्पतिकायामुत्पन्नः कुण्डो मृतपतिकायां च **गोलकः** ।। १७४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कुण्डगोलकौ लक्षयति **परदारेष्विति**। परजातत्वेन व्यक्तो गर्भः **कुण्डः**। अनियुक्तयोः स्त्रियोः अयमेव गूढोत्पन्न इति वा ।। १७४ ।।

(५) **नन्दनः**। सवर्णोत्पत्ताविमे संज्ञे ।।१७४।।

(६) **मणिरामः**। द्वौ स्पष्टार्थौ ।। १७४ ।। ।। १७५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **परदारेष्विति**। परभार्यायां **कुण्डगोल**काख्यौ सुतावुत्पद्येते। तत्र सपतिकायां य उत्पद्यते स **कुण्डः**, विधवायाञ्च **गोलकः** ।। १७४ ।।

**ते तु जाताः परक्षेत्रे प्राणिनः प्रेत्य चेह च ॥**
**दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयन्ति प्रदायिनाम् ॥१७५॥**

(१) **मेधातिथिः**। "जात्याख्यायामिति" (पा. सू. १।२।५८) बहुवचनं **प्राणिन** इति। ब्राह्मण्यादिव्यपदेशमवजानते 'प्राणिन' इत्येवं व्यपदेशार्हा, न व्यपदेशान्तरमर्हन्ति। अतस्ते **नाशयन्ति हव्यकव्यानि** निष्फलीकुर्वन्ति **प्रदायिनां** दातृणाम्। परिवेत्त्रादीनां लोके नातिप्रसिद्धत्वात् शाब्दैश्चास्मृतत्वाद्व्यवस्थार्थं लक्षणप्रणयनम् ।। १७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्वौ सुतौ जीविनौ प्रेत्य परलोके भोग्यानि हव्यकव्यानि हव्यकव्यफलानि नाशयेते। इह लोके भोग्यानि शान्त्यादिफलानि। यद्यपि **याज्ञवल्क्येन** (४।९०) 'सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातय इत्युक्ता "विन्नास्वेष विधिः स्मृत" (इति।) विवाहितसवर्णस्त्रीजातानामेव सजातितोक्ता। तथापि कुण्डगोलकयोरविन्नस्त्रीजनितत्वेऽपि ब्राह्मणब्राह्मणीजन्मनोरेतयोः श्राद्धपात्रतानिषेधाद्ब्राह्मण्यं गम्यत इत्येके नेत्यपरे ।। १७५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ते परभार्यायां जाता कुण्डाद्या दृष्टानुपयोगात्प्राणिन इति व्यपदिष्टाः। प्राणिनौ ब्राह्मणत्वेऽपि तत्कार्याभावात्प्रेत्य फलाभावात्परलोके इह चानुषङ्गिककीर्त्यादिफलाभावाद्दत्तानि हव्यकव्यानि प्रेत्य फलाभावादिह कीर्तेरभावान्न नाशयेते नाशयतः। प्रदायिभिर्दत्तानि हव्यकव्यानि निष्फलानि कुर्वन्ति ।। १७५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अनयोः प्रासङ्गिकं दोषमाह **ते त्विति**। अत्र बहुत्वपूरणार्थं दिधिषूपतेः पुत्रस्य ग्रहणम्। द्विवचनपाठस्तु क्वचित्ताविति ।। १७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तौ तु कुण्डगोलकौ **परक्षेत्रे जातौ प्राणिनाविहलोके प्रेत्य परलोके प्रदायिनां** दातॄणां **दत्तानि** हव्यकव्यानि **नाशयेते**। १७५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ते तु जाताः परक्षेत्रे इति**। ते परभार्याजाताः कुण्डगोलकाख्याः अदृष्टार्थानुपयोगात् प्राणिमात्रव्यपदेशार्हा **हव्यकव्यानिह दत्तानि** इहलोके आनुषङ्गिककीर्त्याख्यफलाभावात् अमुत्र देवपितृतृप्त्यभावात् दातॄणां निष्फलानि भवन्ति कुर्वन्ति वा ।। १७६ ।।

**अपंक्त्यो यावतः पंक्त्यान् भुञ्जानाननुपश्यति ।।**
**तावतां न फलं तत्र दाता प्राप्नोति बालिशः ।। १७६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पङ्क्तिमर्हन्तीति पंक्त्याः। सद्भिरेकत्रासनभोजनाद्यर्हता 'पंक्त्यता', तदभावादपंक्त्यः। **स यावतः पंक्त्या**न्विद्वत्तपस्विश्रोत्रियान् **भुञ्जानाननुपश्यति, तावतां न तत्र** पितृतृप्त्याख्यं **फलं** भवति। अतः स्तेनादयः श्राद्धं कुर्वता ततः प्रदेशादपसारणीयाः। **बालिशो** मूर्खः ।। १७६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अपाङ्क्त्यो**ऽन्धादिभ्योऽन्यस्तेषु संख्याविशेषस्योक्तत्वात् ।। १७६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। सद्भिः सहैकपङ्क्त्या भोजनानर्हः स्तेनादिर्यत्संख्यान्भोजनादीन्पश्यति तावत्संख्यानां भोजनस्य **फलं** तत्र श्राद्धे **दाता न प्राप्नोति बालिशो**ऽज्ञः। अतस्तेनादिर्यथा न पश्यति तथा कर्तव्यम् ।। १७६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अपाङ्क्तेयैरित्युक्तं तत्र केऽपाङ्क्त्याः कियत्फलं नाशयन्तीत्यपेक्षायामाह **अपाङ्क्त्य** इति त्रिभिः। **बालिशः** पङ्क्त्यामपाङ्क्त्यप्रवेशात् ।। १७६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अपाङ्क्त्यः** द्विजः **यावतः** संख्याकान्**पङ्क्त्यान्भुञ्जानाननुपश्यति दाता** तत्र **तावतां** तावत्संख्याकानां **भुञ्जतां फलं** न प्राप्नोति **बालिशो** फलं न प्राप्नोति **बालिशो** मूर्खः ।। १७६ ।।

(७) **मणिरामः**। **बालिशः** अज्ञः। अतोऽपाङ्क्त्यस्तेनादिः यथा पङ्क्त्यान्न पश्यति तथा ते भोजनीया इति तात्पर्यार्थः ।। १७६ ।।

(८) **गोविन्दराजः । अपाङ्क्त्या इति ।** पङ्क्तिभुञ्जानानर्हान् तानपि । **यावतः** यावत्सङ्ख्याकान् अनर्हा भोजनानर्हा अनुपश्यन्ति तावत्सङ्ख्याकानां संबन्धि **तत्र** श्राद्धादौ **दाता** अज्ञः **नात्र फलमाप्नुयात्** इति अपाङ्क्त्यदर्शनफलमुक्तम् ।। १७६ ।।

**वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य च ।।**
**पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ।। १७७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । "ननु चान्धस्य कुतो दर्शनम् ? येनेदमुच्यते **वीक्ष्यान्धो नवतेरिति**" । सत्यम् । तत्प्रदेशसन्निधानमनेन लक्ष्यते । यावान् देशश्चक्षुष्मतो दृष्टिगोचरस्तावतो देशादनावृतादन्धो निवासनीयः ! **काणः षष्टेः** । नात्रायमर्थोऽत ऊर्ध्वं भोज्या इति । केवलं सङ्ख्यापचयेन दोषलाघवं प्रायश्चित्तविशेषार्थं ज्ञाप्यते । **श्वित्री** कुष्ठी भण्यते । **पापरोगी** प्रसिद्धः ।। १७७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अन्धो नवतेः** ब्राह्मणानां तत्पङ्क्तिस्थितानाम् । चतुर्थ्यर्थे षष्ठी; तेभ्यो दानस्य यत्फलं **दातुस्तन्नाशयति** । काणादयस्तु षष्टिप्रभृतीन्वीक्ष्य तद्दानफलं **दातुर्नाशयन्ति । वीक्ष्येति** वीक्षणार्हदेशस्थत्वमुपलक्षितम् । अत एवान्धोऽपि वीक्ष्येत्यस्यान्वयो न विरुद्ध इति केचित् । एवं संस्पृशतीत्यत्रापि संस्पर्शयोग्यदेशस्थितता लक्ष्यते, भोजनसमये संस्पर्शाभावात् । अन्यदापि स्पर्शस्यानियतत्वान्नियतदोषत्वानुपपत्तेः ।। १७७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अन्धस्य वीक्षणासंभवाद्वीक्षणयोग्यदेशसंनिहितोऽसौ पाङ्क्त्यानां **नवतेर्भोजनफलं नाशयति** एवं **काणः षष्टेः** श्वेतकुष्ठी **शतस्य पापरोगी** रोगराजोपहतः **सहस्रस्य** इत्यन्धादिसन्निधिनिरासार्थं वचनं गुरुलघुसंख्याभिधानं चेह संख्योपचये दोषगौरवं तत्र च प्रायश्चित्तगौरवमिति दर्शयितुम् ।। १७७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । कथं नाशयतीत्यपीत्यपेक्षायामाह **वीक्ष्येति** । वीक्षणयोग्यदेशान्निहितोऽसौ **नवतेः** पाङ्क्त्यानामपि भोजनजं **फलं** दातुः प्राप्तियोग्य**मन्धो नाशयती**त्येवमुत्तरत्र ।। १७७ ।।

(५) **नन्दनः** । न केवलमपाङ्क्त्यो दान एव वर्जनीयः, किंतु भुञ्जानानां दर्शनेऽपीत्याह **अपाङ्क्त्य इति** । तत्र भोजने । भोजयितुरपरीक्षणदोषेण बालिशत्वम् । **वीक्ष्य** अन्येन वीक्ष्यमाण इत्यर्थः । **नवतेर्भुञ्जानानां दातुर्दानफलम्** ।। १७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । तत्र हि **वीक्ष्येति** । अन्धो दर्शनयोग्यस्थलेन **वीक्ष्य** दृष्ट्वा भुञ्जतां नवतिसंख्याकानां द्विजानां फलं नाशयेत् । काणः वीक्ष्य दृष्ट्वा भुञ्जतां द्विजानां षष्टिसङ्ख्याकानां फलं नाशयते । श्वित्री कुष्ठी भुञ्जतां शतसङ्ख्याकानां द्विजानां फलं नाशयते । पापरोगी वीक्ष्य भुञ्जतां द्विजानां सहस्रसंख्याकानां फलं नाशयते ।। १७७ ।।

(७) **मणिरामः । अन्धो नवतेः** अन्धस्य वीक्षणासंभवात् वीक्षणयोग्यदेशस्थानां पाङ्क्त्यानां **नवतेः** भोजन**फलं नाशयतीत्यर्थः** ।। १७७ ।।

(८) गोविन्दराजः। अन्धादीनां विशेषमाह **वीक्ष्येति**। अन्धस्य दर्शनाभावात् तत्र सन्निहितोऽसौ पाङ्क्त्यानां **नवतेः** **संबन्धिभोजनफलं** नाशयति। एवं **काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य कुष्ठी सहस्रस्य** इत्यन्धादिसन्निधिफलकथनम्। सङ्ख्यावैचित्र्यादेवेदमप्यवसीयते यत् अथ चेन्मन्त्रवियुक्त इत्युक्तं च शिष्टदर्शनावष्टंभेन काणादीन् भोजयिष्यतः पूर्वपूर्वमपचितसंख्या निन्दितप्रवृत्तिः। तदकामेऽधिकनिन्दिते इति ।।१७७।।

**यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः ।।**
**तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ।। १७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। यावतो ब्राह्मणान् स्पृशत्यङ्गैः पङ्क्तिगतः। अत्राप्यङ्गस्य स्पर्शनं न विवक्षितम्, किं तर्हि? पूर्ववत्तद्देशसंनिधिः। **पौर्तिकं फलम्**। पूर्तेः भवं पौर्तिकम्। बहिर्वेदिदानाद्यत्फलं तत्पौर्तिकम् ।। १७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **तावतस्तावद्भ्यो दानस्य फलं पौर्तिक**मित्यैष्टिकस्याप्युपलक्षणम्। **शूद्रयाजक**स्य श्राद्धासनसोमयाजनकन्यादानमतीव निरस्तमिति ।। १७८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रस्य यज्ञादावृत्विग्यावत्संख्याकान्**ब्राह्मणान्स्पृशत्य**ासनेषूपक्लृप्तेष्वित्यासनभेदस्य वक्ष्यमाणत्वान्मुख्यस्पर्शासंभवे यावतां श्राद्धभोजिनां पङ्क्तावुपविशति **तावतां** संबन्धि**पौर्तिकफलं** श्राद्धीयं **दातुर्न भवति**। तावतां पौर्तिकं फलं बहिर्वेदिदानाच्च यत्फलं तन्न भवतीति **मेधातिथिगोविन्दराजौ**। अतस्तयैव निन्दया निषिद्धगणापठितस्यापि शूद्रयाजकस्य भोजननिषेधः कल्प्यते ।। १७८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **यावत** इति। श्राद्धभोजनकाले परस्परं स्पर्शाभावात् **शूद्रयाजकस्य** पङ्क्तौ प्रवेशाभावपरं शूद्रयाजकस्पर्शयोग्यदेशपरं वा। **पौर्तिकं श्राद्धीयम्** ।। १७८ ।।

(५) **नन्दनः**। **ब्राह्मणान**पङ्क्तिस्थान्। **पूर्तं** श्राद्धादि तत्र भवं **पौर्तिकम्** ।। १७८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **शूद्रयाजक** शूद्रयज्ञकर्ता **यावतो ब्राह्मणानङ्गैः स स्पृशति**। **तावतां दातुर्दानस्य फलं** न भवेत् ।। १७८ ।।

(७) **मणिरामः**। **पौर्तिकं** श्राद्धीयं **फलं** स्पर्शस्य परस्परं निषेधात्। **यावतः** श्राद्धभोजिनां पङ्क्तावुपविशतीत्यर्थः ।। १७८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यावतः संस्पृशतीति**। शूद्रस्य पाकयज्ञादेरुपदेष्टा कर्ता च यत्सङ्ख्याकान् ब्राह्मणान् **अङ्गैः स्पृशति** आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथगिति स्पर्शनिषेधात् यावतां पङ्क्तावुपविशति तत्सङ्ख्याकानां संबन्धि भोजन**फलं** न भवतीति। शूद्रयाजकभोजनफलम्। अत एव चाग्रनिषिद्धगणपठितस्यापि निषेधो बोद्धव्यः ।। १७८ ।।

**वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।।**
**विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ।। १७९ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** प्रसङ्गाच्छूद्रयाजकस्याप्रतिग्राह्यताऽनेन कथ्यते। **वेदविदपि** यदि तस्य शूद्रयाजकस्य सम्बन्धिनो द्रव्यस्य प्रतिग्रहं करोति। **लोभादि**त्यनुवादः। सोऽपि **विनाशं व्रजति**। अभिलषितेनार्थेन वियुज्यते धनपुत्रपशुशरीरादिना। किं पुनरवेदवित्। वेदविदः किल प्रतिग्रहे नातीव दोष इति वक्ष्यति। **आमपात्रम**पक्वं शरावादिभाजनम्। **अम्भसि** जले क्षिप्तम्॥ १७९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वेदविच्चापीति** प्रसङ्गादुक्तम्। वेदविदपि किमुतान्यः। **अस्य** शूद्रयाजकस्य। केचिदस्येति शूद्रस्य परामर्श इत्याहुः— तदसमञ्जसम्; शूद्रस्य तत्राधिकाराभावप्रयोगात्पौनरुक्त्यं स्यात्। तस्मात्तद्याजकस्येत्यस्येति पदम्। **आमपात्र**मामं मृत्पात्रम्॥ १७९॥

(३) **कुल्लूकः।** प्रसङ्गाच्च शूद्रयाजकप्रतिग्रहं निषेधयति। लाघवार्थमन्यत्र निषेधकरणे शूद्रयाजकशब्दोच्चारणं कर्तव्यं स्यात्। **वेदेति।** वेदज्ञोऽपि ब्राह्मणः शूद्रयाजकस्य **लोभात्प्रतिग्रहं** कृत्वा शीघ्रं शरीरादिना विनाशं गच्छति। सुतरामवेदवित् अपक्वमृन्मयशरावादिकमिवोदके॥ १७९॥

(४) **राघवानन्दः।** प्रासङ्गिकं शूद्रयाजकप्रतिग्रहं निषेधति **वेदविदिति।** कैमुत्यार्थः। **आमपात्र**मपक्वघटादि॥ १७९॥

(५) **नन्दनः।** न केवलं शूद्रयाजकः प्रदाने वर्जनीयः किंतु प्रतिग्रहेऽपीति प्रसङ्गादाह **वेदेति**॥ १७९॥

(६) **रामचन्द्रः। अस्य** शूद्रयाजकस्य **वेदविद्विप्रः लोभात्प्रतिग्रहं** कृत्वा सः वेदविद्विप्रः **क्षिप्रं विनाशं व्रजति अम्भसि** जले आमपात्रमिवेत्यर्थः॥ १७९॥

(७) **मणिरामः। अस्य** शूद्रयाजकस्य॥ १७९॥

(८) **गोविन्दराजः।** वेदज्ञोऽपि **विप्रः** शूद्रयाजकसकाशाल्लोभेन दानादि प्रतिगृह्य मृन्मयापक्वशरावाद्युदक इवाशु **विनाशमु**पैति। प्रसङ्गाल्लाघवार्थमप्रकृतमप्येतदुक्तम्। अन्यत्र हि क्रियमाणे शूद्रयाजकग्रहणं कर्तव्यं स्यात्॥ १७९॥

**सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्।**
**नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ॥ १८०॥**

(१) **मेधातिथिः।** तस्यां जातौ जायते **यत्र विष्ठाऽस्य** भोजनं भवति। एवं **भिषजे। नष्टं** निष्फलं उद्वेगकरं वा। नष्टं हि द्रव्यं उद्वेगं जनयति। अविद्यमाना प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य **तदप्रतिष्ठम्।** नानारूपैः शब्दैरेवंविधस्य दानस्य नैष्फल्यं कर्तुश्च दोषसम्बन्धः प्रतिपाद्यते। **नष्टमप्रतिष्ठमिति** नानयोरपि भेदाशङ्का कार्या, कार्याभेदात्॥ १८०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सोमविक्रयिणे** यद्दत्तं तद्विष्ठावद्देवैः पितृभिश्च त्यज्यत इत्यर्थः। एवमुत्तरेषु। **अप्रतिष्ठं** देवादिसमीपानवस्थायि **वार्धुषौ** वार्धुषये। **नष्टं** देवादिभिरदृश्यम्॥ १८०॥

(३) **कुल्लूकः।** **सोमविक्रयिणे** यद्दत्तं तद्दातुर्भोजनार्थं **विष्ठा** संपद्यते, जन्मान्तरे विष्ठाभोजिनां जातौ जायत इत्यर्थः। इतरे एवं पूयशोणितेऽपि व्याख्येयम्। **नष्टं** नाशभागितया निष्फलं विवक्षितम्। **अप्रतिष्ठ**मनाश्रयतया निष्फलमेव ॥ १८० ॥

(४) **राघवानन्दः।** सोमविक्रयादिना भुक्तश्राद्धीयस्य विरुद्धफलं वाचनिकमाह **सोमविक्रयिण इति त्रिभिः।** दातुरुपक्रमात्तस्यैव जन्मान्तरे भोजनार्थं विष्ठाद्युपस्थापकम्। सोमविक्रय्यादिभ्यो दत्तमन्नादि अप्रतिष्ठं उक्तवक्ष्यमाणकालास्थायि ! **देवलके** वार्धुषिक इत्यत्र चतुर्थ्यर्थे सप्तमी ॥ १८० ॥

(५) **नन्दनः।** प्रकृतमेवानुसरति **सोमेति।** **अप्रतिष्ठ**मविद्यमानं भवति ॥१८०॥

(६) **रामचन्द्रः।** **सोमविक्रयिणे** द्विजाय **दत्तं पूयशोणितं** भवति । **देवलके** द्विजे दत्तं **नष्टं** भवति । वार्द्धुषिको वृद्ध्योपजीवी तस्मिन्दत्तम**प्रतिष्ठं** भवति, नोपतिष्ठेत् ॥१८०॥

(७) **मणिरामः।** **सोमविक्रयिणे** यद्दत्तं तत् दातुः भोजनार्थे विष्ठा संपद्यते, जन्मान्तरे विष्ठाभोजिनां जातौ दाता जायत इत्यर्थः। एवमग्रेऽपि। **नष्टं** निष्फलम्। **अप्रतिष्ठं** अनाश्रयतया निष्फलमेव ॥ १८० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **सोमविक्रयिण इति।** **सोमविक्रयिणे** यद्दत्तं तत् दातृ-भोजनार्थं शकृत्संपद्यते। तच्च शकृद्भोजने तिर्यग्जात्युत्पत्तिफलता स्यात् [ इति ] अनेन प्रकारेणोक्तं भवति। एवं **पूयरुधिरे** अपि व्याख्येये। **नष्टं** विनाशमुपगतं, अतश्च न तत्फलं भवति। **अप्रतिष्ठं** अलब्धास्पदं, अतश्चानाश्रयत्वात् न फलदानसमर्थम् ॥ १८० ॥

**यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् ॥**
**भस्मनीव हुतं द्रव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ १८१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** अयमपि पूर्ववत् व्याख्येयः। वाणिजकस्य भोजनं निषिद्धम्। न तद्देशसंनिधिः। न हि यथा पूर्वत्र वीक्ष्येति दृष्टिगोचरे देशे लक्षणया संनिधिस्तद्वदिह तादृशं किंचिन्निबन्धनमस्ति। पौनर्भवो नवमे (९।१७५) वक्ष्यते ॥ १८१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **नेह तद्भवेत्** कीर्त्यादिहेतुरपि ॥ १८१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** वाणिजकाय **यद्दत्तं** श्राद्धे **तन्नेहा**नुषङ्गिककीर्त्यादिफलाय नापि पारलौकिकफलाय भवति। पुनर्भूपुत्राय यद्दत्तं **तद्भस्महुतहविः**समं निष्फल-मित्यर्थः ॥ १८१ ॥

(४) **राघवानन्दः।** वाणिक्पौनर्भवयोरपि न देयमित्याह **यत्त्विति।** **नेह** निन्दास्पदत्वाद्यशोऽपि नेति भावः। एतेषु न देयमिति तात्पर्यार्थः ॥ १८१ ॥

(५) **नन्दनः।** **वाणिजके** वणिग्वृत्तौ ॥ १८१ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **वाणिजके** वणिक्वृत्तिस्थिते **द्विजे** यत्तु दत्तं **इह** लोके **अमुत्र** पर-लोके **तन्न भवेत्** न फलतीत्यर्थः। पुनर्भुवः सकाशाद्भवति **पौनर्भवस्त**स्मिन्द्विजे दत्तं हुतं कारितं हव्यं **भस्मनीव** भवति। हुतं हव्यं भस्मनीव यथा निष्फलं भवति तथा ॥ १८१ ॥

(७) **मणिरामः। भस्मनीव हुतम्** निष्फलम् ।। १८१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। यदिति।** वाणिजकाय **यद्दत्तं तत् नेह** कीर्तये, नापि परलोकफलाय भवति। पुनर्भूपुत्राय च दत्तं निष्फलं **भस्मनीव हुतं** हव्यं तत्प्रेष्यम् [तद्वज्ज्ञेयम्] ।। १८१ ।।

**इतरेषु त्वपंक्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु ।।**
**मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ।। १८२ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** येऽस्मिन्नपंक्त्यदानफलप्रदर्शनप्रकरणे पठिताः अन्धादयस्तेभ्योऽन्ये स्तेनादयः प्रतिकाण्डोद्दिष्टास्तेषु यथोद्दिष्टेषु भोजितेषु दातुरिमान्युपतिष्ठन्ते, मेदोऽसृङ्मांसादीनि। तादृशजातौ जायते यत्रैतदाहारो भवति, कृमिक्रव्यादगृध्रादिजाताविति। **मनीषिणो** वेदविदो **वदन्ति**। सर्वस्यायमर्थः **अपंक्त्येषु** भोजितेषु श्राद्धाधिकारो न कृतो भवत्यकरणे च विध्यतिक्रमदोषोऽवश्यंभावी, नित्यत्वादस्य विधेः ।। १८२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु** तत्तत्स्थानोक्तेष्वपाङ्क्त्यव्यतिरिक्तेष्वपि निन्दितकर्मसु दत्तम्। **अन्न**मित्युपलक्षणमन्यस्यापि ।। १८२ ।।

(३) **कुल्लूकः। इतरेभ्यो** विशेषेणानुक्तफलेभ्यः पङ्क्तिभोजनानर्हेभ्यः स्तेनादिभ्यो यथाकीर्तितेभ्यो **यद्दत्तमन्नं** तद्दातुर्भोजनार्थं **मेदोरुधिरमांसमज्जास्थि** भवतीति पण्डिता **वदन्ति**। अत्रापि जन्मान्तरे मेदशोणितादिभुजां जातिषु जायन्त इत्यर्थः ।। १८२ ।।

(४) **राघवानन्दः। मेदो** वसा। अस्थिगो रसः। **'मज्जां** नाश्नीयादि'ति श्रुतेः ।। १८२ ।।

(५) **नन्दनः।** अत्रापि दत्तमित्यनुषज्यते ।। १८२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। इतरे**ष्वनुलोमप्रतिलोमजेषु दत्तं हव्यं कव्यमन्नं मेदोरूपं भवति। **अपाङ्क्तेषु असृङ्मांसरूपं** भवति। यथोद्दिष्टेषु वर्जितेषु यद्दत्तं तन्मज्जारूपं भवति। **असाधुषु** यद्दत्तं तदस्थिवद्भवति। एवं **मनीषिणो वदन्ति** मेदोसृङ्मांसादीनिति। तादृशजातौ जायते यत्रैतदाहारो भवति ।। १८२ ।।

(७) **मणिरामः। इतरेषु** विशेषेणानुक्तं फलेषु यद्दत्तमन्नं दातुर्भोजनार्थं **मेदोरुधिरमांसमज्जास्थि**र्भवतीति पण्डिता **वदन्ति**। अत्रापि जन्मान्तरे तद्भोजिनां जातौ दातुरुत्पत्तिर्भवतीत्यर्थः ।। १८२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। इतरेष्विति।** इतरेभ्यः अनुक्तफलेभ्योऽपाङ्क्त्येभ्यः यद्दत्तं अन्नं तत् मेदशोणितमांसमज्जास्थि भवतीति विद्वांसः। "अथ सोमविक्रयिणे। विष्ठे"तिवद्व्याख्येयम् ।। १८२ ।।

**अपंक्त्योपहता पंक्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ।।**
**तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पंक्तिपावनान् ।। १८३ ।।**

(१) **मेधातिथिः। अपंक्त्यैः** पूर्वोक्तैः उपहता दूषिता **पंक्तिः** परिषद्यैर्ब्राह्मणैः **पाव्यते** निर्दोषा क्रियते। **तान्वक्ष्यमाणैः** श्लोकैः शृणुत। **कात्स्न्र्येन** निःशेषेण **ब्रवीमि**। अर्थवादरूपाण्यन्यानि पदानि। यथैवैकत्र भुञ्जानो दुष्टो दूषयति अदुष्टान् एवं पंक्तिपावनः स्वगुणातिशयादन्येषामपि दोषानपनुदतीत्यस्यार्थः। न चानेनापंक्त्यानां भोजनमनुज्ञाप्यते, किं तर्हि ? पंक्तिपावनोऽवश्यमन्वेषितव्यः। तस्मिंश्च लब्धे यद्यन्ये नातिनिपुणतः परीक्षिताः त्रिपुरुषं यावत्, तथापि न चेदुपलभ्यमानदोषा, वृथाऽपि भोजयितव्या इत्येवमर्थः पंक्तिपावनोपदेशः ।। १८३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अपाङ्क्त्योपहता** अज्ञायमानदोषाऽपाङ्क्त्योपहता **द्विजोत्तमै**-र्ब्राह्मणैः **द्विजाग्र्यान्विप्रमुख्यान्पङ्क्तिपावनसंज्ञान्** ।। १८३ ।।

(३) **कुल्लूकः।** एकपङ्क्त्युपविष्टस्तेनादिदूषिता **पङ्क्त्यैर्ब्राह्मणैः** पवित्रीक्रियते। **तान्** पवित्रीकारकान्ब्राह्मणानशेषेण श्रृणुत्। निषेधादेकपङ्क्तिभोजनासंभवेऽपि। स्तेनादीनां रहस्यकृताज्ञातदोषविषयत्वेन साधकताऽस्य वचनस्य ।। १८३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** उक्तदोषेषु प्रायश्चित्तं पङ्क्तिपावन एवेति प्रतिजानीते **अपङ्क्त्येति। यैः पाव्यते तान्** अत एव समाख्या पङ्क्तिपावनानिति। तान्निबोधतेत्यन्वयः ।। १८३ ।।

(५) **नन्दनः। अपाङ्क्त्योपहता** अज्ञानादापद्विषयाद्वा परिगृहीतेनापाङ्क्त्योनोपहता ।। १८३ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** अपाङ्क्त्यैर्द्विजैरुपहता दूषिता **पङ्क्त्यैर्द्विजैः पाव्यते** निर्दोषीक्रियते **तान्द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान्कात्स्न्र्येन निबोधत** ।। १८३ ।।

(७) **मणिरामः। अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्तिः** स्तेनाद्यपाङ्क्त्येन दूषिता **पङ्क्तिः पाव्यते** पवित्रीक्रियते ।। १८३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अपाङ्क्त्योपहतेति।** स्तेनादिभिः पङ्क्त्युपविष्टैः दूषिता **पङ्क्तिः यैः** ब्राह्मणैः पवित्रीक्रियते **तान्** पङ्क्तिपवित्रीकरणान् ब्राह्मणान् साकल्येन शृणुत। यद्यप्यस्य पङ्क्तिनिषेधात् स्तेनादीनां श्राद्धदानासंभवेऽपि सति पङ्क्तिपावनवचनमनर्थकं, तथापि परीक्षायां कृतायामपि रहस्यविज्ञानदोषसंभवात् इदं तन्निवृत्त्यर्थमर्थवद्भवति ।। १८३ ।।

**अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।।**
**श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ।। १८४ ।।**

(१) **मेधातिथिः। अग्र्याः** उत्तमाः सर्वसंशयव्युदासेन निपुणतः स्वीकृतवेदाः। **सर्वेषु च प्रवचनेषु अग्र्याः** इत्येवम्। प्रोच्यते व्याख्यायते यैर्वेदार्थः तानि **प्रवचनान्यङ्गानि**। षडङ्गो वेदो यैरभ्यस्तोऽभ्यस्यते च। श्रोत्रियान्वये जाताः। पितृपितामहादयो येषां तादृशा एव। "ननु चेदृशा एव भोज्यतया विहितास्तत्र कोतिऽशयो येनेदानीं पंक्तिपावन-

त्वमुच्यते"। किंचिद्विद्वद्भ्यो दानं, सति श्रोत्रियत्वे विहितम्। न चेह विद्वत्तोपात्ता। न च तया पंक्तिपावनत्वोपपत्तिः। गुणविशेषापेक्षं हि पंक्तिपावनत्वं न गुणापचये युक्तम्। तस्माद्विद्वद्भावे केवलश्रोत्रियाय दानार्थमेतत्। असति विदुषि श्रोत्रियाय दानं मुख्यमेव न गौणमित्युक्तं भवति। बहुवचनं व्यक्त्यपेक्षम्। चकारः समुच्चये ।। १८४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अग्र्याः** मुख्याः अध्यापकानां मध्ये **सर्वेषु वेदेषु** न यत्र क्वचिदेकस्मिन्वेद इत्यर्थः। एवं **सर्वप्रवचनेषु।** सर्ववेदार्थनिर्वचनेषु **श्रोत्रियान्वयजा** वेदाध्येतृकुलजाः ।। १८४ ।।

(३) **कुल्लूकः। सर्वेषु वेदेषु** चतुर्ष्वपि **अग्र्याः** श्रेष्ठाः सम्यग्गृहीतवेदाः ब्राह्मणाः पावनाः। अत एव **यमः** 'पङ्क्तिपावनगणनायां चतुर्वेदविदे चैवे'ति पठितवान्। तथा प्रकर्षेणैव उच्यते वेदार्थ एभिरिति प्रवचनान्यङ्गानि तेष्वप्यङ्ग्याः षडङ्गविदस्तेच चतुर्वेदिनोऽपि पङ्क्तिपावनाः। 'न्यायविच्च षडङ्गविदि'ति पङ्क्तिपावनमध्ये **यमेन** पृथक् पठितत्वात्। तथा 'छन्दसां वृद्धदशपुरुष **इत्युशनो**वचनाद्दशपुरुषपर्यन्तमविच्छिन्नवेदसंप्रदायवंशजाः पङ्क्तिपावनाः ।। १८४ ।।

(४) **राघवानन्दः।** पङ्क्तिपावनान् लक्षयति **अग्र्या इति** त्रिभिः। **अग्र्याः** सर्वसंशयव्युदासेन वेदाध्यायिनः। **सर्वप्रवचनेष्विति।** प्रवचनं नाम वेदार्थव्याख्यानं षडङ्गानि तत्रापि कुशलाः तथा **श्रोत्रियान्वयजाः** छन्दसा शुद्धदशपुरुषपर्यन्तान्वयजाः ।। १८४ ।।

(५) **नन्दनः।** पूर्वेषां पात्रत्वमुक्तम्। इदानीं पङ्क्तिपावनत्वमित्यपुनरुक्तिः ।।१८४ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** पङ्क्तिपावनानाह **अग्र्या इति।** सर्वेषु वेदेषु ऋग्वेदादिषु अस्खलिताध्ययनक्षमा अग्र्याः। च पुनः **सर्वप्रवचनेषु** षडङ्गाध्यापनेषु 'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तिश्छन्दोज्योतिष'मिति षडङ्गानि एषां अध्यापनेषु; अर्थनिर्वचनेष्विति पाठः। वेदार्थविचारज्ञेषु अग्र्या मुख्या ज्ञेयाः। च पुनः **श्रोत्रियान्वयजाः** श्रोत्रियाणामन्वये वंशे जाताः। एते **पङ्क्तिपावना ज्ञेयाः** ।। १८४ ।।

(७) **मणिरामः। अग्र्याः** श्रेष्ठाः सम्यग्गृहीतवेदा इत्यर्थः। प्रवचनेषु वेदाग्रेषु च ।। १८४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अग्र्या इति।** सर्वेषु वेदेषु ऋग्वेदादिषु ये अग्रे भवाः (व्याः) वेदपारगत्वे सत्यपि वेदं करामलकवत्पश्यन्तीति **अग्र्या** उच्यन्ते, ते **पङ्क्तिपावना** बोद्धव्याः। तथा प्रोच्यते एभिर्वेदार्थ इति **प्रवचनान्यङ्गानि** तेषु पूर्ववदग्र्याः वेदज्ञत्वाभावेऽपि पङ्क्तिपावनाः तथा वंशमविच्छिन्नवेदाः पङ्क्तिपावनाः। पूर्वं "अश्रोत्रियः पिता यस्य" (३।१३६) इति पितृगतश्रोत्रियत्वेन भोज्यत्वमुक्तम्। अनेन तु सकलवंशाविच्छिन्नवेदत्वेन पङ्क्तिपावन उच्यते ।। १८४ ।।

**त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।।**
**ब्रह्मदेयानुसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ।। १८५ ।।**

(१) मेधातिथिः। त्रिणाचिकेताख्यो वेदविभागोऽध्वर्यूणाम्––'पीतोदका जग्धतृणा' इत्यादिः। तदध्ययनसम्बन्धात् पुरुषोऽत्र **त्रिणाचिकेत** उच्यते। अन्ये च त्रिणाचिकेतमधीयानानां व्रतमाम्नातं––तत् येन चरितं स **त्रिणाचिकेतः**। अत्रापि लक्षणयैव पुरुष उच्यते। न चैवं मन्तव्यं तावन्मात्रेण पङ्क्तिपावनत्वम्, किं तर्हि? सति श्रोत्रियत्वादिगुणयोगेऽधिकोऽयं गुणो द्रष्टव्य· पंक्तिपावनहेतुतया। पञ्चाग्निर्विद्या नाम छान्दोग्योपनिषदि विद्याऽम्नायते, (५।१०।९) "स्तेनो हिरण्यस्येत्यादि" यस्याः फलम्। तदध्ययनसम्बन्धात् पुरुषोऽपि 'पञ्चाग्निः' पूर्ववत्। अन्ये तु पञ्चाग्नयो यस्य, त्रयस्त्रोताऽग्नयः सभ्यावसथ्यौ च द्वौ, पञ्चाग्निः। तत्र 'सभ्यो' नाम यो महासाधनस्य शीतापनोदार्थमेव बहुषु देशेषु व्यवह्रियते। **त्रिसुपर्णो** नाम मन्त्रस्तैत्तिरीयके बाह्वृच्ये च, "ये ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठन्ती" त्यादिः। षडङ्गो वेदस्तं वेत्तीति **षडङ्गवित्**। ब्राह्मधर्मेण आहूय दानेन या दत्ता तस्या अनुसन्तानस्ततो जातः। **ज्येष्ठसामगश्च**। ज्येष्ठदोहानि आरण्यके सामानि, तानि गायति स एवमुच्यते। अत्रापि सामगानेन तद्व्रताचरणेन वा पुरुष इत्युच्यते।। १८५।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। 'उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददावि'त्यादिः (१।१) योऽनुवाकः कठश्रुतौ पठ्यमानः नचिकेतोर्नाम्नो मुनिपुत्रस्य प्रश्नत्रयविषये प्रोच्यत इति व्युत्पत्त्या **त्रिणाचिकेत**स्तत्पाठतदर्थज्ञानाभ्यां ब्राह्मणोऽपि त्रिणाचिकेतः। **पञ्चाग्नि**रूपनिषत्पठ्यमान पञ्चाग्निविद्यावित्। केचित्तु तैत्तिरीयशाखोक्तगार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयसभ्यावसथ्यरूपश्रौताग्निपञ्चकवान्पञ्चाग्निरित्याहुः। **त्रिसुपर्णः** तैत्तिरीयशाखापठितस्य 'ब्रह्म मे तु मा'मित्यादेः 'ये ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठन्ति ते सोमं प्राप्नुवन्ति आसहस्रात्पङ्क्ति पुनन्ती'त्यस्यानुवाकत्रयस्यार्थतो ग्रन्थतश्चाध्येता। षडङ्गवित् शिक्षाकल्पादिवेदाङ्गषट्कस्यार्थवित्। ब्रह्मदेया ब्राह्मविवाहेन दत्ता तस्या अनुसन्तानस्तत्सन्ततिः। अनुपदं ब्रह्मदेयैव यत्परंपरायां भार्येत्येतदर्थम्। ज्येष्ठसामगो ज्येष्ठसाम्नः सततगाता।। १८५।।

(३) कुल्लूकः। **त्रिणाचिकेतः** अध्वर्युवेदभागः तद्व्रतं च तद्योगात्पुरुषोऽपि **त्रिणाचिकेतः**। **पञ्चाग्नि**रग्निहोत्री। तथा च **हारीतः** 'पवनः पावनस्त्रेता यस्य पञ्चाग्नयो गृहे। सायंप्रातः प्रदीप्यन्ते स विप्रः पङ्क्तिपावनः।।' पवन आवसथ्याग्निः पावनः सभ्योऽग्निः शीतापनोदाद्यर्थं बहुषु देशेष्वपि विधीयते। **त्रिसुपर्णो** बह्वृचां वेदभागः तद्व्रतं च तद्योगात्पुरुषोऽपि **त्रिसुपर्णः**। षडङ्गानि शिक्षादीनि यो व्याचष्टे स **षडङ्गवित्** सर्वप्रवचनेन षडङ्गाध्येतोक्तः **ब्रह्मदेया** ब्राह्मविवाहोढा तस्या आत्म**सन्तानः** पुत्रः। ज्येष्ठसामानि आरण्यके गीयन्ते। तेषां गाता एते षट् विज्ञेयाः पङ्क्तिपावना इत्युत्तरश्लोकेन संबन्धः।। १८५।।

(४) राघवानन्दः। **ब्रह्मपुराणे** "आचिकेतीति यो विश्वं तृणवत्सर्वनिःस्पृहः। **त्रिणाचकेतः** स गृही रागद्वेषविमत्सरः" इति।। अथवा **त्रिणाचिकेतः** त्रिणाचिकेतो वेदभागः तद्योगात् 'तवैव नाम्ना भवितायमग्नि'रिति (कठ. १।१६१) नाचिकेतसं प्रत्युक्तेः। सोऽग्निश्चितो येन स वा **त्रिणाचिकेतः**। "**पञ्चाग्निः** पचनः पावनस्त्रेता यस्य पञ्चाग्नयो

गृहे सायंप्रातः प्रदीप्यन्ते स विप्रः पङ्क्तिपावनः" इति **हारीतोक्तेः**।। तत्र पचनोऽग्निरावसथ्याख्यः। पावनः सभ्यः त्रेता गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीयश्चेति। '**पञ्चाग्निरसौ** वाव लोको गौतमाग्नि'रित्यादिपञ्चाग्निविद्याविदिति **मेधातिथिः**। **त्रिसुपर्णः** 'पितरः सप्त पूर्वे च यज्वानो भूरिदक्षिणाः। यस्येदृशो मातृवंशस्त्रिसुपर्णीति स स्मृत' इति।। बह्वृचां वेदभागविद्वा। **षडङ्गवित्** शिक्षादीनां वेत्ता। **ब्रह्मदेयात्मसन्तानो** ब्राह्मविवाहोढात्मजः। **ज्येष्ठसामगः** आरण्यके गीयमानज्येष्ठसामगाता। आज्यदोहानि गायन्ति यः स ज्येष्ठसामग इति **मेधातिथिः**।। १८५ ।।

**(५) नन्दनः**। "उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसन्ददावि"त्यादिभिस्त्रिभिरनुवाकैर्विहितानां नाचिकेतसंज्ञानामग्नीनां चेता चयिता वा **त्रिणाचिकेतः**। **पञ्चाग्निर्गार्हपत्याद्यग्नित्रयस्य** सभ्यावसथ्ययोश्चाधाता। "ब्रह्म मेतु मामि"त्यादयस्त्रयोऽनुवाकाः प्रत्येकं त्रिसुपर्णसंज्ञाः। तांस्त्रीनेकं वा योऽधीते स त्रिसुपर्णः। **ब्रह्मदेयात्मसन्तानो** ब्राह्मविवाहोढायाः सुतः। ज्येष्ठसामेति तलवकाराणां प्रसिद्धिः। 'उदुत्यं चित्र'मित्येतयोर्गीतं तद्गायी **ज्येष्ठसामगः**।। १८५ ।।

**(६) रामचन्द्रः**। **त्रिणाचिकेतः** यजुर्वेदैकदेशे तद्व्रताचरणेन तदध्यायी त्रिणाचिकेतः। तैत्तिरीयशाखायां प्रसिद्धः। **पञ्चाग्निः** सभ्यावसथ्यौ दक्षिणाग्नयस्त्रयो यस्य सन्ति स पञ्चाग्निः। '**त्रिसुपर्णो** गरुत्मानि'ति श्रुतिः त्रिसुपर्णानुवाकत्रयस्याध्येता तदुपासनाभिज्ञश्च। तैत्तिरीयशाखायां **षडङ्गवेत्ता**। 'षडङ्गो वेद उच्यत' इत्यमरः। **ब्रह्मदेयात्मसन्तानः** ब्राह्मविवाहे उत्पन्नः च पुनः **ज्येष्ठसामगः** सामविशेषः तद्व्रताचरणेन यस्तदधीते सः ज्येष्ठसामग उच्यते।। १८५ ।।

**(७) मणिरामः**। **त्रिणाचिकेतः** यजुर्वेदभागः तद्व्रतं च तदधीते तत्करोति च यः स पुरुषोऽपि त्रिणाचिकेतः। एवं त्रिसुपर्णोऽपि **त्रिसुपर्णः** ऋग्वेदैकभागः तद्व्रतं च। षडङ्गवित् तदर्थव्याख्याता **ब्रह्मदेयात्मसन्तानः** ब्राह्मोढापुत्रः। **ज्येष्ठसामगः** ज्येष्ठसामानि आरण्यके गीयन्ते तेषां गाता।। १८५ ।।

**(८) गोविन्दराजः**। **त्रिणाचिकेत इति**। त्रिणाचिकेताख्याध्वर्यव वेदव्रताचरणात् गुणात् ब्राह्मणोऽपि **त्रिणाचिकेतः**, **पञ्चाग्नि**र्व्याख्यातः, त्रिसुपर्णाख्यऋग्वेदव्रतयोगात् पूर्ववत् **त्रिसुपर्णः**। व्याकरणादीनि षडङ्गानि यो वेत्ति। सर्वप्रवचनेष्वित्यनेन अङ्गाध्येता उक्तः। अनेन त्वङ्गज्ञ उच्यते। ब्राह्मविवाहोढापत्यं ज्येष्ठसामाख्यसामवेदव्रतयोगात् **ज्येष्ठसामगः**।। १८५ ।।

**वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः।।**
**शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः।। १८६ ।।**

**(१) मेधातिथिः**। वेदस्यार्थं जानाति। "ननु च षडङ्गविदुक्त एव"। सत्यम्। अङ्गैर्विना स्वयमप्यूहति प्रज्ञया यः स इह **वेदार्थविद**भिप्रेतः। अथवा तस्यैवायमनुवादः पुनःपुनः क्रियते। न वेदार्थज्ञानेन विना सत्यप्यन्यगुणयोगे श्राद्धार्हः। **प्रवक्ता** व्याख्याता

वेदार्थस्यैव। **ब्रह्मचारी। सहस्रदः।** अविशेषोपादानेन गवां सहस्रं यो दत्तवान्। इदं तु युक्तम्। सहस्रशब्दस्य बहुनामत्वात्, बहु यो ददाति, उदारो वेत्यर्थः। न हि गवां संख्येयत्वे प्रमाणमस्ति। वेदेऽप्युक्तं "गावो वै यज्ञस्य मातर" इति। अविशेषचोदनायां गावः प्रतीयन्ते। **शतायुर्वृद्धवयाः।** स हि परिपक्वकषायतया पावनत्वमश्नुते। शतमायुरस्येति **शतायुः** वर्षाणि संख्येयानि, प्रसिद्धेः। अथवा शतशब्दो बह्वर्थः, बह्वायुः। वृद्धवयस्त्वं चात्राभिप्रेतम्। उक्तं तु **गौतमीये** "युवभ्यो दानं प्रथमम्, एके पितृवत्" इति (अ० १५ सू० १०—११)। एवमर्थमेव च ब्रह्मचारिग्रहणमिह व्याचक्षते। स हि पूर्ववया भवति ॥ १८६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वेदार्थवित्** प्रागुक्तेभ्योऽन्यस्यापि वेदस्यैकदेशस्यार्थवित् **प्रवक्ता** तदर्थव्याख्याता। **सहस्रं** गोसहस्रं तस्य **दाता। शतायुः** पूर्णशतवर्षः ॥ १८६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** अनधीत्यापि वेदाङ्गानि गुरूपदेशाधिगतवेदार्थः। **प्रवक्ता** वेदार्थस्यैव। **ब्रह्मचारी** प्रथमाश्रमी। **सहस्रद** इति देयविशेषानुपादानेऽपि 'गावो वै यज्ञस्य मातर' इत्यादिविशेषप्रवृत्तश्रुतिदर्शनात् गोसहस्रदाता बहुप्रदो वा **शतायुः** शतवर्षवयाः। श्रोत्रियायैव देयानीति नियमात्सति श्रोत्रियत्वे उक्तगुणयोगात्**पङ्क्तिपावनत्वम्** ॥ १८६ ॥

(४) **राघवानन्दः। वेदार्थवित्** अङ्गाध्ययनं विना गुरूपदेशत इति केचित्। वस्तुतस्तु उपक्रमादिषड्भिर्लिङ्गैर्वेदार्थज्ञाता ब्रह्मवित् 'एकोऽपि ब्रह्मविद्भुङ्क्ते जगत्तर्पयतेऽखिलम्। तस्माद्ब्रह्मविदे देयं यदस्ति वसु किंचने'त्युक्तत्वात् ॥ **प्रवक्ता** वेदार्थस्य। **सहस्रदः** गोसहस्रदाता **शतायुः** विप्रत्वे सति शतवर्षजीवी ॥ १८६ ॥

(५) **नन्दनः। प्रवक्ता**ऽध्यापकः। **ब्रह्मचा**र्यृतुकालाभिगामी। 'निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचार्येव भवती' (३।५०)त्युक्तत्वात्। 'ऊर्ध्वरेता ऋतुकालगामी तत्त्वविच्च पंक्तिपावन' इति स्मृत्यन्तरम्। **सहस्रदः** सहस्रस्य ब्राह्मणानां भोजनदाता सहस्रसुवर्णानां वा ॥ १८६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। वेदार्थवित्। च** पुनः **प्रवक्ता** वेदशास्त्रार्थवक्ता। **ब्रह्मचारी** प्रसिद्धः। **सहस्रदः** गोसहस्रदः। सहस्राणामन्नदो वा। **च** पुनः **शतायुरेव** चिरंजीवीत्यर्थः। एते **पङ्क्तिपावना विज्ञेयाः** ॥ १८६ ॥

(७) **मणिरामः। प्रवक्ता** वेदार्थस्यैव, **सहस्रदः** गोसहस्रदाता, बहुप्रदो वा ॥१८६॥

(८) **गोविन्दराजः। वेदार्थविदिति।** अन्तरेणाप्यङ्गानि यो वेदार्थं प्राज्ञतया वेत्ति **प्रवक्ता** अध्यापयिता व्याख्याता धर्मार्थं वेदवेदार्थयोः, **ब्रह्मचारी।** 'गावो वै यज्ञस्य मातर' इति वेददर्शनात् इहापि वेदमूलत्वात् गोसहस्रस्य दाता बहुप्रदश्च, एवं शतवर्षश्च इत्येते ब्राह्मणाः श्रोत्रियायैव देयानीति नियमात्। सति श्रोत्रियत्वे एतद्गुणयोगे पङ्क्तिपावना बोद्धव्याः ॥ १८६ ॥

**पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥**
**निमन्त्रयीत त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान् यथोदितान् ॥ १८७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्ता यादृशा ब्राह्मणा भोजनीयाः। इदानीमन्येतिकर्तव्यतोच्यते। **पूर्वेद्युर्यदहः** श्राद्धं कर्तव्यम् अमावास्यायां त्रयोदश्यां वा, ततः पूर्वस्मिन्नहनि चतुर्दश्यां द्वादश्यां वा, श्वः श्राद्धे कर्तव्ये ब्राह्मणान्निमन्त्रयेत्। **अपरेद्युस्तदहरेव वा**। विकल्पश्चात्र नियमापेक्षः। यः शक्नोति नियमान्पालयितुं स पूर्वेद्युः, अशक्तस्तदहरेव। अधिकनियमानुपालनाच्च महाफलम्। निमन्त्रणे कर्तव्ये अध्येषणपूर्वकम् व्यापारणमभ्युपगमनं च। त्रयोऽवरा येषा ते **त्र्यवराः**। गत्यत्यन्तं न्यूनास्तदा त्रयः। शक्तौ त्वयुजो यथोत्साहमित्युक्तम्। अवशिष्टः पदसंघातः श्लोकपूरणार्थः। **उपस्थिते** प्राप्ते। **यथोदितान्** यथोक्तान्॥ १८७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**! **अपरेद्यु**रपरस्मिन्नहनि पूर्वेद्युरनिमन्त्रणे निश्चितपूर्वदिनब्रह्मचर्यस्य निमन्त्रणं एको दैव एकः पित्र्य **एको** मातामहस्थाने इति पक्षस्त्रिपक्षः सोऽवरोऽनूचानो येषां ते **त्र्यवराः** अशक्तावयं कल्पः। शक्तौ त्वतोऽधिका ग्राह्या इत्यर्थः। **सम्यक्** विधिना॥ १८७॥

(३) **कुल्लूकः**। श्राद्धकर्मणि प्राप्ते श्राद्धाहात्पूर्वदिने तदसंभवे श्राद्धदिन एवोक्तलक्षणान् ब्राह्मणान्सम्यग्गतिसत्कृत्य निमन्त्रयेत्। त्रयोऽवरा न्यूना येषां ते **त्र्यवराः** न तु तानेव एकैकभोजनस्याप्युक्तत्वात्॥ १८७॥

(४) **राघवानन्दः**। श्राद्धप्रकारत्वान्निमन्त्रितस्य नियमान्वक्तुं निमन्त्रणाङ्गकालमाह **पूर्वेद्युरिति**। पूर्वेद्युः श्राद्धदिनात्पूर्वदिने **अपरेद्युः** श्राद्धदिने। **त्र्यवरान्** त्रयो अवरा निकृष्टा यत्र तान्। 'न तु तानेव एकैकमपी'त्युक्तेः। **यथोदितान**ग्र्या इत्यादिनोक्तान्॥ १८७॥

(५) **नन्दनः**। अथ पात्रत्वेन परिगृहीतानां निमन्त्रणकालमाह **पूर्वेद्युरिति**। **पूर्वेद्युः** श्राद्धदिनात्पूर्वस्मिन्नहनि **अपरेद्युः** श्राद्धदिने॥ १८७॥

(६) **रामचन्द्रः। श्राद्धे कर्मणि उपस्थिते** सति प्राप्ते सति **पूर्वेद्युः** रात्रौ वा **अपरेद्युस्तद्दिने** वा **यथोदितांस्त्र्यवरान्** त्रयोऽवरा न्यूना एषां त्र्यवरा एतान् **निमन्त्रयेत्**॥ १८७॥

(७) **मणिरामः**। **त्र्यवरान्** त्रयः अवराः न्यूनाः येषां ते त्र्यवराः, तान् 'द्वौ दैव'-त्यादिपूर्वोक्तानित्यर्थः॥ १८७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पूर्वेद्युरिति**। श्राद्धे कर्मणि प्राप्ते स्त्रीप्रयोगाशङ्कायां श्राद्धदिवसात् पूर्वस्मिन्नहनि परस्मिन्नेव असति संभवे यद्यत्यन्तन्यूनान् ततस्त्रीन् न तु त्रीनेव, एकैकविधेरप्युक्तत्वात्। प्रश्रयपूर्वं वा यथोक्तान् विप्रान् **निमन्त्रयेत्**॥ १८७॥

**निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा॥**
**न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत्॥ १८८॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पित्र्ये** श्राद्धे **निमन्त्रितो नियतात्मा भवेत्**। संयतात्मा ब्रह्मचर्यं परिरक्षेत्, अन्यांश्च यमनियमाननुतिष्ठेत स्नातकव्रतादीन्। पुरुषव्रतानां नृत्य-

गीतादिप्रतिषेधानां कर्माङ्गता विधीयते। तथा कर्तव्यं श्राद्धकृता यथाऽसौ ब्राह्मणो निमन्त्रणात् प्रभृति संयतेन्द्रियो भवति, अन्यथा श्राद्धं दूष्येत्। **न च छन्दांसि** वेदान् **अधीयीत।** यच्च वेदाक्षरोच्चारणमध्ययनं तन्निषिध्यते। जपस्तु सन्ध्योपासनादावप्रतिषिद्धः। **यस्य** तत्कर्तव्यं **श्राद्धं भवेत्।** पित्र्ये श्राद्धे निमन्त्रितवन्नियतात्मा भवेत्। संयतात्मा च सोऽपि नियतात्मा भवेदिति पदयोजना। अतो भोक्तुः कर्तुश्च निमन्त्रणात्प्रभृति तुल्यो नियमोऽनध्ययनं च ॥ १८८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पित्र्य** इत्युपलक्षणं दैवेऽपि। **नियतात्मा** क्रोधकामाशुचित्वशून्यः। **छन्दांसि** वेदान्। **यस्य** कर्तुः श्राद्धकार्ये ॥ १८८ ॥

(३) **कुल्लूकः।** श्राद्धे निमन्त्रितो ब्राह्मणो निमन्त्रणादारभ्य श्राद्धाहोरात्रं यावन्मैथुननिवृत्तिसंयमनियमवान् स्यात्, अवश्यकर्तव्यजपादिवर्जं वेदाध्ययनं च न कुर्यात् श्राद्धकर्तापि तथैव स्यात् ॥ १८८ ॥

(४) **राघवानन्दः।** नियममाह **निमन्त्रित** इति चतुर्भिः। **नियतात्मा** मैथुनादिनिवृत्तिमान्। "अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः। भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणे"ति मन्त्रलिङ्गात् श्राद्धकर्तापि तथा स्यात्। तदहरध्ययनफलं श्राद्धोद्देश्यगामीत्याह **यस्येति** ॥ १८८ ॥

(५) **नन्दनः। नियतात्मा** नियतेन्द्रियः। यः श्राद्धे **निमन्त्रितो** भवेद्यः श्राद्धं करोति स च **नियतात्मा** भवेत् न **चाधीयीत च्छन्दांसि** ॥ १८८ ॥

(६) **रामचन्द्रः। पित्र्ये** कर्मणि **निमन्त्रितः** सदा **द्विजो नियतात्मा भवेत्। च पुनश्छन्दांसि नाधीयीत। च** पुनः **यस्य** गृहे श्राद्धं स तद्व्रताचरणो भवेत्। जितेन्द्रिय अध्ययनरहितः ॥ १८८ ॥

(७) **मणिरामः। नियतात्मा** मैथुननिवृत्तिसंयमवान्। यस्य तत् श्राद्धं सोऽपि **भवेत्।** श्राद्धकर्तापि नियमवान् भवेदित्यर्थः ॥ १८८ ॥

(८) **गोविन्दराजः। निमन्त्रित इति। श्राद्धे** ब्राह्मणो **निमन्त्रितः** स्त्रीनिवृत्तियमनियमानुष्ठानवान् **सदा** निमन्त्रणात् प्रभृति श्राद्धाहोरात्रं यावत् स्यात्। वेदांश्च जपाद्यवश्यकर्तव्यव्यतिरेकेण **नाधीयीत।** श्राद्धकृच्च तद्वदेव स्यात् ॥ १८८ ॥

**निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ॥**
**वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८९ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** निमन्त्रितेन नियतात्मना भवितव्यमित्यस्य विधेरर्थवादोऽयम्। यस्मा**न्निमंत्रितान्** ब्राह्मणान् अदृश्येन रूपेण **पितर उपतिष्ठन्ति** तच्छरीरमनुप्रविशन्ति, यथा भूतग्रहाविष्टम्। **वायुवदनुगच्छन्ति।** यथा वायुः प्राणः पुरुषं गच्छन्तमनुगच्छति, न गच्छन्तं प्राणो जहाति, एवं पितरो वायुभूता भवन्ति। **तथाऽऽसीनान् ब्राह्मणानुपासते।** गच्छत्स्वनुगच्छन्ति, उपविष्टेषूपविशन्ति। निमन्त्रिता द्विजा पितृरूपापन्ना भवन्तीत्यर्थः। तस्मान्न स्वतन्त्रैर्निमन्त्रितैर्भवितव्यम् ॥ १८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । निमन्त्रितान्** । हीत्युक्तविधिशेषः । **उपतिष्ठन्ति** तिष्ठत्सु तत्समीपे तिष्ठन्ति । **अनुगच्छन्ति** निमन्त्रितेन साकम् ।। १८९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । पूर्वनियमविधेरयमनुवादः । यस्मात्तान् ब्राह्मणान्**निमन्त्रितान**दृश्यरूपेण पितरोधितिष्ठन्ति । प्राणवायुवद्गच्छतो**ऽनुगच्छन्ति** तथोपविष्टेषु तेषु समीप उपविशन्ति । तस्मान्नियता भवेयुः ।। १८९ ।।

(४) **राघवानन्दः । अनुगच्छन्ति निमन्त्रितान्** द्विजान् **आसीनांस्तान् उपासते** समीपे तिष्ठन्ति ।। १८९ ।।

(५) **नन्दनः** । निमन्त्रितानां नियतात्मत्वानध्ययनयोः कारणमाह **निमन्त्रिता-निति** । वायुभूता वायुवद्व्यापिनो **निमन्त्रितान्**ब्राह्मणान्**पितर उपतिष्ठन्ति** तेषां समीपे तिष्ठन्ति गच्छतो**ऽनुगच्छन्ति तथासीनानुपासते** । यत्कर्मनिमन्त्रिताः कुर्वन्ति तत्पितरोऽपि कुर्वन्ति तस्मादनियतात्मत्वमध्ययनायासित्वं च वर्जनीयमित्यभिप्रायः ।। १८९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । वायुभूताः **पितरः द्विजाननुगच्छन्ति** ।। १८९ ।।

(७) **मणिरामः** । निमन्त्रणप्रयोजनमाह **निमन्त्रितानिति** ।। १८९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । निमन्त्रितानिति** । यस्मात्तान् **द्विजान् निमन्त्रितान् पितर उपतिष्ठन्ति** अदृश्यरूपेण समीपमायान्ति । प्राणवच्च गच्छतो**ऽनुगच्छन्ति** । उपविष्टेषु विप्रेषु समीपे उपविशन्ति तस्मात् नियतात्मना निमन्त्रितेन भाव्यम् इति पूर्वविध्यर्थ-वादः ।। १८९ ।।

**केतितस्तु यथान्यायं हव्ये कव्ये द्विजोत्तमः ।।**
**कथंचिदप्यतिक्रामन् पापः सूकरतां व्रजेत् ।। १९० ।।**

(१) **मेधातिथिः । केतित** उपनिमन्त्रितः । **हव्ये कव्ये** दैवे पित्र्ये च । अङ्गी-कृत्य निमन्त्रणमभ्युपगम्य श्राद्धभोजनम् । यदि कथंचिदतिक्रामति, भोजनकाले न संनिधीयते, ब्रह्मचर्यं च न रक्षति, तदा सूकरतां गच्छति स ब्राह्मणः । **कथंचित्**कामा-द्विस्मृत्य वा । **यथान्याय**मिति वृत्तपूरणम् । अन्ये त्वाहुः – प्रार्थ्यमानस्यानभ्युपगम एव 'अतिक्रमः' । तथा च श्राद्धकल्पे उक्तम् "अनिन्दितेनामन्त्रितो नातिक्रामेत्" इति । एतच्चायुक्तम् ; लिप्सया प्रवृत्तिः श्राद्धे, न पुनः शास्त्रतः । तत्रासत्यां लिप्सायां यदि नाङ्गीकरोति तदा को दोषः ।। १९० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । केतितो** निमन्त्रितः । **कथंचिद**न्यनिमन्त्रणादिनापि **अतिक्रामन्** तस्य गृहेऽनश्नन् ।। १९० ।।

(३) **कुल्लूकः । हव्यकव्ये** यथाशास्त्रं **निमन्त्रितो** ब्राह्मणः स्वीकृत्य केनापि प्रकारेण भोजनमकुर्वाणः तेन पापेन जन्मान्तरे सूकरो भवति ।। १९० ।।

(४) **राघवानन्दः** । अत आह **केतित इति । केतितो** निमन्त्रितः । **अतिक्रामन्** मैथुनादिनिषिद्धाचरणेन निमन्त्रणं स्वीकृत्य परित्यजन्वेति केतित इत्युपलक्षणं निमन्त्रि-

यितुः "केतनं कारयित्वा तु योऽतिपातयते द्विजः। ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयोनौ च जायते"॥ "एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते नियतं संशितव्रतः। यतिचान्द्रायणं चीर्त्वा ततः प्रापात्प्रमुच्यते" इति **यमोक्तेः**॥ १९०॥

(५) **नन्दनः। केतितो** निमन्त्रितः। **कथंचिद्धे**तुनाऽहेतुनेत्यर्थः। **हव्यकव्येऽतिक्राम**न्छ्राद्धपरित्यागं कुर्वन्नित्यर्थः॥ १९०॥

(६) **रामचन्द्रः। निमन्त्रितो** द्विजः **कथंचिदपि** विषयानतिक्रामन्विषयैराक्रान्तः स **पापः शूकरतां** व्रजेत्॥ १९०॥

(७) **मणिरामः। केतितस्तु** यथाशास्त्रं निमन्त्रितो ब्राह्मणस्तु **कथञ्चिदप्यतिक्रामन्** भोजनमकुर्वन्॥ १९०॥

(८) **गोविन्दराजः। केतित** इति। **हव्यकव्ययोः** शास्त्रमर्यादानतिक्रमेण निमन्त्रितो ब्राह्मणः अङ्गीकृत्य केनापि प्रकारेणाभुञ्जानः तदतिक्रमपापवान् जन्मान्तरे **शूकरत्वं** याति। **पापशूकर** इति पाठे पापसूकरो ग्रामसूकरः॥ १९०॥

**आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते॥**
**दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥ १९१॥**

(१) **मेधातिथिः।** वृषलीशब्दः स्त्रीमात्रोपलक्षणार्थः, सामान्येन ब्रह्मचर्यस्य विधानात्। अतो ब्राह्मण्यपि वृषल्येव। वृषस्यति चालयति भर्तारमिति यौगिकत्वं दर्शयति। अतोऽयमर्थः—भोजनमङ्गीकृत्य तदहः यः स्त्रिया **सह मोदते** रमते, तया सह सुरतसंभोगेच्छया संलापालिङ्गनाद्यपि यो जनयति, तस्यायं दोषः। **दातुः** श्राद्धस्य कर्तुः। **यद्दुष्कृतं** पापं **किंचित्तत्सर्वं** तस्मिन् सङ्क्रामति। अनिष्टफलयोगमात्रमनेन निर्दिश्यते। अन्यथा यत्र दाता पुण्यकृत् तत्र न कश्चिद्दोषः स्यात्। 'मोदनं' हर्षोत्पत्तिः। तेन संलापालिङ्गनाद्यपि न कर्तव्यम्॥ १९१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वृषल्या** शूद्रया **मोदते** रत्यनुगुणं चुम्बनादिकर्माणि कुरुते। ब्राह्मण्या तु सह न तादृशो दोष इति तात्पर्यम्। **दातुर्यावद्दुष्कृतं** तावत् नतु तदेवान्यकृतस्यान्यत्राप्रतिसंक्रमात्॥ १९१॥

(३) **कुल्लूकः।** 'नियतात्मा भवेत्सदे' (३।१८८) त्यनेन मैथुननिषेधे कृतेऽपि वृषलीगमनस्याधिकदोषज्ञापनायाह **आमन्त्रितस्त्विति। वृषली** शूद्रा तत्र रूढत्वात् **श्राद्धे निमन्त्रितः** सन् यो **वृषल्या** सार्धं स्त्रीपुंसधर्मेण सुरतादिना रमते स दातुर्यत्पापं तत्प्राप्नोति पापोत्पत्तिमात्रं विवक्षितम्। अन्यथा दातरि अपापे पापं न जायते। नचेदं दातुः प्रायश्चित्ततया विहितं येनासौ पापान्मुच्यते। **मेधातिथिगोविन्दराजौ** तु सामान्येन ब्रह्मचर्यस्य विधानात् वृषस्यन्ती चपलयति भर्तारमिति योगाश्रयणेन श्राद्धभोक्तुरूढा ब्राह्मण्यपि वृषल्यभिमतात्रेत्याहतुः॥ १९१॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **आमन्त्रित इति** वृषस्यन्ती भर्तारं **वृषली** ब्राह्मण्यपीति॥ १९१॥

(५) **नन्दनः**। **वृषल्या** स्वभार्यया **शूद्रया** वृषलीगमनमुत्तरासामप्युपलक्षणम् ।। १९१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। द्विजः **श्राद्धे आमन्त्रितः सन्वृषल्या सह रात्रौ मोदते दातुः** श्राद्धकर्तुः **यद्दुष्कृतं** पापं **तत्सर्वं** प्रतिपद्यते ।। १९१ ।।

(७) **मणिरामः**। मैथुननिषेधे कृतेऽपि वृषलीगमनस्याधिकदोषज्ञापनायाह **आममिति** ।। १९१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **आमन्त्रित इति**। "तदहर्ब्रह्मचारी स्यात्" इति **गौतम**स्मरणात् । वृषल्यपि कामयमाना चालयति भर्तारमिति वृषलगत्र ब्राह्मण्यपि। श्राद्धे निमन्त्रितः सन् तया सह स्त्रीपुंधर्मेण यो रमते स दातुर्यत्पापं तत्सर्वं प्राप्नोति इति पापोत्पत्तिप्रतिपादनमात्रमेतत् । अन्यथा अपापे दातरि दुष्कृतसंबन्धो न स्यात् । तत्र (न चात्र) दातुरेतत् प्रायश्चित्ततया चोदितं येनासौ दुष्कृतान्मुच्यते ।। १९१ ।।

**अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ।।**
**न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ।। १९२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अक्रोधनाः** क्रोधवर्जिताः। **शौचपराः**। 'शौचं' शुद्धता मृद्वारिभ्यां प्रायश्चित्तेनान्तःशुद्ध्या वा। सततं शुद्धेर्विशेषणम् । तेन निष्ठीवनादावाचमनादि तत्क्षणमेव कर्तव्यम् । **ब्रह्मचारिणः** स्त्रीसम्भोगं परिहरन्ति। **न्यस्तशस्त्राः**। न्यस्तं त्यक्तं शस्त्रं यैः। शस्त्रग्रहणं दण्डपारुष्योपलक्षणार्थम् । **महाभागाः**। औदार्यधनित्वादिगुणयोगो 'महाभागता'। यत एवंविधं पितॄणां रूपं, ते च ब्राह्मणानाविशन्ति, अतस्तैस्तद्रूपधारिभिर्भवितव्यमित्यर्थवादेनायमर्थो विधीयते। **पूर्वदेवताः** पितरो नाम, कल्पान्तरेऽप्येते देवता एवेति स्तुतिः। **पूर्वकालं** पितॄणामर्चनीयत्वात्पूर्वग्रहणम् ।। १९२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अक्रोधना** इत्यादिना यादृशाः पितरस्तादृशैर्ब्राह्मणैर्दात्रा च भवितव्यमिति दर्शितम् । **पूर्वदेवताः** देवताभ्योऽपि पूर्वभूताः ।। १९२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्रोधरहिता बहिःशौचं मृद्वारिभ्यामन्तःशौचं रागद्वेषादित्यागस्तद्युक्ताः, सर्वदा स्त्रीसंयोगादिशून्याः त्यक्तयुद्धाः दयाद्यष्टगुणयोगो महाभागता तद्वन्त अनादिदेवतारूपाः पितरस्तस्मात् क्रोधादिरहितेन भोक्त्रा कर्त्रा च भवितव्यम् ।। १९२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पितॄणां विशिष्टजन्मख्यापनार्थं तान् विशिषन्नुपचारनियमेन सहोत्पत्तिं प्रतिजानीते **अक्रोधना** इति द्वाभ्याम्। **शौचपराः** शुद्धमानसाः। **न्यस्तशस्त्राः** त्यक्तयुद्धाः। महानग्र्यो भागो येषां ते। **पूर्वदेवता** देवतानां पूर्वतनाः ।। १९२ ।।

(५) **नन्दनः**। **पितरो** नाम केचिद्देवताविशेषा न प्रेताः पितृपितामहादय इत्याह **अक्रोधना इति**। **न्यस्तशस्त्रास्त्यक्तहिंसाः**। **महाभागाः** महात्मानः **पूर्वदेवताः** देवताभ्यः पूर्वे ।। १९२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पितॄणां स्वरूपमाह **अक्रोधना इति**। अक्रोधनादयः **पितरः पूर्वदेवताः** ।। १९२ ।।

(७) **मणिरामः । महाभागाः** दयाद्यष्टगुणयुक्ताः **पूर्वदेवताः** अनादिदेवतारूपाः यतः पितरः एतादृशाः अतो भोक्त्रा कर्त्रा च क्रोधादिरहितेन भवितव्यमित्यर्थः ।। १९२ ।।

(८) **गोविन्दराजः । अक्रोधना इति ।** क्रोधशून्याः मृद्वार्यादिशुद्धिनिरताः सर्वदा वर्जितस्त्रीसंप्रयोगाः त्यक्तायुधाः महात्मानः अनादिदेवतारूपाः **पितरः** अतः क्रोधादिरहितैः श्राद्धब्राह्मणैर्भाव्यम् ।। १९२ ।।

**यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।।**
**ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ।। १९३ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यत **एतेषां** पितृणा**मुत्पत्तिर्ये च** पितरो **यैरुपचर्याः ।** ब्राह्मणेन सोमपाः, क्षत्रियेण हविष्मन्तः इत्यादि । तत्सर्व**मप्यशेषत** इदानीमुच्यमानं **निबोधत** बुध्यध्वम् । **नियमै**रित्यनुवादः । पूर्वमेव विहितत्वात् "नियतात्मा भवेत्" इति । बहुवचनं बहुत्वान्नियमानाम् ।। १९३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । यस्माद्येभ्य उत्पत्तिः यैः** साध्यादिभिः । **यैश्च नियमैरुपचर्याः** ।। १९३ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** एषां सर्वेषां पितृणां **यस्मादुत्पत्तिर्ये च** पितरो **यैर्ब्राह्मणादिभिर्यैर्नियमैः** शास्त्रोक्तकर्मभिरुपचरणीया भवेयुः **तान्साकल्येन** शृणुत ।। १९३ ।।

(४) **राघवानन्दः । ये** यत्प्रभावा **ये** यत्स्वरूपाः सोमसद इत्याद्या यैः साध्यादिभिरर्च्या **यै** रजतपात्रमुन्यन्नकालशाकाद्यै**र्नियमैः** देवपूर्वत्वव्रतचर्यादिभिर्वा **उपचर्याः** पूज्याः स्यु**स्तान्निबोधते**त्यन्वयः ।। १९३ ।।

(५) **नन्दनः । ये** पितरो **यै**र्यज्ञविशेषैर्यैः **नियमैः** करणैः **उपचर्याः** पूज्या**स्तान्नि**यमविशेषान्पितृंश्च **निबोधत** ।। १९३ ।।

(६) **रामचन्द्रः । यस्मात्कारणादेतेषां** सर्वेषां पितृणा**मुत्पत्तिः । अशेषतो निबोधत । च** पुनः **ये** पितरो **यै**र्देवादिभिर्नियमैरुपचर्याः सेव्याः स्युस्तान्निबोधत ।। १९३ ।।

(७) **मणिरामः । एतेषां** पितृणां **ये च** पितरः **यैः नियमैः** शास्त्रोक्तकर्मभिः **उपचर्याः** उपचरितुं योग्याः ।

(८) **गोविन्दराजः । यस्मादिति ।** एषां पितृणां यस्य सकाशादुत्पत्तिः **ये च** पितरो **यैः** ब्राह्मणादिभिः यागादिभि**र्नियमैः** शास्त्रोक्तकर्मभिः यथा स्युः तत् शृणुत ।।१९३।।

**मनो हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।।**
**तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ।। १९४ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** हिरण्यगर्भः प्रजापतिः । तस्य पुत्रो **हैरण्यगर्भो** मनुः । तथा चोक्तं प्रथमाध्याये (१/५१)—"एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चेति" । तस्य मनोर्ये **मरीच्यादयः** पुत्राः अत्र्यङ्गिरसावित्यादयस्**तेषामृषीणां** ये **पुत्रास्त** एते **पितृगणाः ।**

"ननु च पित्रादयः सर्वस्यात्मीयाः पितरः। एवं हि चोदितं 'पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय पिण्डान्निर्वपेत्।' तथा 'अत ऊर्ध्वं पुत्रास्त्रिभ्यो दद्युरिति'। तत्र किमिद-मुच्यते—'ऋषीणां पुत्राः पितरः, सोमपा नाम विप्राणामिति'। न च विकल्पः शक्यः प्रतिपत्तुं—'सोमपेभ्यो दद्यात्पितृपितामहेभ्यो वेति'। यत उत्पत्तौ 'पुत्रेण कर्तव्यमिति श्रूयते सम्बन्धिशब्दश्च पुत्रशब्दः। तथा 'पिता यस्य तु वृत्तः स्यादिति'। तस्मा-द्वक्तव्योऽस्य प्रकरणस्यार्थः"। उच्यते—स्तुतिरियं पूर्वविधिशेषभूता। नात्र तेषां सम्प्र-दानता श्रुता।

"ननु चोपचर्या इति विधिरस्ति"। नायं चरतिः सामान्यक्रियारूपो विधिविषये भवितुमर्हति। उपचारो नाम कश्चिद्दानयागादिवद्भेदे न प्रतीयते। प्रायेण ह्ययं करोति-वत् सन्निहितक्रियापरतया प्रयुज्यते। सन्निहितं च श्राद्धम्। तच्च विशिष्टसम्प्रदानकं विहितं न शक्यं पुनर्विधातुं, विधेयत्वेन च न सन्निधिरस्ति। असन्निहितस्य चरतिर्बाधकः। योऽपि लोके 'गुरव उपचर्या' इति प्रयोगस्तत्रापि शुश्रूषालक्षणार्थः पादधावनादिः प्रतीयते। सोऽपि यथोदितानां पितॄणां न सम्भवति। प्रकृत्यैकवाक्यतया चार्थवत्तोप-पत्तेर्नार्थान्तरकल्पनाऽपि सम्भवति। यदि च सोमपादयो यथावर्णं श्राद्धे देवतात्वेनाभि-प्रेताः स्युस्ततोऽभिजनवर्णनमुपयोगि। स्तावकत्वे तु सर्वमुपपद्यते।

यः कश्चित्पितृद्वेषात्पित्र्ये कर्मण्युपहतबुद्धिरनादरवान्स्यात्तस्य प्रवृत्त्यर्थमिदमार-भ्यते। मैवं मंस्थाः 'मृतमनुष्यरूपाः पितरः, ये न तर्पिताः, श्राद्धं कं दोषं करिष्यन्ति, तर्पिता वा कं गुणमिति'। यत एते महाप्रभावाः। सर्वस्य जगतः प्रभुर्हिरण्यगर्भस्तस्य पुत्रो मनुः तस्यैते पौत्राः। अत एव ऋषीणां चेत्युच्यते। न मनोर्ये केचिदन्ये पुत्राः, किं तर्हि? **ऋषयस्ते** च प्रथितप्रभावाः **मरीच्यादयः**। तेषां पुत्राः 'पितरः'। बहुविधाश्च प्रतिपत्तारो य एतादृशेभ्योऽर्थवादवाक्येभ्यः प्रवर्तन्ततेराम्।

ये च व्याचक्षते—"सोमपादिदृष्टिः पितृषु कर्तव्येति"—ते प्रमाणाभावादुपेक्षणीयाः। न हि यथाऽऽदित्ये ब्रह्मदृष्टिरुपदिश्यते एवमिह तादृशं किंचन वचनमस्ति।

येऽप्याहुः—"गृहीत्वा गोत्रनामनी पितृभ्यो दद्यादिति, तच्चैतद्गोत्रं सोमपाः" इत्यादि-वर्णभेदेन"। तदप्ययुक्तम्; नामनिर्देशोऽयं गोत्रनिर्देशः, सोमपानामिति श्रवणात्। "गोत्रनामधेयत्वेऽपि नामशब्द उपपद्यत एवेति" चेत्-एवं तर्हि गोत्रनिर्देशे वैयधिकरण्यं स्यात्, 'पितॄणां सोमपा गोत्रमिति', न तु पितरः सोमपा इति।

"अथाभेदोपचारेण गोत्रेण सन्तानव्यपदेशो दृष्ट इत्युच्यते। यथा बभ्रुर्मन्दुरिति" अत्रोच्यते-इदमिह निरूप्यं किमेतद्गोत्रं नाम? आदिपुरुषः संज्ञाकारी विद्यावित्तशौ-र्यौदार्यादिगुणयोगेन ख्याततमः, येन कुलं व्यपदिश्यते। एवं तर्हि सर्वेषामेव ब्राह्मणादी-नामवान्तरगोत्रभेदाः सन्तीति। स्मरन्ति च यादृशं पुरुषं तत्सन्तानजाः पुरुषा 'वयममुष्य कुले जाता' इत्यतस्तेनैव व्यपदेशो युक्तः। न हि 'सोमपा वयमिति' कश्चिद्गोत्रत्वेन सोमपान्स्मरति, यथा भृगुगर्गगालवान्।

ब्राह्मणानां च तैरेव गोत्रव्यपदेशो युक्तः। तानि हि मुख्यानि गोत्राणि। रूढि-रूपेण तत्र गोत्रशब्दः प्रवर्तते। न हि तेषां गोत्रत्वे एतल्लक्षणमस्ति 'आदिपुरुषः संज्ञाकारी गोत्रमिति'। अनादित्वादेतद्गोत्राणां, ब्राह्मणादिजातिवत्। न हि पराशरजन्मत ऊर्ध्वं पाराशरव्यपदेशः केषांचिद्ब्राह्मणानाम्। एवं सति आदिमत्ता वेदस्य प्रसज्येत। अतो नित्यत्वादेतस्य गोत्रव्यपदेशस्योदकतर्पणादौ तदेव गोत्रं श्रयितव्यम्। ये तु संज्ञाकारिणस्ते न नित्याः, इदानींतनाः। न च नित्ये संभवत्यनित्यसोमपादानं वैदिके कर्मणि युक्तम्। अतो ब्राह्मणैर्यथागोत्र गार्ग्याय गर्गगोत्राय वा स्वधा इदं उदकमस्त्विति एवमादिशब्देनोद्देशं कृत्वा ततो नामोच्चार्य उदकदानादि कर्तव्यम्।

क्षत्रियादीनां नैतादृशे गोत्रव्यवहारो विद्यते। न हि यथा ब्राह्मणो गोत्रं नियतं स्मरति, एवं क्षत्रियादयः। तस्मात्तेषां लौकिकमेव गोत्रम्—आदिपुरुषः संज्ञाकारी ख्याततम इति। अतस्तेन गोत्रेण श्राद्धादौ व्यपदिश्यन्ते आदिमताऽपि नामधेयेनैव। न तु तेषां क्षत्रियाणां हविर्भुगित्यादिगोत्रतया श्राद्धादौ व्यपदेशमर्हन्ति।

येऽप्याहुः—"अज्ञातपित्रादिनामका ये तेषामेतैः शब्दैः श्राद्धादि चोद्यते 'सोमपाना-ह्वयामि सोमपेभ्यः स्वधेति"—एतदपि न सम्यक्। उक्तं हि "नामान्यविद्वांस्तत्-पिता-महप्रपितामहेति"।

यदि चार्थवादतया न प्रकृतशेषत्वेनार्थवत्ता लभ्येत, तत एव कल्पा आश्रीयेरन्। न त्वेकवाक्यतयान्वये संभवति वाक्यभेदकल्पनेनार्थो न्याय्यः॥ १९४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **मनो**र्विराजस्तथा तस्यैव मनोर्ये **मरीच्यादयः सुतास्तेषां ऋषीणां च पुत्राः पितृगणाः** पितृशब्दवाच्याः सङ्घाः॥ १९४॥

(३) **कुल्लूकः।** हिरण्यगर्भापत्यस्य **मनोर्ये मरीच्यादयः** पुत्राः पूर्वमुक्ताः 'मरीचिमत्र्यङ्गिरसा'वित्यादिना **तेषामृषीणां** सर्वेषां सोमपादयः **पितृगणाः पुत्रा** मन्वादिभिः स्मृताः॥ १९४॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्रादौ विशिष्टादुत्पत्तिप्रकारमाह **मनोरिति।** हिरण्य-गर्भापत्यस्य **मनोः। पितृगणाः** सोमसदादयः। अहं प्रजाः सिसृक्षुस्त्वित्यत्रोक्ता मरीच्या-दय ऋषयः॥ १९४॥

(५) **नन्दनः। हैरण्यगर्भस्य** हिरण्यगर्भगोत्रापत्यस्य। **ऋषीणां पुत्रा इति।** प्राचुर्याभिप्रायमेतत्। तेन विराट्सुता इत्यनेन न विरोधः॥ १९४॥

(६) **रामचन्द्रः।** हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्तस्य पुत्रो **हैरण्यगर्भो** मनुस्तस्य पुत्रा ये मरीच्यादय ऋषयस्तेषां मरीच्यादीना**मृषीणां पुत्राः पितृगणाः** स्मृता उक्ताः॥ १९४॥

(७) **मणिरामः। हैरण्यगर्भस्य** हिरण्यगर्भापत्यस्य मनोः **तेषां** मरीच्यादीनाम्। **पितृगणाः** सोमपादयः **पुत्राः सुताः** मन्वादिभिः॥ १९४॥

(८) **गोविन्दराजः। मनोरिति।** हिरण्यगर्भापत्यस्य **मनोः स्मृता ये मरीच्यादयः** पुत्राः: यथोक्तं—"मरीचिमत्र्याङ्गिरसं" इत्यादि। **तेषां** मरीच्यादीनां **सर्वेषामृषीणां** एते ये सोमपादयः पितृमुख्याः मन्वादिभिः **स्मृताः**॥ १९४॥

**विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।।**
**अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ।। १९५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । श्राद्धार्थवादा अमी श्लोकाः, अशेषेणैकवाक्यत्वात् । न हि **साध्यानां पितरः** श्राद्धसंप्रदानं शिष्यन्ते । देवतात्वात् साध्यानाम् । देवतानां च न कर्मस्वधिकारो, नियोज्यत्वाभावात् । न हि देवता नियोक्तुं शक्यते, देवतात्वहानिप्रसंगात् । अधिकारे सति प्रतिपत्तव्यं कर्तृत्वम् । कर्तृत्वे च कुतः सम्प्रदानभावः । न चान्यद्देवतारूपम् ।

विराजः सुताः **विराट्सुताः सोमसदो** नाम, ते **साध्यानां पितरः** । ईदृशमेव नित्यं कर्मावश्यं कर्तव्यम्—यत्साध्याः पूर्वदेवाः कृतकरणीया अपि पितॄनर्चयन्ति । अग्नौ पक्वं चरुपुरोडाशादिकं स्वदन्ते **अग्निष्वात्ताः देवानामिन्द्राग्न्यादीनां** पितरः । मरीचेर्जाता **मारीचाः** । **लोकविश्रुताः** प्रसिद्धाः ।। १९५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्र **सोमसदो** मनोर्विराजः पुत्राः साध्यैः श्राद्धे पूज्याः । इतरे तु वक्ष्यमाणा मनुपुत्रपुत्राः ।। १९५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । **विराट्सुताः** सोमसदो नाम साध्यानां पितरः **अग्निष्वात्ता** मरीचेः पुत्रा लोकविख्याता **देवानां पितरः** ।। १९५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्र के किंनामानः के कस्माज्जाताः केषां च के पितरः कैर्वा के अर्च्या इत्यपेक्षायामाह **विराडिति पञ्चभिः** । **विराट्सुता** इति जन्म **सोमसद** इति नामानि **साध्यानां** पितर इति तेषामाराध्याः, एवम**ग्निष्वात्ता** नामतः मरीचेरपत्यानि जन्मतः **देवानां** पितरः आराध्या इति शेषः ।। १९५ ।।

(५) **नन्दनः** । प्रसूतौ विशेषं श्लोकत्रयेणाह **विराट्सुता इति** । हैरण्यगर्भस्य मनोः पिता विराट् । **साध्यानां पितरः** साध्यैर्यष्टव्याः पितरः ।। १९५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **विराट्सुताः** सोमपुत्राः सोमलोकनिवासिनः । **साध्यानां** पूर्वकल्पाधिकारिणां **देवानां पितराः स्मृताः** मरीच्योत्पन्नाः मारीचाः । **अग्निष्वात्तसंज्ञाः** पितरः । **लोकविश्रुताः** प्रसिद्धाः ।। १९५ ।।

(७) **मणिरामः** । **सोमसदो** नाम ये **विराट्सुताः** ते **साध्यानां पितरः** । मरीचिपुत्रा ये **अग्निष्वात्तादयो लोकविश्रुताः** ते देवानां **पितरः स्मृता** इत्यर्थः ।। १९५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **विराट्सुता इति** । **विराट्सुताः सोमसदो** नाम **साध्यानां पितरः देवानां** च मरीचिपुत्राः **अग्निष्वात्ताख्याः** लोके ख्याताः ।। १९५ ।।

**दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।।**
**सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ।। १९६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । सर्वं एते दैत्यादयः शास्त्रानधिकृता अर्थवादार्थं संकीर्त्यन्ते । तेषां च स्वरूपमितिहासप्रसिद्धम् । **सुपर्णाः** पक्षिविशेषाः । **किन्नरा** अश्वमुखास्तिर्यञ्चः । एवंविधमेतत्पित्र्यं कर्म यद्दैत्यदानवरक्षांसि यज्ञविध्वंसकराण्यपि नातिवर्तन्ते तथा तिर्यञ्चोऽप्यसंज्ञास्मृतिकाः । अत्रेर्जाता **बर्हिषदो नाम** ।। १९६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अत्रिजा** अत्रिपुत्राः ॥ १९६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दैत्यादीनां प्रथमाध्यायोदितभेदानामत्रिपुत्रा **बर्हिषदो** नाम पितरः स्मृताः ॥ १९६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं दैत्याद्यष्टानां **बर्हिषदः** मनोः पुत्राः ॥ १९६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। अत्रिजा बर्हिषद**संज्ञाः पितरो दैत्यादीनां पूज्याः स्मृताः ॥ १९६ ॥

(७) **मणिरामः**। **अत्रिजाः** अत्रिपुत्राः **बर्हिषदो** नाम दैत्यादीनां पितरः ॥ १९६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। दैत्यदानवयक्षाणामिति**। दैत्यादीनां प्रथमाध्यायोक्तभेदानां अत्रिपुत्राः **बर्हिषदो** नाम पितरः स्मृताः ॥ १९६ ॥

**सोमपा नाम विप्राणां, क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥**
**वैश्यानामाज्यपा नाम, शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ १९७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तार्थः प्रागेवायं श्लोकः। सोमं पिबन्ति ज्योतिष्टोमादिदेवता इन्द्रादयः। **हविर्भुजश्च**रुपुरोडाशादिदेवताः। **आज्यपा** आघाराज्यभागप्रयाजादिदेवताः। **सुकालिनः**। कालयन्ति अपवर्जयन्ति कर्मेति 'सुकालिनः'। कर्मापवर्गहोमदेवता "अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तीत्यादि" विहिताः ॥ १९७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। विप्राणां** पितर इत्यन्वयः ॥ १९७ ॥

(३) **कुल्लूकः। सोमेति**। ब्राह्मणप्रभृतीनां चतुर्णां वर्णानां सोमपाप्रभृतयश्चत्वारः पितरः स्मृताः ॥ १९७ ॥

(४) **राघवानन्दः। सोमपा** नामतः **विप्राणां** पितर आराध्याः। **हविर्भुज**नामानः **क्षत्रियाणां** पितरः, आराध्या इति शेषः। तथा **वैश्यानां** पितर **आज्यपाः** नामतः। वसिष्ठपुत्राः **शूद्राणां** पितर इति संक्षेपः ॥ १९७ ॥

(६) **रामचन्द्रः। सोमपाः** नाम पितरः लोके **विप्राणां** पूज्याः स्मृताः। **हविर्भुज**संज्ञाः पितरः **क्षत्रियाणां** पूज्याः स्मृताः। **आज्यपा** नाम पितरो **वैश्यानां सुकालिन**संज्ञाः शूद्राणां पूज्याः स्मृताः ॥ १९७ ॥

(७) **मणिरामः**। विप्रादीनां चतुर्णां पितॄनाह **सोमपा नामेति। हविर्भुजः** हविष्मन्तः ॥ १९७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। सोमपा नामेति**। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां यथाक्रमं **सोमप-हविर्भुजाज्यपसुकालिनामानः** पितरः ॥ १९७ ॥

**सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥**
**पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। हविर्भुज एव **हविष्मन्तः। कविर्भृगुः**। 'काव्यं वदन्त्युशनसमिति' स्मरन्ति भार्गवम्। यथैता देवता ऋषीणां पुत्रा एवं त्वदीयाश्चापि पितरो देवतारूपा एवेति माऽवमंस्थाः ॥ १९८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **हविष्मन्तो** हविर्भुजः। **कवेर्भृगोः** ।। १९८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **कवेर्भृगोः।** **सोमपाः पुत्रा** हविर्भुज एव **हविष्मन्तः।** **अङ्गिरसः पुत्राः आज्यपाः** पुलस्त्यसुताः **सुकालिनो** वसिष्ठसुताः ।। १९८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** सोमपादिचतुर्णां जनकानाह **सोमेति।** **हविष्मन्तो** हविर्भुजः ।। १९८ ।।

(५) **नन्दनः।** सोमपादयः केषां पुत्रा इत्यपेक्षायामाह **सोमपास्त्विति।** **कवेर्भृगोः।** **हविष्मन्त** इति हविर्भुजां नामान्तरम् ।। १९८ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **सोमपा** नाम **कवेर्भृगोः** **पुत्राः।** **हविष्मन्त**संज्ञाः पितर **अङ्गिरःसुताः।** **पुलहस्य** पुत्रा आज्यपानामसंज्ञाः पितरः। **वसिष्ठस्य** पुत्राः **कालिन**संज्ञाः पितरो भवन्ति ।। १९८ ।।

(७) **मणिरामः।** सोमपादीनामुत्पादकानाह **सोमेति।** **कवेः** भृगोः ।।१९८।।

(८) **गोविन्दराजः।** **सोमपा इति।** ब्राह्मणस्य पितरः **सोमपाः कवेः** भृगोः **पुत्राः।** क्षत्रियपितरो हविर्भुजो **हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः।** वैश्यपितरस्त्व**आज्यपाः** **पुलस्त्यस्य पुत्राः।** शूद्रपितरः **सुकालिनो वसिष्ठस्य** पुत्राः ।। १९८ ।।

**अनग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ।।**
**अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत् ।। १९९ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **अनग्निदग्धः** सोमः। न ह्यग्निना तस्य पाकोऽस्ति। तेन या देवता इज्यन्ते ता अप्यनग्निदग्धाः समृद्धास्तद्गुणत उच्यन्ते। एवमग्निदग्धानि चरुपुरोडाशादीनि हवींषि अग्निना पच्यन्ते। तैर्या देवता इज्यन्ते ता **अग्निदग्धाः।** पूर्ववदेवमभिसम्बन्धः क्रियते। ये अग्निदग्धा उच्यन्ते तानग्निदग्धान्निर्दिशेत्। ये अनग्निदग्धास्तान्त्सोमपानेव निर्दिशेत्। एवं **काव्यान्बर्हिषद इति।** कवेः पुत्राः काव्यास्ते च "सोमपास्तु कवेः पुत्राः" इत्युक्ताः। **बर्हिषदो**ऽत्रिजा उक्ताः। नायमेवकारो यथादेशं द्रष्टव्यः। तथा ह्ययमर्थः स्यात् विप्राणामेवेति पितरो, न क्षत्रियादीनाम्। तच्च प्रागुक्तेन विरुध्येत। न चैते वर्णभेदेन पितृत्वेनोक्ताः, येन तस्मादाच्छिद्य ब्राह्मणादिसम्बन्धिता एषामुच्यते। तस्मादपकृष्य एवकारोऽग्निष्वात्तानेव सौम्यानेव निर्दिशेदित्येवं सम्बन्धनीयः।

**विप्रग्रहणमनुवादत्वात्क्षत्रियादिप्रदर्शनार्थम्।** एवंनामानश्चैते पितरो वेदे श्रूयन्ते "अग्निष्वात्ताः पितरो येऽग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा" इति तान्मन्त्रानुदाहृत्य विवृणोति। अथवैवं सम्बन्धः क्रियते। 'य एतैः शब्दैः पितर उच्यन्ते तान् विप्राणामेव निर्दिशेत् स्वपितॄन्। न च शब्दभेदेनार्थभेदशङ्का कर्तव्या'। विप्रग्रहणमधिकार्युपलक्षणार्थं, प्राधान्यात्। प्रधानेन ह्युपलक्षणं भवति 'राजा गच्छतीति' ।। १९९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अग्निदग्धादीनपि विप्राणामेव पितॄन्निर्दिशेत्। अत्र काव्यपदं दृष्टान्तोपदर्शकम्। यथा कवेर्भृगोः पुत्रा विप्राणां तथा **बर्हिषदो** गन्धर्वादिपितरस्तथा

**सौम्याः** सोमसदः साध्यपितरो **अग्निष्वात्ताश्च** देवपितरोऽन्ये चाग्निदग्धाऽनग्निदग्धवत् **काव्यनामानस्त्रयः** पितरो निर्दिष्टसंबन्धिनो विप्राणामेवार्चनीयाः, न तु क्षत्रियादीनामिति। सदृशानां वर्णान्तराणामेव कारणव्यवच्छेदो न तु गन्धर्वादीनां येषां चात्राग्निदग्धादीनां त्रयाणां जनका नोक्तास्ते मरीच्यत्रिभृग्वङ्गिरःपुलस्त्यवसिष्ठव्यतिरिक्तानां पुलहादीनां मनुसुतानां पुत्रा इति ग्राह्यम्। अत्र सोमपा इति सोमपानकारिण इत्युच्यन्ते। ते च 'ऊमा वै पितरः प्रातःसवने ऊर्वा माध्यन्दिने काव्यास्तृतीयसवन' इति श्रुतावुक्ताः **सोमसदः**। **सौम्या** इति। स्तुतेभ्योऽन्येऽपि सोमयागे शस्त्रमध्यशंसनीयपित्र्यमिवोभयभागिनः। एवं बर्हिषदो दर्शादीष्टिषु तत्तद्भागवन्तः। एवमन्येऽपि निरुक्तिः पुराणादिदर्शनेनोन्नेया ।। १९९ ।।

(३) **कुल्लूकः। अग्निदग्धानग्निदग्धकाव्यबर्हिषदग्निष्वात्तसौम्याख्यान्परान्पितॄन्विप्राणामेव** जानीयात् ।। १९९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव विशेषान्तरमाह **अग्निदग्धेति**। कविपुत्रानग्निदग्धादीन् अपरान् **बर्हिषदः। अग्निष्वात्ताः। सोमपाः** पितरो **विप्राणामेव** जानीयात् 'सोमपानामेव नामभेदा अग्निदग्धेत्यादीनी'ति **मेधातिथिः** ।। १९९ ।।

(५) **नन्दनः**। न केवलं सोमपा एव ब्राह्मणैर्यष्टव्याः, किंतु सर्वेऽपि ते सोमसदादय इत्याह **अग्नीति। अग्निदग्धा** इत्यादीनि सप्तानां पितृगणानां नामान्तराणि। तत्र **काव्या** इति सोमपानामुपादानं तेषां कविपुत्रत्वात्। **बर्हिषदोऽग्निष्वात्ताश्च** स्वनाम्नैवोपात्ताः ।। १९९ ।।

(६) **रामचन्द्रः। अनग्निदग्धान् काव्यान्** काव्यनाम्नः पितॄन्**बर्हिषद**संज्ञान् **अग्निष्वात्त**संज्ञान् **सौम्यान्**सोमसंज्ञान् एतान्पितृगणान्**विप्राणामेव निर्दिशेत्** ।। १९९ ।।

(७) **मणिरामः**। विप्राणामन्यानपि पितॄनाह **अनग्नीति। अग्निदग्धादीन्** अपरान् षट् पितॄन् **विप्राणामेव** जानीयात् ।। १९९ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अनग्निदग्धानिति। अनग्निदग्धाग्निदग्ध-काव्यबर्हिषद-अग्निष्वात्त-सौम्याख्यान**परान् पितॄन् **विप्राणामेव** जानीयात्। वेदे पुराणेषु च एवंनाम(कं) पितॄणां प्रसिद्धम् ।। १९९ ।।

**य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः ।।**
**तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।।२००।।**

(१) **मेधातिथिः। एते तु मुख्या गणाः** सोमपादयः **पितॄणाम्। तेषामपि** पुत्रपौत्रा अनन्ता विद्यन्ते। तेऽपि पितर एव। अस्माद्वाऽनियमवचनादेतद्गम्यते न सोमपादय उद्देश्याः। यदि हि तेषामपि पुत्रपौत्राः 'पितरः' ते ह्युद्देश्याः स्युः, न च तेषां किंचिन्नामधेयमाम्नातम्। तस्मादर्थवादतैवावसीयते। गवाश्वप्रभृतित्वात्पुत्रपौत्रमित्येकवद्भावः। **अनन्तकम**परिमितम्। स्वार्थे कः ।। २०० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। तेषां पुत्रपौत्रमनन्तकं** तस्य च स्वस्वपितृर्थका एवार्चकाः ॥ २०० ॥

(३) **कुल्लूकः।** य एते प्रधानभूताः पितृगणा उक्तास्तेषामपीह जगति पितर एव पुत्रपौत्रा अनन्ता विज्ञेयाः। **पुत्रपौत्रमिति** गवाश्वप्रभृतीनि चेत्येकवद्भावः। एतच्छ्लोकसूचिता एव वरो वरेण्य इत्यादयोऽन्येऽपि पितृगणा **मार्कण्डेयादिपुराणादिषु** श्रूयन्ते ॥ २०० ॥

(४) **राघवानन्दः। पूर्वदेवता** इत्युक्तं तत्तु साधुवादमात्रमित्याह **य** इति द्वाभ्याम् ॥ २०० ॥

(५) **नन्दनः।** इदानीं तेषां पितृत्वमुपपादयति **य एते त्विति।** इह जगति **अनन्तकम्**-पर्यन्तं सर्वमित्यर्थः। यत्प्राणिजातं तत्तेषां पितृगणानां **पुत्रपौत्रिकं** विज्ञेयम्। तेनोपपन्नं तेषां पितृत्वमित्यभिप्रायः ॥ २०० ॥

(७) **मणिरामः। पुत्रपौत्रं** "वरो वरेण्यो वरद" इत्यादि **मार्कण्डेय**-पुराणोक्तम् ॥ २००॥

(८) **गोविन्दराजः। य इति।** य एते सोमपादयः प्रधानभूताः पितृगणा उक्ताः **तेषामपीह** संसारे पितर एव पुत्रपौत्रा विज्ञेयाः ॥ २०० ॥

**ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ॥**
**देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥२०१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** न पित्र्यं कर्म दैवात्कर्मणो न्यूनं द्रष्टव्यम्, अपि तु तदेव प्रधानतमम्। यतो जन्मज्येष्ठाः पितरो देवानाम्। तथाहि **ऋषिभ्यः** पितर उत्पन्नाः, पितृभ्यो देवा इत्येष सृष्टिक्रमः। **देवेभ्योऽन्यत्सर्वं जगत् चरं** जंगमं **स्थाणु** स्थावरं **अनुपूर्वशः**, प्रथमेऽध्याये उक्तः क्रमः। अतिक्रान्तोऽर्थवादसम्पातः ॥२०१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। चरं** जङ्गमम्। **स्थाणु** स्थावरम् ॥ २०१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** ऋषिभ्यो मरीच्यादिभ्य उक्तक्रमेण **पितरो जाताः**, पितृभ्यो **देव-मानवा** जाताः, **देवेभ्यश्च** जङ्गमस्थावरं जगत्क्रमेण जातम्, तस्मात्सोमपादिप्रभवत्वात्स्वपितृपितामहानां श्राद्धे एते पूजनीयाः। सोमपादयोऽपि पूजिताः सन्तः श्राद्धफलदानाय कल्पन्त इति। प्रकृतश्च पित्रादिश्राद्धस्तुत्यर्थोऽयं सोमपादिपितृगणोपन्यासः। अथवाऽऽवाहनकाले निजपित्रादयो ब्राह्मणादिभिः सोमपादिरूपेण ध्येयाः, एवं व्यवस्थाज्ञानमनुष्ठानपरता च स्यात् ॥ २०१ ॥

(४) **राघवानन्दः। ऋषिभ्यो** हिरण्यगर्भमरीच्यत्रिकव्याङ्गिरःपुलस्त्यवसिष्ठेभ्यः। **पितरः** सोमसत्प्रभृतयः। **स्थाणु** स्थावरम् ॥ २०१ ॥

(५) **नन्दनः।** एतदेव विशदयति **ऋषिभ्य इति** ऋषिभ्यो मरीच्यादिभ्यः। ननु प्रेताः पितृपितामहादयः श्राद्धैस्तर्प्यन्त इति लोकशास्त्रप्रसिद्धम्। अत्र सोमपा इत्युक्तम् तस्माद्विरुद्धमिदम्। न विरुद्धमिदम्; यथा ब्राह्मणतृप्त्या पितृतृप्तिरेवं पितृतृप्त्या प्रेतपितृपितामहादितृप्त्युपपत्तेरिति ॥ २०१ ॥

(७) **मणिरामः।** ऋषिभ्यः मरीच्यत्र्यादिभ्यः। तथा च ब्राह्मणादिभिः स्वस्वपितृश्राद्धे आवाहनकाले निजपित्रादयः सोमपादिरूपेण ध्येया इति मनोरभिप्रायः ।। २०१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। ऋषिभ्यः पितर इति।** मरीच्यादिभ्य उक्तं नामभ्यो ये सोमपादयो जाताः, तेभ्यश्च देवदानवं जातम्। **देवेभ्यश्च** स्थावरजङ्गमरूपं **सर्वं जगत्** क्रमेण जातम्। एवं चोक्तपितृभवत्वात् पितृ-पितामह-प्रपितामहादीनां तत्पूजायां ते पूजिता भवन्तीत्येतत्प्रतिपादनार्थं सोमपादिपितृगणोपन्यासः प्रकृतपितृपूजास्तुत्यै विज्ञेयः ।। २०१ ।।

**राजतैर्भाजनैरेषामथो वा रजतान्वितैः ।।**
**वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ।। २०२ ।।**

(१) **मेधातिथिः। राजतानि च भाजनानि** रूप्यमयानि पात्राणि। तदभावे **रजतान्वितैः** दारुमयानि ताम्रमयानि सौवर्णानि वा रौप्येणैकदेशयुक्तानि कर्तव्यानि। एतच्च पात्रं देयं घृतमध्वादिव्यञ्जनसौहित्याक्षिप्तं पात्रं, तत्रेयं रूप्यमयता विधीयते पात्रे। यच्च पिण्डनिर्वपणादि तद्धस्ताभ्यामेव कर्तव्यम्। यदप्युदकनिनयनं पिण्डेष्ववनेजनादि च तदपि हस्ताभ्यामेव। 'अपसव्येन हस्तेनेति' वचनात्। यत्तूदकतर्पणमान्वाहिकं तदपि हस्तेनापसव्येन सव्येन वा कर्तव्यम्। "इदं हि श्राद्धप्रकरणे पठितम्।" तन्न; अप्राकरणिकस्य कर्मणोऽङ्गमप्यनारभ्याधीतम्। "तत्रैव वचनमस्ति।" भवतु, अनुवादः स्यात्। **वार्यपि।** अपिशब्दः पात्रप्रशंसां सूचयति। तिष्ठतु तावत्संस्कृतभोजनदानं वारिमात्रमपि यदि रूप्यपात्रेण दीयते तद्रूप्यगुणसम्बन्धादक्षयं भवति। **अक्षयायोपकल्पते,** अक्षयायास्तृप्तेर्हेतु-(भ)र्भवतीत्यर्थः। **श्रद्धयेति** सर्वदानेषु विहितत्वादनुवादः ।। २०२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। रजतान्वितैः** रजतलेपरञ्जितैः। अक्षय्यमक्षीणता ।।२०२।।

(३) **कुल्लूकः।** एषां पितृणां रूप्यमयपात्रै रूप्ययुक्तैर्वा ताम्रादिपात्रैर्जलमपि **श्रद्धया दत्तमक्षयसुखहेतु** संपद्यते। किं पुनः प्रशस्तपायसादीति ।। २०२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** उपचारैरित्युक्तं तत्रार्थवादमाह **राजतैरिति। रजतान्वितैः** रजतयुक्तैः पात्रान्तरैः ।। २०२ ।।

(५) **नन्दनः। राजतान्वितैः** रजतमिश्रैः ।। २०२ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** पितृणां पात्राण्याह **राजतैरिति।** एषां पितृणां **राजतै** रजतै**र्भाजनैः** पात्रैः **रजतान्वितैर्वा।** क्रियाः कार्याः कर्तव्याः। श्राद्धसमये दत्तं **वारि अक्षय्यायानन्त्या-**योपकल्पते उपतिष्ठत इत्यर्थः ।। २०२ ।।

(७) **मणिरामः। रजतान्वितैः।** रजतयुक्तैः ताम्रपात्रैः जलमपि दत्तं अक्षयाय भवति। किं पुनः पायसादीनीत्यर्थः ।। २०२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। राजतैरिति।** तेषां पितृणां रौप्यपात्रैः रौप्ययुक्तैर्वा पानीयमपि भक्त्या दत्तं अक्षय्यसुखहेतु सम्पद्यते। किं पुनः प्रशस्तामिषादीनि घृतादीनि दानपात्रविशेषफलमेतत् ।। २०२ ।।

**देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥**
**दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥ २०३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। देवानुद्दिश्य यत्क्रियते तद्दैवं कार्यम्। ततः **पितृकार्यं विशिष्यते**, विशेषेण कर्तव्यमुपदिश्यते। अनेन पित्र्यस्य प्राधान्यमाह–दैवं तत्राङ्गं कर्मेत्युक्तं भवति। अङ्गकर्मतामेव स्पष्टयति–दैवं हि यद्ब्राह्मणभोजनं **तत्पितृकार्यस्याप्यायनं** वृद्धिकरम्। न स्वतःप्रधानं, पित्र्यस्यैव पोषकम् ॥ २०३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **देवकार्याद्**वैश्वदेविककर्मणः। **द्विजातीनां विशिष्यते** तैर्यज्ञादिभिर्देवताप्यायनसंभवात्। शूद्राणां तु श्राद्धे दैवमपि तद्वदभ्यर्हितं, प्रकारान्तरेण तदाप्यायनस्य तष्वसंभवात्। **पितृकार्यस्याप्यायनं** तस्य संवर्धनकारितया पूर्वभङ्गत्वेन स्मृतमतो दैवात्पित्र्यभाग एव शौचविप्रगुणाद्यनुसंधानाधिक्यं विधेयमित्यर्थः ॥ २०३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। देवानुद्दिश्य यत्क्रियते **तद्दैवकार्यम्**। ततः **पितृकार्यं द्विजातीनां** विशेषेण कर्तव्यमुपदिश्यते। अनेन पितृश्राद्धस्य प्राधान्यं दैवं तत्राङ्गमित्याह। एतदेव स्पष्टयति। यतो **दैवं** कर्म **पितृकृत्यस्य** पूर्वं सदा**प्यायनं** परिपूरकं **स्मृतम्** ॥ २०३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र पितृकार्यस्य प्रासङ्गिकस्य अङ्गित्वमनुवदन् देवस्य तत्प्रति पूर्वोत्तराङ्गत्वं नियमयन्नाह **दैवकार्यादिति**। **दैवं** देवसंबन्धि। **आप्यायनं** पर्युक्षणादि ॥२०३॥

(५) **नन्दनः**। अथ पित्र्यस्याङ्गत्वेन दैवं विधित्सन्दैवात्पित्र्यस्य वैशिष्ट्यमाह **देवेति**। **आप्यायनं** प्राबल्यकरणम्। हिर्हेतौ ॥२०३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वीरसिंहप्रकाशे** अर्घपात्राण्याह **बाष्कलः** "सौवर्णरौप्यताम्राणां तदभावेऽथ तर्पणं। अष्टाङ्गुलं भवेत्पात्रं पितॄणां रजतं शुभं। दशाङ्गुलं तु देवानां सौवर्णं ताम्रमेव च" ॥ २०३ ॥

(७) **मणिरामः**। **आप्यायनं** परिपूरकं, अनेन पितृश्राद्धं प्रधानं दैवमङ्गमित्यर्थोऽवगम्यते ॥ २०३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **देवकार्यादिति**। दैवस्य देवकर्मणः सकाशात् पित्र्यं कर्म **द्विजातीनां** विशेषेण कर्तव्यतयोपदिश्यते। प्रधानं **हि** तत् यस्मात् **दैवकर्म पितृकर्मणः पूर्वं** सत् परिपूरकं स्मृतम्। एवं च तस्य पितृकार्यपरिपूरकवदङ्गत्वमिति ॥ २०३ ॥

**तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् ॥**
**रक्षांसि विप्रलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ २०४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। रक्षैव आरक्षः, तम्प्राप्तं, **आरक्षभूतं** आरक्षार्थमित्युक्तं भवति। उपमायां वा भूतशब्दः–रक्षार्थमिव। यदा तु रक्षार्थं अतः **पूर्वं दैवं** ब्राह्मणं **नियोजयेत्** निमन्त्रयेत् आसने चोपवेशयेत्।

अपरोऽर्थवादः। **रक्षांसि** अदृश्यानि कानिचित्सत्वानि इतिहासे। क्रिया **विप्रलुम्पन्ति** आच्छिन्दन्ति पितृभ्यः श्राद्धम्। के "पुनर्देवा उद्देश्याः" ?

मनुस्मृति २/१४

गृह्ये तावत् "विश्वान्देवान् हवामहे" इति मन्त्रस्य विनियोगाद्विश्वेदेवाः प्रतीयन्ते। पुराणेऽप्युक्तं "विश्वेदेवा इति श्रुतिरिति" ।। २०४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** तेषां पितॄणामारक्षः। समन्ततो रक्षाहेतुः ।। २०४ ।।

(३) **कुल्लूकः। आरक्षो** रक्षा **तेषां** पितॄणां रक्षाभूतं **दैवं** विश्वेदेवब्राह्मणं **पूर्वं** निमन्त्रयेत्। यस्माद्रक्षावर्जितं श्राद्धं राक्षसा आछिन्दन्ति ।। २०४ ।।

(४) **राघवानन्दः।** एतत्पूर्वकरणे दृष्टफलमाह **तेषामिति। आरक्षं** देवकृतं तद्वर्जितं **श्राद्धं रक्षांसि लुम्पन्ति।** न्यस्तशस्त्रत्वात्स्वरक्षणेऽप्यसमर्थत्वात् ।। २०४ ।।

(५) **नन्दनः।** यत एवं दैवं पूर्वं कुर्यादित्याह **तेषामिति।** तेषां पितॄणाम्, हि हेतौ। **आरक्षभूतं** रक्षाकरम् ।। २०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः। तेषां** पितॄणां **दैवं पूर्वमारक्षभूतं** सर्वत्र रक्षायुक्तं **श्राद्धं योजयेत्।** रक्षैव रक्षस्तमारक्षं श्राद्धं नियोजयेत् **आरक्षवर्जितं** देववर्जितं **श्राद्धं रक्षांसि विप्रलुम्पन्ति** 'अपहता असुरा रक्षाँसी'ति मन्त्रेण तिलयवान्गृहीत्वा रक्षां कुर्यात् ।। २०४ ।।

(७) **मणिरामः। तेषां** पितॄणां **आरक्षभूतं** रक्षाभूतं **आरक्षवर्जितं** रक्षाहीनम्। तस्माद्विश्वेदेवब्राह्मणनिमन्त्रणं कृत्वा पितृब्राह्मणं निमन्त्रयेदित्यभिप्रायः ।। २०४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। तेषामिति।** पितॄणां रक्षाभूतं, गृह्यदर्शनात् विश्वान् देवानुद्दिश्य **पूर्वं** ब्राह्मणं **निमन्त्रयेत्।** यस्माद्रक्षोदर्शितं श्राद्धं रक्षांस्याच्छिन्दन्ति यस्माद्रक्षाभूतं पित्र्यस्य दैवं तस्मात् ।। २०४ ।।

**दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ।।**
**पित्र्याद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ।।२०५।।**

(१) **मेधातिथिः।** आदिश्च अन्तश्च आद्यन्तौ, दैवं आद्यन्तावस्येति **दैवाद्यन्तम्।** दैवेन कर्मणा आदिरुपक्रमः श्राद्धस्य कर्तव्यः। अतश्च निमन्त्रणं दैवानां पूर्वं कर्तव्यम्। **अन्तः** समाप्तिः। विसर्जितेषु पित्र्येषु ब्राह्मणेषु पश्चाद्दैवानां विसर्जनं कर्तव्यम्।

गन्धादिदानेऽपि दैवोपक्रमतां मन्यन्ते। न तु तेषां पदार्थानां दैवेनोपक्रमसमाप्ती सम्भवतः, आवृत्तिप्रसङ्गात्। प्रयोगधर्मश्चायं दैवाद्यन्तता, न प्रतिपदार्थधर्मः। पदार्थानां तु गन्धमाल्यादीनां दैवोपक्रमताऽविशेषेण कर्तव्यमुद्दिश्यते। तावत्प्रवृत्तिकेनैव क्रमेण सिद्ध्यति। निमन्त्रणं तावद्दैवपूर्वं कर्तव्यम्। यत एव प्रथमः पदार्थ आरब्धस्तत एवान्येषामारंभो युक्तः। पदार्थः पदार्थान्तरारम्भं नियच्छति यतः। तदुक्तं 'प्रकृत्या कृतकालानां गुणानां तदुपक्रमादिति'। तच्छ्राद्धकर्म **ईहेत** कुर्यात्। परिशिष्टोऽर्थवादः।

**पित्र्याद्यन्तं न तद्भवेत्।** दैवाद्यन्तत्वस्य विहितत्वात् पित्र्याद्यन्तप्रतिषेधोऽर्थवादतया लौकिकवाक्यवन्नेयः। लोके हि किंचिद्विधाय तद्विपरीतमप्राप्तमपि निषेधति। क्रिया हि द्रव्यं विनयति, नाद्रव्यमिति। **क्षिप्रं नश्यति सान्वयः।** सन्तानाफलप्रदर्शनरूपोऽयं निन्दार्थवादः। अतश्च सर्वं परिवेषणादि दैवपूर्वकं कर्तव्यम्। यत्त्वन्तरा भक्ताद्युपनयनं

पिपासतां च पानादिदानं तद्यस्यैवेच्छा प्रथममुपजाता तस्मा एवे-पनेतव्यम्। अनर्थिनस्त-दनुरोधेनोपनीयमाने प्रधानविधिबाधः स्यात् "हर्षयेत् ब्राह्मणानिति" (३।२३३) तथा कश्चिन्मधुररसप्रियोऽपरोऽम्लरससात्म्यस्तत्र (३।२२७)–'भक्ष्यं भोज्यं च विविधं पानानि सुरभीणि चेति'–बहुषु पानकेषु सत्सु यद्यन्यानुरोधेन न अन्यत्र रससात्म्यमापादयेत्ततो व्याधिरस्य जनितः स्यात्। तस्मादुपक्रमसमापने एव भोजने दैवादिना ॥ २०५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। देवतानामादौ निमन्त्रणं तथा सर्वपदार्थेषु दैवपूर्वेषु दैवादिता। दैवान्तता तु पितॄन्विसृज्य देवानां विसर्जनात्। **ईहमानश्चे**ष्टमानः। **नश्यति** रक्षोभिः श्राद्धविघातेन पितृशापात् ॥ २०५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत एवमतस्तच्छ्राद्धं **दैवाद्यन्तं** दैवे कर्मणि आद्यन्तावारंभावसाने यस्य तत्तथा। एतेनेदमुक्तं–निमन्त्रणादि सर्वं दैवपूर्वं, विसर्जनं तु देवानां शेषे। अतएव **देवलः** 'यत्तत्र क्रियते कर्म पैतृके ब्राह्मणान्प्रति। तत्सर्वं तत्र कर्तव्यं वैश्वदेविकपूर्वकम्'। न तु तच्छ्राद्धं पित्र्युपक्रमावसानम्। **पित्राद्यन्तं** तदनुतिष्ठन्ससन्तानः शीघ्रं **विनश्यति** ॥२०५॥

(४) **राघवानन्दः। तत्**पित्र्यं **ईहेत** कुर्यात् तु तद्दैवं **पित्र्याद्यन्तम्। क्षिप्रं** प्रणश्यतीति भूतार्थवादः ॥ २०५ ॥

(५) **नन्दनः**। न केवलं श्राद्धस्य दैवमादौ कार्यं किन्त्वन्तेऽपीत्याह **दैवेति**। ततः श्राद्धम्। **ईहेत** कुर्वीत ॥ २०५ ॥

(६) **रामचन्द्रः। तच्छ्राद्धं** दैवाद्यन्त**मीहेत** कुर्यात्। तद्यथा दैवादिपूर्वं देवानां आह्वानं विश्वेदेवा आगच्छन्त्विति वाचयेत्। अन्ते श्राद्धान्ते उपतिष्ठन्तु पितरः सव्येन विश्वेदेवैः सहेति। एवं दैवाद्यन्तं तच्छ्राद्धं **पित्राद्यन्तं न भवेन्न कुर्यात्** ॥ २०५ ॥

(७) **मणिरामः। दैवाद्यन्तं** दैवे कर्मणि आद्यन्तौ यस्य तत् दैवाद्यन्तम्। एतेन निमन्त्रणादिसर्वं दैवपूर्वम्, विसर्जनं तु देवानामन्ते कर्तव्यमित्युक्तम्। **सान्वयः** ससन्तानः ॥२०५॥

(८) **गोविन्दराजः। दैवाद्यन्तमिति। पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वय इति**। ततः श्राद्धं दैवादि दैवान्तं चानुतिष्ठेत्। न च पित्र्योपक्रमापवर्गं **पित्राद्यन्तं** तदनुतिष्ठन् ससन्तानमाशु **विनश्यतीति** ॥ २०५ ॥

**शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ॥**
**दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥**

(१) **मेधातिथिः। शुचिर्भ**स्मास्थिकपालकाद्यनुपहतः। **विविक्तो** विस्तीर्णो बहु-भिर्जनैरनाकीर्णः। **दक्षिणाप्रवणो** दक्षिणस्यां दिश्यवनतः। तादृशं देशं यत्नेन सम्पादयेत्। स्वभावतश्चेत्तादृशो न लभ्यते तथा कर्तव्यं यथा स्वव्यापारेण सम्पाद्यते। तं च गोशकृतोप-लेपयेत्। मृदादयो निवर्तन्ते, गोमयेनोपलेपनियमात् ॥ २०६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। विविक्तमेकान्तम्। उपलेपयेत्** मृद्गोमयादिना, **दक्षिणाप्रवण-मुपपादयेत्** संपादयेत् ॥ २०६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अस्थ्यङ्गाराद्यनुपहतं देशं निर्जनं च **गोमयेनोपलेपयेत्**। **दक्षिणा-दिगवनतं** च **प्रयत्नतः** संपादयेत् ।। २०६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। देशनियमं सार्थवादमाह **शुचीति द्वाभ्यां**। **दक्षिणाप्रवणं** दक्षिण-निम्नताम् ।। २०६ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ श्राद्धस्य देशमाह **शुचिमिति**। **विविक्तं** विजनम् ।। २०६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। भूमिशुद्धिमाह **शुचिमिति**। तत्र गोमयादिना लिप्ते **दक्षिणाप्रवणे** दक्षिणतोऽवनते निम्नप्रदेशे आह्वानं कार्यम् ।। २०६ ।।

(७) **मणिरामः**। **शुचिदेशं** अस्थ्यङ्गारादिवर्जितम्। **विविक्तं** एकान्तम्। **दक्षिणा-प्रवणं** दक्षिणादिगवनतम् ।। २०६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **शुचिमिति**। अनुपहतं देशं जनैरनाकीर्णं गोशकृता **उपलेपयेत्**। अथवा दक्षिणस्यां दिशि अवनतो यदि स्वभावतो न स्यात् तदा प्रयत्नतः तं संपादयेत् ।। २०६ ।।

**अवकाशेषु चोक्षेषु जलतीरेषु चैव हि ।।**
**विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ।। २०७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अवकाशो देशः। **चोक्षाः** स्वभावशुचयो मनःप्रसादजनका अरण्यादयः। **जलतीराणि** सरित्समीपपुलिनादीनि। **विविक्तेषु** विजनेषु तीर्थेषु च। विध्यन्तरमिदम्। अतश्च गोमयोपलेपननियमो नास्ति। 'उपपादयेदि'ति वचनात्। यत्र सम्पाद्यं शुचित्वं तत्रासौ नियमः। स्वभावतः शुचिषु 'दृष्टमद्भिर्निर्णिक्त'मित्येतावतैव योग्यता। एतेषु देशेषु **दत्तेन** कृतेन श्राद्धेनात्यन्ततुष्टाः **पितरो** भवन्तीति ।। २०७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अवकाशेषु** स्तम्भाद्यसंकीर्णदेशेषु **चोक्षेषु** शुद्धेषु ।। २०७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **चोक्षाः** स्वभावशुचयोऽरण्यादिप्रदेशास्तेषु नद्यादितीरेषु तथा निर्जन-प्रदेशेषु **दत्तेन** श्राद्धादिना सर्वदा **पितरस्तुष्यन्ति** ।। २०७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **अवकाशेषु** स्वभावेन जनतावर्जितेषु **चोक्षेषु** मनोहरेषु तथाऽन्यत्राह "चोक्षः शुचौ तथा दक्ष" इति ।। २०७ ।।

(५) **नन्दनः**। **चोक्षेषु** रमणीयेषु ।। २०७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अवकाशेषु** असंकीर्णस्थानेषु **उक्षेषु** उच्चस्थानेषु **विविक्तेषु** विजनेषु अरण्यादिषु **जलतीरेषु** एतादृशेषु ते पिण्डेन **पितरः सदा तुष्यन्ति** सन्तुष्टा भवन्तीत्यर्थः ।। २०७ ।।

(७) **मणिरामः**। **अवकाशेषु** विस्तीर्णेषु। **चोक्षेषु** स्वभावशुच्यरण्यादिप्रदेशेषु ।। २०७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अवकाशेष्विति**। स्वभावशुचिषु स्थानेषु नद्यादिपुलिनेषु च निर्जनेषु प्रदेशेषु **दत्तेन** श्राद्धादिना **पितरः** सर्वदा **तुष्यन्ति** तस्मिंश्च देशे ।। २०७ ।।

**आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् ।।**
**उपस्पृष्टोदकान्सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ।। २०८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **उपक्लृप्तेषु** कल्पितेषु विन्यस्तेषु **पृथक् पृथक्** विभागेन । नैकमासनं दीर्घधौतफलकादि सर्वेभ्यो दद्यात् । परस्परं यथा न स्पृशन्ति तथोपवेशनीया इति पृथग्ग्रहणम् । **बर्हिष्मत्सु** दर्भविष्टरास्तीर्णेषु । **उपस्पृष्टोदकान्** स्नातान् कृताचमनविधींश्च ; **तान्** पूर्वनिमन्त्रितान**उपवेशयेत्** ।। २०८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **बर्हिष्मत्सु** कुशवत्सु **उपस्पृष्टोदकान्** स्नातान् ।। २०८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । तत्र च देशे आसनेषु **पृथक् पृथक्** विन्यस्तेषु सकुशेषु प्रागामन्त्रित-ब्राह्मणान्सम्यक् कृतस्नानाचमनान**उपवेशयेत्** । अत्र देवब्राह्मणासने कुशद्वयं पित्रासनेषु च प्रत्येकं दक्षिणाग्र एकः कुशो देयः । तदाह **देवलः** । "ये चात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वनिमन्त्रिताः । प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च ।। दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च । दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ।।" दक्षिणामुखयुक्तानि दक्षिणाग्राणि अग्रं काण्डं मूलापेक्षया ।। २०८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । एवं वर्णक्रम इव वेदक्रमोऽप्यपेक्षणीय इति ज्ञापयन् ऋग्वेदिनमधिकृत्य श्राद्धानुष्ठानमाह **आसनेष्विति** त्रिंशता श्लोकैः । **उपक्लृप्तेषु** विन्यस्तेषु **बर्हिष्मत्सु** कुशयुक्तेषु **पृथक् पृथगिति** नैकासनं कुर्यादिति । दैवे कुशद्वयं पित्र्ये एकैकं देयमिति । तथाच **देवलः** 'ये चात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः । प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च ।। दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च । दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ।।' इति । पित्रादिषट्पात्रेषु षडेव ब्राह्मणा इत्यर्थात् । **उपस्पृष्टोदकान्** सम्यक्कृताचमनान् ।। २०८ ।।

(५) **नन्दनः** । इदं पित्र इदं पितामहायेति **पृथक्पृथक्** । **बर्हिष्मत्सु** दर्भवत्सु । **उपस्पृष्टोदकान्** स्नातान् । **सम्यक्** सोपचारम् ।। २०८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **उपक्लृप्तेषु** रचितेषु **आसनेषु** **बर्हिष्मत्सु** सकुशेषु **पृथक् पृथगुपस्पृष्टोदकान्**कृताचमनान्निमन्त्रितान्विप्रान**उपवेशयेत्** ।। २०८ ।।

(७) **मणिरामः** । **बर्हिष्मत्सु** सकुशेषु । **उपस्पृष्टोदकान्** कृतस्नानाचमनान् ।। २०८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **आसनेष्विति** । **आसनेषु** संदर्भेषु **पृथक् पृथक्** विन्यस्तेषु सम्यक् कृतस्नानाचमनान् **तान्** पूर्वं निमन्त्रितान**उपवेशयेत्** ।। २०८ ।।

**उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ।।**
**गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्दैवपूर्वकम् ।।२०९।।**

(१) **मेधातिथिः** । उपवेशनानन्तरं **गन्धमाल्यैरर्चयेत्** । **गन्धान्** कुङ्कुमकर्पूरादीन् दद्यात् । **माल्यानि** कुसुमस्रजः । **सुरभिग्रहणं** माल्यविशेषणम् । निर्गन्धानि पुष्पाणि न दद्यात् । गन्धेष्वपि युक्तं विशेषणं, सन्ति गन्धा असुरभयस्तन्निवृत्त्यर्थम् । अथवा

सुरभिभिर्धूपैः। स्वतन्त्रं सुरभिग्रहणम्। दैवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः पूर्वं दत्वा ततः पित्र्येभ्यो दातव्यम्। इदं तु दैवपूर्वग्रहणं प्राग्भोजनप्रवृत्तेः पदार्थानां तदादिनियमार्थम्। प्रवृत्तभोजनानां तु पानव्यञ्जनादिषु न नियम इत्येवमर्थमाहुः। अन्यथा कोऽर्थः पुनरभिधाने स्यात्? **अजुगुप्सितान्** अनिन्दितान् विप्रान्। अनुवादोऽयम्! तादृशानामेव विधानम्। अथवा सत्यपि भूतप्रत्ययनिर्देशे प्रकृत्यर्थकर्तव्यतानिषेध एवायम्। उपरिष्टान्न जुगुप्सेत न निन्देनेत्युक्तं भवति। प्रत्ययार्थगतत्यागो वरं न सर्वपदार्थत्याग इति मन्यन्ते। अनुवादे हि कृत्स्नमेव पदमनर्थकम्॥ २०९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। गन्धमाल्यैरिति** बहुवचनं धूपदीपाच्छादनप्राप्त्यर्थं गन्धमाल्यादिभिरित्यर्थः॥ २०९॥

(३) **कुल्लूकः।** तान्विप्रानामन्त्रितानासनेषूपवेश्य कुङ्कुमादिगन्ध**माल्यधूपादिभिः** स्पृहणीयगन्धै**र्देवपूर्वकमर्चयेत्**॥ २०९॥

(४) **राघवानन्दः। अजुगुप्सितान्** उक्तनिन्दारहितान्॥ २०९॥

(५) **नन्दनः। अजुगुप्सितान**निन्दितवेषान्॥ २०९॥

(६) **रामचन्द्रः। देवपूर्वकं** विश्वेदेवानुपूर्वकं **तान्विप्रानर्चयेत्**॥ २०९॥

(७) **मणिरामः।** स्पष्टः॥ २०९॥

(८) **उपवेश्येति।** तान् विप्रान् अनिन्दितान् आ**सनेषूपवेश्य** अनन्तरं कुङ्कुममाल्यधूपादिभिः स्वामोदैः देवब्राह्मणपूर्वकमर्चयेत्॥ २०९॥

**तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ।।**
**अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ।।२१०।।**

(१) **मेधातिथिः।** अनुलिप्तेषु स्रग्विषु सुरभिधूपाञ्जिघ्रत्सु अर्घोदकमुपनेतव्यम्। तेनैवं **सपवित्रांस्तिलानपि** पवित्रशब्दो दर्भेषु वर्तते। **तेषां** ब्राह्मणाना**मुदकमानीय** दत्वा तैर**नुज्ञातोऽग्नौ** होमं कुर्यात्। ब्राह्मणैरनुज्ञातः कुर्यादिति सम्बन्धः। सह सर्वे युगपदनुज्ञां दद्युः। अनुज्ञापनवाक्यमपि सामर्थ्यप्राप्तम्। न हि तेऽप्रार्थिता अनुजानीरन्। ततश्च 'अग्नौ करवाणि' 'करिष्ये' इत्येवमादीनि प्रश्नवाक्यानि लभ्यन्ते। अनुज्ञावाक्यमपि सामर्थ्यात्प्राप्तम्। सर्वं चैतत्साधुभिः शब्दैः कर्तव्यम्। प्रदर्शितं चैतत् गृह्यकारैः "अग्नौ करवाणि करिष्य इति चानुज्ञापयेत् 'ॐ कुर्वि'त्येवं ब्रूयुः"॥ २१०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। तेषां** यद्गन्धादिदानात्प्रागर्घ्यं दत्तं तच्छेषं जलं **तिलांस्त**त्रत्यान्। **पवित्राणि च** कुशान्द्विदलान्यानि चैकत्र स्थाने कृत्वा संस्रवान् समवनीय न्युब्जं पात्रं कृत्वेत्यर्थः। **ब्राह्मणैश्च सह** सहितै**रनुज्ञातः**॥ २१०॥

(३) **कुल्लूकः। तेषां** ब्राह्मणानामर्घोदकपवित्रतिलान् संमिश्रान् कृत्वा **तैर्ब्राह्मणैः सहानुज्ञातोऽग्नौ** वक्ष्यमाणं होमं **कुर्यात्**। अनुज्ञासामर्थ्याच्च प्रार्थनापि पूर्वं कर्तव्या। सा च स्वगृह्यानुसारेण करवाणि करिष्य इत्यादिका। अनुज्ञापि ओमित्येवंरूपा कुरुष्वेति वा॥ २१०॥

(४) **राघवानन्दः । आनीय** दत्वा **उदकं** अर्घ्यार्थं पवित्रं स्यात्कुशद्वयं तद्युक्तां**स्तिलान् । ब्राह्मणैः** कुरुष्वेत्यनुज्ञातः ।। २१० ।।

(५) **नन्दनः । उदकं** शुद्धोदकम् । **आनीय** दत्वा **तिलोदकं** चानीय । **ब्राह्मणो** द्विजः । **सहाभ्यनुज्ञातोऽग्नौ कुर्याज्जुहुयात्** ।। २१० ।।

(६) **रामचन्द्रः । अग्नौकरणं द्वाभ्यामाह तेषामिति । तेषां** पितॄणां अर्थे विप्राणां समीपे **उदकं** शिष्टोदकं आनीय **सपवित्रान्** पवित्रसहितान् तिलानादाय ब्राह्मणानपीच्छेत् ।। २१० ।।

(७) **मणिरामः । तेषां** ब्राह्मणानां अर्घोदकपवित्रतिलान्संमिश्रान् कृत्वा **तैर्ब्राह्मणैः सह अनुज्ञातः** अग्नौ वक्ष्यमाणं होमं **कुर्यात्** ।। २१० ।।

(८) **गोविन्दराजः । तेषामिति ।** तेषां ब्राह्मणानां **उदकं** दर्भतिलमिश्रं दत्वा "अग्नौ करवाणि करिष्ये चेत्यनुज्ञातो यदा कुर्वित्येवं ब्रूयु:" इति गृह्योक्तरूपेण **सहब्राह्मणैरनुज्ञातः अग्नौ** वक्ष्यमाणं होमं **कुर्यात् ।** ब्राह्मणग्रहणं द्विजप्रदर्शनार्थम्, त्रयाणां प्रकृतत्वात् ।। २१० ।।

**अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाऽऽप्यायनमादितः ।।**
**हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्सन्तर्पयेत्पितॄन् ।। २११ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यदग्नौ कर्तव्यं तदुच्यते । **अग्नेः** चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । अग्निरेका देवता । **सोमयमाभ्यामिति** द्वन्द्वस्य देवतात्वं अग्नीषोमवत् । अनयोर्देवतयोरादित **आप्यायनं हविर्दानेन कृत्वा पश्चात्सन्तर्पयेत्पितॄन् ।** पिण्डनिर्वपणं ब्राह्मणभोजनं च कुर्यादित्यर्थः । गृह्ये त्वन्या देवताः समाम्नाताः । येषां गृह्यं नास्ति तेषामिदं देवतावचनम् । **आप्यायनं** पोषणम् । 'हविषा देवताः पुष्यन्ती'त्यर्थवादः ।। २११ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अग्नेः** अग्नये कव्यवाहनाय **सोमाय** पितृमते **यमायाङ्गिरस्वत** इति तिस्र आहुतयः । **हविर्दानेन** होमरूपेण **कृत्वाऽऽप्यायनमि**त्यन्वयः ।। २११ ।।

(३) **कुल्लूकः । अग्नेः सोमयम**योश्च **विधिवत्**पर्युक्षणादिपूर्वं हविर्दानेन **प्रीणनमादौ कृत्वा** पश्चादन्नादिना **पितॄंस्तर्पयेत् ।** सोमयमयोः द्वन्द्वनिर्देशेऽपि पृथगेव **देवतात्वं** सहादिशब्दप्रयोगाभावात् । यत्र साहित्यं विवक्षितं तत्र सहादिशब्दं करोतीत्युक्तं प्राक् ।। २११ ।।

(४) **राघवानन्दः । आदितः** आदौ । **सोमयमाभ्यामि**ति द्वन्द्वेनैव देवतात्वं **अग्नीषोमवत् । हविर्दानेन ।** पर्युक्षणादिना ।। २११ ।।

(५) **नन्दनः । आप्यायनं** तृप्तिहोम**मिति** यावत् । **हविर्दानेना**न्नहोमेन ।। २११ ।।

(६) **रामचन्द्रः । अग्नये** कव्यवाहनाय **स्वाहा, सोमाय** पितृमते स्वाहा, **सोमयमाभ्यां एवमादितः** प्रथमतः **आप्यायनं कृत्वा ।** तत्राह **मार्कण्डेयः** "आहिताग्निस्तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः ।" अनाहिताग्निस्त्वौपासने अग्न्यभावे आवसथ्याग्न्यभावे द्विजेऽप्सु वा ततः पश्चात् अग्नौकरणानन्तरं **पितॄन्**पितृ-पितामह-**प्र**पितामहस्थानेषु उपविष्टान्द्विजान् **हविर्दानेन**

हविष्यान्नदानेन विधिवत्संतर्पयेत्। भोजयेदित्यर्थः। पवित्रलक्षणमाह 'अनन्तर्गर्भकं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्रकुत्रचित्' ॥ २११ – २१२ ॥

(७) **मणिरामः**। अग्नौकरणमाह **अग्नेरिति**। अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। यमाय स्वाहा इत्याहुतित्रयै (त्रयेणा) रादौ प्रीणनं कृत्वा प्रच्छादनादिना पितृंस्तर्पयेत् ॥ २११ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अग्नेरिति**। सोमयमयोः द्वन्द्वनिर्देशेऽपि **अग्नेर्निर्देशा**भावात् देवताद्वयं तेन अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, यमाय स्वाहेत्येवं अग्न्यादीनां पर्युक्षणादिविधिपूर्वकं **हविर्दानेन** तर्पणं आदौ कृत्वा **पश्चाद्**ब्राह्मणभोजनादि ॥ २११ ॥

**अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।**
**यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ २१२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्मार्तस्य वैवाहिकस्य दायादेर्वा अग्नेरभावे विधिरयमुच्यते। लौकिकस्य तु पितृयज्ञनिषेधात् भावाभावावचिन्त्यौ। 'न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नाविति' (३।२८२) वक्ष्यति। "कथं पुनस्तस्याग्नेरभावः?"। प्रोषितस्याग्निना विना द्रव्यब्राह्मणदेशसम्पत्तौ च श्राद्धकाल उक्तः, नामावास्यैव। तत्र प्रोषितेन यदि पङ्क्तिपावनः प्राप्तो द्रव्यं वा कालशाकादि तत्रायं विधिरुच्यते।

"ननु च प्रोषितस्य कथं श्राद्धाधिकारः? यदि तावद्भार्या प्रवसति अग्निनाऽपि तत्रैव सन्निधातव्यम्। यतो नोभाभ्यामग्नेर्विरह इष्यते, भार्यया यजमानेन च। एवं हि श्रूयते 'नाग्निरन्तरितव्यः प्रवसताम्' इति। अथ केवल एव गृहस्थः प्रवसेत्तदा भवेदग्न्यभावः। किन्तु मध्यकत्वादेतस्य सहाधिकाराच्च, भार्यायामसंनिहितायां, तदिच्छाया अभावात् कथं साधारणस्य श्राद्धे विनियोगः? साधारणे हि द्रव्ये अन्यतरानिच्छायां त्याग एव न संवर्तते। अथोच्यते–'तीर्थेष्वपि श्राद्धकरणमनेन न्यायेन न प्राप्नोति। तत्रेमानि वचनानि विरुध्यन्ते "पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम्। महोदधौ प्रभासे च तद्वदेव विनिर्दिशेत् ॥' इति। नैष दोषः; भार्यया सह तीर्थयात्रां गच्छतः साग्निकस्योपपत्स्यते। इह तु यदि भार्यया सह प्रवासः, तदा नास्त्यग्नेरभावः। अथ केवलस्य, तदा भार्येच्छाया अपरिज्ञानादनधिकारः।"

उच्यते। प्रवसन् भार्यामनुज्ञापयति "धर्माय विनियोगं द्रव्यस्य करिष्यामि" इति। तत्प्राप्तानुज्ञोऽधिकरिष्यते। प्राक् चोपनयनादसत्यग्निपरिग्रहे विधिरयं भविष्यति। अस्ति चानुपनीतस्य श्राद्धाधिकारः। "स्वधानिनयनादिति" दर्शितम्। स्नातस्य च प्राग्विवाहात् पितृमरणादावग्न्यभावः।

"ननु च परमेष्ठिमरणेऽग्निपरिग्रहः काठके पठ्यते"। कृतदारस्यासौ द्रष्टव्यो न स्नातकमात्रस्य। 'द्वौ हि कालौ स्मार्तकस्याग्नेर्विहितौ–भार्यादिर्दायादिर्वा' (गौतम. ५-७)। तत्र येन विवाहकाले न परिगृहीतोऽग्निः, पित्राऽविभक्तावात्, ज्येष्ठेन वा सह वसता "भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तत" (९।२१५) इति अनेन, तस्यासौ द्वितीयः कालः "दायकालादृते वा" इति। एष एव दायकालो यदा पिता म्रियते। तदपेक्षमेवैतत्। "शुचिर्भूतः

पितृभ्यो दद्यात् ।" "भ्राष्ट्राद्वो ह्यग्निमानीय प्रतिजागृयात्", इति । न चेदमग्न्याधानं श्राद्धाङ्गम् । तथा सति न तदर्वागस्योत्पत्तिः श्राद्धं वा वर्तते । न चाप्यत्यागोऽस्ति । "एष औपसदोऽग्निस्तस्मिन् पाकयज्ञः" इति पठ्यते । न च पाकयज्ञेऽप्यभार्यस्याधिकारः । "पत्न्यवेक्षितमाज्यं भवति" । "व्रतं च पत्न्युपेयादिति" दर्शपूर्णमासयोः श्रूयते । न च 'यदा पत्नी, तदैतत् व्रतोपायनाज्यावेक्षणे पत्नीकर्तृके भविष्यत' इति शक्यमवकल्पयितुं, नित्यवदाम्नानात् । तत्रौपसदोऽग्निरित्येष विधिर्हातव्यः प्राप्नोति । "ननु च न पितृमरणमेव दायकालः । एवं हि पठ्यते—'सपिण्डीकरणं कृत्वा विभजेरन् ततः सुताः' इति ।"

विभागस्यायं कालो, न दायस्य । विभागेऽपि नायं नियमः, यतो 'धर्म्या पृथक् क्रियेति' पठ्यते । तस्याश्च धर्मत्वं विभक्तानां पृथक् पृथक् श्राद्धकरणेनातिथ्यादिपूजया च । न च "नवश्राद्धं सह दद्युः" इत्यादीनि वाक्यानि समाप्तविद्याविषयाणि । ईषद्विद्यो रोगोद्रेकात्स्वदारनियमं मातिक्रमिषमिति कृतविवाहः प्रक्रान्तवेदार्थप्रवणस्तस्य संवत्सरमात्रेण विद्यासमाप्ताविदमुच्यते "सपिण्डीकरणं कृत्वा विभजेरन्निति" । तथा मृतभार्यस्य पुनर्दारांश्चिकीर्षत आदारप्राप्तेर्भवत्यग्नेरभावः । सर्वथा पत्न्या सह एवं यष्टव्यमित्यस्तित्ववचने सति नाकृतविवाहस्याग्निपरिग्रहः । एवं स्थितेऽग्नेरभावे आहुती ब्राह्मणस्य हस्ते प्रक्षिपेत् ! "कस्य ब्राह्मणस्य ?" । य एव निमन्त्रितास्तेषामन्यतमस्य दैव उपवेशितस्यान्यस्य वा निमन्त्रितस्य । अर्थवादो **यो ह्यग्निरिति** । **मन्त्रदर्शिभिः** सम्मतञ्चेदमर्थविद्भिः ।। २१२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** अग्न्यभाव औपासनाभावे पाणावग्नितीर्थे हस्तमध्यस्थ उपपादयेदाहुतीः संपादयेत् ।। २१२ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** अग्न्यभावे पुनर्ब्राह्मणहस्त एवोक्ताहुतित्रयं दद्यात् । यस्माद्य एवाग्निः स एव ब्राह्मण इति वेद**विद्भि**र्ब्राह्मणैरुक्तः । अग्न्यभावश्चानुपनीतस्य संभवति । उपनीतस्य समावृत्तस्य च पाणिग्रहणात्पूर्वं मृतभार्यस्य वा ।। २१२ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** पाणावेवाहुतित्रयं दद्यात् । 'पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृत' इत्युक्तिमाश्रित्याह **य इति** ।। २१२ ।।

(५) **नन्दनः । उपपादये**द्दद्यात् । 'एष वा अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मण' इति मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ।। २१२ ।।

(७) **मणिरामः । अग्न्यभावे** पुनर्ब्राह्मणहस्ते एव आहुतित्रयं दद्यात् ।। २१२ ।।

(८) **गोविन्दराजः । अग्न्यभाव इति ।** अनग्निकस्य अनुपनीतोपनीतासमावृत्त-अकृतदारमृतभार्यादेः मृताहादिश्राद्धे विधानात् औपासनाग्न्यभावे ब्राह्मणहस्त एतदाहुतित्रयं दद्यात्, यस्मात् य एवाग्निः स एव ब्राह्मण इति वेदविद्भिः ब्राह्मणैरुच्यते ।। २१२ ।।

**अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान् पुरातनाः ।।**
**लोकस्याप्यायने युक्तान् श्राद्धे देवान् द्विजोत्तमान् ।।२१३।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अयमर्थवाद एव । ब्राह्मणानां देवतारूपत्वं सम्पादयति । अग्निर्देवता । तत्र हुतं **तन्मुखेन** देवता अश्नन्ति । ब्राह्मणोऽप्येवंरूपः । तद्धस्तेऽपि क्षिप्तं देवता अश्नन्त्येव । "किं **पुनर्दे**वतानां रूपं येन ब्राह्मणोऽपि देवतारूप उच्यते" ।

अत आह **अक्रोधनानिति**। कथमेवं ब्रुवते ? तदर्थं दर्शयति। य एवंस्वभावा ब्राह्मणास्तेषां हस्ते आज्याहुती प्रक्षेप्तव्ये।

अन्ये त्वाहुः—पूर्वत्राक्रोधना इत्यादिना पितॄनुद्दिश्य निमन्त्रितानां स्तुत्यानामक्रोधनादिधर्मो विहितः। अनेन देवनिमन्त्रितानामिति विशेषः। तथा चाह **श्राद्धे देवानिति**। **पुरातना** मुनय एवं वदन्ति। द्वितीयान्तो वा पठितव्यः। **पुरातनानेतान्देवान्त्साध्य**-देवानस्मिन्कल्पे समुत्पन्नान्। **लोकस्याप्यायने युक्तान्**। एवं श्राद्धं भुञ्जते। तत्र नैवं मन्तव्यम्—'दृष्टसुखार्थिनो लोभात्स्वार्थे प्रवर्तन्तेऽतश्च किमित्येषां पूजा क्रियते'। यत आप्याययन्ति लोकं पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं चातो नैषामवज्ञा कर्तव्या॥ २१३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अक्रोधनत्वादिगुणवत्त्वे सत्येते श्राद्धे देवता भवन्तीत्यर्थः। **सुप्रसादा**नल्पायासेन प्रसाद्यान् **पुरातनान्** सर्वेभ्योऽग्रजान्। यज्ञादिना **लोकाप्यायने युक्तान्**। **श्राद्धदेवान्** श्राद्धसंबन्धिनोऽन्नस्य पितॄन्प्रति नेतॄन् अतोऽग्निर्यथा हव्यं वहति तथा ब्राह्मणा अपीत्यर्थः। गत्यर्थाद्दीव्यतेर्ण्यन्तात् देवशब्दव्युत्पत्तिरत्र॥ २१३॥

(३) **कुल्लूकः**। क्रोधशून्यान्**सुप्रसादान्** प्रसन्नमुखान् प्रवाहानादितया **पुरातनान्** 'अग्नौ प्रास्ताहुति'रिति न्यायेन लोकवृद्धय उद्युक्तान् श्राद्धपात्रभूतान्मन्वादयो **वदन्ति**। तस्माद्देवतुल्यत्वाच्छ्राद्धब्राह्मणस्य तद्धस्ते दातव्यमिति पूर्वविध्यनुवादः॥ २१३॥

(४) **राघवानन्दः**। **पुरातनान्** चिरन्तनान् प्रवाहानादितया पुरा पूर्वं तन्यते दीयते येभ्यस्तान्वा। **आप्यायने** 'दातारो वोऽभिवर्धन्ता'मित्याद्याशिषा। **श्राद्धदेवान्** श्राद्धोद्देश्यपात्रभूतान्॥ २१३॥

(५) **नन्दनः**। यस्मिन्हूयते सोऽग्निरेव न केवलं ब्राह्मणः किंतु येभ्यो हूयते ते पितरोऽपि ब्राह्मणा इत्याह **अक्रोधना** इति। **श्राद्धदेवान्पितॄन्**। **द्विजोत्तमान् पुरातनान्वदन्ति**। तेन च ब्राह्मणस्य पाणावेवोपपादनं युक्तमित्यभिप्रायः॥ २१३॥

(६) **रामचन्द्रः**। एतादृशान्**पुरातनान्**पितृरूपान्**द्विजोत्तमान् श्राद्धदेवान्** श्राद्धप्रापकान्। एवं वदन्ति॥ २१३॥

(७) **मणिरामः**। **एतान् द्विजोत्तमान् लोकस्याप्यायने** 'अग्नौ प्रास्ताहुति'रिति न्यायेन **श्राद्धदेवान्** उद्युक्तान् श्राद्धदेवान् श्राद्धपात्रभूतान्॥ २१३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अक्रोधनानिति**। **अक्रोधनान्** क्रोधशून्यान् स्वाराधनादीन् 'अग्नौ प्रास्ताहुति'रिति न्यायेन लोकवृद्ध्युपादानान् श्राद्धसंप्रदानभूतानेतान् ब्राह्मणान् मन्वादयो वदन्ति। तस्मात् देवतुल्यत्वात् तद्धस्ते देयमिति पूर्वविध्यर्थवादः॥ २१३॥

**अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्परिक्रमम्॥**
**अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि॥२१४॥**

(१) **मेधातिथिः**। अग्नौ यत्कर्तव्यं 'अग्नये स्वधा नम' इति आहुतिप्रक्षेपलक्षणं कार्यं **तदपसव्यम्**। दक्षिणेन हस्तेन कर्तव्यं, न सव्येन, नोभाभ्यां, "उभयोर्हस्तयोर्मुक्तम्"

(३।२२५) इति निषेधात् । हस्तद्वयसंयोगेन कर्तव्यताशङ्कायामपसव्येनेत्युक्तमिति केचित् । इदं त्वयुक्तम् ; या अग्नावाहुतयो हूयन्ते तासां च या **आवृत्परिक्रम**स्तस्यापसव्यता विधीयते । दक्षिणासंस्था आहुतीः कुर्यात् नोदक्संस्थाः, यथा दैवे । दर्व्या वा हविर्भिस्तु कारयितव्यं नोदीच्यां ; किं तर्हि ? दक्षिणाभिमुखं यथोदकं पितृेण तीर्थेन कार्यते । **सर्व**ग्रहणादन्यदपि परिवेषणाद्यपसव्यमेव कर्तव्यम् । **अपसव्येन** हस्ते**नोदकं निर्वपेत्** 'शनैरिति' वा पाठः । अत्रार्थः—अन्यथा "राजतैर्भाजनैः" (३।२०२) इत्यनेन राजतभाजनप्राप्तये सव्यहस्तविधिः । आवृत्तिर **वृत्** ।। २१४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अपसव्यं** प्राचीनावीतेन एतच्चाग्न्यादीनां देवताभूतत्वाद्यज्ञोपवीतप्राप्तौ प्राचीनावीतविधानम् । **आवृत्परिक्रमं** कर्मक्रमं **अपसव्येन** पितृतीर्थेन उदकं पिण्डदानस्थाने ।। २१४ ।।

(३) **कुल्लूकः । अग्नौ** पर्युक्षणाद्यङ्गमुक्तं अग्नौकरणहोमानुष्ठानक्रमम**पसव्यं** दक्षिणसंस्थं कृत्वा ततोऽपसव्येन दक्षिणहस्तेन पिण्डाधारभूतायां **भुव्युदकं क्षिपेत्** ।। २१४।।

(४) **राघवानन्दः । अग्नौ** पर्युक्षणाद्यङ्गयुक्तमग्नौकरणहोमानुष्ठानक्रमं **सर्वमावृत् परिक्रमं** परिपाटीक्रमम् । **अपसव्यं** दक्षिणसंस्थं तत्कृत्वा **अपसव्येन** दक्षिणहस्तेन **भुवि** पिण्डाधारभूतायाम् । **उदकं निर्वपेत्** निःक्षिपेत् ।। २१४ ।।

(५) **नन्दनः ।** पितृकार्ये हस्तमुद्राया लक्षणमाह **अपसव्यमिति ।** हस्ताभिमुखं दक्षिणहस्ततलमपसव्यम् ।। २१४ ।।

(६) **रामचन्द्रः । अग्नौ अपसव्यं** कृत्वा यज्ञोपवीतं प्राचीनावीतं कृत्वा **सर्वमावृत्परिक्रमं** दक्षिणं परिक्रम्य **अपसव्येन हस्तेन भुवि उदकं निर्वपेत्** । 'वामहस्तं तु सव्यं स्यादपसव्यं तु दक्षिणम्' ।। २१४ ।।

(७) **मणिरामः । अग्नौ सर्वमावृत्परिक्रमं** अग्नौकरणहोमानुष्ठानक्रमं **अपसव्यं** दक्षिणसंस्थं **कृत्वा** । ततो**ऽपसव्येन** दक्षिणह**स्तेन** पिंडाधारभूतायां भूमौ **उदकं** क्षिपेत् ।। २१४ ।।

(८) **गोविन्दराजः । अपसव्यमिति । अग्नौ** यः पर्युक्षणपरिस्तरणाहुतिदानादीनि कर्तव्यताक्रमः तं सर्वं अपसव्यपितृकर्मवत् दक्षिणासंस्थं कृत्वा तदेतदुदक्संस्थं **अपसव्येन** दक्षिणेन **हस्तेन** पितृतीर्थेन पिण्डाधारभूतायां **भुवि उदकं** प्रक्षिपेत् ।। २१४ ।।

**त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ।।**
**औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ।। २१५ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यत्तद्धोमार्थं पात्रे गृहीतमन्नं तस्माद्धुतशिष्टात् **त्रीन् पिण्डान् कृत्वा** दक्षिणस्यां दिशि मुखं कृत्वा **निर्वपेत्** । दर्भेषु पितॄनुद्दिश्य प्रक्षिपेत् । संहतं द्रव्यं पिण्डशब्देनोच्यते । तेन विशदमन्नं न दातव्यम् । **औदकेन** । औदको विधिर्यः समनन्तरमेवोक्तः 'अपसव्येनेत्यादि'ना (३।२०४) । अत्रेदं संदिह्यते— किं यत्तदन्नं ब्राह्मणभोजनार्थं साधितं ततोऽप्युद्धृत्य हविःसंस्कारः कर्तव्य उत पृथक् चरुः साधनीयः ? इति । किंपरिमाणं

च तद्धविरिति। न ह्यत्र 'चतुरो मुष्टीनि'त्यादिपरिमाणसम्भवः। विचारितमेतत्। **विशेषाश्रवणात् कामचारः।** परिमाणं यावता अर्थसिद्धिर्भवति। औदकविध्यतिदेशाच्च स्वहस्तेनापसव्येन पिण्डनिर्वपणं, न राजतैः पात्रैः। **समाहितग्रहणं** वृत्तपूरणार्थम्॥ २१५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। हविःशेषात्** हुतशेषादुद्धरणपात्रस्थादन्नस्थालीस्थाच्च **औदकेन** विधिना यथोदकं पितृतीर्थेन नीतं तथेत्यर्थः। अन्नं च उदकनिनयनं भूमौ कृत्वा तदुपरि कुशानास्तीर्य तेषु दर्भेषु पिण्डदानमिति ग्राह्यम्। "तेषु दर्भेष्वि"ति (३।२१६) वक्ष्यमाणत्वात्॥ २१५॥

(३) कुल्लूकः। **तस्माद**ग्न्यादिहोमादुद्धृतादन्नादुद्धृतादवशिष्टान् **त्रीन् पिण्डान्कृत्वा औदकेनैव विधिना** दक्षिणहस्तेन **समाहितो**ऽनन्यमना दक्षिणामुखः'तेषु दर्भे'ष्विति वक्ष्यमाणत्वाद्दर्भेषु दद्यात्॥ २१५॥

(४) **राघवानन्दः। तस्मादग्नौ** कृताद्धविःशेषात् **त्रीन्पिण्डान् कृत्वा समाहितो**ऽनन्यमनाः। **औदकेनैव विधिना** दक्षिणहस्तेन॥ २१५॥

(५) **नन्दनः। हविःशेषादन्नात्। औदकेनैव विधिना, अपसव्येन** हस्तेनेत्यर्थः॥२१५॥

(६) **रामचन्द्रः। तस्मात् हविःशेषादन्नात्समाहितः सन्पितृपिण्डान्कृत्वा दक्षिणामुखः सः औदकेन विधिना अपसव्येन** न जलदानविधिना अपसव्येन पितृतीर्थेन **निर्वपेत्** दद्यात्। हविष्याण्याह, तद्यथा— व्रीहिशालियवगोधूममुद्गमाषमुन्यन्नकालशाकं एलाशुण्ठिमरीचिहिङ्गुशर्कराकर्पूरसैन्धवं सामभरं नालिकेरएकदाबदरगव्यपयोदधिघृतपायसप्रभृतिस्मृत्यन्तरप्रसिद्धं वेदितव्यम्॥ २१५॥

(७) **मणिरामः। तस्मात् हविःशेषात्** अग्नौकरणहविःशेषात्। **औदकेनैव विधिना** अपसव्यादिना॥ २१५॥

(८) **गोविन्दराजः। त्रीनिति**॥ तस्मादग्न्यादिहोमार्थाहुतिं दत्वा हुतशिष्टान् **त्रीन् पिण्डान् कृत्वा** औदकेन विधिना दक्षिणहस्तेन पितृतीर्थेनानन्यचित्तो **दक्षिणामुखस्तेषु** दर्भेषु 'तं हस्तं निमृज्यात्' इति दर्शनात् दर्भेषु दद्यात्। अत एव चोदकमपि पूर्वोक्तपिण्डाधारभुवि दर्भेष्वेव दद्यात्॥ १२५॥

**न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम्॥**
**तेषु दर्भेषु तं हस्तं निर्मृज्याल्लेपभागिनाम्॥ २१६॥**

(१) **मेधातिथिः। न्युप्य** दत्वा **दर्भेषु तान् पिण्डान् तं हस्तं निर्मृज्याद्दर्भेषु** तेषु येष्वेव पिण्डनिर्वपणं कृतम्। **स्मृत्यन्तर**दर्शनात् दर्भमूलेषु मार्जनम्। अपरे च—न हस्तसंलग्नस्यान्नस्योदकस्येव दर्भेषु संश्लेषणम्। यदि न किंचिदपि हस्ते संश्लिष्येत्तथापि हस्तं दर्भेषु मिर्मृज्यादेव। न ह्येतत्प्रतिपत्तिकर्मैव। येनासति वचनप्रयोजने न क्रियेत। नेह श्रूयेत 'हस्तलग्नं निर्मृज्यात्', किं तर्हि? 'हस्तमेव'। "ननु च **लेपभागिनामिति** श्रूयते। तत्रासति लेपे न प्राप्नोति। अतः किमुच्यते 'यदि न किञ्चिदपि हस्ते संश्लिष्येत्तथापि

कर्तव्यमिति' ? ।" उच्यते। साक्षात् मूर्तमन्नं कदाचिन्न श्लिष्यति। पिण्डेष्वनुवर्त्यमानेषु अन्नरस ऊष्मावसम्पर्कात् संक्रामति हस्ते। स एव 'लेप' उच्यते। **लेपभागिनामिति** षष्ठी। निर्मार्जनस्य तत्सम्बन्धितामाह। न च लेपभागिनः प्रत्यक्षदृश्याः सन्ति येषां स्वस्वाम्यादिसम्बन्धो लेपस्य क्रियेत। तस्माल्लेपभागिनामयं भागोऽस्त्विति मनसा ध्यायेत; शब्देन वोद्दिशेत। अन्ये तु प्रपितामहात्पूर्वे ये पितरस्तान् 'लेपभागिन' आहुः। अस्मिन्दर्शने 'प्रपितामहपित्रे' 'प्रपितामहपितामहाये'त्यादिभिः शब्दैरुद्देशः कर्तव्योऽस्तीति तन्नामनिवेदने। हस्तमित्येकवचननिर्देशादेकेनापसव्येन हस्तेन पिण्डनिर्वपणं दर्शयति। **प्रयत** इत्यनुवादो, विहितत्वात्। **विधिपूर्वकमिति** शास्त्रान्तरदृष्टं विधिं परिगृह्णाति। 'गन्धमाल्यधूपाच्छादनसिद्धोपहारैः पिण्डं निर्वपेदिति' **शङ्खः**। यस्त्विह विधिः श्रुतः स स्वमतेनैवोक्त इति विधिपूर्वकमित्येतदनर्थकम्। तस्माच्छास्त्रान्तरविध्युपसंहारार्थं **पूर्वकमिति** वचनम्॥ २१६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। लेपभागिनां लेपभागिनो** वृद्धप्रपितामहादीनुद्दिश्येत्यर्थः॥ २१६॥

(३) **कुल्लूकः। विधिपूर्वकं** स्वगृह्योक्तविधिना **दर्भेषु तान्पिण्डान्दत्वा** 'दर्भमूलेषु करावघर्षण'मिति **विष्णु**वचनाच्च **तेषु दर्भेषु** मूलदेशे **हस्तं** निर्लेपं कुर्यात्प्रपितामहपित्रादीनां त्रयाणां लेपभुजां तृप्तये॥ २१६॥

(४) **राघवानन्दः। न्युप्य** दत्वा। **विधिपूर्वकं** स्वगृह्योक्तेन विधानेन। **लेपभागिनां** पित्रादित्रयाणां **तृप्तये**। 'दर्भमूलेषु करावघर्षण'मिति **विष्णु**वचना**द्धस्तं निर्मृज्यात्** ॥ २१६॥

(५) **नन्दनः। तेषु दर्भेषु** येषु पिण्डा न्युप्ताः। अनेनैव ज्ञाप्यते दर्भेषूदकनिनयनं पिण्डनिर्वपनं च कार्यमिति। **लेपभागिनां** पितामहात्परेषां त्रयाणाम्॥ २१६॥

(६) **रामचन्द्रः। न्युप्य** नितरां उप्य स्थापयित्वा **तान्। ततः** स्थापनानन्तरं **हस्तं निर्मृज्याद**ङ्गुल्यादिना प्रक्षालयेत्। **लेपभागिनां तेषु दर्भेषु** दर्भमूलेषु तत्प्रक्षाल्यान्नं दद्यात्। 'चतुर्थाल्लेपभागिन' इति वचनात्॥ २१६॥

(७) **मणिरामः। न्युप्य** दत्वा तेषु पिंडाधारभूतेषु **तं हस्तं** दक्षिणहस्तं। **लेपभागिनां** प्रपितामहादूर्ध्वं त्रयाणां लेपभुजां तृप्तये **निर्मृज्यात्** निर्लेपं कुर्यात् इत्यर्थः॥ २१६॥

(८) **गोविन्दराजः। न्युप्येति। तान् पिण्डान्** पिण्डेषु अञ्जनाभ्यंजनवासो दद्यात् इत्येवमादि सूत्रकारोक्त**विधिपूर्वकं** दत्वा ततः **तेषु** पिण्डाधारभूतेषु **दर्भेषु**" करावघर्षणं इति **वैष्णवस्मरणात्**। दर्भमूलेषु **तं हस्तं** प्रपितामहात्पूर्वेषां त्रयाणां **लेपभागिनां** हस्तसंश्लिष्टान्नावयवभागितृप्तये समर्पितलेपं कुर्यात्॥ २१६॥

**आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्॥**
**षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवत्॥ २१७॥**

(१) **मेधातिथिः।** दर्भेषु पिण्डान् दत्वोदीचीं दिशं परावर्तेत। सव्येन मार्गेण। स्मृत्यन्तरे हि 'सव्यावृदुदकपरावृत्येति' पठ्यते। उत्तराभिमुखः स्थित्वा आचामेत्। **आचम्य** त्रीन् प्राणायामान् कुर्यात्। **असून्**प्राणानायम्य सन्निरुध्य इत्येव, अत्र च "गायत्री शिरसा" इत्यादिविधिर्नास्ति। **शनैर्य**था नातिपीडा भवति। तथा चाह 'यथाशक्यं प्राणानासित्वा। तदभिमुख एव सकृन्नमस्कुर्यात्। वसन्ताय नम' इत्यादि।

पितृंश्च **नमस्कुर्यात्। मन्त्रवत्।** 'नमो वः पितर' इत्यादिना मन्त्रेण। पितृणां नमस्कारः पिण्डाभिमुखेन कर्तव्यः। 'अद्भिः पर्यावृत्येति' हि स्मृत्यन्तरम्।। २१७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **उदगु**दङ्मुखः **परावृ**त्त्‌दावृत्य **त्रि**स्तूष्णीं प्राणा**नायम्य** 'नमो वः पितरो रसाये'त्यादिमन्त्रेण रसादिसंज्ञान् दर्षादी**नृतून्नमस्कुर्यात्** **पितृनेवेति** 'नमो वः पितरो रसाये'त्यादौ पितृणामप्युद्दिष्टत्वात्तेऽपि नमस्कार्या इत्युक्तम्।। २१७।।

(३) **कुल्लूकः।** अनन्तरमुपस्पृश्योद**ङ्मुखो** भूत्वा यथाशक्ति प्राणायामत्रयं कृत्वा 'वसन्ताय नमस्तुभ्य'मित्यादिना **षड्ऋतून्नमस्कुर्यात्पितृंश्च** 'नमो वः पितर' इत्यादिमन्त्र-मुक्तम्'अद्भिः पर्यावृत्ये'ति गृह्य (गृ. सू. ४।८१) दर्शनाद्दक्षिणामुखो नमस्कुर्यात्।। २१७।।

(४) **राघवानन्दः।** **उदक्**परावृत्य उदङ्मुखो भूत्वा। **त्रिराचम्य असून्** प्राणान् प्राणायामत्रयं कृत्वा। **षड्ऋतून् मन्त्रवित्** 'वसन्ते'ति मन्त्रेण पितॄन् 'नमो व' इति मन्त्रेण।। २१७।।

(५) **नन्दनः। असूनायम्य** प्राणायामं कृत्वा। **मन्त्रवत्** 'नमो वः पितर' इत्यादि-मन्त्रयुक्तम्। **पितॄनेव** पित्रात्मकानेव।। २१७।।

(६) **रामचन्द्रः। ततो दर्भेषु** पिण्डं दत्वा **उदक् परावृत्य** उदगुदीचीं दिशं परावर्तेत। तत्प्रदक्षिणावृत्योदङ्मुखः स्थित्वा **आचम्यासून्** प्राणान् **शनैः त्रिरायम्य** प्राणानायम्य त्रिः प्राणायामान्कृत्वा **षड्ऋतून्न**मस्कृत्य **मन्त्रविद्ब्राह्मणः** कर्ता **पितॄन्**पितृब्राह्मणा**न्नमस्कुर्यात्।** 'नमो वः पितर' इति।। २१७।।

(७) **मणिरामः।** **उदक्** उदङ्मुखो भूत्वा **आचम्य शनैः** असून् **त्रिः** परावृत्य प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनराचम्य वसंताय नमः, ग्रीष्माय नम इत्यादिना **षडृतून्नम-स्कुर्यात्। पितॄनेव च मंत्रवित्।** 'परावृत्ये'ति गृह्यदर्शनाद्दक्षिणामुखो भूत्वा "नमो व" इति मन्त्रेण पितॄन्नमस्कुर्यादित्यर्थः।। २१७।।

(८) **गोविन्दराजः। आचम्योदक्परावृत्येति।** तदनूपस्पृश्य **आचम्यो**दङ्मुखः यथा-शक्ति त्रीन् प्राणायामान् कृत्वा 'वसन्ताय नम' इति **षडृतून्नमस्कुर्यात्। पितॄनेव** च पितृंश्च "नमो वः पितर" इत्येवमादि मन्त्रयुक्तं कृत्वा 'अभिपर्यावृत्ये'ति (४।१) गृह्यदर्शनात् दक्षिणाभिमुखो भूत्वा **नमस्कुर्यात्**।। २१७।।

**उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।।**
**अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः।। २१८।।**

(१) **मेधातिथिः**। यत एव पात्रादुदकेन प्राक्पिण्डदानाद्दर्भेषूदकनिनयनं कृतं तत एव पुनर्निनयनं **पिण्डान्तिके** पिण्डसमीपे कर्तव्यमिति। **शेषग्रहणं** प्रतिपत्त्यर्थं तस्योदकस्य। तथाहि शेषशब्द उपपन्नो भवति। अतश्च कथं चित्तस्याभावे नास्ति पुनर्निनयनम्। गृह्ये तु 'नित्यं निनयनमि'त्युक्तम्। **अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान्**। अवघ्राणं गन्धोपलब्धिः। गृह्ये तु "चरोः प्राणभक्षं भक्षयेत्" इत्युक्तम्। **यथान्युप्तान्** येन क्रमेण निरुप्तान् पित्रे पितामहाय प्रपितामहायेति। **समाहित** इति श्लोकपूरणम्।। २१८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शेषं** पूर्वनिनीतोदकशेषं तद्व**त्पिण्डान्तिके** दर्भेषु स्थानत्रये पुनर्निनयेत्। एवं ब्राह्मणभोजनात्प्राक् पिण्डनिर्वपणमुक्तम्। अत्र पक्षे होमपिण्डदाने प्रधाने विप्रभोजनेन तु शेषप्रतिपत्तिः। यदा त्व वक्ष्यमाणक्रमेण भोजनानन्तरं पिण्डदानं तदा होमब्राह्मणभोजनयोः प्राधान्यं। पिण्डदानं तु शेषप्रतिपत्तिरिति।। २१८।।

(३) **कुल्लूकः**। पिण्डदानात्पूर्वं पिण्डाधारदेशदत्तोदकशेषमुदकपात्रस्थं प्रति पिण्डसमीपे देशे क्रमेण पुनरुत्सृजेत्। **तांश्च पिण्डान् यथान्युप्तान्** येनैव क्रमेण दत्तांस्तेनैव क्रमेणा**वजिघ्रेत्समाहितो**ऽनन्यमनाः।। २१८।।

(४) **राघवानन्दः**। **शेषं** पिण्डभूमिक्षिप्तावशेषं। **निनयेद्**द्यात् **यथान्युप्तान्** येन क्रमेण दत्तान्।। २१८।।

(५) **नन्दनः**। **शनै**रत्वरया। **यथान्युप्तान्निर्व**पणानुक्रमेणेत्यर्थः।। २१८।।

(६) **रामचन्द्रः**। **पुनः पिण्डान्तिके** पिण्डसमीपे **उदकं शनैः** निर्वपेत् दद्यात्। अक्षयोदकमिति उपतिष्ठतां **यथान्युप्तान्दत्तान्पिण्डान् समाहितः** सन् उत्थाप्या**वजिघ्रेत्**।। २१८।।

(७) **मणिरामः**। शेषं पिंडाधारदेशदत्तोदकशेषमुदपात्रस्थं प्रतिपिण्डसमीपे क्रमेण पुनरुत्सृजेत्। **यथान्युप्तान्**। येन क्रमेण दत्तान् तेनैव क्रमेणा**वजिघ्रे**दित्यर्थः।। **समाहितः** अनन्यमनाः।। २१८।।

(८) **गोविन्दराजः**। **उदकमिति**। पिण्डाधारदर्भदत्तोदक**शेषं उदकं** पिण्डसमीपे **पुनः** उत्तरयोत्सृजेत्। **तांश्च पिण्डान्** येनैव क्रमेण दत्तान् तेनैव क्रमेण अनन्यमना **जिघ्रेत्**।। २१८।।

**पिण्डेभ्यः स्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः।।**
**तानेव विप्रानासीनान्विधिवत् पूर्वमाशयेत्।। २१९।।**

(१) **मेधातिथिः**। अत्यन्ताल्पिका **मात्रा** अवयवो भागस्तमेव। यो ब्राह्मणो यं पितरमुद्दिश्य उपवेशितः, तदीयात्पिण्डात् किञ्चिन्मात्रं स एवाशयितव्यः। **अनुपूर्वश** इत्युक्तार्थम्। इह तच्छब्दात्प्रकृतपरामर्शकादन्यभाव इत्यत्र न प्रकृतवचनम्। **पूर्वम**न्यस्माद्दनीयात्।।२१९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्राद्यपक्षे कर्तव्यान्तरमाह **पिण्डेभ्य** इति। **पिण्डेभ्यः** सकाशात् **मात्रा**मवयवं **अनुपूर्वशः** पित्रादिक्रमात्। **तानेव** पित्र्यान्नतु वैश्वदेविकान्। **विधिवदा-**

चमनादिपूर्वकं। **पूर्वं** भोजनात् ध्रियमाणे जीवति पूर्वेषां ततः पूर्वेषां त्रयाणां एतच्च सुतस्य साग्नित्वे पिण्डपितृयज्ञस्य तदनन्तरं च पार्वणस्यावश्यकं कर्तव्यत्वात्। तस्य पितार जीवति क्रियाप्रकार उक्तः ।। २१९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अल्पिकेत्यन्नाल्पमात्रा अवयवभागाः पिण्डेषूत्पन्नानल्पभागान्पिण्ड-क्रमेणैव गृहीत्वा तेनैव पित्रादिब्राह्मणान् भोजनकाले भोजनात्पूर्वं भोजयेत्। **विधिव-**त्पिण्डानुष्ठानवत्पितरमुद्दिश्य यः पिण्डो दत्तस्तदवयवं पितृब्राह्मणं भोजयेत्। एवं पितामहप्रपितामहपिण्डयोरपि ।। २१९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **पिण्डेभ्यस्तेभ्यः**। **अल्पिकां मात्रां** किंचित्। **आशयेत्** भोजयेत् ।। २१९ ।।

(५) **नन्दनः**। **मात्रामंशान्** ।। २१९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **पिण्डेभ्यः** पिण्डसकाशेभ्योऽल्पिकां **मात्रामन्नं** तमादाय यथानु-**पूर्वशः तानेवाभ्यर्चितानेव विप्रान् विधिवत्पूर्वमाशयेत्**, भोजयेत् इत्यर्थः ।। २१९ ।।

(७) **मणिरामः**। **अल्पिकां मात्रां** अन्नाल्पभागान्। **अनुपूर्वशः** पिण्डक्रमेणैव **तान्**। पित्रादिब्राह्मणान्। पूर्वं भोजनात्**पूर्वं** ।। २१९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पिण्डेभ्य इति**। **पिण्डेभ्यः** अत्यन्ताल्पभागं पितृपिण्डक्रमेण गृहीत्वा तानेव पित्राद्यर्थोपवेशितान् विप्रान् विधिवत् नयेच्च। आनुपूर्व्या भोजनकाले अन्यभोजनात्पूर्वं भोजयेत् ।। २१९ ।।

**ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।।**
**विप्रवद्वाऽपि तं श्राद्धं स्वकं पितरमाशयेत् ।। २२० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तं "पितृभ्यः पिण्डान्निर्वपेत्" इति। क एते पितरो नाम ?। अनेकार्थो हि पितृशब्दो जनयितरि वर्तते। जनकः पितेति सम्बन्धिशब्दो दृश्यते। पूर्वप्रमीताः पित्रादयोऽन्ये च सम्बन्धिनः प्रेताः पितर उच्यन्ते। तथा च "नमो वः पितरः" इत्यादिमन्त्रा बहुवचनान्ताः समर्था निगदा भवन्ति। अत एव स्त्रीश्राद्धे नोह्यन्ते। नमस्ते मातर्नमस्ते पितामहि इत्यादि न क्रियते। अत एकोद्दिष्टे संख्योहः क्रियते, न प्रातिपदिकोहः। तथा च **सूत्रकारः** "एकवन्मन्त्रानूहेत" इत्यादि। 'नमस्ते पितरि'त्येवमूहः क्रियते। यो भ्रातुः पितामहादेर्वा एकोद्दिष्टं करोति स चैवमूहति– 'नमस्ते भ्रातः' 'नमस्ते पितामह' 'नमस्ते पितृव्य'इत्यादि। पितृव्यादीनामनपत्यानां श्राद्धं विहितम्। 'यो यत आददीत स तस्मै दद्यादिति'। देवताविशेषवचनोऽप्यस्ति पितृशब्दः कूटस्थनित्येऽर्थे वर्तते। **निरुक्तकारा** हि दैवते मध्यस्थान् पितॄन् समामनन्ति "मरुतः रुद्राक्षभृतः पितर" इति।

।। एवमनेकार्थे पितृशब्दे विशेषावधारणार्थमाह **ध्रियमाणे** जीवति **पितरि** सति **पूर्वेषां** पितामहप्रपितामहतत्पितॄणां **निर्वपेत्**, त्रयाणां, बहुवचननिर्देशात्। तथा च गृह्ये "येभ्यः

पिता दद्यात्तेभ्यः पुत्रो दद्यात्पितापुत्रौ चेदाहिताग्नी स्यातामिति"। "ननु च न चतुर्थं पिण्डो गच्छतीत्याहुः"। सत्यम्। नैवात्र चतुर्थः पिण्डो दीयते।

पक्षान्तरमाह **विप्रवद्वा**। यथा ब्राह्मणा निमन्त्रणपूर्वकं ब्रह्मचारिणो नियमवन्तश्च पूज्यन्ते, तथैव जीवत्पितृकेण पिता भोजनीयः। **श्राद्धं** श्राद्धार्थमन्नं श्राद्धम्। अत्र च पितृत्वमेव भोज्यत्वे कारणं न जातिगुणाद्यपेक्ष्यौ। एवं ह्याहुः–'पितृप्रीत्यर्थं श्राद्धं, तत्र मृतस्य प्रीतौ कर्तव्यायां को जीवति पितरि वाग्भावो यनासौ न भोजयेत्।' स्वकमित्यनुवादः, सम्बन्धिशब्दत्वादेव सिद्धेः।

भोजनमत्र पितुश्चोदितं हितं, पिण्डनिर्वपणं तु दर्भेषु पितॄणां कर्तव्यमेतत् इति विरोधात्। यदि हि पात्रस्थानीया दर्भास्तदा जीवतः पितुः स्वाम्ये दानोत्पत्तौ अल्पिका मात्रा-माशयेदिति न युज्यते। जीवतो हि स्वमिच्छाविनियोज्यम्। न च तस्मिन्पिण्डे अञ्जनादि-दानमुपपद्यते, अर्धजरतीयप्रसङ्गात्। न ह्यन्नाञ्जनादिसंस्कृतेन पितुः किञ्चित्प्रयोजनमस्ति। तस्माददृष्टार्थमञ्जनादिदानम्। अञ्जनादिरहितं तु कदाचिदात्मनः पितुः परस्य वा भोजनयोग्यं भवतीत्येवमर्धजरतीयम्। तस्मादस्मिन्पक्षे पिण्डनिर्वपणं द्वयोः पितामह-प्रपितामहयोः।

**गृह्यकारास्तु** स्मरन्ति "जीवत्पितृकस्य न पिण्डपितृयज्ञो न श्राद्धम्", किं तर्हि? "अनारम्भ एव तस्य कर्मणो, होमान्तता वा"॥ २२०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। विप्रवदिति।** अत्र पक्षे पितृस्थाने पितृपितरमुपवेश्येतरयोरर्थे द्वौ विप्रावुपवेशयेत्। तयोरेव पितर्यपि सर्वमर्घ्यादि विदध्यादित्यर्थः॥ २२०॥

(३) **कुल्लूकः। ध्रियमाणे** जीवति **पितरि** मृतानां पितामहादित्रयाणां श्राद्धं कर्तव्यम्। अथवा पितविप्रस्थाने तमेव स्वपितरं भोजयेत्। पितामहप्रपितामहयोश्च ब्राह्मणौ भोजयेत्पिण्डद्वयं च दद्यात्॥ २२०॥

(४) **राघवानन्दः। ध्रियमाणे** जीवति। **पूर्वेषां** वृद्धप्रपितामहस्य पितामहप्रपिता-महयोः ब्राह्मणद्वयं च कुर्यात्। **पितृस्थाने स्वकं पितरमित्यन्वयः**॥ २२०॥

(५) **नन्दनः। जीवति** पितरि पिण्डनिर्वापः कथं कर्तव्य इत्यपेक्षायामाह **ध्रियमाण इति। ध्रियमाणे** जीवति। पितृशब्दः पितामहप्रपितामहयोरप्युपलक्षणम्। **पूर्वेषामेव** येभ्यः पिता दद्यात्तेषामेवेत्यर्थः। **निर्वपेत्** पिण्डान्। कल्पान्तरमुत्तराधनोक्तम्। **विप्रवन्नि-**मन्त्रितविप्रवत्॥ २२०॥

(६) **रामचन्द्रः।** जीवत्पितृकं प्रत्याह **ध्रियमाण इति। पितरि ध्रियमाणे** जीवति सति **पूर्वेषां** पितॄणां **पिण्डान्निर्वपेत्** दद्यात्। आभ्युदयिकश्राद्धे तं **स्वकं पितरं** विप्रवद्भोजयेद्वा। 'येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुत' इति न्यायात्॥ २२०॥

(७) **मणिरामः। ध्रियमाणे** जीवति। **पूर्वेषां** पितामहादित्रयाणां विप्रवद्वेति पक्षे। पितामहप्रपितामहयोरेव पिण्डद्वयं दद्यात्। नतु त्रीन्॥ २२०॥

(८) **गोविन्दराजः । म्रियमाण इति ।** जीवति पितरि पितामहादीनामेव त्रयाणां श्राद्धं कुर्यात् न पितुः । अथवा पितृस्थाने **तमेव** स्वकं पितरं **श्राद्धे** भोजयेत् पितामहप्रपितामहयोश्च ब्राह्मणौ भोजयेत् पिण्डौ च दद्यात् ।। २२० ।।

**पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ।।**
**पितुः स नाम सङ्कीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ।।२२१।।**

(१) **मेधातिथिः ।** पितुर्नामसङ्कीर्तनेन तदीयावाहनपिण्डदानब्राह्मणभोजनानि लक्ष्यन्ते । **कीर्तयेत्प्रपितामहम्** जीवते पितामहाय न दद्यात् । किं तर्हि ? ततः पूर्वाभ्यां, 'पितुः पितृभ्यो निपृणीयादिति' स्मरन्ति ।। २२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । निवृत्तो** मृतः । **जीवेद्वापीति ।** वाशब्दश्चार्थे **कीर्तयेत् । प्रपितामहं** । प्रपितामहनाम कीर्तयेत् । नामकीर्तनेन श्राद्धं प्रवर्तयेदित्युक्तं भवति ।। २२१ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** नामकीर्तनमत्र श्राद्धोपलक्षणार्थं । पितृजीवनापेक्षोऽयं वाशब्दः । **यस्य** पुनः **पिता** मृतः स्यात्पितामहे जीवति स पितृप्रपितामहयोः श्राद्धं कुर्यात् । **गोविन्दराजस्तु** यस्य पितृ-प्रपितामहौ प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यादिति **विष्णु**वचनात् प्रपितामहतत्पितृभ्यां दद्यादिति व्याख्यातवान् ।।२२१ ।।

(४) **राघवानन्दः । यस्य पिता वृत्तो** मृतः **पितामहश्च जीवति स** पितृप्रपितामहयोः श्राद्धं कुर्यात् ।। २२१ ।।

(५) **नन्दनः । वृत्तो** मृतः ।। २२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः । यस्य पिता वृत्तः स्यात्** मृतः स्यात् । **पितामहो** जीवेद्वा ।। २२१ ।।

(७) **मणिरामः । वृत्तः स्यात्** मृतः स्यात् । सोऽपि पितुः पिण्डं दत्त्वा 'प्रपितामहाय' पिण्डं, दद्यात् ।। २२१ ।।

(८) **गोविन्दराजः । पिता यस्य तु वृत्त इति ।।** पितृजीवनपक्षापेक्षो **वाशब्दः । यस्य** पुनः **पिता** मृतः स्यात् **पितामहश्च जीवेच्च स पितु**र्ब्राह्मणभोजनपिण्डदानादौ **नामोच्चार्य प्रपितामहं कीर्तयेत्** ताभ्यां द्वाभ्यां श्राद्धं कुर्यात् प्रपितामहस्य च पितुः । यथाह **विष्णुः** 'यस्य पिता प्रेतः स्यात् स पित्रे पिण्डं विधाय पितामहात् पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादि'ति ।।२२१।।

**पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ।।**
**कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ।।२२२।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यथा जीवत्पिता भोज्यते तद्वत्पितामहोऽपि । अनुज्ञां पितामहात् प्राप्य **समाचरेत्स्वयम् ।** परतो द्वयोर्दद्यात्, प्रपितामहाय एकस्मा एव वा । एष 'कामं' 'स्वयम्' इत्यनयोरर्थः ।। २२२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** जीवत्पितुः पितृभोजनवत् । **तच्छ्राद्धं** पितामहश्राद्धार्थमन्नादि । **कामं वेति** पितामहानुज्ञया स्वयं पौत्रः समाचरेत् त्रिपुरुषं श्राद्धमाचरेत् । तेन पितुः प्रपितामहवृद्धप्रपितामहयोश्च श्राद्धं कुर्यादिति लभ्यते ।। २२२ ।।

(३) **कुल्लूकः।** यथा जीवत्पिता भोज्यस्तथा पितामहोऽपि पितामहब्राह्मणस्थाने भोज्यः। पितृप्रपितामहयोश्च ब्राह्मणभोजनं पिण्डदानं च कुर्यात्। यथा वा जीवता पितामहेन त्वमेव यथारुचि कुर्विति दत्तानुज्ञः स्वरुच्या पितामहं वा भोजयेत् ।। पितृप्रपितामहयोर्वा श्राद्धद्वयं कुर्यादि'ति **विष्णु**वचनात्पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहानां श्राद्धत्रयं कुर्यात् ।। २२२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** श्राद्धं पितामहोद्देश्यकं पितामह एव भुञ्जीत। **समनुज्ञातः** पितामहेन दत्तानुज्ञः स्वयं वृद्धप्रपितामहान्तानां दद्यात्। 'यस्य पितृप्रपितामहौ मृतौ स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यादि'ति **विष्णुवचनात्** प्रपितामहतत्पितृभ्यां दद्यात् ।। २२२ ।।

(५) **नन्दनः।** पितुः पितामहस्य वा भोजनपक्षे द्वयोरेव पिण्डदानं पिण्डदानस्थाने भोजनविधानात्। 'पितुः स्वनाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामह'मित्यस्मिन्पक्षे तु प्रपितामहपित्रे पिण्डं दद्यात्। कुतः? 'त्रिषु पिण्डः प्रवर्तत' इति नियमात्। पक्षान्तरमुत्तरार्धेनोक्तम्। **तदनुज्ञातः** पितामहानुज्ञातः। युक्तसमाचरणं चात्र पितामहस्यापि पिण्डदानं समस्त-पिण्डविलोपो वा। कुतः? पक्षान्तरस्यासंभवात् ।। २२२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। तत्श्राद्धे पितामहो** वा **भुञ्जोत इति ननुरब्रवीत्।** वा पक्षान्तरे। **तदनुज्ञातः** पितृपितामहाभ्यामनुज्ञातः **कामं स्वयमेव समाचरेत्** ।। २२२ ।।

(७) **मणिरामः।** यथा जीवत्पिता भोज्यः तथा पितामहं प्रत्यक्षतः पितामह--ब्राह्मण-स्थाने संभोज्य प्रपितामहाय'पिण्डं' दद्यात् इत्यर्थः।। यथा वा जीवता पितामहेन त्वमेव यथारुचि कुर्विति दत्तानुज्ञः स्वरुच्या पितामहं वा भोजयेत् पितृप्रपितामहवृद्ध-प्रपितामहानां वा श्राद्धत्रयं कुर्यात् ।। २२२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। पितामह इति।** पितामहविप्रस्थाने पितामहं वा भोजयेत्। पितृप्रपितामहयोः पिण्डदानं ब्राह्मणभोजनं च कुर्यात्। अथवा पित्रा पितामहेन वा जीवता अहं न भुंजे यथेच्छमेव (कुर्विति) **अनुज्ञातः स्वयमेव** यथारुचि **समाचरेत्**।। उक्तपक्षेभ्यः पक्षान्तरं यथा गृह्ये उक्तम्--'जीवत्पितृकस्यानारम्भः कर्माणीति होमान्तः' ।। २२२ ।।

## तेषां दत्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् ।।
## तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत्तु स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ।। २२३ ।।

(१) **मेधातिथिः।** यदुक्तं 'पिण्डेभ्यः स्वल्पिकां मात्रामाशयेदिति', तस्यायं काल-विधिर्देशविधिश्च अग्रदेशात्पिण्डस्य मात्रा आदातव्या। दर्भांस्तिलोदकं च दत्वा तदनन्तरं पिण्डभागं **प्रयच्छेत्। स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन्। एषामिति** सर्वनाम्ना विशेष-नामानि गृह्यन्ते। एवं सम्बन्धः क्रियते--'येषां यानि नामानि तान्युच्चार्य स्वधाऽस्त्विति ब्रूयात्'। अतः स्वधाशब्दयोगे चतुर्थ्या निर्देशः कर्तव्यः, 'स्वधा देवदत्तायास्तु' 'स्वधा यज्ञदत्तायास्त्विति'। एवं व्याख्याने शास्त्रान्तरविरोधो न भवति ।। २२३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रकृतं कर्मक्रममाह **तेषां दत्वेति**। सपवित्रं सकुशं तिलोदकं **दत्वेति** पिण्डदान इव तदवयवप्रतिपादनाङ्गपाणावनेजनं विहितम्। **पिण्डाग्रं** पिण्डेभ्योऽल्पमात्रा। **एषामिति** संक्षिप्योक्तम्। पितुः पितामहस्येत्यादि तु पृथगेव कार्यम्। वचनाच्च स्वधायोगेऽपि षष्ठी ॥ २२३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। 'पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रा'मिति यदुक्तं तस्यायं कालविधिः प्रदेयं विधिश्च **तेषां** ब्राह्मणानां **हस्तेषु** सदर्भ**तिलोदकं दत्वा** तदिति पूर्वनिर्दिष्टं **पिण्डाग्रं** पित्रे **स्वधास्त्वित्येवमादि ब्रुवन्** पित्रादिब्राह्मणेभ्यस्त्रिभ्यः क्रमेण दद्यात् ॥ २२३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'पिण्डेभ्यः स्वल्पिकां मात्रा'मिति यदुक्तं तस्य कालविधिस्त**त्पिण्डाग्रमिति**। **स्वधैषां** पित्रे **स्वधास्तु**। पितामहाय स्वधास्त्वित्यादि ॥ २२३ ॥

(५) **नन्दनः**। विधिवदाशयेदित्युक्तम् कः पुनरस्य विधिरित्याह **तेषामिति**। **तेषाम्** एतेषां पितॄणाम् ॥ २२३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **तेषां** ब्राह्मणानां **हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकं दत्वा पिण्डाग्रं** पिण्डशेषं एषां पितॄणां **स्वधास्त्विति ब्रुवन्प्रक्षिपेत्** दद्यात् ॥ २२३ ॥

(७) **मणिरामः**। 'पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रामिति' (३।२१९) यदुक्तं, तस्य तत्कथं देयमित्यत आह **तेषामिति**। **तत् पिंडाग्रं** पूर्वकथितं पिण्डाग्रं। पित्रे स्वधा पितामहाय स्वधा प्रपितामहाय स्वधेति वाक्यैः 'पित्रादिब्राह्मणेभ्यस्त्रिभ्यः क्रमेण' दद्यात् ॥ २२३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तेषामिति**। **तेषां** ब्राह्मणानां **हस्तेषु** संदर्भं **तिलोदकं** दत्वा पिण्डेभ्यः स्वल्पिकां मात्रामित्यनेन यन्निर्दिष्टं तत् **पिण्डाग्रं** पित्रे **स्वधास्तु** इत्येवमादि **ब्रुवन्** क्रमेण दद्यात् ॥ २२३ ॥

**पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम् ॥**
**विप्रान्तिके पितॄन् ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥ २२४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उभाभ्यां हस्ताभ्यां स्वयं गृहीत्वा **अन्नस्य वर्धितं** अन्नेन पूर्णं भाजनं **विप्रान्तिके** रसवत्यगारादीनां, यत्र ब्राह्मणा भोज्यन्ते, तस्मिन्देशे **उपनिक्षिपेत्** ब्राह्मणानां समीपे स्थापयेत्। अन्ये तु व्याचक्षते–**वर्धितं** परिवर्तुलमन्नमुच्यते। **तद्विप्रान्तिके पितॄन् ध्यायन्** 'तुभ्यमिदमिति' ध्यात्वा **निक्षिपेत्**, यथा विकिरम्–तदयुक्तम्; "उपनीय सर्वं परिवेषयेत्" इति वक्ष्यति। अतः परिवेषणार्थं प्रदेशान्तरादानीय तस्योपनिक्षेपोऽयम् ॥ २२४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वर्धितं पात्रान्तरे कृत्वा पत्न्यादिभिरानीतम्। विप्रान्तिके तत्पात्रसमीपे उपरि निक्षिपेत्स्थापयेत् ॥ २२४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **अन्नस्येति** तृतीयार्थे षष्ठी। **वर्धितं** पूर्णं पिठरादिपात्रं स्वयं **पाणिभ्यां** गृहीत्वा **पितॄंश्च** चिन्तयन् रसवत्यगारादानीय ब्राह्मणानां समीपे परिवेषणार्थमत्वरया स्थापयेत् ॥ २२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **पाणिभ्यामिति। अन्नस्य च वर्धितं** अन्नपूर्णपात्रं पिठरादि। पाकगृहादानीय परिवेषणार्थं स्थापयेत् ।। २२४ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ परिवेषणप्रकारमाह **पाणिभ्यामिति। वर्धितं** राशीकृतम्। **शनकैः**रत्वरया ।। २२४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। स्वयं **अन्नस्य वर्धितं**। अन्नपूर्णं भाजनं स्वयं **पाणिभ्यामुपसंगृह्य विप्रान्तिके** समीपे **पितॄन्** ध्यायन् **शनकैरुपनिक्षिपेत्** स्थापयेत्। यथाऽविकृतम् ।। २२४ ।।

(७) **मणिरामः**। **अन्नस्य वर्धितं**, अन्नस्येति तृतीयार्थे षष्ठी, अन्नेन पूर्णं पात्रं स्वयं कर्ता **पाणिभ्यां** गृहीत्वा पितॄंश्च ध्यायन् पाकशालाया आनीय विप्रांतिके परिवेषणार्थं अत्वरया स्थापयेत् ।। २२४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पाणिभ्यामिति**। अन्नपूर्णपात्रं स्वयं कराभ्यां गृहीत्वा **पितॄन्** स्मरन् विप्रसमीपे परिवेषणार्थं **शनैः** स्थापयेत् ।। २२४ ।।

**उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ।।**
**तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ।। २२५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। द्वाभ्यां हस्ताभ्यामन्नमुपनेतव्यं परिवेष्टव्यं, न चैकेनेति। परिवेषणमुपनयनमेव। ततस्तत्राप्ययमेव धर्मः पूर्वोक्तः। तस्यार्थवादः। उभाभ्यां हस्ताभ्यां **मुक्तं** वर्जितमपरिगृहीतं यदन्न**मुपनीयते** परिवेषणार्थं **तद्विप्रलुम्पन्ति** विनाशयं**त्यसुराः**। **सहसा** वलेन। **दुष्टचेतसः** पापात्मानः। **असुरा** देवद्विषः। **उभयोरि**त्यधिकरणे सप्तमी। **मुक्त**मकृष्टमस्थितम्। भवन्ति च प्रतिषेधोपसन्निधानेऽपि कारकविभक्तयः–'ग्रामान्नागच्छत्यासने नोपविशति त्रिरात्रं नोपवसति' ।। २२५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उभयोर्हस्तयोरुभाभ्यां हस्ताभ्यां**। तस्मान्नैकेन पाणिनोपनेयमित्यर्थः ।। २२५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अधिकरणसप्तमीयं। **उभयोः** करयो**र्मुक्तम**स्थितं **यदन्नं** ब्राह्मणान्तिकमानीयते **तदसुरा** दुष्टबुद्धय आच्छिन्दन्ति। तस्मान्नैकहस्तेनानीय परिवेष्टव्यम् ।। २२५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्परिवेषणं नैकहस्तेनेत्याह **उभयोरिति**। **हस्तयोर्मुक्तं** हस्ताभ्यां वियुक्तं एकेन हस्तेन दीयमानम् **विप्रलुम्पन्ति** हरन्ति ।। २२५ ।।

(५) **नन्दनः**। यत एवं तस्मादेकहस्तेनान्नं नोपनेयमिति ।। २२५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **उभयोर्द्वाभ्यां** हस्ताभ्यां **मुक्तं** वर्जितमपरिगृहीतं **यदन्नमुपनीयते** परिवेषणान्तं **तदन्नमसुरा विप्रलुम्पन्ति सहसा दुष्टचेतसः** ।। २२५ ।।

(७) **मणिरामः**। एकहस्तेनानयने दोषमाह **उभयोरिति** ।। तस्मादेकहस्तेनानीय न परिवेष्टव्यम् ।। २२५ ।।

(८) **गोविन्दराजः। उभयोरिति।** उभाभ्यां हस्ताभ्यामगृहीतं **यदन्नं** ब्राह्मणान्तिकमानीयते दीयते वा **तत् असुराः** देवद्विषः **दुष्टबुद्धयः** आच्छिन्दति। तस्मान्नैकेन (स्मरन्) हस्तेनानीय परिवेष्टव्यम् ॥ २२५ ॥

**गुणांश्च सूपशाकाद्यान् पयो दधि घृतं मधु ॥**
**विन्यसेत्प्रहतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥२२६॥**

(१) **मेधातिथिः। गुणा** व्यञ्जनानि। एषामेव प्रदर्शनार्थमुत्तरः प्रपञ्चः। **सूपशाकाद्यान् विन्यसेद् भूमावेवोपयच्छेत।** न दारुमये फलकादौ ॥ २२६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। गुणान्** व्यञ्जनानि। **सूपशब्दः** शाकेतरव्यञ्जनपरोऽत्र ॥ २२६ ॥

(३) **कुल्लूकः। गुणान्** व्यञ्जनानि अन्नापेक्षयाऽप्राधान्याद्गुणयुक्तान् वा। **सूपशाकाद्यान्प्रयतः** शुचिः **समाहितो**ऽनन्यमनाः सम्यग्यथा न विशीर्यन्ति तथा **भूमावेव** स्वपात्रस्थाने स्थापयेन्न दारुफलकादौ ॥ २२६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच उपकरणानि पात्रान्तरे शनैर्भूमावेव देयानीत्याह **गुणांश्चेति त्रिभिः।** अन्ने रुचिसाधनं **गुणानु**पकरणादीनि कालशाकमांसादीनि ॥ २२६ ॥

(५) **नन्दनः। गुणान्**व्यञ्जनानि ॥ २२६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। गुणान्**व्यञ्जनानि च पुनः **शाकाद्यान् न** दारुमयफलकादौ **भूमावेव समाहितः सन्विन्यसेत्** स्थापयेत्। भूमौ स्थापयित्वा परिवेषयेदित्यर्थः ॥ २२६ ॥

(७) **मणिरामः। गुणान्** गुणयुक्तान्। सम्यक् यथा न विशीर्यंति तथा पूर्वं प्रथमतः भूमावेव स्वपात्रस्थानि विन्यसेत् न दारुफलकादौ ॥ २२६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। गुणानिति।** सूपादीनि व्यञ्जनानि क्षीरादीनि चोपसेचनानि प्राधान्यात् पृथक् पृथक् यथोपदिष्टानि **प्रयतः** शुचिः **समाहितः** अनन्यमनाः सन् यथा न विशीर्यन्ते तथा **भूमावेव** नान्यत्र स्थापयेत् ॥ २२६ ॥

**भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥**
**हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥ २२७ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** धानाशष्कुल्यादयो 'भक्ष्याः'। खरविशदमभ्यवहरणीयं हि **भक्ष्य**मित्युच्यते। **भोज्यं** घृतपूरादि ॥ २२७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। भक्ष्यं** लड्डुकादि। **भोज्यम**मोदनादि। **पानानि** पेयानि ॥२२७॥

(३) **कुल्लूकः। भक्ष्यं** खरविशदमभ्यवहरणीयं मोदकादि। **भोज्यं** पायसादि। नानाप्रकारफलमूलानि हृदयस्य प्रियाणि **मांसानि पानानि** सुगन्धीनि **भूमावेव** विन्यसेदिति पूर्वेण संबन्धः ॥ २२७ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **भक्ष्यं** धानाशष्कुल्यादि **भोज्यं** घृतपूपादि। **हृद्यानि** मनोज्ञानि दृष्ट्या। **सुरभीणि** सुगन्धीनि ॥ २२७ ॥

(५) **नन्दनः।** भक्ष्यादीन्येतानि स्वातन्त्र्येण भोज्यानि नोपदंशत्वेन ॥ २२७ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **हृद्यानि** प्रियाणि **पानानि सुरभीणि** कर्पूरादिसंयुतानि ॥२२७॥

(७) **मणिरामः।** **हृद्यानि** हृदयप्रियाणि। भूमावेव विन्यसेदिति पूर्वेणान्वयः ॥२२७॥

(८) **गोविन्दराजः।** **भक्ष्यं भोज्यं च विविधं सुरसानि फलानि चेति।** तथा **भक्ष्यं** खरविशदं मोदकादि **भोज्यं** पायसादिना यथाप्रकारं **मूलं फलं** च हृदयस्य प्रियाणि **मांसानि पानकादीनि च** सुरभीणि भवन्ति भूमावेव विन्यसेत् ॥ २२७ ॥

**उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः ॥**
**परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २२८ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **उपनीय** विप्रान्तिके सर्वमेतड्ढौकयित्वा। ततः **परिवेषयेत्।** भुज्यधिकरणोपादानमावर्जनम्। भुञ्जानस्य परिवेषणं यद्यप्यन्तिकदेशे अपेक्षितं तथापि तेषामन्तिके निधातव्यं यथा भुंजानानामुच्छेषणेन न संसृज्यते। **गुणान्** भक्ष्यभोज्यादेर्द्रव्यस्य ये गुणा अम्लत्वादयस्तान्प्रणोदयमानः इदमम्लमिदं मधुरमिदं खाण्डवमित्येवमावेदिते तेषां यद्रोचते तत्तद्द्यादिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। **शनकै**रित्याद्यनुवादः श्लोकपूरणार्थः ॥ २२८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **उपनीयै**कत्र समीपेऽवस्थाप्य **परिवेषयेत्** भोजनपात्रे दद्यात्। **गुणान्व्यञ्जनानि प्रचोदयन्** भोक्तुं द्विजान् प्रेरयन् ॥ २२८ ॥

(३) **कुल्लूकः।** एतत्सर्वमन्नादिकं ब्राह्मणसमीपमानीय **प्रयतः** शुचिः अनन्यमनाः क्रमेण **परिवेषयेत्** इदं मधुरमिदमम्लमित्येवं माधुर्यादि**गुणान्**कथयन् ॥ २२८ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **प्रचोदयन्** इदं मधुरमिदं कीदृगिति ख्यापयन् **प्रयतो**ऽप्रमत्तः ॥ २२८ ॥

(५) **नन्दनः।** **प्रचोदयन्**भुञ्जानेषु सूपशाकादीन्**गुणान्** प्रेरयन्प्रयच्छन्निति यावत्। **परिवेषयेत** भोजयेत् ॥ २२८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** तत्सर्वं भक्ष्यं भोज्यं **उपनीय** आनीय **समाहितः** सन्**परिवेषयेत।** **प्रयतः** सर्वान्ब्राह्मणान् **गुणान्व्यञ्जनानि** द्रव्यस्य ये गुणा अल्पत्वादयस्तान्वचनेन प्रणोदयन्प्रेरयन् ॥ २२८ ॥

(७) **मणिरामः।** उपनीय एतत्सर्वं ब्राह्मणसमीपे आनीय। **गुणान्सर्वान् प्रणोदयन्** इदं मधुरमिदमम्लमिति माधुर्यादि**गुणान्** कथयन् ॥ २२८ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **उपनीय सर्वमेतदिति।** **सर्वमे**तदन्नादि ब्राह्मणसमीपे आनीय "इदं मधुर" "इदं श्लक्ष्णं" इत्येवं **सर्वान्** माधुर्यादीन् गुणान् कथयन् सुचिरमनन्यमनाः शनैः यथोपयोगं न तु युगपदेव सर्वं **परिवेषयेत्** ॥ २२८ ॥

**नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ।।**
**न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ।। २२९ ।।**

(१) **मेधातिथिः । अस्रं** अश्रु रोदनं तन्न **पातयेन्न** कुर्यात् । प्रायेण प्रेतश्राद्धादाविष्टवियोगजेन दुःखानुस्मरणेनाश्रुपातो जायते, तस्य निषेधः । आनन्दाश्रुणस्त्वकस्मात्पततो न दोषः । न **जातु** कदाचिदप्यश्रुविमोचनं कुर्यात् । न **कुप्येत्क्रो**धं न गृह्णीयात् । अनृतवचनस्य पुरुषार्थतया निषिद्धस्य कर्मार्थोऽयं प्रतिषेधः । न **पादेन स्पृशेदन्न**मुच्छिष्टमनुच्छिष्टं च । न **चैतदन्नमवधूनयेद**वकम्पयेत् । हस्तादिनोत्क्षिप्य पुनर्न विक्षिपेत् । अन्ये तु व्याचक्षते—वाससा धूल्याद्यपनयनार्थं यदवधूननं न तदन्नस्योपरि कर्तव्यम् ।। २२९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । 'नास्रमापातयेदि'**त्यादयो भोक्तुर्नियमाः । अस्रमश्रु । **नचैतदवधूनयेत्** पात्रस्थं हस्तेनोद्धृत्य तत्र न पुनःपुनः क्षिपेत् ।। २२९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** रोदनक्रोधमृषाभाषणानि न कुर्यात् । **पादेन चान्नं** न **स्पृशेत्** । न चोत्क्षिप्योत्क्षिप्यान्नं पात्रे क्षिपेत् । पुरुषार्थतया प्रतिषिद्धयोरपि क्रोधानृतयोः । श्राद्धाङ्गत्वज्ञापनार्थोऽयं निषेधः ।। २२९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** किंचैतत्पञ्चकं न कुर्यादित्याह **नेति । तदन्नं । अवधूनयेत्** उत्क्षिप्योत्क्षिप्य न स्थापयेत् ।। २२९ ।।

(५) **नन्दनः ।** पित्रादिस्मरणेन **नास्रमापातयेत् ।** परिवेषयिताऽन्नं **नावधूनयेन्ना**वजानीयान्नावकिरेद्वा ।। २२९ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** श्राद्धकर्ता जातु कदाचित् अश्रु **न पातयेत्** रोदनं न कुर्यात् । तथा **न कुप्येन्न** क्रोधं कुर्यात् **अनृतं न वदेत् अन्नं पादेन न स्पृशेत् ।** एवमन्नं **नावधूनयेत्** तत्र हस्तं वा न कम्पयेत् ।। २२९ ।।

(७) **मणिरामः । नास्रमापातयेत्** न रोदीत ।। २२९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नास्रमिति ।** रोदनक्रोधासत्यभाषणानि न कुर्यात् **पादेन चान्नं न स्पृशेत् ।** नाप्युत्क्षिप्योत्क्षिप्य सन्त्यजेत् । क्रोधा**दनृतं न वदेत्** क्रोधानृतयोरपुरुषार्थत्वात् निषिद्धयोः श्राद्धाङ्गत्वार्थं इहोपदेशः ।। २२९ ।।

**अस्रं गमयति प्रेतान् कोपोऽरीननृतं शुनः ।।**
**पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ।। २३० ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अस्यार्थवादः । अश्रुविमोचनं क्रियमाणं **प्रेतान् गमयति** प्रापयति श्राद्धम्; न पितॄणामुपकारकं भवति । प्रेताश्चात्र पिशाचवद्भूतविशेषा विवक्षिताः, न त्वसपिण्डीकृताः सम्प्रतिमृताः । **रक्षांसि** भूतप्रेतवत् अवगन्तव्यानि । **अरयः** प्रसिद्धाः । तथा **दुष्कृतीन्** दुष्कृताचरणान् पातकिनः ।। २३० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । प्रेतान्** पिशाचान् । अरीन्यजमानस्य मृतान् शत्रून् । **दुष्कृतीन्** दुष्टाकृतीन्नारकिणः ।। २३० ।।

(३) **कुल्लूकः** । अश्रु क्रियमाणं प्रेतान् भूतवेषान् श्राद्धान्नानि प्रापयति न पितॄणामुपकारकं भवति । क्रोधः शत्रून् । मृषावादः कुक्कुरान् । **पादस्पर्शो**ऽन्नस्य राक्षसान् । **अवधूननं** पापकारिणः । तस्मान्न रोदनादि कुर्यात् ।। २३० ।।

(४) **राघवानन्दः** । न चाश्रिवित्युक्तं तत्करणे दोषमाह **अस्रमिति** । **अस्रं** चक्षुर्जलं क्रियमाणमिति शेषः । **गमयति** श्राद्धीयद्रव्यं प्रेतादिभ्यः प्रापयति । एवमुत्तरत्र । **अरीन्** शत्रून् **दुष्कृतीन्न**रकस्थलोकान् । श्राद्धीयद्रव्यं पितॄणामनुपकारकमिति वाऽर्थः । तस्माद्धर्षाश्रूणि न कुर्यादिति भावः ।। २३० ।।

(५) **नन्दनः । अस्रं** बाष्पः । तदन्नं **प्रेतान्**पिशाचान्गमयति न पितॄन् ।। २३० ।।

(६) **रामचन्द्रः** । तत्र दोषमाह **गमयतीति । अश्रु प्रेतान्**प्रत्यन्नं **गमयति** प्रापयति **कोपो**ऽरीन्प्रत्यन्नं गमयति प्रापयति । **अवधूननं** तिरस्करणं वा अवधूननं वस्त्रव्यञ्जनेन वा अवधूननं दुष्कृतीन्प्रति गमयति प्रापयति ।। २३० ।।

(७) **मणिरामः** । एतेषां फलमाह **अस्रमिति** ।। अस्रं क्रियमाणं प्रेतान् भूतवेषान् श्राद्धान्नादि गमयति प्रापयति न तु पितॄणामुपतिष्ठते । एवमग्रेऽपि । तस्मान्न रोदनादि कुर्यादित्यर्थः ।। २३० ।।

(८) **गोविन्दराजः । अस्रं गमयति प्रेतानिति** । अश्रु क्रियमाणं **प्रेता**ख्यान् भूतविशेषान् श्राद्धान्नादि प्रापयति क्रोधः शत्रून् **अनृतं शुनः पादस्पर्शो रक्षांसि अवधूननं** पापकारिणं तस्मादेतन्न कुर्यात् ।। २३० ।।

**यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ।।**
**ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् ।। २३१ ।।**

(१) **मेधातिथिः । यद्यदन्नं** व्यञ्जनं पानं चाभिलषेयुस्तत्त**दमत्सरः** अलुब्धो **दद्यात्** । 'मत्सर' इति लोभनाम । **रोचेत** प्रीतिं जनयेत् । **ब्रह्मोद्याः** । ब्रह्मणि वेदे या उद्यन्ते कथ्यन्ते ता 'ब्रह्मोद्याः' देवासुरयुद्धं वृत्रवधः, सरमाकृत्यमित्याद्याः । अथवा 'कः-स्विदेकाकी चरतीत्यादि' (वाज. संहिता २३ । ९) । 'ब्रह्माद्याश्च कथा' इति वा पाठः । तत्प्रधानमन्त्रार्थनिरूपणाद्याः 'कथाः' संलापा लौकिकैः शब्दैः । **पितॄणामेतदीप्सितम**भिलषितमित्यर्थवादः ।। २३१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अमत्सरो**ऽक्रोधः । **ब्रह्मोद्या** आध्यात्मिकीः कथा दातैव कुर्यात् ।। २३१ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यद्यद्विप्राणामीप्सितं अन्नं व्यञ्जनादि **तत्तदमत्सरो दद्यात्** । परमात्मनिरूपणपराः कथाश्च कुर्यात् । यतः **पितॄणामेतदपेक्षितम्** ।। २३१ ।।

(४) **राघवानन्दः। यदिति।** यच्छाकादिकं। **अमत्सरः** अयं बहुभोजीत्यादिमात्सर्यरहितः। **ब्रह्मोद्याः** परमात्मनिरूपिकाः कथाः। 'भृगुर्वै वारुणिः।' 'वरुणं पितरं' इत्यादिका.।। २१३ ।।

(५) **नन्दनः। अमत्सरो**ऽकृपण इति यावत्। **ब्रह्मोद्या** वेदप्रतिपाद्याः कथाः। 'कःस्विदेकाकी चरति सूर्य एकाकी चरती'त्याद्याः।। २३१ ।।

(६) **रामचन्द्रः। यद्यत्** अन्नं वा रसो वा **रोचेत तत्तदमत्सरः सन्दद्यात्।** ब्रह्मणि वेदे याः उच्यन्ते ता ब्रह्मोद्याः कथाः कुर्याच्छुभाः देवासुरादियुद्धादि ब्रह्मोष्टं वदन्ति। कःस्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः। किं स्विद्धिमस्य भेषजं। किं स्विदावपनं महदिति। प्रत्याह। सूर्य एकाकी चरति। चन्द्रमा जायते पुनः, अग्निर्हिमस्य भेषजं, भूमिरावपनं महदित्याद्याः कथाः पितृसूक्तानीत्यर्थः।। २३१ ।।

(७) **मणिरामः। ब्रह्मोद्याः** परमात्मनिरूपणपराः।। २३१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। यदिति। ब्रह्मोद्याश्चेति।** यद्यदन्नं व्यञ्जनादि भवति तत्तददुष्टः सन् दद्यात्। तथा परमात्मनिरूपणं पुण्यकथास्तोत्रं कुर्यात् **यदेतत् पितृणामभिप्रेतम्**।। २३१ ।।

**स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।।**
**आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ।। २३२ ।।**

**(१) मेधातिथिः। स्वाध्यायो** वेदः। मन्वादिग्रन्था **धर्मशास्त्राणि। आख्यानानि** सौपर्णमैत्रावरुणादीनि बाह्वृच्ये पठ्यन्ते। **इतिहासा** महाभारतादयः। **पुराणानि** व्यासादिप्रणीतानि सृष्ट्यादिवर्णनरूपाणि। **खिलानि** श्रीसूक्तमहानाम्निकादीनि ।। २३२ ।।

**(२) सर्वज्ञनारायणः। स्वाध्यायं** वेदभागं पावमान्यादिमन्त्रान्। **आख्यानानि** ब्राह्मणभागस्थाः कथाः। **इतिहासो** महाभारतं। **खिलानि** तत्कालपठ्यमानशाखास्थवेदभागान् ।। २३२ ।।

**(३) कुल्लूकः। स्वाध्यायं** वेदं। मानवादीनि **धर्मशास्त्राणि। आख्यानानि** सौपर्णमैत्रावरुणादीनि। **इतिहासान्**महाभारतादीन्। **पुराणानि** ब्रह्मपुराणादीनि। **खिलानि** श्रीसूक्तशिवसङ्कल्पादीनि। श्राद्धे ब्राह्मणाञ्छ्रा**वयेत्** ।। २३२ ।।

**(४) राघवानन्दः। स्वाध्यायं** 'उशन्हवै वाजश्रवस' (कठो. १।१) इत्यादिकठवल्ल्यादिकम् **धर्मशास्त्राणि** मन्वादीनि। **आख्यानानि** सौपर्णमैत्रावरुणानि। **इतिहासान्** महाभारतादीन् **खिलानि** श्रीसूक्तशिवसङ्कल्पादीनि।। २३२ ।।

**(५) नन्दनः।** आ**ख्यानानि** कंसवधादीनि। **इतिहासा** महाभारतादयः। **खिलानि** हरिवंशादीनि ।। २३२ ।।

**(६) रामचन्द्रः। पित्र्यं स्वाध्यायं** पित्र्यसूक्तं **ब्राह्मणान् श्रावयेत्** पितृसूक्तमाह। पितृभ्यः स्वधा विभ्यः स्वधा नमः। पितामहेभ्य इत्यादि च पुनः **धर्मशास्त्राणि** श्रावयेत् ।। २३२ ।।

(७) **मणिरामः।** **आख्यानानि** सौपर्णमैत्रावरुणादीनि **इतिहासान्** महाभारतादीन्। **खिलानि** श्रीसूक्तशिवसंकल्पादीनि ॥ २३२ ॥

(८) **गोविन्दराजः। स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्यमिति।** वेद मानवादिशास्त्राणि **आख्यानानि** सौपर्णमैत्रावरुणादीनि पृथक्वेदोदितानि भारतादीनि वाय्वादिप्रोक्तानि शिवसङ्कल्पादीनि श्राद्धे ब्राह्मणान् श्रावयेत् ॥ २३२ ॥

**हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः ।**
**अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् ॥ २३३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** सत्यपि निमित्ते न स्व दुःखं केनचित्प्रकारेण दीर्घेणोच्छ्वासादिना प्रकटयेदपितु हृष्टवत् स्यात्। **ब्राह्मणान् हर्षयेत्।** गीतादिना परप्रयुक्तेन, अविरुद्धेन वा प्रसङ्गागतेन परिहासेन। स्वाध्याये पठ्यमाने चिरं कश्चिदुद्विजेत्। तदा ततो विरम्याख्यानकैर्गीतादिना च रमयेत्। **शनैर्भोजयेत्।** कतिचिद्ग्रासान् गृह्णीत साध्वेतत्सम्यक् भोजनमित्येवमादिभिः प्रियवचनैर्भोजयेत्। **शनैर्न** संरम्भेण ब्रूयात्। **अन्नाद्येन** पायसादिना। **गुणैश्च** व्यञ्जनैर्दानार्थमुद्धृतैः रसवत्तया योजयन् भोजनार्थमुत्साहयेत्। 'स्वाद्या इमाः शष्कुल्यः, सुरसेयं क्षीरिणीति' पात्रस्थमेवमादिहस्तगृहीतं कृत्वा पुरःस्थितः पुनः पुनर्ब्रूयादित्येषा 'परिचोदना' ॥ २३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **अन्नाद्येनोदनेनाद्येन** भक्तादिना। **गुणैर्व्यञ्जकैः** कथितैः प्रेरयेद्भोक्तुम् ॥ २३३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** स्वयं हृष्टो भूत्वा प्रियवचनादिभि**र्ब्राह्मणान्** परितोषयेत्। अन्नं चात्वरया भोजयेत्। मिष्टान्नेन पायसादिभिः पायसमिदं स्वादु मोदकोऽयं हृद्यो गृह्यतामित्यादिगुणाभिधानैः पुनर्ब्राह्मणान्प्रेरयेत् ॥ २३३ ॥

(३) **राधवानन्दः। अन्नाद्येन** उक्तपायसाद्येन। **गुणै**रप्रधानैः परिकीर्तयेत्। मधुरादिगुणानिति शेषः ॥ २३३ ॥

(५) **नन्दनः। परिचोदयेत्** इदमन्नमयमुपदंशश्च। पुनरपि भवद्भिर्भोक्तव्यमिति वदेदित्यर्थः ॥ २३३ ॥

(६) **रामचन्द्रः। ब्राह्मणान्हर्षयन्** तुष्टः सन्। **शनैः**शनैर्भोजयेत्। **अन्नाद्येन तान्ब्राह्मणान् गुणैर्व्यञ्जनैः** परिवेषयेत् ॥ २३३ ॥

(७) **मणिरामः।** गुणैः पायसमिदं स्वादु, मोदकोऽयं हृद्यः गृह्यतामित्यादिगुणाभिधानैः ॥ २३३ ॥

(८) **गोविन्दराजः। हर्षयेद्ब्राह्मणान् हृष्टो भोजयेच्चाशनं शनैः। अन्नाद्येनासकृच्चैनान् गुणैश्च परिबोधयेत्।** हृष्टो भूत्वा तैस्तैः प्रियवचनादिभिः **ब्राह्मणान्** तोषयेत् अन्नं चात्वरया **भोजयेत्** पायसादिना घृतपूरादिभिः एतान् ब्राह्मणान् इदं गृह्यतामित्येवं पुनःपुनः प्रबोधयेत् ॥ २३३ ॥

**व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥**
**कुतपं चासनं दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् २३४**

(१) **मेधातिथिः।** अनुकल्पपक्षे दौहित्रस्य यत्नेन भोज्यतोच्यते। **कुतपो**ऽजलोम-सूत्रैः कम्बलाकारः पटः। उदीच्येषु कम्बल इति प्रसिद्धः! तं आसनं दद्यात्। न दौहित्रपक्षे, किं तर्हि अन्यदापि। यतो वक्ष्यति "त्रीणि श्राद्धे पवित्राणीति", (३।२३५) श्राद्धमात्र विषयत्वात्। **तिलैश्च विकिरेन्महीम्।** तिलांश्च मह्यां भुवि निक्षिपेत् ॥ २३४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** व्रतस्थं ब्रह्मचारिण। एतेनानुकल्पमध्ये दौहित्रस्य श्रेष्ठ-तोक्ता। अधीत्यर्चौ। तेन गृहस्थसंभवे ब्रह्मचारिणाममुख्यता दर्शिता। **कुतपो** नेपालकम्बलः ॥ २३४ ॥

(३) **कुल्लूकः।** ब्रह्मचारिणमपि **दौहित्रं श्राद्धे प्रयत्नतो** भोजयेत्! **अपि**शब्दाद-ब्रह्मचारिणमपि आनुकल्पिकमध्यपठितस्यापि ब्रह्मचारिणो यत्नवचनाच्छ्रेष्ठत्वं कथयति। नेपालकबल चासने **दद्यात् दौहित्र**मन्तरेणापि तिलांश्च श्राद्धभूमौ **विकिरेत्** ॥ २३४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **व्रतस्थमिति। व्रतस्थं** ब्रह्मचारिणं **अपि**शब्दोऽन्यसंग्रहार्थः तेन 'स्वस्त्रीयर्त्विक्सामातृश्वशुरमातुलाः। त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवा' (१०।२२०) इति **याज्ञवल्क्येनोक्तेः। कुतपं** नेपालकम्बलं। **विकिरेत्** दिक्षु विक्षिपेत् ॥ २३४ ॥

(५) **नन्दनः।** कर्तव्यान्तरमाह **व्रतस्थमिति। व्रतस्थं** ब्रह्मचारिणम्। नायं त्रिणा-चिकेतादीनामिव दौहित्रस्य भोजने विधिः, किंतु श्राद्धाङ्गत्वेन कृतङ्गपात्रनियमप्रकरणे दौहित्रस्यानुकल्पत्ववचनादुत्तरयोर्विध्योः श्राद्धाङ्गत्वावगमाच्च। **कुतपं** दर्भम् ॥२३५–६॥

(६) **रामचन्द्रः। कुतपं** नेपालकम्बलमासनं दद्यात् **तिलैश्च महीं विकिरेत्** ॥ २३४ ॥

(७) **मणिरामः। व्रतस्थमपि** ब्रह्मचारिणमपि। अपिशब्दादब्रह्मचारिणमपि। **कुतुपं** नेपालकंबलम् ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

(८) **गोविन्दराजः। व्रतस्थमपि दौहित्रमिति।** ब्रह्मचारिणमपि सदा **दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन** भोजयेत्। दौहित्रस्य चानुकल्पकमध्यादाम्नाते सति पुनः इदं यत्नवचनं आनु-कल्पिकमध्येऽत्याज्यत्वं (जाड्यत्वं) ख्यापयति। सत्कृतं चारु आसनं दद्यात्। न दौहित्र एव दद्यात् अपितु सर्वब्राह्मणेषु, 'त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि' (२३५) इत्यादिवचनात्। तिलांश्च भूमौ प्रक्षिपेत् ॥ २३४ ॥

**त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥**
**त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ २३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः। पवित्राणि** पावनानि साधुत्वसंपादकानि। आद्यः श्लोकार्धोऽनु-वादः। उत्तरस्तु विधेयार्थः। **शौचमशुचिसंसर्गपरिहारः।** प्रमादाद्वा जातस्याशुचित्वस्य मृद्वार्यादिना यथाशास्त्रं शुद्धिः। **अत्वरां** विश्रब्धं भोजनाद्यनुष्ठानम् ॥ २३५ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। उक्तस्य प्रपञ्चः त्रीणीति। प्रशंसन्ति अङ्गतया प्रशस्तानीति वदन्ति शौचं शुचित्वं कर्तृभोक्तृद्रव्याणाम् ॥ २३५ ॥

(३) कुल्लूकः। पूर्वोक्तान्येव त्रीणि दौहित्रादीनि श्राद्धे पवित्राणीति ज्ञाप्यन्ते त्रीणि च शौचादीनि प्रशंसन्ति ॥ २३५ ॥

(४) राघवानन्दः। तत्रैव प्रशस्तान्याह त्रीणीति। अत्र श्राद्धे अत्वरा विशेषतः कर्तुम् ॥ २३५ ॥

(६) रामचन्द्रः। कुतुपः कुतुपकालो वा। दौहित्रः खड्गपात्रः दौहित्रो वा। दौहित्रमिति पाठः। दौहित्रं तोषयेत् त्रीण्यत्र श्राद्धे प्रशंसन्ति। शौचं मृद्वारिणा। अक्रोधनं। अत्वरामशीघ्रं त्वराराहित्यमित्यर्थः ॥ २३५ ॥

(७) गोविन्दराजः। यस्मात् त्रीणीति। दौहित्रादीनि त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि त्रीणि चैव वस्तूनि शौचाक्रोधविश्रंभाख्यानि श्राद्धे अतिशयेनेच्छन्ति ॥ २३५ ॥

**अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः।**
**न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥ २३६ ॥**

(१) मेधातिथिः। उष्णमेवा'त्युष्णं' अतिगतमुष्णमिति। प्रपतितपर्णः प्रपर्ण इति यथा। 'सर्व'मन्नं गुणाश्च। यस्योष्णस्य भोजनमुचितं तत्रैवेदमुष्णताविधानं, न तु दध्योदनादेः, यत्तदुष्णं अप्रीतिकरं व्याधिजनकं च तत्र 'हर्षयेद्ब्राह्मणानिति' विरुध्येत। उष्णभोजनविधानाच्च न सकृत्सर्वमन्नं परिवेष्टव्यम्। तदा हि बहुभोजिनां शीतं भवेदन्नम्। तस्माद्भुक्ते पुनर्दद्यात्। न च भुञ्जानेभ्य उच्छिष्टत्वात्। दानमयुक्तमिति वाच्यम्। भोजनविधिरेवंरूप एव। आतृप्तेर्भोजयितुर्व्यापारः। न ह्यत्रौदनादि प्रतिग्राह्यतया संबद्ध्यते। अत एव न तत्र प्रतिग्रहमन्त्र ओदनादिषु प्रयुज्यते।

वाग्यताः वाक् यता नियमिता यैः। छान्दसः परनिपातः। वाचा वा यताः। 'साधनं कृतेति' समासः कर्तृवचनश्च तदा। 'यत'शब्दः व्यापारनिषेधो 'नियमनं', वाचश्च व्यापारः शब्दोच्चारणं, तत्प्रतिषेधः क्रियते। व्यक्ताव्यक्तशब्दोच्चारणं न कर्तव्यम्। हविषो गुणा न च वक्तव्याः। 'इष्टैः' राद्धिर्भुञ्जानैर्दात्रे न विवक्षितमिति वक्तव्यमिति स्मरन्ति। "ननु वाङ्नियमादेवैतत्सिद्धम्"। सत्यम्–अभिनयादिनाऽपि न कर्तव्यम्। ब्रुविः प्रतिपादने वर्तते। ब्रूयुरिति न शब्दोच्चारणमेव ॥ २३६ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। अत्युष्णमभिमतोष्णं हविषो गुणान् मिष्टत्वादीन् दात्रा पृष्टा अपि ॥ २३६ ॥

(३) कुल्लूकः। उष्णमेवात्युष्णं यस्योष्णस्यान्नादेर्भोजनमुचितं तदुष्णं दद्यात् न तु फलाद्यपि। अत एव शङ्खः "उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत्। अन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्यश्च पण्डितः"॥ संयतवाचश्च ब्राह्मणा अश्नीयुः। किमिदं स्वाद्वस्वादु वेति दात्राऽन्नादिगुणान् पृष्टा वक्त्राद्यभिनयेनापि न ब्रूयुः, वाग्यतस्यात्रैव विधानात् ॥ २३६ ॥

(४) राघवानन्दः। किन्न अत्युष्णमिति। सर्वमन्नमुपकरणं चेति न ब्रूयुः। अभिनयेनापि न ज्ञापयेयुः। वाग्यता इति मौनस्य प्राप्तत्वात्॥ २३६॥

(६) रामचन्द्रः। अत्युष्णं कोष्णं सर्वमन्नं स्यात्। वाग्यताः भुञ्जीरन् दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् हविष्यान्नस्य गुणान् द्विजातयो न ब्रूयुः॥ २३६॥

(७) मणिरामः। अत्युष्णं उष्णमेवात्युष्णम्। वाग्यताः मौनाः॥ २३६–३९॥

(८) अत्युष्णमिति। 'उष्णमन्नं द्विजाग्र्येभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत्। अन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकाद्दध्न एव च॥' इति शङ्खस्मरणात् फलादिव्यतिरेकेण सर्वमुष्णं दद्यात्। संयतवाचश्च ब्राह्मणा अश्नीयुः। दात्रा च स्वाद्वस्वादु वेत्येवं अन्नगुणान् पृष्टाः न कथयेयुः अभिनयेनापि। वाङ्नियमस्योक्तत्वात् (वाग्निप्रशस्योक्तत्वात्)॥२३६॥

**यावदूष्मा भवत्यन्ने यावदश्नन्ति वाग्यताः॥**
**पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ २३७॥**

(१) मेधातिथिः। पूर्वस्य विधेरर्थवादोऽयम्। ऊष्मा औष्ण्यम्॥ २३७॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। अस्य प्रपंचः यावदुष्णेति। यावदुष्णमन्नमित्यर्थः॥ २३७॥

(३) कुल्लूकः। यावदन्ने उष्णता भवति यावच्च मौनिनो भुञ्जते यावच्च हविर्गुणा नोच्यन्ते तावत्पितरोऽश्नन्तीति पूर्वोक्तस्यैवार्थस्य प्रशंसा॥ २३७॥

(४) राघवानन्दः। उत्कृष्टोत्कृष्टहविर्गुणानभिधा(या)नयोरर्थवादमाह यावदिति। नोक्ताः श्राद्धं भुञ्जानैः॥ २३७॥

(६) रामचन्द्रः। अन्ने यावदूष्मा भवति यावद्वाग्यता अश्नन्ति तावत्पितरोऽश्नन्ति यावत् हविर्गुणा नोक्ताः॥ २३७॥

(८) गोविन्दराजः। यावदूष्मा भवत्यन्न इति। यावदन्ने औष्ण्यं भवति विप्रा मौनेनाश्नन्ति हविर्गुणांश्च नाभिदधति तावत्पितरस्तदन्नं ब्राह्मणमुखेन भुञ्जते॥ २३७॥

**यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः॥**
**सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥२३८॥**

(१) मेधातिथिः। वेष्टितमुष्णीषादिना। उदीच्या हि शाटकैः शिरो वेष्टयन्ति। ये तु व्याचक्षते 'चूडाकारैरपि केशैर्वेष्टितशिरा भवतीति' न ते युक्तिवादिनः। केशास्ते वेष्टयन्ते, न शिरः। न च केशा एव शिरः। शिरःस्था हि ते। सूत्रादेस्तु न निषेधः। न हि तत्र वेष्टनव्यवहारो लोके। दक्षिणाभिमुखस्य दोषवचनात् स्वल्पे प्रदेशे दक्षिणेतरदिगभिमुखस्यापि भोजनमनुजानाति। अन्यथा उदङ्मुखानां विधानात् कुतो दक्षिणस्याः प्राप्तिः। उपानहौ चर्ममयं पादत्राणम्। अन्ये तु चर्मपादुके उपानहाविति व्याचक्षते। रक्षांसि भुञ्जते न पितर इति निन्दा॥ २३८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वेष्टितशिराः** सोष्णीषाः ।। २३८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** वस्त्रादि**वेष्टितशिरा यदन्नं भुङ्क्ते** तथा **दक्षिणामुखः** सपादुकश्च तद्राक्षसा **भुञ्जते।** न पितरस्तस्मादेवंरूपं न कर्तव्यम् ।। २३८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** अथेदानीं भोजनकाले वर्ज्यं प्रदर्शयंस्तत्करणे दोषमाह **यदिति। वेष्टितशिराः** वस्त्रादिना **उपानत्काष्ठ**पादुका यस्य **दक्षिणामुख** इति स्वनियमवशात् यद्भुङ्क्ते तादृशो न पात्रमिति भावः ।। २३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** द्वाभ्यामाह **यद्वेष्टितशिरा इति। वेष्टितशिराः** चूडाकारैः केशैर्वेष्टितशिरा भवति। चर्मपादुके उपानहादिसामीप्ये निषिद्धम् ।। २३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः। यदिति।** उष्णीषादिना **वेष्टितशिराः** यदन्नं ब्राह्मणो **भुङ्क्ते** तथा **दक्षिणामुखः सोपानत्क**पादश्च तदन्नं **रक्षांसि** अश्नन्ति, न पितरः। तस्मादेतत् परिहरणीयम् ।। २३८ ।।

**चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ।।**
**रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ।।२३९।।**

(१) **मेधातिथिः। वराहः** शूकरः। स च ग्राम्यः। स्वसन्निधानतो नेक्षेरन्निति यद्यपि श्रुतम् तथापि तत्प्रदेशसन्निधिमेव शिष्टा नानुमन्यन्ते। तथा च 'घ्राणेन शूकर' इत्यादि क्रियान्तरमर्थवादेन श्रूयते। न चानीक्षमाणस्य घ्राणं संभवति। सन्निहितानां तु स्वरूपानुवादोऽयम्। सूकरो विजिघ्रति। कुक्कुटः पक्षानुद्धुनोति। तस्मात्परिश्रिते दद्यादिति विधिः। प्रयोजनमेतद्दोषाभावेऽपरिश्रितेऽपि दद्यात्। **षण्ढो** नपुंसकः ।।२३९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वराहो** ग्राम्यः, **षण्ढः** क्लीबः ।। २३९ ।।

(३) **कुल्लूकः।** चाण्डालग्राम्यसूकरकुक्कुटकुक्कुरोदक्यानपुंसका यथाब्राह्मणान्भोजनकाले **न** पश्येयुस्तथा **कार्यम्** ।। २३९ ।।

(४) **राघवानन्दः।** श्राद्धभोजिनं प्रति चण्डालादिदर्शनं निषेधति **चण्डालश्चेति। वराहः** सूकरः। **रजस्वला** रजो रक्तं योनिमिश्रितं तद्वती। **षण्ढः** नपुंसकः। **अश्नतो** भुञ्जानान् ।। २३९ ।।

(६) **रामचन्द्रः। अश्नतो** द्विजान् **चाण्डालादयो नेक्षेरन्**पश्येयुः ।। २३९ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** तथा च कार्यं यथा **चण्डालश्च वराहश्च कुक्कुट इति।** चण्डालवराहग्रामसूकरकुक्कुटश्चोदक्यानपुंसकानि द्विजभोजनकाले ततोऽपसारयेत् ।। २३९ ।।

**होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ।।**
**दैवे हविषि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ।। २४० ।।**

(१) **मेधातिथिः। होमे** अग्निहोत्रादौ शान्त्यादिहोमे वा। **प्रदाने** गोहिरण्यादिद्रव्यविषये। अभ्युदयार्थे। **भोज्ये** ब्राह्मणा यत्र धर्माय भोज्यन्ते। **दैवे हविषि** दर्शपौर्णमासादौ। **पित्र्ये** श्राद्धे। **यदभिवीक्ष्यते** क्रियमाणं कर्म। **तद्गच्छत्ययथातथम्**। यदर्थं क्रियते तद्विपरीतं भावयति। यद्यपि श्राद्धप्रकरणं तथापि वाक्यादन्यत्रापि होमादावयं प्रतिषेधः ॥ २४० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रदाने** सुवर्णादिदाने। **दैवे हविषि पित्र्ये** च हविषि। **यदभिवीक्ष्यते** अयथातथं येभ्यो दत्तं तेभ्योऽन्यत्र गच्छति ॥ २४० ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात् **होमे**ऽग्निहोत्रादौ **प्रदाने** गोहिरण्यादौ **भोज्ये** स्वाभ्युदयार्थब्राह्मणभोजने **दैवे हविषि** दर्शपौर्णमासादौ **पित्र्ये** श्राद्धादौ **यदेभिर्वीक्ष्यते** क्रियमाणं कर्म तद्यदर्थं क्रियते तन्न साधयति ॥ २४० ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव प्रासङ्गिकं क्षिपन्नर्थवादमाह **होम** इति। **प्रदाने** ब्राह्मणोद्देश्यकान्नदाने **भोज्ये** स्वयंकृते **एभिश्**चण्डालादिषड्भिः। **हविषि दैवे पित्र्ये** श्राद्धादौ यथा दत्तं तदनुरूपं फलतीति यथातथं तद्भिन्नम**यथातथं** विफलम् ॥ २४० ॥

(५) **नन्दनः। अयथातथं** व्यर्थम् ॥ २४० ॥

(६) **रामचन्द्रः। होमे** शान्त्यादिहोमे। गोहिरण्यादि**प्रदाने भोज्ये** अभ्युदयार्थभोजने **होमं** दानं भोज्यं **यदेभिः** चण्डालादिभि**र्वीक्ष्यते। दैवे** वैश्वदेवे **हविषि** दर्शपूर्णमासादौ **पित्र्ये** कर्मणि वा अयथातथा गच्छति वृथा गच्छतीत्यर्थः ॥ २४० ॥

(७) **मणिरामः। प्रदाने** गोहिरण्यादौ **अयथातथं** यदर्थं क्रियते तन्न करोति ॥ २४० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यस्मात्-**होम इति**। अग्निहोत्रादि **होमे दाने** धर्मार्थं ब्राह्मणभोजने हव्यकव्ययोश्च यत्कर्म चण्डालादिभिरवेक्ष्यते यत् यदर्थं क्रियते तन्न साधयति ॥ २४० ॥

**घ्राणेन शूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः ॥**
**श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः ॥२४१॥**

(१) **मेधातिथिः। पक्षकृतेन वायुना कुक्कुटो हन्ति**। व्याख्यातमेतत्। तावति देशे निवारणीयमेषां संनिधानं यावति स्थिताः पश्यन्ति। **अवरवर्णज**श्चाण्डालः प्रकृतत्वात्। स्पर्शादयश्च प्रकृतक्रियापराः, न विवक्षितस्वरूपा इति व्याख्यातम्। अतोऽवाद्यमेतत्–"चाण्डालस्य सामान्यतः स्पर्शप्रतिषेधादसत्यां प्राप्तौ प्रतिषेधानर्थक्यम्। अतः शूद्रोऽवरवर्णजः तस्य च द्विजातिश्राद्धस्पर्शनिषेधो नात्मीये इति।" विवक्षितेऽपि–नान्नपानादिस्पर्शदोषोऽयमुच्यते,। किं तर्हि? यो देशः परिगृहीतो नदीपुलिनादिरपरिश्रितस्तस्य स्पर्शः। तस्य हि वाय्वादित्यादिना शुद्धिरुक्ता। अतः सत्यां प्राप्तौ युक्तः प्रतिषेधः ॥ २४१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। घ्राणेन** तदन्नगन्धोपलब्ध्या। **पक्षवातेन** तद्देशमुक्तेन। **दृष्टिनिपातेन** कर्तृद्विजानां वा शूद्रस्पर्शेन अपक्वानामपि श्राद्धद्रव्याणाम्। **अवरवर्णजः** शूद्रः ॥२४१॥

(३) **कुल्लूकः।** **सूकरस्तदन्नादेर्गन्धं घ्रात्वा कर्म निष्फलं करोति। तस्मादन्नघ्राण-योग्यदेशान्निरसनीयः। कुक्कुटः पक्षवातेन,** सोऽपि पक्षपवनयोग्यदेशादपगमनीयः। **श्वा** दर्शनेन शुनोऽन्नादिदर्शनं निषिद्धमपि दोषभूयस्त्वज्ञापनार्थं पुनरभिहितम्। अथवा **दृष्टिनिपाते-नेति** श्राद्धकर्तृभोक्तॄणां दृष्टिनिपातविषयत्वेन **अवरवर्णः** शूद्रस्तस्माज्जातोऽवरवर्णजः शूद्र एव असात्रन्नादिस्पर्शेन द्विजातिश्राद्धं निष्फलयति।। २४१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** को वा केन किं फलं विफलयतीत्याकांक्षायामाह **घ्राणेति।** **घ्राणेनेति** त्रयं देशलक्षक, तेन तावत्तद्देशात्तानपसारयेत्। **अवरवर्णजश्चण्डालः।** ब्राह्मण्याम-वरवर्णात् शूद्रात् जातः पूर्वोक्तपरिशेषाच्च ।। २४१ ।।

(५) **नन्दनः। अवरवर्णः** शूद्रः। तेन ब्राह्मण्यां जात इत्यवरवर्णजश्चण्डालः ।।२४१।।

(६) **रामचन्द्रः।** श्राद्धदूषकान्याह **घ्राणेनेति द्वाभ्याम्।** शूकरः हव्यं कव्यं च घ्राणेन हन्ति नाशयति। **अवरवर्णजः** शूद्रः **स्पर्शेन** दूषयति। द्विजातिश्राद्धविषये ।। २४१ ।।

(७) **मणिरामः।** घ्राणेन अन्नादेर्गंधं घ्रात्वा कर्म निष्फलं करोति। तस्माद्गंधा-कर्षणयोग्यदेशात्सूकरो निरसनीयः। एवमग्रेऽपि ।। २४१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। घ्राणेनेति। सूकरस्त**दन्नादि घ्रात्वा तत्कर्म निष्फलयति। **कुक्कुटः पक्षवातेन** वायुना, **श्वापि** अक्षिनिरीक्षणेन, अवरवर्णेन शूद्रेण ब्राह्मण्यां जातः **अवरवर्णजः** चण्डालः। नदीतीरादिश्राद्धकृत्स्पर्शनेन तत्र वायुजशुचित्वाशङ्कायामिदम्। न दातुः न चान्नादिस्पर्शविषयं येन चण्डालस्य सामान्यतः स्पर्शनिषेधेनैव सिद्धं अन्नवचनमनर्थकं स्यात्। इत्येवमानर्थक्याशङ्कायां यच्छूद्रस्पर्शनिषेधार्थत्वमस्याहुः – तदसत्; उक्तनीत्याऽऽर्थवत्त्वात्। अवरजशब्देन च शूद्रस्यानभिधानात्। सूकरादीनां च स्वभावानुवादोऽयं प्रकृत(वि)शेषत-योच्यते नत्वेतत्क्रियाव्यतिरेकेण दुष्टमिति ।। २४१ ।।

## खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत् ।।
## हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ।। २४२ ।।

(१) **मेधातिथिः। प्रेष्यो** भृतकः। अपिशब्दादन्योऽपि यदृच्छया संनिहितो बान्धवा-दिरपनेयः, तस्मात्प्रदेशादपसारयेत्। **खंजो** गतिविकलः अजङ्घादि। **हीनातिरिक्तगात्रः षण्ढः** कुणिखण्डीकः श्लीपद्यादिः ।। २४२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** पूर्वश्लोके च **श्ववराहकुक्कुटानां** दृष्टिपातादिभिरपि दूषकत्वमुक्तम्। प्रेष्योऽपि श्राद्धार्थप्रेषणकार्यपि। **हीनातिरिक्तगात्रश्चक्षुः**पादाभ्यामन्य-त्रापि ।। २४२ ।।

(३) **कुल्लूकः।** यदि गतिविकलः **काणो** वा **दातुर्दासः** शूद्रस्तस्यैव प्रेष्यत्वविधानात्, अपिशब्दादन्योऽपि शूद्रो न्यूनाधिकाङ्गुल्यादिर्वा स्यात्तदा **तमपि** ततः श्राद्धदेशाद-पसारयेत् ।। २४२ ।।

(४) राघवानन्दः। किंच खञ्ज इति। प्रेष्यो विप्रोऽपि खञ्जादिपञ्चानां रजस्वलाषण्ढयोश्च स्पर्शदृष्टिसाधारणो दोषोऽतः श्राद्धस्थलादङ्गहीनादीन्निःसारयेदिति भावः। अपिशब्दादन्योऽपि शूद्रः ।। २४२ ।।

(५) नन्दनः। खञ्जो विकलपादः। दातुः श्राद्धकर्तुः। हीनगात्रो वामनः अतिरिक्तगात्रोऽत्यन्तदीर्घगात्रः। अवयवो वा गात्रम्। ततः श्राद्धक्रियास्थानात् ।। २४२ ।।

(६) रामचन्द्रः। दातुः प्रेष्यो वा हीनगात्रः अतिरिक्तगात्रः गात्राधिको वा तमपि पुरुषं ततः श्राद्धादपनयेत् दूरीकुर्यादित्यर्थः। खञ्जतीति खञ्जः। काणो नेत्रविकलः ।।२४२।।

(७) मणिरामः। अपनयेत् श्राद्धदेशाद् दूरीकुर्यात् ।। २४२ ।।

(८) गोविन्दराजः। खञ्ज इति। खञ्जः पादविकलः, काणः एकेक्षणविकलः, दातुर्वा दासः शूद्रस्यैव प्रेष्यत्वात्। अपिशब्दादन्योऽपि शूद्रो, यो वा कुनखिषण्ढकादिः तमपि ततः प्रदेशादप(प्रोत्सा)सारयेत् ।। २४२ ।।

**ब्राह्मणं भिक्षुकं वाऽपि भोजनार्थमुपस्थितम्।**
**ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ।।२४३।।**

(१) मेधातिथिः। अतिथित्वेनागतं ब्राह्मणं भिक्षुकं भिक्षार्थिनं ब्राह्मणमपि भोजनप्रवृत्तैर्ब्राह्मणैरनुज्ञातः शक्त्या पूजयेत्। भोजनेन भिक्षादानेन वा युक्तार्थतयाऽर्चयेत्। यतः स पाकस्तदहस्तदर्थ एव ।। २४३ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। ब्राह्मणं गृहिणं। भिक्षुकं यतिं व्रतिनं वा। अन्नार्थमुपस्थितम् ।। २४३ ।।

(३) कुल्लूकः। ब्राह्मणमतिथिरूपं अन्यं वा भक्षणशीलं भोजनार्थं तत्कालोपस्थितं श्राद्धपात्रब्राह्मणैरनुज्ञातो यथाशक्त्यन्नभोजनेन भिक्षादानेन चार्हयेत् ।। २४३ ।।

(४) राघवानन्दः। प्रासङ्गिकमाह ब्राह्मणमिति। भिक्षुकं संन्यासिनं। ब्राह्मणैः श्राद्धनिमन्त्रितैः ।। २४३ ।।

(५) नन्दनः। ब्राह्मणैः श्राद्धभोक्तृभिः ।। २४३ ।।

(६) रामचन्द्रः। श्राद्धकाले ब्राह्मणं वा गृहस्थं वा भिक्षुकं वा भोजनार्थमुपस्थितं तैः निमन्त्रितैर्द्विजैरनुज्ञातः सन् शक्तितः पूजयेत् भोजयेत् ।। २४३ ।।

(७) मणिरामः। ब्राह्मणैः श्राद्धीयब्राह्मणैः ।। २४३ ।।

(८) गोविन्दराजः। ब्राह्मणं भिक्षुकं वापीति। ब्राह्मणं अतिथिरूपं अन्यं वा भिक्षुकं भोजनार्थं तत्कालमागतं श्राद्धब्राह्मणैरनुज्ञातो दाता यथाशक्त्या अन्नदानेन पूजयेत् ।।२४३ ।।

**सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।।**
**समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन् भुवि ।। २४४ ।।**

(१) मेधातिथिः। वर्णशब्दः प्रकारे द्रष्टव्यः। सर्वप्रकारैर्व्यञ्जनैरुपेतमन्नाद्यं सन्नीय एकीकृत्य वारिणा आप्लाव्य भुक्तवतां तृप्तानां 'तृप्ताः स्म' इति वचनानन्तरं अग्रतः समुत्सृजेत्

विकिरेत्; नैकस्मिन्नेव देशे । किं तर्हि ? विशीर्णम् ! भुवि । न पात्रेषु । भूमावपि न शुद्धायां, किं तर्हि ? वक्ष्यति "दर्भेषु विकिर" इति । "सकृत्त्रिर्वा विकिरं कुर्यात्" इति शङ्खः ।।२४४।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । सार्ववर्णिकं** सर्वव्यञ्जनसहितं । वर्णो व्यञ्जनं । **अन्नमोदनमाद्यं** फलादि **सन्नीयैकीकृत्य विकिरन्विक्षिप्तं** कुर्वन् **समुत्सृजेत्** भुव्यास्तीर्णकुशायां 'दर्भेषु विकिरश्च यः' इत्युत्तरत्र दर्शनात् ।। २४४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । वर्णशब्दः प्रकारवाची । सर्वप्रकारकमन्नादिकं व्यञ्जनादिभिरेकीकृत्योदकेनाप्लावयित्वा कृतभोजनानां ब्राह्मणानां पुरतो भूमौ 'दर्भेषु विकिरश्च यः' (२४५) इति वक्ष्यमाणत्वाद्दर्भोपरि निक्षिपेत्त्यजेत् ।। २४४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । श्राद्धप्रोत्तराङ्गमाह **सार्ववर्णिक**मिति **त्रिभिः** । वर्णशब्दः प्रकारे । तेनाघ्यादिसर्वप्रकारमन्नमिति । **सन्नीय** व्यञ्जनादिभिरुपकृत्य **विकिरन्** बहुदेशव्यापि यथा स्यात्तथोत्सृजेत् ।। २४४ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ भुक्तवत्सु ब्राह्मणेषु कर्तव्यमाह **सार्वेति । संनीय** व्यञ्जनैः संयोज्य । **सार्ववर्णिकं** सर्ववर्णविहितम्, अन्नोत्सर्गस्येदं प्रयोजनमुक्तम् । सर्ववर्णहितार्थमुत्सृजेदित्यर्थः ।। २४४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **अन्नाद्यं** वस्तु **सार्ववर्णिकं** सर्वव्यञ्जनसहितं **वारिणा आप्लाव्य प्रोक्ष्य सन्नीय** मिश्रयित्वा **भुक्तवतामग्रतो** भुवि विकिरान्नं **समुत्सृजेत्** एकस्मिन्देशे विकिरान् भुवि न पात्रेषु ।। २४४ ।।

(७) **मणिरामः** । विकिरदानमाह **सार्वेति । वर्ण**शब्दः प्रकारवाची । सार्ववर्णिकं सर्वप्रकारमन्नादि । **सन्नीय** व्यंजनादिभिरेकीकृत्य **भुक्तवतां** । कृतभोजनानां ब्राह्मणानां । भूमौ दर्भोपरि । "दर्भेषु विकिरश्च यः" इति वक्ष्यमाणत्वात् ।। २४४ ।।

(८) **गोविन्दराजः । सार्ववर्णिकमिति** । सर्वप्रकार**मन्नाद्यं** एकीकृत्य उदकेन प्लावयित्वा **भुक्तवतां** ब्राह्मणानामग्रे विक्षिपन् भूमौ 'दर्भेषु विकिरश्च यः' इति वक्ष्यमाणलिङ्गात् दर्भेषु समुत्सृजेत् ।। २४४ ।।

**असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ।**
**उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ।। २४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । 'नास्य कार्योऽग्निसंस्कार' (५.६९) इत्यत्रिवर्षा **असंस्कृता**स्तेषां **प्रमीतानाम्** । पात्रस्थं **उच्छिष्टं** दर्भेषु **विकिरश्च** तेषां **भागधेयम्** । भाग एव भागधेयशब्देनोच्यते । न हि तेषां श्राद्धोपकारो नास्ति । **त्यागिनां** गुर्वादीनाम् । अथवा **कुलयोषितां** कुलस्त्रीणामदृष्टदोषाणां भार्याणां त्यक्तारः । स्वतन्त्रे तु **कुलयोषिता**मित्यस्मिन्ननूढाः कन्याः कुलयोषित इति व्याचक्षते । अत उच्छिष्टं तेभ्य उद्देष्टव्यम् । न च वाच्यम् "अपवित्रमुच्छिष्टं कथं भागधेयेन कल्पतामिति" वचनान्नास्त्यपवित्रता, सोमोच्छिष्टवत् ।।२४५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । त्यागिनां** प्राणत्यागिनामविधिना, **कुलयोषिता**मपत्यादि शून्यानां । **उच्छिष्टं** विप्रैर्भाण्डेषु त्यक्तं **भागधेयं** भागः ।। २४५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। 'नास्य कार्योऽग्निसंस्कार' इति निषेधात् संस्कारानर्हबालानां त । कुलस्त्रीणामदृष्टदोषाणां ये त्यक्तारस्तेषां पात्रस्थमुच्छिष्टं दर्भेषु च यो विकिरः स भागः स्यात्। अन्ये तु त्यागिनामिति गुर्वादित्यागिनां कुलयोषितामिति स्वातन्त्र्येण तु कुलयोषितामनूढकन्यानामिति व्याचक्षते। **गोविन्दराजस्तु** त्यागिनां **कुलयोषितामिति** सामान्योपक्रमादिदं विशेषाभिधानं संस्कृतं भक्षा इतिवत्ततः स्वकुलं त्यक्त्वागतानां कुलस्त्रीणामित्याह ॥ २४५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तदुद्देश्यानाह असंस्कृतेति। असंस्कृतप्रमीतानां मृतत्वेन संस्काररहितानां अत्रिवर्षाणां निरपराधं गुर्वादित्यागिनां। एतेनैषां संस्काराभावो ध्वनितः। **कुलयोषितां** अनूढकन्यकानां। कुलटानामिति **गोविन्दराजः**। **उच्छिष्टं** पात्रस्थं **भागधेयं** भागः। **विकिरो** विक्षिप्तान्नानि तान्यपि भागस्तेषामिति ॥ २४५ ॥

(५) **नन्दनः**। **असंस्कृतप्रमीतानाम**नुपनीतमृतानाम्। **त्यागिनां** संन्यासिनाम्। **भागधेयं** भागः। दर्भेषु विकिरेच्च यत्तद्**भागधेयं** स्यात्। यत एवं तस्मात्किञ्चिदुच्छेषयेद्भूषु विकिरेदिति ॥ २४५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। त्रिवर्षन्यूनानाम**संस्कृतादीनां उच्छिष्टं भागधेयं** स्यात् यः दर्भेषु विकिरः भागधेयं स्यात्। "अस्मिन्दग्धाश्च येऽन्नादा ये सदा याः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥" **त्यागिनां** अविधिना प्राणत्यागिनां स्वकुलत्यक्तानां वा यो विकिर एतादृशानां पुंसां **भागधेयं** स्यात्। च पुन**रुच्छिष्टं** भागधेयं स्यात्। **कुलयोषितां** पत्यादिरहितानां संबन्धे षष्ठी। दर्भेषु विकिरः भागधेयं स्यात् ॥ २४५ ॥

(७) **मणिरामः**। येषां विकिरेण तृप्तिस्तानाह **असंस्कृतेति**। **असंस्कृतप्रमीतानां** संस्काराऽनर्हबालानां। **कुलयोषितां त्यागिनां** विना दोषैः। तेषां पात्रस्थमुच्छिष्टदर्भेषु च **यो विकिरः** सः भागं स्यात् ॥ २४५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **असंस्कृतप्रमीतानामिति**। 'नास्य कार्योऽग्निसंस्कार' (५।६९) इत्यादिना निषिद्धाग्निकार्याणां मृतानां कुलस्त्रीणां च कुलं त्यक्त्वा गतानां पात्रस्थ**मुच्छिष्टं दर्भेषु यो विकिरः** स भागः स्यात्। **कुलयोषितामिति** विशेषाभिधानं संस्कृतं भैक्षमितिवत् ॥ २४५ ॥

## उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ॥
## दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ २४६ ॥

(१) **मेधातिथिः**। पात्रस्थस्य पूर्वेण प्रतिपत्तिरुक्ता। भूमौ निपतितस्योच्छिष्टस्य दासवर्गार्थताऽनेन कथ्यते। **अजिह्मो**ऽकुटिलः। **अशठः** अनलसः। तादृशस्य **दासवर्गस्य** स भागः। तस्मात्प्रभूतं दातव्यं, येन भूमौ भुञ्जानस्य पततीति ॥ २४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यत्तूच्छिष्टं तैरेव भूमौ त्यक्तं तत्राह **उच्छेषणमिति**। **जिह्मो**ऽलसः। **शठो** वक्रगतिः ॥ २४६ ॥

(३) **कुल्लूकः। उच्छिष्टं** यद्भूमिगतं तद्दाससमूहस्यावक्रस्यानलसस्याकुटिलस्य च **पित्र्ये** श्राद्धकर्मणि **भागधेयं** मन्वादयो वदन्ति ।। २४६ ।।

(४) **राघवानन्दः** ! भूमिगतस्य प्रतिपत्तिमाह **उच्छेषणमिति । उच्छेषणं** उच्छिष्टं **अजिह्मस्याकुटिलस्येति** विशेषणात् कुटिलस्य न किंचित् । **दासवर्गस्य** गर्भदासादिसमूहस्य **पित्र्ये** श्राद्धकर्मणि **प्रचक्षते** वदन्ति मन्वादयः ।। २४६ ।।

(५) **नन्दनः। उच्छेषणं** यदिति शेषः । **अजिह्मस्य**र्जोः । **अशठस्या**नृशंसस्य । यत एवं तस्मात्किञ्चिदुच्छिष्टं भूमिगतं कुर्यादिति ।। २४६ ।।

(६) **रामचन्द्रः । उच्छेषण**मुच्छिष्टं सारशेषं **भूमिगतम**न्नं **दासवर्गस्य । पित्र्ये** पितृकार्ये तं तु **भागधेयं प्रचक्षते** । तादृशस्य दासवर्गस्य **अजिह्मस्य** च **पुनरशठस्य** अनलसस्य ।। २४६ ।।

(७) **मणिरामः** । **पित्र्ये** श्राद्धकर्मणि **भूमिगतं यदुच्छेषणं** उच्छिष्टं **तत् अजिह्मस्य अशठस्य च दासवर्गस्य भागधेयं** मन्वादयः **प्रचक्षते** ।। २४६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **उच्छेषणमिति** । भूमिपतितं यदुच्छिष्टं तत् अकुटिलस्य अनलसस्य दासगणस्य भागधेयं भागं मन्वादयः प्राहुः ।। २४६ ।।

**आ सपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ।।**
**अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं च निर्वपेत् ।। २४७ ।।**

(१) **मेधातिथिः। संस्थितस्य द्विजातेरा सपिंडक्रियाकर्मं** प्रथममृतस्य आ सहपिण्डकरणाख्यं कर्म कर्तव्यम् । सहपिण्डदानं पूर्वाभ्यां न कर्तव्यम् । कथं तर्हि कर्तव्यम् ? **पिण्डमेकं च निर्वपेदिति** । चशब्द एवशब्दस्यार्थे, तस्मा एव प्रेतायैकं पिण्डं निर्वपेत् । ब्राह्मणो हि तस्मा एव भोजयितव्यः ।

स्मृत्यन्तरे अन्याऽपीतिकर्तव्यता वैशेषी स्मर्यते 'आवाहनाग्नौ करणरहितमिति' । अग्नौकरणशब्देन चात्र 'अग्नौ करिष्य' इत्यनुज्ञापनं प्रतिषिध्यते, न पुनर्होमः । तथाहि गृह्ये प्रेतश्राद्धमेवाधिकृत्य होम आम्नायते । यस्मिश्च काले कर्म कर्तव्यं यावन्तं च कालं तत् स्मृत्यन्तरादन्वेष्टव्यम् । 'आद्यमेकादशेऽहनि' । "मृताहेऽपि च कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैव श्राद्धं वै मासिकार्थवत् ।।" इति । तथा च काठके 'एवं सांवत्सरिकमिति' । एकादशग्रहणं चाशौचनिवृत्त्युपलक्षणार्थम् । यतः 'शुचिर्भूतः पितृभ्यो दद्यादिति' श्रूयते । संवत्सरान्ते हि सपिण्डीकरणं गृह्यकाराः स्मरन्ति । एतच्च श्राद्धमेकोद्दिष्टं तदङ्गभूतं च निर्वपणम् । यत्तु श्रौते–पितृभ्यो दद्यादिति वचनात् पितृपितामहाय प्रपितामहाय चेति— अकृते सपिण्डीकरणे नेह दानं युक्तम् । न हि स्मृत्या श्रुतिर्बाधितुं शक्यत इति ।। २४७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्रान्तरे एकोद्दिष्टश्राद्धे विशेषमाह **असपिण्डेति । आसपिण्डक्रियाकर्म** अकृतसपिण्डीकरणक्रियायां दशायां श्राद्धकर्म **द्विजातेः संस्थितस्या**नुष्ठेयं तत्र **चादैवं** वैश्वदेवहीनं विप्रमेकं **भोजयेत्** । इतराङ्गानुष्ठानक्रमः कालश्च स्मृत्यन्तरसिद्धो ग्राह्यः ।। २४७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मर्यादायामाङ् नाभिविधौ। सपिण्डीकरणश्राद्धपर्यन्तमचिरमृतस्य **द्विजातेश्च** वैश्वदेवब्राह्मणभोजनरहितं श्राद्धार्थमन्नं ब्राह्मणं **भोजयेदेकं च पिण्डं** दद्यात्। अस्य च श्राद्धस्यानुष्ठानं एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घैकपवित्रकम्। 'आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवदि'ति (१।२५१) **याज्ञवल्क्यादि**स्मृतिष्ववगन्तव्यम्॥ २४७॥

(४) **राघवानन्दः**। एकोद्दिष्टस्य पार्वणविकृतितया सर्वधर्मप्राप्तौ, **यथा गृहमेधीये** दर्शविकृतावपि आज्यभागौ यजेतेति तयोरेवानुष्ठानं नान्यस्येति वचनात् तन्न्यायेनाह **आ सपिण्डेति द्वाभ्यां**। सपिण्डीकरणपर्यन्तम् मर्यादायामाङ्। **संस्थितस्या**सन्नमृतस्य **एकं पिण्डं** एकब्राह्मणभोजनं दैवहीनं एकार्घ्यैकपवित्रं आवाहनाग्नौकरणरहितं स्मृत्यन्तरादवगन्तव्यम्। तच्च यावज्जीवम्। 'मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरं। प्रतिसंवत्सरे चैवमाद्यमेकादशेऽहनीति' स्मृतेः॥ २४७॥

(५) **नन्दनः**। असपिण्डीकृतपितृकस्य श्राद्धे विशेषमाह **आ सपिण्डेति**। **आ सपिण्डक्रियाकर्म** आ सपिण्डक्रियायामनुष्ठानं सपिण्डीकरणात्प्राक् कर्तव्यं श्राद्धकर्मेति यावत्। उच्यत इति शेषः॥ २४७॥

(६) **रामचन्द्रः**। **संस्थितस्य** मृतस्य **द्विजातेः असपिण्डक्रिया** सपिण्डकरणव्यतिरिक्तं कर्म। **अदैवं** वैश्वदेवरहितं श्राद्धं **भोजयेत्**, च पुनः **एकं पिण्डं निर्वपेत्**। एकोद्दिष्टमित्यर्थः॥ २४७॥

(७) **मणिरामः**। **आ सपिण्डक्रियाकर्म** सपिंडीकरणश्राद्धपर्यंतं। **संस्थितस्य**। अचिरमृतस्य। दैवहीनं श्राद्धं कुर्यात् **एकं च** पिंडं दद्यात्। तथा चैतदेकोद्दिष्टम्॥ २४७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **असपिण्डक्रियाकर्मेति**। अचिरमृतस्य द्विजातेरेकादशाहादौ असपिण्डक्रियाधिष्ठानं कर्तव्यम्। नामावारयावत् पूर्वाभ्यां सहपिण्डदानं कार्यम्। किं तर्हि? वैश्वदेवब्राह्मणभोजनरहितं श्राद्धार्थमन्नं ब्राह्मणं च भोजयेत्। एकं पिण्डं तस्मा एव दद्यात्। तस्मात् यावद्ब्राह्मणं भोजयेत्। साधितं चैतत् सविस्तरं **स्मृतिमञ्जर्यां ऋजुपञ्जिकायां च**। इह तु ग्रन्थभारभयान्न प्रतायते॥ २४७॥

**सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः॥**
**अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः॥ २४८॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदा तु सपिण्डीकरणं कृतं भवति तदा **अनयैवावृता** पार्वणश्राद्धविधिना त्रिभ्यो दद्यात्। **आवृदिति**कर्तव्यता। सपिण्डीकरणश्राद्धं दैवपूर्वं नियोजयेत्। पितॄनेवाशयेत् तत्र पुनः प्रेतन्न निर्दिशेत्॥ पितरश्चात्र प्राक्सपिण्डीकृताः पितृवर्गमनुप्रवेशिताः पितामहादय उच्यन्ते। तानाशयेत्। 'तत्र पुनः' शब्दस्तेष्वेव ब्राह्मणेषु प्रेत आवाहयितव्यः, तत्र हि सर्वैस्तैः सह संसर्गस्तस्य संसृजनाय तत्कर्म।

यदपि **विष्णुना** पठितं "प्रेताय ब्राह्मणान् भोजयेत् प्रेतपित्रे प्रेतपितामहाय च प्रेतप्रपितामहायेति", अत्रापि नैवं श्रूयते पृथक् भोजयेदिति। तत्र यथा बहुदैवत्यं हविर्बह्वीर्देवता उद्दिश्य

सकृदेकं हूयते, एवं ब्राह्मणोऽपि बहूनुद्दिश्य भोज्येतेति न किञ्चिदनुपपन्नम्। तथाहि सहवचनमनुगृहीतं भवति, पित्र्ये च न युग्मा भोजिता भवन्ति। यथा 'एकैकमुभयत्र वे' ति येषां विधिस्तन्मते एक: सर्वोद्देशेन भोज्यते। एवमेतद्दृष्टव्यम्।

"नन्वेवं सति पितृकृत्ये त्रीनिति सर्वदैव सहोद्देश: प्राप्नोति। एकैकस्मिन् ब्राह्मणे सर्व उद्देश्येरन् तत्रापि न पृथक्ग्रहणमस्ति"। कथं नास्ति ?। गृह्ये हि पठ्यते "न त्वेवैकम्। सर्वेषां पिण्डैर्व्याख्यातम्"। किंच 'प्रेतपात्रं पितृपात्रेषु सेचयेदर्घार्थ'मित्याह। तत्र कृतासनपात्राभावे प्रेतपात्रोदकस्य कुत: पात्रादर्घदानं? यदि तावत्संमीलितात्–तदयुक्तं; पितामहादेस्तत्कल्पितं, न पितु:। न चान्यार्थं कल्पितादित्यन्यार्थता युक्ता। अथ कृत्वाऽर्घदानं पश्चात्संनयनं कुर्यात्, तदा कृत्वाऽर्घदानं तदर्थं सन्नयनस्य स्वतंत्रार्घार्थं प्रसेचयेदिति विरुध्येद् वचनम्। उक्तेनात्र प्रकारेण न कश्चन विरोध:।

"अथ कोऽयं प्रेतो नाम ?। प्रपितामहाय पिण्ड: सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दीयते यतस्तेष्वेवानुप्रविष्ट:। तथा च स्मृति:–"य: सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक् पिण्डेन योजयेत्। विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते"।। इति।

पृथगेव हि तस्मै निरूप्यते; न त्वेक: सर्वेभ्य इति। मन्त्राश्च एतमेवार्थमभिवदन्ति 'ये समाना' इत्यादय:।

अत्रोच्यते। नायं प्रेतशब्दोऽयते: क्रियायोगेन वर्तते। रूढिरियं मृत: प्रेत 'इदानीं प्रेत' उच्यते। न हि दूरमध्वानं गत: प्रेत उच्यते। अस्ति च क्रियायोग: अविशेषेण पूर्वप्रेत इदानीं प्रेते च। तथा च श्रुति: "प्रयन्नेवास्माँल्लोकाद्ये समाना" इति अचिरमरणे प्रेतप्रयोगं दर्शयति 'प्रेतायान्नं दिनत्रयमिति' सद्य:संस्थितमधिकृत्य।

यत्तु 'पृथक्पिण्डेनेति' अस्यायमर्थ:–सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं न कर्तव्यम्! यदा यदा श्राद्धं तदा तदा त्रिभ्य:, मृताहनि पितृभ्यस्त्रिभ्य एव कर्तव्यम्। नैकस्मा एव पित्रे। तथा 'अनयैवावृता कार्यमिति' पार्वणश्राद्धेतिकर्तव्यता वाऽतिदिश्यते।

"ननु चानयैवेति प्रकृतपरामर्शा: प्रतीयन्ते, सन्निहितवचनत्वात्सर्वनाम्नां, सन्निहितश्चैकोद्दिष्टविधि:"। नैवम्; यदि हि कृतेऽपि सपिण्डीकरणे एकस्यैव क्रियेत, तदा भेदनिर्देश एव नोपपद्यते। तुशब्दश्च प्रकृतायामितिकर्तव्यतायां भेदं सूचयति, 'असपिण्डक्रियायामेष विधि:, सहपिण्डक्रियायां पुन: कृतायां नायं मन्तव्य' इति। अतो व्यवहिताऽपि बुद्धिस्थत्वात्पार्वणताऽतिदिश्यते। किंच कृते सपिण्डीकरणे यदैकोद्दिष्टं स्यात्कर्तव्यं, तदा त्रिभ्यो दानमिति अमावास्यायामिति चेत् को विशेष:?। तत्रापि सहपिण्डक्रियामित्येवमर्थ: किं नास्ति? न च मानवशास्त्रे कालान्तरं 'मृताहे प्रतिसंवत्सरं' चेत्यादि प्रतीतं येन तद्विषयमेतद् व्याख्यायते। अतोऽविशेषात्सर्वत्रैकोद्दिष्टानि प्राप्नुवन्ति। तत्र **महाभारतवचनं** विरुध्येत, तीर्थानि प्रकृत्योक्तं "श्राद्धेन तर्पयामास स वै पूर्वं पितामहान्" इति।

यदपि स्मृत्यन्तरं 'प्रतिसंवत्सरं चैव श्राद्धं वै मासिकार्थवत्'–तत्रापि मासिकशब्देनामावास्यायामेव श्राद्धमुच्यते; सर्वश्राद्धानां तस्य प्रकृतित्वात्। तत्र हि धर्मा: समाम्नाता:। न तु "प्रतिमासं तु वत्सरमिति" एतन्मासिकशब्देनाभिधातुं युक्तम्। न हि तस्य विशिष्टा:

केचिद्धर्माः समाम्नाता यैर्भिद्येत । एकोद्दिष्टं त्वाद्यमेकादशे, क्षत्रियस्य त्रयोदशे इत्याद्यत्रापि विद्यते । अतो नैकोद्दिष्टं मासिकशब्देनाभिधातुं युक्तम् । मासकालसम्बन्धाद्धि तन्मासिकमुच्यते । न च तस्य मासेनैव सम्बन्धः; कालान्तरेणापि सम्बन्धस्य दर्शितत्वात् । 'शुचिर्भूतः पितृभ्यो दद्यादिति' मासादूर्ध्वमपि करणान्मासे चाकरणान्नात्र 'मासिक'शब्देन तस्याभिधानम्, अमावास्याया उत्पत्तौ पौर्णमासिकशब्दश्रवणात् । 'पिण्डानां मासिकश्राद्धमिति' नियतत्वात्कालान्तरसंयोगस्याभावाद्धर्मवत्त्वाच्च युक्तस्तदीयधर्मातिदेशः ।

आमश्राद्धमपि पार्वणप्रकृतिकमेव । तत्प्रकृतित्वे च त्रिभ्यो दाने प्राप्ते एकोद्दिष्टता विधीयते ।

यदपि याज्ञवल्क्यवचनं (आचार० २५६) "मृताहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि" ।। तत्राप्येवमेतादृशीतिकर्तव्यता उच्यते । तत्रापि ह्यमावास्यायैव प्रकृतत्वेनावगतम् । अतो न मासकालयोगेऽपि एकोद्दिष्टे तदीयधर्मातिदेशोऽन्यत्र युक्तः । न हि भिक्षुको भिक्षुकाद्याचते । सोऽपि यतोऽन्यस्य विकारः ।

किंच एकमेव श्राद्धम् । तस्मान्न मासिकशब्दस्य सामान्यस्यैकोद्दिष्टविशेषविषयतायां प्रमाणमस्ति । याज्ञवल्क्येऽप्येवमिति । यद्यनन्तरावमर्शः तदा सपिण्डीकरणेतिकर्तव्यतातिदेशः प्राप्नोति । तदनन्तरं ह्येतच्छ्रुतम् । एतत्सपिण्डीकरणमिति (याज्ञ० आचार० २५४) पठित्वा'अर्वाक्सपिण्डीकरणा'दिति (याज्ञ० आ० २५५)', च ततोऽनन्तरमुक्तम् "मृताहनीत्यादि (याज्ञ० आ० २५६)" । तस्मात्सन्निधानमकारणीकृत्य धर्मवत्त्वेनामावास्यस्यैवमिति निर्देशः ।

मन्त्राश्चास्मत्पक्षमेव सुतरामवद्योतयन्ति । "संसृज्यध्वं पूर्वैः पितृभिः सहेति"–'पूर्वैः पितृभिः सह' वर्तमाना उच्यन्ते । 'संसृज्यध्वमिति' बहुवचनं पूजायाम् । तथा च **निरुक्तकारः** "एता (उ त्या) उषस इति । एतास्ता उषस इत्येकस्या एव पूजनार्थे बहुवचनमिति" ।

अथ "संसृज्यध्वमिति येषु पिण्डेषु निक्षिप्यन्ते त उच्यन्ते । यश्च निक्षिप्यते स बहुवचनेन पूर्ववत्पूर्वैभिः पितृभिरिति । एवं च पूर्वैभिरित्येवमेव बहुवचनं प्रायोगिकं भविष्यति । इतरथा संसृज्यध्वमिति निक्षिप्यमाणपिण्डाभिधाने उभयत्र बहुवचनमयथार्थं कल्प्यमिति" । तदेतदपि न किंचित् । यत एकैकेन पिण्डेन पिण्डांशः संसृज्यते । 'चतुर्थं पिण्डमुत्सृज्य त्रेधं कृत्वा पिण्डेषु निदध्यादिति' । अतो नैवात्र युगपदधिकरणवचनताऽस्ति येन बहुवचनमवकल्पेत ।

"एकैकाभिधानेन कुत आन्वयिकं संसृज्यध्वमिति बहुवचनं परोक्षवत्त्वाभिधानं न कल्प्यते ? । पूर्वैभिरिति निक्षिप्यमाणपिण्डवचनाच्च न एभिरिति निर्देशो युक्तः स्यात् ।" न चायं मन्त्रो विधायको येन तदर्थनिर्णये प्रयतामहे । अभिधायकोऽयम् । अभिधानगुणं च विनियोगतः । विनियोगश्च संसर्गः तञ्च प्रकाशयति । संख्याऽत्र न विनियुक्ता न प्रकाशाप्ता, संभवमात्रेणान्वीयते । तस्य च मन्त्रात्पूर्वं प्रतिपत्तिः ।

येऽप्याहुः–"चतुर्थशब्दः पूर्वतर उपपद्यते । पिता हि प्रथमः तदपेक्षया प्रपितामहः पूर्वश्चतुर्थ" इति । एतदपि न सम्यक् ; पूर्वेषां पिण्डान्निधाय चतुर्णां पूर्णश्चतुर्थः प्रेतपिण्ड एव भवति । पितृपक्रमं चेदं श्राद्धं न प्रेतोपक्रमम् । एवं ह्युच्यते "पितॄनेवाशयेत्पुनः प्रेतं न

निर्दिशेदिति"। यस्यायं प्रेताय प्रथमः पिण्डस्ततस्तत्पित्रे इत्यादिक्रमः, तस्यापि कुतोऽयं नियमः, य एवासौ चतुर्थस्तस्यैवेदं त्रैधं करणं पिण्डेषु निधानं विधीयते। एतावद्धि तद्वाक्यम्-चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत्त्रैधं कृत्वेति। तत्रानन्तर्यादुत्सृजतिना सम्बन्ध'श्चतुर्थं' 'पिण्ड' मित्यनयोः प्रतीयते। त्रैधं कृत्वेत्यत्र तु कस्येदं त्रैधं करणमित्यपेक्षायां सन्निहितः पिण्डः सम्बन्ध्यते। तावतैव निराकांक्षीकृते वाक्ये चतुर्थमित्यस्य सम्बन्धे न किञ्चित्प्रमाणमस्ति। तावतैव निराकांक्षीकृते वाक्ये चतुर्थमित्यस्य सम्बन्धे न किञ्चित्प्रमाणमस्ति। तत्र यस्य कस्य विभागे प्राप्ते स्मृत्यन्तरान्निर्णयः। "निरुप्य चतुरः पिण्डान्पिण्डदः प्रतिनामतः। ये समाना इति द्वाभ्यामाद्यं तु विभजेत्त्रिधा" इति ॥

आद्यत्वं दानाभिप्रायेण, न पुनरादिपुरुषसम्बन्धात्। तथाहि प्रपितामहादिः स्यात्पितामहात्पूर्वः, पितामहोऽपि पितुः पूर्व इत्यनवस्थानादप्रतिपत्तिः। दाने तु नियतक्रमतो व्यवस्थितमादित्वम्। एवं च चतुर्थमिति पदेन विशिष्टे पिण्डे क्रियात्रयेऽपि स्मृत्यन्तरवशाद्दानक्रमेणैवाद्यस्य विभागो युक्तः। अतो यदुक्तं काठके "पूर्वप्रेतस्येष्टो विभागः प्रतीयते" इति कासावस्येष्टता ?।

यच्चोक्तम्-"अत एव तस्मै अदानं यत एव दाऽसावन्तर्भावितः" तन्न किंचित्। वचनान्न दीयते-'न चतुर्थं पिण्डो गच्छतीति'। तथा 'त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते' इति। यत्स्वयं स्वकृतः पाठः 'पुनः प्रेतं न निर्दिशेदिति' व्याख्यातं च "अन्तर्भाविते पूर्वप्रेते पुनर्दानं निषेधति"-नैवायं पाठोऽस्ति प्रतिषेधार्थीयो 'न' पठ्यते, समुच्चयार्थीयश्चकारः पठ्यते। सत्यपि वा तत्र पाठे 'यः सपिण्डीकृत'मित्यत्र पृथक्पिण्डप्रतिषेधस्य या गतिरुक्ता सैवात्र वेदितव्या।

यानि तु वाक्यानि- "सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतः। एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पित्रोरन्यत्र पार्वणम् !" इत्यादीनि-यद्येतानि वाक्यानि सन्ति तदा किमामावास्याया नामघोषणिकया ? न चैतानि वाक्यानि शिष्टपरिगृहीतासु प्रसिद्धासु स्मृतिषु कासुचिदुपलभ्यन्ते।

तस्मान्न किञ्चिद्विशेषे लिङ्गमस्ति येन पूर्वप्रेतपिण्डान्निधीयत इति प्रतिपद्येमहि। तस्मात्समाचारो न त्याज्यः। अयमेव पक्षो युक्तियुक्त इति दर्शितः। तस्मान्मतभेदेनापच्छेदतः पूर्वप्रेतनिधानपक्षोपन्यासः केषांचित्। "असपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य च। अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं च निर्वपेत्।"

अत्र सपिण्डीकरणं मृते पितरि जीवति पितामहे पाक्षिकं ज्ञेयम्। यदा 'न जीवन्तमतिक्रम्य ददाती'त्येवं नाश्रीयते। यदा तु स एषाग्रता स्यादिति पक्षस्तदा पितामहमतिक्रम्य पूर्वैः संसर्जनीयः। एवं तु पुत्रस्यापि मृतस्य पित्रा विकल्पेनैव कर्तव्यमेवमनपत्यभार्यामरणे जीवन्मातृकस्यैष एव विधिः। "प्रमत्तानामितरे कुर्वीरंस्ताश्च तेषामिति"। **सुतै**रपत्यैरित्यर्थः। यद्यपि सुतग्रहणं तत्स्थानापन्नानामन्येषामपि ग्रहणं, यदि स्वशब्देन नास्ति निषेधः ॥ २४८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। धर्मतो** धर्मैरङ्गैः सह **अनयाऽऽवृता** पार्वणप्रयोगेण **सुतै**रौरसक्षेत्रजपुत्रिकापुत्रैः ॥ २४८ ॥

(३) **कुल्लूकः। अस्येति।** यस्येदमेकोद्दिष्टं विहितं तस्य **धर्मतः** स्वगृह्यादिविधिना सपिण्डीकरणश्राद्धे कृते **अनयैवावृता** उक्तामावास्याश्राद्धेतिकर्तव्यतया **पिण्डनिर्वपणं** पार्वण-विधिना श्राद्धं पुत्रैः सर्वत्र मृताहादौ कर्तव्यम्। नन्वनयैवावृता इत्यनेन प्रकृतमेकोद्दिष्टमेव हि किमिति न परामृश्यते ? । उच्यते। तर्हि सपिण्डीकरणात्पूर्वमेकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणे कृते पुनः अनयैवावृता इति भेदनिर्देशो न स्यात्, ततोऽमावास्येतिकर्तव्यतैव प्रतीयेत ।। २४८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तस्यैव विशेषमाह' **सहेति। धर्मतः** स्वगृह्यविधिना **सहपिण्ड-क्रियायां कृतायामिति।** सा तु गन्धोदकतिलैर्विमिश्रं कुर्यात् पात्रचतुष्टयं अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्। 'ये समाना' इति द्वाभ्यां। शेषं पूर्ववदाचरेत्। एतत् सपिण्डीकरणमिति **याज्ञवल्क्यः। अनयै**कोर्घ्य इत्यादिकया **आवृता** परिपाटया। तदुक्तम् 'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं पुनः। एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पित्रोरन्यत्र पार्वण'मिति।। पार्वणे तु पार्वणपरिपाटीति ।। २४८ ।।

(५) **नन्दनः। सहपिण्डक्रियायां** सपिण्डीकरणे । **आवृता** क्रियया। **अनयोक्तेन** मासि श्राद्धप्रयोगेणेत्यर्थः ।। २४८ ।।

(६) **रामचन्द्रः। सहपिण्डक्रियायां कृतायां** तु **अस्य** द्विजस्य **धर्मतः अनयैव** पार्वण-रूपया **आवृता** परिपाटया **सुतै**रौरसादिभिः **पिण्डनिर्वपणं** कार्यम् ।। २४८ ।।

(७) **मणिरामः।** अस्य यस्यैकोद्दिष्टं विहितं तस्य धर्मतः स्वगृह्यादिविधिना, सहपिंड-क्रियायां तु कृतायां सपिंडीकरणे कृते अनयैवावृता अमाश्राद्धेतिकर्तव्यतया ।। २४८ ।।

(८) **गोविन्दराजः। सहपिण्डक्रियायामिति। अस्ये**त्युपादानात् अनन्तरप्रकृतस्य एकोद्दिष्टक्रियासम्प्रदानभूतस्याचिरमृतस्य सपिण्डीकरणे शास्त्रव्यवस्थया कृते सति यथा **याज्ञवल्क्ये** (आचार. २५३) उक्तं—'गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम्। अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसिञ्चयेत्। ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्।' यथा **चोशनसा** उक्तम्—'सपिण्डीकरणं श्राद्धं कुर्यात् पार्वणवत्सदा ।। पृथक् च कल्पयेदन्यत् एकोद्दिष्टविधानतः' इति। तथा च **शातातपेनोक्तम्** 'सपिण्डीकरणं श्राद्धं दैवपूर्वं नियोजयेत्। पितॄनावाहयेत्तत्र पुनः प्रेतं च निर्दिशेत्।' इति।

तथा च **गृह्यपरिशिष्टे** उक्तम्—'दत्वा पिण्डान् पितृभ्यस्तु पश्चात् प्रेताय पार्श्वतः। तं तु पिण्डं त्रिधा कृत्वा आनुपूर्व्यर्थसन्ततम्। निदध्यात् त्रिषु पिण्डेषु एष संमार्जनो विधिः ।।' इति। प्रेतपात्रं च (न) सर्वं पितृपात्रेषु प्रसेक्तव्यम्। अपितु पृथक् प्रेतब्राह्मणोपदेशसामर्थ्यात् तदर्घार्थं तत्र किंचिद(नु)वशेषणीयम्। साधारणत्वात् अविभक्तभ्रातृधनोपयोगवत्' तस्मादर्घो देयः। एवं च यत् कैश्चित् सपिण्डीकरणे पञ्चब्राह्मणभोजनं प्रपितामहपितृ-संबन्ध्यर्घ्यपात्रं पिण्डत्रिधाधारणं चोक्तम्—तदसत्; उक्तवाक्यविरोधादेव **शास्त्रतः कृते सति अनयैवावृता** अमावास्यप्रक्रियया पुत्रैः प्रतिसंवत्सरं मृताहे कर्तव्यम्।

ननु सन्निहितपरामर्शकत्वात् सर्वनाम्नः 'अनयै'वेत्येकोद्दिष्टातिदेशो न्याय्यः। नैवम्; एवं भेदनिर्देशेन शास्त्रनिर्देशं न कुर्यात्। असपिण्डक्रियायामेष विधिः। सहपिण्डक्रियायां पुनः कृतायां अयमिति। तस्मादमावास्येतिकर्तव्यतानिर्देश एवं न्याय्यः। इति सपिण्डकरण-सांवत्सरिकेऽपि **स्मृतिमञ्जर्यां। ऋजुपञ्जिकायां** विस्तरतो निरूप्यते ।। २४८ ।।

**श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ।।**
**स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ।। २४९ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यद्यपि श्राद्धभुजो दोषग्रहणं तथापि कर्तुरयमुपदेशः । तेन तथा कर्तव्यं यथा न प्रयच्छति । ऋत्विङ्नियमवत् । **वृषलः** शूद्रः । **अवाक्शिरा** ऊर्ध्वपादः । प्रकृत एव सपिण्डीकरणम्मा विज्ञायीति श्राद्धग्रहणम् ।। २४९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** श्राद्धं भुक्त्वेत्यादिश्लोकद्वयं सर्व श्राद्धसङ्गतेर्निषेधविधिः । **उच्छिष्टं** पात्रस्थम् ।। २४९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** आश्रितशूद्राय उच्छिष्टदानप्रसक्तावयं निषेधः । **श्राद्धभोजनोच्छिष्टं** यः शूद्राय ददाति **स मूर्खः कालसूत्रं** नाम **नरकमधोमुखं** गच्छति ।। २४९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** श्राद्धभुज उत्तरकालीननियममाह **श्राद्धमिति । स** श्राद्धभोक्ता । **अवाक्शिरा** अधोमुखः ।। २४९ ।।

(५) **नन्दनः ।** अथ भुक्तवतां वर्जनीयं श्लोकद्वयेनाह ।। २४९–५० ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** यः **श्राद्धं भुक्त्वा वृषलाय** शूद्रायोच्छिष्टं प्रयच्छति **स कालसूत्रं** नरकम् **अवाक्शिरा** अधोमुखः **सन्याति** ।। २४९ ।।

(७) **मणिरामः ।** **वृषलाय** शूद्राय **कालसूत्रं** नाम नरकम् ।। २४९ ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** **श्राद्धमिति ।** श्राद्धभोजनो**च्छिष्टं** यः शूद्राय ददाति **स** मूर्खः **कालसूत्राख्यनरकमध्ये** अधोमुखो व्रजति । आश्रितसच्छूद्रत्वात् उच्छिष्टमन्नं दातव्यमिति प्राप्तेऽयं प्रतिषेधः ।। २४९ ।।

**श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ।**
**तस्याः पुरीषे तं मासं पितरस्तस्य शेरते ।। २५० ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** **वृषली** स्त्रीमात्रोपलक्षणार्थमेतदित्याहुः । निरुक्तं कुर्वन्ति— वृषस्यति चलयति भर्तारमिति वृषली । सा च ब्राह्मणी अन्या वा सर्वा निषिध्यते । तथा च स्मृत्यन्तरं "तदहर्ब्रह्मचारी स्यान्नियत" इति । तल्पशब्देन मैथुनसंयोगो भण्यते । न शयनारोहणप्रतिषेध एव । अहर्ग्रहणमहोरात्रलक्षणापरम् । रात्रावपि निषेधः स्यात् । **पुरीष इति** निन्दार्थवादो निवृत्त्यर्थः । **पितरस्तस्य** श्राद्धभुजः । अयमपि पूर्ववद्वचनीयः । इदं तु युक्तं यदुभयोर्नियम इति । नैमित्तिकोऽयं भोक्तुर्धर्मः श्राद्धभोजने निमित्ते विधीयते । प्रकरणाच्च कर्मार्थोऽपि ।। २५० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** **वृषलीतल्पं** शूद्रयाधिष्ठितां **शय्यां तदहस्तदहोरात्रे** ।। २५० ।।

(३) **कुल्लूकः ।** वृषलीशब्दोऽत्र स्त्रीपर इत्याहुः । निरुक्तं च कुर्वन्ति । वृषस्यन्ती चपलयति भर्तारमिति वृषली । ब्राह्मणस्य परिणीता ब्राह्मण्यपि वृषलीति । श्राद्धं भुक्त्वा तदहोरात्रे यः स्त्रीसंप्रयोगं करोति **तस्य पितरस्तस्याः पुरीषे मासं शेरत** इति निवृत्त्यर्था निन्दा ।। २५० ।।

(४) **राघवानन्दः।** वृषलीति पदं स्त्रीमात्रपरं वृषस्यन्ती या पतिं भर्तारमिति व्युत्पत्तेः। **तं मासमिति** कालकर्मासा(व)नमासाख्यं **तस्या** वृषल्याः **पुरीषे पितरः तस्य** श्राद्धभोक्तुरिति शेषः ।। २५० ।।

(६) **रामचन्द्रः। तस्याः। पुरीषे** च वृषल्याः पुरीषे। तं **मासं तस्य** श्राद्धभोक्तुः **पितरः शेरते** ।। २५० ।।

(७) **मणिरामः। वृषली**शब्दोऽत्र स्त्रीपरः।। वृषस्यंती चपलयति भर्तारिगिति वृषलीति निरुक्तेर्ब्राह्मण्यपि वृषली। 'वृषस्यंती च कामुकी'त्यमरः।। २५० ।।

(८) **गोविन्दराजः। श्राद्धभुगिति।** आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे (इति) भोजनात् प्राक् ब्रह्मचर्यमुक्तम्। अनेन तु तदुत्तरकालं तदहोरात्रमुच्यते। **वृषली** च व्याख्याता। श्राद्धं भुक्त्वा **यः तदहोरात्रं** स्त्रीसंयोगं भजते तस्य तद्विष्ठायां **मासं पितरः** अवतिष्ठन्ते इत्यतश्च इयानस्या धर्मयोगो भवति ।। २५० ।।

**पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ।।**
**आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ।।२५१।।**

(१) **मेधातिथिः।** आचमनिकमन्नपानं दत्वा प्रष्टव्याः, **'स्वदित'**मित्यनेन शब्देन। स्मृत्यन्तराच्चान्नं परिगृह्य प्रश्नोऽयं कर्तव्यः। भवति हि कस्यचिदयं स्वभावो यदसंनिहितमन्नं सत्यपि तदभिलाषे यन्त्रणया न मृगयते संनिहितं तु गृह्णाति। **तृप्तानाचामयेत्।** अन्ये तु "तृप्ताः स्थ' इत्यनेन शब्देन प्रष्टव्याः। ज्ञात्वा च तृप्तान् 'स्वदितमिति' अनेन शब्देन बृंहणीयाः। वक्ष्यति—"पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यमिति"। **आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति।** 'अभितः' उभयतः, इहैव स्वगृहे वा यथेष्टमास्यतामित्यर्थः ।। २५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पृष्ट्वा स्वदित**मित्याद्येकोद्दिष्टविषये विशेषाभिधानम्। **तृप्ताः थेति** स्मृत्यन्तरप्रसिद्धश्राद्धान्तरीयप्रश्नस्थाने स्वदितमिति प्रश्नः। विसर्जने चा**भिरम्यता**स्मति। अभित इति छन्दोऽनुरोधात् ।। २५१ ।।

(३) **कुल्लूकः। तृप्तान्** ब्राह्मणान् बुद्ध्वा **स्वदितमिति पृष्ट्वा** तेषामाचमनं कारयेत्। कृताचमनांश्च भो इति संबोध्या**भिरम्यतामिति** ब्रूयादभित इति पाठेऽभित उभयत इह वा स्वगृहे वाऽऽस्यतामित्यर्थः ।। २५१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** प्रकृतं श्राद्धसमापनाङ्गमाह **पृष्ट्वेति द्वाभ्यां। तृप्तान्** भूरिभोजनेन। **स्वदितमिति पृष्ट्वा वानुजानीया**दित्यन्वयः। तैरपि सुस्वदितमित्यभिधेयम्। **अभिरम्यतां** यत्र क्वापि सुखेनास्यतां भो ब्राह्मणाः पात्रभोजिनः इत्यनुजानीयादनुज्ञां दद्यात् ।। २५१ ।।

(५) **नन्दनः।** स्वदतेऽपि भवद्भ्यो भोज्यजातमिदमिति **पृष्ट्वा। अभितो रम्यता**मस्मिन्स्थान आस्यतां सुखमिति ।। २५१ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** तृप्ताः स्थ इति पृच्छति तृप्ताः स्म इति तं ब्रूयुः। **स्वदितमिति** पृच्छति सुस्वदितमिति ब्रूयुः। तत **आचामयेत्** आचान्तांस्ताननु**जानीयात्** अनुज्ञां दद्यात्। **अभिरम्यतां** स्वेच्छया। अभिरताः स्म इति ॥ २५१ ॥

(७) **मणिरामः। पृष्ट्वा स्वदित**मित्येवं। **तृप्तान्** ब्राह्मणान्। ज्ञात्वा स्वदितमिति पृष्ट्वा आचमनं कारयेत्। कृताचमनांश्च भो इति संबोध्य **अभिरम्यतामिति** ब्रूयात् ॥ २५१ ॥

(८) गोविन्दराजः। पृष्ट्वा स्वदितमित्येवमिति। तान् ब्राह्मणान् तृप्तान् 'बुद्ध्वा **स्वदितमित्येवं पृष्ट्वा** तत उपस्पर्शयेत्। कृताचमनांश्च इह वा स्वगृहे वाऽऽस्यतामित्येवमनुज्ञातव्याः ॥ २५१ ॥

**स्वधाऽस्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥**
**स्वधाकारः परा ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ २५२ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** भुक्तवद्भिर्गृहगमनाभ्यनुज्ञातैरनन्तरं **स्वधेति** वाच्यम्। **स्वधाकारः** स्वधाशब्दोच्चारणम्, प्रकृष्टा **आशीः।** पितृकार्येषु **सर्वेषु** पक्वान्नापक्वान्नश्राद्धेषु ॥ २५२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** तत्र **स्वधाऽस्त्विति** तैः प्रतिवक्तव्यम्। **स्वधाकारः** स्वधोच्चारणं **परा ह्याशीः** पितॄणामिष्टार्थोक्तिः। अत्र **सर्वेष्वि**त्यभिधानात् एतत्स्मृतिविहिते पार्वणेऽप्येतदेव तृप्तिप्रश्नादि कार्यमित्येके ॥ २५२ ॥

(३) **कुल्लूकः।** अनुज्ञानानन्तरं **ब्राह्मणाः** श्राद्धकर्तारं **स्वधाऽस्तु** इति **ब्रूयुः।** यस्मात्**सर्वेषु** श्राद्धतर्पणादि**पितृकर्मसु** स्वधाशब्दोच्चारणं प्रकृष्टा **आशीः** ॥ २५२ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **स्वधेति।** तं श्राद्धकर्तारं **ब्राह्मणाः स्वधेति ब्रूयुः।** किमिति स्वधेति ब्रूयुस्तत्राह **स्वधाकार इति।** स्वधोच्चारणं **प्रकृष्टा**ऽऽशीर्यतः ॥ २५२ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** ते **स्वधा** इति **ब्रूयुः** स्वधोच्यतां अस्तु स्वधा। **स्वधाकारः पितृकर्मसु परा ह्याशीः** ॥ २५२ ॥

(७) **मणिरामः। तदनन्तरं** अभिरम्यतामित्यनुज्ञानंतरं। **तं** श्राद्धकर्तारं ॥ २५२ ॥

(८) **गोविन्दराजः। स्वधेत्येवं वचनं ब्रूयुरिति।** अनुज्ञानन्तरं दातारं **स्वधेत्येवं ब्राह्मणा ब्रूयुः** यस्मात् सर्वेषु कृतान्नाकृतान्नश्राद्धोदकतर्पणादिषु पितृकर्मसु **स्वधाशब्दोच्चारणं प्रकृष्टा आशीः** ॥ २५२ ॥

**ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥**
**यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ २५३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** भुक्तमन्नं तेभ्यो निवेदयितव्यम्। प्रष्टव्यास्ते 'इदमस्तीति'। **यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातः।** अतोऽननुज्ञातेन नान्यत्र विनियोक्तव्यम् ॥ २५३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। ततो भुक्तवतामि**त्यादि **प्रकृत**पार्वणविषयम् ॥ २५३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** स्वधाशब्दोच्चारणानन्तरं कृतभोजनानां ब्राह्मणानां शेषमन्नमप्यस्तीत्यवशिष्टमन्नं निवेदयेत् तैर्ब्राह्मणैरिदमनेनान्नेन क्रियतामित्यनुज्ञातो **यथा** ते **ब्रूयुस्तथान्नशेष**विनियोगं कुर्यात् ।। २५३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तेषां चाज्ञा पालनीयेत्याह **तत इति। तैः** श्राद्धभोजिभिः। इष्टेभ्यो विनियुज्यतामित्यनुज्ञातः ।। २५३ ।।

(६) **रामचन्द्रः। ततः** तेषां भुक्तवतां**मन्नशेषं निवेदयेत्। तैर्द्विजैर्य**दनुज्ञातं **यथा** ब्रूयु**स्तथा** कुर्यात्। तद्यथा 'अन्नशेषं किं क्रियतां?' तदाज्ञा यथा 'इष्टैः सह भुज्यतां' इति ।।२५३।।

(७) **मणिरामः। ततः** स्वधाशब्दोच्चारणानंतरं। शेषमन्नमप्यस्ति, किं कर्तव्यमिति निवेदयेत्, ततो द्विजैः इदमेवान्नेन क्रियतामित्यनुज्ञाते **यथा** ते **ब्रूयु**स्तथाऽन्नशेषनियोगं कुर्यात् ।। २५३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। तत इति।** सहकृतभोजनानां विप्राणां स्वधाकारादनन्तरं शेषमन्नं इत्येवं गृह्योक्तविधिना **अन्नशेषं निवेदयेत्। तैश्च द्विजैः** इदमनेनान्नेन क्रियतामिति दत्तानुज्ञः **यथा** तैरुक्तं **तथा** विनियुञ्जीत ।। २५३ ।।

**पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं, गोष्ठे तु सुशृतम् ।।**
**संपन्नमित्यभ्युदये, दैवे रुचितमित्यपि ।। २५४ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** अन्येनापि तत्कालोचितोपस्थितेनैवमेभिः शब्दैः मोदयितव्याः। अन्यस्त्वाह– अनुज्ञापनमेतैः शब्दैर्भोजनादिप्रवृत्तौ कर्तव्यम्। अतश्च श्राद्धकृता परितुष्ट्यैवं वक्तव्यम्--स्वदध्वमिति, न हि स्वदितम्। स्वदतु इति वा पाठः। एतस्यार्थस्य प्रतिपादकं एतद्व्याख्यानं स्मृत्यन्तरसमाचारसापेक्षम्, तस्मात्प्रवृत्तभोजनाः श्राद्धकृताऽन्येन वैवं प्रीणयितव्याः ।। **गोष्ठे** गोषु तिष्ठन्तीष्वेकदेशेषु **सुशृत**मिति वाच्यम्। अस्त्विवति सर्वत्र प्रतीयते। **दैवे रुचितं** रोचितमिति वा ।। २५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पित्र्ये** एकोद्दिष्टे पार्वणेऽपि वा। **स्वदत** इति क्वचित्पाठः। तत्प्रागुक्तेन स्वदितमित्यनेन विकल्पितं ज्ञेयं। **गोष्ठे** गोमङ्गलार्थं **गोष्ठे** ब्राह्मणभोजने तृप्तेषु विप्रषु **सुशृत**मिति वाच्यम्। **सुभृतमिति** शोभनं श्रवणं गवामस्त्विवति तस्यार्थः। सुश्रितमिति क्वचित्पाठः। **अभ्युदये** विवाहादौ विप्रभोजने। **दैवे** वैश्वदेविके **रोचितमिति। रुचितमिति** क्वचित्पाठः ।। २५४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** इदानीं प्रसंगाच्छ्राद्धान्तरेषु विशेषविधिमाह **पित्र्य इति। पित्र्ये** निरपेक्षपितृमातृदेवताक एकोद्दिष्टश्राद्धे तृप्तिप्रश्नार्थं स्वदितमिति वाच्यम्। तथा च **गोभिलसाङ्ख्यायनौ। स्वदितमिति** तृप्तिप्रश्नः। **मेधातिथिगोविन्दराजौ** तु श्राद्धकालागतेनान्येनापि स्वदितमित्येव कर्तव्यमिति व्याचक्षतुः। "श्राद्धे स्वदितमित्येतद्वाच्यमन्येन केनचित्। नानुरुद्धमिदं विद्वद्वृद्धैर्न श्रद्दधीमहि" ।। **गोष्ठे** गोष्ठिश्राद्धे **सुशृतमिति** वाच्यम्। गोष्ठयां शुद्ध्यर्थ-

मष्टममिति द्वादशविधश्राद्धगणनायां गोष्ठीश्राद्धमपि **विश्वामित्रेण** पठितम् । **अभ्युदये** वृद्धिश्राद्धे **संपन्नमिति** वाच्यम् । **दैवे** देवतोद्देशेन श्राद्धे **रुचितमिति** वचनीयम् । दैवश्राद्धं तु **भविष्यपुराणोक्तम्** "देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते। हविष्येण विशिष्टेन सप्तम्यादिषु यत्नतः" ।। २५४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **स्वदित**मित्यादेः पदस्य व्यवस्थित्यर्थमाह **पित्र्य इति। पित्र्ये** पार्वणे तस्यैव प्रकृतत्वात् । **गोष्ठे** विश्वामित्रपठितगणकृतश्राद्धे "**गोष्ठ्यां** यत् क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते"। तस्य सत्रस्येव फलं प्रत्येकगामि गणस्याचेतनत्वेन गणिनिष्ठत्वात्फलस्य। **अभ्युदये** वृद्धिश्राद्धे दैवे।। 'देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते। हविष्येण विशिष्टेन सप्तम्यादिषु यद्भवेदि'ति।। भविष्योक्तं गोमयशुद्धिवत्स्वदितमित्यादौ वाचनिकं तेन न क्वितादर इति।। २५४ ।।

(५) **नन्दनः। स्वदित इति** । पृष्ट्वाऽऽचामयेदित्युक्तम्। अयमेव प्रश्नादिर्युक्त इत्युपपादयति **पित्र्य इति**।। २५४ ।।

(६) **रामचन्द्रः। पित्र्ये** एकोद्दिष्टे **स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठेषु सुशृतं** अन्नादि अधिकं शुद्धिसंपन्नं वा **अभ्युदये दैवे रोचितं** यथा रोचितम्।। २५४ ।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं श्राद्धांतरेषु विशेषमाह **पित्र्ये इति। पित्र्ये** निरपेक्षपितृभ्रातृएकोद्दिष्टश्राद्धे। तृप्तिप्रश्नार्थं स्वदितमिति वाच्यं। **गोष्ठे तु** गोष्ठीश्राद्धे **सुशृतं। अभ्युदये संपन्नमिति। दैवे** देवतोद्देशेन श्राद्धे **रुचितमिति** पृच्छेत्।। दैवश्राद्धं **भविष्यपुराणे** 'देवानुद्दिश्य' यच्छ्राद्धं तत्तद्दैविकमुच्यते। हविष्येण विशिष्टेन सप्तम्यादिषु 'यत्नत' इति।। २५४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। पित्र्ये स्वदितमित्येवं गोष्ठे वाच्यमिति शृतमिति**। अन्येनापि श्राद्धकालोपस्थितेन स्वदितमित्येवं गोगणमध्ये च **शृतमिति, सम्पन्नमिति**; विवाहादौ देवतार्थं **रोचितमिति**।। २५४ ।।

## अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः ।।
## सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु सम्पदः ।। २५५ ।।

(१) **मेधातिथिः**। अपराह्णे श्राद्धं कर्तव्यम्। **श्राद्धकर्मसु संपदः**। संपादयितव्यान्येतानि वस्तूनि। अविशेषाभिधानेऽप्यपराह्णे न सर्वश्राद्धेषु। एवं हि स्मृत्यन्तरम् "पूर्वाह्णे दैविकं कार्यमपराह्णे तु पैतृकम्। एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्" इति ।।

**वास्तु** वेश्म, तस्य **संपादनं** सम्मार्जनं सुधादिना भित्तीनां गोमयेन भूमेरुपलेपनं दक्षिणप्रवणता च। **सृष्टिर्**विसर्गः अकार्पण्येनान्नव्यञ्जनदानम्। **मृष्टिर्**मार्जनम्। अन्नसंस्कारविशेषः। अन्ये तु व्याचक्षते-**संपदेषा** विभवशक्तिः, न त्वेतैर्विना अकरणम्।। २५५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अपराह्णोऽह्नो द्विभागस्य द्वितीयो भागः। **वास्तुसंपादनं** दक्षिणाप्रवणत्वादिना। **सृष्टिः** स्वादुबहुतरान्नोत्पादनं। **मृष्टिर**न्नादीनां शुद्धत्वं। **संपदः** फलोत्कर्षहेतवः।। २५५ ।।

(३) **कुल्लूकः।** अमावास्याश्राद्धस्य प्रकृतत्वात्तद्विषयोऽयमपराह्णकालः। '**प्रात-र्वृद्धिनिमित्तकमि**त्यादिना वृद्धिश्राद्धादौ स्मृत्यन्तरे प्रातःकालादिविधानात्। विष्टरार्थं **दर्भाः**। गोमयादिना श्राद्धदेशसंशोधनम्। **तिलाश्च** विकिरणाद्यर्थाः। **सृष्टिर**कार्पण्येनान्नादि-विसर्गः। **मृष्टिर**न्नादेश्च संस्कारविशेषः। पङ्क्तिपावनादयश्च ब्राह्मणाः।'एताः श्राद्धे संपत्तय' इत्यभिधानादङ्गान्तरापेक्षं प्रकृष्टत्वमेषां बोधितम् ।। २५५ ।।

(४) **राघवानन्दः।** पार्वणस्य कालं विदधदुक्तचोक्षादिधर्मान् स्मारयति **अपराह्ण इति।** पूर्वाह्णो वै देवानामपराह्णः पितॄणाम्। तथा 'प्रातर्हि मातृकं श्राद्धं पूर्वाह्णे दैविकं स्मृतं। एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने सायाह्ने पार्वणं स्मृतम्'।। इत्यादिश्रवणात्। मातृकमन्वष्टकाश्राद्धं, **वास्तुसंपादनं** गोमयादिना स्थललेपनं। **सृष्टिर**कार्पण्येनान्नादेस्त्यागः। **मृष्टिर**न्नादेः संस्कारः। **अग्र्याः** पङ्क्तिपावनाः। **संपदः** साधनानि ।। २५५ ।।

(५) **नन्दनः।** अथ श्राद्धसम्पदोऽपि प्रसङ्गादाह **अपेति। वास्तुसम्पादनं** रमणीय-प्रदेशस्वीकारः। **सृष्टिः** सर्जनम्, दानमित्यर्थः। **मृष्टिः** शुद्धिः ।। २५५ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** श्राद्धकर्मसु संपद आह **अपराह्ण इति। अपराह्णस्तथा दर्भाः। वास्तुसंपादनं** गोमयेनोपलेपनं दक्षिणाप्रवणं। **तिलाः सृष्टिर्विसर्गः** अकार्पण्येनान्नव्यञ्जनदानं। **मृष्टिः** पात्राणां शुद्धिः। **अग्र्याः** द्विजाः ब्राह्मणाः सर्ववेदेषु श्रेष्ठाः ।। २५५ ।।

(७) **मणिरामः।** श्राद्धसंपत्तिमाह **अपरेति। वास्तुसंपादनं** गोमयादिना श्राद्ध-देशसंशोधनं **मृष्टिः।** अकार्पण्येनान्नादिविसर्गः **सृष्टिः।** अन्नादेः संस्कारविशेषः। एताः **श्राद्धे संपदः** संपत्तयः ।। २५५ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अपराह्णस्तथा दर्भा इति। अपराह्णः** विष्टरार्थं **दर्भाः वास्तु-संपादनं** सुधागोमयादिना गृहसंशोधनं, **तिलाश्चा**न्तर्भूविकिरणाद्यर्थाः, **सृष्टिः** अकार्पण्येनान्न-विसर्गः। **मृष्टिः** अन्नसंस्कारः, **अग्र्या ब्राह्मणाः** इत्येताः **श्राद्धे सम्पदः** इत्यङ्गान्तरेभ्यः एषां प्रशस्यत्वज्ञापनार्थमेतत् ।। २५५ ।।

**दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः ।।**
**पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसम्पदः ।। २५६ ।।**

(१) **मेधातिथिः। दर्भाः** प्रसिद्धाः। **पवित्रं** मन्त्राः। हविषे हितानि योग्यानि **हविष्याण्यु**त्तरश्लोके तानि वक्ष्यन्ते। **पवित्रं** पावनं शुच्याचारता। **यच्च पूर्वोक्तम्।** वास्तुसंपादनं सृष्टिर्मृष्टिर्ब्राह्मणाश्च श्रेष्ठाः श्रुतशीलसंपन्नाः। **हव्यसंपदः।** हव्यं देवतोद्देशेन यागादि ब्राह्मणभोजनं च। हव्यशब्दः कर्म दैविकमुपलक्षयति ।। २५६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पवित्रं** पावनान्तरं यवजलादि। **पूर्वाह्णोऽह्नो** द्विभागस्य प्रथम-भागः। **हविष्याणि** मुन्यन्नादीनि। **यच्च पूर्वोक्तं** पित्र्यकर्मण्यमुक्तं। **पवित्रं** पावनं। मृष्टि-र्द्विजाग्र्याश्च। **हव्यं** वैश्वदेविकं कर्म लक्षणया। एवं च श्राद्धे दैवकर्मणोऽनुरोधार्थं कुतपे

प्रारम्भ.। पितृयस्य च प्रधानत्वात् अपराह्णेऽनुष्ठानेऽसमाप्तिरिति लभ्यते। तदादायैव च श्राद्धे कुतपप्रशंसा। तत्रापि 'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य'त्यभिधानादपराह्णप्राप्तौ श्राद्धप्रयोगमध्य एव प्रधानकर्मणः प्राक् पिण्डपितृयज्ञानुष्ठानम् ।। २५६ ।।

(३) **कुल्लूकः। पवित्रं** मन्त्राः **पूर्वाह्णः** कालः **हविष्याणि** मुन्यन्नादीनि सर्वाणि च **यच्च** पवित्रं पावनं वास्तुसंपादनादि पूर्वमुक्तम्। एताश्च देवार्थस्य कर्मणः समृद्धयः। **हव्यशब्दो** दैवकर्मोपलक्षणार्थः ।। २५६ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तत्प्रतियोगितया दैवं कालं विदधदपूर्वधर्मान् विधत्तेऽ**दर्भा इति।** उदगयने पूर्वपक्षे प्रागावर्तनादह्नः कालं विद्यादि'ति **गोभिलसूत्रात्। पवित्रं** मन्त्रं। पुनः पवित्रपदं अविगीतब्राह्मणविषयम् ।। २५६ ।।

(५) **नन्दनः।** हव्यसम्पदोऽपि प्रसङ्गादाह **दर्भा इति। शक्तितः** पवित्राणि सूक्तानि जप्यानि। **पूर्वोक्तं** पवित्रदेशादयः ।। २५६ ।।

(६) **रामचन्द्रः। पवित्रं** मन्त्राः यच्च पवित्रं पूर्वोक्तं सृष्टयादिद्रव्यसंपदः हव्यकव्य-कर्मणि **संपदः एता** उक्ताः दर्भादयः ।। २५६ ।।

(७) **मणिरामः।** हव्यसंपत्तिमाह **दर्भा इति।। पवित्रं** मन्त्राः **पवित्रं** पावनं ।।२५६।।

(८) **गोविन्दराजः। दर्भा इति।** विष्टराद्यर्थं **दर्भाः पवित्रं** दार्भं प्राधान्यात् पृथगुप-दिष्टम्। **पूर्वाह्णकालः हविष्याणि** मुन्यन्नादीनि सर्वाणि। **यच्च** वास्तुसंपादनादि पावनं **पूर्वमुक्तम्** एतावदेवार्थकर्मणः सिद्धयः ।। २५६ ।।

**मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ।।**
**अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ।। २५७ ।।**

(१) **मेधातिथिः। मुनिर्वानप्रस्थः,** तस्या**न्नानि** आरण्यानि नीवारादीनि। एतच्च प्रदर्शनं ग्राम्याणामपि व्रीह्यादीनाम्। तथाऽर्वाचीने श्लोके सर्वग्रहणम्। उत्तरत्र च "हविर्यच्चिररात्रायेति" प्रक्रम्य "तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरिति" (३।२६६–६७) ग्राम्याणा-मप्यनुक्रमणम्। **पयः** क्षीरम्। तद्विकारा अपि दध्यादयो गृह्यन्ते, स्मृतिसमाचाराभ्याम्। **सोम** ओषधिविशेषः। **अनुपस्कृतमधि**कृतमप्रतिषिद्धम्। सूनामांसाद्यनुपस्कृतम्। **अक्षारलवणम्।** अत्र संदिह्यते–"किं द्वन्द्वगर्भोऽयं नञ्समासः, उत नञ्समास एव ?। अक्षारलवणम्, उत लवणविशेषः 'क्षारलवणं' ततोऽन्यदभ्यनुज्ञायते।" लवणमेवं भवितुमर्हम्। द्वन्द्वगर्भे हि वृत्तिद्वयमाश्रयणीयम्। प्रतिपदं च नञः सम्बन्धभेदः। तद्गुरु भवति। **प्रकृत्या हवि**रनाश्रिते विशेषे एतद्धविर्ज्ञेयम्। 'हविष्येण वर्तते', 'हविष्यात्प्रातराशाद्भुङ्क्त' इत्यादिसामान्यचोदनासु तद्धविष्यं ज्ञेयम् ।। २५७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। मुन्यन्नान्य**कृष्टपच्यानि श्यामाकनीवारादीनि। **पय** इति सविकारग्रहणात् दुग्धदधिघृतानां ग्रहणम्। **सोमः** सोमलता **अनुपस्कृतं** मरीचादिना स्वादान्तर-मप्रापितम्। **अक्षारलवणं** बिडादेः क्षारादन्यल्लवणं सामुद्रं सैन्धवं वा। **प्रकृत्या** स्वभावेन स्थितं। वस्त्वन्तरामिश्रितं। सर्वमेतद्धविर्हव्यम् ।। २५७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **मुनेर्वानप्रस्थस्यान्नानि** नीवारादीनि। **पयः** क्षीरं। सोमलतारसः। **अनुपस्कृत** अविकृतं पूतिगन्धादिरहितं **मांसम्।** **अक्षारलवणम**कृत्रिमलवणं सैन्धवादि एतत्स्वभावतो हविर्मन्वादिभिरभिधीयते ॥ २५७ ॥

(४) **राघवानन्दः।** हविष्याणीत्युक्तं व्याचष्टे **मुन्यन्नानीति।** नीवारादीनि। गव्यं **पयः।** **सोमः** सोमलतारसः। **मांसं** वार्ध्रीणसादेः। **अनुपस्कृतम**विकृतं पूतिगन्धादिरहितमिति यावत्। **प्रकृत्या** स्वभावतः अनुक्ते विशेषे ॥ २५७ ॥

(५) **नन्दनः।** **अनुपस्कृतं** लौकिकसंस्कारसंस्कृतम्। **प्रकृत्या हविः** स्वभावरसेन युक्तं हविरुच्यते विद्वद्भिः ॥ २५७ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **पयः** क्षीरं **सोम**लतारसः **मांसं अनुपस्कृतम**प्रतिषिद्धं हविष्यादिसंस्कृतं **अक्षारलवणं** सैन्धवादि, एते **प्रकृत्या** स्वभावेन **हविर्ह**विष्याणमुच्यन्ते ॥ २५७ ॥

(७) **मणिरामः।** **मुन्यन्नानि** नीवारादीनि। **सोमः** सोमलतारसः। **अनुपस्कृतं** अविकृतं पूतिगंधादिरहितं **मांसं।** **अक्षारलवणं** अकृत्रिमलवणं सैंधवादि ॥ २५७ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **मुन्यन्नानीति।** आरण्यान्नं क्षीरं **सोमः मांसं** चानतितीक्ष्णं बिडलवणादिवर्जितं लवणं सैन्धवं स्वभावत एवैतद्धविरिति मन्वादिभिरुच्यते ॥ २५७ ॥

## विसर्ज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् ॥
## दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥ २५८ ॥

(१) **मेधातिथिः।** प्रासङ्गिकः पूर्वश्लोकः। इदानीं प्रकृतशेषमेवाह **विसर्ज्या**नुज्ञाय यथासुखविहारे। **ब्राह्मणांस्तान्**प्रभुक्तवतः। अनन्तरं **दक्षिणां दिश**मीक्षमाण **इमान् वरान**भिलषितार्था**न्पितॄन्याचेत** स्वपितॄन्प्रार्थयेत्। स्वपितॄन् ध्यायन् 'युष्मासु प्रसन्नेष्विदं नः संपद्यता'मित्येवं याचितव्यम् ॥ २५८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **प्रयतो**ऽनन्यमनाः। **आकांक्षन्** साभिलाषं पश्यन्। **इमान्**वक्ष्यमाणान्। **वरान**भीष्टार्थान्। **पितॄन् याचेत** ॥ २५८ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **तान्ब्राह्मणान्विसृज्या**नन्यमनाः मौनी पवित्रो **दक्षिणां दिशं** वीक्षमाण **एतान्**वक्ष्यमाणान् अभिलषितानर्थान् **पितॄन्**प्रार्थयेत् ॥ २५८ ॥

(४) **राघवानन्दः।** श्राद्धस्योत्तराङ्गमाशीरिति व्यापयन् तत्त्वमाह **विसृज्येति।** **नियतो**ऽनन्यमनाः। **आकाङ्क्षन्**नवलोकयन्। **इमान्** दातादिपञ्चकान् **पितॄन्**प्रति ॥ २५८ ॥

(५) **नन्दनः।** आकाङ्क्षणमाभिमुख्यम्। **इमान्**वक्ष्यमाणान् ॥ २५८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **विसृज्य तान्ब्राह्मणान् नियतः** शुचिः वाग्यतः **सन्दक्षिणां दिशं आकांक्षन्**साभिलाषं पश्य**न्पितॄन्निमान्वरान्**प्रमाणलक्षणान्**याचेत** ॥ २५८ ॥

(७) **मणिरामः।** **दक्षिणां दिशं वीक्ष्य**माणः। **इमान्** वक्ष्यमाणान्। **आकांक्षन्** अभिलषितानर्थान्। **पितॄन् याचेत** प्रार्थयेत् ॥ २५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः। विसृज्येति। तान् ब्राह्मणान् विसृज्य** अनन्यमनाः शुचिः सन् **दक्षिणां दिशमीक्षमाणः इमान्** वक्ष्यमाणान् अभिलषितार्थान् **पितॄन्** प्रार्थयेत् ॥ २५८ ॥

**दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥**
**श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥ २५९ ॥**

**[*अन्नं 'च' नो 'बहु' भवेदतिथींश्च लभेमहि।**
**याचितारश्च नस्सन्तु मा 'च' याचिष्म कंचन ॥]**

(१) **मेधातिथिः**। के पुनस्ते वरा याचितव्या इत्यत आह, दातार इति। मन्त्रवदयं श्लोकः पठितव्यः ॥ २५९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। देयं** बहु भवतु दानप्रधानाः स्यामेत्यर्थः ॥ २५९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अस्मत्कुले **दातारः** पुरुषा वर्धन्ताम्। **वेदाश्चा**ध्ययनाध्यापनतदर्थबोधतदर्थयागाद्यनुष्ठानैर्वृद्धिमाप्नुवन्तु पुत्रपौत्रादिकं च वर्धताम्। वेदार्थ**श्रद्धा** चास्मत्कुले **न** व्यपैतु। दातव्यं च धनादिकं **बहु** भवतु ॥ २५९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **नः** अस्मत्कुले **वेदाः** स्वाध्यायेनानवच्छिन्ना भवन्तु। **सन्ततिः** पुत्रपौत्रादिः **वर्धता**मित्यनुषङ्गः, किंच **श्रद्धा मा व्यगमत्** माऽपैतु ॥ २५९ ॥

[**राघवानन्दः**। किंच ***अन्न**मिति। **नः** अस्मान्प्रति **याचितारो** याचकाः सन्तु आयान्तु। **मा च याचिष्म कंचन** न कंचन प्रति याचनां नाम कुर्मः ॥]

(६) **रामचन्द्रः**। अस्माकं **दातारः अभिवर्धन्तां वेदा** वर्धन्ताम् **सन्ततिरेव च** पुनः सन्तत्यः वर्धन्तां **नः** अस्माकं **श्रद्धा मा व्यगमत्** अस्माकं **बहु देयम् अस्तु** इति ॥ २५९ ॥

[**रामचन्द्रः**। ***अन्न**मिति। कंचन **मा** स्म **याचिष्म कंचन याचेम** इत्यर्थः ॥१॥]

(७) **मणिरामः**। अभिलषितार्थानेवाह **दातेति** ॥ २५९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। दातार इति। श्रद्धा च नो मा व्यगमत् बहु देयं च नोऽस्त्विति**। अस्मत्कुले बहवो दानशीला भवन्तु। **वेदाश्च** अध्ययनाध्यापनावबोधेज्यारूपेण **वर्धन्ताम्। सन्ततिः** पुत्रादिः वर्धताम्। हव्यकव्यविषया **श्रद्धा**ऽस्माकं **मा व्यगमत्। बहु देयं च नोऽस्त्विति**। दानार्थं च धनं बह्वस्माकं भवतात् ॥ २५९ ॥

**एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ॥**
**गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ॥ २६० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तदनन्तरं** वरयाचनानन्तरं **पिण्डा**न्पितृभ्यो निरुप्तान् **गवादीन्प्राशयेत्**। **अग्नौ** प्रक्षेप एव प्राशनम्। प्रापयेदिति पाठान्तरम् ॥ २६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। एवं** पूर्वोक्तविधिना वरान्याचित्वा **तदनन्तरं** प्रार्थनानन्तरं पिण्डानां **निर्वपणं कृत्वा ता**न्पिण्डान् गवाद्यन्यतर**माशयेदप्सु** वा **निक्षिपेदिति** वैशिष्टकालिकं पिण्डनिर्वपणं प्रतिपत्तिविशेषसहितं दर्शितम्। विप्रं श्राद्धिभ्योऽन्यम् ॥ २६० ॥

(३) **कुल्लूकः।** एवमुक्तप्रकारेण पिण्डानां प्रदानं कृत्वा प्रकृतवरयाचनानन्तरं **तान् पिण्डान् गां** ब्राह्मणं छागं वा भोजयेत्। अग्नौ जले वा क्षिपेत् ॥ २६० ॥

(४) **राघवानन्दः।** प्रकृतं श्राद्धमुपसंहरन्पिण्डस्योत्तरप्रतिपत्तिस्थानान्याह **एवमिति।** **अजं** छागं **अग्निं** गार्हपत्यादिम् ॥ २६० ॥

(५) **नन्दनः। एवमिति।** पिण्डनिर्वपणप्रकारस्य पूर्वोक्तस्य परामर्शः। पूर्वोक्तेन प्रयोगेण ब्राह्मणभोजनानन्तरं पिण्डनिर्वपणं **कृत्वे**त्यर्थः ॥ २६० ॥

(६) **रामचन्द्रः। एवं पिण्डनिर्वपणं** कृत्वा तदनन्तरं **तान्पिण्डान् गां** प्राशयेद् भक्षणं कारयेत्। **विप्रं** वा **अजं** वा प्राशयेत् **अग्निं** वा अग्निमध्ये वा प्रक्षिपेत्। **अप्सु** वा क्षिपेत् ॥२६०॥

(७) **मणिरामः। निर्वपणं कृत्वा,** पिंडदानं कृत्वा। **तान्** पिंडान् ॥२६०॥

(८) **गोविन्दराजः। एवमिति।** एवं 'त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्' (३/२१५) इत्यादिप्रक्रियया **पिण्डनिर्वपणं कृत्वा तान्** पिण्डान् **अनन्तरं** प्रक्रान्तवरयाचनानन्तरं **गोविप्राजा**नामन्यतममाशयेत्। अग्नावुदके **वा क्षिपेत्** ॥ २६० ॥

**पिण्डनिर्वपणं केचित्परस्तादेव कुर्वते ॥**
**वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥२६१॥**

(१) **मेधातिथिः।** ब्राह्मणभोजनात् **परस्ता**त्कृते ब्राह्मणभोजने केचित् हविः कुर्वन्ति। **वयोभिः** पक्षिभिः **खादयन्त्यन्ये।** अधिकेयं पूर्वस्मात्प्रतिपत्तिः। **अनलो**ऽग्निः। एतत्पूर्वोक्तमेवानूदितम्। उच्छिष्टसन्निधौ चैतत्परस्तात्पिण्डदानमिष्यते ॥ २६१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** नन्वेवं भोजनात् प्राक् पिण्डनिर्वपणं पूर्वोक्तं विरुध्यत इत्यत आह **पिण्डनिर्वपणमिति।** ये **पुरस्तात्** ब्राह्मणभोजनात् **कुर्वते** ते वयोभिरित्यादिप्रतिपत्तित्रयस्यान्यतरं कुर्वन्ति ॥ २६१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** पिण्डप्रदानं **केचिदाचार्याः** ब्राह्मणभोजनानन्तरं **कुर्वते। अन्ये** पक्षिभिः पिण्डान् **खादयन्ति।** इयं च पक्षिभोजनरूपा प्रतिपत्तिरग्न्युदकप्रक्षेपयोर्वैकल्पिकीति दर्शयितुमुक्तयोरप्यभिधानम् ॥ २६१ ॥

(४) **राघवानन्दः।** पार्वणविषये स्वमते पिण्डदानमादाविति स्पष्टयन् मतान्तरमाह **केचिदिति। परस्ता**द्विप्रभोजनानन्तरं। तस्य मतभेदेन प्रतिपत्तिस्थानान्याह **वयोभि**रित्यादिकं प्रतिपत्तिस्थलम्। **मेधातिथिस्तु परस्ता**दिति पठित्वा व्याख्याति भोजनात्परस्तात् कृते ब्राह्मणभोजने हविः कुर्वन्तीति उच्छिष्टसंनिधावेतत्पिण्डदानमिष्यत इति हेतुं चाचष्टे। अतो वयोभिः खादयन्ति केचिदिति संबन्धः साधीयान्। प्रक्षेपे विकल्पो न तु पिण्डदान इति सुष्ठूक्तम् ॥ २६१ ॥

(५) **नन्दनः।** पक्षान्तरमाह **पिण्डेति। पुरस्तादेव कुर्वते** न पश्चादिति। प्रतिपत्तावपि पिण्डानां प्रकारान्तरमुत्तरार्धेनोक्तम् ॥ २६१ ॥

(६) रामचन्द्रः। केचित् पिण्डनिर्वपणं पुरस्तादेव कुर्वते वयोभिः पक्षिभिः खादयन्ति। अन्ये अनले वा प्रक्षिपन्ति ।। २६१ ।।

(७) मणिरामः। पुरस्तात् ब्राह्मणभोजनादनंतरं। अन्ये वयोभिः पक्षिभिः पिंडान् खादयन्ति ।। २६१ ।।

(८) गोविन्दराजः। पिण्डनिर्वपणमिति। पिण्डदानं केचिदाचार्याः ब्राह्मणभोजनादर्वाक् कुर्वते। अन्ये पक्षिभिः खादयन्ति। इदं पूर्वप्रतिपत्तिवैकल्पिकम्। अप्यन्ये अग्न्युदकप्रक्षेपं पक्षिभक्षणं वैकल्पिकमिच्छन्ति ।। २६१ ।।

**पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ।।**
**मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी ।। २६२ ।।**

(१) मेधातिथिः। आद्यन्तयोः पिण्डयोरेषा प्रतिपत्तिः। मध्यमं तु ततस्तेषां पिण्डानां यो मध्यमः तं धर्मपत्नी पुत्रार्थिनी अद्यात्। या न कामार्थगूढा। पतिरेव मया परिचरणीयो मनसाऽपि व्यभिचारो न कर्तव्य इति यस्या नियमः सा पतिव्रता पतिभक्ता। पितृपूजने श्राद्धादिकर्मणि तत्परा श्रद्धावती। प्रयत्नेन तदाराधनादौ प्रवर्तते। सम्यगद्यादाचमनादिविधिना नियमेन च ।। २६२ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। धर्मपत्नी सवर्णा सम्यक् मन्त्रवत् यदि सुतार्थिनी तदाऽद्यात् ।। २६२ ।।

(३) कुल्लूकः। धर्मार्थकामेषु मनोवाक्कायकर्मभिः पतिरेव मया परिचरणीय इति व्रतं यस्याः सा पतिव्रता। धर्मपत्नी सवर्णा प्रथमोढा श्राद्धक्रियाणां श्रद्धाशालिनी पुत्रार्थिनी तेषां पिण्डानां मध्यमं पितामहपिण्डं भक्षयेत्। सम्यक् "आधत्त पितरो गर्भम्" इत्यादिगृह्योक्तमन्त्रेण ।। २६२ ।।

(४) राघवानन्दः। गोदोहन्यायेन पिण्डमाश्रित्य दृष्टफलं किंचिद्विधत्ते पतिव्रतेति द्वाभ्यां। पतिव्रता धर्मार्थकामेषु मनोवाक्कायकर्मभिः पतिरेव परिचरणीय इति व्रतं यस्याः सा मध्यमं पितामहपिण्डं। सम्यगिति सम्यक्। "आधत्त पितरो गर्भ"मित्यादिमन्त्रोपलक्षणार्थम् ।। २६२ ।।

(६) रामचन्द्रः। पतिव्रता धर्मपत्नी मध्यमं पिण्डं सुतार्थिनी अद्यात्। सम्यक् मन्त्रवत् ।। २६२ ।।

(७) मणिरामः। धर्मपत्नी सवर्णा। मध्यमं पितामहपिण्डं सम्यक् "आधत्त पितरो गर्भं" मित्यादि गृह्योक्तमंत्रेण ।। २६२ ।।

(८) गोविन्दराजः। पतिव्रता धर्मपत्नीति। मनोवाक्कायकर्मभिः धर्मार्थकामेषु पतिरेव मया(परि)चरणीय इति व्रतं यस्याः सा पतिव्रता धर्मपत्नी प्रथमोढा सवर्णा श्रद्धावती पुत्रार्थिनी तेषां पिण्डानां मध्यमपिण्डं सम्यक् 'आधत्त पितरो गर्भं' इत्यादिसूत्रकारोक्तमन्त्रेणाद्यात् ।।२६२।।

**आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥**
**धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ २६३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भक्षयित्वा **तु तं** पिण्डं **सुतं** पुत्रं **सूते** जनयति। **मेधा** ग्रहणशक्तिः तया **समन्वितं** युक्तम्। 'सत्त्वं' नाम गुणः साङ्ख्येषु प्रसिद्धः धैर्योत्साहादिर्योत्यस्तद्युक्तम् ॥ २६३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सात्त्विकं** सत्वगुणसंपन्नम् ॥ २६३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तेन पिण्डभक्षणेन दीर्घायुषं कीर्तिधारणात्मकबुद्धियुक्तं धनपुत्रादि-सन्ततिधर्मानुष्ठानसत्वाख्यगुणान्वितं पुत्रं जनयति ॥ २६३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **सात्विकमिति**। धार्मिकत्वेऽपि कामनानिवृत्त्यर्थं सात्विक-धर्मरतं वा ॥ २६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **आयुर्यशोमेधासमन्वितं**। एतादृशं **सुतं सूते** ॥ २६३ ॥

(७) **मणिरामः**। पिण्डाशनफलमाह **आयुष्मन्तमिति** ॥ २६३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **आयुष्मन्तमिति**। धर्मानुष्ठानरतं द्वादशाध्यायवक्ष्यमाणस-त्त्वाख्यगुणयुक्तं चिरायुषं ख्यातिमन्तं अतीतार्थस्मरणयुक्तं हिरण्यादिधनयुक्तं सन्ततिमन्तं एवंविधगुणयुक्तं पुत्रं जनयति ॥ २६३ ॥

**प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ॥**
**ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥ २६४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पिण्डेषु प्रतिपादितेषु तौ हस्तौ प्रक्षालयेत्। ततः आचमनविधिं कुर्यात्। ज्ञातीन् प्रति गच्छति प्राप्नोतीति **ज्ञातिप्रायं** कुर्यात् ज्ञातिभ्यो दद्यात्। तेभ्यः **सत्कृतं** दत्वा बान्धवेभ्योऽपि दद्यात्। 'ज्ञातयः' सगोत्राः, मातृश्वशुरपक्षा 'बान्धवाः'।

अत्र चोद्यते—"यदुक्तं 'यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादिति'। यदि तैरुक्तं 'गृहानस्मदीयानेतदन्नं प्राप्यतामिति,' तदा वैश्वदेवहोमादीनां का गतिः?"। पाकान्तरं कर्तव्यम्। अथवाऽदृष्टार्थ-मेवान्नशेषनिवेदनं नित्यवदाम्नायते। 'शेषमन्न'मित्युक्ते 'इष्टेभ्य' इति ब्रूयुरिति, पाक्षिकं चैतत्स्याद्यदि ते गृह्णीयुः ॥ २६४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ज्ञातिप्रायं** ज्ञातिभिः सपिण्डैर्बहुभिर्भुक्तमन्नं यथा भवति तथा **प्रकल्पयेत्** कुर्यात्। **बान्धवान्**मातुलादीन् संबन्धिनः ॥ २६४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तदनु हस्तौ प्रक्षाल्य **ज्ञातिप्राय**मन्नं कुर्यात्, ज्ञातीन् प्रति गच्छतीति ज्ञातिप्रायम्। कर्मण्यण्। ज्ञातीन्भोजयेदित्यर्थः। तेभ्यः पूजापूर्वकमन्नं दत्वा मातृपक्षानपि सार्हणं भोजयेत् ॥ २६४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शूद्रादिव्यावृत्त्यर्थमुक्तसृष्टेः पात्रमाह **प्रक्षाल्येति**। **ज्ञातिप्रायं** ज्ञातीन् प्रति प्रीणाति गच्छतीति वा ज्ञातिभ्यो देयमिति। 'राक्षसं तद्भवेच्छ्राद्धं दश यत्र न भुञ्जत' इति स्मृतेः। **बान्धवान्** मातृपक्षान् ॥ २६४ ॥

(५) **नन्दनः**। पिण्डप्रतिपत्त्यनन्तरं कर्तव्यमाह **प्रक्षाल्येति**। **ज्ञातिप्रायं** ज्ञातिबाहुल्यम्। **प्रकल्पयेदा**पादयेत् ज्ञातीन्संघातयेदित्यर्थः। **ज्ञातिबान्धवान्** सम्बन्ध्यादीन्॥ २६४॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ज्ञातिभ्यः** भोज्यं सत्कृतं **प्रकल्पयेत्**। ज्ञाति प्रैति गच्छति प्राप्नोतीति प्रायं कुर्वीत तत् ज्ञातिभ्यो भोजयेदिति। ज्ञातिभ्यो दत्वा पश्चाद्बान्धवानपि पूजयेत्॥२६४॥

(७) **मणिरामः**। **ज्ञातिप्रायं** ज्ञातीन् प्रैति गच्छतीति ज्ञातिप्रायं ज्ञातीन् भोजयेदित्यर्थः। **सत्कृतं** अन्नं दत्त्वा। **बांधवान्** मातृपक्षीयानपि भोजयेत्॥ २६४॥

(८) **गोविन्दराजः**। प्रक्षाल्य हस्तावाचम्येति! **ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वा ब्राह्मणानपि पूजयेत्**। तदनु **हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य** ज्ञातीन् पितृपक्षात् प्रतिगच्छतीति **ज्ञातिप्रायमन्नं** कुर्यात्। तेभ्यः पूजापूर्वकं दत्वा मातृपक्षादिभ्योऽपि संपूजां दद्यात्॥ २६४॥

**उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः॥**
**ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥ २६५॥**

(१) **मेधातिथिः**। भुञ्जानानां यत्किञ्चिद्भुज्यधिकरणपात्रसंलग्नं भूमिपतितं च तन्न तस्माद्देशादवमार्ष्टव्यं, यावद्ब्राह्मणा न निष्क्रान्ताः। ततो **गृहबलिं** निष्पन्ने श्राद्धकर्मण्यनन्तरं वैश्वदेवहोमान्वाहिकातिथ्यादिभोजनं कर्तव्यम्; बलिशब्दस्य प्रदर्शनार्थत्वात्।

अन्ये तु "भूतयज्ञ एव बलिशब्देन प्रसिद्धतरः। ततश्चाग्नौ होमो न प्राग्विरुध्यत" इत्याहुः। "न चैतद्वाच्यं—'पित्र्ये कर्मणि प्रारब्धे कथं कर्मान्तरस्य मध्यतःकरणम् ?"। यथैव पूर्वेद्युर्निमन्त्रितेषु ब्राह्मणेषु सायंप्रातर्होमकरणं द्व्यहकल्पे श्राद्धस्याविरुद्धमेवं वैश्वदेवहोमोऽप्यौपसदाग्निकः। तेन भूतयज्ञात्पराञ्चः पदार्था उत्कृष्यन्ते, नार्वाञ्चः।"

अत्रोच्यते—यदि प्रागग्नौ वैश्वदेवहोमः क्रियते ततः श्राद्धानन्तरं बलिहरणं, तथा सति देवयज्ञभूतयज्ञौ व्यवधीयेताम्। ततश्च क्रमोपरोधः। न च वैश्वदेवस्य कालबाधः क्रियते; पितृश्राद्धकालहानेः। तस्मात्सर्वं महायज्ञानुष्ठानं श्राद्धादौत्तरकालिकम्॥ २६५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विसर्जितास्तत्र यावत्तिष्ठन्तीति **तिष्ठेदित्येतस्य** वचनपरिणामेनानुषङ्गः। **गृहबलिमिति** वैश्वदेवस्याप्युपलक्षणम्॥ २६[illegible]॥

(३) **कुल्लूकः**। तद्ब्राह्मणोच्छिष्टं **तावत्कालं तिष्ठेद्या**वद् ब्राह्मणानां विसर्जनं, ब्राह्मणेषु तु निर्गतेषु मार्ष्टव्यमित्यर्थः। **ततः** संपन्ने श्राद्धकर्मणि [illegible]देवबलिहोमकर्म नित्यश्राद्धातिथिभोजनानि कर्तव्यानि बलिशब्दस्य प्रदर्शनार्थत्वात् अत एव **मत्स्यपुराणे** 'निर्वर्त्य प्रतिपत्त्यर्थं पर्युक्ष्याग्निं च मन्त्रवित्॥ वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं विधिमेव चे'ति॥२६५॥

(४) **राघवानन्दः**। उच्छिष्टस्थितिकालविशेषं विदधद्वै[illegible]देवादेः श्राद्धोत्तरत्वमाह **उच्छेषणमिति**। तथाच मात्स्यम् 'निर्वर्त्य प्रतिपत्त्यर्थं पर्युक्ष्या[illegible] स मन्त्रवित्। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिकर्म चे'ति॥ अतो **मेधातिथिः** तस्मात्सर्वं महायज्ञानुष्ठानं श्राद्धादुत्तरकालिकमिति। **उच्छेषणं** ब्राह्मणोच्छिष्टम्॥ २६५॥

(५) **नन्दनः**। **गृहबलिं** वैश्वदेवहोमभूतबल्यात्मकम्॥ २६५॥

(६) **रामचन्द्रः।** तावदुच्छेषणमुच्छिष्टः **तिष्ठेत् यावद्विप्रा** विसर्जिताः, विसर्जयेदित्यर्थः॥ २६५॥

(७) **मणिरामः।** उच्छेषणं ब्राह्मणोच्छिष्टं तावत्कालं तिष्ठेत् यावद्विसर्जिताः विप्रा निर्गच्छेयुः। तेषु निर्गतेषु प्रमार्ष्टव्यमित्यर्थः। ततः संपूर्णे श्राद्धे। गृहबलिं वैश्वादेवादि कर्म कुर्यात्, बलिशब्दस्य प्रदर्शनार्थत्वात्॥ २६५॥

(८) **गोविन्दराजः। उच्छेषणमिति।** तत् ब्राह्मणोच्छिष्टं तावन्न मार्ष्टव्यं यावद्ब्राह्मणा न निर्गताः। सम्पन्ने च श्राद्धे वैश्वदेवाद्यन्वाहिकं समग्रं कुर्यात्। यथा **व्यासेनोक्तम्**–'यदा श्राद्धं पितृभ्यस्तु दातुमिच्छति मानवः। वैश्वदेवं तदा कुर्यात् निर्वृत्ते श्राद्धकर्मणि॥' **इति धर्मो व्यवस्थितः**॥ २६५॥

**हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्पते।**
**पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥२६६॥**

(१) **मेधातिथिः।** **चिररात्र**शब्दो दीर्घकालवचनः। **यच्चानन्त्याय कल्पते** दीर्घकालतृप्तये जायते तदुभयं ब्रवीमीति प्रणिधानार्थमुच्यते। **कल्पते**, प्रेत इत्यध्याहार्यम्॥२६६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **चिररात्राय** मासादिद्वादशवर्षपर्यन्तानेककालतृप्तये। **आनन्त्यायानन्ताय** कालाय तदूर्ध्वमपि **तृप्तये**॥ २६६॥

(३) **कुल्लूकः।** 'यैश्चान्नै'रिति पूर्वमुक्तमपि व्यवधानादबुद्धिस्थं शिष्यसुखप्रतिपत्तये पुनर्वक्तव्यतया प्रतिजानीते **हविरिति। चिररात्राय**पदमव्ययं **चिरकाल**वाचि। अत एव 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थका' इत्याभिधानिकाः। **यद्धविः** पितृभ्यो यथाविधि दत्तं चिरकालतृप्तये अनन्ततृप्तये च संपद्यते। तन्निःशेषेणाभिधास्यामि॥ २६६॥

(४) **राघवानन्दः।** खादिरन्यायेन श्राद्धाङ्गद्रव्यं विदधत्फलं प्रतिजानीते **हविरिति।** चिररात्रिव्याप्यातीव सुखायेति वाक्यार्थः॥ २६६॥

(५) **नन्दनः। चिररात्रायेति** कालदैर्घ्यम्। **आनन्त्यायेति** हविषोऽक्षय्यत्वम्॥२६६॥

(६) **रामचन्द्रः। यत् हविः चिररात्राय** बहुकालपर्यन्ताय **तदानन्त्याय कल्पते** भवति **पितृभ्यो यद्विधिवद्दत्तं तदशेषतः प्रवक्ष्यामि**॥ २६६॥

(७) **मणिरामः। यत् हविः** पितृभ्यो विधिवद्दत्तं **चिररात्राय** चिरकालतृप्तये **आनंत्याय** च **कल्पते** संपद्यते तन्निःशेषेणाऽभिधास्यामि॥ इदं 'पूर्वमुक्तमपि' शिष्यावधानार्थं पुनरुक्तम्॥ २६६॥

(८) **गोविन्दराजः। हविर्यच्चिररात्रायेति। यत्पितृभ्यो** यथा च **दत्तं** हव्यकव्यमन्नं दीर्घकालतृप्तये सम्यक् प्रतिपद्यते। यच्चान्नं तत्तृप्तये तन्निश्शेषेण **वक्ष्यामि**॥ २६६॥

**तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा॥**
**दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम्॥ २६७॥**

(१) **मेधातिथिः**। तिलादिग्रहणं नेतरधान्यपरिसंख्यानार्थमपि तूक्तानां फलविशेष-प्रदर्शनार्थम्। एतैर्विधिवद् दत्तैरपि मासं प्रीयन्ते। **विधिवत्पितरो नृणामित्याद्यनुवादपदानि** वृत्तपूरणार्थानि ॥ २६७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मूलफलेन** स्मृत्यन्तरे श्राद्धीयत्वेनोक्तेन ॥ २६७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तिलधान्ययवमाषजलमूलफलानामन्यतमेन यथाशास्त्रं श्रद्धया **दत्तेन** मनुष्याणां **मासं पितरस्तृप्यन्ति**। 'कृष्णा माषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः' इति ॥ **वायुपुराण**वचनान्माषैरिति कृष्णमाषा बोद्धव्याः ॥ २६७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेवाह **तिलैरिति** नवभिः। तिलमाषयोः कृष्णत्वं विवक्षितम्। 'कृष्णा माषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः' इति **वराहपुराणोक्तेः**॥ **अद्भिः** नवोदकैः। **विधिवद्दत्तै**रित्यन्वयः। **मास**मित्यादि कालकर्म ॥ २६७ ॥

(५) **नन्दनः**। **दत्तेन** श्राद्धेनेति शेषः ॥ २६७ ॥

(७) **मणिरामः**। तानाह **तिलैरिति** ॥ २६७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तिलैरिति**। **द्वौ मासौ मत्स्यमांसेनेति**। **षण्मासांश्छागमांसेनेति**। तिलधान्ययवमाषोदकमूलफलानां श्राद्धेन **दत्तेन** मनुष्याणां **मासं पितरस्तृप्यन्ति द्वौ** पाठीनादि-मत्स्यमांसेन **त्रीन्** मार्गेण मांसेन **चतुरो** मेषसंबन्धिना, **पञ्च** भक्ष्यपक्ष्युद्भवेन षडाजेन सप्त चित्रमृगसंबन्धिना अष्टौ सारङ्गमांसेन, नव शम्बराख्यमृगजेन ॥ २६७–२६९ ॥

**द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु ॥**
**औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥ २६८**

(१) **मेधातिथिः**। **उरभ्रा** मेषाः। **शकुनय** आरण्याः कुक्कुटाद्याः। **मत्स्याः** पाठीनाद्याः ॥ २६८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मत्स्यः** पाठीनादिः। **उरभ्रो** मेषः। **शाकुनेन** भक्ष्यपक्षिमांसेन ॥ २६८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पाठीनादि**मत्स्यानां मांसेन द्वौ मासौ** पितरः प्रीयन्त इति पूर्वेण संबन्धः। **त्रीन्मासान् हारिणेन** मांसेन। **चतुरो** मेषमांसेन **पञ्च** द्विजातिभक्ष्यपक्षि-मांसेन ॥ २६८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **मत्स्यमांसेन** पाठीनादिमत्स्यानां मांसेन मांसपदं शल्ककण्टक-दग्धादिव्यावृत्त्यर्थं। **हारिणेन** हरिणमांसेन **औरभ्रेण** मेषमांसेन **शाकुनेन** निषिद्धेतरपक्षि-मांसेन इह श्राद्धे दत्तेनेत्यन्वयः ॥ २६८ ॥

(५) **नन्दनः**। **हारिणेन** हरिणमांसेन। हरिणः कृष्णमृगः। **औरभ्रेणोरभ्र**मांसेन, उरभ्रो मेषः ॥ २६८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **औरभ्रेण मांसेन** मेषस्य मांसेन **चतुरो मासान्** तृप्तिर्भवति ॥ २६८ ॥

(७) **मणिरामः । मत्स्याः** पाठीनादयो विहिताः न तु निषिद्धाः । **औरभ्रेण** मेषमांसेन । **शाकुनेन** द्विजातिभक्ष्यपक्षिमांसेन । **द्वौ मासौ** पितरः प्रीयंत इति पूर्वेण संबंधः ॥ २६८ ॥

**षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ॥**
**अष्टावैणेयमांसेन रौरवेण नवैव तु ॥ २६९ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** रुरुपृषतैणा मृगजातिविशेषवचनाः । 'रौरवेण' 'पार्षतेन' 'ऐणेयेति' विकारे तद्धितः ॥ २६९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । पृषतो** बिन्दुमान्मृगः । **एणो** हरिणभेदः । **रुरुर्मृ**गभेदः ॥२६९॥

(३) **कुल्लूकः । षण्मासाञ्छागमांसेन ।** प्रियन्ते पृषतश्चित्रमृगस्तन्मांसेन सप्त । एणमांसेनाष्टौ । रुरुमांसेन नव । एणरुरू हरिणजातिविशेषौ ॥ २६९ ॥

(४) **राघवानन्दः । पार्षतेन** चित्रमृगमांसेन एणो रुरुश्च मृगजातिविशेषौ ॥ २६९ ॥

(५) **नन्दनः । रुरुः** कृष्णसारः ॥ २६९ ॥

(६) **रामचन्द्रः । पार्षतेन** चित्रकेन मृगेण पृषत्संज्ञस्य मृगस्य मांसेन एणसंज्ञस्य मांसेन । **रौरवेण** रुरोर्मांसेन ॥ २६९–२७० ॥

(७) **मणिरामः । पार्षतेन** चित्रमृगमांसेन । एणरुरू हरिणजातिविशेषौ ॥ २६९ ॥

**दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ॥**
**शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ २७० ॥**

(१) **मेधातिथिः । वराहश्चारण्यसूकरः** ॥ २७० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । कूर्मः** कच्छपः ॥ २७० ॥

(३) **कुल्लूकः । दशेति । दशमासानारण्यसूकरमहिषमांसैस्तृप्यन्ति । एकादश** शशकच्छपमांसेन ॥ २७० ॥

(५) **नन्दनः ।** वराहमहिषौ वन्यौ ॥ २७० ॥

(८) **गोविन्दराजः । दशमासांस्तु तृप्यन्तीति । दशमासान्** आरण्यसूकरमहिषमांसैस्तृप्यन्ति । **एकादश** शशकच्छपमांसेन ॥ २७० ॥

**संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ॥**
**वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २७१ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धस्य बलीयस्त्वाद् 'गव्येन पयसेति' सम्बन्धः, न मांसेन प्राकरणिकेन । अन्ये तु चशब्दं समुच्चयार्थीयं पठित्वा व्याख्यानयन्ति– 'मासेन गव्येन पयसा पायसेन वा' ।

पयोविकारः **पायसं** दध्यादि। पयः संस्कृत ओदनः प्रसिद्धः। **वार्ध्रीणसो** जरच्छागः। एवं हि निगमेषु पठ्यते—

"त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्।
वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मणि"॥

पिबतो यस्य त्रीणि जलं स्पृशन्ति कर्णौ जिह्वा च, स त्रिभिः पिबतीति 'त्रिपिबः'। यत्तु शङ्खेन गोमांसभक्षणे प्रायश्चित्तमाम्नातं तन्मधुपर्काष्टकाश्राद्धेभ्योऽन्यत्र ज्ञेयम्॥ २७१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। गव्येन** गोसंबन्धिना **पयसा** न तन्मांसेन गोपयसा सिद्धेनौदनेन **वार्ध्रीणसो** निगम उक्तः कृष्णग्रीवो रक्तशिराः श्वेतपक्षो विहङ्गमः॥ २७१॥

(३) **कुल्लूकः। वर्षं** पुनर्गोभवक्षीरेण तत्साधितोदनेन च तुष्यन्ति। तत्रैव पायसशब्दप्रसिद्धेः। **वार्ध्रीणसस्य मांसेन** द्वादशवर्षपर्यन्तं पितृतृप्तिर्भवति। वार्ध्रीणसश्च **निगमे** व्याख्यातः। 'त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मणि॥' नद्यादौ पयःपिबतो यस्य त्रीणि जलं स्पृशन्ति कर्णौ जिह्वा च त्रिभिः पिबतीति त्रिपिबः॥ २७१॥

(४) **राघवानन्दः। गव्येन** मांसेन **पयसा** गोदुग्धेन तत्साध्येनौदनेन वार्ध्रीणसेनेति। 'त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतवृद्धमजापतिं। वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्याक्षिका यज्ञकर्मणी'ति॥ जिह्वया कर्णाभ्यामपः पिबतीति त्रिपिबः लम्बकर्णवृद्धच्छागो वार्ध्रीणस इति स्मृतः॥ २७१॥

(५) **नन्दनः। वार्ध्रीणसो** महान्खड्गमृगः॥ २७१॥॥

(६) **रामचन्द्रः। वार्ध्रीणसस्य** वृषस्य छागस्य पक्षिविशेषस्य **मांसेन द्वादशवार्षिकी** तृप्तिः स्यात्॥ २७१॥

(७) **मणिरामः। वार्ध्रीणसश्च** निगमोक्तो यथा '**त्रिपिबः** त्विद्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिका यज्ञकर्मणी"ति। जलं पिबतो 'यस्य' कर्णौ जिह्वा च जलं स्पृशति 'स' त्रिपिबः॥ २७१॥

(८) **गोविन्दराजः। संवत्सरं तु गव्येनेति। संवत्सरं तु** पुनः **गव्येन** क्षीरेण **वार्ध्रीणसस्य** च। त्रिःपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुः याज्ञिकाः पितृकर्मणि॥' इत्येवं निगमे पठितस्य **मांसेन द्वादशवार्षिकी तृप्तिर्भवति**। पिबतः कर्णजिह्वं यस्य जलं स्पृशति सः त्रिःपिब इव त्रिपिबः॥ २७१॥

**कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु॥**
**आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥ २७२॥**

(१) **मेधातिथिः। कालशाकं** विशिष्टशाकं प्रसिद्धम्। कृष्णे वास्तुकभेदे **वा**। **महाशल्काः** शल्यका उच्यन्ते। अन्ये तु मत्स्यान् सशल्कानाहुः। **खड्गो** गण्डकः। **लोहः** कृष्णश्छागः, सर्वरक्तश्च। तथा पुराणम् "कृष्णश्छागस्तथा रक्त आनन्त्यायैव कल्पते"।

लोहशब्दो वर्णलक्षणया तद्वर्णयुक्ते छागे वर्तते। अयः कृष्णं, ताम्रं लोहितं, उभयत्रापि लोह-शब्दः प्रयुज्यते। यद्यपि चैष वर्णो मेषादिष्वपि संभवति, तथापि स्मृत्यन्तरप्रसिद्धया छाग एव गृह्यत इति व्याचक्षते। **अन्ये तु** शकुनिर्लोहपृष्ठः नामैकदेशेन, देवदत्तो दत्त इतिवत्, प्रतिपाद्यत इत्याहुः। समाचारश्चोभयत्राप्यन्वेष्यः। **मधु** माक्षिकम्। तत्रेत्रात्र प्रीत्यति-शयोत्पत्तिर्विवक्षिता, न तु यथाश्रुत एव कालः। तथाहि द्वादशवर्षाण्यकारणं स्यात्। तत्र विरुध्येत "पितृयमा निधनात् कार्यमिति"॥ २७२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सर्वशः** सर्वाणि॥ २७२॥

(३) **कुल्लूकः। कालशाकाख्यं** शाकं **महाशल्काः** सशल्का इति **मेधातिथिः।** मत्स्य-विशेषा इति युज्यन्ते 'महाशल्कलिको मत्स्या' इति वचनात्। **खड्गो** गण्डकः **लोहो** लोहितवर्णः छाग एव 'छागेन सर्वलोहेनानन्त्य'मिति **पैठीनसि**वचनात्तयोरामिषं **मधु** माक्षिकं **मुन्यन्नानि** नीवारादीनि आरण्यानि सर्वाणि एतान्यनन्ततृप्तये संपद्यन्ते॥ २७२॥

(४) **राघवानन्दः। महाशल्काः।** 'महाशल्किनो मत्स्या' इति **यमवचनात्** ज्ञेया इति **केचित्** शल्यका इति **मेधातिथिः।** खड्गो गण्ड इति ख्यातः। **लोहो** लोहितच्छागः। 'सर्वलोहेनानन्त्य'मिति **पैठीनसि**वचनात्॥ २७२॥

(५) **नन्दनः। कालशाकः** कृष्णनिम्बः। **महाशल्को** मत्स्यविशेषः॥ २७२॥

(६) **रामचन्द्रः।** 'चेवकः चिञ्चुकश्चैव **कालशाकः** प्रकीर्तितः'। महाशल्यं मत्स्य-खण्डं खड्गमांसं **लोहामिषं** रक्तछागभवं वा लोहशब्दो रक्तवर्णतः॥ २७२॥

(७) **मणिरामः। कालशाकाख्यं** शाकं। **महाशल्काः** मत्स्यविशेषाः। 'महाशल्कि-नो मत्स्या' इति वचनात्। **खड्गः** गंडकः। **लोहामिषं** लोहितवर्णछागमांसम्॥ २७२॥

(८) **गोविन्दराजः। कालशाकं महाशल्कमिति। कालशाकाख्यं** शाकं **महाशल्काख्यो** मत्स्यभेदः शकलीचितचिम इत्याद्यायुर्वेदप्रसिद्धः। **खड्गो** गण्डकः **लोहो** रक्तछागः। तयोरा-मिषं मांसं मधुमाक्षिकं **मुन्यन्नानि** आरण्यानि सर्वाण्येतानि अनन्ततृप्त्युत्पादनाय संपद्यन्ते॥ २७२॥

**यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम्॥**
**तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च॥ २७३॥**

(१) **मेधातिथिः। यत्किंचिदन्नं मधुना** संयुक्तम्। त्रयोदश्यां **वर्षासु च मघासु** चाधिकमिति। तदा च **तदक्षयमेव।** ऋतुनक्षत्रतिथीनां च समुच्चयः। **आपस्तम्बवचनात्तु** वर्षासु त्रयोदश्यष्टमीदशमीष्वपि। मघासु चान्तरेणाविवक्षा। "एवं ह स्माह मघासु चाधिक-मिति" (आपस्तम्ब. २।८।१९।२०)॥ २७३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। यत्किंचित्**पायसादन्यदपि चतुर्मासऋतुव्यवस्थया। **वर्षासु मघासु** मघानक्षत्रे **त्रयोदशीं** त्रयोदश्यामिति समुच्चिते तात्पर्यम्। चकारद्वयस्यान्योन्यसमुच्च-यार्थत्वात्॥ २७३॥

(३) **कुल्लूकः।** ऋतुनक्षत्रतिथीनामयं समुच्चयः। **यत्किंचिदि**त्यप्रसिद्धम्। मधु-संयुक्तं **वर्षाकाले मघात्रयोदश्याम्** दीयते तदप्यक्षयमेव भवति। त्रयोदश्यां अधिकरणत्वेऽपी-प्सितत्वविवक्षया प्राप्येत्यध्याहाराद्वा द्वितीया ।। २७३ ।

(४) **राघवानन्दः।** द्रव्यानुवादेन कालं विधत्ते **यदिति** द्वाभ्यां। संदिग्धेषु वाक्यशेषा-दिति न्यायेनाञ्जनं द्रव्यं घृतमिति यावत्। "अपि न" इत्यादिवाक्यशेषबलात् जर्तिलन्यायाच्च त्रयोदशीविधिः। अन्यथा वाक्यभेदात् वर्षास्वित्यादेस्तद्‌गुणत्वम्। न च वैपरीत्यं, तिथेरेव प्राधान्यात्। अरुणन्यायाद्वा विशिष्टविधिः। वर्षाविच्छिन्नमघानक्षत्राद्यन्वयादविरुद्धसाधनानां समुच्चय एव युक्तः। अत एव **मेधातिथिः** प्रकृतां त्रयोदशीं वर्षादिगुणयुक्तामधिकृत्योच्यते इति। बहुवचनं प्रत्याब्दिकसूचनार्थमनपेक्षत्वात्। यथा पयसाऽग्निहोत्रं जुहोतीति पयो-होमपरे वाक्ये जर्तिलयवाग्वा जुहोतीत्याद्यर्थवादः, एवं त्रयोदशीश्राद्धप्रशंसापरमन्यत्सर्व-मिति न्यायार्थः ।। २७३ ।।

(५) **नन्दनः।** सर्वस्मिन्नपि काले भवत्यक्षयम्। **वर्षासु** भाद्रपदे मासे **मघासु** माघमासे। अनयोर्मासयोर्यत्किंचिद्बहुलत्रयोदश्यां दत्तं तदप्यक्षयम् ।। २७३ ।।

(७) **मणिरामः। यत्किंचित्** अप्रसिद्धं। वर्षाकाले मघायुक्त**त्रयोदश्यां** ।। २७३।।

(८) **गोविन्दराजः। यत्किञ्चिन्मधुसंयुक्तमिति। यत्किञ्चि**दप्रतिषिद्धं मधुसंयुक्तं वर्षाकाले मघात्रयोदश्यां हस्तिसंबन्धिनी छाया यस्मिन् प्रदेशे प्राची दिशं गता तत्र तस्यां छायायां मधुसंयुक्तं पायसं **दद्यात्** ।। २७३ ।।

**अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।।**
**पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ।। २७४ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** प्रकृतां त्रयोदशीं वर्षादिगुणयुक्तामधिकृत्येदमुच्यते। एवं पितर आशासते। **अस्माकं कुले भूयात्स** तादृशो जायतां उत्कृष्टगुणः यः प्रागुक्तायां त्रयोदश्या-मस्मभ्यं **दद्यात्पायसं मधुसर्पिः**संयुक्तम्। तथा **कुञ्जरस्य** हस्तिनः **प्राक्छाये** प्राच्यां दिशि गतायां छायायां, अपराह्णेतरे काल इत्यर्थः। शेषेऽह्नि हस्तिनो दीर्घा प्राचीछाया भवति। 'प्राक्च्छायां' इति वा पाठः। छायायां हि ब्राह्मणा भोज्यन्ते। अग्रिमं कर्म तु यद्यल्प-त्वाच्छायायां न संभवति, तद्देशान्तरे तत्समीपे कर्तव्यम्। अङ्गत्वात्सति संभवे तत्सर्वाङ्गोपेतं प्रधानं हस्तिच्छायायामेव।

यत्तु व्याचक्षते--" ग्रहोपरागो हस्तिच्छायोच्यते। हस्ती वै भूत्वा स्वर्भानुरासुरिरादित्यं तमसाविध्यदिति"—तदयुक्तम्; तत्र हि गौणो हस्तिशब्दप्रयोगः। स्मृत्यन्तरे च पृथगेव हस्तिच्छाया ग्रहोपरागादाम्नाता "हस्तिच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोरिति" ।। २७४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अपि न इति पितृगाथानुकीर्तनम्। पायसे फलबाहुल्यार्थं। **त्रयोदशीं** त्रयोदश्यां वर्षासु मघासु मघानक्षत्रे चेत्यपि। तथा **कुञ्जरस्य** हस्तिनः **प्राक्छाये** प्राग्गामिन्यां छायायां अपराह्णे गजस्य छायायामित्यर्थः ।। २७४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** वर्षासु मघायुक्तत्रयोदशी पूर्वोक्ता विवक्षिता। तत्रापि "प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां **त्रयोदशीम्।** प्राप्य श्राद्धं हि कर्तव्यं मधुना पायसेन च" ॥ इति **शङ्ख-वचनात्।** भाद्रकृष्णत्रयोदशी पूर्वत्रेह च गृह्यते। पितरः किलैवमाशासते अपि नाम तथाविधः कश्चिदस्माकं कुले भूयात्। योऽस्मभ्यं प्रकृतायां त्रयोदश्यां तथा तिथ्यन्तरेऽपि हस्तिनः पूर्वां दिशं गतायां छायायां मधुघृतसंयुक्तं पायसं दद्यात्। न तु त्रयोदशीहस्तिच्छाययोः समुच्चयः। यथाह **विष्णुः** "अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः। प्रावृट्काले सिते पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः॥ मधुप्लुतेन यः श्राद्धं पायसेन समाचरेत्। कार्तिकं सकलं वापि प्राक्छाये कुञ्जरस्य च" इति ॥ २७४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **अपीति** ॥ पितर आशासते अपि संभाव्यते। सोऽस्माकं कुले जायाद्यो नोऽस्मभ्यं दद्यादिति। "अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः। प्रावृट्काले सिते पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः॥ मधूत्कृष्टेन यः श्राद्धं पायसेन समाचरेदि"ति **विष्णूक्तेः** ॥ **प्राक्छाये कुञ्जरस्येति** विध्यन्तरं प्रागिति निर्देशात्। कुञ्जरस्यैव छाया विवक्षिता, न तु योगविशेषः। कर्णव्यजनवीजितमिति वाक्यान्तराच्चेति। अपराह्णे तस्य प्राच्यां छाया स्यात् ॥ २७४ ॥

(५) **नन्दनः।** अयं श्लोकः पितृगीतः ॥ २७४ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** पितर ऊचुः नः अस्माकं कुले शं भूयात्। **त्रयोदशीं** त्रयोदश्यां नः अस्माकं मधुसंमिश्रं किंचिद्दद्यात्। **पायसं मधुसर्पिभ्याँ** मिश्रं **कुञ्जरस्य प्राक्छाये** आशासते। अस्माकं कुले भूयादिति वदन्ति। दद्यात् **प्राक्** पूर्वस्यां दिशि गतायां छायायां अपराह्णे। तत्र **श्रीपतिराह** "कृष्णे पक्षे त्रयोदश्यां मघासिन्धुकरे रविः। यदा तदा **गजच्छायाश्राद्धं** पुण्यैरवाप्यते" इति ॥ २७४ ॥

(७) **मणिरामः।** **कुञ्जरस्य प्राक्छाये** हस्तिनः पूर्वदिग्गतायां छायायाम् ॥ २७४ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **अपीति** ॥ २७४ ॥

**यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥**
**तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ २७५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **यद्यदिति** वीप्सायां, अप्रतिषिद्धं सर्वमन्नमनुजानाति। **विधिवत् सम्यक्**शब्दानुवादः। **श्रद्धासमन्वित** इत्येतदत्र विधीयते। श्रद्धया दातव्यम्। तथा **दत्तमनन्तमक्षयं भवति पितॄणां** परलोके। **अनन्तमिति** वा कालावधिनिषेधः। **अक्षयमिति** मात्रया व्ययाभावमाह। सर्वकालं भवति प्रभूतं च ॥ २७५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **यद्यद्धे**मवस्त्राद्यपि ददाति मघात्रयोदश्यामेव। **विधिवत् सम्यग्**विधिना **आनन्त्य**मतिकालस्थायि **अक्षय**मनल्पतां गतम् ॥ २७५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **यद्यदिति** वीप्सायाम्। सर्वमन्नमप्रतिषिद्धं यथाशास्त्रं **सम्यग्**रूपश्रद्धायुक्तः पितृभ्यो ददाति तदनन्तकं सर्वकाल**मक्षयम**नपचितं परलोके पितृतृप्तये भवति। अतस्तत्फलार्थिना श्रद्धया देयमिति विधीयते ॥ २७५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। श्राद्धाच्च प्रत्ययविशेषोऽपि श्राद्धाङ्गमित्याह **यदिति**। श्रद्धा हि पितरः सन्ति अस्ति च तेषां श्राद्धेन तृप्तिरिति ज्ञानं तयान्वितस्तद्युक्तः **आनन्त्यं** नानाप्रकारं **अक्षयम**विनाशि कल्पस्थायीति यावत् ।। २७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **यद्यत् विधिवत्पितृणां** ददाति **तत्तत्पितृणां आनन्त्यमक्षयं** भवति ।।२७५।।

(७) **मणिरामः**। यद्देयं तत् श्रद्धया देयमित्याह **यदिति** ।। २७५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यद्यद्ददाति** विधिवत् **सम्यक् श्रद्धासमन्वितम्। तत्तत्पितृणां भवति परत्रानन्त्यमव्ययम्** ।। यद्यदप्रतिषिद्धं **सम्यग्** रूपश्रद्धायुक्तो यथाशास्त्रं दद्यात् इति तत्र सर्वकालमनपचयं परलोके पितृणां भवति अन्नं च सत्यपि द्विमासाद्यनन्ततावधि तृप्तियदेवं कुर्वन् मासानुमासिकमिति नोदनात् शास्त्रैकगोचरत्वेन चामुष्यार्थस्य तृप्तानामाप्यायनक-पुत्रोऽपहृतकव्यतृप्तिसामर्थ्यात् प्रतिमासमेतदवश्यं कर्तव्यम् ।। २७५ ।।

**कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।।**
**श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ।। २७६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। दशम्यादीनां वचनात्फलातिशयोत्पत्तिः। अन्यास्वपि तु सत्यां श्रद्धायां कर्तव्यम्। चतुर्दश्यां तु निषेध एव ।। २७६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अमावास्याश्राद्धमवश्यम्, पितृतृप्तिबाहुल्यार्थतायां तु **कृष्णपक्षे** दिनान्तरेऽपि कार्यं, तत्रापि दशम्यादिदिनचतुष्टयमधिकफलमित्यर्थः। चतुर्दशी-वर्जनमशस्त्रहतानां। 'यथा चेति विशिष्यत' इति वचनात्। अपरपक्षेऽपराह्णे चासंभवे पूर्वपक्षे पूर्वाह्णे च कार्यमिति लभ्यते ।। २७६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **कृष्णपक्षे** दशमीमारभ्य **चतुर्दशीं** त्यक्त्वा **श्राद्धे यथा तिथयः** श्रेष्ठा महाफला न तथैतदन्याः प्रतिपदादयः ।। २७६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। श्राद्धस्य प्रशस्तान् तिथीनाह **कृष्णपक्ष इति**। एकां **चतुर्दशीं वर्जयित्वा** अमान्ताः पञ्चेतराः प्रतिपदादिनवम्यन्ता नव प्रशस्ताः, तास्वपि श्राद्धं कार्यम्। तदुक्तं **याज्ञवल्क्येन** (१/२६२) 'कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून् मुख्यान् सुतानपि। द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफास्तथा ।। ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके। ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ।। प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीं। शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते' इति ।। २७६ ।।

(५) **नन्दनः**। अनेन पूर्वपक्षपूर्वाह्णयोरपि श्राद्धं कर्तव्यमिति सूचितम् ।। २७६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। श्राद्धे प्रशस्तास्तिथय एताः। तथेतरा न ।। २७६ ।।

(७) **मणिरामः**। **नेतराः** प्रतिपदादयः ।। २७६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कृष्णपक्ष इति। कृष्णपक्षे दशमी**प्रभृति चतुर्दशीं वर्जयित्वा **तिथयः श्राद्धे प्रशस्ताः** युक्ताः महाफलाः पवित्राः प्रशस्ता **न तथेतरा** इति ।। २७६ ।।

**युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ।।**
**अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ।। २७७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। युग्मि दिनानि द्वितीयाचतुर्थ्यादीनि। ऋक्षं नक्षत्रम् तानि, भरण्यादीनि युग्मि भवन्ति। प्रतिपत्तृतीयापञ्चमीसप्तमीनवम्यास्तिथयोऽयुज उच्यन्ते। द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यष्टमीदशम्यो युजः। एवमेकादश्ययुक्प्रभृतौ द्रष्टव्यं नक्षत्रेष्वपि। **सर्वान् कामान्**। ते च कामा इतिहासपुराणयोर्भेदेनोपात्ताः। **पुष्कलां प्रजाम्**। धनविद्याबलपुरुषैः पुष्टा पुष्कला ।। २७७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **युक्षु** युग्मेषु दिनेषु तिथिषु द्वितीयाचतुर्थ्यादिषु **ऋक्षेषु** युक्षु रोहिण्यार्द्रादिषु **अयुक्षु** प्रतिपदादिषु कृत्तिकादिषु च ।। २७७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। दिनशब्दोऽत्र तिथिपरः। **युक्षु** युग्मासु तिथिषु द्वितीयाचतुर्थ्यादिषु युग्मनक्षत्रेषु भरणीरोहिण्यादिषु श्राद्धं कुर्वन्सर्वाभिलषितान्**प्राप्नोति**। अयुग्मासु तिथिषु प्रतिपत्तृतीयाप्रभृतिष्वयुग्मेषु च नक्षत्रेष्वश्विनीकृत्तिकादिषु श्राद्धेन **पितॄन्**पूजयन्पुत्रादिसन्ततिं लभते **पुष्कलां** धनविद्यापरिपुष्टाम् ।। २७७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव युग्मायुग्मभेदेन फलमाह **युक्ष्विति**। **युक्षु** युग्मेषु दिनपदं तिथिपरं तेन द्वितीयाचतुर्थ्यादयः। नक्षत्राणि भरणीरोहिण्यादीनि युग्मानि तेष्वित्यर्थः। **पुष्कलां** प्रशस्तां सर्वान् कामानिति पूर्वोद्धृतयाज्ञवल्क्यवचनात् ज्ञेयम् ।। २७७ ।।

(५) **नन्दनः**। **युक्षु** युग्मेषु। दिनशब्देन सूर्यवारादीनां ग्रहणम्। ऋक्षशब्देन च कृत्तिकादीनाम्। **कुर्वञ्छ्राद्धमिति** शेषः ।। २७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **युक्षु** युग्मासु द्वितीयादितिथिषु **दिनर्क्षेषु** भरण्यादिषु यः श्राद्धं **कुर्वन्** सः **सर्वान्कामान् अश्नुते** प्राप्नोति। **अयुक्षु** अयुग्मासु प्रतिपदश्विन्यादिषु नक्षत्रेषु यः **पितॄनर्चयन्स पुष्कलां** बहुप्रजां सन्ततिं **प्राप्नोति** ।। २७७ ।।

(७) **मणिरामः**। **दिनशब्दः** तिथिपरः। **युक्षु** युग्मासु तिथिषु द्वितीयाचतुर्थ्यादिषु। युक्षु ऋक्षेषु युग्मनक्षत्रेषु भरणीरोहिण्यादिषु **सर्वान् कामान्** मनोभिलषितान्। **अयुक्षु दिनर्क्षेषु** प्रतिपत्तृतीयादिषु अश्विनीकृत्तिकादिषु। **प्रजां** सन्ततिं **पुष्कलां** धनविद्यापरिपुष्टां **प्राप्नोति** ।। २७७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **युक्ष्विति**। युग्मासु तिथिषु द्वितीयाचतुर्थ्यादिषु युग्मेषु नक्षत्रेषु अश्विनीकृत्तिकादिषु श्राद्धेषु पितॄन् पूजयन् श्रुतधनादिपरिपुष्टां सन्ततिं **प्राप्नोति** ।। २७७ ।।

**यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।।**
**तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ।। २७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **पूर्वपक्षः** शुक्लपक्षः, **अपरः** कृष्णपक्षः। चैत्रसिताद्या मासा इति। यथा **श्राद्धस्य** शुक्लपक्षात् कृष्णपक्षो **विशिष्यते** प्रकृष्टफलदो भवति तथा **पूर्वाह्णादपराह्णो**

विशेषवचनात् पूर्वाह्णेऽपि कदाचित्कर्तव्यमेवेति प्रतीयते। ननु च प्रसिद्धेन दृष्टान्तेन भवितव्यम्। न चापरपक्षस्य पूर्वपक्षाच्छ्राद्धं प्रति विशेष उक्तः।

केचिदाहुः 'कृष्णपक्षे दशम्यादा'(३।२७३)वित्येतस्मात्प्रतीयते। एवं तु ब्रूमः— 'वचनानि त्वपूर्वत्वात्' (मी० सू० ३।१५।२१) इत्यनेन न्यायेनाप्रसिद्धस्य दृष्टान्ततास्तीति। विधिरपि दृष्टान्तवचनादेव शक्योऽवगन्तुम्॥ २७८॥

(३) **कुल्लूकः**। 'चैत्रसिताद्या मासा' इति ज्योतिःशास्त्रविधानाच्छुक्लपक्षोपक्रमत्वान्मासानाम**परः पक्षः** कृष्णपक्षः। स यथा—शुक्लपक्षाच्छ्राद्धस्य संबन्धी विशिष्टफलदो भवति। एवं 'पूर्वार्धदिवसादुत्तरार्धदिवसः प्रकृष्टफलो विशिष्यत' इति वचनात्पूर्वाह्णेऽपि श्राद्धकर्तव्यतां बोधयति। ननु शुक्लपक्षादनुक्तोत्कर्षस्यापरपक्षस्य कथं दृष्टान्तता? प्रसिद्धो हि दृष्टान्तो भवति। उच्यते। 'कृष्णपक्षे दशम्यादा'(३।२७३)वित्यत्रैव विशिष्टविधावुत्कर्षाभिधानात्॥ २७८॥

(४) **राघवानन्दः**। कृष्णपक्ष इत्युक्तं तत्रैवार्थवादमाह **यथेति**। **अपर पक्ष** इति दृष्टान्तार्थम्। **पूर्वपक्षात्** शुक्लपक्षात्॥ २७८॥

(६) **रामचन्द्रः**। **पूर्वपक्षात्** शुक्लपक्षात् यथाऽपरपक्षो विशिष्यते तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णकालादपराह्णकालो विशिष्यते। 'अपराह्णः पितॄणा'मिति श्रुतेः। आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः आषाढीमवधिं कृत्वा **अपरः पक्षः कृष्णपक्षस्य आश्विनस्य**॥ २७८॥

(७) **मणिरामः**। **अपरः पक्षः** कृष्णपक्षः॥ २७८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। 'चैत्रसिताद्या मासा' इति ज्योतिःशास्त्रदर्शनेन **अपरपक्षः** शुक्लपक्षात् श्राद्धे विशिष्टफलो भवति। एवं श्राद्धसंबन्धिपूर्वाह्णभागादपराह्णभागो विशिष्टफलो भवति। **विशिष्यत** इति वचनात् कदाचित् पूर्वाह्णेऽपि श्राद्धं कर्तव्यमिति प्रतीयते। दृष्टान्तस्य च दृष्टान्तदानान्यथानुपपत्त्यैव सिद्धिर्बोद्धव्या। नह्यसिद्धस्य दृष्टान्ततोपपद्यते॥ २७८॥

**प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा॥**
**पित्र्यमा निधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना॥ २७९॥**

(१) **मेधातिथिः**। यत्किञ्चित्**पित्र्यं** तत्र कर्मण्ययं विधिः। पदार्थाः प्राग्व्याख्याताः। **अतन्द्रिणा** अनलसेन, श्रद्दधानेनेति यावत्। **आ निधनादा** मरणाद्, यावज्जीविकोऽयं विधिरित्यर्थः। **दर्भपाणिना**। तदुक्तं 'दर्भाः पवित्र'मिति तद्ग्रथितशीर्षकं दर्भमयं पवित्रमुच्यते॥ २७९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अपसव्यम**प्रादक्षिण्येन तेन पित्रादिविप्राणां प्रागपवर्गोपवेशनमप्रदक्षिणकर्मकरणार्थमित्यादि लभ्यते। **आ निधनादा**समाप्तेः। **पित्र्यं प्राचीनावी**त्यादिना **कार्यं**। न तु तन्मध्यपतितं दैवमपि **विधिवद**न्यूनानधिकाङ्गम्॥ २७९॥

(३) **कुल्लूकः**। दक्षिणसंस्थितयज्ञोपवीतेनानलसेन दर्भहस्तेना**पसव्यं** पितृतीर्थेन यथाशास्त्रं सर्वं पितृसंबन्धि कर्म **आ निधनादा**समाप्तेः कर्तव्यम्। **आ निधना**द्यावज्जीवमिति **मेधातिथिगोविन्दराजौ**॥ २७९॥

(४) **राघवानन्दः।** श्राद्धाङ्गतया कार्यान्तरं विधत्ते **प्राचीनावीतीति। अपसव्यं** पितृतीर्थं तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्मध्यं। **अतन्द्रिणा** अनलसेन। **आ निधनादासमाप्तेर्विधिवद्य-**थाशास्त्रम् ॥ २७९ ॥

(५) **नन्दनः।** नियमान्तराण्याह **प्राचीति। आ निधनादा** समाप्तेः ॥ २७९ ॥

(७) **मणिरामः। प्राचीनावीतिना** दक्षिणस्कंधस्थितयज्ञोपवीतेन। **अतन्द्रिणा** अनलसेन। **अपसव्यं** पितृतीर्थेन **आ निधनात्** आ कर्मसमाप्तेः ॥ २७९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। प्राचीनावीतिनेति।** सर्वेण प्राचीनावीतीत्युक्तप्राचीनावीत-युक्तेनानलसेन दर्भपवित्रहस्तेन **अपसव्यपितृतीर्थेन** यथाशास्त्रं सम्यक् **पित्र्यं** कर्म यावज्जीवं कार्यम् ॥ २७९ ॥

**रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ॥**
**सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ २८० ॥**

**[कुर्वन् प्रतिपदि श्राद्धं स्वरूपा लभते प्रजाम् ॥**
**कन्यकाश्च द्वितीयायां तृतीयायां तु वाजिनः ॥ १ ॥**

**पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां शोभनान्सुतान् ॥**
**षष्ठ्यां द्यूतमवाप्नोति सप्तम्यां लभते कृषिम् ॥ २ ॥**

**अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदो नरः ॥**
**नवम्यां वै चैकशफान् दशम्यां द्विखुरान् बहून् ॥ ३ ॥**

**एकादश्यां तथा रौप्यं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥**
**द्वादश्यां 'जातरूपं' च रजतं कुप्यमेव च ॥ ४ ॥**

**ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु कुप्रजाः ॥**
**प्रीयन्ते पितरश्चास्य ये च शस्त्रहता रणे ॥ ५ ॥ §**

**पक्षाद्यादिषु निर्दिष्टान्विपुलान्मनसः प्रियान् ॥**
**श्राद्धदः पञ्चदश्यां च सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ६ ॥]**

(१) **मेधातिथिः।** ननु चापराह्णविधानात्कुतो रात्र्यादिषु प्राप्तिः? अथ मतविशेष-वचनेनान्यत्राप्यस्तीति ज्ञापितम्?। सत्यम्। पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यत इति यदपेक्षं विशेषवचनं तत्रैवास्तीति सामान्यज्ञानं प्रवर्तते। तेन पूर्वाह्ण एव कदाचित्तस्यान्य उत्तरकाल इति केचिदाहुः। 'ग्रहणं चन्द्रसूर्ययो'रिति चन्द्रग्रहादिषु रात्र्यादावपि प्राप्तः, तन्निषेधार्थम्। अतश्च सन्ध्यायां चन्द्रसूर्ययोरुपरागेण रात्रौ चन्द्रग्रहणे प्रतिषेधाद् विधानाद्विकल्पः। अन्ये त्वाहुः—मध्याह्नकालः पूर्वाह्णापराह्णाभ्यामन्यस्तत्राप्येतेन प्रतिषेधेन कर्तव्यमिति ज्ञाप्यते। **सूर्ये** चैव पूर्वाह्णकालत्वात्प्रथमोदिते सूर्ये प्रतिषेधः। **राक्षसीत्यर्थवादः** ॥ २८० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। रात्रौ श्राद्धमिति** निषेधात्पार्वणादेर्नित्यस्यापराह्णेऽसंभवे पूर्वाह्णेऽपि करणमनुमतम्। अत एवापराह्णो विशिष्यत इत्युक्तम्। एवं च **दिवा** नित्यश्राद्धस्य दैवादकरणे लोप एवेति दर्शितम्। **सूर्येऽचिरोदिते** सङ्गवाख्यषण्मुहूर्तमध्ये ।। २८० ।।

(३) **कुल्लूकः। रात्रौ श्राद्धं न** कर्तव्यम्। यस्माच्छ्राद्धविनाशनगुणयोगाद्राक्षसी मन्वादिभिरसौ कथिता। **सन्ध्ययोश्च** न कुर्यादादित्ये **चाचिरोदिते।** अचिरोदितादित्यकालश्चापेक्षाया त्रिमुहूर्तः प्रातःकालो ग्राह्यः। यथोक्तं **विष्णुपुराणे** 'रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ। प्रातस्ततः स्मृतः कालो भागः सोऽह्नस्तु पञ्चमः।।' अपराह्णस्य श्राद्धाङ्गतया विधानात् कथमयमप्रसक्तप्रनिषेध इति चेत्,–नायं **प्रतिषेधः**। सहि रागप्राप्तस्य वा स्यात् विधिप्राप्तस्य वाऽन्याद्यः। नात्र रागतो नित्यस्य **दर्शश्राद्धस्य** प्राप्तत्वात् विधिप्राप्तस्य निषेधे षोडशिग्रहणाग्रहणवद्विकल्पः स्यात् तस्मात्पर्युदासोऽयम्। रात्र्यादिपर्युदस्तेतरकाले श्राद्धं कुर्यात्। अनुयाजेतरयजतिषु'येयजामहे'इति मन्त्रवत्। अपराह्णविधिश्च प्राशस्त्यार्थः। अत एवोक्तम् (३।२७८)। 'यथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यत' इति ।।२८०।।

(४) **राघवानन्दः।** 'श्राद्धस्य संपदः स्यु'रित्युक्तं तस्य प्राशस्त्यं द्योतयन् पर्युदासन्यायेन रात्र्यादिचतुष्टयातिरिक्तकाले कुर्यादनुयाजव्यतिरिक्ते यजतिवत्। यजतिषु येयजामहं करोति नानुयाजेषु इत्यादिवदित्याह **रात्राविति। अचिरोदिते** प्रथमोदिते। "अपराह्णे विशिष्यत" इति प्राशस्त्यस्मृतेः। षष्टिदण्डात्मिकायां तिथौ प्राप्तायां निषेधः सार्थक इति भावः।। २८० ।।

(६) **रामचन्द्रः। सूर्ये अचिरोदिते** प्रथमोदिते सङ्गवकाले वा ।। २८० ।।

[**रामचन्द्रः। शाकलः** "युवानस्तु म्रियन्तेऽत्र कामोद्रेकेण वै द्विजाः। तेषां श्राद्धं चतुर्दश्यां नान्येषां तु कदाचन।" अस्यार्थः–अन्येषां ज्वरादिना मृतानां चतुर्दश्यां श्राद्धं न कार्यम् किंतु तत् त्रिधा। **बाष्कलः** "कामाग्निना च दह्यन्ते ये युवानः कदाचन। तेषां हि पितृपिण्डश्च भूतायामपि निर्वपेत्। स्त्रीणामप्येवमेकं स्यात् कामासक्ता गतासवः। तासां श्राद्धं हि भूतायां प्रसूत्या मरणं यदि"।। २८० ।।]

[**रामचन्द्रः। पक्षेति।** पक्षाद्यादिषु पक्षादिः आदिर्यासां ताः पक्षाद्यादयः तासु पक्षाद्यादिषु प्रतिपदाद्यासु पञ्चदश्यां अमायां श्राद्धदः सर्वान्कामानवाप्नोति ।। ६ ।।]

(७) **मणिरामः।** चिरोदिते मुहूर्तत्रयात्मके प्रातःकाले यथोक्तं **विष्णुपुराणे** 'रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तं गते रवौ। प्रातस्ततः स्मृतः कालो भागतोऽह्नस्तु पंचमः' ।।२८०।।

(८) **गोविन्दराजः। रात्राविति। रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत** श्राद्धस्य ध्वंसनसामान्यात् **राक्षसी** चासौ मन्वादिभिः कथिता। तथा **सन्ध्ययोः** 'आदित्येऽचिरोदिते' इति रात्र्यादौ निषेधं कुर्वन् अपराह्णादन्यत्रापि तिथिच्छेदग्रहणाद्यपेक्षया श्राद्धमस्तीति ज्ञापयति मासानुमासिकश्राद्धाद्यसंभवेन ।। २८० ।।

**अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ।।**
**हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् ।। २८१ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** पूर्वोक्तेन **विधिना** इतिकर्तव्यताकलापेन पूर्वेद्युर्निमन्त्रणादिभिः संवत्सरस्य **त्रिः श्राद्धं** कुर्वीत। केषु मासेष्वित्यत आह **हेमन्तग्रीष्मवर्षासु**। मासानुमासिकमित्यस्य त्रिः संवत्सरत्रिविधिर्वैकल्पिकः। **पाञ्चयज्ञिकः** पञ्चमहायज्ञमध्ये यः पठितः सोऽन्वहं कर्तव्यः। अस्य च प्राचीनावीत्यपसव्योदङ्मुखब्राह्मणभोजनमित्येतावत्येवेतिकर्तव्यता। एवमर्थमेव पुनरुपन्यासः। एवं त्रिः संवत्सरविधिरनाहिताग्नेरित्येवं पूर्वे व्याचक्षते, प्रमाणं तु त एवं विदन्ति ।। २८१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। त्रिरिति** त्रिरपीत्यर्थः। एतच्च प्रतिमासमसंभवे। संभवे तु प्रतिमासमेव 'मासि मासि पितृभ्यः क्रियत' इति श्रुतेः। **हेमन्तग्रीष्मवर्षास्विति** चतुर्मासर्तुपक्षमाश्रित्योक्तम्। एवं च **मत्स्यपुराणे 'अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत्।** कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदे'त्युक्तत्वात् ।। त्रिःकरणे एतेष्वेव मासेष्वमावास्यायां तत्करणमिति लभ्यते। त्रिसंवत्सरविधिरनाहिताग्नेरित्येवं पूर्वे व्याचक्षते। प्रमाणं तु त एव विदन्तीति। अग्निविरहिणामेवेत्यपरे। **पाञ्चयज्ञिकं** पञ्चमहायज्ञपठितं **तदन्वहमेव** कार्यमशक्तावुदकादिनापि इहेति **हेमन्ता**दिषु त्रिः संवत्सरविधिः पूर्वैः कल्पितः। पाञ्चयज्ञिको नित्य इति ।। २८१ ।।

(३) **कुल्लूकः।** 'कुर्यान्मासानुमासिक'मिति (३।१२२) प्रतिमासं श्राद्धं विहितं तदसंभवे विधिरयम्। चतुर्भिर्मासैर्ऋतुरेकः, एकस्त्वृतुः संवत्सर, इतीमं पक्षमाश्रित्योच्यते। **अनेनो**क्तविधानेन संवत्सरमध्ये त्रीन् वारान् **हेमन्तग्रीष्मवर्षासु श्राद्धं** कर्तव्यम्। तच्च समयाचारात्कुंभवृषकन्यास्थेऽर्के पञ्चमहायज्ञान्तर्गतं च 'एकमप्याशयेद्विप्र' (३।८३) मित्यनेन विहितं, प्रत्यहं तु कुर्यादिति पूर्वोक्तदाढर्यार्थम् ।। २८१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** 'कुर्यान्मासानुमासिक'मिति प्रतिमासं प्रत्यब्दं च प्राप्तं श्राद्धमशक्तौ संकुचति **अनेनेति। अब्दस्य** हेमन्तादित्रिष्ववश्यं कुर्यादिति त्रिषु संवत्सरमाश्रित्यैतत् **पाञ्चयज्ञिकं** 'एकमप्याशयेद्विप्र'मित्यादिविहितं पञ्चयज्ञान्तर्गतं श्राद्धं। **अन्वहं** प्रतिदिनं **निर्वपे**दित्यन्वयः ।। २८१ ।।

(५) **नन्दनः।** इहामावास्यायां **त्रिरवश्यं निर्वपेत्** न न्यूनम् ।। २८१ ।।

(६) **रामचन्द्रः। अब्दस्य** मध्ये त्रिवारं हेमन्तग्रीष्मवर्षासु श्राद्धं निर्वपेत्। **पञ्चयज्ञीयं श्राद्धं अन्वहं** प्रत्यहं कुर्यात्। अयने संवत्सरस्य विधिरनाहिताग्नेः ।। २८१ ।।

(७) **मणिरामः।** "मासानुमासिकं वे"ति प्रतिमासं श्राद्धं विहितं तदशक्तावाह **अनेनेति।** चतुर्भिर्मासैरेको ऋतुः। ऋतुः संवत्सर इति पक्षमाश्रित्योच्यते। **अनेन** विधानेन संवत्सरमध्ये **त्रिः** त्रीन् वारान् **हेमंतग्रीष्मवर्षासु** श्राद्धं **विनिर्वपेत्** कुर्यात्। तच्च शिष्टाचारात्कुंभवृषकन्यास्थेऽर्के पञ्चयज्ञं पञ्चमहायज्ञांतर्गतं च "एकमप्याशयेद्विप्र"मित्यनेन विहितं **अन्वहं** प्रत्यहं कुर्यात् ।। २८१ ।।

(८) गोविन्दराजः। अनेनेति। अनेन उक्तविधानेन संवत्सरस्य मध्ये त्रीन् वारान् हेमन्तग्रीष्मवर्षासु श्राद्धं कुर्वीत। पञ्चयज्ञमहायज्ञमध्यभवं पुनः प्रत्यहं कुर्वीत।। २८१ ।।

**न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते ।।**
**न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ।। २८२ ।।**

(१) मेधातिथिः। पितृयज्ञाङ्गभूतो होमः **पैतृयज्ञिकः**; स **लौकिके** स्मार्तेऽग्नौ **न विधीयते**। शास्त्रेण कर्तव्यतया न चोद्यते। तस्मात्त्रिः संवत्सरस्यानाहिताग्निना कर्तव्यम्। यद्यपि त्रिःकृतमपि भवत्येव कृतं लौकिकेऽग्नौ, तथापि संवत्सरापेक्षया अकृतमेव तद्भवति। प्रस्थभोजनो हि न्यूने भुक्तेऽभुक्त इति। अर्थवादतया पूर्वशेषमिदं पूर्वे व्याचक्षते। इदं त्वयुक्तम्; यदि लौकिकोऽग्निर्विवाहादावपरिगृहीतस्तस्मिञ्छ्राद्धाङ्गभूतो होमो न कर्तव्य इत्युच्यते। होमप्रतिषेधेन च तद्व्यतिरिक्तमन्यत्कर्म कर्तव्यमित्युक्तं भवति। इतरथा परिगृहीताग्नेरपि पार्वणश्राद्धाङ्गत्वेन विधानादनग्निकस्य श्राद्धानधिकार एव स्यात्। यथान्धस्याज्यावेक्षणाशक्त्या न दर्शपौर्णमासयोरधिकारः। अस्मिंस्तु सति साग्निकस्य होमवत् श्राद्धमनग्निकस्य तद्वर्जितमपि ज्ञापितं भवति। तथा चाग्न्यभाव इत्यस्यायमेव विषयः।

येऽपि व्याचक्षते पिण्डपितृयज्ञः पितृयज्ञोऽभिप्रेतः। तत्र यो होमः स लौकिके स्मार्तेऽग्नौ नास्ति—तेऽपि न युक्तमाहुः। अस्त्वेवमनाहिताग्निर्नित्यत्वे श्रपयित्वा जुहुयादित्यादि। **न दर्शेन विना श्राद्धं** ग्रहोपरागादावाहिताग्नेः प्रतिषेध इत्याहुः। एतत्तु समाचारविरुद्धम्।

अन्ये तु पठन्ति—**न विना दर्शं** इत्यस्यानाहिताग्निना मासानुमासिकं कर्तव्यम्, नास्य त्रिः संवत्सरविधिः। नैवायं पाठोऽस्तीत्यन्ये। कस्तर्ह्यस्यार्थः ? । दार्शात् श्राद्धादन्यदाहिताग्नेर्मघाश्राद्धादि न नियमेन भवतीति दार्शमेव तस्य नियतम्। अनाहिताग्नेस्तु हेमन्तादिविहितान्यपि नियतानीति ।। २८२ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। निरग्नीनां विशिनष्टि, अपिच **न पितृयज्ञिक इति**। पितृयज्ञश्राद्धसंबन्धि **होमो लौकिके** ग्राम्ये न किंतु वैवाहिक एव। तदभावे ब्राह्मणकरादौ। **आहिताग्नेर्यच्छ्राद्धमाहिताग्निकर्तृकं तन्न दर्शेन विना**ऽस्ति। अतो दशम्यादिष्वपि यत्करणमुक्तं तदनाहितत्रेताग्निमपेक्ष्य श्राद्धं पार्वणं, प्रकृतत्वात्। प्रतिसांवत्सरिकादि त्वन्यदपि कार्यमेव ।। २८२ ।।

(३) कुल्लूकः। 'अग्नेः सोमयमाभ्यां चे'(३।२११) त्यनेन विहितपितृयज्ञाङ्गभूतो **होमो न लौकिके** श्रौतस्मार्तव्यतिरिक्ताग्नौ शास्त्रेण **विधीयते**। तस्मान्न लौकिकाग्नावग्नौकरणहोमः कर्तव्यः। निरग्निना तु 'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणा' (३।२१२) वित्यभिधानाद्विप्रपाण्यादौ करणीयः। **आहिताग्नेर्द्विजस्य** नामामावास्याव्यतिरेकेण कृष्णपक्षे दशम्यादौ **श्राद्धं** विधीयते। मृताहश्राद्धं तु नियतत्वात्कृष्णपक्षेऽपि तिथ्यन्तरे **न** निषिध्यते ।। २८२ ।।

(४) राघवानन्दः। तत्र विशेषान्तरमाह **नेति**। **लौकिके** विवाहादौ अपरिगृहीते, श्राद्धाङ्गहोमो न कर्तव्य इति निषेधादन्यत्कर्तव्यमिति **मेधातिथिः**। स्मार्ताग्नौ आवसथ्याख्ये

श्रौते च कर्तव्यः अग्नीशानयमाभ्यां स्वाहेत्यादिको होमः। **न दर्शेनेति। आहिताग्नेः** अमावासिकैकोद्दिष्टद्वयमिति भावः ।। २८२ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ पित्र्येषु गृह्याग्नौ होमः कार्यो न लौकिकाग्नावित्याह **नेति**। अत्र **पितृयज्ञ**शब्देन मासिकश्राद्धमुच्यते। अधिकाराल्ल**लौकिकाग्नौ न विधीयते**। किंतु गृह्याग्नावेव विधीयत इत्यर्थः। केचित् पितृयज्ञशब्दस्य पिण्डपितृयज्ञ एव निरूढत्वात्तस्यैव लौकिकाग्नौ निषेध इति मन्यन्ते। अनाहिताग्नेरयं मासि श्राद्धकल्पः, न पुनराहिताग्नेरणीत्युक्तम् उत्तरार्धेन। **आहिताग्नेः** 'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य' (३।१२२) त्यादिना श्लोकद्वयेनोक्त एव मासिकश्राद्धकल्पः कर्तव्यः, नाधिक इत्यर्थः ।। २८२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। न **लौकिकाग्नौ** अस्मार्तेऽग्नौ **पैतृयज्ञियः** अग्नौकरण**होमः विधीयते**। **आहिताग्नेर**ग्निहोत्रिणः **द्विजन्मनः दर्शेन विना श्राद्धं न** दर्शे चाधिकारो नान्यतिथौ ।। २८२ ।।

(७) **मणिरामः**। **पैतृयज्ञियो होमः** अग्नौकरणहोमः। **लौकिकेऽग्नौ** स्मार्तव्यतिरिक्तेऽग्नौ। **आहिताग्नेर्द्विजस्य**। दर्शश्राद्धं विना कृष्णपक्षे दशम्यादौ श्राद्धं न भवति। मृताहश्राद्धं तु नियतत्वात्कृष्णपक्षेऽपि तिथ्यंतरे भवत्येव ।। २८२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **न पैत्र्ययज्ञिको होम इति**। अग्नेः सोमयमाभ्यामित्येवं पितृयज्ञाङ्गभूतो **होमः लौकिके** श्रौतस्मार्तव्यतिरिक्तेऽग्नौ शास्त्रेण **न** चोद्यते। **आहिताग्नेश्च** द्विजाग्नेः अमावास्यकर्मणा विना कृष्णपक्षदशम्यादौ **श्राद्धं न** विधीयते। मृताहश्राद्धादेस्तु अनिषेधः, तस्य नैयमिकत्वेन चोदितत्वात् ।। २८२ ।।

**यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ।।**
**तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ।। २८३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पाञ्चयज्ञिकं यच्छ्राद्धं अहरहरित्युक्तं तस्य वैकल्पिकत्वमनेनोच्यते। उदकतर्पणं यत्क्रियते **स्नात्वा** तेनैव पितृयज्ञक्रियाफलं प्राप्नोति। यदुक्तम् 'एकमप्याशये'दिति तस्य नास्ति नियमेन कर्तव्यता। उदकतर्पणमवश्यं कर्तव्यम् ।। २८३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अब्दस्य त्रिरपि पार्वणश्राद्धकरणेऽशक्तस्यानुकल्पमाह **यदेवेति**। **पितृयज्ञः** पार्वणाख्यः ।। २८३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पाञ्चयज्ञिकश्राद्धासंभवे विधिरयम्। यत्र स्नानानन्तरमुदकतर्पणं द्विजः करोति तेनैव सर्वं नित्यश्राद्धफलं प्राप्नोति। **द्विजोत्तमपदं** द्विजपरम् ।। २८३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। सर्वाशक्तौ तर्पणस्य सर्वार्थकत्वमावश्यकत्वं च गृहमेधीये आज्यभागौ यजतीतिवदित्याह **यदेवेति**। **मेधातिथि**स्तूदकतर्पणं नित्यश्राद्धस्य वैकल्पिकमित्याह ।। २८३ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ ब्राह्मणभोजनात्मकमपि श्राद्धमाहिताग्निनावश्यं कार्यं, तत्फलस्यान्यतः सिद्धत्वादित्याह **यदेति**। तेनाहिताग्नेः कल्पनीया व्यवस्था। **पिण्डपितृयज्ञेन** वा पितृपूजाब्राह्मणभोजनान्तेन विधिना वेति ।। २८३ ।।

(७) **मणिरामः**। 'एकमप्याशये'दित्यस्याप्यसंभवे विधिमाह **यदिति** ।। २८३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। पूर्वोक्तपाञ्चयज्ञिकश्राद्धासंभवे **यदेति**। **स्नात्वा** उदकतर्पणं यत् पितॄणां ब्राह्मणः करोति **तेनैव** सर्वं **पितृयज्ञानुष्ठानफलं** **प्राप्नोति**। द्विजोत्तमग्रहणं प्रदर्शनार्थम्, त्रयाणां प्रकृतत्वात् ।। २८३ ।।

**वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ।**
**प्रपितामहांस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ।। २८४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पितृद्वेषादप्रवर्तमानस्य प्रवृत्त्यर्थमिदम्— त्रिस्थाना वस्वाद्या देवताः पितरोऽपि य एव पिण्डभाजः। अतो देवतात्वेनैते द्रष्टव्याः। **श्रुतिरेषा** श्रूयते एतद्वेदे। अतः **पुरातनी** नित्यत्वाद्वेदस्य ।। २८४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पित्रादीनां नरकादिषु स्थितौ श्राद्धफलदायित्वासंभवात् कथं काम्यश्राद्धीयफलसिद्धिरित्याशंक्याह **वसून्वदन्तीति**। **पुरातनी** इदानीमपठ्यमाना। एतेन स्वपित्रादीनुद्दिश्यापि कृतं श्राद्धं वस्वादीनपि देवांस्तर्पयति, ते च तृप्ताः फलं ददतीत्युक्तम् ।। २८४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात्पित्रादयो वस्वादय इति। एषामनादिभूता श्रुतिरस्ति; अतः **पितॄन्** वस्वाख्यदेवान्**पितामहान्** **रुद्रान्प्रपितामहानादित्यान्**मन्वादयो वदन्ति; ततश्च सिद्धबोधनवैयर्थ्याच्छ्राद्धे पित्रादयो वस्वादिरूपेण ध्येया इति विधिः कल्प्यते। अत एव **पैठीनसिः** 'य एवंविद्वान् पितॄन् यजते वसवो रुद्रा आदित्याश्चास्य प्रीता भवन्ति।' **मेधातिथिगोविन्दराजौ** तु पितृद्वेषान्नास्तिक्याद्वा यः पितृकर्मणि न प्रवर्तते तं प्रत्येतत्प्रवर्तनार्थं देवतात्वाध्यारोपेण पितॄणां स्तुतिवचनम् ।। २८४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तर्पणेनैव सर्वमाप्नोतीत्यस्यार्थवाद **वसूनिति**। पित्रादित्रयतर्पणेन वसुरुद्रादित्यास्तर्पिता भवन्तीति भावः ।। २८४ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ पित्रादिषु देवताविशेषात्मकत्वप्रतिपत्तौ श्राद्धफलातिशयमाह **वसूनिति** ।। २८४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पितृपितामहप्रपितामहान् वसुरुद्रादित्यस्वरूपान् वदन्ति। **एषा श्रुतिः सनातनी**। तद्यथा—हे पितः वसुरूप, हे पितामह रुद्ररूप, हे **प्रपितामह** आदित्यरूप ।। २८४ ।।

(७) **मणिरामः**। श्राद्धे पित्रादयो वस्वादिरूपा ध्येया इत्याह **वसूनिति** ।। २८४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वसूनिति**। य एते पितृपितामहप्रपितामहाः तान् वसुरुद्रादित्याख्यान् देवानिति मन्वादयो वदन्ति। यस्मात् 'पित्रादयो वस्वादय' इत्येषा अनादिभूता **श्रुतिः**। पितृद्वेषान्नास्तिक्याद्यः पितृकर्मणि न प्रवर्तेत तं प्रति प्रवर्तनार्थं देवतात्वाध्यारोपेण पितॄणां स्तुतिवचनम् ।। २८४।।

**विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वाऽमृतभोजनः ।**
**विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम् ॥ २८५ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** आद्येन श्लोकपादेनातिथ्यादिभुक्तशिष्टस्यान्नस्य यद्भोजनं विहितं तदनूद्यते । माङ्गलिकतया मङ्गलावसथानि शास्त्राणि प्रथन्ते ।

पित्र्याद्दैवं कर्म शस्ततरम् । **यज्ञशेषम् ।** अनेन ज्योतिष्टोमादिहविःशेषस्य भोजनं विघसस्य तुल्यतयोच्यते । उत्तरेणार्धश्लोकेन सौहार्दमेव तस्य वेदार्थव्याख्यानम् । कस्याञ्चिच्छाखायामाभ्यां शब्दाभ्यां विधानं दृष्टमतो व्यामोहं निवर्तयति । विघस-मश्नातीति **विघसाशी ।** अमृतं भोजनमस्येत्य**मृतभोजनः । भुक्तशेषं** भृत्यभुक्तशिष्टमिति द्रष्टव्यम् । **भुक्तशेष**मिति पाठसामर्थ्यादतिथ्यादिभुक्तमिति द्रष्टव्यम् । अन्ये तु प्रकृतत्वाच्छ्राद्धभुक्तशेषमिति द्रष्टव्यम् । तथा च स्मृत्यन्तरं 'भुञ्जीत पितृसेवित'मिति । श्राद्धाङ्गं चैतद्भोजन (इति) केचिदाहुः ।

अन्ये तु पुरुषार्थो भोजननियमोऽयमित्याहुः । 'वसून्वदन्ती'त्यनेनैव श्राद्धप्रकरण-स्यापवृक्तत्वात् । **यज्ञशेषं** यज्ञोपयुक्तद्रव्यशेषमिति द्रष्टव्यम् ॥ २८५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । भुक्तशेष**मतिथ्यादिभुक्तशेषं । **यज्ञशेषं** वैश्वदेवाख्य-यज्ञशिष्टम् ॥ २८५ ॥

(३) **कुल्लूकः ।** सर्वदा विघसभोजनः स्यात्सर्वदा चा**मृतभोजनो** भवेत् । विघसामृत-पदयोरप्रसिद्धत्वादर्थं व्याकुरुते । विप्रादि**भुक्तशेषं विघस** उच्यते । दर्शपौर्णमासादियज्ञशिष्टं पुरोडाशाद्य**मृतम्** । सामान्याभिधानेऽपि प्रकृतत्वाच्छ्राद्धे विप्रभुक्तशेषभोजनार्थोऽयं विधिः । अत एव 'भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवित' मिति स्मृत्यन्तरम् । 'अतिथ्यादिविशेष-भोजनं 'त्ववशिष्टं तु दम्पती' (३।११६) इत्यनेनैव विहितम्; तस्यैव यज्ञशेषतुल्यत्वापादनेन स्तुत्यर्थं पुनर्वचनमिति तु **गोविन्दराज**व्याख्यानमनुष्ठानविशेषानर्हमप्राकरणिकं च ॥ २८५ ॥)

(४) **राघवानन्दः ।** देवानतिथींश्च पूजयित्वैव भोक्तव्यमिति नियमयति **विघसाशीति । विघसामृतयोर्लक्षणमाह विघसं त्विति ।** **भुक्तशेष**मतिथ्यादिभुक्तावशिष्टं 'गृहस्थः शेषभुग्भवेदि'त्युक्तेः ॥ २८५ ॥

(५) **नन्दनः ।** उक्तेन प्रकारेण देवतातिथिभृत्यशेषं गृहस्थेन भोक्तव्यमित्याह **विघसाशीति । यज्ञशेषं** पञ्चमहायज्ञशेषम् ॥ २८५ ॥

(६) **रामचन्द्रः । विघसं भुक्तशेषं** श्राद्धभुक्तावशेषं पञ्च**यज्ञशेषं अमृतं** भवती-त्यर्थः ॥ २८५ ॥

(७) **मणिरामः ।** विघसामृतपदयोरप्रसिद्धत्वात् तदर्थमाह **विघसेति** ॥ २८५ ॥

(८) **गोविन्दराजः । विघसाशीति ।** सर्वदा विघसभोजनः स्यात् इत्येतत् यज्ञ-शेषभुक्तुल्यत्वापादनेन स्तुत्यर्थमस्य पुनर्वचनम् । सर्वदा च अमृतभोजनः स्यात् । अप्रसिद्ध-त्वात् विघसामृते निरूपयति अतिथ्यादि**भुक्तशेषं विघस**मुच्यते । यज्ञावशिष्टं पुरोडाशादि **अमृतमिति** ॥ २८५ ॥

**एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयज्ञिकम् ॥**
**द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ २८६ ॥**

(१) मेधातिथिः। पूर्वं हि व्यवहितस्य **पाञ्चयज्ञिक**मिति महायज्ञविधेरुपसंहारो माङ्गलिकतयैव। उत्तरेण श्लोकार्धेन वक्ष्यमाणाध्यायार्थैकदेशोपन्यासः। तौ चोक्तप्रयोजनौ। **द्विजातिमुख्या** ब्राह्मणास्तेषां **वृत्तयो** जीविकाः कर्माणि द्विजातीनां वा मुख्यवृत्तय इति। उत्तरत्रैव दर्शयिष्याम इति प्रसिद्धम् ॥ २८६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पाञ्चयज्ञिकं तत्र प्रसंगात्पार्वणस्य चेत्यपि द्रष्टव्यम्। द्विजातिमुख्याः ब्राह्मणाः। तेषां या वृत्तयो जीवनोपायास्तेषां विधानम् ॥२८६॥

श्रीनारायणसर्वज्ञवृत्तिसंदर्शितान्वयाः। मनुस्मृतिगिरां चार्थमधिगच्छन्तु सूरयः।

इति सर्वज्ञनारायणकृतौ मन्वर्थविवृतौ विवाहश्राद्धाधिकारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदं पञ्चयज्ञभवमनुष्ठानं **सर्वं** युष्माकमुक्तम्। पार्वणश्राद्धव्यवहितैरपि पञ्चयज्ञैरुपसंहारस्तेषामभ्यर्हितत्वज्ञापनार्थः। मङ्गलार्थं इति तु **मेधातिथिगोविन्दराजौ**। इदानीं द्विजानां मुख्यो ब्राह्मणस्तस्य वृत्तीनामृतादीनामनुष्ठानं श्रूयतामिति वक्ष्यमाणाध्यायैकदेशोपन्यासः ॥ २८६ ॥

इति वारेन्द्रनन्दनवासीयभट्टदिवाकरात्मजश्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वृत्तमुपसंहरन् वर्तिष्यमाणं प्रतिजानीते **एतदिति**। **द्विजातिषु मुख्या** ब्राह्मणश्रेष्ठास्तेषां **वृत्तयो** जीविकास्तासामनुष्ठानम् ॥ २८६ ॥

इति मनुस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(५) **नन्दनः**। **द्विजातिमुख्याः** ब्राह्मणास्तेषां **वृत्तयो**ऽर्थप्राप्त्युपायाः। इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ ॥ २८६ ॥

इति मानवव्याख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यत्तदिति**। द्विजातीनां ब्राह्मणक्षत्रियविशां एतेषां पृथक् पृथक् मुख्यवृत्तीनां विधानं लक्षणं श्रूयतामिति ॥ २८६ ॥

श्राद्धप्रकरणं तृतीयम् ॥ ३ ॥

(७) **मणिरामः**। **द्विजातिमुख्यवृत्तीनां** द्विजानां मुख्यो ब्राह्मणस्तस्य वृत्तीनां ॥२८६॥

इति श्रीमिश्रगंगारामात्मजदीक्षितमणिरामकृतायां सुखबोधिन्यां मनुटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एतदिति**। एतत् पञ्चयज्ञभवमनुष्ठानं सर्वं युष्माकमुक्तम् इति। पितृकर्मणोऽनन्तरं व्यवहितकरणोपसंहारो मङ्गलार्थत्वात्। इदानीं ब्राह्मणसंबन्धिनीनां अमृतादीनां जीविकानामनुष्ठानं श्रूयतामिति ॥२८६॥

इति श्रीभट्टमाधवात्मजगोविन्दराजविरचितायां मनुटीकायां मन्वनुसारिण्यां श्राद्धविधिर्नाम **तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥**

# अथ चतुर्थोऽध्यायः ४

**चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाऽऽद्यं गुरौ द्विजः ।।**
**द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ।। १ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। संक्षेपेणातिक्रान्तस्याध्यायद्वयस्यार्थं कथयत्यनुस्मरणाय। गार्हस्थ्य-धर्मस्यायं वृत्तिविधिरिति द्वितीयं श्लोकप्रयोजनम्।

अनियतपरिमाणत्वादायुषश्चतुर्थभागव्यवस्थाविधानमाश्रमिणामनुपपन्नम्; अतः श्लोकोऽयं विहिताश्रमकालानुवादार्थः। यद्यपि च "शतायुर्वै पुरुष" (इत्येतदपेक्षया) कथं-चिदुपपद्येतापि, तथापि स्वप्रकरणे 'ग्रहणान्तिकमिति' अवध्यन्तरस्य ब्रह्मचर्ये विहित-त्वात्, "गृहस्थस्तु यदा पश्येत्" (६।२) इति गार्हस्थ्येऽपि कालान्तरप्रतिपत्तेरनुवादतै-वानुमीयते। **चतुर्थमाद्यमायुषो भागम्**। जन्मापेक्षमाद्यत्वम्। **गुरौ उषित्वा** ब्रह्मचर्यं कृत्वा ततो **द्वितीयं** चतुर्थमायुषो भागं कृतविवाहो **गृहे वसेत्** गृहस्थाश्रममनुतिष्ठेत् ।। १ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ॐ नमो महागणपतये, **चतुर्थमायुषो भागमिति**। यावदायुः पुंसस्तस्य चतुर्थभागः आद्यो यावत्समाप्यते तावदित्यर्थः। एतच्च षट्त्रिंशदाब्दिकाद्यु-क्तपक्षैः सह वैकल्पिकम्। **गुराविति**। ब्रह्मचर्याश्रम इत्यर्थः। द्वितीय आद्यचतुर्थ-भागानन्तरचतुर्थभागम् ।। १ ।।

(३) **कुल्लूकः**। श्राद्धकल्पानन्तरं वृत्तीनां क्षणं चैवेति वृत्तिषु व्यक्ततया प्रतिज्ञातासु वृत्त्यधीनत्वाद्गार्हस्थ्यस्यानन्तरं वक्तव्यासु ब्रह्मचर्यपूर्वकमेव गार्हस्थ्यं तत्रैव वक्ष्यमाणा वृत्तय इति दर्शयितुं ब्रह्मचर्यकालं गार्हस्थ्यकालं चात्र वदति **चतुर्थमिति**। 'चतुर्थमायुषो भागमाद्य' मित्युक्तं ब्रह्मचर्यकालोपलक्षणार्थम्। अनियतपरिमाणत्वादायु-षश्चतुर्थभागस्य दुर्ज्ञानत्वात्। न च शतायुर्वै पुरुष इति श्रुतेः पञ्चविंशतिवर्षपरत्वम्। 'षट्त्रिंशदाब्दिकं ब्रह्मचर्य'मित्यादिविरोधात्। आश्रमसमुच्चयपक्षमाश्रितो ब्राह्मण उक्तब्रह्मचर्यकालं जन्मापेक्ष्याद्यं यथाशक्ति गुरुकुले स्थित्वा **द्वितीयमायुषश्चतुर्थभागं** गृहस्थाश्रममनुतिष्ठेत्। गृहस्थस्तु 'यदा पश्ये'दित्यनियतत्वात् 'द्वितीयमायुषो भाग' मित्यपि गार्हस्थ्यकालमेव ।। १ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **चतुर्थ**भागं पञ्चविंशतिवत्सरान् 'शतायुर्वै पुरुष' इति श्रुतेः। ब्रह्मचर्य**मुषित्वा** समाप्येति "ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेदि"ति श्रुतेः तत्र शाब्दी सङ्गतिः ।। १ ।।

(५) **नन्दनः**। एवं पञ्चमहायज्ञविधानमुक्तम्। इदानीं पूर्वाध्यायान्ते प्रतिज्ञातं गृहस्थस्य ब्राह्मणस्य वृत्त्युपायं विवक्षतस्तस्य गार्हस्थ्यस्य कालं तावत् वयसा विभजन्नाह **चतुर्थमिति**। **आयुषो** वर्षशतपरिमाणस्याद्यश्चतुर्भाग उपनयनात्प्राक् सप्तवर्षाणि पश्चा-दष्टादश इत्येवं पञ्चविंशतिवर्षकं पूर्वोक्तेषु षट्त्रिंशदाब्दिकादिषु कल्पेष्वाश्रमसमुच्चयानु-ष्ठाने समीचीनस्तदधिकाराख्योऽयं कल्पः सामर्थ्याद्गम्यते। न ह्यनुपनीतस्य गुरुकुलवासो

भवति। गुरावुषित्वा **द्वितीयमायुषश्चतुर्थभागं** कृतदारो **गृहे वसेत्**। ब्रह्मचर्यकालस्य पुनरुपन्यासो गार्हस्थ्यस्य कालविवक्षार्थः ॥ १ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अथ गृहस्थधर्मानाह **आयुष आद्यं** चतुर्भागं पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तं गुरौ गुरुसमीपे उषित्वा वासं कृत्वा वेदाध्ययनं कृत्वा! **आयुषो द्वितीयभागं** प्राप्य **कृतदारः** सन् **वसेत्** ॥ १ ॥

(७) **मणिरामः**। आद्यं **चतुर्थमायुषो भागं** ब्राह्मणोक्तब्रह्मचर्यकालं **द्वितीयमायुषो भागं** गार्हस्थ्यकालं ॥ १ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। ब्रह्मचर्यपूर्वकं गृहाश्रममनुतिष्ठतः वक्ष्यमाणा वृत्तयो भवन्तीत्येतत्प्रतिपादयितुमुक्तं ब्रह्मचर्यकालं वक्ष्यमाणं च गार्हस्थ्यकालमनुवदितुमाह **चतुर्थमिति**। वक्ष्यमाणमाश्रमसमुच्चयपक्षमाश्रितो ब्राह्मणः **आद्यमायुश्चतुर्भागे** प्राप्ते 'षड्विंशदाब्दिक'मित्यादिविशेषनोदनात् ऊनातिरिक्तमपि गुरुकुल आसित्वा ततो **द्वितीयमायुश्चतुर्भागं** 'गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलित' (६।२) मित्यादिवक्ष्यमाणविशेषात् ऊनाद्यधिकमपि कृतभार्यो गार्हस्थ्यमनुतिष्ठेत्! न चास्य कालसमर्पणार्थत्वं युक्तम्, अनियतत्वेनायुषोऽस्य साकाङ्क्षत्वात् ॥ १ ॥

**अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ॥**
**या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तत्र वसन् 'देहि देहीति' याच्यमानस्य यः परस्य चित्तविकारः खेदात्मको जायते स 'द्रोहो'ऽभिप्रेतः, न पुनर्हिंसैव। तस्याः सर्वसामान्येनैव प्रतिषेधात्। **अल्पद्रोहेणेति**। याच्ञया विना यदि न वर्त्यते तदा स्वल्पं याचितव्यम्, एषो'ऽल्पद्रोहः'। **या वृत्तिर्जीवनोपायः**, कृषिसेवादि। यस्यां वृत्तौ परस्य पीडा न भवति सा आश्रयितव्या। सामान्योपदेशोऽयम्। **समास्थाय** आश्रित्य **जीवेत्**। **आपदि** दशमे विधिर्भविष्यति। अस्माच्चोपदेशाद्वक्ष्यमाणाभ्य अन्यापि वृत्तिर्भवतीति गम्यते। अन्यथा वक्ष्यमाणविशेषनिष्ठत्वे सामान्यस्योपदेशस्यानर्थक्यमेव स्यात्। तेन च याजनाध्यापने कुसीदम् अमृतादिमध्ये अपठितमपि लभ्यते। अल्पीयसी या उञ्छवृत्तिर्गृहीता असौ हि 'अल्पद्रोहः'। तथा च **गौतमः** (अ. १० सू. ५, ६) "कृषिवाणिज्ये चास्वयं कृते। कुसीदं च"। जीवनमात्रोऽयं विधिर्धनसञ्चयस्तु वक्ष्यमाणैरेव नियतैः कर्मभिः ॥ २ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अद्रोहेण** दुःखानुत्पादनेन, **अल्पद्रोहेण** अद्रोहेण वृत्त्यसंभवे 'जीवेदनापदी'त्यापदि बहुद्रोहामपि वृत्तिं कुर्यादित्यर्थः ॥ २ ॥

(३) **कुल्लूकः**। परस्यापीडा शिलोञ्छायाचितादिरद्रोहः। ईषत्पीडा याचितादिरल्पद्रोहः। ननु हिंसैव द्रोहः, तस्या निषिद्धत्वात्। अद्रोहेण तदसंभवेऽल्पद्रोहेण या वृत्तिर्जीवनोपायस्तदाश्रयणेन भार्यादिभृत्यपञ्चयज्ञानुष्ठानयुक्तो ब्राह्मणो न तु क्षत्रियादिरनापदि जीवेत्। आपदि दशमे विधिर्भविष्यति। अयं च सामान्योपदेशो याजना-

ध्यापनविशुद्धप्रतिग्रहादिसङ्ग्रहार्थः। वक्ष्यमाणर्तादिविशेषमात्रनिष्ठत्वे संकुचितस्वरसत्वहानिरनधिकारार्थत्वं याजनादेर्वृत्तिप्रकरणानिवेशश्च स्यात्तयापि जीवेत् ।। २ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तद्धर्मानाह **अद्रोहेण** शिलोञ्छाभ्यां। **अल्पद्रोहेण** अल्पयाचितेन देहि देहीति याचने चित्तक्षोभो द्रोहः। **अनापदि** सुभिक्षादौ ।। २ ।।

(५) **नन्दनः**। वृत्त्युपायेषु वक्ष्यमाणेषु नियमं श्लोकद्वयेनाह **अद्रोहेणेति**। विहितयाऽपि वृत्त्या हिंसारहितया जीवेत्तदशक्तौ हिंसाबाहुल्यरहितया वेति ।। २ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **भूतानां** अद्रोहेणैव दुःखानुत्पादनेन **या वृत्तिस्तां** वृत्तिं **समास्थाय अनापदि जीवेत् विप्रः** अल्पद्रोहेण स्वल्पं याचितव्यं अल्पद्रोहेण या वृत्तिर्वा ।। २ ।।

(७) **मणिरामः**। **अद्रोहेण** परस्याऽपीडया। तदभावे **अल्पद्रोहेण** शिलोञ्छायाचितादिरूपद्रोहेण। **वृत्तिः** जीवनोपायः। अयं च सामान्योपदेशो याजनाध्यापनविशुद्धप्रतिग्रहादिसंग्रहार्थः ।। २ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अद्रोहेणेति**। वक्ष्यमाणवृत्तीनां मध्यात् भूतानुपपीडनेन या जीविका शिलोञ्छादिना, तदलाभेऽल्पोपपीडनेन याचनादिना या तामाश्रित्य भार्यादिभरणनित्यानुष्ठानसंपत्तौ सत्यां विप्रो **जीवेत्**। न चात्राल्पजिघांसाभ्यनुज्ञानं, हिंसाया निषिद्धत्वात्। विप्रग्रहणं क्षत्रियादिव्युदासार्थम्। तथापि जीवेत् ।। २ ।

**यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।।**
**अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् ।। ३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेणान्वाहिकजीवनविधावुपाय उक्तः, अनेन धनसञ्चये नियम उपदिश्यते। **स्वैः कर्मभिः धनसञ्चयं कुर्यात्**। तानि च कर्माण्युत्तरत्र वक्ष्यन्ते। सञ्चयप्रयोजनमाह **यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थम्**। न भोगाय धनसञ्चयक्लेशः कर्तव्यः। किं तर्हि? **यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थम्** आत्मकुटुम्बस्थितिः 'यात्रा', तत्परिमाणं 'यात्रामात्रं', तस्य 'प्रसिद्धिः' निष्पत्तिः, तदर्थस्तत्प्रयोजनम्। नित्यकर्मनिर्वृत्तिरात्मस्थितावेवान्तर्भूतानि तानि ह्यकुर्वत न आत्मस्थितिः। आह च (अ. ३ श्लो. ६२) "न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति"। अथवा सत्यपि शास्त्रीयत्वे यत्र लोको गर्हते तद्वर्ज्यमेव। यथा नरस्य महाकुलीनस्य भुक्तविभवस्य निकृष्टकुलात्प्राप्तश्रीकात् समानजातीयादपि प्रतिग्रहादिना केनचिदुपायेन जीवनम्। **अक्लेशेन शरीरस्य**। सेवावाणिज्ये महाक्लेशे, दूराध्वगमनादिना। तादृशे न कर्तव्ये। **सञ्चयो** राशीकृतपरिरक्षणम् ।। ३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्राणयात्रा प्राणधारणं **स्वैः** प्रतिग्रहादिभिरगर्हितैरसत्प्रतिग्रहादिरहितैः। **अक्लेशेनायासानुत्पादनेन शरीरस्य** स्वदेहस्य **धनस्य संचयं** संग्रहम् ।। ३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **यात्रा** प्राणस्थितिः। शास्त्रीयकुटुंबसंवर्धननित्यकर्मानुष्ठानपूर्वकप्राणस्थितिमात्रार्थं न भोगार्थं स्वसंबन्धितया शास्त्रविहितार्जनरूपैः **कर्मभिर्ऋतादिवक्ष्यमाणैः** कायक्लेशं विनाऽर्थसंग्रहं कुर्यात् ।। ३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। स्वकुटुम्बवर्धननित्यकर्मानुष्ठानपुरःसरं प्राणस्थितिर्**यात्रा** तत्परिमाणं तावत्पर्यन्तमात्रं तस्याः प्रसिद्ध्यर्थं, नतु भोगार्थम् "न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवती"त्युक्तेः। 'पञ्चानामपि यो भर्ता न स प्रकृतिमानुष' इत्युक्तेश्च ॥ ३ ॥

(५) **नन्दनः**। लौकिकवैदिकानामवश्यकर्तव्यानां कर्मणां निवृत्तिर्**यात्रा** तावन्मात्रलाभार्थं न ततोऽधिकम्। परपीडावदात्मपीडाप्यविहिता वर्जनीयेति ज्ञापित**मक्लेशेन शरीरस्ये**ति ॥ ३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अगर्हितैः स्वैः कर्मभिः**। शरीरस्याक्लेशेन **धनसंचयं** धनसंग्रहं **कुर्वीत**। प्राणयात्रा प्राणधारणमात्रं यथा भवेत्तथा कुर्यात्।' ३ ॥

(७) **मणिरामः**। **यात्रा** प्राणसंरक्षणं **स्वकर्मभिः** शास्त्रविहितार्जनरूपैः कर्मभिः ऋतादिवक्ष्यमाणैः ॥ ३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थमिति**। शास्त्रोक्तैः **कर्मभिः** वक्ष्यमाणैः ऋतादिभिरनिन्दितैः शरीरक्लेशपरिहारेण भार्याभरणनित्यानुष्ठानपूर्वकं प्राणवृत्तिसमाप्तिपरिमाणमर्थसङ्ग्रहं **कुर्वीत**, नाधिकमिति नियमः ॥ ३ ॥

**ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ॥**
**सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तानीदानीं कर्माणि नामतस्तावदाह। नाम्नैव केषाञ्चित् स्तुतिः प्रतीयते। प्रयोजनं च प्रशस्ताभावे निन्दितेषु प्रवृत्तिः। तत्र 'मृतप्रमृते' अत्यन्तनिन्दिते। ततोऽपि सत्यानृतम्। यत आह 'तेनैव वा जीवितव्यम्' इति। अपिशब्द अरुचिसूचनार्थः ॥ ४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ऋतामृताभ्यामि**त्यृतेनामृतेन वेत्यर्थः। **सत्यानृताभ्यां** तद्द्वयोपलक्षितेन वाणिज्येनेत्यर्थः ॥ ४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कैः कर्मभिरित्यत्राह **ऋतामृताभ्यामिति**। अनापदीत्यनुवर्तते। ऋतादिभिरनापदि **जीवेत्**। सेवया त्वनापदि कदापि न वर्तेत ॥ ४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अद्रोहाल्पद्रोहौ नाम्नैव स्पष्टयन्नगर्हितानि कर्माणि स्वयं व्याचष्टे **ऋतेति** ॥ ४ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ वृत्त्युपायान्नियमयति **ऋतेति**। पूर्वपूर्वालाभे परः पर आस्थेय इति ॥ ४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाभ्यामाह **ऋतेति**। **ऋतामृताभ्यां** वा **जीवेत्** अमृतवृत्त्या वा **मृतेन** वृत्त्या वा प्रमृतवृत्त्या वा **सत्यानृताभ्यां** वा **श्ववृत्त्या कथंचन न जीवेत्** ॥ ४ ॥

(७) **मणिरामः**। कर्माण्येवाह **ऋतामृताभ्यामिति**। अनापदीत्यनुवर्तते ॥ ४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। कैस्तैः कर्मभिरित्यत आह **ऋतामृताभ्यामिति**। ऋतादिभिरनापदि जीवेत्, नत्वनापदि कदाचिदपि सेवयेत् ॥ ४ ॥

**ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ॥**
**मृतं तु याचितं भैक्षं, प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** नामतो निर्दिश्य स्वरूपतो व्याचष्टे—उञ्छश्च शिलश्च **उञ्छशिलम्। तदृतं ज्ञेयम्।** सत्यव्रततुल्यम्। क्षेत्राल्लूनस्य व्रीह्यादेर्गृहं खलं वा नीयमानस्य यः पुलाकः पतितः स्वामिनोऽनपेक्षितस्तस्योच्चयनमुञ्छः, 'तत् ऋतम्'। न तत्रेयं बुद्धिराधेया 'परकीयमेतन्न गृह्णामीति'।

एवं च खलात्परिभ्रष्टस्य लूनस्यालूनस्य वाऽनेकप्ररोहवतो ग्रहणं 'शिलः'। **अमृतं स्यादयाचितम्।** अत्यन्तप्रीतिकरत्वात्।

मृतमिव **याचितं भैक्षमिति।** 'याचित'मित्येव सिद्धे 'भैक्ष'शब्देन सामूहिकतद्धितान्तेन बहवो याचितव्या इत्युच्यते, नैकः कदर्थनीयः। तदुक्तम् "अल्पद्रोहेणेति"। प्रायेण च भैक्षशब्दस्य 'भैक्ष्यस्यात्मविशुद्धार्थकमित्येवमादौ सिद्धान्नविषये प्रयोगसिद्धेः, सामान्यविषयार्थं 'याचित'शब्दोपादानम्। तेन नेदं सिद्धान्नभक्षणमेव, अग्निमतः परान्निपक्वेन वैश्वदेवादिविरोधात्।

न चेदं भोजनार्थमेव भिक्षणम्। किं तर्हि? स्थित्यर्थम्। स्थितिश्च न भोजनमात्रसाध्या गृहस्थस्य। किं तर्हि? यावत्किंचिद् गृहोपयोगि। अत एवोदकपरिधानाद्यपि भिक्षितव्यम्, गृहोपकरणं च स्थाल्यपिधानादिः; ब्रह्मचारिणस्तु भोजनकाले विधिना पाकासम्भवान्नियमतः सिद्धान्नविषयं भैक्ष्यं प्रतीयते।

भिक्षाशब्दश्चायं भिक्ष्यमाणद्रव्यगतं परिमाणमप्याचष्टे। भिक्षामात्रं न ददाति याचितः। प्रसृतिमात्रं भिक्षेति। तेन गोहिरण्यादिभिक्षणं न अमृतशब्देनाभ्यनुज्ञायते प्रतिग्रहाद्यर्था याच्ञेति।

"ननु भैक्षग्रहणमपि प्रतिग्रह एव"। नैव ग्रहणमात्रं प्रतिग्रहः। विशिष्ट एव स्वीकारे प्रतिपूर्वो गृह्णातिर्वर्तते। तेन न स्वीकारमात्रे। "प्रतिग्रहसमर्थोऽपि' (अ. ४ श्लो. १८६) "प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' इति (अ. १० श्लो. १०९) अदृष्टबुद्ध्या दीयमानं मन्त्रपूर्वं गृह्णतः 'प्रतिग्रहो' भवति। न च भैक्षे 'देवस्य त्वादि' मन्त्रोच्चारणमस्ति। न च प्रीत्यादिना दानग्रहणे। न च तत्र प्रतिग्रहव्यवहारः। अतः प्रतिग्रहादर्थान्तरमेवेदमृतामृतशब्दाभिधेयम्; अतश्च नात्र याच्यमानस्य अयाच्यमानस्य वा महासत्त्वतया उपकारान्तरापेक्षा जायते। येन वा ददतो जात्याद्यपेक्षा युक्तिमती। प्रतिग्राह्यस्यैव करुणया च प्रदीयमानं गृह्णतो न प्रतिग्रहः। "ननु च करुणया दानमदृष्टायैव"। नेति ब्रूमः। न च तत्र दानधर्मः। किं तर्हि? करुणाभ्यासात्परोपकाराद्वा। तत्र यथा हितोपदेशादावनुग्राह्यस्य विधिर्जात्यादिनापेक्षते तद्वत्करुणया दाने। तथा च शिष्टा नैवंविधे दाने 'वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणाये'-त्येतदनुरुध्यन्ते। अत एवाब्राह्मणा अपि दैन्यमापन्नाः परेण दत्तं गृह्णाना न ब्राह्मणवृत्तिं प्रतिग्रहमाश्रिता भवन्ति।

स्थितमेतत्। प्रतिग्रहे यद्यपि याचितायाचितपूर्वकत्वं विद्यते तथापि न तेनैव मृतामृतशब्दार्थः। विषयान्तरस्य दर्शितत्वात्। याजनाध्यापनयोरप्येतद्रूपमस्ति। कश्चिद्याचित्वा याजकत्वं लभते, कश्चित्प्रार्थ्यते। एवमध्यापने योज्यम्। अतो यावता काचिद्वृत्तिर्याञ्चया सा दैन्यावहत्वात् मरणमिवेति मृतशब्देनाभिधीयते। कर्षणं तु मरणादपि पापीयः। लाङ्गलाकर्षणं हि भारवाहत्वं, तच्च खलजनपदकर्म ॥ ५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उञ्छो वा शिलो वा उञ्छशिलं, तत्रोञ्छो रथ्यादिपतितैकैकबीजग्रहणं। शिलं सस्यमञ्जरी तदुपलक्षितं शिलं क्षेत्रभूपरित्यक्तैकैकसस्यमञ्जरीग्रहणं। उभयमृतं सत्यलोकप्राप्तिहेतुत्वात्। **अयाचितं** याच्ञां विनाऽन्यतो लब्धम्। **अमृतम**न्याहिंसनात्। याचितस्य **भैक्ष**मिति नामान्तरं, तन्मृतं परदुःखोत्पादनेन हिंसाहेतुत्वात्। कृषिः **प्रमृतं** प्रकर्षेण प्राणिना मारकत्वात्। सत्यानृतं एकदेशमिथ्याभिधाननियमात्। अत्र याजनाध्यापनप्रतिग्रहैर्लाभोऽपि याचितोऽयाचितो वा भवतीति मृतामृतयोरेवान्तर्भूतत्वान्न पृथगुक्तः। तथात्र 'द्विजातिमुख्यवृत्तीना'मित्युपक्रम्य कृषिवाणिज्ययोरभिधानान्नानयोरापदि वर्णान्तरवृत्तितया ब्राह्मणैरनुष्ठानं किंतु स्ववृत्तितयैव। तथा च क्षत्रियवृत्त्यपेक्षया नानयोरुत्कृष्टत्वम्। कुसीदपाशुपाल्ये तु वैश्यवृत्तितया क्षत्रवृत्तेरप्यपकृष्ट इति ग्राह्यम्। क्वचित्तत्र 'अपि'शब्दात्कुसीदमपि ग्राह्यमत एव **गौतमः** 'कृषिवाणिज्ये वा स्वयं कृते कुसीदं वे'ति ब्राह्मणमधिकृत्याह। सूत्रे विभागपूर्ववृत्तिद्वयासंभवेऽत्यन्तापदि कुसीदाश्रयणमित्येतदर्थमित्याहुः ॥ ५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अप्रसिद्धत्वादृतादीनि व्याचष्टे **ऋतमिति**। 'अबाधितस्थानेषु पथि वा क्षेत्रेषु वाऽप्रतिहतावकाशेषु यत्र यत्रौषधयो विद्यन्ते तत्र तत्राङ्गुलिभ्यामेकैकं कणं समुच्चयित्वे'ति **बौधायन**दर्शनादेकैकधान्यादिगुडकोच्चयन**मुञ्छः**। मञ्जर्यात्मकानेकधान्योच्चयनं **शिलः**, उञ्छश्च शिलश्चेत्येकवद्भावः। तत्सत्यसमानफलत्वादृतमित्युच्यते। **अयाचितोपस्थितममृतमिव सुखहेतुत्वादमृतम्** प्रार्थितं पुनर्भैक्षं भिक्षासमूहरूपं मरणसमपीडाजननान्मृतं। एतच्च साग्नेर्गृहस्थस्य भैक्षमपक्वतण्डुलादिरूपं, न तु सिद्धान्नं पराग्निपक्वेन स्वाग्नौ होमाभावात्। **कर्षणं** च भूमिगतप्रचुरप्राणिमरणनिमित्तत्वाद्बहुदुःखफलकं प्रकर्षेण मृतमिव **प्रमृतम्** ॥ ५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ऋतादीनामप्रसिद्धत्वात्तत्कथं ज्ञेयं तत्राह **ऋतेति** द्वाभ्याम्। आपणादेर्धान्यादीनामेकैकशो ग्रहण**मुञ्छं**, **शिलं** लूनक्षेत्रादेरनेकधान्यादिकमञ्जर्या ग्रहणमिति द्वयं 'ऋतं च सूनृता वाणी'त्युक्तेस्तद्वदनुद्वेजकत्वात्तत् द्वयम्। **अमृतं अयाचितस्या**मृतवदयत्नोपस्थित्या तृप्तिहेतुत्वात्। **भैक्ष्यं** देहि देहीति चित्तभेत्तृत्वा**न्मृतम्** ॥ ५ ॥

(५) **नन्दनः**। ऋतादीनां स्वरूपं श्लोकद्वयेन **व्याचष्टे ऋतमिति**। **उञ्छश्च शिलश्चोञ्छशिलम्**। 'उञ्छो धान्यश आदानम्, कणिशाद्यर्जनं शिल'मिति स्मृत्यन्तरम् ॥५॥

(६) **रामचन्द्रः**। एतद्वृत्तीनां लक्षणमाह **ऋतमिति**। **ऋत**संज्ञम् ॥ ५ ॥

(७) **मणिरामः**। ऋतादीनाह **ऋतमिति**। **उञ्छशिलं** अवारितस्थानेषु पथि वा क्षेत्रेषु वा यत्र यत्रौषधयोऽतिरिच्यंते तत्र 'तत्र' अंगुलीभ्यामेकैककणोच्चयनं **उञ्छः**। मंजर्युच्चयनं **शिलः**, उञ्छश्च शिलश्चोञ्छशिलम् ॥ '५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ऋतमिति**। **सत्यानृतमिति**। धान्यादिकणोच्चयनं शिलोच्चयनं च सत्यतुल्यफलत्वात् **ऋतं** वक्तव्यम्। अप्रार्थितोपनतं अमृतवत् सुखहेतुत्वा**दमृतम्**। प्रार्थितं पुनः भैक्षं मरणकल्पपीडानुभवात् **मृतम्**। **कर्षणं** च "भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखं' इति बहूनां मरणनिमित्तत्वात् प्रकर्षेण मृतम्। वाणिज्य च सत्यानृतव्यवहरणसाध्यत्वात् **सत्यानृतं** तेनापि, 'कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं चे'ति **गौतम**स्मरणात् अस्वयंकृतेन जीव्यन्ते। सेवा च दीनदृष्टिसन्दर्शनादिरूपतया **श्ववृत्ति**रित्युक्ता, तस्मात् तां प्रकृतो ब्राह्मणः परित्यजेत् ॥ ५–६ ॥

**सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ॥**
**सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। नैवं मन्तव्यं सत्यानृतोभयरूपता शास्त्रेण वाणिज्येऽभ्यनुज्ञायत इति। किं तर्हि? वस्तुस्वभाववादोऽयम्। लोभग्रहणमेवानृतम्। जीव्यत इति वचनाद्वाणिज्या जीवनायैव, न धनसञ्चयाय। **सेवा श्ववृत्तिः** यथा हि श्वा प्रेर्यते, कृच्छ्रेण च लभते, तथा च सेवकः। 'सेवा' प्रेष्यत्वम्। यत्र कुत्रचित्कर्मणि प्रेष्यते, उन्नितेऽनुन्निते वा, स सेवकः। अत उत्कृष्टेनायुधकर्मादिना ये राजानमुपसर्पन्ति ते न श्ववृत्तयः ॥ ६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **श्ववृत्तिः** शुन इव वृत्तिः तां परिवर्जयेत्। प्राणरक्षामात्रस्यान्यतः संभवे तु तामपि ब्राह्मणः कुर्यादित्येतदर्थं ब्राह्मणवृत्तेर्मध्येऽभिधानम्। अत्र चोत्तरोत्तरापेक्षया पूर्वा पूर्वा वृत्तिः श्रेष्ठेति वक्ष्यति ॥ ६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रायेण सत्यानृतव्यवहारसाध्यत्वा**त्सत्यानृतं वाणिज्यम्**। नतु वाणिज्ये शास्त्रेण सत्यानृताभ्यनुज्ञानं **तेन चैवापि जीव्यत** इति चशब्देन वाणिज्यसमशिष्टत्वात्कुसीदमपि गृह्यते। पूर्वश्लोकोक्ता कृषिरेतच्छ्लोके च वाणिज्यकुसीदे अनापदीत्यनुवृत्तेरस्वयंकृतान्येतानि बोद्धव्यानि। यथाह **गौतमः** 'कृषिवाणिज्ये स्वयं चाकृते कुसीदं च, सेवा तु दीनदृष्टिसंदर्शनस्वामितर्जननी च क्रियादिधर्मयोगाच्छुन इव वृत्तिरतः **श्ववृत्तिरुक्ता**। तस्मात्तां प्रकृतो ब्राह्मणस्त्यजेत् ॥ ६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **सत्यानृतं** सत्यं स्वीयं द्रव्यं परकीयमनृतं तदात्मकत्वाद्वाणिज्यस्य। **सेवा श्ववृत्तिः** उन्निद्रादिसप्तगुणः सारमेयस्तद्वृत्तिः दुःखात्मिका मनुष्यसेवेत्यनुभवसिद्धम्। आपदनापद्भेदेन ऋतादिव्यवस्था ॥ ६ ॥

(५) **नन्दनः**। उञ्छशिलादीनामृतादिसंज्ञाव्यवहारो वृत्तीनां तत्तत्संज्ञानुरूपगुणदोषतारतम्यप्रतिपत्त्यर्थः ॥ ६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सत्यानृतं** सत्यं च अनृतं च **सत्यानृतं वाणिज्यं श्ववृत्तिः सेवा** कष्टेन युद्धादिना आख्याता **तस्मात्तां** सेवां **परिवर्जयेत्** ॥ ६ ॥

(७) **मणिरामः**। सत्यानृतसाध्यत्वात् **वाणिज्यं सत्यानृतम्** ॥ ६ ॥

**कुसूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ।।**
**त्र्यहैहिको वाऽपि भवेदश्वस्तनिक एव वा ।। ७ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** उक्तमात्मकुटुम्बस्थित्यै धनसञ्चयः कार्यो, न भोगाय क्लेश आश्रयणीयः। तत्तु किमन्वहमर्जनीयं, उतैकदैव चिरकालपर्याप्तमिति, नोक्तम्। तत्र कालविलम्बार्थमिदमारभ्यते।

कुसूले धान्यमस्येति गमकत्वाद्व्यधिकरणो बहुव्रीहिः। पाठान्तरं 'कुसूलधान्यिक' इति। कुसूलपरिमितं धान्यं कुसूलधान्यं, तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इक्शब्दः। धान्याधिकरणमिष्टकादिकृतम् 'कुसूलः' 'कोष्ठ' इति चाच्यते। तेन चात्र परिमाणं लक्ष्यते। तत्र यावन्माति तावत्संचेतव्यम्। न पुनराधारनियमोऽस्ति। कुसूलेन च महापरिग्रहणस्यापि बहुभृत्यबन्धुदारदासपुत्रगवाश्वादिमतोऽपि यावता सांवत्सरी स्थितिर्भवति तावदनुज्ञायते। यतो वक्ष्यति (अ. ११ श्लो. ७) "यस्य त्रैवार्षिकं भक्तमिति"। धान्यग्रहणमप्यविवक्षितम्। सुवर्णरूप्याद्यपि तावत्याः स्थितेः पर्याप्तमर्जयतो न दोषः। सर्वथाऽधिकं ततो नार्जनीयमिति वाक्यार्थः। **कुम्भी** उष्ट्रिका। षण्मासिको निचय एतेन प्रतिपाद्यत इति स्मरन्ति। त्र्यहमैहिकमस्येति **त्र्यहैहिकः**। कुटुम्बस्य नित्यकर्मार्थं च भक्तचयं करोति यः स 'त्र्यहैहिकः'। श्वो भवं 'श्वस्तनं', भक्तं तदस्यास्तीति पूर्ववत् मत्वर्थीयं कृत्वा नञ्समासः कर्तव्यः। सद्यस्तात्कालिको भवेत्तदहरर्जितं व्ययीकर्तव्यम्।। ७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** तत्र ऋतामृतेषु तत्तद्वृत्त्याश्रितातिरिक्तफलार्थिनां संचयनियममाह **कुशूलेति।** कुशूलधान्यो वर्षषण्मासत्रिमासमासानामन्यतमकालतः कुटुम्बभोजनपर्याप्तधान्यवान्**कुशूलधान्यवान्।** **कुम्भीधान्यः** षडहःपर्याप्तधान्यवान् कुम्भस्थधान्यवान्। त्र्यहार्थमीहा चेष्टा यस्य स **त्र्यहैहिकः।** श्वस्तनजीवनपर्याप्ता यस्य वृत्तिर्न भवति **सोऽश्वस्तनिकः।** एकदिनमात्रपर्याप्तधान्यवान्।। ७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** 'कुसूलो व्रीह्यगारं स्यादि'त्याभिधानिकाः। इष्टकादिनिर्मितागारधान्यसंचयो भवेत्। अत्र कालविशेषापेक्षायां "यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये। अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हती"(११।७)ति।। **मनूक्त** एव कालो ग्राह्यः। तेन नित्यनैमित्तिकधर्मकृत्यपोष्यवर्गसहितस्य गृहिणो यावता धान्यादिधनेन वर्षत्रयं समधिकं वा निर्वाहो भवति तावद्धनः **कुसूलधान्यक** उच्यते। वर्षनिर्वाहोचितधान्यादिधनः **कुम्भीधान्यः।** 'प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवे' (आचार० १२४) दिति **याज्ञवल्क्येन** गृहस्थस्य वार्षिकसंचयाभ्यनुज्ञानात्। मनुरपि 'यदा वानप्रस्थस्यैव समानिचय एव वे'त्यनेन समानिचयं वक्ष्यति। तदपेक्षया बहुपोष्यवर्गस्य गृहिणः समुचितः संवत्सरसंचयः। **मेधातिथिस्तु** यावता धान्यादिधनेन बहुभृत्यदारादिमतस्त्रिसंवत्सरस्थितिर्भवति तावत्सुवर्णादिधनवानपि कुसूलधान्य इत्यभिधाय कुम्भी उष्ट्रिका षाण्मासिक धान्यादिनिचयः कुम्भीधान्यक इति व्याख्यातवान्। **गोविन्दराजस्तु** कुसूलधान्यक इत्येतद्व्याचक्ष्य कोष्ठप्रमाणधान्यसंचयो वा

स्याद्द्वादशाहमात्रपर्याप्तधनः कुम्भीधान्यक इत्येतद्व्याचष्टे। उष्ट्रिकाप्रमाणधान्यादिसंचयो वा षडहमात्रपर्याप्तधनः। 'द्वादशाहं कुसूलेन वृत्तिः कुम्भ्या दिनानि षट्। इमाममूलां गोविन्दराजोक्तिं नानुरुन्ध्महे।' ईहा चेष्टा तस्यां भवमैहिकं त्र्यहपर्याप्तमैहिकं धनं यस्य स **त्र्यहैहिकः** तथा वा स्यात्। दिनत्रयनिर्वाहोचितधनमित्यर्थः। श्वो भवं श्वस्तनं भक्तं तदस्यातीति मत्वर्थीयम्ठिकं कृत्वा नञ्समासः तथा वा भवेत्॥ ७॥

(४) **राघवानन्दः**। तेष्वेव यदि कुटुम्बाद्यर्थं संचयी स्यात्तत्कथं तत्राह **कुसूलेति**। 'कुसूलो व्रीह्यगारं स्यादि'त्यभिधानादिष्टकादिनिर्मितागारम्। **कुम्भीधान्यकः** कुम्भी उष्ट्रिका तया परिमितं धान्यं यस्य सः। षण्मासिकधान्यसंचय इति **मेधातिथिः**। भार्यासहितमात्रत्वेन 'द्विजस्य वानप्रस्थस्य समानिचय एव वे'ति वक्ष्यमाणत्वात् 'समानिचयेऽपि न दोष इति। **त्र्यहैहिक** इति। ईहा चेष्टा तया पर्याप्तं यत्तदैहिकं तादृशदिनत्रयं व्याप्य भोज्यं यस्येत्यर्थः। त्र्यहैहिकीं कुटुम्बार्थमीहां करोति यः स त्र्यहैहिक इति **मेधातिथिः**। श्वस्तनं परदिनभोज्यं तेनापि न जीवतीत्य**श्वस्तनिकः**। द्वादशदिनभोज्यं कुसूलं, षड्दिनभोज्यं कुम्भीति **गोविन्दः**॥७॥

(५) **नन्दनः**। एवं तावद्वृत्तेरुपाया नियमिताः। इदानीमुपेयमपि नियमयति **कुसूलेति**। कुसूलात्किंचिन्न्यूना धानी कुम्भीति कल्पनीयम्। द्वयोरह्नोरैहिकमिह भोग्यं वस्तु यस्यास्ति स **द्व्यहैहिकः**। श्वो भोग्यं वस्तु श्वस्तनं, तद्वान् **श्वस्तनिकः**॥ ७॥

(६) **रामचन्द्रः**। कुसूलं मृत्तिकाकोष्ठकं कुम्भी उष्ट्रिका। **कुसूलधान्यको** वा स्यात्। **कुम्भीधान्यो** वा स्यात्। स्वकुटुम्बपोषणे द्वादशाहमात्रपर्याप्तान्नः कुशब्दो धान्याधिकरणं शूलः कोष्ठः कुसूलधान्यः। स्वकुटुम्बपोषणे पर्याप्तान्नो वर्षपर्यन्तं स **कुम्भीधान्यः** उष्ट्रिका प्रमाणसञ्चयपरः त्र्यहपर्याप्तान्नमस्यास्तीति। **त्र्यहैहिकः** श्वो भवं धान्यादि श्वस्तनं, न विद्यते श्वस्तनं यस्यासौ **अश्वस्तनिक** एव वा भवेत्॥ ७॥

(७) **मणिरामः**। **कुसूलधान्यकः** नित्यादिधर्मकृत्यप्रेष्यवर्गसहितस्य गृहस्थस्य। यावता धान्यादिधनेन वर्षत्रयं तदधिकं वा निर्वाहो भवति तावद्धनः **कुसूलधान्यकः** कुम्भीधान्यकः। वर्षनिर्वाहोचितधान्यादिधनः **कुम्भीधान्यकः**। त्र्यहैहिकः ईहा चेष्टा तस्यां भवं ऐहिकं त्र्यहपर्याप्तं ऐहिकं धनं यस्य सः **त्र्यहैहिकः** दिनत्रयनिर्वाहोचितधनवानित्यर्थः। श्वो भवं श्वस्तनिकं, तदस्यास्तीति **श्वस्तनिकः** दिनद्वयनिर्वाहोचितधनवानित्यर्थः। तथा च प्रकारचतुष्टयमध्ये यादृशो भवितुमर्हति तादृशो भवेदित्यर्थः॥ ७॥

(८) **गोविन्दराजः**। स च ब्राह्मणः शौचसङ्कोचतारतम्यापेक्षया **कुसूलधान्यक इति**। कोष्ठकप्रमाणधान्यादिसंचयो वा स्यात् द्वादशाहमात्रपर्याप्तधनः। उष्ट्रिकाप्रमाण-धान्यादिसंग्रहो वा षडहमात्रपर्याप्तधनः। त्र्यहमात्रपर्याप्तं ईहायां चेष्टायां भवं धान्यादि यस्य तथा वा स्यात्। श्वो भवं धान्यादि यस्य नाद्याह्निकश्वस्तनो वा स्यात्। एवं यात्रा-मात्रप्रसिद्ध्यर्थं नित्यस्य संचयसंकोचधर्मतारतम्यापेक्षयाऽयमपवादः॥ ७॥

**चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम्॥**
**ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः॥ ८॥**

(१) **मेधातिथिः।** अस्य विकल्पस्य व्यवस्थामाह्—यो यः स्वल्पकालसञ्चयः स **धर्मेर्ज्यायानधिकः।** धर्माधिक्याच्च फलाधिक्यं भवति। **लोकजित्तमः** लोकाञ्जयत्याधिपत्येनावतिष्ठते, भोग्यतया स्वीकरोति। प्रकर्षविवक्षायां तमः। अविशेषोपादानात् 'लोकः' स्वर्गः प्रतीयते।

तेनेयमत्र व्यवस्था। महापरिग्रहो यो बह्वपत्योऽसंविभक्तपुत्रः अकृतकन्याविवाहश्च स 'कुसूलधान्यकः'। यस्तु परिणतवयाः अप्राप्तपुत्रः कृतकरणः स यावद्यावच्छ्रममेति तावत्तावदितरान्कल्पानाश्रयेत् ॥ ८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **चतुर्णामपीति।** अपिशब्देन पूर्वोक्तानां षण्णां वृत्तीनामपि मध्येऽसंकुचितां वृत्तिमपेक्ष्य संकुचिता ज्यायसीति। परशब्दोऽत्र संकोचलब्धोत्कर्षवृत्तिपरः। तेनात्र चतुष्के परः परः षट्सु तत्पूर्व इति ग्राह्यम् ॥ ८ ॥

(३) **कुल्लूकः।** एषां चतुर्णामपि कुसूलधान्यकादीनां ब्राह्मणानां गृहस्थानां मध्ये यो यः शेषे पठितः स श्रेष्ठो ज्ञातव्यः। यतोऽसौ वृत्तिसंकोचधर्मेण स्वर्गादिलो**कजित्तमो** भवति ॥ ८ ॥

(४) **राघवानन्दः।** अत्र ऋतादयः षडुपायाः, तेन जीवन्नित्युक्तत्वात् कुसूलादयश्चत्वार उपायास्तेष्वेव श्रेष्ठत्वनिर्धारणमाह **चतुर्णामिति।** कुसूलादिचतुष्टयसंचयिनामेषां कुटुम्बाल्पबहुत्वाद्यपेक्षया कुसूलधान्यकादीनामर्थवादः श्रेयानित्यादि ॥ ८ ॥

(५) **नन्दनः।** **चतुर्णां** कुसूलधान्यादीनाम् ॥ ८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **तेषां चतुर्णां** कुसूलधान्यकादीनां मध्ये **परः परः ज्यायान्** उत्कृष्टः **ज्ञेयः** ॥ ८ ॥

(७) **मणिरामः।** उत्तरोत्तरमे**तेषां** प्राशस्त्यमाह **चतुर्णामपीति** ॥ ८ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **चतुर्णामिति।** एषां कुसूलधान्यकादीनां **चतुर्णामपि** **ब्राह्मणानां गृहस्थानां मध्यात्** यः पश्चात्पठितः स स प्रशस्यतरो बोद्धव्यः। यतोऽसौ वृत्तिसङ्कोचसंयमधर्मातिशयेन स्वर्गादिलोकजिद्भवति ॥ ८ ॥

**षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ॥**
**द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **एषां** कुसूलधान्यकादीनां गृहस्थाना**मेकः षट्कर्मा भवति।** यो महापरिग्रहः प्रागुक्तस्तस्य षड्वृत्तिकर्माणि भवन्ति। कानि पुनस्तानि? प्रकृतानि — उञ्छशिलायाचितायाचितलाभकृषिवाणिज्यानि। अध्यापनयाजनप्रतिग्रहाः 'याचितायाचित'ग्रहणादन्तर्भवन्ति। बहुकुटुम्बको नित्यकर्मसम्पत्त्यर्थं च सर्वा वृत्तीः समुच्चिताः **कुर्यात्**— कृषिवाणिज्ये अपि।

येऽपि'अध्यापनमध्ययन'(१।८८)मित्यादीनि प्रथमाध्यायपठितानि षट्कर्माणि व्याचक्षते तेषां प्रकरणविरोधो निष्प्रयोजनं वाऽध्ययनादीनामुपादानम्; अन्यत्रैव तेषां विहितत्वात्।

**अन्यो** द्वितीयः कुम्भीधान्य**स्त्रिभिः प्रवर्तते**। प्रोऽनर्थको यावद्वर्तते तावत्प्रवर्तत इति। वर्तनं च स्थितिसम्पत्तिः। प्रकृतानां च यानि कानिचित् क्वचित्, कृषिवाणिज्ये विहाय।

प्रशस्ततरो हि पूर्वस्मात्कुम्भीधान्यकः। यतो वक्ष्यति 'सा वृत्तिः सद्भिर्गर्हिता'। "गोरक्षकान्वाणिजिकानिति"। यदप्युक्तं **गौतमेन** (अ. १० सू० ५–६) "कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं चे"त्यनापद्येव। तत्राप्यस्वयंकरणपक्षे दोषोऽस्त्येव, लघीयांस्तु भविष्यति। **द्वाभ्यामेकः**। अत्रापि याचितलाभं वर्जयित्वा त्रयाणां यथासम्भवं द्वे गृह्येते। अयाचितमपि तावद्गृह्यते यावत्त्र्यहपर्याप्तम्।

**चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति**। 'ब्रह्मसत्रं' शिलोञ्छयोरन्यतरा वृत्तिः। सततभवत्वात्सत्रमिव न तदहःपरिसमापनीया वृत्तिरतः सत्रमित्युच्यते, अहरहर्नित्यमनुष्ठानात्। ब्रह्मशब्दो ब्राह्मणपर्यायस्तेषामिदं सत्रम्। अस्माद्ब्रह्मशब्दात्पूर्वोऽयं वृत्तिप्रपञ्चो ब्राह्मणविषय एव विज्ञेयः। क्षत्रियादीनां तु तत्र तत्र वक्ष्यति।

"**कथं पुनः** शिलोञ्छवृत्त्या जीवनं संभवति? यावता शरद्ग्रीष्मयोरेव क्षेत्रे खले वा शिलपुलाकपातसम्भवः। अथोच्यते—'ग्रैष्मेभ्यो ग्रैष्माणि शारदानि शारदेभ्योऽर्जयिष्यतीति' षाण्मासिकवृत्तिरेव स्यान्नाश्वस्तनिकः। अथ 'अन्यथाऽपि संभवति यावतस्तावतो व्रीह्यादेः कथञ्चित्पतितस्योपादानम्।' सत्यम्। न तद्भोजनाय पर्याप्तम्। 'सञ्चिन्वानो यदा पर्याप्तं प्राप्स्यति तदाऽशिष्यति पञ्चाहाद्यसम्भवात्। तथा च **महाभारते**, शिलोञ्छवृत्तिः पक्षान्ताशनो वर्ण्यते। सोऽयमस्यामवस्थायां गृहस्थस्तापसः संवृत्त' इति चेत्। किंत्वेवमप्यश्वस्तनिकत्वं विरुध्यते। यथोपपादस्थितिकस्तदा स्यान्नाश्वस्तनिकः। अश्वस्तनिको ह्युच्यते य अहन्यहन्यर्जयति यात्रिकं तदहरेव च व्ययीकरोति, न द्वितीयेऽह्नि स्थापयति। यदि च न प्रत्यहं शिलोञ्छवृत्तेर्भोजनं निवर्तते, कुतोऽश्वस्तनिको भवेत्, कथं च तथाविधस्य जीवनं पुत्रदारभरणं च?" अत एव केचि**त्त्रिभिरन्यः प्रवर्तत** इत्यत आरभ्यान्यथा व्याचक्षते। **'त्रिभि'**र्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैर्द्वाभ्यां "प्रतिग्रहः प्रत्यवर" इति प्रतिग्रहव्युदासेन याजनाध्यापने प्रतिगृह्येते। **ब्रह्मसत्र**मध्यापनम्। तद्धि वृत्तये पर्याप्तम्। यत्तु 'वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामिति" स चतुष्टयव्यतिरिक्तोऽन्य एव। अत्रोच्यते— यः शिलपरिमाणान्दशद्वादशान्यवान्व्रीहीन्वा बहुभ्य आदत्ते यावदेकाहयात्रिकं स 'शिलवृत्तिः'। यस्त्वेकैकं यात्रार्थमाहरति स 'उञ्छवृत्तिः'। स्मृत्यन्तरे चायं 'यायावर'वृत्तिरुक्तः। अतश्च सार्वकालिकमप्युपपद्यते। न च वैश्वदेवादिक्रियाविरोधः, न च पुत्रदाराणामभरणदोषश्च, याचितभैक्षादत्यन्ताल्पग्रहणात्॥९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पूर्वं हि ऋतामृतमृताख्यं वृत्तित्रयमनापदि, अन्यत्तु त्रयमापदीति दर्शितम्। यत्तु'सेवानूपं नृपे भैक्ष्यमापत्तौ जीवनानि त्विति' (आप. ४२) **याज्ञवल्क्येनोक्तं** तत्सिद्धान्नभैक्ष्यविषयम्। तेषु कुशूलधान्यादिचतुष्टयमध्य एकः कुशूलधान्यः। **षट्कर्मा** याजनाध्यापनप्रतिग्रहा हि मृतामृतभेदेन द्विविधाः सन्तः षट् भवन्ति तैः समुदितैर्वर्तते। अन्यः कुम्भीधान्यः। **त्रिभि**रमृतभेदभूतैः याजनादिभिस्त्रिभिः। अन्यस्त्र्यहैहिको **द्वाभ्यां** शिलोञ्छाभ्यां। **चतुर्थो**ऽश्वस्तनवृत्तिः **ब्रह्मसत्रेण** ब्रह्मलोकप्राप्तिहेतुना। सत्रं सत्रेणोञ्छग्रहणेन यागस्तत्तुल्यफलतया **जीवति**॥९॥

(३) **कुल्लूकः।** **एषां** गृहस्थानां मध्ये कश्चिद् गृहस्थो यो बहुपोष्यवर्गः स प्रकृतैर्ऋतायाचितभैक्षकृषिवाणिज्यैः 'पञ्चभिस्तेन चैवे'(४।६)त्यनेनैव चशब्दसमुच्चितेन कुसीदेनेत्येवं षड्भिः कर्मभिः **षट्कर्मा भवति** षड्भिरेतैर्जीवति। कृषिवाणिज्यकुसीदान्येतान्यस्वयंकृतानि (गौ.१०।२)**गौतमो**क्तानीत्युक्तम्। **अन्यः** पुनस्ततोऽल्पपरिकरः। **त्रिभिर्याजना**ध्यापनप्रतिग्रहैरद्रोहेणेत्येतच्छ्लोकसंगृहीतैः **प्रवर्तते**। प्रशब्दोऽनर्थको वर्तत इत्यर्थः। अपरः पुन'प्रतिग्रहः प्रत्यवर' इति (१०।१०९)। वक्ष्यमाणत्वात्तत्परित्यागेन **द्वाभ्यां** याजनाध्यापनाभ्यां प्रवर्तते। उक्ततयापेक्षया **चतुर्थः** पुन**र्ब्रह्मसत्रेणा**ध्यापनेन जीवति। **मेधातिथिस्तु** एषां कुसूलधान्यकादीनां मध्यादेकः कुसूलधान्यकः प्रकृतैरुञ्छशिलायाचितायाचितकृषिवाणिज्यैः षट्कर्मा भवति। षड्भिर्जीवति अन्यो द्वितीयः कुम्भीधान्यकः कृषिवाणिज्ययोर्निन्दितत्वात्तत्याग उञ्छशिलयाचितायाचितानां मध्यादिच्छातस्त्रिभिर्वर्तेत। एकस्त्र्यहैहिको याचितलाभं विहायोञ्छशिलायाचितानां मध्यादिच्छया द्वाभ्यां वर्तेत। चतुर्थः पुनरश्वस्तनिको ब्रह्मसत्रेण जीवति। ब्रह्मसत्रशिलोञ्छयोरन्यतरा वृत्तिः। ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य सततभवत्वात्सत्रमित्याह ॥९॥

(४) **राघवानन्दः।** **एषां** कुसूलधान्यकादीनां मध्ये बहुपरिकरः कुसूलधान्यकः षडुञ्छादिकर्मा स्यादित्याह, **षट्कर्मैक इति**। कुम्भीधान्यकस्तु मध्यमपरिकरः कृषिवाणिज्ये याच्ञां विहायान्यै**स्त्रिभिर्जीवेत्** श्रेष्ठत्वात्। त्र्यहैहिको **द्वाभ्यां** शिलोञ्छाभ्यां श्रेष्ठतरत्वात्। अश्वस्तनिकस्त्वयाचितेनैकेन श्रेष्ठतमत्वात्। 'ऋतामृताभ्यां जीवेदि'ति जीविकोपक्रमाद्वृत्तयस्तु शिलोञ्छाभ्यामित्युपसंहाराच्चेति जीविकालिङ्गात्प्रकरणाच्चेति केचित्। परे त्वाहुः षडिति यजनयाजनाध्ययनाध्यापनदानप्रतिग्रहा षडस्य सन्तीति षट्कर्मेति कर्मशब्दप्रयोगात्। त्रिभिर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैः। द्वाभ्यां याजनाध्यापनाभ्यां। 'प्रतिग्रहप्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशय' इति प्रतिग्रहस्य निन्दितत्वाच्चतुर्थोऽध्यापनशीलः, 'सा ह्यस्य कृतकृत्यते'ति, वक्ष्यमाणत्वादिति। चतुर्थस्त्वध्यापनरतः। एतेषु प्रकृष्टः ब्रह्म वेदस्तदेव सत्रं 'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्य'मिति श्रुतेः। सत्रवदावश्यकत्वबहुकालव्यापित्वाभ्यां स एव स्तूयते ॥९॥

(५) **नन्दनः।** एवं तावदुपेयपरिमाणतश्चातुर्विध्यं गृहमेधिनामुक्तम्, इदानीमुपायपरिमाणतोऽप्याह **षडिति**। एषां चतुर्णां मध्य एकः षट्कर्मा भवति। **षड्भि**र्ब्राह्मणनियतैर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैस्त्रैवर्णिकनियतैः प्रमृतसत्यानृतकुसीदैश्चार्थसञ्चये प्रवृत्त इत्यर्थः। **त्रिभिर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहैः**। **द्वाभ्यां** याजनाध्यापनाभ्याम्। प्रतिग्रहः प्रत्यवर इति विन्दितत्वात्प्रतिग्रहो वर्जनीय इत्यर्थः। **ब्रह्मसत्रेणा**ध्यापनेन **चतुर्थो** जीवति। तस्य षट्कर्माद्यपेक्षया चतुर्थशब्देन ग्रहणम्, नतु पूर्वश्लोके निर्दिष्टस्याश्वस्तनिकस्य ॥९॥

(६) **रामचन्द्रः।** वर्णानां वृत्तिमाह—**एषां** कुसूलधान्यकादीनां मध्ये **एकः** ब्राह्मणः **षट्कर्मा** उञ्छशिलायाचितायाचितकर्षण-वाणिज्य-सेवावृत्तिभिर्भवेत्। प्रतिग्रहादीनि वा षट्कर्माणि क्षत्रिय**स्त्रिभि**रध्ययनदानयजनादिभिः। **वैश्यः** द्वाभ्यां वृत्तिभ्यां गोरक्षावाणिज्याभ्यां जीवेत्। **चतुर्थः** शूद्रः स्वस्य **ब्रह्मसत्रेण** ब्राह्मणानां वा त्रैवर्णिकानां वा सेवारूपवृत्त्या जीवति। 'शूद्रस्तु द्विजसेवया' इति **योगी**। षट्कर्माणीज्याध्ययनं दानं याजनमध्यापनं प्रतिग्रहश्चेति ॥९॥

(७) **मणिरामः। षट्कर्मक इति।** **एषां** गृहस्थानां मध्ये। **एकः** बहुपोष्यवर्गः। **षट्कर्मा** ऋतायाचित-भैक्ष-कृषि-वाणिज्य-कुसीदाख्यैः षड्भिः कर्मभिः षट्कर्मा भवति। षड्भिरेतैर्जीवतीत्यर्थः। **अन्यः** ततोऽल्पपोष्यवर्गः। **त्रिभिः** याजनाध्यापनप्रतिग्रहैः वर्तते। **एकः** एतस्मादप्यल्पपोष्यवर्गः **द्वाभ्यां** याजनाऽध्यापनाभ्यां वर्तते। **चतुर्थः** उक्तत्रयापेक्षया चतुर्थः। **ब्रह्मसत्रेण** अध्यापनेन जीवतीत्यर्थः ॥९॥

(८) **गोविन्दराजः। षट्कर्मेति।** **एषां** गृहस्थानां मध्यात् कश्चिद्गृहस्थः परिग्रहभूयस्त्वाद्यपेक्षया प्राकृतऋतादिकर्मा भवति। **अन्यः** पुनः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाणां ब्राह्मणस्य नोदितत्वात् एतैस्त्रिभिर्जीवितुं प्रवर्तते, अपरः पुनः प्रतिग्रहः प्रत्यवर इति वक्ष्यमाणत्वात्। तत्यागेन **द्वाभ्यां** याजनाध्यापनाभ्यां जीवितुं प्रवर्तते। उक्तत्रयापेक्षया **चतुर्थः** पुनरध्यापनेन जीवति ॥९॥

**वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः।**
**इष्टीः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥१०॥**

(१) **मेधातिथिः।** पर्व चायनान्तश्च तयोर्भवाः **पार्वायणान्तीयाः।** स्वार्थिकमणं कृत्वा 'वृद्धाच्छ': (पा. ४।२।११४) कर्तव्यः। पर्वेष्टिर्दर्शपूर्णमासौ, अयनांते च यज्ञ आग्रयणाख्यः। 'केवल'ग्रहणात्काम्या इष्टयो निषिध्यन्ते। वैश्वदेवहोमबलिहरणेऽपि तस्य नान्वहं भवतः। न हि तस्य सर्वदा तावद्धनं भवति। अतः केवलग्रहणान्महायज्ञनिवृत्तिः।

"ननु चाग्निहोत्रमपि तत्तस्य नैव भवति। तदपि द्रव्यासाध्यमेव"। पक्षहोमान्होष्यति "भार्याभरणं कथम्?' इति चेत्साऽपि तां वृत्तिमाश्रयिष्यति। यदा च भार्या व्रतमेतद्धारयितुमशक्ता तदा भर्तुरपि नास्त्यधिकारः। अथ 'चान्द्रायणादिषु प्रवृत्तस्य कथं भार्यया जीवनम्? इति चेत्। अचोद्यमेतद्विद्यमानत्वात्—'अतिथ्यादिशिष्टमशिष्यत' इति।

"ननु वैश्वदेवहोमाभावात् विद्यमानेऽपि स्त्रीधने न भोजनं युक्तम्, उभयोर्विघसाशित्वविधानात्। अतः स्त्रीधनेन वैश्वदेवं करिष्यति, धर्मकार्येऽनुज्ञानात्स्त्रीधनग्रहणस्य"। नैवम्। तस्यामवस्थायामग्निहोत्रमात्रं धर्मः, न वैश्वदेवहोमः। भवतु वा। यस्यास्तर्हि धनं नास्ति कथं जीवतु। तस्माद्यस्यासमर्था भार्या नासौ शिलोञ्छवृत्तावधिक्रियते। **वर्तयन्नात्मानं** जीवयन् ॥१०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। इष्टीः केवला** इष्टीरेव दर्शपूर्णमास्योः पर्वणोरन्ते समीपे प्रतिपदि कार्ये पर्वान्ते ये इष्टी दर्शपूर्णमासाख्ये। तथाऽयनान्ता या अयनान्तकार्या आग्रयणेष्टयः। अन्तशब्दोऽत्र सामीप्यार्थः। आग्रयणेष्टिर्हि यवैरुत्तरायणे श्यामाकैर्व्रीहिभिश्च दक्षिणायने क्रियत इत्य**यनान्तीया** भवन्ति, एता एव कुर्यान्नतु चातुर्मास्यपशुसोमादि। अत्रा**ऽग्निहोत्रपरायण** इति **'निर्वपेत्सदे'**ति वचनात् त्रेताग्निमत एव शिलोञ्छयोरधिकारो गम्यते 'शिलान्प्युञ्छत' (३।१००) इत्यत्र तूभयाभिधानं वृत्तिसंकोचधर्मान्तरसंभवयोरुपदर्शनार्थम् ॥१०॥

(३) **कुल्लूकः।** शिलोञ्छाभ्यां जीवन्धनसाध्यकर्मान्तरानुष्ठानासामर्थ्यादग्निहोत्रनिष्ठ एव स्यात्। **पार्वायणान्तीयाश्च इष्टीः केवला** अनुतिष्ठेत्। पर्व च अयनं च पर्वायने, तयोरन्तस्तत्र भवा दर्शपौर्णमासाग्रयणात्मिकाः ॥१०॥

(४) **राघवानन्दः।** प्रकृतमाह **वर्तयन्निति** चतुर्भिः। **पार्वायणान्तीयाः** पर्वणीः दर्शपूर्णमासयोर्भवाः तथा अयनान्ते भवाश्च **इष्टीः केवलाः** पशुसोमादिवर्जिताः ।।१०।।

(५) **नन्दनः।** अथ शिलोञ्छवृत्तेराहिताग्नेर्नियममाह **वर्तयंस्त्विति।** शिलोञ्छेन चोभाभ्यां वर्तयन् जीवन्**नग्निहोत्रपरायणः सदा** सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहुयात्। पर्व चायनं च पर्वायने, तयोरन्तः पर्वायणान्तः, तत्र भवाः **पार्वायणान्तीयाः** दर्शपूर्णमासाग्रयणलक्षणाः **केवला** फलरहिता **इष्टीर्निर्वपेत्कुर्यान्न** ततोऽधिकं श्रौतं कर्म कुर्यात्। तावन्मात्रसिद्धये द्रव्यमर्जयितव्यं नाधिकमित्यभिप्रायः ।।१०।।

(६) **रामचन्द्रः। शिलोञ्छाभ्यां वर्तयन्** शाल्यादिक्षेत्रे नियते पशुयागप्रतिप**दिष्टी-**रित्यर्थः ।।१०।।

(७) **मणिरामः। पार्वायणांतीयाः** पर्व च अयनं च पर्वायणे, तयोः अंतः पर्वायणान्तः, तत्र भवाः दर्शपौर्णमासाग्रयणात्मिकाः। तथा च धनसाध्यकर्मांतरानुष्ठानासामर्थ्यात् एता **एवेष्टीः सदा निर्वपेत्** कुर्यादित्यर्थः ।।१०।।

(८) **गोविन्दराजः। वर्तयन्निति। शिलोञ्छाभ्यां** जीवन् कर्मान्तरासंभवे सायंप्रातर्होमनिष्ठः सन् दर्शपूर्णमासान् पार्वणाख्यान् यागान् केवलान् सर्वकालं कुर्यात् ।।१०।।

**न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।।**
**अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ।।११।।**

(१) **मेधातिथिः। लोकवृत्तं** नामोच्यते येन प्राकृतजनोऽल्पसत्त्वो वर्तते, दम्भेनासत्प्रियाख्यानेन च 'त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्मा जय जीवेति'। तथा विचित्रपरिहासकथाभिः। **वृत्तिहेतोर्जी**विकार्थतया न कर्तव्यमेतत्। यस्तु नर्मशीलस्तस्य न दोषः। **अजिह्माम्।** यस्यान्यच्च हृदयेऽन्यच्च बहिः स 'जिह्म' उच्यते। द्वेषमत्सरात्मा दर्शयत्यप्रियं वदताम्। **अशठाम्।** अग्निहोत्रकर्मानुष्ठानं, लोकार्जनेन प्रतिग्रहादिलाभार्थं, न शास्त्रार्थश्रद्दधानतया कुर्यात्स 'शठः'।

आत्मधर्मत्वेऽपि जैह्म्यशाठ्ययोः, जीविकाऽप्यभेदोपचाराद्व्यपदिश्यते। **अजिह्मामशठां शुद्धामिति।** शुद्धिर्वृत्त्यन्तरेणामिश्रीकरणं पूर्वदोषद्वयेन च। एकपदलभ्योऽप्ययमर्थो वृत्तानुरोधाद्गोबलीवर्दवद्बहुपदैः प्रतिपाद्यते। "अथ कथं **ब्राह्मणजीविकां जीवेदिति** द्वितीया? यावता जीवतिरकर्मकः। कथं चैकस्यैव धातोरेकत्र द्विप्रयोगः? न हि भवति गमनं गच्छेदिति साध्यसाधनभावः"। उच्यते। सामान्यविशेषभावात्साध्यसाधनभावो न विरुद्धः। यथाऽश्वपोषं पुष्ट इति। अनुष्ठानाङ्गे च वर्तनार्थे जीवतिर्वर्तते। तेन सकर्मकत्वमिति न दोषः। **जीवेत्** जीवनार्थमनुतिष्ठेत् ।।११।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। लोकवृत्तं** वृत्त्यर्थितया प्रायशो यदाचरति स्वगुणानुख्यापनारूपवेषधारणादिकं लोकस्तत्र **वर्तेत न** वर्तयेत्। **अजिह्मामवक्राशयतया** लभ्यां। **अशठां** परवञ्चनरहितां **शुद्धां** पतितादिसम्बन्धशून्यां **ब्राह्मणजीविकां** न क्षत्रियवैश्यजीविकाम् ।।११।।

(३) **कुल्लूकः। लोकवृत्तम**सत्प्रियाख्यानं विचित्रपरिहासकथादिकं जीविकार्थं न कुर्यात्। **अजिह्मां** मृषात्मगुणार्थाभिधानादिपापरहिताम्। **अशठां** दम्भादिव्याजशून्याम्। **शुद्धां** वैश्यादिवृत्तेरसंकीर्णां **ब्राह्मणजीविकामनु**तिष्ठेत्। अनेकार्थत्वाद्धातूनामनुष्ठानार्थोऽयं जीवतिरिति सकर्मकता ।।११।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **न लोके**ति। **लोकवृत्तं** मिथ्यालापादि। **अजिह्मां** दम्भव्याजादिशून्यां। **अशठां** अवैश्यादिवृत्तिम् ।।११।।

(५) नन्दनः। अज्ञो जनो लोकस्तस्य वृत्तं जैह्म्यशाठ्यान्वितम्। **तन्न वर्तेत** न कुर्यात्। **कथञ्चन** आपद्यपि। **अजिह्मामृजुम्**। अशठामनृशंसां अत एव **शुद्धां ब्राह्मणजीविकां** ब्राह्मणस्य विहितां वृत्तिं **जीवेत्**कुर्यात् ।।११।।

(६) **रामचन्द्रः। लोकवृत्तं न वर्तेत** लोकानुकरणं न वर्तेत **अजिह्मां** अवक्राशयां **अशठां** परवञ्चनरहितां पतितादिसंबन्धशून्यां। एतादृशीं **जीविकां** ब्राह्मणः **जीवेत्** ।।११।।

(७) **मणिरामः। लोकवृत्तं** विचित्रपरिहासकथादिकं। **अजिह्मां** मृषात्मगुणार्थाभिधानादिपापरहितां; **अशठां** दंभादिव्याजशून्यां। **शुद्धां** वैश्यादिवृत्तेरसंकीर्णाम् ।।११।।

(८) **गोविन्दराजः। न लोकवृत्तं वर्तेते**ति। जीविकार्थं च विचित्रपरिहासादि न कदाचिदपि कुर्यात्। अपितु स्वनोदितत्वेन अपापां श्रद्धावतीं दम्भादिव्याजशून्यां **ब्राह्मणवृत्तिमनु**तिष्ठेत् ।।११।।

**संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।।**
**संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ।। १२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। त्र्यहैहिकाश्वस्तनवृत्तिदाढर्चार्थं प्रसंख्यानमिदमाह। **सन्तोष** आश्रयितव्यः, न बहूनामुपजीव्यः स्यामिति याच्ञाक्लेश आस्थेयः **सुखार्थी संयतो भवेत्**। 'संयमः' यात्रिकाद्धनादधिके नाभिलाषः। सन्तोषो मनस्विनां सुखमूलम्। **दुःखस्य मूलं विपर्ययः** असन्तोषः। महद्विदुषां दैन्यं, अभिलषिते वस्तुन्यसम्पत्तिः। तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ।।१२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। संयतो**ऽसद्वृत्तिनिवृत्तः। **सुखं** संतोषो मूलं यस्य स तथा **दुःखस्य मूलं विपर्ययो**ऽसंतोषः। शिलोञ्छादावसंतुष्टस्य तद्वृत्तित्यागसंभवादत्र वृत्तिनियमनिर्वाहहेतुः संतोषः कार्यतया दर्शितः ।।१२।।

(३) **कुल्लूकः**। यथासंभवभृत्यात्मप्राणरक्षणावश्यकपञ्चयज्ञाद्यनुष्ठानमात्रोचितधनानधिका स्पृहा संतोषः तमतिशयितमालम्ब्य प्रचुरधनार्जने संयमं कुर्यात्। यतः संतोषहेतुकमिति सुखं परत्र चाव्यग्रस्य विहितानुष्ठानात्स्वर्गादिसुखम्। **विपर्ययस्त्व**संतोषो **दुःखमूलं** बहुधनार्जनप्रयासेन प्रचुरदुःखादसंपत्तौ विपत्तौ च क्लेशात् ।।१२।।

(४) **राघवानन्दः। दुःखमूलं** दुःखस्य मूलं। **विपर्ययो**ऽसंतोषः ।।१२।।

(५) **नन्दनः**। संकुचितवृत्तित्वं सुखहेतुरित्यभिप्रायेणाह **संतोषमिति**। एतावताऽलमिति बुद्धिः **संतोषः**। **संयतः** भोगविस्तारप्रसंगोपरतः। **संतोषमूलमिति** बहुव्रीहिः। **दुःखमूलमिति** तत्पुरुषः। **विपर्ययोऽसंतोषः** ॥१२॥

(६) **रामचन्द्रः**। त्र्यहैह्निकाश्वस्तनदाढर्यार्थं प्रसंख्यानमिदमाह **संतोषेति**। **विपर्ययः** असंतोषः **दुःखमूलम्** ॥१२॥

(७) **मणिरामः**। उचितधनानधिका स्पृहा **संतोषः**। **संयतो भवेत्** प्रचुरधनार्जने संयमं कुर्यात् ॥१२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सन्तोषमिति**। यः समः स्वर्गादिदृष्टादृष्टमुख**सुखार्थी** स्वोपगतविशेषस्पृहः सन् आत्मकुटुम्बनित्यानुष्ठानमात्रपर्याप्तसंचय एव धने प्रकृष्टां निवृत्तिमाश्रित्य धनार्जनं संचयं कुर्यात् यस्मात् **सन्तोषप्रभवं** समस्तस्वर्गादिदृष्टादृष्टसुखम्। असन्तोषः पुनर्दृष्टाऽ-दृष्टदुःखस्य मूलम् ॥१२॥

**अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥**
**स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। वृत्तिविषयो विधिर्वृत्तिशब्देनोक्तः। **तेनान्यतमयेति** न तदपेक्षमेकजीवितम् अन्यतमेन वृत्तिविधानात्। अतो वृत्तिसमुच्चयजीविनः पितृधनं प्राप्तवतश्च व्रताधिकारो न लुप्यते। अन्यथा एकवृत्तिजीवन एव स्यात्।

**व्रतानीमानि**। मानसः सङ्कल्पो 'व्रत'मुच्यते—'शास्त्रविहितमिदं मया कर्तव्यमिदं वा न कर्तव्य'मित्येवम्। **स्वर्ग्यायुष्ययशस्यानि** व्रतधारणफलानि केचिदाहुः। अतश्चैतत्फलार्थिनो व्रतेष्वधिकारः,—तदयुक्तम्। अनित्यत्वमेव सति प्रसज्येत। तत्रोत्तरश्लोके नित्यग्रहणं बाध्येत। श्रुतौ चैषां नित्यता ज्ञापिता 'यावत् हि एनसा युक्तो भवतीति'। स्वर्गादीनां काम्यत्वेनान्वये नाधिकृतविशेषणत्वं प्रतिपद्येरन् ॥१३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वृत्त्येत्यत्रै**कत्वं विवक्षितं। तेन ऋतामृतादिवृत्तिषु यदा यां परिगृह्णाति तदा तयैव जीवेदिति निर्दशितम्। प्रतिग्रहाध्यापनयाजनानि तु तेन रूपेणात्र न निर्दिष्टानीति तेषां सांकर्येऽप्यदोषः। **व्रतानि** नियमान्। **इमानि** वक्ष्यमाणानि ॥१३॥

(३) **कुल्लूकः**। अबहुभृत्यस्यैकवृत्त्या निर्वाहसंभवे सत्यन्यतमयेति विधीयते, बहुभृत्यस्यात्रासंभवे 'षट्कर्मैको भवत्येषा' (४।९) मिति विहितत्वात्। अथवैकवाक्यतावगमाद्व्रतविधायकत्वा**च्चान्यतमया** वृत्त्येत्यनुवादकत्वादेकत्वमविवक्षितम्। उक्तवृत्तीना**मन्यतमया वृत्त्या जीवन् स्नातको** ब्राह्मण **इमानि** वक्ष्यमाणानि यथासंभवं स्वर्गायुर्यशसां हितानि **व्रतानि** कुर्यात्। इदं मया कर्तव्यमिदं न कर्तव्यमित्येवंविधसंकल्पविशेषाद्व्रतम् ॥१३॥

(४) **राघवानन्दः**। **अन्यतमया** शिलादीनां मध्ये एकया। **स्नातको** नवोढापतिः वोढुकामो वा। **इमानि** वक्ष्यमाणानि। स्वर्गाय हितं **स्वर्ग्यम्**। एवमायुष्यादि ॥१३॥

(५) **नन्दनः**। उक्तमुपसंहृत्यार्थान्तरं प्रस्तौति **अत इति**। अत आसां वृत्तीनां मध्ये। **इमानि** वक्ष्यमाणानि ॥१३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अन्यतमया वृत्त्या** इयं न कर्तव्येति एकया वृत्त्या **द्विजः जीवेत्**। तथा **एतानि व्रतानि** नियमान् **धारयेत्** वक्ष्यमाणलक्षणानि ॥१३॥

(७) **मणिरामः**। **अन्यतमया** उक्तवृत्तीनां मध्ये यया कयैकवृत्त्या **इमानि व्रतानि** वक्ष्यमाणानि यथासंभव स्वर्गायुर्यशसां हितानि। इदं कर्तव्यमिदं मया न कर्तव्यमित्येवंविध-संकल्पविशेषाद्व्रतम् ॥१३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अत इति**। आसां मृतादीनां मध्यात् **अन्यतमया वृत्त्या** केवलया 'षट्कर्मैको भवत्येषां' इत्याद्युक्तत्वात्, वृत्त्यन्तरसहितया **जीवन् स्नातको** ब्राह्मणः स्वर्गायुःख्यातिनिमित्तानी**मानि** वक्ष्यमाणानि **व्रतानि** 'इदं मया कर्तव्यं, इदं इत्येवं मनः-सङ्कल्पविशेषात्मकानि सदा **धारयेत्**। नच फलश्रवणेऽप्येषामनित्यतापत्तिः, एतावता हैनसा वियुक्तो भवति" इति श्रुतौ नित्यत्वेनाम्नानात् ॥१३॥

**वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः॥**
**तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१४॥**

(१) **मेधातिथिः**। वेदमूलत्वात् स्मृतीनां **वेदोदितमिति** श्रूयते। **स्वकं कर्म** वक्ष्यमाणो व्रतसमूहः। विहितत्वात् **स्वकमित्युच्यते**। **नित्यं कुर्यात्** यावज्जीवम्। **अतन्द्रितोऽ**-नलसः। एतद्व्रतधारणं **कुर्वन्यथाशक्ति**। अनेन सत्यां शक्तौ यथासम्भवमनुष्ठानमाह। तदुक्तं "मनसा सा तत्समग्रमाचारमनुपालयन्"। **परमां गतिं** ब्रह्मत्वप्राप्तिरूपाम् ॥१४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्वकं** स्वाश्रमवर्णोक्तं। **कुर्याद्यथाशक्ति** ॥ १४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। वेदोक्तं स्मार्तमपि वेदमूलत्वाद्वेदोक्तमेव। **स्वकं** स्वाश्रमोक्तं यावज्जीवम**तन्द्रितो**ऽनलसः **कुर्यात्**। **हि** हेतौ। यस्मा**त्तत्कुर्वन्य**थासामर्थ्यं **परमां गतिं** मोक्षलक्षणां **प्राप्नोति**। नित्यकर्मानुष्ठानात्पापक्षये सति निष्पापान्तःकरणेन ब्रह्मसाक्षात्कारा-न्मोक्षावाप्तेः। तदुक्तं **मोक्षधर्मे** 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः। तत्रादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि' आत्मन्यन्तःकरणे ॥ १४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **वेदेति**। **वेदोदितं** स्वशाखोक्तं स्मार्तं च। **परमां गतिं** सत्वशुद्धिद्वारा ॥१४॥

(५) **नन्दनः**। व्रतविधेर्वक्ष्यमाणस्य वैदिकत्वं वक्ष्यमाणफलं चाह **वेदेति**। **वेदोदितं** वेदमूलतया स्मृत्युदितम् ॥१४॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वेदोदितं स्वकं कर्म** स्वाश्रमोचितं कर्म **कुर्यात्** ॥१४॥

(७) **मणिरामः**। **वेदोदितं** स्मार्तं **वैदिकं च** स्मृतेरपि वेदमूलकत्वात् ॥१४॥

(८) **गोविन्दराजः। वेदोदितमिति।** श्रौतं **वेदोदितं** स्मार्तमपि च वेदमूलत्वाद्वेदोक्तम्, **स्वकं** यद्यस्य चोदितं **कर्म** नित्यं न काम्यं तदनलसः सन् **कुर्यात्** यस्माद्**यथाशक्ति** कुर्वन् नित्यकरणात् पापक्षयानुत्पत्तिभ्यां काम्याकरणाच्च फलहेतुधर्माभावे सति शुभाशुभकार्याभावान्मोक्षं **प्राप्नोति** ।।१४।।

**नेहेतार्थान्प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा ।।**
**न कल्पमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ।। १५ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** प्रसज्येत यत्र पुरुषः स हि **प्रसङ्गो**ऽभिप्रेतो गीतवादित्रादिः। तत्र हि रागिणः सज्जन्तीव। अतो गीतवादित्रा**दिभिरर्थान्**धनानि **नेहेत** नार्जयेत्। **विरुद्धं** कर्म प्रतिषिद्धशास्त्रेण अकुलोचितं च। न च पित्राद्यागतेषु धनेषु **कल्पमानेषु** स्थितिसमर्थेषु। अन्यानि नेच्छेत्। **नार्त्यां** आपद्यपि **यतस्ततः**। प्रसह्य सत्प्रतिग्रहेण प्रवर्तितव्यमेकस्यापद्येनमप्यनुज्ञास्यति ।।१५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रसङ्गेन** प्रकृष्टप्रसङ्गेनात्यन्ततत्परतया **नेहेतो**द्यमेन न साधयेत्। **अर्थान्** धनानि **विरुद्धेन** धर्मविरुद्धेन **कल्पमानेषु** सत्सु **आर्त्यामापदि यतस्ततः** पतितादेः ।।१५।।

(३) **कुल्लूकः।** प्रसज्यते यत्र पुरुषः स **प्रसंगो** गीतवादित्रादि, तेना**र्थान्ना**र्जयेत् नापि शास्त्रनिषिद्धेन **कर्मणा**ऽयाज्ययाजनादिना च। नच विद्यमानेषु धनेषु, न चाप्यविद्यमानेष्वपि प्रकारान्तरसंभवे **यतस्ततः** पतितादिभ्योऽपि ।।१५।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच **नेति। प्रसङ्गो**ऽत्र गीतनृत्यादिः प्रसज्येऽत्रेति व्युत्पत्त्या। **न कल्पमानेषु** धनेषु विद्यमानेषु **विरुद्धेन कर्मणा नेहेत** अविद्यमानेष्वपि प्रकारान्तरसंभवे वा। आर्तो अन्नकष्टादौ वा **यतस्ततः** पतितादिभ्यो न गृह्णीयात् ।।१५।।

(५) **नन्दनः। प्रसङ्गेना**यतिप्रवृत्त्या। **विरुद्धेन कर्मणा** निषिद्धेन नृत्यगीतादिना **न कल्प्यमानेष्वर्थेषु** वृत्तिहेतौ सत्युपायान्तरं नाश्रयेदित्यर्थः। **आर्त्यामपि** आपद्यपि **यतस्ततः** पुरुषादप्रतिग्राह्यात् ।।१५।।

(६) **रामचन्द्रः। प्रसङ्गेन** अतिप्रसंगेन। **अर्थान्नेहेत** नेच्छेत्। **विरुद्धेन कर्मणा** अयाज्ययाजनादिना। **नेहेत कल्प्यमानेषु** विद्यमानेषु **अर्थेषु** नेहेत ।।१५।।

(७) **मणिरामः। प्रसंगेन** प्रसज्यते यत्र पुरुषः स प्रसंगः गीतवादित्रादिः तेन ।। **विरुद्धेन** अयाज्ययाजनादिना। **आर्त्यामपि न यतस्ततः** पतितादिभ्यः ।।१५।।

(८) **गोविन्दराजः। न कल्पमानेष्वर्थेष्विति।** गीतादिना **अर्थान्ना**र्जयेत्। नाप्ययाज्ययाजनादिना। न चावश्यकर्तव्यसमर्थेषु धनेषु सत्सु। नाप्यात्मकुटुम्बधर्मावसादेऽपि उपायान्तरसंभवे सति जातिकर्मदुष्टात् उपायान्तराभावे च आपद्यसत्प्रतिग्रहं वक्ष्यति ।।१५।।

**इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ॥**
**अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्तयेत् ॥ १६ ॥**

(१) **मेधातिथिः** 'इन्द्रियाणामर्था' विषया रूपरसादयः, तेषु **न प्रसज्येत न** सक्तिमत्यंतां सेवां कुर्यात्। मनोहरा युवतयः वंशगीतं स्वादवद्रसः कर्पूरादिगन्धः रागवत्स्पर्शः– एते विषयाः। तान्नात्यन्तं सेवेत। **कामतः** कामप्रधानतया! **सर्वेषु** अप्रतिचितोपमं तेष्वपि नित्यसेवी न स्यात्।

**अतिप्रसक्तिः** चैवैषाम्। निवृत्त्युपायोऽनेन कथ्यते। न हि वस्तुप्रसक्तिर्निर्वर्तितुं शक्या–**मनसा** तु प्रतिपक्षभावनया निवर्त्यं। आदौ तावद्दुरुपपादकत्वम्। उपस्थितेष्वपि भुक्तपूर्वेषु क्षणविरसतास्वभावश्च विनाशित्वं शास्त्रनिषेधाच्च सङ्गस्य नरकापात इत्येवमादि चिन्तयेत्। यथोक्तं (अ. २ श्लो. ९६) "न तथैतानि शक्यंत" इति ॥ १६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रसज्येत** सातिशयेन प्रवर्तेत **न कामतो** धर्मतस्त्वृतुगमनादौ प्रवर्तेतैव **अतिप्रसक्तिं** नियन्तुमशक्यां प्रवृत्तिम् ॥ १६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इन्द्रियाणामर्था रूपरसगन्धस्पर्शादयस्तेषु अनिषिद्धेष्वपि स्वदारसुरतादिषु **न प्रसज्येत**। नातिप्रसक्तिमत्यन्तसेवनात्मिकां **कुर्यात्। कामत** उपभोगार्थम्। अतिप्रसक्तिनिवृत्त्युपायमाह **अतिप्रसक्तिं चैतेषामिति**। विषयाणामस्थिरत्वस्वर्गापवर्गात्मकश्रेयोविरोधित्वादिभावनया **मनसा** सम्यङ्**निवर्तयेत्** ॥ १६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **इन्द्रियार्थेष्विति**। शब्दाद्यानन्दान्तेषु **सर्वेषु** दशसु नात्यासक्तिं कुर्यात् ॥ १६ ॥

(५) **नन्दनः। स्वदारविषयेऽप्यतिप्रसक्तिं संनिवर्तयेत्** ॥ १६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। इन्द्रियार्थेषु** शब्दादिषु **एतेषां** इन्द्रियाणां **प्रसक्तिं सन्निवर्तयेत्** ॥१६॥

(७) **मणिरामः। इन्द्रियार्थेषु** रूपरसादिषु **कामतः** उपभोगार्थं। अतिप्रसक्तिनिवृत्त्युपायमाह **अतिप्रसक्तिमिति** ॥ १६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। इन्द्रियार्थेष्विति**। चक्षुरादिग्राह्येषु रूपादिषु **सर्वेषूप**भोगहेतोः सङ्गं न कुर्यात्। अप्रतिषिद्धानामपि चैतेषां स्वदारगमनादीनां अतिशयप्रसङ्गं अस्थिरत्वादिदोषसंभावनया **मनसा** सम्यङ् **निवर्तयेत्** ॥ १६ ॥

**सर्वान्परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।**
**यथा तथा यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। ये वेदाभ्यासविरोधिनोऽर्थास्ते सर्वे त्यक्तव्याः, राजामात्यगृहोपस्थानादयः। येऽप्यनया लोकयात्रया सक्तस्य कृषिकुसीदाद्यधिकलाभो भवति तेन च पोषयिष्यते, तदा कुटुम्बविभववतश्च दासीदासं बहु भविष्यतीति। **सा ह्यस्य** स्नातकस्य **कृतकृत्यता** कृतार्थता यं नित्यस्वाध्यायी यथाकथंचित्कुटुम्बकं जीवयतीति ॥१७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। यापयन्** क्षपयन् स्वाध्यायं कुर्यादिति शेषः। **सा** स्वाध्यायक्रिया कृतान्यन्यानि कृत्यान्यनुभवन्तीति **कृतकृत्यता** ।।१७।।

(३) **कुल्लूकः।** ये वेदार्थविरोधिनोऽर्था नः अत्यन्तेश्वरगृहोपसर्पणकृषिलोकयात्रादयस्तान्**सर्वान्परित्यजेत्।** कथं तर्हि भृत्यात्मपोषणमित्याशङ्क्याह। **यथा तथा** केनाप्युपायेन स्वाध्यायाविरोधिना भृत्यात्मानौ जीवयन् यस्मात्**सास्य** स्नातकस्य **कृतकृत्यता** कृतार्थता यन्नित्यं स्वाध्यायपरता ।।१७।।

(४) **राघवानन्दः। किंच सर्वानिति।** शिलादीन्यजनादींश्च अध्यापयन् **स्वाध्यायविरोधिनस्त्यजे**दित्यन्वयः। **यथा तथा** येन तेन जीवनं साधयन्वेदाध्ययनं कुर्यात्। सा वेदाध्ययनस्य या काचिज्जीविका **कृतकृत्यता** कृतं समापितमावश्यकं यया ।।१७।।

(५) **नन्दनः।** कस्मात् पुनरेतदेवमुच्यत इत्यत आह **सर्वानिति। यथा तथा यापयन्य**थाकथञ्चित्प्राणयात्रां कुर्वन्। **अस्य** पुरुषस्य **सा हि कृतकृत्यता** यन्नित्यस्वाध्यायत्वम् ।।१७।।

(६) **रामचन्द्रः। स्वाध्यायविरोधिनः** वेदाध्ययनविरोधिनः। **यथा तथा** आपदि अध्यापयन् ।। १७ ।।

(७) **मणिरामः। स्वाध्यायस्य विरोधिनः।** ईश्वरगृहोपसर्पणकृष्यादयस्तान्। भृत्यात्मपोषणं तर्हि कथमित्यत आह **यथा तथेति। यथा तथा** स्वाध्यायाविरोधिना केनाप्युपायेन अध्यापयन् भृत्यात्मानौ जीवयन् **सा हि अस्य कृतकृत्यता** यन्नित्यं स्वाध्यायपरता ।। १७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। सर्वानिति। यथा तथा यापयंस्त्विति।** येन केनचिदुपायेनात्मादीन् बिभ्रात् वेदाध्ययनविरुद्धान् अप्रतिषिद्धानपि विषयोपभोगादीनर्थान् **परित्यजेत्** यस्मात् सा ब्राह्मणस्य **कृतकृत्यता** यत् स्वाध्यायपरत्वम् ।।१७।।

**वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।।**
**वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ।। १८ ।।**

(१) **मेधातिथिः। वयस** इति सारूप्यापेक्षा षष्ठी। **वेषवाग्बुद्धीति** समाहारे द्वन्द्वः। **सारूप्यमिति** स्वार्थे ष्यञ्। तेनायमर्थो भवति—वयाद्युचिता वेषादयः कर्तव्याः। **सारूप्यमौचित्यम्**, अन्यस्याकृत्यादेः सादृश्यासम्भवात्। **वेषः** केशाभरणादिविन्यासः। तत्र प्रथमे वयसि शिखण्डकः, यौवने कौन्तलादिधारणं, वार्धके जटामुण्डनादि। वयोनुरूपा **वाक्।** एवं **बुद्धिः** त्रिवर्गानुष्ठानधारणं प्रथमं, जीर्यतः केवलं धर्मप्रधानम्। कर्मानुरूपो वेषः अर्थानुरूपश्च। तेन हि भवितव्यं—कुलानुरूपेण दशनरागधम्मिल्लादि उद्धतमपि नौद्धत्यमावहति। तदुक्तम् "अस्य लोकव्यवहारो विषय" इति। एतदुक्तं भवति– नायं विध्यर्थः, अपरैर्निश्चितार्थत्वात्। लोकव्यवहारमूलस्त्वयमनुवाद :– 'एवं वर्तमानो लोकवृत्तानुवर्ती भवति, न लोकद्वेष्यतामेति' ।।१८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वयसो** बाल्यादेः। **कर्मणो** यागादेः। **अर्थस्य** धनस्य। **श्रुतस्य** शास्त्रज्ञानस्य। **अभिजनस्य** कुलस्य। **वेषसारूप्यं** तत्प्रकर्षनिकर्षोचितवेषधारणं।

**वाक्**सारूप्यं तदनुरूपभाषणं। **बुद्धिसारूप्यं** तदनुरूप आत्मन्युत्कर्षप्रत्ययः। **विचरेच्चेष्टेत इह लोके वयःकर्माद्यननुरूपं वेषादि** न कार्यमित्यत्र तात्पर्यम् ॥१८॥

(३) **कुल्लूकः। वयसः** क्रियाया **धनस्य श्रुतस्य** कुलस्यानुरूपेण **वेषवाग्बुद्धीरा-चरँल्लोके** प्रवर्तेत। यथा यौवने स्रग्गन्धलेपनादिधारणं त्रिवर्गानुसारिणी वाग्बुद्धिश्च एवं कर्मादिष्वप्युन्नेयम् ॥१८॥

(४) **राघवानन्दः। वेषवाग्बुद्धीति** समाहारैकवचनम्। वय आदेः स्वानुरूप्यं वय-आद्युचिता वेषादयः कर्तव्याः। तेन यौवनादिमान् कामी धर्मी च। तथा सत्कर्मा विनीतः। धनी दानशीलः। विद्वान् सदुपदेष्टा। कुलीनः सलज्ज इत्यादि। वयस इत्यादिपञ्चकस्य कामाद्यूह्यम्। अथवा **वयो**–बाल्यादि । **कर्म** क्रिया। **अर्थः** धनं। **श्रुतं** विद्या। **अभिजनः** कुलं। तदनुरूपव्यवहारमात्रं, न विधि.। तेन बाल्ये शिखण्डकं यौवने कुन्तलादि वार्धके जटादि। तथा कलभाषणं परिहासः सदुपदेशः बुद्धेरचाञ्चल्यं बुद्धिपरिपाकश्चेति ॥१८॥

(५) **नन्दनः। वेषवाग्बुद्धिसारूप्यं** वेषवाक्प्रभृतीनामानुरूप्यम् ॥१८॥

(६) **रामचन्द्रः।** यथाविषयं कर्म **आचरन्** विचरेत् श्रुतस्य शास्त्रस्य यथा अभिजनस्य च यथा कौलीनस्य विषये यथा **वेषवाक् बुद्धिसारूप्यं आचरन्** विचरेत् ॥१८॥

(७) **मणिरामः। अभिजनस्य** कुलस्य **सारूप्यं** अनुरूपेण वेषादि **आचरन्** कुर्वन् **विचरेत्** वर्तेत। यथा यौवने स्रग्गंधादिधारणं त्रिवर्णानुसारिणी वाक् बुद्धिश्च। एवं कर्मादिष्वपि ज्ञेयं ॥१८॥

(८) **गोविन्दराजः। वयस इति। वयसो**ऽनुष्ठानस्य धनस्य **श्रुतस्य** कुलस्य आनु-रूप्येण **वेष**कथाबुद्धीराचरन् लोके व्यवहरेत्। तद्यथा स्नानस्रगनुलेपनादिकरणं त्रिवर्णानु-सारिणी च वाङ्मनसीत्येवं कर्मादिष्वपि योज्यम् ॥१८॥

**बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥**
**नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥**

(१) **मेधातिथिः। बुद्धिवृद्धिकराणी**तिहासपुराणादीनि तर्कशास्त्राणि बार्हस्पत्यौ-शनसादीनि **हितानि** उपकारकाणि दृष्टार्थानि वैद्यकज्यौतिषादीनि, अर्थशास्त्रस्य पृथगुपदेशात्। **वैदिका निगमा** वेदार्थज्ञानहेतवो निगमनिरुक्तव्याकरणमीमांसाः। ऋचो रूढिग्रहणे त्वदृष्टार्थता स्यात् ॥१९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। धन्यानि** धनकारणानि **हितानि** दुःखनिवर्तकानि **शास्त्राणि** विद्यास्थानानि **निगमान्** व्याख्यानानि निगम्यते एभिरर्थ इति व्युत्पत्त्या। **वैदिकान्वेवस्य** सम्बन्धिनः ॥१९॥

(३) **कुल्लूकः**। वेदाविरुद्धानि शीघ्रं बुद्धिवृद्धिजनकानि व्याकरणमीमांसास्मृति-पुराणन्यायादीनि **शास्त्राणि** तथा **धन्यानि** धनाय **हितान्यर्थ**शास्त्राणि बार्हस्पत्यौशनसादीनि तथा **हितानि** दृष्टोपकारकाणि वैद्यकज्योतिषादीनि तथा पर्यायकथनेन वेदार्थविबोधका-**न्निगमाख्यांश्च** ग्रन्थान्नित्यं पर्यालोचयेत् ॥१९॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **बुद्धीति**। त्रिवर्गेषु बुद्धिवृद्धिकराणि नीतिशास्त्राणि। **धन्यानि** धनोपायान्। **निगमान्** पुराणादीन् निगमनिघण्टुव्याकरणादींश्च। **वैदिकान्** वेदार्थ-बोधानुकूलान् ॥१९॥

(५) **नन्दनः**। **शास्त्राणि** धर्मशास्त्रादीनि। शास्त्रापेक्षणप्रयोजनत्वेनोक्तानि बुद्धिवृद्धिकराणीत्यादीनि। निगम्यन्ते निश्चीयन्त एभिर्वेदार्थ इति **निगमा** वेदाङ्गानि ॥१९॥

(६) **रामचन्द्रः**। **नित्यं शास्त्राणि अवेक्षेत**। कीदृशानि शास्त्राणि? धन्यानि दुःख-निवर्तकानि **निचारयेत्** च पुनः **वैदिकान् निगमान्** व्याख्यानानि ॥१९॥

(७) **मणिरामः**। **शास्त्राणि** वेदाविरुद्धानि मीमांसास्मृतिपुराणादीनि **धन्यानि** धनाय हितानि। अर्थशास्त्राणि बार्हस्पत्यादीनि तिशास्त्राणि। **हितानि** वैद्यकज्योतिषादीनि। **निगमांश्चैव वैदिकान्** वेदार्थांश्च बोधकान् निगमाख्यान् ग्रंथान् **नित्यं ईक्षेत** ॥१९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **बुद्धिवृद्धिकराणीति**। वेदाविरुद्धन्यायशास्त्रादीनि क्षिप्रं बुद्धिपाटवजनकानि घनार्थानि च औशनस्यादीनि **हितानि च** दृष्टोपकारकादीनि आयुर्वेदीति अनवगतशब्दार्थपर्यायिकथनेन वेदार्थबोधकान् निगमाख्यान् ग्रन्थान् **नित्यं** पर्यालोचयेत् ॥ १९ ॥

**यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥**
**तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ २० ॥**

**[शास्त्रस्य पारं गत्वा तु भूयो भूयस्तदभ्यसेत् ॥**
**तच्छास्त्रं शबलं कुर्यान्न चाधीत्य त्यजेत्पुनः ॥ १ ॥]**

(१) **मेधातिथिः**। 'समधिगमो'ऽभिनिवेशः अभ्यास इति यावत्**विजानाति** विशेषेण जानाति। प्रत्यक्षं चैतदभ्यस्यमाने ग्रन्थेऽपि यद्विद्यत इति। तदा **विज्ञानं चास्य रोचते**। उज्ज्वलं भवतीत्यर्थः। पूर्वस्याः स्मृतेर्मूलकथनमेतत्। रुचेरभिलाषार्थत्वा'द्रुच्यर्था-ना'मिति सम्प्रदानत्वाभावः ॥२०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विजानाति** विविच्य जानाति यानि तु प्रागेव विज्ञातानि तेषु **विज्ञानं विवेकज्ञानमस्य रोचते** दीप्यते स्वोत्कर्षप्रकाशकं भवति ॥२०॥

(३) **कुल्लूकः**। **यस्माद्यथा पुरुषः** शास्त्रं सम्यगभ्यस्यति **तथा तथा** विशेषेण **जानाति** शास्त्रान्तरविषयमपि चास्य विज्ञानं **रोचत** उज्ज्वलं भवति। दीप्त्यर्थत्वाद्रुचेरभिलाषार्थत्वा-भावा'द्रुच्यर्थानां प्रीयमाण' इति न संप्रदानसंज्ञा ॥२०॥

(४) **राघवानन्दः**। **रोचते** उज्ज्वलं स्यात् ब्रह्मपक्षपातिनः ॥२०॥

(५) **नन्दनः**। शास्त्रावेक्षणस्य प्रयोजनान्तरमप्याह **यथेति**। **विजानाति** विशिष्टज्ञानयुक्तो भवति। **अस्य रोचते** अस्मै स्वदते ॥२०॥

(६) **रामचन्द्रः**। **विज्ञानं** विवेकज्ञानम् ॥२०॥

(७) **मणिरामः**। **समधिगच्छति** सम्यगभ्यस्यति **विजानाति** शास्त्रांतरं पठितमपि जानाति ॥२०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। यस्मात् यावत्पुरुषः **शास्त्रं** सम्यक् विविनक्ति तावत् तत्तद्विशेषेण **जानाति** शास्त्रान्तरविषयमपि चास्य **विज्ञानमु**ज्ज्वलं भवति ॥२०॥

**ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ॥**
**नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ २१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तृतीयाध्याये विहितानां महायज्ञानामनुवादो विशेषाभिधानार्थः। स च विशेष उत्तरत्र वक्ष्यते (२२ श्लो०) "अनीहमाना"। अन्ये तु मन्यन्ते—व्रताधिकारे पुनर्वचनं नियमसिध्द्यर्थम्। तेनेदृशः सङ्कल्पः कर्तव्यो 'यावद्गार्हस्थ्यं मया महायज्ञा न हापयितव्याः'। न त्वियमाशंका कर्तव्या— "द्विर्वचनं द्विविधानार्थम्"। न ह्यत्र विधिः श्रूयते। केवलं **न हापये**दित्युच्यते। नित्यत्वाच्चाहानिः प्राप्तैव, न विहितप्रत्यभिज्ञानतः कश्चित् कर्मभेदे हेतुरस्ति। **यथाशक्ति** पक्वान्नेन आमेन वा मूलफलैर्वा ॥२१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ऋषियज्ञं** ब्रह्मयज्ञम्। एषां वेदोदितत्वेन प्राप्तावपि पुनर्वचनमवतारणार्थं। तच्चोत्तरश्लोकैः प्रकारान्तरेणापि तत्संपादनकथनार्थम् ॥२१॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वाध्यायादीन्पञ्चयज्ञान्यथाशक्ति न त्यजेत्। तृतीयाध्यायविहितानामपि पञ्चयज्ञानामिह निर्देश उत्तरत्र विशेषविधानार्थः स्नातकव्रतत्वबोधनार्थश्च ॥२१॥

(४) **राघवानन्दः**। वेदाध्ययनहोमबल्यतिथितर्पणानि ऋषियज्ञादिपदवाच्यानि तृतीयाध्यायोक्तानि। पुनर्वचनमेतेषामादरार्थं। **न हापयेत्** न त्यजेत् ॥२१॥

(५) **नन्दनः**। उक्तानपि महायज्ञान्पुनरादरातिशयार्थमाह **ऋषीति**। **ऋषियज्ञं** ब्रह्मयज्ञम् ॥२१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ऋषियज्ञं** वेदाध्ययनम्। **देवयज्ञं** होमं। **भूतयज्ञं** भूतेभ्यो बलिं **नृयज्ञं** अतिथिसत्कारं। **पितृयज्ञं** श्राद्धं। **यथाशक्ति न हापयेत्** ॥२१॥

(७) **मणिरामः**। स्नातकस्य ऋषियज्ञादिकं व्रतमिति बोधनार्थं पुनराह **ऋषियज्ञमिति** ॥२१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ऋषियज्ञमिति**। स्वाध्यायादीन् **यथाशक्ति** न परित्यजेदिति उक्तपञ्चयज्ञाभिधानं वक्ष्यमाणेन्द्रियसंपाद्यत्वकथनार्थम् ॥२१॥

**एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ॥**
**अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥**

(१) **मेधातिथिः । एतान् महायज्ञान् एके यज्ञशास्त्रविदो** गृहस्था **इन्द्रियेष्वेव जुह्वति** सम्पादयन्ति ! कतमे पुनस्ते ? **अनीहमानाः ।** ये नेच्छन्ति धनं त्यक्तगृहव्यापारा देहसांन्यासिकादयः । शिलोञ्छवृत्तेरप्येवं विधिमिच्छन्ति, पङ्ग्वादीनां च । तेषां हि दारकरणं वक्ष्यति (अ० ९ श्लो० २०) "यद्यर्थिता तु दारैः स्यादिति" । न चैतेषां पञ्चयज्ञाधिकारः ; अद्रव्यत्वाद्भरणमात्रं ते लभन्ते, नाधिकं कर्मानुष्ठानार्थमपि ।

जुहोतिः करोत्यर्थनिर्वर्त्यतां लक्ष्यति । न हि क्रियाविशेषो यागः क्रियाविशेषस्य होमस्य कर्मतां प्रतिपद्येत । न हि भवति 'पचति पाकमिति' । भवति तु 'पाकं करोति' 'यागं करोतीति' । सामान्यविषयाकांक्षास्तु क्रियाद्रव्यकर्माणि साधनीकुर्वन्ति । 'इच्छति भोक्तुं' 'शक्नोति भोक्तुं', 'जानाति भोक्तुम्' । दृष्टश्च विशेषः सामान्यलक्षणार्थः—'अयं गौः पदा द्रष्टव्य' इति ।

एवं च होमं केचिदिन्द्रियेषु तत्संयममेव व्याचक्षते । अपरेषां **प्राणसंवादोपनिषदि** 'तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयं स यां प्रथमाहुतिं जुहुयात्प्राणाय स्वाहे'त्यादिना ।

अन्ये तु—य एवोत्तरश्लोके उपासनाविधिरुक्तः स एवायं 'होमः' । तथा च तयोरेकवाक्यता प्रतीयते । "ननु चोत्तरत्र वाचि प्राणं नेन्द्रियम् ।" नैष दोषः । आध्यात्मिकत्वोपलक्षणार्थमिन्द्रियग्रहणम् । बाह्यसाधनसाध्यता नास्तीत्येतदत्र विवक्षितम् ॥२२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । यज्ञशास्त्रविद इति** प्रशस्तमहायज्ञेभ्यः एषामुत्कर्षकथनार्थम् । **अनीहमाना** अचेष्टमानाः । **इन्द्रियेष्विति** । पञ्चानां बुद्धीन्द्रियाणां विषयेभ्यः प्रत्याहारान् कुर्वन्तो विषयाणामिन्द्रियेषु प्रवेशनात्पञ्चमहायज्ञान्संपादयन्तीत्यर्थः ॥२२॥

(३) **कुल्लूकः । एतानेक इति । एके** गृहस्था बाह्यान्तरयज्ञानुष्ठानशास्त्रज्ञा **एतान्पञ्चमहायज्ञान्ब्रह्म**ज्ञानप्रकर्षाद्बहिश्चेष्टमानाः पञ्चसु बुद्धीन्द्रियेष्वेव पञ्चरूपज्ञानादिसंयमं कुर्वन्तः संपादयन्ति । यज्ञानां होमत्वानुपपत्तेः संपादनार्थो जुहोतिः ॥२२॥

(४) **राघवानन्दः । एतान्महायज्ञान्वैश्वदे**वादिपञ्चयज्ञान् । इन्द्रियव्यापाररूपत्वादेव तेषां तान्येवेन्द्रि**येषु जुह्वति ।** कथंभूताः ? **अनीहमानाः** बाह्येन्द्रियव्यापाररहिताः । **एके** मुख्याः । 'शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वती'त्युक्तेः । इन्द्रियग्राह्याण्येतानि नात्मग्राह्याणीति कृत्वा तिष्ठन्तीत्यर्थः । 'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त' (भ. गी. ५/९) इत्युक्तेश्च ॥२२॥

(५) **नन्दनः ।** अथाकर्माऽतामात्मरतीनामपि यज्ञाः कर्तव्या भवन्ति । किं पुनरन्येषामित्यभिप्रायेण श्लोकत्रयमारभ्यते **एतानिति । यज्ञशास्त्रविदः** शास्त्रेषु यजमानावश्यकर्तव्यत्वं विदन्तः । **अनीहमाना** अकर्मकृतः । **एतान्महायज्ञानिन्द्रियेष्वेव सततं** यावज्जीवं **जुह्वति** कुर्वन्ति इन्द्रियाण्यग्नीन्परिकल्प्य तैराहृतान्विषयान्हविष्ट्वेन कल्पयन्तीत्यर्थः ॥२२॥

(६) **रामचन्द्रः । एतान् महायज्ञान् । एके** जनाः **अनीहमानाः** योगिनः । **सततं इन्द्रियेषु जुह्वति** ॥२२॥

(७) **मणिरामः । एके** गृहस्थाः **यज्ञशास्त्रविदः** बाह्यांतरयज्ञानुष्ठानशास्त्रज्ञाः ।

**एतान्** पंच**महायज्ञान्। अनीहमानाः।** ब्रह्मज्ञानप्रकर्षात् बहिरचेष्टमानाः। **इन्द्रियेषु** पंच-बुद्धींद्रियेषु **जुह्वति** संपादयंति ।।२२।।

(८) **गोविन्दराजः। एतानिति।** बाह्याभ्यन्तरयज्ञोपदेशकशास्त्रज्ञाः केचिन्मनुष्याः ज्ञानबलात् नित्यानुष्ठानार्थमपि उपरतधनचेष्टा एतान् महायज्ञान् **इन्द्रियेष्वेव** सर्वकालं संपादयन्ति। इन्द्रियाणि अग्न्यातिथ्यादिरूपतया तत्संयमं वाग्बाहुल्यादिरूपत्वेन भावयन्ति। एतान् संपादयन्ति ।।२२।।

**वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा।**
**वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ।। २३ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** यदाऽयं पुरुष उच्छ्वसिति तदैवमनेन ध्यातव्यम् 'वाचं प्राणे जुहोमीति'। भाषमाणेन च 'वाचि प्राणं जुहोमीति'। एतावतैव पञ्चयज्ञा निर्वृत्ता भवन्ति। "यदि नित्याः पाकाय न वक्तव्याः"। आत्मज्ञाश्चाधिक्रियन्ते। विहितो ह्ययमर्थः पञ्चाग्न्युपासनायां उपनिषत्सु **कौषीतकि**ब्राह्मणे विस्तरेण। **अक्षयं** फलतः, अपुनरावृत्तिफलत्वात् ।। २३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** एके तु प्राणायामं स्वाध्यायं च कुर्वन्तस्तान्संपादयन्तीत्याह **वाच्येक इति। वाचि प्राणं जुह्वतीति** स्वाध्यायो दर्शितः। स्वाध्यायकाले प्राणवृत्तेर्वाचि विलयात्। **प्राणे वाचमिति** प्राणायामः। तत्र वाग्वृत्तेः प्राणे विलयात् तथा **तैत्तिरीयोपनिषत्** 'तद्यत्रैतदधीते वा भाषते वा वाचि तदा प्राणो भवती'ति। तथाच 'अथ यत्तूष्णीं वा भवति स्वपिति वा प्राणे तदा वाग्भवती'ति। तथा एतद्धस्म वै तद्विद्वांस आहुर्ऋषयः कावषेयाः किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं वैवक्ष्यामहे वाचि हि प्राणं जुहुमः प्राणे वाचमिति। अध्येष्यामहे यज्ञसंबन्धिशास्त्रस्तोत्रपाठान् करिष्याम इत्यर्थः। तथा **कौषीतकिब्राह्मणम्** 'यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तदा भाषते वाचं तदा प्राणे जुहोति यदा भाषते न तदा प्राणिति प्राणं तदा वाचि जुहोति त एते अनन्ते आहुती जाग्रत्स्वपंश्च जुहोति। अथवा अन्य आहुतयोऽन्नवत्यस्ताः कर्ममय्यो हि भवन्ति एवं ह स्म वै सन्तः पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं जुहवाञ्चक्रुरिति। वाचि प्राणे चान्योन्यं होमाभ्यां पञ्चयज्ञनिर्वृत्तिं पश्यन्तः। **अक्षयाम**विनाशिफलाम् ।। २३ ।।

(३) **कुल्लूकः। एके** गृहस्था ब्रह्मविदो **वाचि** प्राणवायौ च **यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयफलां** जानन्तः सततं **वाचि प्राणं** च **जुह्वति। वाचं** च **प्राणे**। भाषमाणेन च वाचि प्राणं जुहोतीति। अभाषमाणेनोच्छ्वसता प्राणे वाचं जुहोमीति व्याख्यातव्यमित्यनेन विधीयते। यथा **कौषीतकिरहस्यब्राह्मणम्**-'यावद्वै पुरुषो भाषते न तावत्प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि जुहोति यावद्धि पुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोति एतेऽनन्ते अमृते आहुति जाग्रत्स्वपंश्च सततं जुहोति। अथ या वाऽन्या आहुतयोऽन्नवत्यस्ताः कर्ममय्यो हि भवन्त्येवं हि तस्यैतत्पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं जुहवांचक्रुरिति' ।। २३ ।।

(४) **राघवानन्दः। वाचि** वाक्कारणे अपाने **प्राणं वाचं** तत्कारणमपानं **प्राणे**। 'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा पर'इत्युक्तेः। तयोर्निरोधनेन पापक्षयलक्षणसर्व-कर्मफलनिर्वृत्तेः। अथवा हवनप्रकारमाह **वाचीति**। तथा च **कौषीतकी श्रुतिः** 'अथातः सायंप्रातर्दर्शनमांतरमग्निहोत्रमिति व्याचक्षते यावद्वै पुरुषो भासते न तावत् प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि जुहोति यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोति एते अमृते अनन्ते वाहुती जाग्रत्स्वपंश्च सततं जुहोति अथ या अन्या आहुतयो-न्नवत्यस्ताः कर्ममय्य इति। **अक्षयाम**पुनरावृत्तिफलत्वात्॥ २३॥

(५) **नन्दनः**। लोके खलु वाक्प्राणयोरेकतरस्मिन्प्रवृत्ते निलीनमन्यतरं पश्यामः। तत्र प्रवृत्तमग्निंनिलीनं हविः कल्पयन्तीत्यर्थः। प्रवृत्तस्याग्नित्वकल्पनं निलीनस्य हविष्ट्वकल्पनं च हविष्यग्निः प्रवर्ततेऽग्नौ हविर्लीयत इति। अत्र **कौषीतकिब्राह्मणं** 'यावद्वै पुरुषो भाषते। न तावत्प्राणितुं शक्नोति। प्राणं तदा वाचि जुहोति। यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति। वाचं तदा प्राणे जुहोति। एते अनन्ते अमृते जाग्रत्स्वपंश्च सततं जुहोतीति। उत्तरार्धेन कारणमुच्यते। **वाचि प्राणे च** मन्त्रे चेष्टायां च। **यज्ञनिर्वृत्तिं** यज्ञानां निष्पत्तिम्। **अक्षयामक्षय**फलाम्। ये श्रौतस्मार्ता यज्ञाः प्रसिद्धास्ते खल्वपि वाक्प्राणनिर्वर्त्या इति ते पश्यन्तीत्यर्थः। तथाच मन्त्रवर्णः वाचि स्वाहा वाते धा स्वाहेति॥ २३॥

(६) **रामचन्द्रः। वाच्येके** स्वाध्यायसमये **प्राणं** प्राणवायुं। **प्राणे** प्राणायाम-समये **वाचं** वागिन्द्रियं भाषमाणे जुह्वति। नववर्षाणि प्राणं जुहोमीति। एतावतैव पञ्चयज्ञा निर्वृत्ता भवन्ति। पञ्चाग्न्युपासना गौणी। च पुनः **वाचि प्राणे** यज्ञनिर्वृत्ति-सामग्रीं **अक्षयां** सदा पश्यन्तः॥ २३॥

**(७) मणिरामः। एके** ब्रह्मविदः। **वाचि** प्राणवायौ। **यज्ञनिर्वृत्तिं अक्षयां पश्यंतः** जानंतः सर्वदा **वाचि प्राणं** जुह्वति। **वाचं च प्राणे,** कथंभूते प्राणे? वाचि प्राणे भाषमाणे प्राणे तथा च भाषमाणेन, **वाचि** प्राणं जुहोति। अभाषमाणेन उच्छ्वसता प्राणे वाचं जुहोतीति व्याख्यातव्यं। यथा **कौषीतकि**ब्राह्मणं "यावद्वै पुरुषो भाषते न तावत्प्राणितुं शक्नोति। प्राणं तदा वाचि च जुहोति। यावद्धि पुरुषः प्राणितिन तावद्भाषितुं शक्नोति। वाचं तदा प्राणे जुहोती'ति॥२३॥

(८) **गोविन्दराजः। वाचीति**। अन्ये पुनः **वाचि** प्राणाख्ये च वायौ अक्षयफलां **यज्ञसम्पत्तिं** मन्यमाना अभिधानकामे वागग्नौ तूष्णींभावकादेव च प्राणाग्नौ वागाहुतिं जुहृवति प्राणाहुतिं जुहृवति। एवमनवरतं भावयन्त आसते।

तथा च **कौषीतकिरहस्य**ब्राह्मणं—"यावद्वै पुरुषो भाषते न तावत् प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि जुहोति। यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति वाचं तदा प्राणे जुहोति। एते अनन्ते अमृते आहुती जाग्रत् स्वपंश्च सततं जुहोति अथ या अन्या आहुतयोऽन्नवत्यस्ताः कर्ममय्यो हि भवन्ति, एवं तद्वस्मै तत्पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं जुहवाञ्चक्रुः" इति

**ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्ते तैर्मखैः सदा ॥**
**ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥**

(१) **मेधातिथिः। तैर्मखैः** प्रकृतैर्महायज्ञैर्यजन्ते, तद्विषयमधिकारं निष्पादयन्ति। अतोऽर्थभेदाद्यजन्ते यज्ञैरिति साध्यसाधकभावोपपत्तिः। यथा'अग्निष्टोमयाजीति'। कथं पुनर्ज्ञानेन यागनिवृत्तिः? देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मको यागः। न च ज्ञानमेवं-रूपम्"। उच्यते। **यजन्त** इति यागकार्यनिवृत्तिरत्राभिप्रेता।

"यदि ज्ञानात्कार्यनिवृत्तिः किमर्थं तर्हि कर्मणामनुष्ठानम्? न ह्यविषयः कर्मानु-ष्ठानसम्भवः। अथेयं बुद्धिः, 'य उ चैनमेवं वेदेति' ज्ञानस्यापि फलसाधनत्वेन श्रवणात् कृतं कर्मानुष्ठानेनेति,–तदसत्। अन्यशेषतया तस्यार्थवादत्वात्"।

अत्रोच्यते। उक्तमस्माभिरनीहमाना आत्मज्ञा अधिक्रियन्ते। त एव ज्ञानिनोऽ-भिप्रेताः, न कर्मानुष्ठानवेदिनः। तेषां वेदसंन्यासिकतया गृहे अवतिष्ठमानानां महायज्ञानां भावनेयमुच्यते। द्रव्यसाध्यानां च महायज्ञानां आत्मज्ञानसंपादमेवमुच्यते। स्वाध्या-योदकतर्पणयोस्तु कर्मसाध्यतामेव षष्ठे वक्ष्यति।

अत्र कारणरूपमर्थवादमाह **ज्ञानमूलाम्**–ज्ञानं मूलमस्याः क्रियायाः। सर्वस्य कर्मानुष्ठानस्य ज्ञानं मूलम्। न ह्यविद्वान् किञ्चित्तदनुष्ठातुं शक्नोति। तदुक्तं "विद्वान्यजेत इति"। **पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा।** ज्ञानं चक्षुरिव। यथा चक्षुषा रूपं गृह्यते एवं ज्ञानात् ज्ञायते। न तत् 'ज्ञानं' वेद एवाभिप्रेतः ॥ २४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। ज्ञानेन** धारणाध्यानसमाधानान्यतमेन **ज्ञानमूलां** ज्ञान-कारणिकं **ज्ञानचक्षुषा** वेदार्थज्ञानमयेन चक्षुषा **पश्यन्तः** ॥२४॥

(३) **कुल्लूकः। अपरे** विप्रा ब्रह्मनिष्ठाः सर्वथा **ब्रह्मज्ञानेनैवैतैर्मखैर्यजन्ति** एतांश्च यज्ञाननुतिष्ठन्ति। कथमेतदित्याह 'ज्ञानं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तमित्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धं **ज्ञानमूलामेषां** ज्ञानानां क्रियामुत्पत्तिं जानन्तः ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं चक्षुरिव **चक्षुः ज्ञान-चक्षुषो**पनिषदा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'तज्जलानित्या'दिकया **पञ्चयज्ञानपि** ब्रह्मोत्पत्तिकाले ब्रह्मात्मकान् **ध्यायन्तः संपादयन्ति** पञ्चयज्ञफलमश्नुवत इत्यर्थः। श्लोकत्रयेण ब्रह्मनिष्ठानां वेदसंन्यासिनां गृहस्थानाममी विधयः ॥ २४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** सविषयाणीन्द्रियाणि नात्मातिरिक्तानीति विज्ञानेन द्रव्यसाध्यानां महायज्ञानां संपादनमात्मनि। "सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपित" इत्युक्तेः। **मखैः** पञ्चयज्ञैः। ज्ञानयज्ञं प्रशंसति **ज्ञानमूलामिति।** "श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परंतपे"त्युक्तेः॥ एषामिन्द्रियाणां **क्रिया** व्यापारः ज्ञानचैतन्यं मूलं प्रकृतिर्हेतुर्यस्याः। अचेतनानां चेतनाधिष्ठानमृते प्रवृत्त्यनुपपत्तेरिति। ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं वेदनं तेन नाविद्वानिति क्रियते **ज्ञानचक्षुषा।** सर्वे मखा वेदसाध्या इति **मेधातिथिः** ॥ २४ ॥

(५) **नन्दनः। ज्ञानेन** संकल्पमयेन। **सदा** यावज्जीवम्। उत्तरार्धेन कारण-मुच्यते। या क्रिया यज्ञात्मिकाऽनुमीयते तस्या ज्ञानमेव मूलम्। ज्ञानाभावेऽननुष्ठान-प्रसङ्गादिति। **ज्ञानचक्षुषा** बुद्ध्या पश्यतीत्यर्थः।। २४।।

(६) **रामचन्द्रः। ज्ञानेनैवापरे विप्राः तैः मखैः** पञ्चमहायज्ञैः **यजन्ते। एषां** योगिनां। **ज्ञानमूलां क्रियां ज्ञानचक्षुषा पश्यन्तः** ज्ञानं मूलं यस्याः क्रियायाः सर्वस्य कर्मानुष्ठानस्य।। २४।।

(७) **मणिरामः। अपरे विप्राः** ब्रह्मनिष्ठाः **ज्ञानेनैव** ब्रह्मज्ञानेनैव **एतैर्मखैर्यजंति।** कथमेतदित्याह **ज्ञानमूलानिति। ज्ञानचक्षुषा एषां** यज्ञानां **क्रियां** उत्पत्ति। **ज्ञानमूलां पश्यंतः** जानंतः। तथा च यदा ब्रह्मज्ञानं जायते। तदा पंचयज्ञा अपि ब्रह्मात्मकत्वेन ध्याताः संतः स्वस्वफलदा' भवंतीत्यर्थः।। २४।।

(८) **गोविन्दराजः। ज्ञानेनेति। अपरे पुनर्विप्राः एषां** यज्ञानां विद्वान् यजते विद्वान् याजयतीत्येवं अवबोधमूलमनुष्ठानं **ज्ञानचक्षुषा** शास्त्रेण पश्यन्तः विज्ञानबला-देतान् यज्ञान् एतद्विषयसम्यगवबोधेनैव यावज्जीवं सम्पादयन्ति। तथा च "यो ह्येवं विद्वानेतत् कर्म कुरुते, यो वै तदेवं वेद" इति ब्राह्मणम्।। २४।।

**अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा।।**
**दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि।। २५।।**

(१) **मेधातिथिः।** अग्निहोत्रादयः शब्दाः श्रुतौ गृह्यस्मृतिषु च कर्मविशेष-वचनतया प्रसिद्धाः। सेतिकर्तव्यताकाः तत्र विहिताः। तेषामयमनुवादो न त्वत्रा-पूर्वविधिः, रूपावचनात्। केवलं होमविषया कर्तव्यता श्रुता, न द्रव्यं न देवता। अग्निहोत्रादि नामधेयं च विशेषाकांक्षम्। अतः शास्त्रान्तरावगतविशेषवचनतैव प्रतीयते।

"यद्येवं तत एव कर्तव्यतावगमादनर्थकमिदम्"। वेदसंन्यासिकानां प्रकृतोपासना-संवादनार्थम्। तथैव "वाच्येके जुह्वति प्राणं" (२३) "ज्ञानेनैवेति (श्लो. २४) च पञ्चमहा-यज्ञाः संपाद्यन्ते—तद्वदेतदपीति। कश्चायमुपालम्भः 'किमर्थं पुनर्वचनमिति'। सर्व-श्रुतीनां स्मृतीनां च यदेकदेशेऽभिहितं तस्यैवान्यत्र पुनर्वचनस्य चोद्यापत्तेः। उक्तश्च सामान्यतः परिहारः—प्रतिपत्तृभेदान्न पौनरुक्त्यमिति। यथा प्रतिपत्तृभेदादिन्द्रियभेदो, नैकेन चक्षुषा सर्वे द्रष्टुं शक्नुवन्ति बहूनीन्द्रियाणि प्रयोजनवन्ति, एवं शाखाभेदः स्मृति-भेदश्च।

अथोच्यते "कस्माद्रूपावचनमिति"। एषोऽपि न दोषः। प्रतिशाखमितिकर्तव्यताया भेदः—कस्याभिधानं क्रियताम्। सर्वाभिधाने गौरवम्। एकतराभिधाने अन्यतरपरित्यागः। "तदपि चोद्यमेव।" उक्तं चानुवादोऽयं न विधिः। विधौ हि चोद्यमेतत् स्यात् 'अन्यत्र विहितं किमर्थं पुनर्विधानमिति।'

**आद्यन्ते द्युनिशोः।** नात्र यथासंख्यम्। किं तर्हि? दिव आदौ निशायाश्चादौ, एवं दिवोऽन्ते निशायाश्चान्त इति। सायंप्रातःकालावन्तेन परिगृह्येते। तत्रोदितहोमिनां

अहोरात्रौ अनुदितहोमिनां निशान्ते। द्युशब्दो दिवसपर्यायः। सदा। यावज्जीवं सायं॰ प्रातर्होमः कर्तव्यः। दर्शेन यजेतेत्यत्राध्याहर्तव्यम्। न हि तत्रोत्पत्तौ जुहुयादित्यस्ति, किं तर्हि? 'दर्शेन यजेतेति'। तदनुवादश्चायम्। अतएवाध्याहारः क्रियते। अत एव अविशेषश्रवणेऽपि। अर्धमासान्त इति। कृष्णपक्षान्ते दर्शः शुक्लान्ते पौर्णमासः। तथा च श्रुतिः "दर्शे च दर्शेन यजेत पूर्णमास्यां पूर्णमासेन यजेतेति" ॥ २५ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। आद्यन्ते द्युनिशोर्दिवसस्यादावन्ते च तथा रात्रेरादावन्ते चेत्यर्थः। तथा चोद्धरणादिहोमात्तत्प्रयोगेणोभयोर्दिनरात्रयोराद्यन्तव्याप्तिरित्युदितहोम-मादाय कालो दर्शितः ॥ २५ ॥

(३) कुल्लूकः। उदितहोमपक्षे दिनस्यादौ निशायाश्चादौ, अनुदितहोमपक्षे दिनस्यान्ते निशायाश्चान्ते, यद्वोदितहोमपक्षे दिनस्यादौ दिनान्ते च, अनुदितहोमपक्षे निशादौ निशान्ते चाग्निहोत्रं कुर्यात्। कृष्णपक्षार्धमासान्ते दर्शाख्येन कर्मणा शुक्लपक्षार्धे च पौर्णमासाख्येन यजेत् ॥ २५ ॥

(४) राघवानन्दः। प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रकृतमनुसरति अग्नीति। आद्यन्ते सन्ध्याद्वये द्युनिशोर्दिवसस्यादौ दिनस्यान्ते उदितहोमिनामाश्वलायनादीनाम्। निशाया आदौ निशाया अन्ते च शाङ्खायनादीनामनुदितहोमिनाम्। 'दर्शेनार्धमासान्ते अमायां पौर्णमास्यां पौर्णमासेन दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेतेति' श्रुतेः ॥ २५ ॥

(५) नन्दनः। अथाहिताग्नेरसंकुचितवृत्तेर्वृत्तान्याह अग्निहोत्रमिति। द्युनिशोः अहोरात्रयोः। आद्यन्ते सायंप्रातश्च। सदा विहितकालानतिक्रमेण अर्धमासान्ते पक्षयोरन्ते पर्वणोरिति यावत्। अत्र यजेतेत्यध्याहार्यम् ॥ २५ ॥

(६) रामचन्द्रः। द्युनिशोः आद्यन्ते प्रातःसायंकाले। अग्निहोत्रं जुहुयात्। दर्शेन दर्शसंज्ञेन कालेन। मासान्ते अमायां। पौर्णमासेन कालेन ॥ २५ ॥

(७) मणिरामः। द्युनिशोः आद्यंते उदितहोमपक्षे दिनस्य निशायाश्चाऽऽदौ। अनुदितहोमपक्षे द्युनिशोरंते। अर्धमासांते कृष्णपक्षार्धमासांते, दर्शांते शुक्लपक्षार्धमासांते पौर्णमासांते इत्यर्थः ॥ २५ ॥

(८) गोविन्दराजः। अग्निहोत्रं चेति। उदितहोमपक्षे दिनादौ दिनान्ते होमं कुर्यात्। तथा अनुदितहोमपक्षे रात्र्यादौ रात्र्यन्ते च होमं कुर्यात्। तथा कृष्णपक्षान्ते दर्शाख्येन कर्मणा, शुक्लपक्षान्ते पौर्णमासाख्येन यजेत ॥ २५ ॥

**सस्यान्ते नवसस्येष्टया तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ॥**
**पशुना त्वयनान्ते तु समांते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥**

(१) मेधातिथिः। सस्यशब्दो व्रीह्यादिधान्यवचनः। तस्यान्तः क्षयः। पूर्वसस्येषु क्षेत्रेषु नवसस्येष्टया यजेत, आग्रयणेनेत्यर्थः। न चात्र पूर्वसस्यक्षय आग्रयणनिमित्तं नापि नवसस्यागमः, किं तर्हि? अकृताग्रयणस्य नवान्नाशनं प्रतिषिद्धम्। येनाह "नानिष्ट्वा नवान्नमद्यादिति"। अतो नवसस्यभक्षणमाग्रयणेनेत्यर्थः। तेन यजेतेति व्याचक्षते।

अस्मिंस्तु पक्षे पूर्वसस्याभावात् नवसस्यस्य भावादन्यतो वा, असत्यां चाशिक्षायां न नियमतया आग्रयणं प्राप्नोति। अथेदं 'सस्यांत' इति नवोत्पत्त्युपलक्षणं, तदाऽनिष्ट्वा भक्षणं प्राप्नोति।

तस्माद्द्वे एते वाक्ये। 'नानिष्ट्वाऽश्नीयात्' इत्येकं 'सस्यान्त' इति द्वितीयम्। 'सस्यान्त'-ग्रहणेन च सस्योत्पत्तिरेवाभिप्रेता; नियतत्वात्तस्या निमित्तस्योपपत्तिः। क्षयस्त्वनियतः, धनिनां हि त्रैवार्षिकान्यपि धान्यान्यत्र प्रवर्तन्ते। अत एव सूत्रकारः "सस्यं नाश्नीयादग्नि-होत्रमहुत्वेति"। तथा "यदा वर्षस्य तृप्तः स्यादथाग्रयणेन यजेतेति"। तथेदमपरं "शरदि नवान्नमिति" कालविशेषविधायकम्। तत्र यस्य पूर्वसस्यक्षयो नास्ति, स शरदमाद्रियते, इतरस्तु न। एवमुभयोरर्थवत्ता च भवति। इतरथा एवमेवावक्ष्यत नवसस्योत्पत्तौ नवसस्येष्ट्या यजेतेति'। यतस्त्वाह "नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या नवान्नमश्नीयादिति"—तेन उत्पन्नेष्वपि नवसस्येषु विद्यमानस्य अस्ति शरत्प्रतिपालनम्। नवसस्योत्पत्तिनिमित्त-त्वाच्च असत्यामपि नवान्नाशनेच्छायां नियमत आग्रयणम्।

**ऋत्वन्ते**। 'ऋतुः संवत्सर' इति दर्शनेन चातुर्मास्यानामेतत्करणमुच्यते। **अध्वर-शब्देन** तान्येवाभिप्रेतानि। अयनयोरादौ **अयनान्ते**। ते च द्वे अयने दक्षिणमुत्तरं च। तत्र पशुयागः कर्तव्यो द्विः संवत्सरस्य। सूत्रकारस्त्वाह "षाण्मास्यः सांवत्सरो वेति"। **समान्ते**। समाशब्दः संवत्सरपर्यायस्तस्य चान्तः समाप्तिः, शिशिरे। न च तत्रेदं सौमिकयाग-विधानं, किं तर्हि ? गते तस्मिन्वसन्त आगते। तथा च श्रुतिः "वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेतेति"। एतावन्ति नित्यानि कर्माणि। तानि यथाकथंचिद्वेदसंन्यासिकेनापि संपाद्यानीति सर्वस्य तात्पर्यम् ॥ २६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सस्यान्ते** व्रीहियवश्यामाकसस्यसमीपकाले शरदादौ **नवसस्येष्ट्या** आग्रयणेष्ट्या **ऋत्वन्ते** शीतोष्णवर्षर्त्वन्ते **अध्वरैः** चातुर्मास्यैः। अयनयोरादा-वादिदिनयोः, अपरान्त इति क्वचित्पाठः। **समान्ते** वर्षसमाप्त्यनन्तरं वसन्ते शिशिरान्त-त्वाद्वर्षस्य ॥ २६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वार्जितधान्यादिसस्ये समाप्ते 'शरदि नवान्न'मिति सूत्रकार-वचनादसमाप्तेऽपि पूर्वसस्ये नवसस्योत्पत्तावाग्रयणेन यजेत। सस्यक्षयस्यानियतत्वाद्धनिनां बहुहायनजीवनोचितधान्यसंभवाच्च **सस्यान्त**ग्रहणाच्च नवसस्योत्पत्तिरेवाभिप्रेता, नियत्वा-त्तस्याः प्रत्यब्दं निमित्तत्वोपपत्तेः। ऋतुसंवत्सर इत्येतन्मताश्रयणेन चत्वारश्चत्वारो मासा ऋतवस्तदन्तेऽ**ध्वरै**श्चातुर्मास्याख्यैर्यागैर्यजेत अयनयोरुत्तरदक्षिणयोरादौ **पशुना** यजेत पशु-बन्धाख्यं यागमनुतिष्ठेत्। ज्योतिःशास्त्रे चैत्रशुक्लप्रतिपदादिवर्षगणनाच्छिशिरेण समाप्ते वर्षे वसन्ते सोमरससाध्यैरग्निष्टोमादियागैर्यजेत ॥ २६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **सस्यान्त** इति। **नवसस्येष्टिरिति**। असमाप्तेऽपि पूर्वसस्ये नवोत्पत्तौ आग्रयणेन यजेत। **ऋत्वन्ते** ऋतोरन्ते **अध्वरै**श्चातुर्मास्याख्यैर्वैश्वदेववरुणप्रघास-साकमेधशुनासीरसंज्ञैर्यागैः। **पशुना** पशुबन्धेन यागेन। **सौमिकैः** सोमरससाध्यैर्ज्योति-ष्टोमाख्यैः ॥ २६ ॥

(५) नन्दनः। **सस्यान्ते** सस्यानां श्यामाकादीनामन्ते पाककाले **नवसस्येष्टचा** आग्रयणेन। **अध्वरैः** सोमयातुर्मास्यैः। **पशुना** निरूढपशुबन्धेन। **समान्ते** संवत्सरान्ते। **सौमिकैः** सोमवद्भिः। अत्रापि यजेतेति शेषः ॥ २६ ॥

(६) रामचन्द्रः। **सस्यान्ते**। सस्याच्छेदे सस्यादौ सस्योत्पत्तौ **अध्वरैश्**चातुर्मास्यैः। **अन्ते** चातुर्मास्यान्ते उदगयने दक्षिणायनस्यान्ते **पशुना** पशुयागः कर्तव्यः। **समान्ते** संवत्सरान्ते **सौमिकैर्मखैः** सोमयागसंज्ञैः। यस्मिन्यज्ञे सोमपानं क्रियते सः ॥ २६ ॥

(७) मणिरामः। **सस्यान्ते** पूर्वार्जितधान्यादिसस्ये समाप्ते। शरदि वसंते च **नवसस्येष्टचा** आग्रयणेष्ट्या **ऋत्वंते** **अध्वरैः** चातुर्मास्ययागाख्यैः। **समांते** वर्षांते **सौमिकैः** सोमयागैः ॥ २६ ॥

(८) गोविन्दराजः। **सस्यान्त इति**। प्राक्सञ्चितधान्यादिक्षये यदा वर्षसन्तृप्तः स्यात् 'अथाग्रयणेन यजेत शरदि नवान्न'मिति **सूत्रकार**वचनात्। विद्यमानधान्योऽपि चाग्रयणेन यजेत। "ऋतुः संवत्सरं इत्यस्मिन् दर्शनेन चतुर्षु चतुर्षु मासेष्वृत्वन्तेऽध्वरैः चातुर्मास्याख्यैः कर्मभिर्यजेत। पशुबन्धाख्येन कर्मणा उत्तरायणदक्षिणायनादौ यजेत। वर्षान्ते च ज्योतिष्टोमादिना सोमयागेनेति ॥ २६ ॥

**नानिष्ट्वा नवसस्येष्टचा पशुना चाग्निमान् द्विजः ॥**
**नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥**

(१) मेधातिथिः। **अग्निमानाहिताग्निरत्राभिप्रेतः**, व्रताधिकारात्। तस्य होमस्य याजुर्वेदिकं व्रतम्। **नानिष्ट्वा पशुना** मांसं समश्नीयान्नाग्रयणेन नवान्नमिति। नियमानुपालने फलमाह **दीर्घमायुर्जिजीविषुः**। आयुःशब्देन सन्धवत्यः प्राणापानवृत्तय उच्यन्ते। द्वितीया च सत्यपि जीवतेरकर्मकत्वेऽपि इषिक्रियापेक्षया। सन्नन्तोऽपि धातुरिच्छायां वर्तते। अत्रापि दर्शने इषेः कर्म प्रकृत्यर्थो न बाह्यम्, इच्छा वेष्यमाणं प्रति गुणभूता, 'प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रुवत' इति सन्नंतादन्यत्रापि। अस्मिन्नपि दर्शने आयुःशब्देन कालो लक्षयिष्यते, दीर्घकालं जीवनमिच्छन्। तत्र 'कालाऽध्वाऽवगन्तव्या कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणामिति' कर्मत्वम्।

एष चाहिताग्नेः पशुबन्धे नियमः, आग्रयणेऽपि। गृह्याग्निमतोऽपि गृह्यस्मृतिषु नियमतया आग्रयणं विहितम्। यच्चेदं 'शरदि नवान्नमिति', तत् व्रीहिश्यामाकयोः न यवानाम्। न च सस्यमात्रेण सस्येष्टियागः, न च माषमुद्गादिना। यत इदं शास्त्रान्तरसापेक्षं, न स्वतो विधायकमित्युक्तम्। शास्त्रान्तरेषु च व्रीहिश्यामाकयवैराग्रयणेष्टिर्विहिता।

किं त्वन्यदपि सस्यं नाशितव्यमकृतायामाग्रयणेष्टौ। यत उक्तमविशेषेण 'सस्यं नाश्नीयादिति'। तन्निषेधे ह्यभिप्रेते इयदेवावक्ष्यत्, 'आग्रयणं व्रीहिश्यामाकयवानां नाश्नीयादग्निहोत्रमहुत्वेति'। एवं सूत्रकारेण पठितम् "आग्रयणं व्रीहिश्यामाकयवानां, सस्यं नाश्नीयादग्निहोत्रमहुत्वेति"। अतोऽयं सस्यशब्दो न प्रतिनियतविषय एव ॥ २७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । नानिष्ट्वेति** । एतेन एव श्यामाकव्रीहिभक्षणाभावे आग्रयणस्य मांसभक्षणे च पशुयागस्याकरणेऽपि न दोष इति दर्शितं । तद्भक्षणनिमित्तकत्वोपदर्शनात् ।।२७।।

(३) **कुल्लूकः** । आहिताग्निर्द्विजो दीर्घमायुर्जीवितुमिच्छन्नाग्रयणमकृत्वा नवान्नं न भक्षयेत् । न च पशुयागमकृत्वा मांसमश्नीयात् ।। २७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । नवसस्येष्टिपशुबन्धयोरर्थवादेन तयोरावश्यकत्वमाह **नेति** द्वाभ्यां । **नवान्नं मांसं** च नाद्यात् ।। २७ ।।

(५) **नन्दनः** । आग्रयणपशुबन्धयोरवश्यकर्तव्यतां प्रसङ्गादाह **नानिष्ट्वेति** । अग्निमानाहिताग्निः ।। २७ ।।

(६) **रामचन्द्रः । नानिष्ट्वेति** । नवसस्ये सति अग्निमान् द्विजः पशुना पशुयागेनानिष्ट्वा पशून् अकृत्वा **नवान्नं** नाद्यात् तथा **मांसं** नाद्यात्, दीर्घमायुर्जिजीविषुः अकृत्वा नाद्यात् ।। २७ ।।

(७) **मणिरामः** । आग्रयणाद्यकरणे नवान्नभोजननिषेधमाह **नानिष्ट्वेति** ।। २८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **नेति** । आहिताग्निर्द्विजो **दीर्घायुर्जीवितुमिच्छुः** आग्रयणमकृत्वा **नवान्नं** पशुयागं वाऽकृत्वा **मांसं** नाश्नीयात् ।। २७ ।।

**नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः ।।**
**प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्धिनः ।। २८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । नित्यतामेव समर्थयते अकरणदोषदर्शनेन । **नवेन** सस्येन **अनर्चिता** अकृतहोमा अग्नयोऽस्याहिताग्नेः **प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति** भक्षयितुम् । **गर्धिनः** गर्धं अभिलाषातिशयः—तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इनिः ।। २९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । नवेन** चान्नेन अस्य आग्रयणपशुयागावकृत्वा नवान्नमांसभक्षिणः **पशुहव्येन** पशुरूपहविषा **गर्धो**ऽभिलाषः ।। २९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । दोषं कथयन्ननित्यतामनयोराह **नवेनेति** । यस्मान्नवेन पशुवदामेनानर्चिता अकृतयागा **अग्नयो** नवान्नमांसाभिलाषिणोऽस्याहिताग्नेरग्निहोत्रिणः प्राणानेव खादितु**मिच्छन्ति । गर्धो**ऽभिलाषातिशयः । गृधेर्घजन्तस्य रूपम् । सोऽस्यास्तीति गर्धी । मत्वर्थीय इनिः ।। २८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । नवेन नवसस्येष्टचा **नार्चिताः नवान्नामिषगर्धिनो**ऽग्नयः । **अत्तुमिच्छन्तीत्यर्थः** ।। २८ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ यजमानस्य दोषमाह **नवेनेति** ।। २८ ।।

(७) **मणिरामः** । करणे फलमाह **नवेनेति । गर्धिनः** अभिलाषातिशययुक्ताः ।।२८।।

(८) **गोविन्दराजः** । **नवेनेति** । यस्मान्नवसस्येन पशुयागेन (दानेन) चानिष्ट्वा **अग्नयो नवान्नमांसानि** काङ्क्षिणोऽस्याग्न्याहितस्य **प्राणानेव** भक्षयितु**मिच्छन्ति** । तस्मादाग्रयणपशुयागौ कर्तव्यौ ।। २८ ।।

**आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ॥
नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥ २९ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** उक्तमिदमुत्तरार्धमनूद्यते। न **कश्चिदतिथिरनर्चितो गृहे वसेत्।** सर्वोऽतिथिरर्चितो गृहे वासनीयः। **शक्तितः।** एको द्वौ बहवो यावन्तः शक्यन्तेऽर्चयितुं सर्वे आसनादिभिरर्चनीयाः। अर्चापूर्वकमेतदेभ्यो वसतां प्रकल्पयितुम्, न तु सर्वेण सर्वमासनाशनशय्यानां स्वत्वनिवृत्तिरुच्यते। भक्तयूषमांसान्नाद्याशनासंभवे पृथगुपादानात् मूलफलं दातव्यम् ॥ २९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अशनम्** अशनीयम् ॥ २९ ॥

(३) **कुल्लूकः। यथाशक्त्यासन**भोजनादिभिरन**र्चितोऽतिथिरस्य** गृहस्थस्य **गृहे न वसेत्।** अनेन शक्तितोऽतिथिं पूजयेदित्युक्तमप्युत्तरार्धमनूद्यते ॥ २९ ॥

(४) **राघवानन्दः।** उक्तापि अतिथेः पूजा आवश्यकत्वात्पुनरपि तामाह **आसनेति। यथाशक्त्या।** आसनभोजनशय्यादिभिर**नर्चितः अतिथिः अस्य** गृहस्थस्य **गृहे न वसेत्। अनेन** 'शक्तितोऽतिथिमर्चये'दिति तूक्तमपि उत्तरार्धेनानूद्यते ॥ २९ ॥

(५) **नन्दनः।** उक्तमप्यातिथ्यमादरातिशयार्थमाह **आसनेति** ॥ २९ ॥

(६) **रामचन्द्रः। आसनादिभिरनर्चितः। अतिथिः** कस्यचि**द्गेहे न वसेत्** ॥२९॥

(७) **मणिरामः। 'शक्तितोऽतिथिं** पूजये'दित्युक्तमपि उत्तरार्धमनूद्यति **आसनाशनेति** ॥ २९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। आसनाशनशय्याभिरिति।** आसनादनादिभिः यथाशक्ति अतिथिं पूजयेत् इत्युक्त्वा अतिथ्यनुवादो महायज्ञप्रसङ्गे वक्ष्यमाणपाषण्डयादिनिषेधार्थः ॥ २९ ॥

**पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ ३० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** अत्र वसेदिति लिङ्गात्सायमातिथ्यप्रतिषेधोऽयं पाषण्ड्यादीनामित्याहुः– तदयुक्तम्; अर्चनीयताऽत्र निवार्यते। न तु सर्वेण सर्वभक्ताद्यदानमेवोच्यते। दिवाऽपि भुञ्जानानां कतिचित् क्षणावास उपपद्यत एव। अतो न लिङ्गं सायंकालस्य 'वसेदिति'। तत्र **पाषण्डिनो** बाह्यलिङ्गिनो रक्तपट–नग्न–चरकादयः। **विकर्मस्थाः–** अत्रानापदि वर्णान्तरवृत्त्या जीवन्ति। यथा ब्राह्मणः क्षत्रवृत्त्या, क्षत्रियो वैश्यवृत्त्या इत्यादि। **बैडालव्रतिका** दाम्भिकाः। ये च लोकावर्जनार्थं अग्निहोत्राद्यनुतिष्ठन्ति, 'इति गृहादि लिप्सामहे' इति, न शास्त्रचोदितत्वेन स्वधर्मतया। **शठाः** येषामन्यत् हृदयेऽन्यद्वाचि। उपकारं कस्यचित्प्रतिज्ञाय कर्तव्यतया अवधीरयन्ति, न कुर्वन्ति। **हैतुका** नास्तिकाः। 'नास्ति परलोकः, नास्ति दत्तं, नास्ति हुतं' इत्येवं स्थितप्रज्ञाः।

**बकवृत्तयः** दाम्भिका एव, ईषद्भेदभिन्नाः। भेदः परस्परं दर्शयिष्यते। **वाङ्मात्रेणापि** तिष्ठतु तावदासनादिदानं, पूजापूर्वकं स्वागतम्–'आस्यतामत्र' इत्येवमाद्यपि न वक्तव्याः। अन्नदानं तु श्वपचादिवदिष्यते। तथा च भगवान् कृष्णद्वैपायनोऽन्नदानमेवाधिकृत्य स्मरति स्म "न पृच्छेज्जन्म न श्रुतमिति"। नात्र पात्रगवेषणा कर्तव्येत्यर्थः ॥ ३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पाषण्डिनो** बौद्धादीन् पाषण्डदर्शनान्तःपातिनः। **विकर्मस्थान**ाश्रमस्थानप्याश्रमधर्महीनान्। **शठान्** वक्रहृदयान्। **हैतुकाना**श्रमिणोऽपि हेतुमात्रेण वेदविरुद्धेन परलोकसाधनोन्नायकान् **नार्चयेत्**। क्षुधितेभ्यस्त्वन्नं शक्तौ दद्यादेव ॥ ३० ॥

(३) **कुल्लूकः। पाषण्डिनो** वेदबाह्यव्रतलिङ्गधारिणः शाक्यभिक्षुकक्षपणकादयः। **विकर्मस्थाः** प्रतिषिद्धवृत्तिजीविनः। **बैडालव्रतिकबकवृत्ती** वक्ष्यमाणलक्षणौ। **शठा** वेदेष्वश्रद्धानाः। **हैतुका** वेदविरोधितर्कव्यवहारिणः। एतानतिथिकालोपस्थितान् **वाङ्मात्रेणापि** न पूजयेत्। पूजारहितेऽन्नदानमात्रं तु शक्तितोऽपचमानेभ्य इत्यनुज्ञातमेव ॥ ३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। आतिथ्यादिलक्षणमुक्तं, एतेषु विप्रेष्वपि आतिथ्यं नास्तीत्याह **पाषण्डिन** इति। वेदबाह्यव्रतलिङ्गधारिणः **पाषण्डिनः**। ते च भिक्षुक्षपणकादयः। प्रतिषिद्धवृत्तिजीविनः **विकर्मस्थाः**। वेदार्थेष्वश्रद्धानाः **शठाः** प्रसिद्धाः। अत्रैव करिष्यमाणलक्षणौ **बैडालव्रतिका**दयस्त्रयः। **हैतुको** वेदविरुद्धतर्की ॥ ३० ॥

(५) **नन्दनः**। अवैदिकाः **पाषण्डिनः**। **विकर्मस्था** निन्दिताचाराः। **बैडालव्रतिकान्बकवृत्तींश्च** वक्ष्यति। **हैतुकाः** वेदशास्त्रविरुद्धतर्कशास्त्रपराः ॥ ३० ॥

(६) **रामचन्द्रः। पाषण्डादीन्** वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्। युक्तिबलेन सर्वत्र संशयकरो **हैतुकः** तान्। बकवत् वृत्तिर्वर्तनं यस्य सः ॥ ३० ॥

(७) **मणिरामः**। वेदबाह्यव्रतलिंगधारिणः **पाखंडिनः**। **विकर्मस्थान्** प्रतिषिद्धजीविनः **बैडालव्रतिकबकवृत्ती** वक्ष्यमाणलक्षणौ। **शठान्** वेदेष्वश्रद्धानान्। **हैतुकान्** वेदविरोधितर्कव्यवहारिणः ॥ ३० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तथा चाह **पाखण्डिन इति**। रक्तांबरादिलिङ्गधारिणः परवृत्तिजीवनरतान् बिडालवृत्तिकान् बकवृत्तिकान् वक्ष्यमाणलक्षणान् शठान् अश्रद्धानान् वेदबाह्यतर्कव्यवहारिणो **वाङ्मात्रेणापि** न पूजयेत् इति पूजापूर्वकान्नदानादिनिषेधो दानमात्रं तु शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यमिति वक्ष्यति ॥ ३० ॥

**वेदविद्याव्रतस्नाताञ्छ्रोत्रियान् गृहमेधिनः ॥**
**पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'वेदश्च' 'विद्या' च 'व्रतानि' च तैः 'स्नाताः' तत्र परिसमाप्तिं गताः। विविधाः स्नातका गृह्यन्ते। तत्र 'वेदस्नातका' अधीतवेदाः। 'विद्यास्नातका' विद्यार्थजिज्ञासानिवृत्ताः। 'विद्या'सन्निधानाद्वेदविषयैव गृह्यते। तस्या एव वस्तुतो

विद्यात्वम् । व्रतानि "षट्त्रिंशदाब्दिकम्" इत्यादीनि (अ. ३ श्लो १) ! सत्यामपि वेदतदर्थजिज्ञासासमाप्तौ न तावत्येव 'स्नानं', किं तर्हि ? षट्त्रिंशदब्दादिकालः पूरयितव्यः इति पक्षोऽप्यस्ति । अन्ये तु येऽनधीत्यैव वेदं वर्षत्रयात् स्नान्ति ते 'व्रतस्नातका' इत्याचक्षते ।

अनधीतवेदस्य कुतः स्नानमित्ययं पक्षोऽयम् । "ननु च श्रोत्रियग्रहणं किमर्थं? स्नातकत्वेनैव सिद्धत्वात्" । अतिशयार्थम् । तेन वेदाभ्यासरता गृह्यन्ते **श्रोत्रियाः । गृहमेधिनो** गृहस्थाः । नानेन भिक्षुतापसब्रह्मचारिणामपूजनीयत्वमुच्यते । किं तर्हि ? भैक्ष्यभोजित्वात्तेषां नातिथित्वसंभवः । ब्रह्मचारिणो गुरुगृहात्तापसस्य च वनान्नान्यत्र वासः । प्रव्रजितस्यापि 'भैक्षार्थी ग्राममियादिति' न ग्रामे वासः । अतोऽन्येषामाश्रमिणां गृहादन्यत्र वासात्कथंचित्सम्भवेऽपि प्रायिकमेतद्**गृहमेधिन** इति । **हव्येन कव्येन** । दैवकर्मणि शान्त्यादौ पित्र्ये वा श्राद्धे त एव पूज्याः । **विपरीताः** अस्नातकाः वर्ज्याः पूर्वोक्तदोषाभावेऽपि ।। ३१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । वेदविद्यायां प्राप्तायां व्रते च कृतेऽनन्तरं स्नातान्समावृत्तान्तांस्तदनन्तरमेव स्वगृहमागतान्पूजयेत् । तथा गृहे वसतोऽपि **श्रोत्रियान्वेदविदो हव्यकव्येन हव्यकव्यसंबन्धिकर्मणा विपरीतान्विद्या**व्रतं विना स्नातान् गृहिणश्चाश्रोत्रियान् ।। ३१ ।।

(३) **कुल्लूकः । वेदविद्याव्रतस्नातानिति ।** विद्यास्नातकव्रतस्नातकोभयस्नातकास्त्रयोऽपि गृह्यन्ते । यथाह **हारीतः** 'यः समाप्य वेदानासमाप्य व्रतानि समावर्तते स **विद्यास्नातकः** । यः समाप्य व्रतान्यसमाप्य वेदान्समावर्तते स **व्रतस्नातकः** । उभयं समाप्य यः समावर्तते स **विद्याव्रतस्नातकः** ।' यद्यपि स्नातकधर्मत्वेनैव स्नातकमात्रप्राप्तिस्तथापि श्रोत्रियत्वं विवक्षितम्; तान् स्नातकाञ्छ्रोत्रियान्**हव्यकव्येन पूजयेद्विपरीतान्पुनर्वर्जयेत्** ।। ३१ ।।

(४) **राघवानन्दः** । एतांस्त्वर्चयेदेवेत्याह **वेदेति । वेदः** स्वशाखा । **विद्या** तर्कव्याकरणादि । **व्रतं** षट्त्रिंशद्वर्षादिब्रह्मचर्यं तेषु **स्नातान्** पारगान् । **विपरीतान्** पाखण्डादीन् ।। ३१ ।।

(७) **मणिरामः** । यः वेदं समाप्य व्रतं चासमाप्य समावर्तते स **विद्यास्नातकः** । यस्तु समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं समावर्तते स **व्रतस्नातकः** । उभयं समाप्य यः समावर्तते **स विद्याव्रतस्नातकः** । एते त्रयोऽप्यत्र बोध्याः ।। ३१ ।।

(८) **गोविन्दराजः । वेदविद्याव्रतस्नातानिति । वेदविद्याव्रतस्नातान्** इत्यनेन वेदस्नातकव्रतस्नातकविद्याव्रतस्नातकत्वेन त्रिप्रकारा अपि स्नातका गृह्यन्ते । यथा **हारीतः** 'समाप्य वेदं असमाप्य व्रतानि यः स्नाति स वेदस्नातकः, असमाप्य वेदं समाप्य व्रतानि यः स्नाति स व्रतस्नातकः । उभयं समाप्य यः स्नाति स विद्याव्रतस्नातक' इति । तांस्तथा स्नातकग्रहणेन गृहीतानप्यतिशयार्थित्वेन पृथङ्निर्दिष्टान् **श्रोत्रियान्** गृहस्थान् **हव्यकव्येन पूजयेत्** । एतद्विपरीतांस्तु वर्जयेत्' इतीदं पाखण्ड्यादिनिषेधदार्ढ्यार्थम्, श्रोत्रियादीनां पुनरभिधानम्, पूजादिपूर्वकमन्नं पाखण्ड्यादिभ्यो न देयम् ।। ३१ ।।

**शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।**
**संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ।। ३२ ।।**

(१) **मेधातिथिः । अपचमाना** ब्रह्मचारिपरिव्राजका इत्याहुः । तदुक्तम् 'तेभ्यो नित्यवद्दानं विहितमेव' भिक्षां च भिक्षवे दद्यादिति' (३ । ९४) । तस्माद्ये दरिद्रा भैक्षजीवनाश्च पाखण्डयादयः तेभ्यः **शक्तितो दातव्यम्** । यावद्भूयः शक्यते यावच्च पच्यते । पचिक्रियाविरहनिमित्तत्वाच्च सिद्धान्नदानमेवेदम् ।

**संविभागश्च** । अन्येनापि धनेन इन्धनपरिधानौषधाद्युपयोगिना **संविभागः कर्तव्यः** कश्चिदंशो दातव्यः । **सर्वभूतेभ्यः** । भूतशब्दोऽयं चेतनात्मकं जगदाचष्टे । यथा "गायत्री वा इदं सर्वं भूतमिति" । अचेतनानां चेतनवदुपकारार्थतया संविभागानुपपत्तेः चेतनावत्स्वेवावतिष्ठते । अतश्च "प्ररोहधर्मकाश्चेतनावन्तः" इति दर्शने वृक्षादीनामपि जलरोपाद्यर्थो धनसंविभागः कर्तव्यः ।

बह्वर्थोऽयं भूतशब्दः । कश्चित्प्राधान्ये वर्तते 'भूतमियं ब्राह्मण्यस्मिन् गृहे' । क्वचित्पैशाचवचनो 'भूतोपसृष्ट' इति । क्वचिद्विपरीतेऽर्थे वर्तते 'भूतमाहेति' । क्वचिदतिक्रान्तकालवचनो 'भूतो धात्वर्थ' इति । क्वचिद्देवताविशेषे 'भूतेभ्यो बलिरिति' । क्वचिच्चेतनावन्मात्रवचनो 'न हिंस्याद् भूतानीति' । क्वचित्प्राप्तिवचनो 'महद्भूतश्चन्द्रमा' इति । क्वचिदुपमायां वर्तते 'यथा काव्यभूत' इति । क्वचिदुत्पत्तिवचनो यथा 'देवदत्तस्य पुत्रो भूत' इति । इह तु यः पदार्थस्तद्व्याख्यातम् । **भूतेभ्य** इति तादर्थ्ये चतुर्थी । **अनुपरोधतः** । आत्मकुटुम्बपीडा यथा न भवति तत्पर्याप्तं स्थापयित्वा, अधिकेन संविभागः कर्तव्यः । तदुक्तं "भृत्यानामुपरोधेनेति" (अ. ११ श्लो. १०) ।। ३२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अपचमानेभ्यो** ब्रह्मचार्यादिभ्यः प्राण्यन्तरेभ्य एवेत्यर्थः । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । **अनुपरोधतः** कुटुम्बोपरोधं विना ।। ३२ ।।

(३) **कुल्लूकः । अपचमाना** ब्रह्मचारिपरिव्राजकाः पाषण्डादयः । ब्रह्मचारिपरिव्राजकानामुक्तमप्यन्नदानं पचमानापेक्षयातिशयार्थं स्नातकव्रतत्वार्थं च पुनरुच्यते । **मेधातिथिगोविन्दराजौ** तु 'भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिण' इति ब्रह्मचारिपरिव्राजकयोरुक्तत्वात्पाषण्ड्यादिविषयत्वमेवास्य वचनस्येत्यूचतुः । स्वकुटुम्बानुरोधेन वृक्षादिपर्यन्तप्राणिभ्योऽपि जलादिनापि विभागः कर्तव्यः ।। ३२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । संन्यास्यादिभ्यः स्वाऽपीडयैव दातव्यमित्याह **शक्तित** इति । संन्यासिब्रह्मचारिविरक्तवानप्रस्थेभ्योऽ**पचमानेभ्यः** । 'यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरे'दित्युक्तेः ।। जलादिना संतोषः **संविभागः** भूताना**मनुपरोधतः** अपीडया ।। ३२ ।।

(५) **नन्दनः । अपचमानेभ्यो** ब्रह्मचारिसंन्यासिभ्यः भूतानां श्वचाण्डालादीना**मनुपरोधतः** स्वकुटुम्बाविरोधेन ।। ३२ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** **अयाचमानेभ्यः** ब्रह्मचारिसंन्यासिभ्यः **भूतेभ्यः** प्राणिभ्यः **शक्तितो** यावत्सिद्धान्नादेतत्संविभागस्तावत्कर्तव्यः । **अनुपरोधतः** कुटुम्बस्य पीडा यथा न भवेत् गृहमेधिना तथा दातव्यम् ।। ३२ ।।

(७) **मणिरामः ।** **अपचमानेभ्यः** पाककर्मरहितेभ्यः । **अनुपरोधतः** कुटुम्बानुरोधेनानुभूतेभ्यः वृक्षादिपर्यंतं प्राणिभ्योऽपि **संविभागः** जलादिनापि विभागः कर्तव्य इत्यर्थः ।। ३२ ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** अन्नमात्रं पुनः **शक्तित इति ।** गृहस्थेन पाकरहितेभ्यः पाखण्डयादिभ्यो यथाशक्त्याऽन्नं देयम्, स्वकुटुंबानुपरोधेन वृक्षपर्यन्तेभ्यो दोह्यादिदानेन **संविभागः** कर्तव्यः ।। ३२ ।।

**राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ।।**
**याज्यान्तेवासिनोर्वाऽपि न त्वन्यत इति स्थितिः ।। ३३ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** राजग्रहणमाढ्यवर्णोपलक्षणार्थम् । तथा च वक्ष्यति (अ. १० श्लो. ११३) "सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः । याच्यः स्यादिति" । तेन राजशब्दः क्षत्रियजातौ मुख्यः । तथापि शास्त्रान्तपर्यालोचनया जनपदेश्वरवचन इति गम्यते । जनपदेश्वरा हि बहुधना भवन्ति । तेनैतदुक्तं भवति–'येऽत्यन्तसम्पन्ना गोऽजाविधनधान्यैस्तेभ्यः प्रतिग्रहीतव्यम्' । तथा सत्यद्रोहेणेत्येतदादृतं भवति । आढ्या हि ददतो नातीव पीड्यन्ते । स्वल्पधनेभ्यस्तु परिगृह्णतो दोषः स्यात् । मुख्यार्थवृत्तौ च राजशब्दे ब्राह्मणादिभ्यः प्रतिग्रहः प्रतिषिध्येत । तत्र सर्वस्मृतिविरोधः स्यात् । स्मृत्यन्तरे हि पठ्यते "आददीत प्रशस्तद्विजादिभ्यः शुश्रूषोश्च शूद्रादपक्वान्नमिति" । प्रतिषेधेऽपि "न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादिति" राजशब्दो जनपदेश्वरवचन एव । किंच न क्षत्रियस्य तत्र प्रतिषेधः "अराजन्यप्रसूतित" इति वचनात् । अत एव न क्षत्रियजातीयात्तत्र तन्निषेधः; तथा सत्यराजन्यप्रसूतित इति न वक्तव्यं स्यात् । न ह्यराजन्यप्रसूतितः क्षत्रिया भवन्ति । तेनेयमत्र व्यवस्था–क्षत्रियाद्राज्ञो यथाशास्त्रवर्तिनः प्रतिग्रहः कर्तव्यः । अन्यस्मात्पुनर्न ।

**याज्यान्तेवासिनोः ।** धनापेक्षा षष्ठी । तसंतो वा पठितव्यः । क्रियानिमित्तत्वादेतयोः शब्दयोर्याजनाध्यापनाभ्यां जीवेदित्युक्तं भवति ।

अन्ये त्वाहुः–अन्येषामुपपातकप्राप्तिश्चौर्यादीनां चोपायानां निषिद्धत्वात् ईश्वरमाराध्य जीवेत्प्रीतिदायेन स्वस्तिवाचनकेन वा । न चायं सेवकः । सा वृत्तिर्निषिद्धा । एवं कृतोपकारादयाजयन्नपि याज्याददीत । निवृत्तेऽपि सम्बन्धे कृत्यो वर्तत इति ।

**संसीदन्निति ।** पित्रादिधने सति न कर्तव्यम् । तदुक्तम् "न कल्पमानेष्वर्थेषु" । तस्यैवायमनुवादः । न चायमापद्धर्मः । नहि 'अवसाद' आपत्, किं तर्हि ? अर्जितधनाभावः । 'आपत्' तु विहितोपायाभावो धनक्षयश्च । सत्यपि धान्यधनबहुत्वे अन्नपरिक्षये दुर्भिक्षादावातिथ्यसन्निहितान्नता क्षुत्पीडितस्य'आपत्', अक्षुधितस्यापि धनाभावात्'अवसाद' इत्येष एतयोर्विशेषः । **न त्वन्यतः ।** स्वल्पधनान्नानुपकार्यात् गृह्णीयात् ।। ३३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अन्विच्छेदनुगम्येच्छेत्। स्नातको** गृहस्थः। एतेनात्यन्ता-भ्यर्थनया धनार्जनमेभ्यस्त्विभ्य एवेत्यर्थः ।। ३३ ।।

(३) **कुल्लूकः।** "न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः" (४।८४) इति निषेधा-द्राजशब्दोऽत्र क्षत्रियनृपतिपरः। **स्नातकः** क्षुधाऽवसीदन्द्विजातिप्रतिग्रहस्य सम्भवेऽपि यथाशास्त्रवर्तिनः क्षत्रियाद्राज्ञो याज्यशिष्याभ्यां वा प्रथमं **धनमभिलषेत्।** राज्ञो महाधनत्वेन पीडाविरहात्। याज्यशिष्ययोश्च कृतोपकारतया प्रत्युपकारपरायणत्वात्। तदसंभवे त्वन्यस्मादपि द्विजाद्धनमाददीत। तदसंभवे तु 'सर्वतः प्रतिगृह्णीया' (१०।१०२) दित्यापद्धर्मं वक्ष्यति। एवं चानापदि प्रथमं क्षत्रियनृपयाज्यशिष्येभ्यः प्रतिग्रहनियमार्थं वचनम्। अत एवाह **न त्वन्यत** इति। **स्थितिः** शास्त्रमर्यादा। न च संसीदन्नित्यभिधा-नादापद्धर्मविषयत्वमस्य वाच्यम्; अव्यभिचारादनापत्प्रकरणात्। **संसीदन्नित्यस्य** चोपात्तधनाभावपरत्वात्। न च धनाभावमात्रमापत्, किंतु तस्मिन् सति विहितोपाया-संभवात्। अन्यथा सद्यःप्रक्षालकोऽप्यापद्वृत्तिः स्यात्। यदि चापद्विषयत्वमस्य भवेत्तदा न त्वन्यत इत्यनेन 'सर्वतः प्रतिगृह्णीया'दिति विरुध्येत। यच्चापत्प्रकरणे सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः। याच्यः स्यादि(१०।११३)त्युक्तं तच्छूद्रनृपविषयमेवं राजादिप्रतिग्रहासंभवे ।। ३३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** स्नातकस्य धनोपायानाह **राजत इति। अन्तेवासिनः** शिष्याः **अन्यतः** शूद्रादेः ।। ३३ ।।

(५) **नन्दनः। राजतो**ऽभिजाताच्छास्त्रानुसारिणो गुणवतो राज्ञः **क्षुधा संसीदन् स्नातकोऽन्नमन्विच्छेत्**प्रतिगृह्णीयात्। **याज्यान्तेवासिभ्यामन्यतः** प्रतिग्राह्यात् ।। ३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः। स्नातकः** वेदस्नातकः विद्यास्नातकः व्रतस्नातको वा। **क्षुधा संसीदन् राजतः** कृताभिषेकात् राज्ञः **अन्विच्छेत् धनं** इच्छेत् प्रतिग्रहं कुर्यात् क्षत्रियस्य प्रतिषेधः **याज्यः** यस्य यज्ञं कारितवान् तस्मात्। **अन्तेवासी** शिष्यस्तस्मात्। **अन्यतः** सकाशात् धनं नेच्छेत् ।। ३३ ।।

(७) **मणिरामः। स्नातकः क्षुधा अवसीदन्। राजतः** शास्त्रवर्तिनः क्षत्रियाद्राज्ञः **याज्यशिष्याभ्यां वा धनं इच्छेत्।** नाऽन्यस्मादित्यर्थः ।। ३३ – ३४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। राजत इति।** स्नातकः क्षुधाऽवसादं गच्छन् अन्यजातिप्रतिग्रह-सम्भवेऽपि क्षत्रियात् राज्ञः शास्त्रानुवर्तिनो याज्यशिष्याभ्यां वा प्रथमं लिप्सेत। नत्वन्य-स्माद्द्विजातेरपि। तदसंभवे पुनः अन्यस्मात् द्विजातेर्गृह्णीयात् अनापद्विहितोपायासंभवे पुनः सर्वतः प्रतिगृह्णीयादित्यापद्धर्मं वक्ष्यति। राज्ञो महाधनत्वात् याज्यान्तेवासिनोः स्वसुकृतो-पकारत्वात् इदं प्रथमधनग्रहणं नियम्यते। एवं चानापदि प्रथमराजयाज्यशिष्यव्यतिरिक्त-धनग्रहणनिषेधार्थमिदं वचनम्। अत एवोक्तम् **न त्वन्यत इति। यत्तु** संसीदन्निति लिङ्गात् आपद्विषयतामस्याहुः—तदसत्; अप्रकरणात्। न च धनाभावमात्रमापदुच्यते। अपितु धनाभावे सति विहितोपायपरिक्षयः। अन्यथा सद्यःप्रक्षालकस्य आपद्धर्मा आविर्भवेयुः।

आपद्विषये (यत्वे) चास्य 'नत्वन्यत' इत्येतत् "सर्वतः प्रतिगृह्णीयादि"त्यनेन विरुद्धयेत। **यत्तु** सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिः धनं वा पृथिवीपतिर्याच्यः स्यादिति तदा यत्प्रकरणात् क्षत्रियाद्राज्ञः प्रतिग्रहार्थम्। अत एव तत्र पृथिवीपतिग्रहणम्, इह तु राजग्रहणम् ॥ ३३ ॥

**न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ॥**
**न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ ३४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदि च कुतश्चिद्धनार्थाद् व्यापाराद् व्याहन्येत न तदैवापद्धर्मानाश्रयेत्। किं तर्हि? पुनरुत्पाद्येत। तदुक्तम् "आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेदिति" (अ० ४ श्लो० १३७)। अतश्च यदि कथञ्चित् क्षतो वर्षाद्यभावेन सस्यनाशो भवेन्नेदता त्यागेन सहसैव परपिण्डोपजीविना याच्ञापरेण भवितव्यम्! सत्यां युक्तौ जीर्णमलिने च वाससी धनविभवे सति नेष्येते ॥३४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षुधा न **सीदेत्**। शक्तोऽर्जनसमर्थः। **जीर्णं** त्रुटितम् ॥ ३४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। विद्यादियोगात्प्रतिग्रहशक्तोऽपि **स्नातको** ब्राह्मण उक्तराजप्रतिग्रहादिलाभे सति न क्षुधाऽवसन्नो भवेत्। नच धने संभवति जीर्णे मलिने च वाससी बिभृयात् ॥ ३४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तेन नातीव कष्टेन वर्तितव्यमित्याह **न सीदेदिति**। **क्षुधासक्तः** तादृशस्य धर्मे अविश्वासप्रसङ्गात्। **विभवे सति** अजीर्णशुक्लाम्बरः स्यात् ॥ ३४ ॥

(५) **नन्दनः**। **न सीदेद्विभवे सति**। **शक्तो** भोजनसमर्थो लोभात्**क्षुधा नावसीदेत्** मृष्टमश्नीयादेव ॥ ३४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **स्नातको** विप्रः। **क्षुधा न सीदेत्**। कीदृशो विप्रः? **शक्तः** विद्यया परिपूर्णः ॥ ३४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। स्नातको ब्राह्मणो विद्वत्त्वात् प्रतिग्रहसमर्थो राजादिधनसंभवे सति क्षुधाऽवसादं न कदाचिद्गच्छेत्। न च संभवे सति जीर्णमलिनवसनः स्यात् ॥ ३४ ॥

**क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥**
**स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कल्पनम् 'छेदनं दन्तवासस' इत्येतदपेक्षं चैतत्कल्पनं नियमतः। अत एव **शुचिरित्याह**। दीर्घकेशस्य हि स्नानादिषु क्लेशसाध्यत्वात् अलसः स्यात्तथाऽशुचित्वप्रसङ्गः। यदि तु केशादिप्रसृतोऽपि स्नानपरः स्यान्नैव धारणं दुष्येत्। **दान्तः** दर्पवर्जितः। **शुचिः** अर्थेषु, शुद्धिनिमित्तैर्मृद्वार्याचमनादिभिश्च। वेदाध्ययने च नित्याभियुक्तः। उक्तोऽप्ययमर्थ आदरार्थः पुनःपुनरुच्यते। **आत्महितानि** व्याधेः प्रतीकारादिना अजीर्णातिवेलगुरुविदाहिभोजनवर्जनादीनि ॥ ३५ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। कृत्तं कर्तर्यादिकर्तनेन ह्रस्वतां नीतं तेन स्नातकस्य क्षुरेण मुण्डनमवैधमित्युक्तम्। अत एवापस्तम्बः 'न समावृत्ता वपेरन्नन्यत्र विहारा'दिति। विहारस्त्रेताग्निविहारसंपाद्यो दर्शादिः। उपलक्षणं चैतत् पितृमरणादेरिति। केशाः शिरोरुहाः। दान्तस्तपःक्लेशसहिष्णुः नित्यं युक्तो नित्योद्युक्तः। आत्महितेष्वाहारलाघवादिषु।। ३५।।

(३) कुल्लूकः। कल्पनं छेदनं लूनकेशनखश्मश्रुस्तपःक्लेशसहो दान्तः शुक्लवासा बाह्याभ्यन्तरशौचसंपन्नो वेदाभ्यासयुक्त औषधोपयोगादिना चात्महितपरः स्यात्।। ३५।।

(४) राघवानन्दः। अस्य सार्थवादानि व्रतान्याह आऽध्यायपरिसमाप्तेः क्लृप्तेत्यादिना क्लृप्ताश्छिन्नाः शिखां वर्जयित्वा केशादयो यस्य सः। आत्महितेषु औषधादिषु।। ३५।।

(६) रामचन्द्रः। क्लृप्ताः कृत्ताः केशनखानि श्मश्रूणि यस्य सः क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः। तथा योगीश्वरः "नीचकेशश्मश्रुनखः शुचि"(रिति)। शुचिरन्तर्बहिश्च आत्महितेषु लघ्वाहारादिषु।। ३५।।

(७) मणिरामः। कल्पनं छेदनं। लूनकेशनखश्मश्रुः दांतः तपःक्लेशसहः। आत्महितेषु च औषधप्रयोगादिना हितपरः स्यात्।। ३५।।

(८) गोविन्दराजः। कृतकेशनखश्मश्रुरिति। लूनकेशनखश्मश्रुः शमवान् शुक्लवासाः बाह्याभ्यन्तरशौचोपेतः वेदाभ्यासशीलः औषधोपयोगादिरतः स्यात्।। ३५।।

**वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्।।**
**यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले।। ३६।।**

(१) मेधातिथिः। यज्ञोपवीतकुण्डलयोर्धारणं शरीरसंयोगः। यस्य च यस्मिन्नङ्गे समुचितः सन्निवेशः स तत्रैव विनियोजनीयः। यथा कुण्डलं कर्णयोरुपवीतं काय इति। कर्णाभरणस्य कुण्डलाख्यत्वात्। कण्ठसक्तस्य च सूत्रस्य दक्षिणबाहूद्धारणेनोपवीतत्वात्। दृष्टप्रयोजनत्वाच्च यष्टयादीनां सर्वदाऽङ्गसङ्गः। तथाहि यष्टिधारणं श्रान्तस्यावलंबनार्थं सम्मुखागतघातकगवादिनिवारणार्थं च; उद्धृतोदकेन शौचस्य विहितत्वात्। आधारापेक्षया कमण्डलुर्नियम्यते। स च तुल्यकार्यत्वात् कलशादीन् निवर्तयति, न कुण्डलकटकादीन्। अतश्च पुरीषनिमित्तस्योदकशोध्याशुचित्वापनोदार्थं सोदकत्वं कमण्डलोः। उक्तं च "मुहूर्तमपि शक्तिविषये नाशुचि तिष्ठेदिति"। 'शक्तिविषय' इति। यदि पूर्वगृहीतमुदकमुपयुक्तमन्यथाप्राप्तमशुचित्वनिमित्तं च श्लेष्मनिष्ठीवनाद्युत्पन्नं तत्रोदकालाभादशुचित्वं न दोषः। तथापि मूत्रपुरीषविस्रंसने स्नानं वक्ष्यति (अ० ११ श्लो० २०२) "विनाऽद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य तु। सचैलो बहिराप्लुत्येति"। शुचिश्च स्मृत्यन्तरे प्रतिपदमाम्नातः। एवं ह स्माह भगवान्वसिष्ठः (अ० १२ र० १५–१७)। "अप्सु पाणौ च काष्ठे च कथितः पावकः शुचिः। तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्य कमण्डलुम्।। पर्यग्निकरणं होमं मनुराह प्रजापतिः। कृत्वा चावश्यकार्याणि आचामेच्छौचवित्तमः"।। बौधायनेनाप्युक्तम् "अथ कमण्डलुं धार्यम्" इत्युपक्रम्य "तस्माच्छौचं ततः कृत्वा

परिमृज्य कमण्डलुम्। पर्यग्निकरणं ह्येतद्वस्तुपरिमार्जनम्" ।। तथा "कमण्डलुं परिहरेत्पूर्वावस्थोऽप्यशौचतः। न चैनं कुत्सयेद्विद्वान्न शङ्केन्न च दूषयेत् ।।"

आकारविशेषनिमित्तश्चायं शब्दो न जातिमाद्रियते। अतो मृण्मयस्य सौवर्णस्य राजतस्य वा एषैव शुद्धिर्न प्रकृतिजातिसम्बन्धिनी। मूत्रादिस्पर्शे तु प्रकृतिजातिशुद्धिरवधेया। हस्तमार्जनं तूच्छिष्टपुरुषसंस्पर्शाद्यशुचित्वात्। तथा च **गौतमः** "क्वचिच्छौचार्थं संनिधाय" इत्याह। अत इहापि संनिधानमेवाभिप्रेतं, न स्वात्मना ग्रहणम्। वेदो दर्भमुष्टिस्तस्य च "प्राणोपस्पर्शनं दर्भैः" इत्यादि प्रयोजनम्।

अतश्चादृष्टार्थानां सार्वकालिकशरीरसम्बन्धो, दृष्टार्थानां तु संनिधिर्नित्यं, प्रयोजनतस्तु ग्रहणमिति। **शुभे** दर्शनीये, आकारतः तापच्छेदकषैश्च (करे) सुवर्णशुद्धया ।। ३६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **यष्टिं** दण्डं, **सोदकं** न रिक्तं। **यज्ञोपवीत**मित्येकत्वमविवक्षितं; स्नातकं प्रति 'यज्ञोपवीते द्वे यष्टि'रिति विधानात्। **वेदमैष्टिक**वेदप्रतिकृतिं कुशमयीं यष्टिस्थां। **शुभे** निर्मले ।। ३६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वेणुदण्डमुदकसहितं च **कमण्डलुम्**। **यज्ञोपवीतं** कुशमुष्टिं शोभने च सौवर्णकुण्डले धारयेत् ।। ३६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **वैणवीमिति**। वैणवीमित्यादिपञ्चकं यथायोगं दृष्टादृष्टार्थं। **कमण्डलुं** काष्ठभवं जलपात्रं। **वेदो**ऽत्र कुशमुष्टिः 'वेदं कृत्वा वेदिं करोतीति' श्रुतेः। रुक्मं सुवर्णं **शुभे** दर्शनीये ।। ३६ ।।

(५) **नन्दनः**। **वेदं** दर्भपुञ्जम् ।। ३६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **यज्ञोपवीतं** धारयेत्, **वेदं** दर्भमुष्टिं धारयेत्, **च** पुनः **शुभे रौक्मे कुण्डले** धारयेत् ।। ३६ ।।

(७) **मणिरामः**। **वेदं** कुशमुष्टिं। **रौक्मे** सौवर्णे ।। ३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वैणवीमिति**। वेणुदण्डं उदकसहितं **कमण्डलुं यज्ञोपवीतं** दर्भमुष्टिं रुचिरसौवर्णकुण्डले धारयेत्। यज्ञोपवीतकमण्डल्वोः "अग्नीन्धनं भैक्षचर्यां" (२/१०८) इत्यनेन च गृहस्थादीनामनुवृत्तिसिद्धौ स्नातकव्रतार्थं पुनर्ग्रहणम्। एवमन्येषामपि 'न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्' इत्येवमादीनां पुनर्ग्रहणं विज्ञेयम् ।। ३६ ।।

**नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन ।।**
**नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ।। ३७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **उपसृष्टो** ग्रहोपरक्तः। उदके प्रतिबिम्बितो **वारिस्थः**। **नभः** अन्तरिक्षं तस्य मध्यगतं पश्येन्न मध्याह्नकाले ।। ३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उपसृष्टं** राहुणा गृहीतं। स्नानार्थे तद्दर्शने तु सकृन्न दोषः; 'दृष्ट्वा, स्नाया'दिति विधानात्। **वारिस्थं** जलप्रतिबिम्बितं **मध्यगतं** मध्याह्नकाले ।।३७।।

(३) **कुल्लूकः। उद्यन्तमस्तं यन्तं च** सूर्यबिम्बं संपूर्णं **नेक्षेत। उपसृष्टं** ग्रहोपरक्तम् वक्राद्युपसर्गयुक्तं च **वारिस्थं** जलप्रतिबिम्बितम् नभोमध्यगतं मध्यदिनसमये ।। ३७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच **नेति।** आदित्येक्षणमुदयादिपञ्चस्थलेषु समावर्तनपर्यन्तं न कार्यमिति संकल्पं, ब्रह्मचारी कुर्यादित्यर्थः। 'अथ ब्रह्मचारिणो व्रत'मिति **कल्पसूत्रकारेण** धृतत्वात्। पर्युदासविधिरेवायम्, अत एव दर्शादग्नीषोमीयमन्त्रस्येव स्नातकप्रकरणात् उत्कर्ष इति। **उपसृष्टं** राहुणा **न मध्यं नभसो गतं** अभिजिदाख्यम्। स्नातकस्य निषेधमात्रं तेषु दर्शने मुख्यब्रह्मचारिणो व्रतच्युतिरिति भेदः। 'भास्करालोचनाऽश्लीले'ति ब्रह्मचारिप्रकरणे (आचार० ३३) **याज्ञवल्क्योक्तेः** ।। ३७ ।।

(५) **नन्दनः। उपस्पृष्टं** राहुग्रस्तम् ।। ३७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** उदयं प्राप्तं **आदित्यं नेक्षेत** न पश्येत्। **उपसृष्टं** राहुग्रस्तं **वारिस्थं** च पुनः **नभसो मध्ये गतं** आदित्यं **नेक्षेत** ।। ३७ ।।

(७) **मणिरामः। उपसृष्टं** ग्रहोपरक्तम्। वक्राद्युपसर्गयुक्तं ।। ३७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। नेति।** उदयास्तमनराहुग्रस्तोदकप्रतिबिम्बमध्याह्नवर्तिनमादित्यं कस्मिंश्चिदपि **नेक्षेत** ।। ३७ ।।

**न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ।।**
**न चोदके निरीक्षेत स्वरूपमिति धारणा ।। ३८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** वत्सबन्धनार्था रज्जुर्**वत्सतन्त्री** वत्सपङ्क्तिर्वा, तां **न लङ्घयेन्**नापक्रामेत्। तथा च **गौतमः** (अ० ९ सू० ५२) "नोपरि वत्सतन्त्रीं गच्छेत्"। **स्वरूपं** शरीरसंस्थानम्। स्वग्रहणात्परस्य रूपप्रेक्षणं न पर्युदस्यते। **इति धारणा** एष निश्चयः शास्त्रेषु ।। ३८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** वत्सतन्त्रीं गोवत्सबन्धनदाम वर्षति स्वोपरि मेघे। **धारणा** निश्चयः ।। ३८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** वत्सबन्धनरज्जुं न लङ्घयेत्, वर्षति मेघे न धावेत्, नच स्वदेहप्रतिबिम्बं जले निरीक्षेतेति शास्त्रे निश्चयः ।। ३८ ।।

(४) **राघवानन्दः। वत्सतन्त्रीं** तद्बन्धनरज्जुम्। **स्वरूपं** स्वदेहम् ।। ३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः। वत्सतन्त्रीं** वत्सबन्धनरज्जुं **न लङ्घयेत् च** पुनः **वर्षति** सति न **प्रधावेत्।** च पुनः उदके **स्वरूपं** प्रतिबिम्बं **न निरीक्षेत। इति धारणा** मर्यादा ।। ३८ ।।

(७) **मणिरामः। वत्सतंत्रीं** वत्सबन्धनरज्जुम् ।। ३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः। न लंघयेदिति।** वत्सबन्धनरज्जुं **न** लङ्घयेत् **वर्षति न धावेत् उदके च** स्वप्रतिबिम्बं नेक्षेतेत्येवं निश्चयः ।। ३८ ।।

**मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ।।**
**प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ।। ३९ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** प्रस्थितस्याभिमुखागतान् मृदादीन् प्रत्ययं विधिः। मृदादयो येन दक्षिणो हस्तः तेन कर्तव्याः। उद्धृता च मृदेवं कर्तव्या। एवं हि शास्त्रान्तरं प्रस्थानाधिकारे पठति 'प्रदक्षिणमावर्त्येति'। **दैवतं** पटादिलिखितम् अर्चार्थम्। **गौतमस्तु** "देवतायतनानि सप्रदक्षिणमनुवर्तेतेति" पठति। लोकप्रसिद्ध्या चतुर्भुजमार्तण्डागारादि देवतायतनं विज्ञेयम्। 'यज्ञगृहाणि चेति' वक्ष्यति। **मधु** घृतसाहचर्यात् सारघं, मङ्गल्यमध्यपाठाच्च।

**प्रज्ञाता** वनस्पतयो महाप्रमाणाः प्रसिद्धा **वनस्पतयो** महावृक्षाः प्रमाणतः पुष्पफलातिशयतो वा प्रसिद्धा उदुम्बरादयः। "ऊर्ग्वा उदुम्बरः" इत्यर्थवादः।

ये तु गुणाधिकान् **'प्रज्ञातान्'** आचक्षते ते निर्मूलप्रसिद्धिमात्रप्रमाणका उपेक्षणीयाः ।। ३९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। मृदमुद्धृत्य** स्थापितां **दैवतं** देवतार्चनं। **प्रदक्षिणानि कुर्वीत** तान् दक्षिणपार्श्वे कृत्वा गच्छेत्। **प्रज्ञातान्** प्रसिद्धान् ग्रामादिषु प्रधानवृक्षान् ।। ३९ ।।

(३) **कुल्लूकः।** प्रस्थितः सन् संमुखावस्थितानुद्धृतमृत्तिकागोपाषाणादिदेवताब्राह्मणघृतक्षौद्रचतुष्पथमहाप्रमाणज्ञातवृक्षान्दक्षिणहस्तमार्गेण कुर्यात्। **प्रदक्षिणानीति** 'नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्या'मिति नपुंसकत्वम् ।। ३९ ।।

(४) **राघवानन्दः। मृदं** पुञ्जीकृत्य स्थापिताम्। **दैवतं** ग्रामाध्यक्षां देवतां। **प्रज्ञातान्** प्रमाणसिद्धान् **प्रदक्षिणानि** कुर्वीत, पथि प्रस्थित इति शेषः ।। ३९ ।।

(५) **नन्दनः। मृदं** परेणानीयमानां मृत्कूटं वा। **दैवतं** देवताप्रतिमाम्। **प्रज्ञातान्**प्रसिद्धान् ।। ३९ ।।

(६) **रामचन्द्रः। मृदङ्गादीनि प्रदक्षिणानि कुर्वीत** कुर्यात् ।। ३९ ।।

(७) **मणिरामः।** प्रस्थितः सन् सम्मुखावस्थितानेतान्**प्रदक्षिणानि** दक्षिणहस्तमार्गेण कुर्वीत। **मृदं** भूभागादुद्धृतमृत्तिकां। **दैवतं** पाषाणादिदेवताम् ।। ३९ ।।

(८) **गोविन्दराजः। मृदमिति।** प्रस्थितः सन् सम्मुखोपस्थितान् उद्धृतमृद्गोपाषाणादिकृतदेवताब्राह्मणघृतमाक्षिकचतुष्पथाश्वत्थादिख्यातवृक्षान् दक्षिणहस्तमार्गेण कुर्यात् ।।३९।।

**नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ।।**
**समानशयने चैव न शयीत तया सह ।। ४० ।।**

(१) **मेधातिथिः। प्रमत्तः** कामशरैः पीडितोऽपि। **आर्तवं** स्त्रीलिङ्गशोणितं मासि मासि प्रसिद्धम्। **तद्दर्शने** न गच्छेत्। एकस्यां च शय्यायां **तया सह न शयीत।** "स्पर्शप्रतिषेधादेव तत्सिद्धमिति" चेत्, नायं प्रतिषेधः। व्रतमिदं, प्रायश्चित्तभेदश्च ।। ४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रमत्तो**ऽतिकामार्तोऽपि ।। ४० ।।

(३) **कुल्लूकः । प्रमत्तः** कामार्तोऽपि रजोदर्शने निषिद्धस्पर्शदिनत्रये **स्त्रियं नोपगच्छेत् ।** स्पर्शनिषेधेनैव तासां'आद्याश्चतस्र' इति निषेधसिद्धौ प्रायश्चित्तगौरवार्थं स्नातकव्रतत्वार्थं च पुनरारम्भः । न चागच्छन्नपि **तया सहैकशय्यायां** सुप्यात् ।। ४० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** उदक्या गमनं हि लोकद्वयविनाशकमित्याह **नोपगच्छेदिति ।** स्त्रीभिर्गमनेच्छाभावेऽपि **न शयीत** स्पर्शाशङ्कया । 'पात्रे चोदकीति तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत् अञ्जलिना वा पिबेदि'ति श्रुतेः । अञ्जलिनोदकसंबन्धादिति ।। ४० ।।

(५) **नन्दनः । प्रमत्तः** प्रकर्षेण कामपीडितः ।। ४० ।।

(६) **रामचन्द्रः । प्रमत्तोऽपि आर्तवदर्शने** ऋतुमतीं **स्त्रियं नोपगच्छेत् तया** ऋतुमत्या **सह समानशयने** एकशय्यायां न **शयीत** ।। ४० ।।

(७) **मणिरामः । प्रमत्तः** कामार्तोऽपि । **आर्तवदर्शने** निषिद्धस्पर्शदिनत्रयमध्ये । "आद्याश्चतस्र" इति पूर्वमेव निषेधे सिद्धे प्रायश्चित्तगौरवार्थं पुनरारंभः । अगच्छन्नपि नैकशय्यायां सुप्यात् ।। ४० ।।

(८) **गोविन्दराजः । नोपगच्छेदिति ।** कामार्तोऽपि उदक्यां न यायात् नाप्येकशय्यायां तया सह **शयीत** ।। ४० ।।

**रजसाऽभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।।**
**प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ।। ४१ ।।**

(१) **मेधातिथिः । रजः** पूर्वोक्तमार्तवम् । **अभिप्लुतां** तेन सम्बद्धाम् । पूर्वस्यार्थवादः ।। ४१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । तेजो** ब्रह्मवर्चसम् ।। ४१ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** यस्माद्रजस्वलां स्त्रियं पुरुष**स्योपगच्छतः प्रज्ञावीर्यबलचक्षुरायूंषि** नश्यन्ति, तस्मात्तां नोपगच्छेत् ।। ४१ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** यस्मा**त्तेजो** वेदजं **प्रहीयते** ।। ४१ ।।

(५) **नन्दनः । रजसेति** ।। ४१ ।।

(६) **रामचन्द्रः । रजसाभिप्लुतां नारीं** ऋतुमतीं । **तेजः** प्रज्ञादि **प्रहीयते** ।। ४१ ।।

(७) **मणिरामः ।** गमने निषिद्धफलमाह **रजसाभिप्लुतामिति** ।। ४१ ।।

(८) **गोविन्दराजः । रजसेति ।** यस्माद्रजस्वलास्त्रियं पुंस **उपगच्छतः प्रज्ञावीर्यादीनि** नश्यन्ति, तस्मात् तां नोपेयात् ।। ४१ ।।

**तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।।**
**प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ।। ४२ ।।**

(१) मेधातिथिः। वृद्धिवचनं स्तुतिरेव ॥ ४२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। तां विवर्जयत इति** मांसाद्यभक्षण इव निवृत्तिरत्रापि फलवतीति दर्शितम् ॥ ४२ ॥

(३) **कुल्लूकः। तां** तु रजस्वलामगच्छतस्तस्य प्रज्ञादयो **वर्धन्ते,** तस्मात्तां नोपेयात् ॥ ४२ ॥

(४) **राघवानन्दः।** श्रुतेऽपि निषेधे तात्पर्यं तदकुर्वतः प्रजावृद्ध्याद्यदर्शनात्। **रजसा** ऋतुकालजयोनिरक्तेन **आप्लुतां** युक्ताम् ॥ ४२ ॥

(६) **रामचन्द्रः। तां रजसाभिप्लुतां** वर्जयतस्तस्य प्रज्ञादिकं **वर्धते** ॥ ४२ ॥

(७) **मणिरामः।** अगमने फलमाह **तामिति** ॥ ४२–४३ ॥

(८) **गोविन्दराजः। तामिति।** तां पुनः रजस्वलां गच्छतः प्रज्ञादीनि **वर्धन्ते,** तस्मात्तां न व्रजेदिति ॥ ४२ ॥

**नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ॥
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥ ४३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** "नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणामिति" (मनु० अ० ५ श्लो० १३०) शुचित्ववचनं—"स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमिति" च प्रतिषेधः। द्वयमपि विषयविभागेन व्यवस्थितम्। तत्र शुचित्ववचनं "स्त्रियश्च रतिसंसर्गे" इति स्मृत्यन्तरदर्शनेन रतिस्त्रीविषयं विज्ञायते। अतः प्रतिषेधोऽपि पारिशेष्यादरतिस्त्रीषु मातृभगिन्यादिषु द्रष्टव्यः। यतो रतिर्नेह प्रीतिमात्रं, किं तर्हि? मन्मथनिमित्तो भावविशेष इति शृङ्गारपूर्वकोऽभिलाषादिरूपः। अतस्तद्युक्तासु शुचित्वं, विपरीतासु प्रतिषेधः।

रतिनिमित्तार्थतया भार्यया सह भोजने प्राप्ते वचनमिदमारभ्यते **नाश्नीयाद्भार्यया सार्धमिति।** अथ "संसर्गग्रहणेन वृषस्यतो संप्रयोगविशेषः कथ्यते। तदानीं परिचुम्बनादेव शुचित्वमिति नास्ति भार्यया सह भोजनप्राप्तिः"। तत्रेदं पुनर्वचनं व्रतज्ञापनार्थम्। ततश्च यावज्जीविकः सङ्कल्पः कर्तव्यो यथा भार्यया सह भोजनं न भवति। एतच्च सहभोजनमेकाधिकरणमेककालदेशं नञर्थविषयतया चोद्यत इति गतोच्छिष्टप्रतिषेधगतार्थशङ्केति। स पुनरयमीदृशः सहार्थविशेषः प्रमाणान्तरतः स्मृत्यन्तरसमाचारादेः। शेषशब्दार्थो ह्यन्योपेक्षितमात्रम्। तथा "इतरानपि सख्यादीन् भोजयेत् सह भार्ययेति" (अ० ३ श्लो० १०३)। नात्रैकाधिकरणता भुजेरवगम्यते। किं तर्हि? भार्यया समानदेशता भोक्तुः, समानकालता वा।

अन्ये त्वन्यदुच्छिष्टमिति व्याचक्षते—भुक्तोज्झितमुच्छिष्टम्। एकस्यां तु पत्न्यां एकस्मिन् पात्रे सहभोजनम्। एवं तु व्याख्यायमाने शूद्रेण सह भोजनं प्रतिषिद्धं स्यात्, प्रसिद्धिश्च त्यक्ता भवेत् अस्य संस्पर्शादुच्छिष्टव्यवहारः, भेदात् कश्चिद्बहुभोजिन्या न तुष्येत्, अन्यः स्वल्पभोजिन्यामपि विश्रंभयतीति छद्मना वर्तते—मम पुरतः स्वल्पमश्नाति इति।

तथासदृशा एवमन्येऽपि नियमाः। **नैनामीक्षेत चाश्नतीम्**। पश्यतो हि भुञ्जाना विवृतास्यतया रूपविकारेण भर्त्रे न रोचेत। क्षवथुः शिरःस्थेन वायुना पूर्यमाणायाः नासिकायाः शब्दस्तत्रापि वक्त्रवैकृत्यात् प्रीतिर्न स्यात्। **जृम्भमाणा**ऽऽस्येन विलम्बितं वायोरुच्छ्वसनमङ्गप्रत्यङ्गप्रसारणं वा। तदप्येवमेव। **यथासुखं चासीना** अनवग्रथितकेशी भूमौ निपतितगात्री वा॥ ४३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सार्धमेकपात्रे क्षुवतीं** क्षुतं कुर्वतीं **आसीनां यथासुखं** देहसंवरणादिशून्याम्॥ ४३॥

(३) **कुल्लूकः**। **भार्यया** सहैकपात्रे **नाश्नीयात्**। **एनां च** भुञ्जानां क्षुतं जृम्भां च कुर्वतीं **यथासुखं** निर्यन्त्रणप्रदेशावस्थितां च **नेक्षेत**॥ ४३॥

(४) **राघवानन्दः**। स्वभार्याविषयेऽपि नाश्नीयादित्यादिनवकं निषेधति **नेति** द्वाभ्यां। **क्षुवतीं** क्षुतं कुर्वतीम्। रहस्यदेशे **आसीनाम्**।॥ ४३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **भार्यया सार्धं नाश्नीयात्** स्त्रियं **अश्नन्तीम्** भोजनं कुर्वतीं **नेक्षेत** क्षुतं कुर्वतीं **यथासुखं आसीनां** नेक्षेत॥ ४३॥

(७) **रामचन्द्रः**। **नाश्नीयादिति**॥ ४३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नाश्नीयादिति**। **भार्यया सह नाद्यात्** यत्पुनः 'नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां' (५।१३०) इति तत् "स्त्रियश्च रतिसंसर्गे" इति **गौतमस्मरणात्** रतिकालविषयमेव। न चाप्येनां भुञ्जानां **क्षुवन्तीं** वायुना चास्यविकासं कुर्वाणां प्रसृतचरणत्वादिना वा अनियन्त्रणावस्थां पश्येत्॥ ४३॥

**नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्॥**
**न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजःकामो द्विजोत्तमः॥ ४४॥**

**[उपेत्य स्नातको विद्वान्नेक्षेन्नग्नां परस्त्रियम्। सरहस्यं च संवादं परस्त्रीषु विवर्जयेत्॥१॥]**

(१) **मेधातिथिः**। **परस्यास्त्र्यञ्जयन्ती** शोभत एव। **अनावृतां** अपावृतवसनाम्। अवगुण्ठितामेव हि विशेषेण स्पृहयन्ति। निर्वसनाङ्गीं निपुणतरं वीक्ष्यमाणां न सर्वतः सर्वा सुसंस्थाना भवतीति निरम्बरा नेक्षणीया। **तेजःकामः**। तेजः वर्णोज्ज्वलता, उत्साहप्रयोगश्च॥ ४४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **तैलाद्यभ्यक्तामनावृतां न पश्येदा**वृतायां त्वदोषः। **प्रस्नुवन्तीं** पुत्रं पाययन्तीम्॥ ४४॥

(३) **कुल्लूकः**। तथा स्वनेत्रयोरञ्जनं कुर्वतीं **तैलाद्यभ्यक्तां अनावृतां** स्तनावरणरहितां नतु नग्नाम्। 'नग्नां नेक्षेत च स्त्रिय'मिति (४।५३) वक्ष्यमाणत्वात्। अपत्यं च **प्रसवन्तीं** ब्राह्मणो न निरीक्षेत॥ ४४॥

(४) **राघवानन्दः**। **अभ्यक्तां** तैलादिना **अनावृतां** अदर्शनीयदेशान्मुक्तवस्त्रां। निषेधस्य दृष्टं फलं एतेषु वैरूप्यदर्शनेन वैराग्यसंभावनया निवृत्तिः॥ ४४॥

(६) रामचन्द्रः। नेति। तेजस्कामो द्विजः अञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे नेक्षेत। अभ्यक्तां तैलाभ्यक्तां अनावृतां वस्त्रैः प्रसवन्तीं पुत्रं स्तनं पाययन्तीं नेक्षेत ।। ४४ ।।

[ रामचन्द्रः। उपेत्येति। उपेत्य स्नातकः विद्वान्नग्नां परस्त्रियं नेक्षेत ।। ]

(७) मणिरामः। अनावृतां स्तनावरणरहितां ।। ४४ ।।

(८) गोविन्दराजः। नाञ्जयन्तीमिति। तथा स्वनेत्रयोः अञ्जनं ददतीं घृताभ्यक्तां 'नग्नां चान्यत्र मैथुनात्' इत्यापस्तंबस्मरणात् नेक्षेत। अपत्यं च प्रसवन्तीं वीर्यकामः ब्राह्मणो न पश्येत् ।। ४४ ।।

**नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।।**
**न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ।। ४५ ।।**

(१) मेधातिथिः। सत्यपि यज्ञोपवीते नित्यानुगतत्वात्तस्य अनाच्छादकत्वादुपनयनविभेदेनोपदेशात् एकवासाः। अङ्गाच्छादकादि द्वितीयं वासो भोजनकाले स्यात्। न मूत्रम्। मूत्रग्रहणमत्रोत्सर्गस्योपलक्षणार्थम्। पथि रथ्यायाम्। गोव्रजे। येन यत्र वा गावश्चरितुं व्रजन्ति ।। ४५ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। एकवासा नग्नो वा नान्नमद्यान्न च स्नायादित्यर्थः। न मूत्रमिति विष्ठाविसर्गस्यापि निषेधः, न्यायसामान्यात्। एवं मेहत इत्यत्रापि ।। ४५ ।।

(३) कुल्लूकः। एकवस्त्रो नान्नं भुञ्जीत। उपस्थाच्छादनवासोरहितो न स्नायात्। मूत्रग्रहणमधःकायमलविसर्गोपलक्षणार्थम्। तेन मूत्रपुरीषे वर्त्मनि भस्मनि गोष्ठे च न कुर्यात् ।। ४५ ।।

(४) राघवानन्दः। किंच नेति। मूत्रपदं पुरीषस्याप्युपलक्षणं, अमेध्यत्वाविशेषात् ।। ४५ ।।

(६) रामचन्द्रः। एकवासा अन्नं नाद्यात् न भक्षयेत् ।। ४५ ।।

(७) मणिरामः। मूत्रमिति। पुरीषस्याप्युपलक्षकम् ।। ४५ ।।

(८) गोविन्दराजः। नान्नमिति। एकवस्त्रो 'नाश्नीयात्'। न च कौपीनाच्छादनं विना स्नायात्। मूत्रपुरीषे च मार्गभस्मगोष्ठेषु न कुर्यात् ।। ४५ ।।

**न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ।।**
**न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ।। ४६ ।।**

(१) मेधातिथिः। चित्यां अग्न्यर्थं इष्टकाकूटे। पर्वतग्रहणं अरण्योद्यानोपलक्षणार्थम्। तथाहि विशेष-प्रतिषेधो भविष्यति "पर्वतमस्तक" इति। सामान्येन च प्रतिषेधे पर्वतवासिनाममेहनप्रसङ्गः। वल्मीकः कृमिकृतो मृत्तिकासञ्चयः ।। ४६ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। न पर्वते पर्वतोपत्यकायां न जीर्णदेवायतन इति जीर्णशीर्णप्राकारादौ तथा देवतायतने चेत्यर्थः ।। ४६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तथा **फालकृष्टे** क्षेत्रादावुदकेऽन्यर्थकृतेऽष्टकाचये **पर्वते** चिरंतन-देवतागारे कृमिकृतमृत्तिकाचये च विण्मूत्रोत्सर्गं **न कदाचन कुर्यात्**॥ ४६॥

(४) **राघवानन्दः**। **चित्यां** अग्निदग्धेष्टकाचये श्मशाननिषेधेन शवदाहचितेर्निषेधात्। वल्मीकस्य सदा सत्वेन कदाचनेत्युक्तम्॥ ४६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **फालकृष्टे** हलोत्कृष्टे **क्षेत्रे मूत्रपुरीषे न कुर्यात्**॥ ४६॥

(७) **मणिरामः**। **चित्यां** अग्न्यर्थं कृतेऽष्टकाचितौ। **वल्मीके** कृमिकृतमृत्तिका-समूहे॥ ४६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **न फालकृष्ट इति**। तथा **फालकृष्टे** उदके इष्टकाचिते चाग्न्य-धिकरणे पर्वते देवायतने पिपीलिकाऽकृष्टे मृत्संचये च न कदाचित् कुर्यात्॥ ४६॥

**न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः॥**
**न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके॥ ४७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **न गच्छन्नापि च स्थितः**। गच्छतस्तिष्ठतश्च प्रतिषेधादासीनस्या-भ्यनुज्ञानम्। न चासन्ने नद्यास्तीरे, नदीजले न। संसर्गशङ्का यत्र भवति तदासन्नम्। पर्वतस्य **मस्तकं** शृङ्गम्॥ ४७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्थितः** उत्थितः। **आसाद्या**त्यन्तासन्नं कृत्वा **पर्वतमस्तके** अधित्यकायां। 'अफालकृष्ट'इत्यादिश्लोकद्वयं कैश्चिदत्र लिखितम्॥ ४७॥

(३) **कुल्लूकः**। तथा सप्राणिषु बिलेषु न व्रजन्न चोत्थितो न नदीतटमाश्रित्य, नापि पर्वतशृङ्गे, मूत्रपुरीषे कुर्यात्। पर्वतनिषेधादेव तच्छृङ्गनिषेधे सिद्धे पुनः पर्वतशृङ्गनिषे-धस्तदितरपर्वते विकल्पार्थः। तत्रेच्छाविकल्पस्यान्यथापि प्राप्तौ सामान्यनिषेधवैयर्थ्याद्व्यव-स्थितोऽत्र विकल्पः, अत्यन्तार्तस्य पर्वते न दोषः॥ ४७॥

(४) **राघवानन्दः**। न **ससत्त्वेषु** प्राणियुक्तेषु। **स्थितः**, ऊर्ध्वमिति शेषः। पर्वत-वासिनां तत्त्यागासंभवेन पर्वतमस्तकग्रहणमत्यन्तनिषेधार्थम्॥ ४७॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाभ्यामाह **नेति**। **ससत्त्वेषु** सजीवेषु **गर्तेषु** विण्मूत्रस्य विसर्जनं न कुर्यात्॥ ४७॥

(७) **मणिरामः**। पर्वतनिषेधादेव तन्मस्तकनिषेधे सिद्धे पुनः शृंगनिषेधो दोषा-धिक्यार्थः॥ ४७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **न ससत्त्वेष्विति**। तथा सप्राणिषु बिलेषु न कुर्यात्, न व्रजन् न स्थितो वा नापि **नदीतीरमा**श्रित्य कुर्यात् पर्वतशृङ्गे वा। पर्वतग्रहणादेव पर्वतमस्तक-निषेधसिद्धौ पुनर्वचनं न शृङ्गादन्यत्र पर्वते विकल्पार्थम्। न च तुल्यविकल्पः। तथाविधौ स्वेच्छासिद्धत्वात् सामान्यप्रतिषेधानर्थक्यम्। तस्मादत्यन्तार्तस्य पर्वते न दोषः, अन्यदा तु दोष इति व्यवस्थितोऽयं विकल्पः॥ ४७॥

**वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ॥**
**न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । सम्मुखीनत्वाद्वाय्वादीनागङ्गविप्रेक्षितेनापि न मूत्रयन्पश्येत् । वायोश्चारूपत्वाद्दर्शनं तत्प्रेरितपर्णलोष्टादिभ्रमणादवसेयम् । वायुचक्रे त्वयं प्रतिषेधो विप्रयुक्तः । सर्वतो हि वायुर्वाति ॥ ४८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **वाय्वग्निविप्रमित्यादिना** तत्संमुखतयाऽवश्यकर्मनिषेधः । वायुं पश्यन् प्रत्यक्षीकुर्वन् संमुखागच्छद्वातस्थान इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

(३) **कुल्लूकः** । वायुमग्निं ब्राह्मणं सूर्यं जलं गां च पश्यन्न कदापि मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । वायोररूपत्वेन दर्शनासंभवे वात्याप्रेरिततृणकाष्ठादिनिषेधोऽयम् ॥ ४८ ॥

(४) **राघवानन्दः** । वाय्वाग्निगवान्तान् षट् पश्यन्न मेहेतेत्यन्वयः ॥ ४८ ॥

(७) **मणिरामः** । वायोररूपित्वेऽपि वात्याप्रेरिततृणादिनिषेधपरो **वायुशब्दः** ॥४८॥

(८) **गोविन्दराजः** । **वाय्वग्निब्राह्मणादित्यमिति** । वाय्वग्निब्राह्मणादित्योदकगाः अवलोकयन् न **कदाचिन्मूत्रपुरीषोत्सर्गं** कुर्यात् वायोश्च सम्मुखीभावोऽवलोकनम् ॥ ४८ ॥

**तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादि च ॥**
**नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **तिरस्कृत्यां**तर्धाय काष्ठादि तदुपरि मूत्रयेत् । आवरणं वा 'तिरस्कारः' काष्ठादिभिर्भूमिं छादयि**त्वोच्चरेत्** । तृतीयान्तपाठस्तदा स्पष्टतरः । काष्ठेन लोष्टैः पत्रेण तृणेन वा । **अभ्युच्चरेत्** मूत्रं पुरीषं चोत्सृजेत् । **नियम्य वाचं प्रयतः** अनुच्छिष्टः । **संवीताङ्गः** आच्छादितशरीरः । **अवगुण्ठितः** शिरः प्रावृत्य । **अन्यत्रो**क्तं "कर्णस्थब्रह्मसूत्रेति" ॥ ४९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **तिरस्कृत्य** भूम्याच्छादनं कृत्वा **नियम्य वाचं** मौनी **प्रयतः** शुचिः **संवीताङ्गो** वस्त्रावृताङ्गः । **अवगुण्ठितः** प्रच्छादितशिराः ॥ ४९ ॥

(३) **कुल्लूकः** । **अन्तर्धाय** काष्ठादिना भूमिमवागनुच्छिष्टः प्रच्छादिताङ्गोऽवगुण्ठितशिरा मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । 'शुष्कैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पर्णैर्वेणुदलेन वा । मृन्मयैर्भाजनैर्वापि अन्तर्धाय वसुंधराम्'इति **वायुपुराणवचनात्** । शुष्कानि काष्ठपत्रतृणानि ज्ञेयानि ॥४९॥

(४) **राघवानन्दः** । विण्मूत्रयोस्त्यागस्य रागतः प्राप्तिमनूद्य तत्रेतिकर्तव्यतामाह **तिरस्कृत्येति त्रिभिः** । **तिरस्कृत्य** काष्ठादिभिरन्तर्धाय । **संवीताङ्गः** संवृतकरचरणः । **अवगुण्ठितो** वस्त्राद्याच्छादितः ॥ ४९ ॥

(५) **नन्दनः** । **तिरः**शब्देनात्र तिरोधानसाधनं विवक्षितम् । **काष्ठं तिरस्कृत्य** काष्ठं भूमेस्तिरोधानसाधनं कृत्वेत्यर्थः । **उच्चारः** पुरीषोत्सर्जनं । मूत्रस्याप्युपलक्षणमेतत् ॥ ४९ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** पुरीषोत्सर्गमाह **तिरस्कृत्येति।** **काष्ठं** वा पत्रं लोष्टं तृणानि वा **तिरस्कृत्य** प्रसार्य **उच्चरेत्** पुरीषं कुर्यात् **वाचं नियम्य संवीताङ्गः** अवगुण्ठिताङ्गः शिरोवेष्टनं कुर्यात् ॥ ४९ ॥

(७) **मणिरामः।** काष्ठलोष्टादिना **भूमिं तिरस्कृत्य** आच्छाद्य **उच्चरेत्** पुरीषोत्सर्गं कुर्यात्। **संवीतांगः** प्रच्छादितांगः। **अवगुंठितः** वेष्टितशिराः ॥ ४९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। तिरस्कृत्येति।** काष्ठपत्रलोष्टतृणैः भूमिमन्तर्धाय मौनी उच्छिष्टचाण्डालादिस्पर्शप्रायश्चित्तरहितः आच्छादितगात्रः प्रावृतशिरा मूत्रपुरीषे कुर्यात् ॥ ४९ ॥

**मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः॥**
**दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा ॥ ५० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं** त्यागम् ॥ ५० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अतः **सन्ध्ययोश्च यथा दिवेति** चतुर्थपादस्थाने **स्वस्थोऽनाशाय चेतस इति** क्वचित्पाठः। **चेतसो** बुद्धेरनाशाय ॥ ५० ॥

(३) **कुल्लूकः।** मूत्रपुरीषोत्सर्गमहनि सन्ध्ययोश्चोत्तराभिमुखो **रात्रौ** **चेद्दक्षिणामुखः** कुर्यात्। **धरणीधरस्तु** 'स्वस्थोऽनाशाय चेतस' इति चतुर्थपादं पठित्वा चेतसो बुद्धेरनाशायेति व्याख्यातवान्। "परंपरीयमाम्नायं हित्वा विद्वद्भिरादृतम्। पाठान्तरं व्यरचयन्मुधेह धरणीधरः" ॥ ५० ॥

(४) **राघवानन्दः।** **उत्सर्गः** मलत्यागः ॥ ५० ॥

(५) **नन्दनः।** अनेन दिङ्नियमेन सूर्यादिज्योतिषामाभिमुख्यमस्मिन्कर्मणि निवार्यते ॥ ५० ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **सन्ध्ययोर्यथा दिवा** उदङ्मुखः कुर्यात् ॥ ५० ॥

(७) **मणिरामः।** **यथा दिवा** उदङ्मुखः ॥ ५० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **मूत्रोच्चारसमुत्सर्गमिति।** मूत्रपुरीषोत्सर्गं **दिवा** **सन्ध्ययो**श्चोत्तराभिमुखो **रात्रौ दक्षिणाभिमुखः कुर्यात्** ॥ ५० ॥

**छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः॥**
**यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधभयेषु च ॥ ५१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **छाया** कुडयकपाटादिभिः सूर्यरश्मीनामावरणम्। **अन्धकारः** मेघधूमिकास्वर्भानुरात्रिकृतो ज्योतिरन्तरायः।

**यथासुखं मुखमस्येति।** यया दिशा सुखं भवति तस्यामेवोच्चरेत्। यत्र दिग्भागो न ज्ञायते अन्धकारे तत्रायं विधिः। **प्राणबाधः** प्राणपीडा। **भयं** चौरादिकृतम् ॥ ५१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। छायायां** गृहमेघादिच्छायायां **अन्धकारे** महान्धकारे **प्राणबाधे** तदकरणे व्याध्युत्पत्तौ मुखनियमस्य वाऽसंभवे एवं **भये** चौरादिभये एषु चतुर्षु **रात्रावहनि च** न मुखनियमोऽस्तीत्यर्थः ।। ५१ ।।

(३) **कुल्लूकः। रात्रौ छायायामन्धकारे वाऽह्नि** च्छायायां नीहाराद्यन्धकारे वा दिग्विशेषाज्ञाने सति चौरव्याघ्रादिकृतप्राणविनाशभयेषु च यथेप्सितमुखो मूत्रपुरीषे **कुर्यात्** ।। ५१ ।।

(४) राघवानन्दः। **छायायां** छायोपजीववृक्षस्य। **प्राणबाधे** व्याघ्रादिकृतभये ।। ५१ ।।

(५) **नन्दनः।** यत इदमाह **छायायामिति।** 'छायायां मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेदि'ति स्मृत्यन्तरे दर्शनात्। छायाशब्देन वर्जनीयो दुर्दिनपर्वतादिना महता व्यवधाने सूर्यस्य दिवातिरोभावो विवक्षितः। **अन्धकारशब्देन** रात्रौ ज्योतिषाम्। कुर्यान्मूत्रोच्चारसमुत्सर्गमित्येव ।। ५१ ।।

(६) **रामचन्द्रः। छायायां** गृहमेघादिच्छायायां **प्राणबाधभयेषु च यथासुखं कुर्यात्** ।। ५१ ।।

(७) **मणिरामः। रात्रौ छायायां अंधकारे वा अहनि छायायां** नीहाराद्यंधकारे वा दिग्विशेषाज्ञाने सति। **प्राणबाधादिभयेषु** चौरव्याघ्रादिकृतप्राणविनाशभयेषु ।। ५१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। छायायामिति। रात्रावहनि वा छायायां रात्रावन्धकारे** अहनि वा नीहाराद्यन्धकारे एतेषु, दिङ्मोहे सति तथा च वाय्वादिकृतप्राणविनाशसंशयेषु यथेष्टमुखो मूत्रपुरीषे **कुर्यात्** ।। ५१ ।।

**प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् ।।**
**प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ।। ५२ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** अस्यार्थवादः। ननु चोदङ्मुखस्य मेहनविधानात्पूर्वस्यामुदयाच्च सूर्यस्य कुतस्तदाभिमुख्यं भवेद्येन प्रतिसूर्यं निषिध्यते। अर्थवादोऽयम्; नान्तरिक्षे न दिवीतिवत्। अथवोदगयने उदीचीं दिशमाक्रमेत्। स्यात्संभवः प्रकृतविषयो वा प्रतिषेधः। प्रतिसन्ध्यमिति पठन्ति। तदयुक्तं, 'सन्ध्ययोश्च यथा दिवा'इत्यनुज्ञानाद्वेगधारणस्यात्यन्तनिषिद्धत्वात्। तस्मात्**प्रतिवातमिति** पठितव्यम्। पूर्वशेषोऽयं **मेहतः** शश्वंतस्ततसन्तो वा मेहतः पुरुषस्य मेहनाद्वा ।। ५२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रत्यग्नीत्या**दिना अग्न्यादीन् पृष्ठभागे कृत्वा मेहनं निषिद्धम्। प्रत्यग्निं अग्निप्रातिकूल्येन एवमुत्तरेषु। **द्विजो** ब्राह्मणः। प्रतिगुं गां पृष्ठे कृत्वा। क्वचित्प्रतिसन्ध्यमिति पाठः। तत्र सन्ध्योदये पूर्वतोऽस्तमये पश्चिमे भवतीति व्यवस्थया व्याख्या ।। ५२ ।।

(३) **कुल्लूकः। वाय्वग्निविप्रमित्य**नेन मेहतोऽग्न्यादीनां दर्शनं निषिद्धम्। अनेन त्वपश्यतोऽपि संमुखीनत्वं निषिध्यते। अग्निसूर्यचन्द्रजलब्राह्मणगोवाताभिमुखं मूत्रपुरीषे

कुर्वतः **प्रज्ञा नश्यति** तस्मादेतन्न कर्तव्यम्। **प्रतिवातमित्यस्य** स्थाने **प्रतिसंध्यमित्यन्ये** पठन्ति ।। ५२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** वाय्वग्निविप्रेत्युक्तं वाय्वादिदर्शननिषेधानुवादेन तत्करणे दोषमाह **प्रत्यग्निमिति।** प्रतिरत्र लक्षणे। **वातं** तृणादिसहितं वात्यारूपं तस्यैव दृष्टियोग्यत्वात् एतानभिमुखं कृत्वा **मेहतो** मूत्रपुरीषे समुत्सृजतः प्रज्ञा नश्यतीत्यन्वयः। **रोमोऽत्र** लता ।। ५२ ।।

(५) **नन्दनः।** एतदेव व्यतिरेकेणोपपादयति **प्रत्यग्निमिति।** अग्न्यादीनामाभिमुख्ये कथितो दोषो न तेषां तिरोभाव इत्यभिप्रायः। **मेहनमु**च्चारस्याप्युपलक्षणम् ।। ५२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। प्रतिगं** गोः अभिमुखं। **प्रतिवातं** वायोरभिमुखं। **मेहतः** मूत्रादि कुर्वतः। **प्रज्ञा** बु**द्धिर्नश्यति** ।। ५२ ।।

(७) **मणिरामः। प्रत्यग्नि** अग्निसंमुखं। एवं सर्वत्र ।। ५२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। प्रत्यग्निमिति।** अग्न्यादित्यसोमाम्भोब्राह्मणगोवाय्वभिमुखं, मूत्रपुरीषे कुर्वतः **प्रज्ञा नश्यति।** अत एव तन्न कर्तव्यमिति वाय्वग्निविप्रमित्यस्य फलकथनं सोमाभिमुखं च, अत एव निषेधसिद्धिः पूर्वत्रापठितत्वात् ।। ५२ ।।

**नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ।।**
**नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ।। ५३ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** धविलादिनाऽग्निर्ध्मातव्यः। **नग्नां नेक्षेत स्त्रियम्।** 'अन्यत्र मैथुनादिति' स्मृत्यन्तरम्। **नामेध्यम्।** मेध्यो यज्ञस्तदर्थं मेध्यम्। अमेध्यं यदयज्ञीयं पलाण्डुमूत्रपूरीषादि। **तन्नाग्नौ क्षिपेत्।** उत्क्षिप्य पादौ साक्षादग्नौ **न तापयेत्।** अवच्छाद्य तापयित्वा स्वेदाद्यर्थमग्नितापनमदोषः ।। ५३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। मुखेन** नलिकाद्यनन्तरितेन। **न नग्नां स्त्रियमीक्षेत** 'अन्यत्र मैथुनादि'ति गृह्यम्। **अमेध्यं** मललशुनादि ।। ५३ ।।

(३) **कुल्लूकः।** नाग्निर्मुखेन ध्मातव्यः। किं तर्हि? व्यजनादिना। **न नग्नां स्त्रियमीक्षेत** 'मैथुनादन्यत्रे'ति सांख्यायनदर्शनान्मैथुनव्यतिरेकेण नग्नां स्त्रियं न पश्येत्। **अमेध्यं** मूत्रपुरीषादिकं **नाग्नौ क्षिपेत्। नच पादौ प्रतापयेत्।** प्रशब्दादग्नौ पादावुत्क्षिप्य साक्षान्न प्रतापयेत्। वस्त्रादितापस्वेदेऽविरोधः ।। ५३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** प्रत्यग्निमिति प्रसंगेनाग्निविषये नियमान्तराण्याह **नाग्निमिति द्वाभ्यां।** व्यजनादिना ध्मातव्यो लौकिकाग्निः। वैदिकाग्निस्तु मुखेनैवेत्यर्थः। **स्त्रियमिति।** तत्रापि 'मैथुनादन्यत्रे'ति साङ्ख्यायनगृह्यदर्शनात्तदतिरिक्तकाले ।। ५३ ।।

(५) **नन्दनः। अग्निं** लौकिकाग्निं **श्रौताग्निं** चोपधमेत्। 'मुखाद्ध्येषोऽभिजायत इति वचनात्। **स्त्रियं** स्वभार्यां परभार्यां च। **अमेध्यमशुद्धं** वस्तु ।। ५३ ।।

(६) **रामचन्द्रः । अथाग्निविधिमाह नाग्निमिति ।** मुखेन नलिकाद्यमृते **अग्निं न धमेत्, अग्नौ पादौ न प्रतापयेत्** ।। ५३ ।।

(७) **मणिरामः । नोपधमेत् न** ध्मातव्यः किंतु व्यजनादिना । **'न नग्नां स्त्रियं' ईक्षेत** मैथुनादन्यत्र। 'न नग्नां स्त्रियमीक्षेत मैथुनादन्यत्रे'ति **सांख्यायनगृह्यात्** ।। ५३ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नाग्निमिति ।** मुखवायुनाऽग्निं न धमेत् । **'न नग्नां** परयोषित- **मीक्षेतेति'** गौतमस्मरणात् । मूत्रादि अग्नौ न निक्षिपेत् पादौ न तत्र **प्रतापयेत्** ।। ५३ ।।

**अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत् ।।**
**न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ।। ५४ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** खट्वास्थः अधस्तादग्निधानीं न कुर्यात् । उपधानं स्थानम् । 'अवलङ्घनम्' उत्प्लुत्य गमनम् । **पादतः** उत्प्लुतस्य पादौ येन तदुपरि स्यात्तथा न **कुर्यात् । प्राणाबाधं** प्राणपीडाकरमतिश्रमवेगागमनादि नाचरेत् ।। ५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अधस्तात्** स्वारूढखट्वादेः **नोपदध्यादग्निं अवलङ्घयेदधः** कृत्वा लङ्घयेत् । **प्राणाबाधं** रोगादिहेतुमत्यन्तायासादि ।। ५४ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** खट्वादिभ्योऽधस्तादङ्गारशकटयादिकं न कुर्यात् । न चाग्निमुत्प्लुत्य गच्छेत् । नच सुप्तः पाददेशेऽग्निं स्थापयेत् । नच प्राणपीडाकरं कर्म कुर्यात् ।। ५४ ।।

(४) **राघवानन्दः । अधः** खट्वादेः **नोपदध्यान्न** स्थापयेत् । **पादतः** पाददेशे । **प्राणाबाधं** प्राणिहिंसां न कुर्यात् । 'न हिंस्यात्सर्वा भूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्य' इति श्रुतेः अग्निसाध्यं प्राणिवधं वा प्रकरणात् ।। ५४ ।।

(५) **नन्दनः । पादतः** पादप्रसारणापदेशेन । **न प्राणाबाधमाचरेदा**त्मनः परस्य च पीडां न कुर्यात् ।। ५४ ।।

(६) **रामचन्द्रः । अधस्तान्नोपदध्यात्** पृष्ठस्याधस्तादग्निं न दध्यात् । **एनं अग्निं न लङ्घयेत् । अग्निं पादतः** पादस्याधस्तान्न कुर्यात् **न प्राणाबाधमाचरेत्** रोगादिहेतुभूतप्राण- बाधं **नाचरेत्** ।। ५४ ।।

(७) **मणिरामः । अधस्तान्नोपदध्यात्** खट्वादिभ्यः अधस्तात् अंगारशकट्या- दिकं न कुर्यात् । **पादतः ।** सुप्तः सन् पाददेशे **न कुर्यात् प्राणाबाधं** प्राणपीडाकरं कर्म **नाचरेत्** ।। ५४ ।।

(८) **गोविन्दराजः । अधस्तादिति ।** न चैनं पादतः कुर्यात् न प्राणिवधमाचरेत् । तथा च खट्वादिषु अग्निं अधस्तान्न स्थापयेत् । नाप्येनमुल्लंघयेत् । न च पाददेशतः कुर्यात् । प्राणिपीडाकरं च नाचरेत् ।। ५४ ।।

**नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ।।**
**न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोऽपहरेत्स्रजम् ।। ५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** सन्ध्याकालः **सन्धिवेला। संवेशनं** स्वापः। स्वाध्यायं निषेत्स्यति। स्मृत्यन्तरे स्त्रीसम्बन्धोऽपि प्रतिषिद्धः। "चत्वार्येव तु कर्माणि सन्ध्याकाले तु **वर्जयेत्**। आहारं मैथुनं निद्रां तथा संपाठमेव च ॥"

**न चैव प्रलिखेत्।** प्रकर्षेण लेखनं विदारणं भूमेर्निषिध्यते। न तु वर्तिकादिनाऽक्षरविन्यासः।

**नात्मनोपहरेत्स्रजम्।** ग्रथितानि पुष्पाणि 'स्रक्'। तां स्वयं कण्ठे शिरसि वा प्रधृतां म्लानतया गुरुत्वेन वाऽऽत्मनो न व्यपनयेत्। अर्थादन्येनापनयेदित्युक्तं भवति। सर्व एवायं सन्ध्यायां विधिरिति केचित् ॥ ५५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सन्धिः** सन्ध्या। **गच्छेद**ध्वानं। **संविशेत्** शयीत सन्ध्यायां। **प्रलिखेदु**त्किरेत् नान्यदपि **अपहरेत्** अपनयेत्। **आत्मनः** शिरस्तः **स्रजन्** ॥ ५५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** सन्ध्याकाले भोजनं ग्रामान्तरगमनं निद्रां च न कुर्यात्। नच रेखादिना **भूमिमु**ल्लिखेत्। नच मालां धृतां स्वयमेवापनयेत्, अर्थादन्येनाऽपनयेदित्युक्तम् ॥५५॥

(४) **राघवानन्दः।** भोजनादिनिषिद्धकालमाह सन्धिवेलायां त्रिसन्ध्यादौ **न गच्छेत्** स्त्रियमपि **न संविशेन्न**स्वपे**न्नोपहरेत्** स्वयमिति शेषः ॥ ५५ ॥

(५) **नन्दनः। नात्मनोऽपहरेत्स्रजमा**त्मार्थे स्रजं मालां स्वयं न हरेत् ॥ ५५ ॥

(६) **रामचन्द्रः। सन्धिवेलायां** सन्ध्यायां **नाश्नीयात्।** न भोजनं कुर्यात्, सन्ध्यायां **न गच्छेत्,** संध्यायां **न संविशेत्। भूमिं** पादनखेन नालिखेत्। **आत्मना** शिरसः स्रजं **नोपहरेत्** ॥ ५५ ॥

(७) **मणिरामः। न संविशेत्** न सुप्यात्। **न भूमिं** प्रलिखेत् रेखादिना **नात्मनोपहरेत्स्रजं** धृतां मालां न स्वयमेवाऽपनयेत् ॥ ५५ ॥

(८) **गोविन्दराजः। नाश्नीयादिति।** सन्ध्याकाले अशनगमनस्वापान् न कुर्यात्, **भूमिं** सर्वदा नखादिना **न लिखेत्।** मालां च शिरसः स्वयं नापनयेत् ॥ ५५ ॥

**नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ॥**
**अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः। लोहितं** रुधिरम्। **विषाणीति** बहुवचनं कृत्रिमाकृत्रिमभेदेन स्थावरजङ्गमभेदेन गरादिप्रकारभेदेन वा ॥ ५६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अमेध्यै**र्विष्ठादिभि**र्लिप्तं** काष्ठादि अन्यद्वा लशुनादि **लोहित**पदं मलान्तरलक्षणम्। **विषाणि** परैर्जलस्योदपानार्थम् ॥ ५६ ॥

(३) **कुल्लूकः। मूत्रं पुरीषं** श्लेष्माणं मूत्राद्य**मेध्यलिप्त**वस्त्र**मन्यद्वा** भुक्तोच्छिष्टाद्यमेध्यं रुधिरं **विषाणि** च कृत्रिमाकृत्रिमभेदभिन्नानि न जले प्रक्षिपेत् ॥ ५६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'आपो वै सर्वा देवता' (ना. प. ३।७७) इति श्रुतेस्तामाश्रित्याप्सु मूत्रादिसप्तकं न कार्यमित्याह **नेति**। **निष्ठीवनं** मुखरसं श्लेष्माणं वा **अमेध्यलिप्तं** वस्त्रादि **अन्यत्** भुक्तोच्छिष्टादि ।। ५६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अप्सु** जलमध्ये **मूत्रादिकं न समुत्सृजेत्**। **अमेध्यं** विष्ठादिलिप्तं **लोहितं** रुधिरं **विषाणि** वा अप्सु न क्षिपेत् ।। ५६ ।।

(७) **मणिरामः**। अमेध्यलिप्तं अमेध्ययुक्तं वस्त्रादि **अन्यद्वा** भुक्तोच्छिष्टादेः। **लोहितं** रुधिरं। **विषाणि** कृत्रिमाकृत्रिमभेदभिन्नानि जले न प्रक्षिपेत् ।। ५६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **नाप्स्विति**। मूत्रपुरीषश्लेष्मामेध्यलिप्तरुधिरविषाणि उदके न क्षिपेत् ।। ५६ ।।

**नैकः शून्यगृहे स्वप्यान्न श्रेयांसं प्रबोधयेत् ।।**
**नोदक्ययाऽभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ।। ५७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। शून्यं गृहं यत्र न कश्चित्प्रतिवसति। **न श्रेयांसम्**: कनीयान्वृत्तादिभिर्ज्येष्ठम् 'इदं ते युक्तमिदमयुक्तमिति' हेतूपदेशादिना **न प्रबोधयेत्**। **उदक्या** रजस्वला तया सह संभाषणं न कुर्यात्। **यज्ञं गच्छेन्न चावृतः**। यज्ञभूमिमनिमन्त्रितो न गच्छेत्। "दर्शनाय तु कामम्" इति **गौतमः** (अ० ९ सू० ५५)। अतो यज्ञे भोजनादिप्रतिषेधोऽयमवृतस्य ।। ५७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **श्रेयांसं** स्वतो ज्येष्ठं निद्राणं न **बोधयेत्**। शयानमिति क्वचित्पाठः। तत्र यं कंचिन्निद्राणमित्यर्थः। **अवृतो** यजमानेनानामन्त्रितः प्रसर्पकदक्षिणादिलोभेन न गच्छेत्। अत्र 'धर्मदर्शनाय तु कामं गच्छेदिति' **गौतमः** ।। ५७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। उत्सन्नजनवासगेहे **नैकः** शयीत। वित्तविद्यादिभिरधिकं च सुप्तं **न प्रबोधयेत्**। रजस्वलया संभाषणं न कुर्यात्। **यज्ञं** चाकृतवरणोऽनृत्विङ् न गच्छेत्, दर्शनायेच्छया गच्छेत्। 'दर्शनार्थं तु काम'मिति **गौतमवचनात्** ।। ५७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। 'दुर्भिषज्यं ह्यस्मै भवति यमेष न प्रतिपद्यत' (बृह. ४।३।१४) इति श्रुतेः। **यमिति**। यमिन्द्रियदेशं न प्रतिपद्यत आत्मा तद्दुश्चिकित्सं भवतीति श्रुतेरर्थोऽतः **शयानं न प्रबोधयेत्** 'मलवद्वाससा न संवदे'दिति श्रुतिमाश्रित्याह **नोदक्ययेति**। उदक्यया रजस्वलया ऋत्विक् सन् **अवृतोऽ**नाहूतः अध्वरं न **गच्छेत्** ।। ५७ ।।

(५) **नन्दनः**। **श्रेयांसं** पूज्यं सुप्तमनापदि **न प्रबोधयेत्**। **न यज्ञमप्रयतो** व्रजेत् आर्त्विज्यमकरिष्यन्न **वृतो** यज्ञशालां **न गच्छेत्** ।। ५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **शयानं** श्रेयांसं श्रेष्ठं वयोधिकं **न प्रबोधयेत् उदक्यया** रजस्वलया **नाभिभाषेत**। **आवृतः** बहुवस्त्राणि परिधाय **यज्ञं न गच्छेत्** ।। ५७ ।।

(७) **मणिरामः**। **उदक्यया** रजस्वलया, **न चावृतः** अकृतवरणः। दर्शनार्थं तु गच्छेत्। 'दर्शनार्थं तु कामम'िति **गौतमस्मरणात्** ।। ५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नैकः स्वप्यादिति ।** उद्वासितगृहे **एको** न शयीत वित्ताद्यभ्यधिकं सुप्तं च **न प्रबोधयेत् ।** रजस्वलया सह संभाषणं न कुर्यात् । **यज्ञं** चाकृतवरणं ऋत्विक् **न गच्छेत्** । 'दर्शनार्थं तु कामं' इति **गौतमः** ।। ५७ ।।

**अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।।**
**स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ।। ५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** **गोष्ठ**शब्दोऽयं निवासवचनः, समासप्रतिरूपकात् शब्दान्तरात् । **ब्राह्मणाना**मिति बहुवचनं विवक्षितम् । **पाणि**ग्रहणं बाहूपलक्षणार्थम् । **भोजने** आत्मकर्तृके ।। ५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । गवां गोष्ठ** इति गोष्ठपदस्य समुदायमात्रार्थतामभिप्रेत्य गवामिति विशेषणम् । **उद्धरेत्** उत्तरीयाद्बहिः **पाणिं** हस्तं कुर्यात् ।। ५८ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** अग्निगृहे गवां निवासे ब्राह्मणानां गवां समीपे स्वाध्यायभोजनकालयोश्च **दक्षिणपाणिं** सबाहुं वासस **उद्धरेद्**बहिष्कुर्यात् ।। ५८ ।।

(४) **राघवानन्दः । किंचाग्नीति ।** अग्न्यागारादिपञ्चसु **पाणिमुद्धरेत्** वस्त्रादेर्बहिष्कुर्यात् ।। ५८ ।।

(५) **नन्दनः । दक्षिणं बाहुमुद्धरे**द्यज्ञोपवीती स्यादित्यर्थः । '**दक्षिणं बाहुमुद्धरते**ऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीत'मिति हि श्रूयते ।। ५८ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** अग्न्यागारादिस्थाने **दक्षिणपाणिं** उत्तरीयाद्बहिः **उद्धरेत्** ।। ५८ ।।

(७) **मणिरामः । अग्न्यगार इति** ।।५८।।

(८) **गोविन्दराजः । अग्न्यगार इति ।** अग्निशालायां **गवां गोष्ठे** निवासे ब्राह्मणसमीपे स्वाध्यायभोजनकालयोः **दक्षिणं पाणिं** आबाहोर्वासस **उद्धरेत्** ।। ५८ ।।

**न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ।।**
**न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ।। ५९ ।।**

(१) **मेधातिथिः । गामा**त्मीयां परकीयां वा पिबन्तीं अपः पयो वा **न वारयेत्** । न चान्यस्मै कथयेत् । प्राग्दोहकालादयं विधिः । दोहकाले तु प्रस्नवणं विहितम् । स्त्रीलिंगनिर्देशात्पुंवत्सनिवारणे न निषेधः । **इन्द्रायुधं** शक्रधनुर्विज्ञानच्छायेति या काश्मीरेषु कथ्यते । **दिवी**त्यनुवादः । केचित्तु पर्वतादिस्थस्य दर्शने न दोष इत्याहुस्तदर्थं **दिवीति** ।। ५९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । गां धयन्तीं** जलं पिबन्तीम् ।। ५९ ।।

(३) **कुल्लूकः । गां** जलं क्षीरं वा **पिबन्तीं** न **निवारयेत्** दोहनार्थं वारणादन्यत्र निषेधः । नापि परकीयक्षीरादि पिबन्तीं तस्य कथयेत् । न **चेन्द्रधनुराकाशे दृष्ट्वा** निषिद्धदर्शनदोषज्ञः **कस्यचिद्दर्शयेत्** ।। ५९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच नेति। **धयन्तीं** वत्सं पाययन्तीं **नाचक्षीत** न कथयेत्। **इन्द्रायुधं** शक्रायुधं **दिवीति** व्यर्थम् ॥ ५९ ॥

(५) **नन्दनः**। धयन्तीं पिबन्तीं जलं स्तन्यं च। दिवीति विशेषणाज्जले न दोष इति सूचितम् ॥ ५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। धयन्तीं पिबन्तीं **गां न निवारयेत् न चाचक्षीत** न प्रकथयेत् ॥ ५९॥

(७) **मणिरामः**। **धयन्तीं** पिबन्तीम् ॥ ५९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। न **वारयेदिति**। **गां** पिबन्तीं न निवर्तयेत्। नापि परकीयां क्षीरादि पिबन्तीं तस्य कथयेत्। नच द्युलोके **इन्द्रधनुर्दृष्ट्वा** शास्त्रज्ञोऽन्यस्य **दर्शयेत्** ॥ ५९॥

**नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ॥**
**नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अधार्मिकाः पातकोपपातकिनो यत्र बाहुल्येन वसन्ति स ग्रामस्तत्सम्बन्धात् **अधार्मिक** इत्युच्यते। तत्र न वसेत्। ग्रामग्रहणं निवासादेशोपलक्षणार्थम्। तेन नगरेऽपि प्रतिषेधः। **व्याधिबहुलो**ऽनूपो देशः। **व्याधिबहुले** जाङ्गलदेशे न **वसेत्**। यत्र दैवदोषाद्व्याधयः प्रवृत्तास्तं देशं त्यजेत्। **एकः** असहायो **नाध्वानं प्रपद्येत** ॥ ६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अधार्मिके** धर्मविरोधिनि कलिङ्गादिदेशमध्ये। **प्रपद्येत** संचरेत् ॥ ६० ॥

(३) **कुल्लूकः**। **अधार्मिक** इत्यनेन यत्राधार्मिका वसन्ति न तत्र वासो युक्तः। यत्र वा निन्दितदुश्चिकित्सितव्याधिपीडिता बह्वो जनास्तत्र **भृशम**त्यर्थं वासो न युक्तः। पन्थानमेकः कदापि न गच्छेत्। **पर्वते** च दीर्घकालं न **वसेत्** ॥ ६० ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'न जनमियान्नान्तमिया'दिति श्रुतिमाश्रित्याह **नाधार्मिक** इति द्वाभ्यां। **ग्राम** इति वसतियोग्यपरं कार्यवशाद्**व्याधिबहुले भृशं** बहुकालम् ॥ ६० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अधार्मिके** देशे अङ्गवङ्गादिदेशे **न वसेत्** ॥ ६० ॥

(७) **मणिरामः**। **नेति** ॥ ६० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नाधार्मिक इति**। अधर्मबहुलजनग्रामादौ अत्यर्थं व्याधिबहुले **न वसेत्**। **एकश्चाध्वानं** न यायात्। **पर्वते** च दीर्घकालं न तिष्ठेत् ॥ ६० ॥

**न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ॥**
**न पाषण्डिगणाक्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। जनपदैश्वर्यं 'राज्यम्'। योजनपदः शूद्रवशवर्ती तत्र न वसेत्। मन्त्रिसेनापतिदण्डकारिकाद्याः सप्त प्रकृतयो 'राज्यम्'। यत्र सर्वाः शूद्रजातीयाः तत्र निवासनिषेधोऽयम्।

"ननु च 'नाधार्मिके वसेत्' इत्यनेनैव तत्सिद्धमधार्मिकजनावृत इति'। नैष दोषः। पूर्वप्रतिषेधो यत्र ते निवसन्ति। अयं पुनरन्यत्रापि निवसन्तोऽन्यत्र सन्निहिता यदि भवन्ति तथापि तत्र प्रदेशे न वसितव्यम्। तथा च 'आवृत'ग्रहणमत्र। यः प्रदेश एतैरावृतो न तत्र स्थातव्यम्। एवं पाषण्डिजनैर्य आक्रान्तो देशः। यद्यप्यधार्मिकास्ते वेदबाह्यत्वात्तथापि तेषां धर्मबुद्धिरिति भेदेन निर्देशः।

अन्त्यैरुपसृष्टे सम्बद्धे। अथवा उपजप्ते उपसृष्टे। यथा बाह्लीका म्लेच्छैः॥ ६१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अधार्मिकजनैः** पतितादिभिरावृते। **उपसृष्टे** संमिश्रिते॥६१॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्र देशे शूद्रो राजा तत्र **न वसेत्**। अधार्मिकजनैश्च बाह्यतः परिवृते ग्रामादौ न वसेदित्यपुनरुक्तिः। पाषण्डिभिश्च वेदबाह्यलिङ्गधारिभिर्वशीकृते चाण्डालादिभिश्चान्त्यजैरुपद्रुते न वसेत्॥ ६१॥

(४) **राघवानन्दः**। **अधार्मिकाश्चण्डालाद्यास्तैर्बाह्याभ्यन्तरतः सर्वदाऽऽवृते। पाखण्डा** अवैदिकव्रतस्थास्तैराक्रान्ते तत्र धर्मस्य कर्तुमशक्यत्वात्। **उपसृष्टमन्तरान्तरा** प्रवेशोऽन्त्यजकृतो यत्र तस्मिन् जनमधार्मिकमियात् नान्तं तैराक्रान्तं देशं च नेयान्न गच्छेदिति श्रुतेरर्थः॥ ६१॥

(५) **नन्दनः**। क्षत्रियराज्येऽपि **नाधार्मिकजनावृते। उपसृष्टे** आवासिते उपद्रुते वा॥ ६१॥

(६) **रामचन्द्रः**। पाषण्डिजनैराक्रान्ते आकीर्णे **न वसेत्**। अन्त्यजैर्नृभिः सह **उपसृष्टे** मिलिते **न वसेत्**॥ ६१॥

(७) **मणिरामः**। **नाऽधार्मिकजनावृते**। अधार्मिकजनैश्च बाह्यतः परिवृते ग्रामादौ न वसेत्। **उपसृष्टे** उपद्रुते॥ ६१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **न शूद्रराज्य इति। शूद्रराज्यके** देशे अधार्मिकजनैश्च बाह्यतः परिवृते श्रुत्यादिबाह्यलिङ्गधारिभिश्च वशीकृते चण्डालादिभिश्चोपद्रुते न निवसेत्॥ ६१॥

**न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत्॥**
**नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः॥ ६२॥**

(१) **मेधातिथिः**। उपनीतः स्नेहो यस्य स नाशितव्यः। पिण्याकयूषमांसानि। तस्य ऋतुपर्युषितानां च पयोविकाराणां प्रतिप्रसवं करिष्यति (५। २४-२५)। तक्रकिलाटाद्यपेक्षयैव बहुवचनम्। साक्षाद्विकारो हि दध्येव। तन्मात्रप्रतिप्रसवेऽभिप्रेते दधिग्रहणमेवाकरिष्यत्। तेनाविधानार्थः। न हि दध्नः पर्युषितत्वमस्ति। तस्मादुदश्वित्तक्रकिलाटादिकानां पयोविकाराणां नायं प्रतिषेधः।

**नातिसौहित्यं** तृप्तिं न कुर्यात्। तत्र कुक्षेर्भाग एको ह्यन्नस्य, अपरो हि द्रवस्योदकादेः, अपरो दोषसंचरणार्थ इत्येवं भोक्तव्यमिति—तत्कार्यम्। **अतिप्रगे** प्राह्णे प्रथमोदित एव सूर्ये न भुञ्जीत। प्रहरे अतीते—कृशानां पूर्वाह्णे, इतरेषां मध्याह्ने। **नातिसायं** अस्तमय-

समये न भुञ्जीत। **न सायं** भुञ्जीत **प्रातराशितस्तृप्तः।** तस्मात्साकांक्षमशितव्यं कालद्वयेऽपि। तदुक्तम् "सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम्" इति। यदि तु प्रातस्तृप्तः स्यात्सायं न भुञ्जीत।

अथवैवं व्याख्यायते। **न सायं प्रातराशितः** स्यात्, उभयोरन्नकालयोर्न तृप्येत्। तथा **याज्ञवल्क्यः** (१।११४) सायमीषद्भोजनमाह ॥ ६२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **उद्धृतस्नेहं** पिण्याकादितक्रे तु वचनाददोषः। **अतिसौहित्य**मत्यशनं। **नातिप्रगे** नातिप्रातः सङ्गवे **नातिसाय**मस्तमयानन्तरं। यदि **प्रातराशितो** भुक्तवांस्तदा **नातिसायं** सायमेव भुञ्जीत ॥ ६२ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **उद्धृतस्नेहं** पिण्याकादि न भुञ्जीत। अतितृप्तिं वारद्वयेऽपि न कुर्यात्। "जठरं पूरयेदर्धमन्नैर्भागं जलेन च। वायोः संचरणार्थं तु चतुर्थमवशेषयेदि"ति **विष्णुपुराण**वचनात्। सूर्योदयकाले सूर्यास्तमये भोजनं न कुर्यात्। **प्रातराशितोऽ**तितृप्तः **सायं न भुञ्जीत** ॥ ६२ ॥

(४) **राघवानन्दः।** भोजनस्यापि रागप्राप्तत्वेन तदाश्रित्य तद्विशेषं निषेधति **न भुञ्जीतेति।** **उद्धृतस्नेहं** तिलपिण्याकादि। **सौहित्यं** सुहिततामतीव स्निग्धताम्। 'जठरं पूरयेदर्धमन्नैर्भागं जलेन तु। वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेदि'ति पुराणोक्तेः। **प्रगे** प्रातः **प्रातराशितः** अतितृप्तः **सायं न भुञ्जीत** ॥ ६२ ॥

(५) **नन्दनः।** **उद्धृतस्नेहं** पिण्याकादि। **अतिसौहित्य**मत्यन्तसंपन्नभोजनम्। **अतिप्रगे**ऽपररात्रे। **अतिसायं** अर्धरात्रे। **न सायं प्रातराशितो** रात्रावह्नि वा द्विर्न भुञ्जीतेत्यर्थः ॥ ६२ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **उद्धृतस्नेहं** उद्धृतसारं न **भुञ्जीत।** **अतिसौहित्यं** अत्यशनं नाचरेत्। **अतिप्रगे** सङ्गवे **न भुञ्जीत** **नातिसायं** नक्षत्रदर्शनपर्यन्तं न भुञ्जीत। प्रातर्भुक्त्वा न सायं भुञ्जीत। सायंकालादनन्तरं भुञ्जीतेत्यर्थः ॥ ६२ ॥

(७) **मणिरामः।** **उद्धृतस्नेहं** पिण्याकादि। **अतिसौहित्यं** अतितृप्तिं। **नातिप्रगे** सूर्योदयसंनिधौ। **नातिसायं** महानिशायां। **प्रातराशितः** प्रातर्भोजनेनैव तृप्तः सायं पुनर्भोजनं कुर्यात् ॥ ६२ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **न भुञ्जीतेति।** **उद्धृतस्नेहं** पिण्याकादि **न भुञ्जीत।** तृप्तिं च नाचरेत्। अतिप्रातः दिनान्ते न भुंजीत। सायं प्रातश्च न तृप्तः स्यात्। अपितु एकस्मिन् काले तृप्तोऽपरस्मिन् साकाङ्क्षमश्नीयात् ॥ ६२ ॥

**न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ॥**
**नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **वृथाचेष्टा** दृष्टादृष्टयोर्व्यापारयोरनुपकारः। यथा इतरदेशादिवार्तापरत्वम्। संहतौ पाणी **अञ्जलिः।** तेनोदकं **न पिबेत्।** वारिग्रहणात् क्षीरादीनामप्रतिषेधः।

**न उत्संगे । भक्ष्या** धानाशष्कुल्यादयः—तानुत्सङ्ग ऊर्वोरुपरि (निधाय) न **भक्षयेत्** । भक्ष्यग्रहणात्फलानामपि प्रतिषेधः । सक्तवोदनादेस्तु निरुपसेचनीयस्यानदनीयत्वादुत्सङ्गे प्राप्तिरेव नास्ति । **कुतूहलं** असति प्रयोजने किमेतत्स्यादिति निश्चये अत्यर्थमुत्कलिका । **न जातु** कदाचित् ॥६३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । वृथाचेष्टां** वृथाटनादि । **उत्सङ्गे** उत्सङ्गस्थान् । **कुतूहली** सर्वत्राश्चर्यप्रत्ययवान् ॥ ६३ ॥

(३) **कुल्लूकः ।** दृष्टादृष्टार्थशून्यं व्यापारं न कुर्यात् । **अञ्जलिना** च जलं **न पिबेत्** ऊर्वोरुपरि विन्यस्य मोदकादीन्न भक्षयेत् । असति प्रयोजने किमेतदिति जिज्ञासा कुतूहलं तन्न कदाचित् कुर्यात् ॥ ६३ ॥

(४) **राघवानन्दः । किंच नेति । वृथा** दृष्टादृष्टादिशून्यां सरटदन्तान्वेषणादिवद्राजादिजिज्ञासया कुतूहली न स्यात् । **उत्सङ्गे** क्रोडे स्थापयित्वेति ॥ ६३ ॥

(५) **नन्दनः । उत्सङ्गे** निधायेति शेषः ॥ ६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः । वृथाचेष्टा** दृष्टादृष्टयोः व्यापारयोरनुपकारः **न कुर्वीत । जातु** कदाचिदपि **कुतूहली** परिहासी **न भवेत्** ॥ ६३ ॥

(७) **मणिरामः । वृथाचेष्टां** दृष्टादृष्टार्थशून्यव्यापारां **उत्संगे ।** ऊर्वोरुपरि धृत्वा भक्ष्यान् मोदकादीन् । **न जातु स्यात्कुतूहली** असति प्रयोजने किमेतदिति जिज्ञासाकुतूहलं न कुर्यात् ॥ ६३ ॥

(८) **गोविन्दराजः । न कुर्वीतेति ।** दृष्टादृष्टानुपकारफलं व्यापारं न कुर्यात् । उदकं **चाञ्जलिना न पिबेत् ।** ऊर्वोश्चोपरि विन्यस्य मोदकानि **न भक्षयेत् ।** निष्प्रयोजनं च किमेतत्स्यादिति कुतूहलपरो न कदाचित् स्यात् ॥ ६३ ॥

**न नृत्यन्नैव गायेच्च न वादित्राणि वादयेत् ॥**
**नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरोधयेत् ॥ ६४ ॥**

(१) **मेधातिथिः । नर्तनं** गात्रविक्षेपविशेषः लोकप्रसिद्ध एव । **गायनं** षड्जादिस्वरतः शब्दस्य करणम् । लौकिकस्य चायं प्रतिषेधो न वैदिकस्य, विहितत्वात् । **वादित्राणि** वीणावंशमृदङ्गादीनि तेषां स्वयंकर्तृकं वादनं प्रतिषिध्यते । वादकैस्तु वाद्यमानानामप्रतिषेधः । न हि ण्यन्तादयं णिजन्त इति प्रमाणमस्ति । **आस्फोटनं** करमर्दास्फोटनादि पाणिना भूमौ बहुनिर्घातः सशब्दः । **क्ष्वेडेति ।** अव्यक्तं दन्तैः शब्दकरणं—क्ष्वेडनिकेति प्रसिद्धा । वल्गनं अन्यत् । रागी परितुष्टे न **विरोधयेत्** विरोधं न कुर्यात् । पीडिते न निषेधः । घञन्ताण्णिच् कर्तव्यः ॥ ६४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । आस्फोटयेदं**सताडनेन शब्दं कुर्यात् । **क्ष्वेडेत्** सिंहनादं न कुर्यात् । **रक्तो** रागोद्रेकात् **विरावयेत्** विकृतं शब्दं कुर्यात् । स्वार्थे णिच् । रक्तोऽपि रागयेदिति क्वचित्पाठः । तत्र स्वयं यत्र रक्तस्तत्रान्यमपि रागिणं न कुर्यादित्यर्थः ॥ ६४ ॥

(३) **कुल्लूकः।** अशास्त्रीयाणि नृत्यगीतवाद्यानि नाचरेत्। पाणिना बाह्वौ ध्वनिरूपमास्फोटनं न कुर्यात्, अव्यक्तदन्तशब्दात्मकं क्ष्वेडनं न कुर्यात्। न च सानुरागो रासभादिरावं कुर्यात्॥ ६४॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच शास्त्राप्रतिपादितानि नृत्यादीनि नाचरेदित्याह **न नृत्येदिति।** पाणिना बाहुपर्वणि स्फोटनं क्ष्वेडनं अव्यक्तदन्तशब्दात्मकं विषादिभिर्वा क्रीडा तन्न कुर्यादित्यर्थः। विरावोऽत्र रासभादिशब्दस्तं न कुर्यादित्यर्थः॥ ६४॥

(५) **नन्दनः।** स्फोटोऽङ्गुलिपर्वभङ्गजातः शब्दः। क्ष्वेडोऽङ्गुल्यास्यसंयोगजातः। संरक्तोऽपि कामपरवशोऽपि मैथुनादिषु न रावयेत् कपोतकूजितादिशब्दं कुर्यात्॥ ६४॥

(६) **रामचन्द्रः।** **च** पुनः **न** क्ष्वेडेत् अव्यक्तशब्दकरणं न क्रीडेत्। च पुनः रक्तः स्त्रिया सह विकृतशब्दं **न रावयेत्**॥ ६४॥

(७) **मणिरामः।** **आस्फोटयेत्।** न पाणिना बाह्वौ ध्वनिं कुर्यात्। **न च क्ष्वेडेत्।** अव्यक्तदंतशब्दः क्ष्वेडः तन्न कुर्यात्। **न च रक्तो विरावयेत्** सूच्यादिना रक्तस्रावं न कारयेत्॥ ६४॥

(८) **गोविन्दराजः।** **न नृत्येदिति।** अशास्त्रीयाणि नृत्यगीतवाद्यानि न कुर्यात्। पाणिना बाहुं नाभिहन्यात्। अव्यक्तदन्तध्वनिं न कुर्यात् च हर्षितः सन् खरविरावं न कुर्यात्॥ ६४॥

**न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने॥**
**न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते॥ ६५॥**

(१) **मेधातिथिः।** **कांस्ये भाजने पादौ न** प्रक्षालयेत्। **भिन्नभाण्डे** एकदेशभिन्नेऽपि। सर्वभिन्नेष्वर्थत एव प्रतिषेधः। पत्रपुटकादीनां तु भिन्नभाण्डाव्यवहारात् छिद्रितानामपि न दोषः। **भावः** अन्तर्हृदयाभिप्रायः। अत्र मनो न परितुष्यति। शब्ददुष्टे वा पतद्ग्रहादौ। तत्रापि नैवं भावप्रसादो भवति॥ ६५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **कांस्ये** कांस्यमये **पात्रे भिन्ने भाण्डे** कांस्ये मार्तिके दारवे वा। भावतो **दूषिते** दुष्टत्वशङ्कास्पदे॥ ६५॥

(३) **कुल्लूकः।** **कांस्यपात्रे** कदाचित्**पादौ न** प्रक्षालयेत् 'ताम्ररजतसुवर्णानां भिन्नमभिन्नं वेति न दोष' इति **पैठीनसि**वचनादेतद्व्यतिरिक्तभिन्नभाण्डे न भोजनं कुर्यात्। यत्र मनो विचिकित्सति तद्भावदुष्टं न तत्र भुञ्जीत॥ ६५॥

(४) **राघवानन्दः।** **धावयेत्**प्रक्षालयेत् **भाजने** भोजनपात्र इति स्वतन्त्रं वा। 'ताम्ररजतसुवर्णानां भिन्नमभिन्नं वेति न दोष' इति **पैठीनसि**वचनात्तदतिरिक्तपरं भिन्नभाण्ड इति। यत्र मनोविचिकित्सति **तद्भावदुष्टं** तत्रापि नाद्यात्॥ ६५॥

(५) **नन्दनः।** **भावप्रतिदूषिते** अहृद्ये भाण्डे॥ ६५॥

(६) **रामचन्द्रः।** **भिन्नभाण्डे** स्फुटितकांस्यभाजने **न भुञ्जीत। भावप्रतिदूषिते** भाण्डे न भुञ्जीत ॥ ६५ ॥

(७) **मणिरामः।** **भिन्नभाण्डे** ताम्ररजतसुवर्णातिरिक्तभिन्नभाण्डे। **पैठीनसिना** तथोक्तत्वात्। **न भावप्रतिदूषिते।** यत्र मनो विचिकित्सति तद्भावदुष्टं तस्मिन्न भुंजीत ॥ ६५ ॥

(८) **गोविन्दराजः। न पादाविति।** कांस्यपात्रे न कदाचिदपि पादौ प्रक्षालयेत्। "ताम्ररजतसुवर्णानां भिन्नमभिन्नं च" इति **पैठीनसिस्मरणात्** ततोऽन्यत्र भिन्नभाजने नाभि-**भुञ्जीत** नापि हृल्लेखोत्पादके ॥ ६५ ॥

**उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥**
**उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ॥ ६६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** पित्रादिभ्योऽन्यैर्धृतं न धारयेत्। 'निर्णिज्याशक्ताविति' **गौतमः** (अ० ९ सू० ७)। **करकः** कमण्डलुस्तस्य पित्रादिधृतस्यापि धारणं समाचारविरुद्धम्। सम्बन्धिरूपोऽसाविष्यते। यस्य सम्बन्धी तस्यैव शुचिर्नान्यस्य। **अलङ्कारो** दन्तवलयादिः। करकादिभिरल्पार्थैः साहचर्यात् मणिमुक्तादेस्तु न निषेध इति केचित् ॥ ६६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। करकं** मृन्मयमण्डलुं। **धृतं** परिगृहीतम् ॥ ६६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** उपानद्वस्त्रयज्ञोपवीतालङ्कारपुष्पमालाकमण्डलून्परोपभुक्तान्न **धारयेत्** ॥ ६६ ॥

(४) **राघवानन्दः। किंचोपेति। करकं** कमण्डलुं 'जायापत्यं कमण्डलु'रिति स्मृतेः। उपवीतादिषट्कमन्यैः **धृतमुपभुक्तं न धारयेदित्यर्थः** ॥ ६६ ॥

(५) **नन्दनः। करकं** कमण्डलुम् ॥ ६६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। च** पुनः करकमेव अन्यस्य जलपात्रं **न धारयेत्** ॥ ६६ ॥

(७) **मणिरामः। करकं** कमण्डलुं ॥ ६६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। उपानहाविति।** उपानद्वस्त्रयज्ञोपवीताभरणमाल्यकमण्डलून् अन्योपयुक्तान् **न धारयेत्** ॥ ६६ ॥

**नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः ॥**
**न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥**

(१) **मेधातिथिः। अविनीता** अदान्ता गावोऽश्वाश्वतरादयः। **धुर्या** धुरं वहन्ति युज्यन्ते। गन्त्यादेरुपलक्षणम्। **चग्रहणम्,** अनियुक्तैरपि धुरि, केवलैरदान्तैः गमनं नेष्यते। **भग्नं शृङ्गं** यस्य अनडुहः, तस्यैव शृङ्गसम्भवः, नाश्वादेः। **वालधिः** पुच्छस्तेन **विरूपिताः** छिन्नपुच्छादयः। तादृशेन न यायात्। आरोहणमेव स्मृत्यन्तरे प्रतिषिद्धम् ॥ ६७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धुर्यैः शकटादिवाहकैः। गवादिभिर**विनीतै**रदान्तैः **क्षुत्पीडितै**र्व्याधिपीडितैश्च **वालधिभिः** पुच्छैः विरूपितैश्छेदादिना ॥ ६७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अश्वगजादिभिर्वाहनैरदमितैः क्षुधा व्याधिना च पीडितै**र्भिन्नशृङ्गाक्षिखुरै**श्छिन्नवालधिभिश्च न यायात् ॥ ६७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत्। धुर्यैरश्वादिभिरदमितैर्न गच्छेत्। **वालधिविरूपितैः** वालधिः पुच्छं तच्छून्यैः ॥ ६७ ॥

(५) **नन्दनः**। **धुर्यै**र्बलीवर्दादिभिस्तद्युक्तैर्वा यानैः **क्षुद्व्याधिपीडितैः** क्षुत्पीडितैर्व्याधिपीडितैर्वा। **वालधिविरूपितै**श्छिन्नैरित्यर्थः ॥ ६७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अविनीतैः** धुर्यैः अश्वैर्वा वृषैर्वा **न व्रजेत्**। **च** पुनः **क्षुद्व्याधिपीडितैः** न व्रजेत् ॥ ६७ ॥

(७) **मणिरामः**। **न वालधिविरूपितैः** छिन्नपुच्छैः ॥ ६७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नाविनीतैरिति**। अश्ववृषभादिभिः गन्त्र्यादिधुर्वहनविनियुक्तैरदान्तैः बुभुक्षाव्याध्यार्तियुक्तैः भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैः छिन्नपुच्छैः न यायात् ॥ ६७ ॥

**विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः ॥**
**वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनाक्षिपन्भृशम् ॥ ६८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। दृप्यमाना अपि केचिद्विनयं न संगृह्णन्ति, तदर्थमाह **विनीतैरिति**। सुशिक्षितैः। **आशुगैः** क्षिप्रगामिभिः। **लक्षणान्वितैः** प्रशस्तावर्तादियुक्तैः, न शून्यमस्तकादिभिः। वर्णरूपयुक्तैः। शोभनेन 'वर्णेन', रुक्मशोणादिना, 'रूपेण' संस्थानविशेषेण। शोभनत्वं च लक्षणविद्यातो ज्ञातव्यम्। **भृशमक्षिपन्** अपीडयन्। पुनः पुनः **प्रतोदेन** अङ्कुशादिना अत्यन्तं उद्वेक्ष्यमाणा विघटयन्ति ॥ ६८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वर्णो**ऽश्वादिशास्त्रे कथितः शुक्लादिः। एवं **रूप**माकारभेदः। **भृश**मतिशयेनातुदन्नव्यथयन् ॥ ६८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दमितैः शीघ्रगामिभिः शुभसूचकलक्षणोपेतैः शोभनवर्णैर्मनोज्ञाकृतिभिः प्रतोदेनात्यर्थमपीडयन्गच्छेत् ॥ ६८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। योग्यानाह **विनीतैरिति**। **लक्षणान्वितैः** लक्षणानि वाहगुणाः। **शीघ्रगैः**। **प्रतोदेन** सूक्ष्मलोहाग्रदण्डेन **तुदन्** व्यथयन् ॥ ६८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्रतोदेन प्रतुदन् आशुगैः**। शीघ्रगैरित्यर्थः ॥ ६८ ॥

(७) **मणिरामः**। **भृशं** अत्यर्थं **प्रतोदेन**। **अर्दयन्** पीडयन् ॥ ६८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विनीतैरिति**। सुशिक्षितैः पुनः क्षिप्रगामिभिः देवमण्याद्यावर्तादियुक्तैः ककुदादिशून्यैः शोणादिवर्ण**संपन्नैः** स्वाकृतिभिः **प्रतोदेना**त्यर्थमव्यथयन् **व्रजेत्** ॥ ६८ ॥

**बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथाऽऽसनम् ।।**
**न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ।। ६९ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** प्रथमोदिते सवितरि मुहूर्तत्रयं **बालातपव्यपदेशः । प्रेतधूमो** दह्यमानस्य शवस्य यः, **आसनं** छिन्नं छिद्रितं भग्नम्, एतद्वर्ज्यम् । **नखानि रोमाणि च न च्छिन्द्यात्**स्वयं व्यसनेन, अतिप्रवृद्धानि तु नापितेन कारयेत् । **दन्तैश्च नखान्नोत्पाटयेत्** प्रवृद्धानपि । अन्ये त्वेवमभिसम्बध्नन्ति–**न छिन्द्यान्नखरोमाणि दन्तैरिति** । नखांश्च दन्तेनापि न पातयेत् । नखभङ्गयोजनासु हि कामिन्यो नानानखान् दारयन्ति ।। ६९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । बालातपः** सङ्गवकालातपः । शरदि पुनःसंधुक्षणादादित्यस्य बाल्यं तदातपो बालातप इत्यन्ये । **न छिन्द्यात्**स्वयम् ।। ६९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** प्रथमोदितादित्यतापो **बालातपः** स च मुहूर्तत्रयं यावदिति **मेधातिथिः** । कन्यार्कातप इत्यन्ये । **प्रेतधूमो** दह्यमानशवधूमः । **भग्नासनं** च एतानि वर्जनीयानि । **नखानि** च **रोमाणि** च प्रवृद्धानि **न छिन्द्याद्दन्तैश्च नखान्नोत्पाटयेत्** ।। ६९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** किं चैतान्वर्जयेदित्याह **बालेति । बाला** कन्याराशिः तत्रत्या**तपः** । "शरद्रौद्रेन गृह्णीयादि"ति स्मृतेः । मुहूर्तत्रयव्यापिप्रातःकालीनसूर्यातपो वा **बालातपः**, वर्ज्य इत्यनुषङ्गः । **न च्छिन्द्यात्** स्वयमिति शेषः ।। ६९ ।।

(५) **नन्दनः । न छिन्द्याद्**वपनकालादन्यत्र।। ६९ ।।

(६) **रामचन्द्रः । नखरोमाणि दन्तैर्न छिन्द्यात्** ।। ६९ ।।

(७) **मणिरामः । बालातपः** प्रथमोदितादित्यातपः । कन्यार्कातपो वा । **प्रेतधूमः** दह्यमानशवधूमः ।। ६९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । बालातप इति ।** प्रथमोदितादित्यातपः । शवधूमभग्नपीठाद्युपवेशनानि वर्ज्यानि । **नखलोमानि** चात्मना **न च्छिन्द्यात् । दन्तैश्च नखान् नोत्पाटयेत्** ।। ६९।।

**न मृल्लोष्टं च मृद्नीयान्न च्छिन्द्यात्करजैस्तृणम् ।।**
**न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ।। ७० ।।**

(१) **मेधातिथिः । विमर्दनं** खण्डशः करणं लोष्टस्य मृत्सम्बन्धिनः । केचित्तु मृदो लोष्टस्य सुधादिसम्बन्धिनोऽपि । मृदश्च 'मर्दनं' उत्क्षिप्योत्क्षिप्य पातनम्, हस्तेन संहननं वा । एतच्च मर्दनं यत्किंचनकारितया प्राप्तं निषिध्यते न तु शौचाद्यर्थे प्रयोजने । निष्फलग्रहणस्य पुरस्तादपकर्षात् । तेनैव सिद्धे प्रायश्चित्तविशेषार्थः पुनरारम्भः । **करजा** नखाः । **न कर्म** । ननु च "न कुर्वीत वृथाचेष्टाम्" (श्लो० ६३) इत्यनेनैव निष्फलं कर्म निषिद्धम् । अत्राहुः 'चेष्टा' भौतिको व्यापारः । इह तु सामान्यस्य पर्युदासः । तेन मनोराज्यादिकल्पाः परिहरणीयाः । **आयतिरागामी कालः** । यस्मात्कर्मण आगामिनि काले **असुखं**

दुःखमुत्पद्यते–यथा अजीर्णभोजनं, कुटुम्बभृतिमचिन्तयित्वा महतो धनस्य व्ययश्च–तं न कुर्यात् ।। ७० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मृदं कर्दमादिलोष्टं च **मृल्लोष्टं**। **करजैर्नखैः**। कर्मफलवत्तयाऽश्रुतं कारीषादि **निष्फलं** फलसंकल्पशून्यं **न कुर्यात्**। वृथाचेष्टा तु प्रागेव निषिद्धा। **आयत्यामुत्तरकालेऽसुखोदयं** दृष्टतोऽपि ।। ७० ।।

(३) **कुल्लूकः**। 'नाकारणं मृल्लोष्टे मृद्नीयात् तृणानि च न छिन्द्यादि'ति **आपस्तम्ब**वचनान्निष्प्रयोजनं मृल्लोष्टमर्दनं नखैश्च तृणच्छेदनं न कुर्यात्। ननु 'न कुर्वीत वृथाचेष्टा'-मित्यनेनैवास्यापि प्रतिषेधसिद्धौ दोषभूयस्त्वं प्रायश्चित्तगौरवं च दर्शयितुं विशेषेण निषेधः। अत एवात्रानन्तरं लोष्टमर्दीति निन्दिष्यति। दृष्टादृष्टफलशून्यं च कर्म न कुर्यात्। ननु 'न कुर्वीत वृथाचेष्टा'मित्यनेन पुनरुक्तिः। उच्यते–देहव्यापारश्चेष्टा स वृथाचेष्टाशब्देन निषिद्धः। अनेन तु निष्फलं मनोग्राह्यादिसंकल्पात्मकं कर्म मानसं निषिध्यते। **यच्चायत्यामागामि**काले कर्मासुखावहम्। यथाऽजीर्णे भोजनादि तदपि न कुर्यात् ।। ७० ।।

(४) **राघवानन्दः**। वृथालोष्टमर्दी न स्यादित्याह **नेति**। **करजैर्नखैः**। **कर्म निष्फलं** मानासिद्धं न कुर्वीत। **आयत्यां** उत्तरकालेऽ**सुखोदयं** सुखफलशून्यं प्रारम्भे कर्ममात्रस्य दुःखफलत्वात् ।। ७० ।।

(५) **नन्दनः**। **मृद्नीयाद्धस्तेन**। **निष्फलमिति** निश्चितम्। **आयत्यां** कालान्तरे। **असुखोदयमिति** निश्चितं च कर्म **न कुर्यात्** ।। ७० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **आयत्यां** उत्तरकाले **यदसुखं** कर्म **तन्न कुर्यात्** ।। ७० ।।

(७) **मणिरामः**। अकारणं **मृल्लोष्टं मृद्नीयात्**। **करजैः** नखैः। ननु "न कुर्वीत वृथाचेष्टा"मिति पूर्वमुक्तमेव। "न कर्म निष्फल" मिति पुनः किमर्थमिति चेत्–उच्यते। देहव्यापारचेष्टा सा वृथा चेष्टाशब्देन निषिद्धा। अनेन तु निष्फलं मनोग्राह्यादि संकल्पात्मकं निषिध्यत इत्यपुनरुक्तिः। **आयत्यां** आगामिकाले यत् **असुखोदयं** तदपि न **कुर्यात्** ।। ७० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **न मृल्लोष्टमिति**। "नाकारणं मृल्लोष्टं गृह्णीयात् तृणानि वा छिन्द्यात्' **इत्यापस्तम्ब**स्मरणात्। निर्निमित्तं **मृल्लोष्टं न** गृह्णीयात् **नखैस्तृणं न च्छिन्द्यात्**। यतः स्वकर्मणो दृष्टमदृष्टं फलं नोत्पद्यते यच्चागामिनि **असुखावहं तन्न कुर्यात्** ।। ७० ।।

**लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।।**
**स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ।। ७१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अत्रार्थवादः। अस्मादेव केवलाल्लोष्टग्रहणात् पूर्वोक्त'मृल्लोष्टमि'ति षष्ठीसमासो विज्ञायते। उभयप्राधान्ये हि मृद्ग्रहणं लोष्ट इव अत्राकरिष्यत। तस्यैव हस्तेन सुमर्दत्वात्प्राप्तः पर्युदासः। सुधायास्तु काठिन्याद्यत्नसाध्यं मर्दनं, तन्नैवासति प्रयोजने प्राप्तम्। मृल्लोष्टमर्दनं तु हस्तेन पुरुषाणां स्वभावतः केषांचित्प्राप्नोति, तस्य पर्युदासः।

**तृणच्छेदी** प्रकृतः। दन्तैर्नखान् खादति। **सूचकः** पिशुनः कर्णेजपः। यः परस्य दोषानसतः सतो वा परोक्षं व्याख्यापयति। **अशुचि**रुक्तार्थः। **विनाशमाशु व्रजति**। न यथाऽन्यानि वैदिकान्यनियतकालानि फलानि एवमेतत्—किं तर्हि? इहैव जन्मनि अचिराद्धनादिना वियोगो **विनाशः**॥ ७१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। लोष्टमर्दनादेः प्राङ्निषिद्धस्य दृष्टदोषात्सिद्धफलतामाह **लोष्टमर्दीति**। **नखखादी** दन्तैर्नखोत्पाटकः। बहुदुःखकारी **सूचकः** परापकारहेतुवाक्यप्रयोक्ता। अशुचिर्बाह्याभ्यन्तरशौचशून्यः॥ ७१॥

(३) **कुल्लूकः**। लोष्टमर्दयिता तृणच्छेत्ता नखखादिता च यो मनुष्यः तथा **सूचकः** खलो यः परस्य दोषानसतः सतो वा ख्यापयति बाह्याभ्यन्तरशौचरहितः शीघ्रमेते देहधनादिना विनश्यन्ति॥ ७१॥

(४) **राघवानन्दः**। लोष्टमर्द्यादीननूद्य दृष्टफलमाह **लोष्टमर्दीति**। **सूचकः** खलः॥ ७१॥

(५) **नन्दनः**। **सूचकः** पिशुनः॥ ७१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सूचकः** परापकारहेतुवाक्यप्रयोक्ता॥ ७१॥

(७) **मणिरामः**। **सूचकः** असतां सतां वा परस्य दोषाणां वक्ता॥ ७१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **लोष्टमर्दीति**। लोष्टतृणनखानां मर्दनछेदनखादनकृत् **सूचकोऽशुचिश्च** मनुष्यो **विनाशं** क्षिप्रं **याति**। तस्मादेतानि न कर्तव्यानि। भक्षणाशुचित्वयोरत एव निषेधः॥ ७१॥

**न विगृह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत्॥**
**गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम्॥ ७२॥**

(१) **मेधातिथिः**। अभिनिवेशेन पणबन्धादिना यल्लौकिकेषु शास्त्रेषु वाऽर्थेष्वितरेतरं जल्पनमहोपुरुषिका या सा **विगृह्य कथा**। **बहिर्माल्यम्**: वाससो बहिःकण्ठस्थां स्रजं वाससा छादयेत्। तथा च समाचारः।

अपरे बहिरित्यनावृतो देश उच्यते। तत्र नगररथ्यादौ न प्रकटमाल्यो भ्राम्येदित्याहुः।

अथवा बहिर्गन्धं 'बहिर्माल्यं'; यस्य गन्धो नातिसंवेद्यते। एवं स्मृत्यन्तरम् "नागन्धां स्रजं धारयेदन्यत्र हिरण्मय्या" इति। **गवां च पृष्ठे** यानं पर्याणं विना साक्षाद्गवारोहणं प्रतिषिध्यते। **सर्वथेति** पर्याणाद्यन्तरायेऽपि गन्त्र्यादियुक्तेऽपृष्ठयानत्वादप्रतिषेधः॥ ७२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विगृह्य** नैव देयमिति परकथामाच्छिद्य। **बहिर्माल्यं** शिखावेष्टनेन। **गवां पृष्ठेन सर्वथा**तिगर्हितं रथादियोजनेन तु गोभिर्यानं गर्हितमात्रं न त्वत्यन्तम्॥ ७२॥

(३) **कुल्लूकः।** नचाभिनिवेशेन **कथां** शास्त्रीयेष्वर्थेषु लौकिकेषु वा **कुर्यात्।** केश-कलापाद्**बहिर्माल्यं न धारयेत्। गवां च पृष्ठेन** यानं सर्वथेति प्रवेण्यादिव्यव-धानेनाप्यधर्मावहम्। पृष्ठेनेत्यभिधानादाकृष्टशकटादिना न दोषः॥ ७२॥

(४) **राघवानन्दः। विगृह्य** विग्रहं कृत्वा परकथां प्रच्छाद्य च। **बहिर्माल्यं** केश-कलापाद्बहिर्मालार्हं पुष्पम्। **गवां पृष्ठेन** केवलेनेत्यन्वयः॥ ७२॥

(५) **नन्दनः। विगृह्य** कथां विरोधपूर्वकवाक्यम्। **गवां पृष्ठेन** यानं गोपृष्ठमारुह्य यानम्॥ ७२॥

(६) **रामचन्द्रः। विगृह्य** प्राणवन्धादिवालौकिकेषु शास्त्रेषु **कथां न कुर्यात्** विध्यन्ते **गवां पृष्ठे** वृषभानां पृष्ठे सर्वपुण्यानां विनाशात्। गवां रोहणं प्रावेगर्हितं। तथैव **बहिर्माल्यं न धारयेत्**॥ ७२॥

(७) **मणिरामः। न विगृह्य** न निंदां कृत्वा। **बहिर्माल्यं** केशकलापाद्बहिः मालां न **धारयेत्**॥ ७२॥

(८) **गोविन्दराजः। न विगृह्येति।** साभिनिवेशं **कथां न कुर्यात्,** वासश्च **बहिर्माल्यं न धारयेत्।** गोपृष्ठारोहणेन गमनं पर्यटनव्यवधानादिप्रकारेणादिधर्मावहम्॥ ७२॥

**अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वा वृतम्॥**
**रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्॥ ७३॥**

(१) **मेधातिथिः।** आवृतस्य वाटपरिक्षेपादिना ग्रामस्य अद्वारप्रवेशप्रतिषेधः। अनावृतस्य तु द्वारवतोऽपि यथाकामम्॥ ७३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अद्वारेण** सर्वसाधारणद्वारव्यतिरेकेण गुप्तद्वारादिना **नातीयान्न** प्रविशेच्च। **वृतं** संवृतं स्वयं न हरेत् हस्तेन॥ ७३॥

(३) **कुल्लूकः।** प्राकाराद्यावृतं गृहं च द्वारव्यतिरिक्तप्रदेशेन प्राकारादिलङ्घनं कृत्वा न विशेत्। **रात्रौ च** वृक्षमूलावस्थानं दूरतस्त्यजेत्॥ ७३॥

(४) **राघवानन्दः। नातीयात्** न गच्छेत् प्राकाराद्युल्लङ्घनेन॥ ७३॥

(६) **रामचन्द्रः। ग्रामं वा वेश्म वा वृतं** वेष्टितं **अद्वारेण नातीयात्,** न विशेदित्यर्थः॥ ७३॥

(७) **मणिरामः।** स्पष्टम्॥ ७३॥

(८) **गोविन्दराजः। अद्वारेणेति।** प्राकाराद्यावृतं **ग्रामं गृहं वा** द्वारव्यतिरिक्तप्रदेशेन नातिक्रम्य प्रविशेत्। **रात्रौ च** वृक्षतलावस्थानं दूरात् **परिवर्जयेत्**॥ ७३॥

**नाक्षैर्दीव्येत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत्॥**
**शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने॥ ७४॥**

(१) **मेधातिथिः।** अन्तरेणापि ग्लहं, परिहासेन **नाक्षैर्दीव्येदिति। कदाचिद्**ग्रहणं शलाकादीनामपि दर्शनार्थम्। तेन सर्वस्य द्यूतस्य प्रतिषेधः। **स्वयं—चर्ममयं** पादत्राण-**मुपानहौ**—ते आत्मना हस्तेन दण्डादिना वा गृहीत्वा देशान्तरं न नयेत्। आत्मीययोश्चायं प्रतिषेधः, स्वयमिति प्रकृतत्वात्। तेन च गुर्वादिसम्बन्धिन्योरनिषेधः। **शयने** खट्वादौ उपविश्य न **भुञ्जीत। पाणौ** च कवलं स्थापयित्वा। भाजनाद्यनन्तरितेन आसने अन्नं स्थापयित्वा। आनन्तर्याद्भोज्यस्य प्रतिनिर्देशः, न भोक्तुः ।। ७४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। न** पाणिस्थं वामपाणिस्थं पाणिनिहितभाण्डादिस्थितं च। **आसने** पीठादौ स्थितम् ।। ७४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** ग्लहं विना कदाचिदपि परिहासेनापि नाक्षादिभिः क्रीडेत्। स्वयमित्यभिधानादात्मो**पानहौ** पादव्यतिरिक्तेन हस्तादिना देशान्तरं न नयेत्। शय्याद्यव-स्थितश्च **न भुञ्जीत।** हस्ते च प्रभूतमन्नं कृत्वा क्रमेण न खादयेत्। आसने भोजनपात्रं निधाय न भुञ्जीत ।। ७४ ।।

(४) **राघवानन्दः।** कदाचिदिति ब्राह्मणादेर्द्यूतं प्रति पदादावपि प्रसक्तिवारणार्थम्। ग्लहं विनाप्यक्षैर्न क्रीडेतेति **मेधातिथिः।** न उपानहाविति द्वित्वं विवक्षितम्। आसने स्थापितमपि ।। ७४ ।।

(५) **नन्दनः। पाणिस्थमन्नं** पाण्यन्तरेण **न भुञ्जीत** ।। ७४ ।।

(६) **रामचन्द्रः। नाक्षैः** क्रीडेत्। अक्षग्रहणं शलाकादिना विभवे सति क्रीडेदिति। स्वयं **उपानहौ** न हरेत्, हस्तेन नानयेदित्यर्थः। दण्डादिना आनयेत् ।। ७४ ।।

(७) **मणिरामः। कदाचित्** परिहासेनापि। **स्वयमित्य**भिधानात् आत्मोपानहौ पादव्यतिरिक्तेन हस्तादिना न देशांतरं नयेत्। **न पाणिस्थं** हस्ते बह्वन्नं कृत्वा क्रमेण न खादेत्। **न आसने इति।** आसने भोजनपात्रं निधाय न भुंजीत ।। ७४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। नाक्षैरिति।** अक्षादिभिः केल्यर्थमपि न क्रीडेत। आत्मना **चोपानहौ** पादव्यतिरेकेण न गृह्णीयात्। खट्वाव्यवस्थितश्च **न भुञ्जीत।** नापि पात्राव्यवहितहस्तमन्नमासने च पात्रमवस्थाप्य भुंजीत ।। ७४ ।।

**सर्वं च तिलसम्बद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ।।**
**न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ।। ७५ ।।**

(१) **मेधातिथिः। अस्तमिते** आदित्ये। प्रतिलक्षणे कर्मप्रवचनीयत्वात् द्वितीया। **न चोच्छिष्टः।** "ननु च ब्रह्मचर्यधर्मेष्वेतत्प्रतिषिद्धम्। पुरुषधर्मता च तस्य ज्ञापिता। न तादर्थ्यमेव"। सत्यम्! व्रतरूपताज्ञापनार्थं उपदेशोऽयम्। तेन यावज्जीविकः संकल्पः कर्तव्यः ।। ७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। तिलसंबद्धं** तिलप्रकृतिकं तैलाद्यपि अस्तमयं प्रति तदन्तरं, **उच्छिष्टो** मूत्रादिकरणेनाशनेन वा **न शयीते**त्यर्थः ।। ७५ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **यत्किंचित्तिलसंमिश्रं** कृसरमोदकादि **तदस्तमितेऽर्के नाद्यात्।** उपस्थाच्छादनवासोरहितो **नेह** लोके सुप्यात्। **उच्छिष्टस्तु नान्यतो** गच्छेत्॥ ७५॥

(४) **राघवानन्दः।** तिलसंबद्धं कृसरमोदकादि। **अस्तमिते**ऽस्तंगते सवितरि **इह** भूमावपि **न संविशेत्** न शयीत **उच्छिष्टः** कृतभोजनोऽनाचान्तः॥ ७५॥

(५) **नन्दनः।** स्पष्टम्॥ ७५॥

(६) **रामचन्द्रः।** सर्वं **तिलसंबद्धं अस्तमिते** सति व्रती **नाद्यात्** न भक्षयेत्॥ ७५॥

(७) **मणिरामः।** **तिलसंबद्धं** तिलमिश्रं कृसरमोदकादि॥ ७५॥

(८) **गोविन्दराजः।** **सर्वमिति।** **यत्किञ्चित्**तिलसंयुक्तं कृसरादि तदस्तमितेऽर्के **नाद्यात्।** कौपीनाच्छादनरहितश्चास्मिन् लोके न सुप्यात्। **उच्छिष्टश्च न** क्वचिद्यायात्॥ ७५॥

**आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्॥**
**आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥ ७६॥**

(१) **मेधातिथिः।** आदिकर्मणि विधिमिमं समाचरेत्। **आर्द्रपादो** भोजनमाचरेत्। न चातृप्तेः पादौ सिञ्चन्नासीत।

**संविशेत्।** शयने गात्राणि नावक्षिपेत्। संवेशनं शयने गात्रसंयोजनम्। अस्य फलमाह **दीर्घमायुरिति।** नायमायुष्कामस्य विधिः—किं तर्हि? पूर्ववन्नित्यः। आयुरनुवादस्त्वर्थवाद एव॥ ७६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **संविशेत्** शयीत॥ ७६॥

(३) **कुल्लूकः।** जलार्द्रपादो भोजनमाचरेत्। **नार्द्रपादः** सुप्यात्। यस्मा**दार्द्रपादो भुञ्जानः** शतायुर्भवति॥ ७६॥

(४) **राघवानन्दः।** दृष्टार्थं विधिनिषेधावाह **आर्द्रेति।** **न संविशेन्न** शयीत॥ ७६॥

(६) **रामचन्द्रः।** **आर्द्रपादस्तु** भुञ्जीत भोजनं कुर्यात्। **आर्द्रपादः** कदाचन न शयीत शयनं न कुर्यात्। पञ्चार्द्रो भोजनं चरेत्॥ ७६॥

(७) **मणिरामः।** **संविशेत्** सुप्यात्॥ ७६॥

(८) **गोविन्दराजः।** **आर्द्रपाद इति।** जलार्द्रपादो भोजनमुपक्रमेत्। **आर्द्रपादः** पुनः **न** स्वप्यात्। **आर्द्रपादो** ह्यश्नन् **दीर्घमायुः प्राप्नुयादिति** फलकथनमेतत्। न चानित्यतापत्तिः। 'पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः। न निन्देद्दत्तभक्ष्यांश्च स्वाद्वस्वादु न कुत्सयेत्॥' इति **व्यासेन** नित्यस्मरणात्॥ ७६॥

**अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित्॥**
**न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत्॥ ७७॥**

(१) **मेधातिथिः। दुर्गं** दुर्गारोहं पर्वतादि तरुगुल्मलतागहनं चारण्यम्। **तन्न प्रपद्येत।** नाक्रामेन्न गच्छेद**चक्षुर्विषयं** सर्पचौरादेरन्तर्हितस्य भावाशङ्कया। चक्षुर्ग्रहणमागमादेरपि प्रमाणस्य लक्षणम्।

**न विण्मूत्रम्।** "उदीक्षणं" वर्णादिना निरूपणम्। निरूपणं च चिरकालप्रेक्षणेन भवतीत्यत एव तन्न कर्तव्यम्। दैवात्क्वचिद्दृश्यमाने न दोषः।

नदीबाहुतरणं च स्वस्थस्य निषिध्यते। न वृकादिभये॥ ७७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** दुर्गं दुर्गत्वेन **श्रुतमचक्षुर्विषयं** स्वयमदृष्टं न प्रपद्येत न गच्छेत्। **विण्मूत्रं** परकीयं **बाहुभ्यां नदीमिति** विवक्षितं बाहुना जलान्तरेऽपि तरणस्य दृष्टविरोधित्वात्॥ ७७॥

(३) **कुल्लूकः।** तरुगुल्मलतागहनत्वेनाचक्षुर्गोचरमरण्यादिदेशं **दुर्गं** नाक्रमेत् सर्पचौरादेरन्तर्हितस्य संभवात्। **पुरीषं मूत्रं च न निरीक्षेत्। बाहुभ्यां च नदीं न तरेत्॥ ७७॥**

(४) **राघवानन्दः।** **दुर्गं** तृणाद्याच्छन्नं कूपतडागादि, अत एवाह **चक्षुर्विषये। विण्मूत्रं** स्वकीयं तत्पर्यालोचनबुद्धया **नेक्षेत**॥ ७७॥

(६) **रामचन्द्रः। अचक्षुर्विषयं** देशं **दुर्गं** वा दुर्गारोहणं **न प्रपद्येत**॥ ७७॥

(७) **मणिरामः। अचक्षुर्विषयं दुर्गं** तरुगुल्मलतागहनत्वेन चक्षुर्विषयं यन्न भवति तं अरण्यादिदेशं **न प्रपद्येत** नाक्रामेत्॥ ७७॥

(८) **गोविन्दराजः। अचक्षुर्विषयमिति।** चक्षुर्गोचरो यो न भवति दुर्गमो देशः तं कदाचिदपि न गच्छेत्—मूत्रपुरीषे च नोदीक्षेत। **बाहुभ्यां** नद्यादि **न तरेत्**॥ ७७॥

**अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः॥**
**न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥ ७८॥**

(१) **मेधातिथिः। कपालिकाः** भग्नशकलानि। **दीर्घमायुः।** व्याख्याता द्वितीया॥ ७८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। कपालिका** घटाद्यंशः। **कार्पासस्यास्थि** बीजम्॥ ७८॥

(३) **कुल्लूकः। दीर्घमायुर्जीवितुमिच्छुः** केशादीन्नाधिरोहेत्। भग्नमृण्मयभाजनशकलानि **कपालिकाः**॥ ७८॥

(४) **राघवानन्दः। कपालिका** भग्नघटादेः। **कार्पासास्थि** तद्बीजं **नाधितिष्ठेत्** तेषु 'अधिशीङ्स्थासां कर्म'ति सप्तम्यर्थे द्वितीया॥ ७८॥

(५) **नन्दनः। अधितिष्ठेत्पदा। कपालिका** भिन्नमृद्भाण्डशकलान्॥ ७८॥

(६) **रामचन्द्रः।** केशमध्ये **दीर्घमायुर्जिजीविषुर्नाधितिष्ठेदि**त्यपि ज्ञेयम्॥ ७८॥

(७) **मणिरामः। कपालिका** मृण्मयभाजनखंडानि, **न अधितिष्ठेत्** एतेषामुपरि न तिष्ठेदित्यर्थः॥ ७८॥

(८) **गोविन्दराजः।** अधितिष्ठेदिति। **दीर्घमायुर्जीवितुमिच्छुः केशभस्मास्थिकपालिकाः कार्पासबीजतुषान् नाधिरोहेत्** ॥ ७८ ॥

**न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः ॥**
**न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥**

[**न कृतघ्नैरनुयुक्तैर्न महापातकान्वितैः। न दस्युभिर्नाशुचिभिर्नामित्रैश्च कदाचन ॥**]

(१) **मेधातिथिः।** "ननु च 'नाधार्मिकजनावृते' 'नोपसृष्टेऽन्त्यजैः' इति चोक्तमेवैतत्।" नेति ब्रूमः। तत्र निवासः प्रतिषिद्धः। इह तु संवासः। यत्र ग्रामे ते वसन्ति न तत्र वस्तव्यं गृहस्थित्येति तत्रोक्तम्। संवासस्तु तैः सह संव्यवहारो दानग्रहणादिभिर्मैत्रीकरणम्, तद्गृहसमीपे च वासोऽपि एकतः छायोपजीवनमित्यादि। 'आवृत'ग्रहणाच्च तत्र बाहुल्यं गम्यते। यस्मिन् ग्रामे भूयांसस्ते तस्य समीपेऽपि न वस्तव्यमिति तस्यार्थः; इह त्वबाहुल्येऽपि समीपवासादि प्रतिषिध्यत इत्येष विवेकः।

**पुल्कसा** निषादाः शूद्रायां जाताः। अन्त्या मेदप्रभृतयो म्लेच्छाः। **अन्त्यावसायीति** निषादस्त्रियां चण्डालाज्जातो वक्ष्यते (अ० १० श्लो० ३९) "निषादस्त्री तु चाण्डालात्" इत्यादि। **अवलिप्ता** मदोद्धताः धनादिना गर्विताः ॥ ७९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** संवसेदेकगृहे अवलिप्तैर्गर्वितैः। **अन्त्यैः** कैवर्ताद्यैः। **अन्त्यावसायिभिः** सूतमागधाद्यैः ॥ ७९ ॥

(३) **कुल्लूकः।** पतितादिभिर्ग्रामान्तरवासिभिरपि सह **न संवसेत्।** एकतरुच्छायादौ न समीपे वसेत्। अतो 'नाधार्मिके वसेद्ग्राम' (४।६०) इत्यतो भेदः। निषादाच्छूद्रायां जातः पुल्कसः। वक्ष्यति च (१०।१८) 'जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुल्कस' इति। **अवलिप्ता** धनादिमदगर्विताः। **अन्त्या** अन्त्यजा रजकादयः। **अन्त्यावसायिनो** निषादस्त्रियां चाण्डालाज्जाताः। वक्ष्यति च (१०।३९) 'निषादस्त्री तु चाण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम्' ॥ ७९ ॥

(४) **राघवानन्दः।** ग्रामवासनिषेधस्योक्तत्वादेकसभैकवृक्षच्छायादौ न वसेदित्यर्थः। **पुल्कसैः** निषादाच्छूद्रायां जातैः। **अवलिप्तैः** धनादिगर्वितैः। **अन्त्यै** रजकादिभिः। **अन्त्यावसायिभिः** निषाद्यां चण्डालाज्जातैः सह वार्ताकलहादिसंभावनया अधर्मोत्पत्तेरिति भावः ॥ ७९ ॥

(५) **नन्दनः।** **पुल्कसः** शूद्रेण क्षत्रियायां जातः। अन्त्या दर्शनस्पर्शनायोग्याः प्रतिलोमगाः। **अन्त्यावसायिनः** श्वपाकादयः ॥ ७९ ॥

(६) **रामचन्द्रः। पतितैः सह** न संविशेत्। चाण्डालैः ब्राह्मण्यां शूद्राज्जाताः चाण्डालास्तैः सह न संविशेत्। **अन्त्यैः** कैवर्तादिभिः। **अन्त्यावसायिभिः** सूतमागधादिभिः। एतैर्जातिभेदैः सह **न संवसेत्।** अन्त्यभेदाः 'रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च। **कैवर्तमेदभिल्लाश्च** सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः।' अस्यार्थः— बुरुडः शूर्पकारः इति जातिसंज्ञा ॥ ७९ ॥

(७) **मणिरामः**। पतितादिभिर्ग्रामांतरवासिभिरपि **न संवसेत्**। एकतरुकच्छायादौ न समीपे वसेत्। **पुल्कसैः** निषादाच्छूद्रायां जातैः। **अवलिप्तैः** धनादिमदगर्वितैः। **अंत्यैः** रजकादिभिः। **अंत्यावसायिभिः** निषादस्त्रियां चांडालाज्जातैः ॥ ७९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **न संविशेदिति**। पतितचाण्डालपुल्कसाल्पबुद्धिगर्हितान्त्यावसायिभिः ग्रामान्तरनिवासिभिरपि कार्यार्थमेकप्रदेशे मुहूर्तमपि नासीतेति। 'नाधार्मिके वसेद्ग्रामे' इत्यादिभ्यो भेदः। पतितादयश्च दशमैकादशाध्याये वक्ष्यन्ते ॥ ७९ ॥

**न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥**
**न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। शूद्रस्य दृष्टादृष्टविषये हिताहितोपदेशो न कर्तव्यः, शूद्रस्य मन्त्रित्वं न कर्तव्यमिति यावत्। वृत्त्यर्थश्चायं निषेधः। सौहार्दादिना तु न दोषः। भवन्ति हि शूद्राः कुलमित्राणि। मैत्र्या चावश्यं हितमुपदिश्यते। अनुज्ञाता च सर्ववर्णे ब्राह्मणस्य मैत्री "मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।"

ये तु व्याचक्षते—'अपृच्छतो न ब्रूयादि'त्युपन्यस्य युक्तं शास्त्रान्तरसिद्धत्वात्। "नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयादिति" (अ० २ श्लो० ११०)'—तदयुक्तम्। तत्र हि स्वाध्यायविषयं स्वरवर्णगतमन्यद्वाऽसंगतं कुर्वतो 'विनाशितं त्वये'त्यादावपृष्टेन न वक्तव्यम्। तथा चामी नाध्याप्या इत्यस्मिन्प्रसङ्ग इदमुक्तं "नापृष्टो ब्रूयादिति"। अशिष्यस्यापृच्छतो विस्वरं व्यक्षरं वा पठतो न किंचिद्वक्तव्यमिति तस्यार्थः।

**नोच्छिष्टमिति**। उच्छिष्टशब्दोऽयं भुजिनिमित्तेऽप्राशस्त्ये वर्तते। कृतमूत्रपुरीषोऽप्यनाचान्त 'उच्छिष्ट' उच्यते। यथा वक्ष्यामो "न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टः" (४।१४२)। बाहुल्येनोच्छिष्टप्रयोगो भुजिसम्बन्धेन। भुञ्जानस्य ह्यन्तराऽऽस्यसंस्पर्शेन बहिरन्तःस्थितस्योच्छिष्टत्वं भवति। तथा च "–'न श्मश्रूणि गतान्यास्य'मिति श्मश्रुभ्योऽन्यदास्यानुप्रविष्टमुच्छिष्टं करोतीति ज्ञापयति"। अतश्च भोक्तुर्भुज्यमानस्य पात्रादेरधिकरणस्य चोच्छिष्टव्यवहारः। क्वचिच्चायं उपयुक्तेतरवचनोऽपि, 'हविरुच्छिष्टं दक्षिणेति'। तत्र समाचारात्पात्रगृहीतमुच्छिष्टपुरुषसम्बद्धमीषद्भुक्तमुच्छिष्टमुच्यते। यदपि विशदमोदनादि पात्रस्थमस्पृष्टमपि भोक्त्रा तदपि सम्बद्धसम्बन्धात्समाचारतः परिह्रियते। तत्र "उच्छिष्टमन्नं दातव्यम्,' 'नोच्छिष्टमिति' विधिप्रतिषेधावेकविषयावृतानृतशूद्रव्यवस्थया हविःशेषभेदेन वा विकल्प्येत। अथवा स्थालीस्थमतिथ्यादिभुक्तशिष्टं पर्युषितप्रायं उच्छिष्टं—तन्न शूद्राय दातव्यम्। तत्रोच्यते– जीर्णवसनसाहचर्याच्चैतदेव प्रतिपत्तुं युक्तम्। उपयुक्तेतरवचनत्वाच्च शिषेरुपसर्गस्य तदर्थानुगुण्येन वर्तनाद्धविरुच्छिष्टं दक्षिणेतिवत्प्रयोगोऽप्यविरुद्धः। एवमनयोः स्मृत्योरविरोधो भविष्यति। यद्यपि रूढ्याऽऽचमनार्हाः प्रायोऽत्र वचने दृश्यन्ते। यत्तु "वैश्यवच्छौचकल्पश्चेति" तद्दासशूद्रविषयम् भुक्तोज्झितमेव प्रतीयत इति दर्शयिष्यामः।

न हविष्कृतम्। हविषे कृतं हविरर्थं कल्पितम्। बाहुल्यात् बहुवचनः समासस्तादर्थ्येनोपकल्पितप्रतिषेधात्। दण्डापूपिकन्या यत्र हविर्गन्धोऽस्ति तत्सर्वं प्रतिषिध्यते। तेन हविरर्थितया सङ्कल्पितस्य हविषः प्रवृत्तस्य हविःशेषस्याभुक्तोज्झितस्य हविषः प्रतिषेधः सिद्धो भवेत्। तथा च कृतमिति करोतिः क्रियासामान्यवचनः प्रयुक्तः। हविरर्थं यत्कृतं सङ्कल्पितमिति वचनम्। तेनोच्छिष्टस्यापि यावत्प्राक्कृतेन सङ्कल्पेन हविष्कृतव्यपदेशो न यथावत्सर्वावस्थस्य प्रतिषेधो विज्ञायते।

अन्यैस्तु हविर्मिश्रं हविष्कृतमिति व्याख्यातम्। संसृष्टप्रतिषेधाच्च केवलस्यापि प्रतिषेधः। विप्रसंसृष्टप्रतिषेधे विप्रस्येवेत्युक्तम्। "कथं पुनः संसृष्टप्रतिषेधे केवलप्रतिषेधः?"। केवलप्रतिषेधेनाप्रधानः कदाचित्संसृष्टप्रतिषेधः शक्यते वक्तुम्। यत्र संसृष्टावपि पृथक्त्वेन प्रतिभासेते, यत्र वा चक्षुषा प्रतिभासमाने रूपे रसादिना तत्प्रयोगो भवति, तत्रापि भवत्येव तदाश्रयो व्यवहारः। यथा सुरादिसंपृक्तासु सक्तुपिण्डीष्वन्तर्हितेऽपि सुरादिरूपे रसे तत्प्रत्ययादस्त्येव सुरापानप्रायश्चित्तम्।

"ननु चैवमप्यद्रवरूपत्वात्पिण्डीभिरेकतापन्नायाः सुराया न पानोपपत्तिः"।

नैष दोषः। प्रायिकेणौचित्यानुवादेन पानमुपादीयते। अभ्यवहार एव तु निषिध्यते। यथा च भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणमेतत्। भक्षणं चाभ्यवहारमात्रम्। तस्य विशेषाः पानखादनचर्वणादयः। गन्धस्य पुनरनाश्रयस्याप्युपलब्धेन ततो द्रव्यसद्भावावगमः। दूरस्थेऽपि कर्पूरादौ गन्ध उपलभ्यते। सूक्ष्मद्रव्यावयवावगमकल्पनायां द्रव्यस्य परिमाणावयवः स्यात्। यत्र तु संसृष्टयोरेकीभावो, न चान्यस्तत्प्रत्ययो, न तत्र केवलाश्रयौ विधिप्रतिषेधौ प्रवर्तितुमर्हतः। यथा क्षीरं पातव्यमिति सम्मिश्रितयोः क्षीरोदकयोः पीतयोर्न क्षीरं भवति नोदकं, द्रव्यान्तरत्वात्। अन्यद्धि तत्र रूपमन्यश्च रससंस्थानादि तत्प्रत्ययहेतुरस्तीति द्रव्यान्तरं तत्।

"यद्येवं मद्योदके सह पीते यदि भवेतां, तदा मद्यपानप्रायश्चित्तं न प्राप्नोति, द्रव्यान्तरत्वात्।

नैष दोषः। अभिभवति रसान्तराणि मद्यं तिक्तरसवत्। ततो रसप्रत्यभिज्ञानाद्भवत्येव तत्प्रायश्चित्तम्। यत्र तु बहूदकं स्वल्पं मद्यादि, तत्र संसर्गप्रायश्चित्तमपि निपुणमेकादशे निरूपयिष्यामः।

तस्मात्केवलाश्रयः प्रतिषेध आस्कन्देदपि संसर्गम्। यथा माषा न भोक्तव्या इति मिश्रा अपि न भुज्यन्ते।

संसर्गाश्रयस्तु केन हेतुनाऽसंसृष्टे वर्तेत। गङ्गायमुनयोः सङ्गमाज्जलमानयेत्युक्ते न केवलाया गङ्गाया आनयति, न यमुनायाः। समाचार एवेति चेत्समाचार एवोदाहर्तव्यः।

**न चास्योपदिशेद्धर्मम्।** "ननु च 'न शूद्राये'त्यविशेषेण दृष्टादृष्टविषयमतिदानप्रतिषेधाद्धर्मोपदेशनिषेधोऽपि सिद्ध एव"। सत्यम्। पुनर्वचनं शेषार्थम्। ततः प्रायश्चित्तोपदेशोऽनुज्ञातो भवति। "शरणागतं परित्यज्य" (अ० ११ श्लो० १९८) इत्यत्र चैतद्दर्शयिष्यामः।

अन्ये तु पार्वणश्राद्धपाकयज्ञादिष्वितिकर्तव्यतां न शिक्षयेत् याजकत्वादिरूपेणेत्याहुः।

अत्र चोदयन्ति। "यदि धर्मोपदेशः शूद्रस्य निषिध्यते कुतस्तर्हि धर्मवित्त्वम्? अविदुषश्च नानुष्ठानसम्भवस्ततः शूद्रानुष्ठातृकधर्मशास्त्रानर्थक्यम्"।

अचोद्यमेतत्। अतिक्रान्तनिषेधस्य लिप्सया ब्राह्मणस्य चोपदेष्टृत्वसम्भवात्। न हि ब्रह्महत्या सर्वस्वदानचोदनाप्रतिग्रहं प्रयुंक्ते। सम्भवति लिप्सा प्रयोक्त्री। 'ननु चास्ति वचनं "प्रब्रूयादितरेभ्यश्चेति'—" वृत्त्युपायप्राप्तौ। अत एवं प्रकृतं "सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि। प्रब्रूयादितरेभ्यश्च" (अ० १० श्लो० २) इति। यस्त्वाश्रितशूद्रस्तस्यावश्यमुपदेशः कर्तव्यः। अविदुषा विधिप्रतिषेधातिक्रमात्संवासो निषिद्धः "न मूर्खैर्नावलिप्तैश्चेति" (श्लो० ७९)।

यत्तु व्याचक्षते—"धर्मशास्त्रोपदेशस्तदर्थव्याख्यानं वाऽनेन निषिध्यते शास्त्रद्वयेन—'न चास्योपदिशेदिति'। एकेन शास्त्राध्ययनमपरेणार्थव्याख्यानम्। अग्रन्थकस्तूपदेशो न केनचिन्निषिद्धः"।

तेषामेवं वदतां 'तस्य शास्त्रविचार' इति सिद्धत्वात्पुनरुक्तम्।

इह वदन्ति—"व्याकरणादौ धर्मावबोधार्थशास्त्रे धर्मशब्दः। तद्धि न धर्मशास्त्रमतीन्द्रियार्थमिति प्रतिषेधानुपदेशात्। भवति तु धर्मशास्त्रावबोधार्थम्। शक्नोति हि वैयाकरणः पदार्थानुसरणेन गहनं वाक्यार्थमुन्नेतुम्। धर्मशास्त्रत्वाच्च 'तस्य शास्त्र' इत्यनेनागतत्वात्पृथगुच्यते।

युक्तमेतत्, यदि कश्चिन्न ब्रूयात्प्रधानेऽनधिकृतस्य कुतोऽङ्गेषु प्राप्तिरिति। वेदः स्मृतिशास्त्रे च प्रधानम्। न च तत्र शूद्रस्याधिकारः।

**न चास्य व्रतमादिशेत्।** व्रतशब्देन कृच्छ्राण्युच्यन्ते। 'एतैर्व्रतै'रिति प्रयोगदर्शनात्। तान्यभ्युदयकामस्य नोपदिशेत्। प्रायश्चित्तार्थतया त्विष्यत एवोपदेशः। स्नातकव्रतानां प्राप्तिरेव नास्ति, अस्नातकत्वात्। एवं सावित्रादीनामप्यध्ययनाभावादध्ययनं चोपनयनाभावादुपनयनं च तद्विधौ जातित्रयश्रवणात्॥ ८०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **मतिं** दण्डनीतिशास्त्रादिविषयां। **उच्छिष्टं** भाण्डत्यक्तम्। **हविष्कृतं** यत आकृष्य हुतं हविस्तं पुरोडाशादिहविःशेषं। **धर्मं** धर्मसाधनं **व्रतं** प्रायश्चित्तम्॥ ८०॥

(३) **कुल्लूकः।** **शूद्राय मतिं** दृष्टार्थोपदेशं **न दद्यात्** धर्मोपदेशस्य पृथङ्निर्देशात्। अदासशूद्रायोच्छिष्टं न दद्यात् दासगोचरतयोच्छिष्टमन्नं दातव्यमिति वक्ष्यमाणत्वाददोषः। **'द्विजोच्छिष्टं च भोजन'** मिति भोक्तुर्विधिर्दातुरुच्छिष्टदाननिषेधेऽपि यथासंभवलब्धविषयः। **हविष्कृतमिति।** **यस्यैकदेशो** हुतः स हविःशेषो न दातव्यः। धर्मोपदेशो न शूद्रस्य कर्तव्यः। **व्रतं चास्य** प्रायश्चित्तरूपं साक्षान्नोपदिशेत् किंतु ब्राह्मणं मध्ये कृत्वा तदुपदेशव्यवधानात्। **यथाहाङ्गिराः** 'तथा शूद्रं समासाद्य सदा धर्मपुरःसरम्। अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा प्रायश्चित्तं **समादिशेत्**॥' प्रायश्चित्तमिति सकलधर्मोपदेशस्योपलक्षणार्थम्॥ ८०॥

(४) राघवानन्दः। **मतिं** दृष्टार्थबुद्धिं। **हविष्कृतम्** हुतावशिष्टं। **व्रतं** प्रायश्चित्तं। एतद्ब्राह्मणमन्तरावधिं कृत्वोपदिशेत्। 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इत्युक्तेः। अन्यथा तेषां धर्माद्यननुष्ठानापत्तिः। **अस्य** शूद्रस्य साक्षादिति शेषः ।। ८० ।।

(५) नन्दनः। **मतिं** परेणाविज्ञातमुपायम्। भोजनपात्रस्थमुच्छिष्टमन्नं न तु स्थाल्यादिस्थितम्। **हविष्कृतं** हविष्ट्वेन कल्पितमृत्विग्भिर्भक्षितशिष्टं पुरोडाशादिकम्। **धर्मं** श्रौतस्मार्तादिकम्। **व्रतं** स्नातकव्रतादि न मतिं दद्यादित्येव सिद्धे 'धर्मं नोपदिशेदि'ति पुनर्निषेधो दोषातिशयप्रकाशनार्थः ।। ८० ।।

(६) रामचन्द्रः। **शूद्राय मतिं** सन्मतिं नीतिशास्त्रादिविषयां न दद्यात्। **उच्छिष्टं** अतिथेः भुक्तोच्छिष्टं **हविष्कृतं** देवनिमित्तं पुरोडाशादि शूद्राय न। **च** पुनः **अस्य** शूद्रस्य **व्रतं** प्रायश्चित्तमापदि ।। ८० ।।

**यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ।।**
**सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ।। ८१ ।।**

(१) मेधातिथिः। पूर्वस्य प्रतिषेधस्य निन्दार्थवादः। **तेनैव सहेति** उभयोर्दोषमाह, शृण्वतः श्रावयतश्च। **मज्जत्यवगाहते** तत्प्राप्नोतीति यावत् ।। ८१ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। **तमो** नरकं **सह तेनैव** गच्छति यदि शूद्रोऽपि पापान्तरेण तल्लोकगामी। अन्यथा तूपदेष्टैव याति ।। ८१ ।।

(३) कुल्लूकः। यस्माद्योऽस्य शूद्रस्य धर्मं ब्रूते यश्च प्रायश्चित्तमुपदिशति **स तेन शूद्रेणैव सहासंवृताख्यं तमो** गहनं नरकं प्रविशति। पञ्चसु पूर्वोक्तेषु द्वयोर्दोषकथनं प्रायश्चित्तगौरवार्थम् ।। ८१ ।।

(४) राघवानन्दः। विपक्षे दण्डमाह **य इति। असंवृतं नाम तमो** नरकं **तेन शूद्रेण सह** मज्जत्येवेत्यन्वयः ।। ८१ ।।

(५) नन्दनः। अत्र निन्दार्थवादमाह **य इति। अस्य** शूद्रस्य। **तेन** शूद्रेण ।। ८१ ।।

(६) रामचन्द्रः। **यः अस्य** शूद्रस्य **धर्मं** समाचष्टे यः व्रतं दिशति **स असंवृतं नाम तमः** नरकं **तेनैव सह मज्जति** ।। ८१ ।।

(७) मणिरामः। तत्र हेतुमाह **यो ह्यस्येति। हि** यस्मात् ।। ८१ ।।

(८) गोविन्दराजः। **य इति**। यस्मात् **यः** शूद्रस्य धर्मव्रते **उपदिशति स** ब्राह्मणः पापोत्पत्तिनिमित्तभूतेन **तेनैव** शूद्रेण **सह** अतिमहत्त्वाद**संवृताख्यं तमः** अन्धकारं **प्रविशति**। पञ्चके प्रकृते द्वयोः फलकथनं प्रायश्चित्तगौरवार्थम् ।। ८१ ।।

**न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।।**
**न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ।। ८२ ।।**

(१) **मेधातिथिः। संहताभ्यां** संश्लिष्टाभ्यामितरेतरसंसृष्टाभ्यां युगपद्द्वाभ्यां प्रतिषेधः। **पाणिभ्यामिति** बाहू संहतौ निषेधति। **आत्मन इति**। न परस्य। अतश्चान्येन संहताभ्यां कण्डूयतो न दोषः। शिरोग्रहणात्पृष्ठादावदोषः। **न स्पृशेच्चैव** शिरः। हस्तेनात्मनोऽन्येन वाऽवयवेनेति केचित्। तन्न; पाणिभ्यामिति प्रकृतत्वात्। **न च स्नायाच्छिरसा विना**। नित्यनैमित्तकयोः स्नानयोरयं विधिः।

"ननु स्विन्नस्य लौकिके स्नाने कुत एतत्?"। स्नानविधिनैकवाक्यत्वात्। विहितस्नानापेक्षाप्रत्यासत्त्या युक्तिमती। लोके तु विधेरभावादप्राप्तिः। स्नातश्चायं सर्वाङ्गसम्बन्धिनि सलिलगोमूत्रादिप्रक्षालने वर्तते, शिरोवर्जिते च। तत्र चण्डालादिस्पर्शने शिरोवर्जितमपि यदृच्छाप्रसक्तं निवार्यते—**न च स्नायाद्विना ततः**। अस्ति च लौकिकमशिरस्कमपि स्नानम्। येन शिरःस्नानं "शिरःस्नातस्तु तैलेनेति"॥ ८२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। संहताभ्यां** संयुक्ताभ्यां **एतच्छिरः**। **ततः** शिरसो **विना** शिरोवर्जितांगैर्न स्नायादित्यर्थः। 'अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणा'-मित्यन्यत्रोक्तम्॥ तेनायं सशिरःस्नानशक्तविषयो निषेधः॥ ८२॥

(३) **कुल्लूकः**। संश्लिष्टाभ्यां पाणिभ्यां न **कण्डूयेदात्मनः शिरः। उच्छिष्टः** स्वशिरो **न स्पृशेत्। शिरसा विनो**न्मज्जनव्यतिरेकेण नित्यनैमित्तिकस्नाने न कुर्यात् दृष्टार्थे शिरोव्यतिरिक्तगात्रप्रक्षालने न दोषः। स्नानशक्तस्य चायं निषेधः अशक्तस्य तु 'अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणा'मिति **जाबालिना** विहितमेव॥ ८२॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **नेति एतच्छिरः। ततः** शिरसः शिरोवर्जं **न स्नायात्** शक्तस्यायं निषेधः, न त्वशक्तस्य। "अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणां। आर्द्रेण वाससा वापि दैहिकं मार्जनं विदु'रिति **याज्ञवल्क्योक्तेः**॥ ८२॥

(५) **नन्दनः**। आत्मग्रहणात्परस्याप्रतिषेधः। शिरोग्रहणादवयवान्तराणाम्। **एतच्छिरः**। **असंहताभ्या**मप्युच्छिष्टे न स्पृशेत्। **ततः** शिरसो **विना न च स स्नायात्**। नित्यनैमित्तिकयोः कर्मणोरदृष्टार्थस्नानविषयमेतत्॥ ८२॥

(६) **रामचन्द्रः। उच्छिष्टः** सन् **एतत्** शिरः **न स्पृशे**दित्यर्थः॥ ८२॥

(७) **मणिरामः। संहताभ्यां** मिलिताभ्यां। **एतत्** स्वशिरः। **ततः विना** 'शिरसा **विना** उन्मज्जनव्यतिरेकेण नित्यनैमित्तिकस्नाने न कुर्यात्॥ ८२॥

(८) **गोविन्दराजः। न संहताभ्यामिति।** संश्लिष्टाभ्यां पाणिभ्यां स्वशिरो न कण्डयेत्। संहतवचनादसंहताभ्यां न निषेधः। एवं सर्वत्र व्यावर्त्यं ज्ञेयम्। उच्छिष्टहस्तादिना येन केनचिदपि शिरो न स्पृशेत्। शिरसा विना च नित्यनैमित्तिकस्नाने न कुर्यात्। दृष्टार्थे त्वनिषेधः। स्नानविधिनाऽस्यैकवाक्यत्वात्॥ ८२॥

**केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥**
**शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** आत्मनः परस्य वेत्यविशेषेण केचिदिच्छन्ति। अन्ये त्वात्मन इति प्रकृतमभिसंबध्नन्ति। क्रोधनिमित्तश्चायं प्रतिषेधः। सुरतसम्भोगे तु कामिन्याः केशग्रहः स न निषिध्यते।

'शिरः' 'स्नातं' क्षालितमनेनेति राजदन्तादेराकृतिगणत्वात् परनिपातः। **शिरः-स्नात** इति बाहुलकेन समासः। नाङ्गमात्मीयम् ॥ ८३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **केशग्रहान्** परेण स्वशिरःकेशग्रहणप्रहारान् शिरसि स्वयमपि। **शिरःस्नातः** सन् स्वाङ्गमन्यदपि **तैलेन न स्पृशेत्।** न म्रक्षयेत्। एतच्च तद्दिवस एव न रात्राविति शिष्टाचारात् ॥ ८३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** कोपेन केशग्रहप्रहारौ शिरसि वर्जयेत्। कोपनिमित्तत्वाच्चात्मनः परस्य च प्रतिषेधः। अत एव सुरतसमये कामिनीकेशग्रहस्यानिषेधः। सशिरस्कस्नातश्च **तैलेन न किंचिदप्यङ्गं** स्पृशेत्। अथवा तैलेनेति काकाक्षिवदुभयत्र संबध्यते; तैलेन शिरःस्नातःतैलेन पुनः किंचिदप्यङ्गं न स्पृशेत्, अतो रात्रौ शिष्टानामतैलशिरःस्नातानां तैलेन पादाभ्यङ्गसमाचरणमविरुद्धम् ॥ ८३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **केशग्रहानिति** शिरस्येव केशपदमुत्कटधम्मिल्लपरं, क्रुद्धः सन्निति शेषः। अतः सुरतसमये कामिनीकेशप्रदेशग्रहे न दोषः। **शिरःस्नातस्तु** शिरसि तैलं दत्वा नान्येष्वङ्गेषु तद्दद्यादिति केचित्। वस्तुतस्तु कृतशिरःस्नानस्तैलाभ्यक्तो न स्यात्। तैलस्नाने स्नानशब्दस्य भाक्तत्वात्। युगपत्सर्वाङ्गीणजलसंबन्धस्य तत्वात् स्पर्शनस्य करणापेक्षत्वाच्च। दाक्षिणात्यानां मातुलकन्यापरिणयवत् रात्रौ औडीयानां पादाभ्यङ्गो देशाचारः ॥ ८३ ॥

(५) **नन्दनः।** **शिरःस्नातः** कृतकेशवापनः ॥ ८३ ॥

(७) **मणिरामः।** कोपेन आत्मनः परस्य वा शिरसि **केशग्रहः प्रहारश्च** न कुर्यात्। अत एव सुरतसमये कामिनीकेशग्रहो न दोष : ॥ ८३ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **केशग्रहानिति।** **केशग्रहणप्रहारौ** कोपेन मूर्धनि न कुर्यात्। सशिरस्कः स्नातः **तैलेन किञ्चिदप्यङ्गं न स्पृशेत्** ॥ ८३ ॥

**न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ॥**
**सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** उक्तं "राजतो धनमन्विच्छेदिति" (अ० ४ श्लो० ३३)। राजशब्दश्चायं क्षत्रियजातावक्षत्रियेऽपि जनपदेश्वरे दृष्टप्रयोगो 'ब्राह्मणानां राज्यमिति'। तत्र प्रतिग्रहविधौ तन्निषेधे च जनपदेश्वरवचनो गृह्यते। येनाह **अराजन्यप्रसूतित इति।** जनपदैश्वर्यं हि सर्ववर्णसम्भवि लिप्सया। अतो विशेष्यते। राजन्यात्क्षत्रियाद्यस्य प्रसूति-

रुत्पत्तिर्नास्ति तस्माद्राज्ञो जनपदेश्वरान्न गृह्णीयात्। क्षत्रियादपि लुब्धादुच्छास्त्रवर्तिनो, वक्ष्यमाणेन प्रतिषेधेन।

**सूना** पशुमारणं संज्ञपनपूर्वकेण मांसक्रयेण यो जीवति स **सूनावान्**। 'खटिक' इति लोके प्रसिद्धः। **ध्वजो** मद्यपण्यः तत्क्रयविक्रयजीवी। **वेशः** पण्यवृत्तिः तया यो जीवति-स्त्री वा पुमान्वा ॥ ८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। राज्ञो** जनपदपालकस्य **अराजन्यप्रसूतेर्विप्रादेः। सूनेति।** दशमहाप्राणिवधस्थानं सूना, तत्प्रवर्तकः सूनावान् तिलनिष्पीडकश्चक्रवान् शौण्डिक सुरा ध्वजवत्तया ध्वजवान् वेशेनाङ्गोपस्कारेण जीवन्वेश्याजनः। एषामपि न ग्राह्यमापद्यपि ॥८४॥

(३) **कुल्लूकः।** राजन्यशब्दः क्षत्रियवचनः। अक्षत्रियप्रसूतस्य **राज्ञो** धनं **न प्रतिगृह्णीयात्** 'राजतो धनमन्विच्छेदि' (४। ३३) त्युक्तं तस्यायं विशेष उक्तः। **सूनाचक्रध्वजवतामिति।** सूनावतां चक्रवतां ध्वजवतां च। सूना प्राणिवधस्थानं, तद्यस्यास्तीति स सूनावान् पशुमारणपूर्वकमांसविक्रयजीवी। चक्रवान्बीजवधविक्रयजीवी तैलिकः। ध्वजवान्मद्यविक्रयजीवी शौण्डिकः। वेशः पण्यस्त्रिया भृतिस्तया यो जीवति स्त्री पुमान्वा स वेशवान्। एतेषां च **न प्रतिगृह्णीयात्** ॥ ८४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** 'राजतो धनमन्विच्छे'दिति सीदत्कुटुम्बस्य राजप्रतिग्रहस्योक्तत्वात् प्रजापालनकर्तरि अतज्जातौ राजपदं भाक्तमिति मीमांसास्तबके स्थापितं, अतोऽतज्जातेः प्रतिग्रहो निषिद्ध इति सार्थवादमाह **नेति अष्टभिः। सूना** स्वयं निहत्य मांसविक्रयः। **चक्रं**तिलादिपेषणं। **ध्वजो** मद्यं एतद्वतां। **वेशः** संभोगार्थं स्त्रीपुंसयोर्भृतिः ॥ ८४ ॥

(५) **नन्दनः।** 'राजतो धनमन्विच्छे'दिति यदुक्तं तत्र नियममाह **नेति। राज्ञो**ऽपत्यं राजन्यः, क्षत्रिय इति यावत्। तस्मात्प्रसूतिर्यस्य स राजन्यप्रसूतिः। **अराजन्यप्रसूतितो**ऽराजन्यप्रसूतेः। षष्ठचर्थे तसिर्द्रष्टव्यः। तस्य द्रव्यं न **प्रतिगृह्णीयात्। सूनाचक्रध्वजवताम्** सूना हिंसा तद्वान्सूनावान् चक्रं तैलयन्त्रं तद्वांश्चक्रवान्। सुराया उत्पादकः सुराध्वजस्तद्वान्ध्वजवान्, सुराकारीत्यर्थः। **वेशो** वेश्याकर्म ॥ ८४ ॥

(६) **रामचन्द्रः। अराजन्यप्रसूतितः।** न राजवंशोद्भवः तस्य अक्षत्रवंशप्रसूतितः राज्ञः **सकाशात्** प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्। **सूनी** हिंसकः। **चक्री** तैलिकः। **ध्वजी** मद्यकर्ता। एतेषां **वेशेनैव** जीवतां प्रतिग्रहं न च गृह्णीयात् ॥ ८४ ॥

(७) **मणिरामः। अराजन्यप्रसूतितः** राज्ञः राजन्यशब्दः क्षत्रियवाची, तेन अक्षत्रियप्रसूतस्य **राज्ञो** धनं **न प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः।** तथा **सूना चक्रध्वजवतां** सूना वधस्थानं, तद्यस्यातीति सूनावान्पशुमारणपूर्वक मांसविक्रयजीवी। चक्रवान् तिलादिबीजवधजीवी **तैलिकः। ध्वजवान् मद्यविक्रयी शौंडिकः।** वेशः 'पण्यस्त्रिया भृतिः तया यो जीवति स्त्री पुरुषो वा स वेशवान् एषांचन प्रतिगृह्णीयात् ॥ ८४ ॥

(८) **गोविन्दराजः। न राज्ञ इति।** "राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणं" इति क्षत्रिय एव राजन्य **उच्यते।** तस्य सन्ततिरपत्यं विशेषवचनात् क्षत्रिय एव राजन्यप्रसूतिः न राजन्यप्रसूतिः

**अराजन्यप्रसूतिः**। अक्षत्रियः तस्मात् अक्षत्रियाद्राज्ञः प्रकरणादनापदि न प्रतिगृह्णीयात् तथा सौनिकतैलिकमद्यवणिजां पण्यस्त्रीव्यवहारेण च जीवतां न प्रतिगृह्णीयात् ।। ८४ ।।

**दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।।**
**दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ।। ८५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उत्तरस्योत्तरस्य दोषगुरुत्वज्ञापनार्थमेतत्। आपद्युपायो वक्ष्यते ।। ८५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **दशसूनासमं** तावत्प्राग्युक्तं। सूनादिपदानि तद्वल्लक्षकानि वेश्या तु स्वपदेनैवोपात्ता तत्रापि वेश इति पठन्ति। **नृपो**ऽराजन्यप्रसूतिस्तत्प्रक्रमात्। एवं राजेत्यत्रापि ।। ८५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **गोविन्दराजस्तु** 'दशवेश्यासमो नृप' इति पठति। **मेधातिथि**-प्रभृतयः प्राञ्चो दशवेशसमो नृप इति पठन्ति। सूनादिशब्दैस्तद्वानुपलक्ष्यते। दशसूनावत्सु यावान्दोषस्तावानेकस्मिंश्चक्रवति तैलिके। यावान्दशसु तैलिकेषु दोषः तावानेकध्वजवति शौण्डिके। यावान्दशसु ध्वजवत्सु दोषस्तावानेकत्र वेशवति। यावान्दशसु वेशवत्सु दोषस्तावानेकत्र राजनि उत्तरोत्तरनिन्दा चेयं पूर्वदातृसंभवे सत्युत्तरवर्जनार्थमपेक्षया योज्यते ।। ८५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एतेषां सौनिकादिचतुर्णामपि प्रतिग्रहो न कार्यः दोषवत्त्वेऽप्येतेषां नाराजन्यनृपतुल्यतेत्याह **दशेति**। सूनाया दोषप्रायश्चित्तार्थं संकरीकरणं खरोष्ट्रमृगे-भाणामित्युक्तं। तद्दशगुणश्चक्रिणि तद्दशगुणः शौण्डिके तद्दशगुणो वेश्यायां। तद्दशगुणो नृप इति आपदि पूर्वपूर्वान्लाभ उत्तरोत्तरस्य धनं ग्राह्यमिति तात्पर्यं उत्तरोत्तरस्य दोषाधिक्यात्। **गोविन्दराजस्तु** दशवेश्यासम इति पठति ।। ८५ ।।

(५) **नन्दनः**। **एतेषां** तारतम्यमाह **दशेति**। **नृपः** अराजन्यप्रसूतिरिति विभक्ति परिणमय्यानुषज्यते। राजनिन्दार्थो दशसूनादीनामुपन्यास इति केचित् ।। ८५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **चक्री** तैलिकः **दशसूनासमः** ।। ८५ ।।

(७) **मणिरामः**। उत्तरोत्तरनिंदामाह **दशसूनासममिति** ।। ८५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **दशसूनासममिति**। दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः। **सूना** आघातनस्थानं दशसु सूनासु यावान् सौनिकस्य दोषः तावान् चकवर्तिनि तैलिके। दशसु च तैलिकेषु यावांस्तावान् **ध्वजिनि** मद्यवणिजि। दशसु ध्वजिषु यावांस्तावान् वेशवति। दशसु वेशवत्सु यावांस्तावान् नृपे। एवं चोत्तरोत्तरनिन्दातिशयदर्शनेन आपदि पूर्वदातृसंह्वे उत्तरः परिहरणीयः ।। ८५ ।।

**दशसूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ॥**
**तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सूनया चरति **सौनिकः**। **वाहयति** स्वार्थसाधने व्यापारयति। **घोरः** भीषणोऽयं, नरकादिहेतुत्वात् ॥ ८६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **दशसूनासहस्राणी**त्युक्तार्थसङ्क्षेपः ॥ ८६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सूनया चरतीति **सौनिकः**। एवं संकलनया यत्सौनिको दशसहस्राणि स्वार्थे व्यापारयति तेन तुल्यो राजा मन्वादिभिः स्मृतः। तस्मात्तस्य प्रतिग्रहो नरकहेतुत्वाद्भयानकः क्षत्रियस्यापि च ॥ ८६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सूनया चरति **सौनिकः**। एवं संकलनया यानि **सूनादशसहस्राणि वाहयति** स्वार्थे व्यापारयति यः स सौनिकः **तेन तुल्यो राजा** अराजन्यस्तस्य **प्रतिग्रहो घोरो** भीषणः ॥ ८६ ॥

(५) **नन्दनः**। **वाहयति** प्रवर्तयति **राजा** अराजन्यप्रसूतिरित्येव ॥ ८६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **दशेति**। **दशसूनासहस्राणि यः वाहयति तेन तुल्यः स्मृतो राजा सौनिकः**। सूना प्राणिहिंसा अराजन्यप्रसूतितः **राज्ञः प्रतिग्रहो घोरः** ॥ ८६ ॥

(७) **मणिरामः**। सूनया चरतीति **सौनिकः**। यः सौनिकः स्वार्थे **दशसूनासहस्राणि वाहयति** व्यापारयति। तत्तुल्यो **राजा** मन्वादिभिः **स्मृतः** ॥ ८६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एवं चोक्तकलनया—**दशसूनासहस्राणीति**। **दशसूनासहस्राणि यः सौनिकः** स्वार्थे व्यापारयति **तेन तुल्यो राजा** मन्वादिभिः **स्मृतः**। अतस्तत्संबन्धी **प्रतिग्रहो** नरकपातहेतुत्वात् भीषणीयः ॥ ८६ ॥

**यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥**
**स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अवयुत्यवादेन राजप्रतिग्रहे निन्दा। **लुब्ध** आदानशीलः सामन्तकादिभ्यः।

**उच्छास्त्रवर्ती**। 'श्रुतशीले च विज्ञाये'त्यादि शास्त्रमतिक्रम्य व्यवहरति असद्दण्डपरस्त्रीहरणादिना। **पर्यायेण** एकत्र फलमनुभूयान्यत्र गच्छति।

**नरकशब्दो** निरतिशयदुःखवचनः। केवलं दुःखश्रवणार्थापत्त्या वाऽऽदेशविशेषवचनः। **एकविंशति**संख्याऽर्थवादः ॥ ८७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **राज्ञो** राजन्यजातीयस्यापि **लुब्धस्य** वा शास्त्रविरुद्धाचरणशीलस्य वा **यो गृह्णाति** तस्य वक्ष्यमाणो दोषः। **पर्यायेण** क्रमेण ॥ ८७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **यो राज्ञः** कृपणस्य शास्त्रोल्लङ्घनेन प्रवर्तमानस्य प्रतिग्रहं करोति स क्रमेणैतान्वक्ष्यमाणैकविंशतिनरकान्गच्छति ॥ ८७ ॥

(४) **राघवानन्दः।** उक्तं दूषणमाह **यो राज्ञ** इति। अनुवादमात्रं घोरनरकसंबन्धाय। **लुब्धस्य** परधनगर्धिनः कृपणस्य वा। एकविंशतिनरकलक्षणं **मार्कण्डेयपुराणोक्तं** ज्ञेयम्। याति भोगाय गच्छतीत्यर्थः ॥ ८७ ॥

(५) **नन्दनः।** राजन्यप्रसूतेरपि लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनो धनप्रतिग्रहे दोषमाह **य इति। इमान्वक्ष्यमाणान्** ॥ ८७ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** एतादृशस्य **राज्ञः** यः प्रतिग्रहं गृह्णाति सः **पर्यायेण** क्रमेण **इमान् एकविंशतिनरकान्** याति ॥ ८७ ॥

(७) **मणिरामः।** लुब्धस्य कृपणस्य **उच्छास्त्रवर्तिनः।** शास्त्रोल्लंघनेन प्रवर्तमानस्य ॥ ८७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। य इति।** क्षत्रियस्यापि च कृपणस्य शास्त्रातिक्रमवर्तिनः राज्ञो **यः** प्रतिग्रहं करोति **स इमान्** वक्ष्यमाणान् **नरकान्** यातनास्थानानि क्रमेण प्राप्नोति ॥ ८७ ॥

**तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥**
**नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ ८८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः। नरकमिति** कालसूत्रविशेषणम् ॥ ८८ ॥

(३) **कुल्लूकः।** पूर्वश्लोके सामान्यतो 'नरकानिमानेकविंशति'मित्युक्तम्, इदानीं तानेव नामतो निर्दिशति **तामिस्रमिति** त्रिभिः। एतेषां नरकाणां स्वरूपं **मार्कण्डेयपुराणादिषु** विस्तरेणोक्तं तत एवावगन्तव्यम् ॥ ८८–९० ॥

(५) **नन्दनः।** नरकानाह **तामिस्रमिति** ॥ ८८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** नरकाणां नामान्याह **तामिस्रमिति त्रिभिः** ॥ ८८ ॥

(७) **मणिरामः** नरकानाह **तामिस्रमिति त्रिभिः** ॥ ८८–९० ॥

(८) **गोविन्दराजः। तामिस्रमिति** ॥ ९० ॥

**संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥**
**संहातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥**

**लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ॥**
**असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥ ९० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** श्लोकत्रयं स्पष्टार्थम् ॥ ८७–९० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पन्थानं** सदा वर्त्मवहनेन श्रमहेतुं **नदीं** वैतरणीं। **लोहचारकं** यत्र तप्तलोहोपरि गम्यते। तामिस्रादयोऽन्धःसंज्ञा नरकभेदाः ॥ ९० ॥

(८) **गोविन्दराजः। सञ्जीवनमिति। लोहशङ्कुमृजीषमिति।** अत्र **यातीत्य-**

नुवर्तते। तत्रान्धकाररूपस्तामिस्रः निबिडान्धकारात्मकान्धतामिस्रौ **महारौरवरौरवौ** महाकालकल-कलकलात्मकौ **कालसूत्राख्यो** नरको यत्र महती सर्वप्रकारपीडा। संजीवनं 'यत्र' बहुशः संजीव्य व्यापाद्यन्ते। **महावीचिर्यत्र** महाकल्लोलैर्नीयते। **तपनो**ऽग्न्यादिसन्तापात्मकः। **संप्रतापनः** कुम्भीपाकः। **सङ्घातो**ऽत्यन्तसंवृते प्रदेशे बहुनामवत् स्थानम्। **काकोलं** यत्र काकैर्भक्ष्यन्ते। **कुड्मलं** यत्र रज्जुभिः पीडनम्। **पूतिमृत्तिकः** पुरीषगन्धमृत्तिकः। **लोहशङ्कुः सूचीभेदनं** यत्र। **ऋजीषं** पिष्टपचनप्रक्षेपो यत्र। **पन्था** यत्राह्यते। **शाल्मलो** यत्र शाल्मलिकण्टकैस्तुद्यते। **नदी** यत्र नद्याऽपह्रियते। **असिपत्रवनं** यत्र करपत्रैर्विदार्यते। **लोहदारको** यत्र निगडबन्धः॥ ८८–९० ॥

**एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥**
**न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥ ९१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य प्रतिग्रहनिषेधविधेरुपसंहार एषः। राज्ञः प्रतिग्रहो विविधदुःखनरकादिहेतुरिति जानन्तो **विद्वांसो ब्राह्मणा न राज्ञः** प्रतिगृह्णीयुः। **प्रेत्य** जन्मान्तरे, **श्रेयः** कल्याणम्, ये कांक्षन्ति कामयन्ते। प्रेत्येति तु ल्यबन्तप्रतिरूपकं शब्दान्तरम्। **ब्रह्म** वेदस्तं **वदन्ति** पठन्ति। विद्वद्ग्रहणं ब्रह्मवादिग्रहणं च दुःखातिशयदर्शनार्थम्। तेषां नातीव प्रतिग्रहादोषः। वक्ष्यति (४।१९१) "तस्मादविद्वान्बिभियादिति" ॥ ९१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विद्वांसो** वेदार्थज्ञाः ब्रह्मवादिनो वेदाध्येतारः **राज्ञो** राजमात्रस्य लुब्धत्वादिदोषाशङ्कया ॥ ९१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रतिग्रहो विविधनरकहेतुरिति जानन्तो ब्राह्मणा धर्मशास्त्रपुराणादिविदो वेदाध्यायिनो जन्मान्तरे श्रेयःकामवन्तो न राज्ञः प्रतिगृह्णीयुः। विदुषो हि प्रतिग्रहे नातीव दोषः। यतो वक्ष्यति 'तस्मादविद्वान्बिभियादि' (४।१९१) ति। तेषामपि निषिद्धो राजप्रतिग्रहः प्रचुरप्रत्यवायफलक इति दर्शयितुं विद्वद्ग्रहणं ब्रह्मवादिग्रहणं च ॥ ९१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **एतदुक्तं** नरकसाधनत्वं। **विद्वांसो** धर्मशास्त्रपुराणादिविदः। **ब्रह्मवादिनो** वेदार्थनिपुणा अपि **प्रेत्य श्रेयोभिकाङ्क्षिणः**। अराजन्यप्रसूते **राज्ञो न प्रतिगृह्यन्ती**त्यर्थः ॥ ९१ ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तं निगमयति **एतदिति**। एतदेकविंशतिनरकपतनम्। **राज्ञः** क्षत्रियस्याक्षत्रियस्य च लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ ९१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्रह्म वेदं वदन्ति ते **ब्रह्मवादिनः**। **एतत्** नरकस्वरूपं **विदन्तः** जानन्तः। **राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति**। कीदृशा ब्राह्मणाः? **प्रेत्य** परलोके **श्रेयोभिकाङ्क्षिणः** ॥ ९१ ॥

(७) **मणिरामः**। **एतद्विदंतः** प्रतिग्रहो विविधनरकहेतुरिति जानंतः ॥ ९२ ॥

(८) **एतदिति**। **एतत्** राजप्रतिग्रहफलं शास्त्रज्ञा वेदाध्यायिनः **ब्राह्मणा** जानन्तः परलोकदुःखाभावार्थिनः **राज्ञो** धनं **न प्रतिगृह्णन्ति** ॥ ९१ ॥

**ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।।**
**कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ।। ९२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । त्रियामा रात्रिस्तस्याः पश्चिमो **ब्राह्मो मुहूर्तस्तत्र** निद्रां त्यजेत् । विबुद्धश्च तस्मिन्काले **धर्मार्थावनुचिन्तयेत्** । यस्मिंश्च धर्मे आरोप्यमाने यादृशः शरीरक्लेशो भवति तमपि चिन्तयेत् । स्वल्पश्चेद्धर्मो महान्तं कायक्लेशं जनयति, यो धर्मान्तरविरोधी, तं परिहरेत् ।

अर्थोऽपि सेवादिः अतिक्लेशकरः, सोऽपि वर्ज्यः । 'सर्वत एवात्मानं गोपायेदि'ति । अनिश्चित्य न किंचित्कुर्यात् । न च मनोराज्यादिविकल्पान् कुर्यात् । स्वभावो ह्ययं पुरुषाणामसति बाह्ये व्यापारे मनसि विकल्पाः परद्रव्याभिलाषादिरूपाः समुद्भवन्ति । तन्निवृत्त्यर्थमिदं पुरुषार्थम् ।

तस्यां वेलायां साध्यसाधनभावेन चिन्त्यो **वेदस्य तत्त्वार्थः** । रहस्यमात्मज्ञानं **चिन्तयेद्वे**दान्तविधिनाऽभ्यसेत् । अथवा कर्मकाण्डेऽपि यो वेदस्तस्यार्थस्तं निरूपयेत् । 'अयं विधिः' 'अयमर्थ' 'इदं कर्मैवंरूपम्' 'इयमत्र देवता' 'इदं द्रव्यम्' 'अयमत्राधिकारी' 'इयमितिकर्तव्यता' इत्यादि स्वबुद्धया निश्चिनुयात् । व्याख्यातॄणां मतभेदाद्धेतुन्निरूपयेदस्य सम्यग्ज्ञानमस्य भ्रान्तिरिति ।। ९२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **ब्राह्मो मुहूर्त** उषःकालः । **धर्मार्थौ** धर्मार्थसाधने **अनुचिन्तयेदू**हापोहाभ्यां विविच्य निर्धारयेत् । एतद्रागिणः कार्यमुक्तं । विरक्तस्य चाह **कायक्लेशानिति** तन्मलांस्तथा वेदस्य **तत्त्वं** तात्पर्यविषय**मर्थं** ब्रह्म ।। ९२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । **ब्राह्मो मुहूर्तो** रात्रेः पश्चिमो यामः ब्राह्मी भारती तत्प्रबोधहेतुत्वात् । मुहूर्तशब्दोऽत्र कालमात्रवचनः । तत्र **बुध्येत** । **दक्षेणापि** "प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् । यामद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पत' इति ब्रुवता तत्र प्रबोधोऽभ्यनुज्ञातः । **गोविन्दराजस्तु** रात्रेः पश्चिमे मुहूर्ते बुध्येतेत्याह । **धर्मार्थौ च** परस्पराविरोधेनानुष्ठानार्थमवधारयेत् । तथा धर्मार्थार्जनहेतून्**कायक्लेशान्**निरूपयेत् । यदि महान्**कायक्लेशो**ऽल्पौ च **धर्मार्थौ** वा तदा तं परिहरेत् । **वेदस्य तत्त्वार्थं**ब्रह्मकर्मात्मकं निश्चिनुयात्तस्मिन्समये बुद्धिप्रकाशात् ।। ९२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । स्नातकस्य कृत्यं प्रतिजानीते **ब्राह्मेति** । रात्रेः पश्चिमो यामो **ब्राह्ममुहूर्तः** ब्राह्मी भारती तत्प्रबोधहेतुत्वात् । मुहूर्तशब्दोऽत्र कालमात्रवचनः । तत्र बुध्येत । **दक्षेणापि** 'प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् । यामद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पत' इति ब्रुवता तत्र बोधोऽभ्यनुज्ञातः । **गोविन्दराजस्तु** रात्रेः पश्चिमे मुहूर्ते बुध्येतेत्याह । **तन्मूलान्** धर्मार्थाश्रयहेतून् । तत्रापि स्वल्पफलबह्वायासांस्त्यजेदित्यर्थः । **वेदतत्त्वार्थं ब्रह्म चिन्तयेदिति** भावः ।। ९२ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ संक्षेपतो नित्यकर्तव्यमाह **ब्राह्म इति** । **ब्राह्मो मुहूर्तो** रात्रेः पश्चिमो यामः ।। ९२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। तन्मूलान्धर्मार्थमूलान् कायक्लेशान् चिन्तयेत्। तत्त्वार्थमेव चिन्तयेत्** ।। ९२ ।।

(७) **मणिरामः। ब्राह्मो मुहूर्तः**। रात्रेः पश्चिमो यामः। ब्राह्मी भारती। तत्प्रबोध हेतुत्वात्। **धर्मार्थौ च** परस्पराविरोधेनाऽनुष्ठानार्थमवस्येत्! **कायक्लेशांश्च** निरूपयेत् यदि क्लेशो भूयान्, अल्पश्च धर्मः अर्थो वा तदा तं परिहरेत्। **वेदतत्त्वार्थं** ब्रह्मकर्मात्मिकं निश्चिनुयात् ।। ९२ ।।

(८) गोविन्दराजः। ब्राह्म इति। रात्रेः पश्चिमे **मुहूर्ते प्रतिबुध्येत**। ततो **धर्मार्थौ**। इतरेतरविरोधेनानुष्ठानार्थं विचारयेत्। तथा धर्मार्थतन्मूलभूतं **कायक्लेशं** इयता कायक्लेशेन इयान् इयान् धर्मो (ऽर्थो) आऽर्ज्यत इत्येवं चिन्तयेत्। वेदस्य च कः पारमार्थिकोऽर्थः स्यादित्येवं तमपि चिन्तयेत् ।। ९२ ।।

**उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।।**
**पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ।। ९३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अनन्तरं प्रभातायां रात्रौ शयनं जह्यात्। **आवश्यकं** मूत्रविट्-त्यागः। प्रायेण तस्यां वेलायां पुरुषास्तं कुर्वन्ति। तत्र आवश्यकत्याग उच्यते–मुखदन्तधावनादिश्च तं कृत्वा **कृतशौचः**। 'एका लिङ्गे'त्यादिविधिनाऽऽचान्तः।

**समाहितो** विकल्पान्तरतिरस्कारेण **सन्ध्यां तिष्ठेत्। जपन्सावित्रीं** भगवति सवितरि मनो दध्यात् **'चिरम्'**। अर्कदर्शनावधिः काल **उक्तः** 'सन्ध्यासमयः'। ततोऽप्यधिकं कालं जपेदायुःकाम इत्येवमर्थमयं प्रागुक्तः सान्ध्यो विधिरन्तर्हितः। **अपरां** च **सन्ध्यां स्वे काले** अस्तमयसमयादारभ्य तारकोदयादूर्ध्वमपि ।। ९३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। आवश्यकं** मूत्रत्यागादि। **जपंस्तिष्ठेदिति** तिष्ठञ्जपेदित्यर्थः। **स्वकाले** स्वीये **अपरां** सायन्तनीं चिरमिति पूर्वसन्ध्यातोऽधिकजपकरणमुक्तम्। एतच्चासीनेनेति **ब्रह्मचारिप्रकरण** उक्तमेव ।। ९३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तत उषःकाले शय्याया **उत्थाय** सति वेगे मूत्रपुरीषोत्सर्गं कृत्वा अत्र **कृतवक्ष्यमाणशौचोऽनन्यमनाः पूर्वां सन्ध्यां** चिरगायत्रीजपं कुर्वन्वर्तेतार्कदर्शनात्। अयं विधिः प्रातःसन्ध्यायामुक्तः। उदयादूर्ध्वमपि जपेदायुरादिकाम इति विधानार्थोऽयमारम्भः। **अपरामपि सन्ध्यां स्वकाले** प्रारभ्य तारकोदयादूर्ध्वमपि जपन्नासीत ।। ९३ ।।

(४) **राघवानन्दः। उत्थाय** शय्यातः। विण्मूत्रोत्सर्गादिकमाचरेदित्या**वश्यकम्**। **कृतशौचः** 'एका लिङ्गे'त्यादिना। **समाहित** आचान्तः **पूर्वा**मासूर्योदया**ज्जपंस्तिष्ठेत्। अपरां** सायन्तनीं **स्वकाले** तारकोदयादूर्ध्वमपि जपन्नासीतेति चिरं सम्यगृक्षविभावनादित्यत्रोक्तम् ।। ९३ ।।

(५) **नन्दनः। स्वकाले**ऽर्धास्तमितभास्करे। चिरमासीतेत्यध्याहार्यम् ।। ९३ ।।

(६) रामचन्द्रः। उत्थाय आवश्यकं मूत्रपुरीषादि कृत्वा। कृतशौचः पूर्वां सन्ध्यां गायत्रीं जपन् स्वे काले सूर्योदयपर्यन्तं तिष्ठेत्। अपरां सायंकाले चिरं तिष्ठेत्। नक्षत्रदर्शनपर्यन्तं जपंस्तिष्ठेत्। आ तारकोदयात्॥ ९३॥

(७) मणिरामः। उत्थाय शय्यातः। आवश्यकं मूत्रपुरीषोत्सर्गादिकं। समाहितः अनन्यमनाः। पूर्वां सन्ध्यां चिरं गायत्रीजपं कुर्वन् तिष्ठेत्। अपरां सायंसंध्यामपि स्वकाले॥ ९३॥

(८) गोविन्दराजः। उत्थायेति। ततः उषःकाले शयनादुत्थाय सति संभवे मेहनादि कृत्वा कृतवक्ष्यमाणशौचः संयतमनाः उक्ते काले पूर्वापरे सन्ध्ये अर्कदर्शनादूर्ध्वमपि जपं कुर्वन् उदितहोमी वर्तेत। अनुदितहोम्यपि होमं कृत्वा चासीत। आयुरादिदीर्घसन्ध्याफलविधानार्थमिदं पुनस्सन्ध्याभिधानम्॥ ९३॥

**ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः॥**
**प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥ ९४॥**

(१) मेधातिथिः। यदर्थोऽयं पुनर्विधिस्तद्दर्शयति। आयुरादिफलकामो दीर्घकालसन्ध्याजपं कुर्यात्। सत्यपि नित्यत्वे दैर्घ्यादिगुणात्फलमिदम्। अनग्निकस्य प्रोषितस्यैतत्सम्भवति; अन्यस्य त्वग्निहोत्रकालोपरोधो दीर्घसन्ध्याविधिसम्पादनात्। 'दीर्घसन्ध्या' गुणत उच्यते। सन्ध्यासहचरिते जपादिविधौ सन्ध्याशब्दो वर्तते। दीर्घा सन्ध्यैषामिति बहुव्रीहिः। ऋषिग्रहणमर्थवादः॥ ९४॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। अवाप्नुयुरवाप्नुवन्। यशः परैः स्वगुणानां ज्ञाने कीर्तिस्तेषां परैः कीर्तनम्॥ ९४॥

(३) कुल्लूकः। आयुरादिकामाधिकारोऽयमिति दर्शयन्नाह ऋषय इति। सन्ध्याशब्दोऽत्र सन्ध्यानुष्ठेयजपादिपरः यस्मादृषयो दीर्घसन्ध्यानुष्ठानाद्दीर्घमायुर्जीवन्तः प्रज्ञां यशोऽमृतां च कीर्तिमध्ययनादिसंपन्नं यशश्च प्राप्नुयुः तस्मादायुरादिकामैश्चिरसन्ध्यामुपासीत॥ ९४॥

(४) राघवानन्दः। तत्रार्थवादमाह ऋषय इति। दीर्घसन्ध्यत्वात्सन्ध्याशब्दोऽत्रानुष्ठितजपसङ्ख्यापरः सहस्रपरमामित्युक्तेः॥ ९४॥

(५) नन्दनः। सन्ध्योपासनं प्रशंसति ऋषय इति। दानधर्मकृता ख्यातिर्यशः। त्यागकृता कीर्तिः॥ ९४॥

(६) रामचन्द्रः। प्रज्ञादि सर्वं अवाप्नुयुः॥ ९४॥

(७) मणिरामः। दीर्घकालसन्ध्याफलमाह ऋषय इति॥ ९४॥

(८) गोविन्दराजः। तथा चाह ऋषय इति। प्रज्ञामिति। यस्मादृषयो दीर्घसन्ध्यानुष्ठानात् दीर्घमायुःप्रज्ञावन्तश्च यशः स्वर्याताश्च कीर्तिमध्ययनादिसंपत्तीश्च प्राप्तवन्तः, तस्मादेतत्कामेन दीर्घसन्ध्यानुष्ठानं कर्तव्यम्॥ ९४॥

**श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधि ॥**
**युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥ ९५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** श्रवणयुक्ता पौर्णमासी **श्रावणी**। एवं **प्रौष्ठपदी**। तत्रोपाकृत्योपाकर्माख्यं कर्म कृत्वा। **यथाविध्यधीयीत**। "प्राक्कूलान्" इत्यादिप्रागुक्तो विधिः स्मर्यते। **युक्त**स्तत्परः। **छन्दांसि** वेदान्। छन्दःशब्दोऽयं वेदवचनो न गायत्र्यादिवचनः। तेन ब्राह्मणादीनप्यधीयानस्यैष नियमविधिः। उभयत्रापि चायं युक्त एव, प्रत्ययाविशेषात्। अयं विकल्पो व्यवस्थितः। "छन्दोगाः प्रौष्ठपद्यामुपाकुर्वन्ति, बह्वृचा आध्वर्यवाः श्रावण्याम्" ॥ ९५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** श्रावणस्य पूर्णिमा श्रावणी। भाद्रपदस्य प्रौष्ठपदी **उपाकृत्य** वेदमारभ्य **यथाविधि** गृह्योक्तविधिना **युक्तः** सर्वदा युक्तः। अध्यापयेदिति वाच्ये **अधीयीतेति** अध्येतुर्ब्रह्मचारिणोऽध्ययमेवाध्ययनकाल इति दर्शयितुमुक्तम्। अध्ययनपदेन वाच्याध्यापनमपि गृह्यते; न त्वध्यापनपदेनाध्ययनमिति स्नातकप्रकरणे त्वस्याभिधानम्। उपाकर्मोत्सर्गहोमयोराचार्यस्यौपासने करणार्थम्। **अर्धपञ्चमान्**पञ्चानस्यार्धेन सहितांश्चतुरो **मासान्**। श्रावण्यां चेत् ॥ ९५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** श्रावणस्य पौर्णमास्यां भाद्रपदस्य वा स्वगृह्यानुसारेणोपाकर्माख्यं कर्म कृत्वा **सार्धांश्चतुरो मासान्ब्राह्मण उद्युक्तो** वेदा**नधीयीत** ॥ ९५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **श्रावण्यां** भाद्रपदपौर्णमास्यां वा स्वगृह्यानुसारेण उपाकर्म कृत्वा **छन्दांसि** मन्त्रब्राह्मणादीनि छन्दःशब्दस्यात्र वेदवचनत्वात् सार्धचतुरो मासा**नधीयीत** ॥ ९५ ॥

(५) **नन्दनः।** इदानीमुपाकरणविधिमाह **श्रावण्यामिति**। श्रवणेन युक्ता पौर्णमासी **श्रावणी**। तथा प्रोष्ठपदनक्षत्रयुक्ता **प्रौष्ठपदी**। अथ छन्दांसि मन्त्रान्गायत्रीजगत्यादिरूपान् उभयत्रा**र्धपञ्चमान्**। व्यवस्थितविषयोऽयं विकल्पः ॥ ९५ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** द्वाभ्यामाह **श्रावण्यामिति**। **यथाविधि** स्वगृह्योक्तविधिना **उपाकृत्य** वेदमारभ्य उपाकरणसंज्ञं कर्म कृत्वा **श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां** वा छन्दोगाः प्रौष्ठपद्यां बह्वृचा अध्वर्यवः श्रावण्यां कुर्युः, विप्रः अर्धपञ्चमो मासोऽग्रे येषां सार्धचतुष्टयानित्यर्थः। **अधीयीत** पठेत् ॥ ९५ ॥

(७) **मणिरामः।** **प्रौष्ठपद्यां** भाद्रपदपौर्णमास्यां। **उपाकृत्य** उपाकर्माख्यं कर्म कृत्वा **अर्धपंचमान्** पंचममासार्धसहितान्। सार्धांश्चतुरो मासानित्यर्थः ॥ ९५ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **श्रावण्यामिति**। श्रावणस्य भाद्रपदस्य वा पौर्णमास्यां उपाकर्माख्यं (कर्म) गृह्योक्तविधानेन कृत्वा ततः सार्धांश्चतुरो मासान् ब्राह्मणो यत्नवान् **वेदानधीयीत** ॥ ९५ ॥

**पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ॥**
**माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥ ९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** अर्धपञ्चमेषु मासेषु गतेषु यः **पुष्यो** नक्षत्रम् **तत्रोत्सर्जनं** कर्तव्यम्। उत्सर्गोक्तं कर्म गृह्यकारैराम्नातम्। **बहिरि**त्यनावृते देशे। अनयोरुपाकर्मोत्सर्गयोर्गृह्यात्स्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ ९६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **तिष्ये** पौषमासे पुष्यर्क्षे भाद्रयां चेन्माघस्य शुक्लप्रतिपदि शुक्लः शुक्लः पक्षः। **प्रथमेऽह्नि** प्रतिपदि एवं च दर्शान्तो मासो मनोरपेक्षित इति गम्यते। **उत्सर्जनं** निरन्तरवेदाध्ययनत्यागार्थं कर्म ॥ ९६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** ततः पक्षाधिकेषु चतुर्षु मासेषु यः पुष्यस्तत्र ग्रामाद्बहिर्गत्वा स्वगृह्यानुसारेणोत्सर्गाख्यं कर्म **कुर्यात्।** अथवा **माघशुक्लस्य प्रथमेऽह्नि पूर्वाह्णे कुर्यात्।** माघशुक्ले च विधिः प्रौष्ठपद्यां येनोपाकर्म न कृतं तद्विषयः ॥ ९६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्र मासे यः पुष्यो नक्षत्रं तत्र स्वगृह्यानुसारेण ग्रामाद्बहिर्गत्वा उत्सर्गाख्यं कर्म कुर्यात्, **शुक्लस्य** पक्षस्येति शेषः। **प्रथमेऽह्नि** प्रतिपदि ॥ ९६ ॥

(५) **नन्दनः।** बहिर्ग्रामाच्छन्दसामुपाकृतानामु**त्सर्जनमु**त्सर्जनाख्यं कर्म। **प्रथमेऽह्नि** प्रथमायां तिथौ। **पुष्ये**ऽध्वर्यूणां माघे च्छन्दोगानाम् ॥ ९६ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **बहिः** ग्रामाद्बहिः। अर्धपञ्चमेषु गतेषु **पुष्ये** नक्षत्रे पौर्णिमायां **छन्दसां** वेदानां **उत्सर्जनं** वेदसमाप्तिं **द्विजः कुर्यात्** ॥ ९६ ॥

(७) **मणिरामः।** **पुष्ये** पौषमासे। **बहिः** ग्रामाद्बहिः। **उत्सर्जनं** उत्सर्गाख्यं कर्म। श्रावण्यामुपाकर्मणि पौषे उत्सर्गः। प्रौष्ठपद्यां चेदुपाकर्म तदा माघे उत्सर्ग इत्यर्थः ॥ ९६ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** येन श्रावण्यामुपाकर्म कृतं स द्विजोऽर्धपञ्चमेषु मासेषु पौषमासे तु **पुष्य**नक्षत्रे ग्रामा**द्बहि**र्निष्क्रम्य **छन्दसामुत्सर्गा**ख्यं गृह्योक्तं कर्म **कुर्यात्।** येन प्रौष्ठपद्यां कृतं स माघशुक्लपक्षस्य प्रथमेऽह्नि प्राप्ते **पूर्वाह्णे वा कुर्यात्** ॥ ९६ ॥

**यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ।**
**विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **उत्सर्गं** कृत्वा द्वे अहनी रात्रिमियन्तं नाधीयीत। **तदहर्निशम्।** द्वितीयं चाहरेव न रात्रिरित्येतावन्तं कालं **विरमेन्ना**धीयीत। उभयतोहःपक्षा रात्रिः **पक्षिणी।** **यद्वा** यस्मिन्नहन्युत्सर्गः कृतस्तदहः सैव च रात्रिः अनध्याये। द्वितीयस्मिन्नहन्यध्येतव्यम्। आद्ये तु पक्षे द्वितीयमहरनध्यायो रात्रौ त्वध्ययनमुच्यते ॥ ९७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** 'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी'त्य**मरः।** **पक्षिणीं रात्रि**मुत्तरदिवसास्तपर्यन्तं **विरमेद**ध्यापनात्। **तदेकमहर्निशं** यस्मिन्नहनि उत्सर्गः कृतः तिष्यमाघोत्सर्गयोः क्रमादध्ययनपक्षद्वयान्वयः ॥ ९७ ॥

(३) **कुल्लूकः।** एवमुक्तशास्त्रानुसारेण **ग्रा**माद्बहिश्छन्दसामुत्सर्गाख्यं कर्म कृत्वा **पक्षिणीं रात्रिं विरमेन्ना**धीयीत। द्वे दिने पूर्वापरे **पक्षा**विव यस्या मध्यवर्तिन्या रात्रेः सा **पक्षिणी** रात्रिः। अस्मिन्पक्षे तूत्सर्गाहोरात्रे द्वितीयदिने चा**ह्नि** नाध्येतव्यं, द्वितीयरात्रौ त्वध्येतव्यम्।

अथवा तमेवैकमुत्सर्गाहोरात्रमनध्यायं कुर्यात्। विद्यानैपुण्यकामं प्रत्ययमहोरात्रानध्याय-विधिः ॥ ९७ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **विरमेत्** नाधीयीत **पक्षिणी** अहर्द्वयगता रात्रिः। तथा **चामरः** 'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी'ति। यद्वा यस्मिन्नहनि उत्सर्गः कृतस्तदहस्तां रात्रिं च विरमेदित्यनुषज्यते ॥ ९७ ॥

(५) **नन्दनः।** 'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी'त्यमरः। **विरमे-**द्वेदाध्ययनात् ॥ ९७ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **यथाशास्त्रं** यथाविधि छन्दसां वेदानां **उत्सर्गं बहिः कृत्वा पक्षिणीं रात्रिं विरमेत्** ॥ ९७ ॥

(७) **मणिरामः।** **पक्षिणीं** 'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी'इत्यमरोक्तां। विरमेत्। नाधीयीत अथवा तदेवैकमहोरात्रं नाधीयीत ॥ ९७ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **यथाशास्त्रमिति।** एवमुक्तशास्त्रानतिक्रमेण छन्दसामुत्सर्गाख्यं कर्म ग्रामाद्बहिः कृत्वा ततः उभयतोऽह्नी पक्षाविव यस्या मध्यवर्तिन्या रात्र्याः तां **रात्रिं** तमेवैकमहोरात्रमनध्यायं कुर्यात् ॥ ९७ ॥

**अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ॥**
**वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** अतोऽस्मादुत्सर्गकर्मणः कृतादूर्ध्वं परतः **शुक्लपक्षेषु छन्दांसि** मन्त्रब्राह्मणसमुदायात्मकान्वेदान्पठेत्। **अङ्गानि च** शिक्षायज्ञसूत्रव्याकरणादीनि कृष्णपक्षेषु **संपठेत्** ॥ ९८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **छन्दांसि** वेदान् ॥ ९८ ॥

(३) **कुल्लूकः।** उत्सर्गानध्ययनादूर्ध्वं मन्त्रब्राह्मणात्मकं वेदं शुक्लपक्षेषु **संयतः** पठेत्। **सर्वाणि** तु **वेदाङ्गादीनि** शिक्षाव्याकरणादीनि **कृष्णपक्षेषु** पठेत् ॥ ९८ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **शुक्लेषु** द्वितीयादित्रयोदश्यन्तासु शुक्लपक्षतिथिषु वेदाङ्गानीति **वेदाङ्गानि** शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति षट्। तदुक्तं 'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्'॥ ९८ ॥

(५) **नन्दनः।** **अत ऊर्ध्व**मुत्सर्गादूर्ध्वम् ॥ ९८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **अत ऊर्ध्वं** उत्सर्गानन्तरं। **शुक्लेषु** पक्षेषु **छन्दांसि** पठेत् **वेदाङ्गानि कृष्णपक्षेषु पठेत्** शिक्षाकल्पादीनि ॥ ९८ ॥

(७) **मणिरामः।** **अत ऊर्ध्वं** उत्सर्गानध्ययनादूर्ध्वम् ॥ ९८ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **अत इति।** उत्सर्गानध्यायादूर्ध्वं शुक्लपक्षेषु संयमवान् वेदानधीयीत। **कृष्णपक्षे तु वेदाङ्गानि** व्याकरणादीनि नियमितः **पठेत्** ॥ ९८ ॥

**नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ।।**
**न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ।। ९९ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** यत्र वर्णस्वराभिव्यक्तिः स्फुटा न भवति तदविस्पष्टम् । तच्च द्रुतायां वृत्तौ प्रायेण भवति । **निशान्ते** पश्चिमरात्रिभागे । सुप्तोत्थितो यदाऽधीयीत पुनः श्राम्येत्तदा न शयीत । "न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य शयीत तु" एवं युक्तः पाठः ।।९९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** शूद्रसंनिधौ न च जनानां बहूनां संनिधौ निशान्ते ब्रह्माधीत्य परिश्रान्तोऽपि **न स्वपेदि**त्यन्वयः ।। ९९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** स्वरवर्णाद्यभिव्यक्तिशून्यं **शूद्रसन्निधौ** च नाधीयीत । तथा रात्रेः पश्चिमे यामे सुप्तोत्थितो वेदमधीत्य **श्रान्तो न पुनः स्वप्यात्** ।। ९९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** किंच नेति । **निशान्ते** पश्चिमे यामे **ब्रह्माधीत्य** अन्ते श्रान्तः **पुनर्न स्वपेत्** ।। ९९ ।।

(५) **नन्दनः । ब्रह्माधीत्य परिश्रान्तः** परिश्रान्तात्माऽपि ।। ९९ ।।

(६) **रामचन्द्रः । शूद्रजनसमूहसंनिधौ नाधीयीत । अविस्पष्टं** वेदं नाधीयीत **निशान्ते** निशाप्रान्ते **ब्रह्म** वेदं **अधीत्य** पठित्वा **परिश्रान्तः** सन् **पुनः न स्वपेत्** ।। ९९ ।।

(७) **मणिरामः ।** रात्रेः पश्चिमे सुप्तोत्थितो वेद**मधीत्य श्रांतो न पुनः** सुप्यात् ।। ९९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नाविस्पष्टमिति ।** सर्वदा **अविस्पष्टम**व्यक्तं न पठेत् । तथा **शूद्रजनसन्निधौ** नाधीयीत । तथा सुप्तोत्थितः **न** रात्रेः पश्चिमे भागे वेदा**नधीत्य श्रान्तः** सन् **पुनः** सुप्यात् ।। ९९ ।।

**यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ।।**
**ब्रह्म च्छन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि ।। १०० ।।**

(१) **मेधातिथिः । छन्दांसि** गायत्र्यादीन्यभिप्रेतानि तैः कृतं युक्तं **ब्रह्म** ऋक्साम । अनेकार्थत्वात्करोतेरयमत्रार्थो व्याख्यायते । यथा गोमयान्कुर्विति संहारे, पृष्ठं कुर्वित्युन्मर्दने, एवमत्र युजेरर्थो वर्तते । ब्रह्म च छन्दश्च ब्रह्मच्छन्दसी, ताभ्यां कृतं युक्तं **ब्रह्मछन्दस्कृतम्** । 'ब्रह्म' ब्राह्मणम्, यजुर्वेदे ब्रह्म यजूंषि गायत्र्यादियुक्तांश्च मन्त्रान् । एकस्मिन्नेवावस्थानके पठन्ति । न यथा बाह्वृच्ये छान्दोग्ये च विभागेनैकस्मिन्ग्रन्थे गत्वा अन्यत्र ब्राह्मणम् । एवं प्रकारभेदाद्वेदानामेवं युक्तमिति पूर्वे व्याख्यातवन्तः ।

**यथोदितेन ।** पूर्वो विधिरनापद्युपसंह्रियते । आपदि अध्यापकस्यासंनिधानम् बहुदेवताविभागमपेक्षमाणस्य तत्रागुणयतः विस्मृतं स्यात् । तस्मादापद्ययं विभागो नादरणीयः।। १०० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । ब्रह्म** ब्राह्मणं तत्र वेदत्वाविशेऽप्यापत्काल एकदेशमात्राध्ययने कर्तव्ये **छन्दस्कृत**मेव विधिना गुरुकुलवासादिपूर्वकं पठेत्, न तु ब्राह्मणभागं । मन्त्राणां

साक्षात्कर्माङ्गतयाऽन्तरङ्गत्वात्। यथा विधिगृहीतानामेव च विनियोगार्हत्वात्। ब्राह्मणं तूपदेशमात्रार्थत्वाद्बहिरङ्गम्। अतो नियमेनाधीतादप्यर्थप्रतिपत्तिविरोधः। अनापदि तु कृत्स्नस्य वेदस्य नियमेनाध्येतव्यत्वात्। **ब्रह्म छन्दस्कृतं युक्त** उद्युक्तो नियमेनैव पठेदित्यर्थः। यदप्यनध्ययनादिकमध्ये तु ब्रह्मचारिणः प्रकरणे वक्तुं युक्तं। कथंचित्सन्ध्यादिवत्स्नातकव्रतत्वमप्याविष्कर्तुमत्र संक्षेपतः पुनरुच्यते। तथापि गहनत्वादस्यार्थस्य ब्रह्मचारिणश्चाव्युत्पन्नत्वात् स्नातक एव ज्ञातुमेतच्छक्नोतीति दर्शयितुमत्रैवोक्तं। सन्ध्याशौचादिकं त्वस्या तत्काल एव वेद्यमित्याशयेन तत्रोक्तम्॥ १००॥

(३) **कुल्लूकः।** यथोक्तविधिना नित्यं **छन्दस्कृतं** गायत्र्यादिछन्दोयुक्तं मन्त्रमात्रं पठेत्, मन्त्राणामेव कर्मान्तरङ्गत्वात्। अनापदि सम्यक्करणादौ सति **ब्रह्म** ब्राह्मणमन्त्रजातं च **यथोक्तविधिना** युक्तः सन्द्विजः **पठेत्**॥ १००॥

(४) **राघवानन्दः।** **ब्रह्मात्र** वेदः। **कृतं** गायत्र्यादिछन्दोयुक्तं मन्त्रजातं। अनापदि धारणशक्तौ॥ १००॥

(५) **नन्दनः।** उपसंहरति **यथेति।** **यथोदितेन** विधिनाऽर्धपञ्चमासान्पठेदित्युक्तेन **विधिना।** **छन्दस्कृतं** गायत्र्यादिछन्दोनुगतं मन्त्रभागम्। **नित्यम**ापद्यनापदि च। **अनापदि** ब्राह्मणभागं छन्दस्कृतं **चोभयं पठेत्।** एतदुपाकृत्याध्ययनं स्नातानामेवेति प्रकरणसामर्थ्याद्विज्ञेयं ब्रह्मचारिणमित्यभिधानाच्च॥ १००॥

(६) **रामचन्द्रः।** **छन्दस्कृतं** मन्त्रभागं पठेत् **ब्रह्म** ब्राह्मणं **छन्दस्कृतं** मन्त्रभागसहितं **पठेत्** ब्राह्मछन्दस्कृतं ब्राह्मणभागं पठेत्, ब्रह्मछन्दसी ताभ्यां युक्तं **अनापदि युक्तः** नियमवान् **द्विजः**॥ १००॥

(७) **मणिरामः।** **छंदस्कृतं** गायत्र्यादिछंदोयुक्तमंत्रमात्रं पठेत्। **अनापदि** सम्यगिद्रियादौ सति। **छंदस्कृतं ब्रह्म** ब्राह्मणं मंत्रजातं च। **युक्तः यथोक्तविधिना** युक्तः सन् पठेत्॥ १००॥

(८) **गोविन्दराजः।** **यथोदितेनेति।** अध्यापकस्य कर्मान्तरव्यग्रत्वं आत्मनश्च बहुवेदने ह्यापत् तदभावे पूर्वोक्तविधिना द्विजो यत्नवान् सर्वदा गायत्र्यादिच्छन्दोयुक्तं ऋक्सामाख्यं **ब्रह्म** पठेत्। तथा **ब्रह्म** ब्राह्मणं गायत्र्यादिछन्दोयुक्तमन्त्रमिश्रं यजुर्वेदाख्यम्। मन्त्रब्राह्मणयोर्मिश्रपाठात् वैलक्षण्ये सत्ययं पृथङ्निर्देशः॥ १००॥

**इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत्॥**
**अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम्॥ १०१॥**

(१) **मेधातिथिः।** **इमान्वक्ष्यमाणाननध्यायानधीयानो विवर्जयेत्। अध्यापनं च कुर्वाणः।** अध्यापनग्रहणमनधीयतो ग्रहणार्थमभ्यासार्थं च। **नित्यम्** नोत्सर्गादेव प्रभृति। किं तर्हि? अर्धपञ्चमेष्वपि मासेषूपाकर्मणः प्रभृति। **शिष्याणाम्।** अनुवादः॥ १०१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **अधीयानो** गुरोः। स्वतो वा पठन्॥ १०१॥

(३) **कुल्लूकः। इमान्**वक्ष्यमाणाननध्यायान्**सर्वथा** यथोक्तविधि **अधीयानः** शिष्याध्यापनं च कुर्वाणो **गुरुर्वर्जयेत्** ।। १०१ ।।

(४) **राघवानन्दः। इमान्** वक्ष्यमाणान् ।। १०१ ।।

(५) **नन्दनः। इमान्**वक्ष्यमाणान् । नित्यं ब्रह्मचर्याश्रमेऽपीत्यर्थः ।। १०१ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** अथ अनध्यायानाह **इमानिति।** इमान् वक्ष्यमाणलक्षणान् **अनध्यायान्। द्विजः विसर्जयेत्।** कीदृशः ? **विधिपूर्वकं शिष्याणामध्यापनं कुर्वाणः** ।। १०१ ।।

(७) **मणिरामः। इमान्** वक्ष्यमाणाननध्यायान् ।। १०१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। इमानिति।** पूर्वोक्तेन विधानेना**धीयानः** शिष्यांश्चाध्यापयन् वक्ष्यमाणाननध्यायान् सर्वदा वर्जयेत् ।। १०१ ।।

**कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने ।।**
**एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ।। १०२ ।।**

(१) **मेधातिथिः। अनिलो** वायुः। वेगेन वाति वायौ वाय्वन्तरसंघर्षाद्ध्वनिः श्रूयते यत्र स 'कर्णश्रवो' वायुः। कर्णाभ्यां श्रूयते यः **स कर्णश्रवः**। साधनंकृतेति समासः। अवस्थाविशेषोपलक्षणार्थं कर्णग्रहणम्। श्रूयते कर्णाभ्यामेव। तेन यदैवं वायुशब्दः श्रूयते तदा नाध्येतव्यम्। पांसून्समूहति पांसून्समाहरति **पांसुसमूहनः**। पांसुर्धूलिः। उपलक्षणं चैतत्, तथाभूतस्य वायोर्वा। यतस्ततश्च वृष्टे देवे यदि वायुरीदृशो वाति तावत्कालोऽनध्यायः। **अध्यायज्ञा** अध्यापनविधिज्ञाः ।। १०२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। रात्रौ** श्रवणोद्वेजकशब्दकारिणि **दिवा च पांसुसमूहन**समर्थवेगवति वायौ वात्यनध्यायः स च वक्ष्यमाणोऽकालिकरूपः। **एतावे**तावेव नतु वक्ष्यमाणानि विद्युत्स्तनितादीनि। **अध्यायज्ञाः** अध्ययनधर्मज्ञाः ।। १०२ ।।

(३) **कुल्लूकः। रात्रौ** कर्णश्रवणयोग्यशब्दजनके वायौ वाति। **गोविन्दराजस्तु** कर्णाभ्यामेव श्रवणोपपत्तेरतिशयविवक्षया कर्णश्रव इत्युक्तम्; तेनातिशब्दवति वायौ वातीत्यभिहितवान्। **दिवा च** धूलिपटलोत्सारणसमर्थे वायौ वहति **एतौ** वर्षाकाले**ऽनध्यायौ** तात्कालिकावध्यापनविधिज्ञा मुनयः कथयन्ति ।। १०२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** कर्णश्रवणयोग्यशब्दजनके वायाविति केचित्। कर्णाच्छब्दं श्रावयति व्यावर्तयतीति प्रतिकूले महावायाविति **रात्रौ** नाधीयीत। तथा **दिवापि पांसुसमूहने** पांसून् समूहयति वर्तुलीकुर्वति वायौ च न ग्रीष्मादिषु तत्र वायुकृतपांसूनां सातत्यात्। **अध्यायज्ञाः** अध्यापनविधिज्ञाः मन्वादय इति ।। १०२ ।।

(५) **नन्दनः। कर्णश्रवे** सशब्दे। **पांसुसमूहने** पांसुसमुत्थापने ।। १०२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। दिवा पांशुसमूहने** पांशूत्कर्षे। **रात्रौ अनिले कर्णश्रवे** श्रवणोद्वेगशब्दकारिणि काले **वर्षासु एतौ अनध्यायौ। अध्यायज्ञाः** अध्यापनधर्मज्ञाः ।। १०२ ।।

(७) **मणिरामः**। अनध्यायान्ताह **कर्णश्रव इति**। **कर्णश्रवे**ऽनिले रात्रौ, रात्रौ कर्णश्रवणयोग्यशब्दजनके **वायौ वाति सति** अनध्यायः। दिवा तु धूलिपटलोत्सरणसमर्थे वायौ वाति सति अनध्यायः। **एतौ वर्षा**काले तात्कालिकावनध्यायौ, नान्यकाले इत्यर्थः ।। १०२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कर्णश्रव इति**। कर्णाभ्यामेव श्रवणोपपत्तेः अतिशयविवक्षया **कर्णश्रव** इत्युक्तम्। तेन रात्रावतिशब्दवति वायौ, दिवा च रजस्समाहरणसमर्थे वाति, **एतौ वर्षा**काले तावत्कालिकावनध्यायौ **अध्ययनविधिज्ञाः कथयन्ति** ।। १०२ ।।

**विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ।।**
**आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ।। १०३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **विद्यु**त्तडित्। स्तनितं गर्जितम्। द्वन्द्वनिर्देशाद्युगपदेतेषु समुच्चितेष्वनध्यायः। **महोल्का** दिवः पततां ज्योतिषां प्रभा उक्तास्तासां **संप्लवः** अत्रामुत्र च पतनम्। **आकालिक**शब्दो निमित्तकालादारभ्यान्येद्युर्यावत्स एव कालः स उच्यते। मनुग्रहणं श्लोकपूरणार्थम्। विकल्पार्थमन्ये ।। १०३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विद्यु**दादित्रयस्य सन्ध्याकालादन्यदा **संप्लवे** मिलितानां त्रयाणामुत्पत्तौ तथा **महोल्कानां** संप्लवे विद्युदाद्यन्यतरेण सह युगपत्पाते **आकालिकं** यत्र काले निमित्तमुत्पन्नं दिनान्तरे तत्कालोत्पत्तिपर्यन्तम्। एतच्च वर्षाव्यतिरिक्तकाल एव ।। १०३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **विद्युद्गर्जितवर्षेषु** द्वन्द्वनिर्देशाद्युगपदुपस्थितेषु महतीनां **चोल्कानां संप्लव** इतस्ततः पाते सति। **आकालिक**मिति तु निमित्तकालादारभ्यापरेद्युर्यावत्स एव कालस्तावत्पर्यन्तमनध्यायमेतेषु **मनु**रवोचत् ।। १०३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच नैमित्तिकमनध्यायमाह **विद्युदिति द्वाभ्यां**। द्वन्द्वनिर्देशाद्युगपत्संपातेषु विद्युदादिषु **आकालिकं** निमित्तकालादारभ्य परेद्युस्तावन्तं कालं वर्षास्वपि ।। १०३ ।।

(५) **नन्दनः**। वर्षास्वित्यनुषज्यते। विद्युदादिप्रादुर्भावकालादारभ्य नाडिकाषष्टिरकालः। तत्र **भवमाकालिकमनध्यायं** विद्यात्। येयमुक्ता विद्युदादिप्रवृत्तिः सा सन्ध्ययोश्चेदाकालिकानध्यायनिमित्तं भवति ।। १०३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। एतेषु **आकालिकं** कालं मर्यादीकृत्येत्याकालिकं तावत्कालपर्यन्तं **अनध्यायः** ।। १०३ ।।

(७) **मणिरामः**। **स्तनितं** गर्जितं। द्वंद्वनिर्देशाद्युगपदुपस्थितेषु नत्वेकैकेषु। **संप्लवे** इतस्ततः पाते सति आकालिकं यद्दिने यस्मिन्काले एतानि जातानि तत्कालादारभ्याऽग्रिमदिनेऽपि तत्कालपर्यंतमित्यर्थः ।। १०३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **विद्युत्स्तनितवर्षेष्विति**। विद्युद्गर्जितवर्षेषु युगपदुपस्थितेषु महतां च दिव्यज्योतिर्विशेषेण पुनः स्थानतश्च पाते सति एतेषु निमित्तकालादारभ्यापरेद्युर्यावत् स एव कालः तावत् प्रकृतासु वर्षासु **अनध्यायं मनुराह** ।। १०३ ।।

**एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ॥**
**तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ १०४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। नायमनध्यायो यस्यांकस्यां चनवेलायामुपजातेष्वेतेषु। किं तर्हि? **प्रादुष्कृताग्निषु**, सन्ध्याकाल इत्यर्थः। तदा ह्यग्नयो जुहूषया नियमतः प्रादुष्क्रियन्ते। 'प्रादुः'शब्दः प्राकाश्ये। **अनृतौ**। ऋतुर्वर्षास्ताभ्योऽन्यः शरदादिः। तत्र **वाऽभ्रदर्शने**। प्रादुष्कृताग्निष्वित्यपेक्ष्यते ॥ १०४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। य उक्तकालिकोऽनध्यायस्तं तदेव विद्याद्यानेतान् विद्युदादीन् त्रीन् संप्लुतान् महोल्का असंप्लुताः। **प्रादुष्कृताग्निषु** उद्धृताग्निहोत्रेषु कालेष्व**भ्युदितानु**त्पन्नान् **विद्या**दुपलभेत। तथा**नृतौ** वर्षादीनृतावभ्रदर्शने वृष्टिहेतुमेघदर्शने **आकालिकोऽनध्यायः** सोऽपि प्रादुष्कृताग्निकाल एव ॥ १०४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **एतान्विद्यु**दादीन् यदा होमार्थं प्रकटीकृता**ग्निकालेषु** सन्ध्याक्षणेषु युगपदुत्पन्नाञ्जानीयात्, तदाऽनध्यायं वर्षासु कुर्यान्न सर्वदा। तथा**ऽनृतौ प्रादुष्कृताग्नि-कालेषु** मेघदर्शनमात्रे सत्यनध्यायो न वर्षासु ॥ १०४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **एता**न्विद्युदादीन् सन्ध्याकालेष्वेव विजानीयाद्यदा तदा परेद्युरपि तावत्कालपर्यन्तमनध्ययनं कुर्यान्न यदा कदाचिद्विद्युदादीनां समुच्चय इत्याह **एतानिति**। **प्रादुष्कृताग्निषु** प्रादुष्कृतः प्रकटीकृतो होमार्थमग्निर्येषु सन्ध्याकालेष्वित्यर्थः। **अनृतौ** वर्षा-भ्योऽन्यत्राभ्रदर्शने च ॥ १०४ ॥

(५) **नन्दनः**। अन्यदा चेन्नेत्याह **एतांस्त्विति**। **प्रादुष्कृताग्निषु** विहृतेष्वग्निषु, सन्ध्ययोरिति यावत्। **एतान्विद्यु**दादीन्यदा प्रादुष्कृता**न्विद्यात्**पश्येत्तदा**ऽऽकालिकमनध्यायं** विद्यात्। **अनृतौ** वर्षर्तुव्यतिरिक्ते चर्तौ। अभ्रसंप्लव आकालिक**मनध्यायं विद्यात्** ॥ १०४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एता**ननध्यायान् अभ्युदितसंज्ञान् **यदा प्रादुष्कृताग्निषु** उद्धृता-ग्निहोत्रकालेषु प्रजागरिताग्निषु तदा **अनध्यायं** विद्यात्। **अनृतौ** अकाले **अभ्रदर्शने अन-ध्यायम्** ॥ १०४ ॥

(७) **मणिरामः**। **एतान्** विद्युदादीन्। प्रादुष्कृताग्निषु होमार्थं प्रकटीकृताग्नि-कालेषु संध्याक्षणेषु **अभ्युदितान्** उत्पन्नान्। **अनृतौ** वर्षाकालातिरिक्तकाले **प्रादुष्कृताग्नि-**कालेषु अभ्रदर्शनेऽपि मेघमात्रदर्शनेऽपि **अनध्यायः**। तथा च वर्षाकाले समुदितेषु अन्यकाले केवलमेघदर्शने एवानध्याय इत्यर्थः ॥ १०४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एतानिति**। **एतान्** विद्युदादीन् जुहूषया प्रकटी**कृताग्निषु** सन्ध्यालक्षणेषु कालेषु यदोपजातान् जानीयात् **तदाऽनध्यायं** कुर्यात्। न सर्वदा **वर्षासु** एतदुत्पाते तथा वर्षाभ्यो**ऽन्यत्राभ्रदर्शने** सत्य**नध्यायः** ॥ १०४ ॥

**निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥**
**एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ १०५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **निर्घात** आन्तरिक्ष उत्पातध्वनिः। **ज्योतिषां** चन्द्रादित्यगुरुप्रभृतीनां **उपसर्जनं** परिवेषणमितरेतरपीडनं च। **ऋतावपि**। अपिग्रहणं वर्षासु किल नोत्पाता गण्यन्त इत्यभिप्रायेण ॥ १०५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **उपसर्जने** उपसर्जनहेतौ विकारे युद्धच्छिद्रादौ **एतान्** निर्घातादीन् **ऋतौ** वर्षास्वपि। एतच्चाप्रादुष्कृतेष्वप्यग्निषु वाक्यान्तरोपात्तत्वात् ॥ १०५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** अन्तरिक्षभवोत्पातध्वनौ भूकम्पे सूर्यचन्द्रतारागणानां चोपसर्गे सत्यनध्यायानिमानाकालिकाञ्जानीयात्। आकालिकशब्दार्थो व्याकृत एव। **ऋतावपि** वर्षासु किल भूकम्पादयो न दोषावहा इत्यभिप्रायेणर्तावपीत्युक्तम्। **अपि**शब्दादन्यत्रापि ॥ १०५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किं चान्यदित्याह **निर्घात इति** त्रिभिः। **निर्घाते** अनभ्रगर्जिते। **उपसर्जने** सूर्याद्युपरागे। **एतान्** निर्घातादित्रीन् **आकालिकान्** तेषां कालानियमात्। इदमपि निर्घातादिघटितमाकालिकं **ऋतावपि** वर्षास्वपि। ऋतावपीत्यनुवादमात्रम् ॥ १०५ ॥

(५) **नन्दनः।** **उपसर्जन** उपप्लवे। वैवर्ण्ये चलनादावपिशब्दादनृतावपीति गम्यते ॥ १०५ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **ज्योतिषां** चन्द्रादित्यगुरुप्रभृतीनां **उपसर्जने** उपसर्गहेतुभूते ग्रहयुद्धे। **परिवेषणे** अन्योन्यपीडनेन ॥ १०५ ॥

(७) **मणिरामः।** **निर्घातः** अंतरिक्षभवोत्पातध्वनिः। **ज्योतिषां** सूर्यादीनां। **उपसर्जने** ऋतावपि सर्वदा ॥ १०५ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **निर्घात इति**। अन्तरिक्षे उत्पातध्वनौ भूकम्पे आदित्यादीनां परिवेषणे सति **अनृतावपि** वर्षास्वपि। अपिशब्दात् अन्यदाऽपि **आकालिकाननध्यायान्** जानीयात् ॥ १०५ ॥

**प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने ॥**
**सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥ १०६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** त्रिसंनिपाते पूर्वेणाकालिकमुक्तम्, अनेन द्वयोः सन्निपातेऽपि **सज्योति**रुच्यते। स्तनितं च तन्निःस्वनश्चासौ स्तनितनिःस्वनः। विद्युच्च स्तनितनिःस्वनश्च **विद्युत्स्तनितनिःस्वनम्**। समाहारद्वन्द्वः। तस्मिन्सन्ध्यायामुपजाते द्वये **सज्योति**रनध्यायः। सूर्यो 'ज्योतिः' **दिवा**। नक्तमग्नि'र्ज्योतिः'। प्रातःसन्ध्यायामुत्पन्ने दिवैवानध्यायो, रात्रौ तु नास्ति। एवं पश्चिमसन्ध्यायां रात्रावनध्यायो, न प्रातरध्ययनदोषः। विद्युत्स्तनितवर्षाणां त्रयाणां प्रकृतानां विद्युत्स्तनितयोर्विभज्य निर्देशो भवति। वर्षा शेषः, तस्मिंस्तृतीये दृश्यमाने पूर्वोक्त आकालिकोऽनध्यायः। तदपेक्षयोक्तं **यथा दिवा** तथा **रात्रावपि**।

'ज्योतिः' प्रसिद्धतरं ज्योतिष्टोमादि। शेषमिति पाठः। शेषं हूयमानमहरनध्यायहेतुर्भवतीति। अथ कस्मान्नैवमुक्तं "शेषं त्वाकालिकं स्मृतमिति?"। विचित्रा श्लोकानां कृतिर्मनोः ॥ १०६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रादुष्कृताग्निकाले च **विद्युत्सहिते स्तनितनिःस्वने** वृष्टिशून्ये **सज्योतिर्यदि** प्रातस्तदा यावदादित्यदर्शनं। यदि सायं तदा यावन्नक्षत्रस्थितिः। **शेषे** प्रागुक्ते वक्ष्यमाणे चानध्यायनिमित्ते सति **यथा दिवा** आकालिकादिनियतोऽनध्यायस्तथा रात्रावपि निमित्तपाते ग्राह्यः। एतच्च दिवसस्यैवाध्ययनमुख्यकालत्वात् रात्रौ निमित्तपातेऽपि नाध्ययनशङ्कानिरासार्थमुक्तं। शेषमिति क्वचित्पाठः। तत्राप्येवं ज्ञेयम्॥ १०६॥

(३) **कुल्लूकः**। होमार्थं प्रकाशितेष्वग्निषु सन्ध्यायां यदा विद्युद्गर्जितशब्दावेव भवतो न तु वर्षं तदा **सज्योतिर**नध्यायः स्यात्, नाकालिकः। तत्र यदि प्रातःसन्ध्यायां विद्युद्गर्जितशब्दौ तदा यावत्सूर्यज्योतिस्तावदनध्यायो दिनमात्रमेव। यदि सायंसन्ध्यायां तौ स्यातां तदा यावन्नक्षत्रज्योतिस्तावदनध्यायो रात्रिमात्रमिति। रात्रौ स्तनितविद्युद्वर्षेष्विति **त्रयाणां** पूर्वोक्तानां **शेषे** वर्षाख्ये त्रितये जाते यथा दिवाऽनध्यायस्तथा रात्रावप्यहोरात्र एवेत्यर्थः॥ १०६॥

(४) **राघवानन्दः**। सन्ध्यायां विद्युच्छब्दयोरेव सन्निपातो निमित्तान्तरमित्याह **प्रादुरिति। सज्योतिः**। यदि प्रातःसन्ध्यायां विद्युत्स्तनितशब्दौ तदा यावत्सूर्यस्तिष्ठति तावदनध्यायः। **शेषे** सायं तदा **रात्रौ यथा दिवा** सज्योतिस्तथेत्यर्थः॥ १०६॥

(५) **नन्दनः**। **प्रादुष्कृतेष्वग्निषु** सन्ध्याकालयोरित्यर्थः। **विद्युत्स्तनितनिःस्वने रात्रौ तथा दिवा च** सज्योतिर्नक्षत्रसूर्यसहितं रात्र्यह्नोः शेषमनध्यायः स्यात्। सन्ध्याकालाभ्यामुत्तरं मेघतिरोधानाभावेऽपि यथाऽनध्यायः स्यादित्युक्तं **सज्योतिरिति**। **'विद्युत्स्तनितवर्षेष्वि'**त्यादिश्लोकोक्तस्तनितशब्दो मन्दगर्जितविषयः। अस्मिञ्छ्लोके स्तनितग्रहणं महागर्जितविषयमित्यपुनरुक्तिः॥ १०६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सज्योतिः** तावत्कालपर्यन्तं **अनध्यायः स्यात्**। प्रातरारभ्यानध्यायः **यथा दिवा तथा रात्रौ** सायं सन्ध्यामारभ्य रात्रावनध्यायः। **शेषे** तात्कालिकः॥ १०६॥

(७) **मणिरामः**। प्रातः होमकाले यदि विद्युत्स्तनितौ द्वावेव भजतः, नतु वर्षः तदा **सज्योतिः** दिवैवा**ऽनध्यायः** नाऽऽकालिकः। यदि सायं होमकाले भवतस्तदा **रात्रौ**ऽनध्यायः। **शेषे** विद्युदादीनां त्रयाणां शेषे वर्षाख्ये तस्मिन्नपि जाते **यथा दिवा तथा रात्रौ** अहोरात्र एवानध्याय इत्यर्थः॥ १०६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रादुष्कृतेष्विति**। अग्नीनां पुनरपासितभस्मतया प्रकटीकरणवेलायां सन्ध्याकाले विद्युद्गर्जितशब्दावेव यदा भवतो न वर्षं तदा यावज्ज्योतिः तावदेवानध्यायः नाकालिकं, दिवाऽऽदित्यज्योतिः रात्रौ तारकाः। अतः पूर्वं सन्ध्यायामेतदुत्पाते दिवैवानध्यायः पश्चिमायां चोत्पाते रात्रावेव। **शेषेषु** च पुनर्वर्षाख्ये तृतीय उपजाते **यथा दिवा तथा रात्रा**वप्यनध्याय इत्युक्तानुवादः॥ १०६॥

**नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च॥**
**धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वशः॥ १०७॥**

(१) **मेधातिथिः।** निपुणं धर्मं ये कामयन्ते ते ग्रामनगरयोर्नाधीयीरन्। धर्मशब्दश्च स्वर्गादौ धर्मफले वर्तते। यदि वाऽधर्मेणाननुवेधा 'धर्मस्य नैपुण्यं', तेन सुपरिपूर्णो विध्यर्थोऽनुष्ठितो भवति। अतश्चाशक्तस्यानुज्ञानं भवति। **पूतिगन्धः** कुत्सितगन्धस्तस्मिन्नासिकापथं गच्छत्यनध्यायः। **सर्वशः** सर्वस्मिन्। शवगन्धेऽपि ॥ १०७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** व्रतपारणमात्रेण विद्यामसमाप्यैव यः स्नास्यति स **धर्मनैपुणकामः।** विद्यानिरपेक्षब्रह्मचारिधर्ममात्रानुरोधकत्वात्। यस्तु विद्यां समाप्यैव व्रतमसमाप्यैव स्नास्यति स विद्यानैपुणकामः। तत्राद्यस्य ग्रामादिमध्येऽनध्यायो नित्यमत्राध्ययनसंभवेऽपि, यस्तु द्वितीयस्तस्य न तत्रानध्यायः। तत्परित्यागः तस्य विद्याधिगमनियमानिष्पत्तेः। **नगरेषु** चेति खेटखर्वटादिसंग्रहार्थश्चाकारः। **पूतिगन्धे** तूपलभ्यमाने **सर्वशः** सर्वेषां विद्यानैपुणकामानामपीत्यर्थः ॥ १०७ ॥

(३) **कुल्लूकः।** नैपुण्यविषयो धर्मातिशयार्थिनो ग्रामनगरयोः सर्वदाऽनध्यायः स्यात्। कुत्सितगन्धे **च सर्वस्मिन्न**पि गम्यमाने **धर्मनैपुण्यकाम**ं प्रत्ययं **विद्यानध्यायो**पदेशो विद्यानैपुण्यकामस्य कदाचिदध्ययनमनुजानाति। ये शिष्याः केचिद्गृहीतवेदाध्ययनजन्मादृष्टेच्छवस्ते **धर्मनैपुण्यकामाः** केचित्प्रथमाध्येतारो विद्यातिशयमात्रार्थिनस्ते विद्यानैपुण्यकामाः ॥ १०७ ॥

(४) **राघवानन्दः।** अध्यापनं हि प्रत्यवायपरिहारार्थं कर्माङ्गबोधनार्थं धर्मार्थं वेदरक्षार्थं च। तत्राद्यमुपनीतमात्रकृत्यं, द्वितीयमुपकुर्वाणस्य। 'विद्यानिपुणकामानामस्वाध्यायो न विद्यत' इति उक्तेः कामं वेदाङ्गानीति न्यायाच्च तृतीयं स्नातकस्य। चतुर्थं तु त्रयाणामेव ब्रह्मोज्झतेति निन्दाश्रवणात्। 'स्वाध्याये चैव नित्यशः' इति च तत्र धर्मकामानां विशेषमाह **नित्यानध्याय इति त्रिभिः।** ग्रामनगरयोः पूतिगन्धे वाऽनध्यायः 'एवमग्रामे ऋचोऽधीते' इत्यादिप्रयोगात् फलार्थिनामेतेषु नाध्ययनमित्यन्वयः ॥ १०७ ॥

(५) **नन्दनः। धर्मनैपुण्यकामानामित्यनेना**त्राध्ययने दोषमात्रं सूचितम् ॥ १०७ ॥

(६) **रामचन्द्रः। धर्मनैपुण्यकामानां** धर्मराद्धस्वर्गादौ धर्मकाले च नैपुण्यं कामयन्ते तेषां धर्मनैपुण्यकामानां निपुणं धर्मं ज्ञात्वा तत्र स्थितानां **ग्रामेषु च** पुनः **नगरेषु** नित्यमनध्याय एव स्यात्। एतद्व्रतस्नातकविषयम् ॥ १०७ ॥

(७) **मणिरामः। धर्मनैपुण्यकामानां** धर्मातिशयार्थिनां। **पूतिगन्धे च** कुत्सितगं च **सर्वदा।** सर्वस्मिन् ग्रामनगरे गम्यमाने **नित्यानध्यायः** ॥ १०७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। नित्यानध्याय इति।** धर्मातिशयार्थिनां **ग्रामनगरयोः** सर्वदाऽनध्यायः स्यात्। कुत्सितगन्धेन च **सर्वस्मिन्नु**पलभ्यमानेऽनध्यायः अस्मिन्ननध्यायप्रकरणे नित्यशब्दादीनां क्वचित्क्वचिदभावात् तत्र तत्र नित्यत्वं अन्यत्र विकल्पः। **स च** धर्मनैपुणविद्यानैपुणकामभेदेन व्यवस्थितो ज्ञेयः। द्विविधा ह्यध्येतारः, धर्मनैपुणकामा विद्यानैपुणकामाश्च। तत्र ये स्वीकृतप्रायवेदाः केवलं नियमानुष्ठानजन्यमदृष्टातिशयमर्थयन्ते

ते धर्मनैपुणकामाः तेषामशेषानध्यायादरणम् । पुनः प्रथमाध्येतारः ते विद्यातिशयार्थिनः एषां नित्यत्वलिंगव्यतिरिक्तानध्यायादरणं नास्ति ।। १०७ ।।

**अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ।।**
**अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ।। १०८।।**

(१) **मेधातिथिः** । अन्तर्गतः शवो यस्मिन्मध्ये स्थितो, यावन्न निर्हृतः । **वृषलस्य** । नात्र शूद्रो वृषलस्तस्य प्रागेव निषिद्धत्वात् 'न शूद्रजनसंनिधौ'इति, किं तर्हि ? तत्प्रायिकेणाधार्मिकत्वं लक्ष्यते । तेन यः पापाचारस्तत्संनिधानाच्च तेन निषेधः ।

**रुद्यमाने** रुदनशब्दे सति । भावमात्रः रुद्यमानशब्दः । **समवायः** जनस्य । यत्र बहवो जनाः कार्यार्थमेकत्र संघटिता भवन्ति तादृशे देशे नाध्येयम् । अथवा 'जनस्य समवाये रुद्यमाने' रुदतीत्यर्थः । बहुषु रुदत्सु प्रतिषेधः । छान्दसं कर्तर्यात्मनेपदम् ।। १०८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **अन्तः**स्थितेऽन्तःस्थानगते भूम्युपरिभागसंयुक्ते **ग्रामे**, गतपदं ग्राममध्यनिखातस्य नानध्यायहेतुत्वेत्येतदर्थम् । एतच्चेषां ग्रामेऽध्ययनप्राप्तिस्तद्विषयम् । **वृषलस्या**चारशून्यस्य न शूद्रमात्रस्य, शूद्रसंनिधौ पुरा निषेधोक्तेस्तत्संनिधौ श्रवणयोग्यदेशे **रुद्यमाने** जनैः रोदनश्रवण इत्यर्थः । **समवाये** बहुतरसंपाद्यमेलके ।। १०८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अन्तर्गतः शवो यस्मिन् **ग्रामे** ज्ञायते तत्र । **वृषलो**ऽधार्मिकस्तस्य सन्निधौ न तु शूद्रः, तस्य 'न शूद्रजनसन्निधा'विति निषेधात् । **रुद्यमाने** रोदनध्वनौ । भावे लकारः । कार्यान्तरार्थं बहुजनमेलके सत्य**नध्यायः** ।। १०८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **अन्तर्गतशवे** अन्तर्गतत्वेन ज्ञातः 'शवो यस्मिन् **वृषलो**ऽत्राधार्मिकः' 'न शूद्रजनसन्निधा' (९९) विति निषेधोक्तेः । **रुद्यमान** इति भावसाधनं रोदने सति क्रियमाणे वा । जनानां **समवाये** निमित्तान्तरवशाज्जनानां मेलनं समवायस्तस्मिन् ।।१०८।।

(५) **नन्दनः** । **अन्तर्गतशवे**ऽन्तर्मनुष्यशवयुक्ते । पूर्वेण ग्रामानध्याये सिद्धे पुनः 'अन्तर्गतशवे ग्राम' इति निषेधो दोषातिशयख्यापनार्थः । **वृषलस्या**धर्मिष्ठस्य । **रुध्यमाने** राजपुरुषलुण्टाकादिभिर्ग्रामे **समवाये** संमर्दे ।। १०८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **अन्तःशवे ग्रामे** अनध्यायः स्यात् च पुनः **वृषलस्य** धर्मच्छेदकस्य **सन्निधौ अनध्यायः** । **च** पुनः **जनस्य समवाये रुद्यमाने अनध्यायः** ।। १०८ ।।

(७) **मणिरामः** । **अंतर्गतशवे** ग्रामे अंतर्गतः शवो यस्मिन् ग्रामे ज्ञायते तत्र**वृषलः** अधार्मिकः ।। १०८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **अन्तर्गतशव इति** । विद्यमानशवे, **वृषलस्य च** अधार्मिकस्य च सन्निधौ 'न शूद्रजनसन्निधौ' इति शूद्रस्योक्तत्वात् रोदने च, जनानां कार्यार्थमेकत्र सन्निधाने **सत्यनध्यायः** ।। १०८ ।।

**उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ॥**
**उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥ १०९ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** चतुर्मुहूर्तोऽर्धरात्रः। सैव महानिशा। प्रथमादर्धरात्राद् द्वौ मुहूर्तादुत्तराद् द्वौ। **उदके** नदीतडागादिस्थे। अन्तर्जले जपस्त्वनध्यायरूपत्वादघमर्षणादिर्न निषिध्यते। 'उदये' इत्यन्ये पठन्ति। प्रथमोदयकाले सूर्यस्यानध्यायः। **उच्छिष्टो** भुजिसम्बन्धेनाकृताचमनो यावत्। कृतमूत्रपुरीषोऽपि प्रागाचमनादुच्छिष्ट उच्यत एव। आचमनार्हाप्रायत्यमात्रवचन इत्यन्ये। तेन कृतनिष्ठीवनादिरपि गृह्यते।

**मनसाऽपि।** नान्यत्रानध्याये मनसा चिन्तनमभ्यनुज्ञायते। किं तर्हि? दोषगौरवार्थमेतेषां निमित्तानाम् ॥ १०९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **उदके** जलमध्ये **मध्यरात्रे** रात्रेर्मध्यमदण्डदशकमध्ये **विण्मूत्रे** विष्ठायां मूत्रे वा विषये **विसर्जने** त्यागे चकाराद्रेतसि, **उच्छिष्टः** भक्षणात् **श्राद्धभुक्** तदन्नभुक्। अत्र **मनसा चिन्तनस्य** निषेधात् अन्यत्र मानसोच्चारणे दोषाभावो गम्यते ॥ १०९ ॥

(३) **कुल्लूकः। उदकमध्ये मध्यरात्रे** च मुहूर्तचतुष्टये च 'निशायां च चतुर्मुहूर्तं'-मिति **गौतमस्मरणात्। गोविन्दराजस्तु** रात्रिमध्यप्रहरद्वय इत्युक्तवान्। तथा मूत्र-पुरीषोत्सर्गकालेऽन्नभोजनादिना **चोच्छिष्टो** निमन्त्रणसमयादारभ्य श्राद्धभोजनादहोरात्रं **यावन्मनसापि** वेदं **न चिन्तयेत्** ॥ १०९ ॥

(४) **राघवानन्दः।** निषेधादरार्थं पुनः **श्राद्धभुग्ग्रहणं न चिन्तयेद्वेदमिति** शेषः ॥ १०९ ॥

(५) **नन्दनः।** पूर्वार्धेऽनध्याय इत्यनुषज्यते। **चिन्तयेदित्यत्र** ब्रह्मेति परस्मादाकृष्यते। **मनसेत्यत्र** वचनादन्यस्य मनसा चिन्तनमभ्यनुज्ञातमिति गम्यते ॥ १०९ ॥

(७) **मणिरामः। उदके** उदकमध्ये स्थितो **न चिंतयेत्** वेदम् ॥ १०९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। उदकं इति।** जलमध्ये मध्यमे च **प्रहरद्वये महानिशाख्ये** 'महानिशा च विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम्' इति **देवलस्मरणात्।** मूत्रपुरीषकाले प्रागाचमनादुच्छिष्टः **श्राद्धभुक्** निमन्त्रणात् प्रभृति श्राद्धभोजनादहोरात्रं यावत् **मनसापि** वेदस्य न स्मरेत् ॥ १०९ ॥

**प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टनिकेतनम् ॥**
**त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** एक उद्दिश्यते यस्मिंस्तत् 'एकोद्दिष्टं' नवश्राद्धम्। तत्र 'निकेतनं' निमन्त्रणं प्रतिगृह्य अङ्गीकृत्य त्र्यहमनध्याय आमन्त्रणात्प्रभृति। एवं 'राजा' चन्द्रमास्तस्य सूतकं, राहुं प्रत्यमृतस्रवणम्। 'च'शब्दात्सूर्यस्य च। अथवा जनपदेश्वरस्य 'राज्ञः सूतकं' पुत्रजन्मोत्सवः। राहोः सूतकं चन्द्रसूर्ययोरुपरागः, ग्रहणमिति प्रसिद्धम् ॥ ११० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **एकोद्दिष्टनिकेतनं** प्रेतश्राद्धामन्त्रणं **प्रतिगृह्य** तदा मन्त्रणादि **त्र्यहं राज्ञश्चन्द्रस्य राहोः** सकाशात्। **सूतके** प्रसवे राहुच्छायाभिभूतस्य पुनरुद्भवे राहोश्चेति चकारो भिन्नक्रमो राज्ञश्चेत्यर्थः। तेन यदितरराहुसूतकस्य सूर्यग्रहाभिधानस्य सङ्ग्रहार्थः। न तु राज्ञः सूतक इत्यत्र नृपमरण इत्युच्यते, तन्मरणे 'श्रोत्रिये त्वहः कृत्स्न'-मित्याशौचस्य वक्ष्यमाणत्वात्॥ ११०॥

(३) **कुल्लूकः।** एक एवोद्दिश्यते यत्र श्राद्धे **तदेकोद्दिष्टं** नवश्राद्धं **तत्केतनं** निमन्त्रणं गृहीत्वा निमन्त्रणादारभ्य क्षत्रियस्य जनपदेश्वरस्य पुत्रजन्मादिसूतके। **राहोश्च सूतकं** चन्द्रसूर्योपरागः तत्र **त्रिरात्रं वेदं** नाधीयीत॥ ११०॥

(४) **राघवानन्दः।** कालसङ्ख्यार्थमाह **प्रतिगृह्येति। केतनं** निमन्त्रणं। नवश्राद्धमदैकोद्दिष्टं। **राज्ञः सूतके** पुत्राद्युत्पत्तौ **राज्ञो राहोश्च सूतके** चकारात्समुच्चय इति केचित्॥ ११०॥

(५) **नन्दनः। विद्वानविद्वानप्येकोद्दिष्टस्य** नवश्राद्धस्य केत्यते निमन्त्र्यतेऽनेनेति **केतनं** द्रव्यं **प्रतिगृह्य त्र्यहं ब्रह्म न कीर्तयेत्! राज्ञः सूतके** पुत्रजन्मनि **राहोः** सूतके ग्रहणमुक्तौ च **ब्रह्म त्र्यहं न कीर्तयेदिति**॥ १२०॥

(६) **रामचन्द्रः। एकोद्दिष्टस्य केतनं** नवश्राद्धनिमन्त्रणं **प्रतिगृह्य त्र्यहं ब्रह्म न कीर्तयेत्।** अनध्यायः स्यात्॥ ११०॥

(७) **मणिरामः। केतनं** निमंत्रणं **राज्ञः सूतके** पुत्रजन्मादौ। **राहोः सूतके** ग्रहे॥ ११०॥

(८) **गोविन्दराजः। प्रतिगृह्येति।** शास्त्रविद्ब्राह्मणः नवश्राद्धे च निमन्त्रण-मुररीकृत्य नृपस्य च पुत्रजन्मादौ राहुणा वा अर्केन्दुग्रासे सति **त्र्यहं** वेदं नाधीयीत॥ ११०॥

**यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति।**
**विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत्॥ १११॥**

(१) **मेधातिथिः।** एकमनुदिश्य आमश्राद्धं, तस्य यावच्छ्राद्धकृतौ गन्धलेपौ तिष्ठतस्तावदनध्यायः। पूर्वस्माद्विधौ विध्यन्तरम्। द्वितीयस्मिन्नहनि कृतस्नानोऽपनीत-तद्गन्धोऽध्ययनार्हः। उपलक्षणं चैतदसतोरपि, गन्धलेपयोर्यावद्भुक्तमन्नं न जीर्णं तावन्नाधीयीत। **विदुष** इति तस्यैव श्राद्धभोजनाधिकारमनुवदति॥ १११॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। एकानुद्दि(दि)ष्टस्यै**कोद्दिष्टगन्धोऽलेपश्च तत्र दत्तस्य चन्दनात्वदोष देस्तिष्ठति तत् त्र्यहादूर्ध्वमपि। विदुष इति ज्ञानेन काममभिप्रैति अकामे इत्यर्थः॥ १११॥

(३) **कुल्लूकः।** यावदेकस्या**नुदिष्टस्य** उच्छिष्टस्य सकुंकुमादेर्गन्धो लेपश्च ब्राह्मणस्य शास्त्रविदो **देहे** तिष्ठति तावन्त्यहोरात्राण्यूर्ध्वमपि वेदं नाधीयीत॥ १११॥

(४) राघवानन्दः। निमित्तान्तरमाह यावदिति। एकस्मा अनुदिष्टस्योच्छि-ष्टस्यैकानुदिष्टस्य। तावत् त्र्यहादूर्ध्वमपि वेदं नाधीयीत ॥ १११ ॥

(५) नन्दनः। एकानुदिष्टस्यैकोद्दिष्टस्य स्नेहस्तैलादिकः। गन्धश्चन्दनादिकः। विदुषः विदुषोऽपि ॥ १११ ॥

(६) रामचन्द्रः। तावद्‌ब्रह्म वेदं न कीर्तयेत् अनध्यायः स्यात् ॥ १११ ॥

(७) मणिरामः। अनुदिष्टस्य उच्छिष्टस्य ॥ १११ ॥

(८) गोविन्दराजः। त्र्यहादूर्ध्वमपि वा। यावदिति। यावदेकोद्देशेन निमन्त्रितस्य शास्त्रविदो ब्राह्मणस्य श्राद्धगतस्रक्चन्दनादिगन्धलेपौ गात्रे भवतः तावद्वेदं नाधीयीत। त्र्यहाधिकवैकल्पिकमिदम् ॥ १११ ॥

**शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ॥**
**नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ ११२ ॥**

(१) मेधातिथिः। प्रसारितपादः पादारोपितपादो वा खट्वासनादौ वा संहृतपादः, अवसक्थिका वस्त्रादिना जान्वोर्मध्यस्य च बन्धः। आमिषं मांसम्। 'सूतक'ग्रहणं शावशौचादेरपि प्रदर्शनार्थम् ॥ ११२ ॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। प्रौढपाद आसनारूढपादः। अवसक्थिका पर्यङ्कबन्धनम्। आमिषं जग्ध्वा तद्दिने, सूतकान्नाद्यं सूतकिसंबन्ध्यन्नम्। एतच्चानध्ययनमाऽऽप्रायश्चित्त-करणात् ॥ ११२ ॥

(३) कुल्लूकः। शय्यायां पतिताङ्ग आसनारूढपादः कृतावसक्थिको वा मांसं जग्ध्वा जननमरणाशौचिनां भुक्त्वा नाधीयीत ॥ ११२ ॥

(४) राघवानन्दः। तत्पञ्चकमध्ययनविरोधीत्याह शयान इति। पृष्ठजानुद्वयव्यापी बन्धः अवसक्थिका। सूतकपदं मृतकोपलक्षकं, अशुचित्वाविशेषात् ॥ ११२ ॥

(५) नन्दनः। पादस्योपरि निहितः पादो यस्य स प्रौढपादः। वस्त्रादिना कृत-पादबन्धोऽवसक्थिकः ॥ ११२ ॥

(६) रामचन्द्रः। अवसक्थिकं कृत्वा न ब्राह्मणः अधीयीत ॥ ११२ ॥

(७) मणिरामः। प्रौढपादः आसनारूढपादः अवसक्थिको वा ॥ ११२ ॥

(८) गोविन्दराजः। शयान इति। शय्योत्सृष्टाङ्गप्रसारितपादः पादारोपित-पादो वा पर्यस्तिकां च कृत्वा मांसं आशौचान्नं च भुक्त्वा नाधीयीत ॥ ११२ ॥

**नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः ॥**
**अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ ११३ ॥**

(१) मेधातिथिः। नीहारो दिङ्मोहो धूमिकेत्यनर्थान्तरम्। बाष्परजोवृता इव येन दिशः क्रियन्ते। बाणशब्दः शरनिर्घोषः। दन्त्योष्ठ्यमन्ये पठन्ति, व्याचक्षते च वीणा

'बाण' इति। महाव्रते हि प्रयोगो दृश्यते। शततन्त्रीको भवति वीणा वितन्त्रीति च। **चतुर्दश्याम्**—उभयोरपि पक्षयोः। **अष्टकाश्च** सर्वा अष्टम्यः—स्मृत्यन्तरसमाचाराभ्याम्। अन्ये त्वष्टमीष्वित्येवं पठन्ति ॥ ११३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। नीहारे** सर्वतो धूम्रिकावृते। **बाणशब्दे** बाणमोक्षशिक्षा-देशादुत्पन्ने **अमावास्यादि**शब्दास्तत्तिथिकाजमात्रपराः। तत्र शुक्लकृष्णप्रतिपदोरपि दर्शपूर्णमासमेलकत्वाच्चन्द्रस्यामावास्यापौर्णमासीपदाभ्यां ग्रहणम्। **अष्टका**ष्टर्मी ॥ ११३ ॥

(३) **कुल्लूकः। नीहारे** धूलिकायाम् **बाणशब्दे** शरध्वनौ। बाणो वीणाविशेष इत्यन्ये, प्रातःसायं**सन्ध्ययोरमावास्याचतुर्दशीपौर्णमास्यष्टमीषु** नाधीयीत। **अष्टकासूत्त**रत्र निषेधात्पौर्णमास्यादिसाहचर्यादष्टकाशब्दोऽष्टमीतिथिपरः ॥ ११३ ॥

(४) राघवानन्दः। किंच **नीति। नीहारे** व्यापिनि। **बाणशब्दे** शरादिध्वनौ **बाणो** वीणेति वा ॥ ११३ ॥

(५) **नन्दनः। अष्टकास्वष्टमीषु**। अत्र नाधीयीतेत्यनुषङ्गः ॥ ११३ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** द्वाभ्यामाह **बाणशब्दे** वंशशब्दे अनध्यायः **अष्टकाश्चतस्रः** ॥ ११३ ॥

(७) **मणिरामः। नीहारे** तुषारेणाच्छादिते आकाशे ॥ ११३ ॥

(८) गोविन्दराजः। धूमिकायां **बाणशब्दे सन्ध्ययोः अमावास्याचतुर्दशीपौर्ण-मास्यष्टमीषु च नाधीयीत।** अष्टकानामुत्तरत्राभिधानादिहामावास्यादिसाहचर्यादष्टका-ग्रहणमष्टम्यर्थम् ॥ ११३ ॥

**अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी ॥**
**ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ ११४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** पूर्वस्यार्थवादो नित्यार्थः। तेन यत्र नित्यत्वज्ञापकं न किंचित्स विकल्पतेऽनध्यायः। वक्ष्यति च "द्वावेव वर्जयेत् नित्य"मिति (४।१२७)। **ताः परि-वर्जयेत्** अध्ययनक्रियातः ॥ ११४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अमावास्या** तत्र पाठेन **ब्रह्म** वेदं **हन्ति** ॥ ११४ ॥

(३) **कुल्लूकः।** विशेषदोषमाह **अमावास्येति।** यस्मादमा**वास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी** वेदं चाष्टमी**पौर्णमास्यौ** विस्मारयत**स्तस्मात्ता** अध्ययनाध्यापनयोः **परित्यजेत्** ॥ ११४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** तिथौ निषेधति **अमेति। अष्टकासु** चतसृषु, तत्र रूढेस्तिथि-संनिधेर्दुर्बलत्वेन न तिथिपरता; अतो अमाष्टकासु नाधीयीतेत्यनुषज्यते। तत्रार्थवादमाह **अष्टे**ति। **ब्रह्मा**त्र वेदस्तदधीतं नश्यतीति भावः ॥ ११४ ॥

(५) **नन्दनः। ब्रह्म** वेदवीर्यं **हन्ति** ॥ ११४ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **वेदं हन्ति** विस्मरणं प्रापयति ।। ११४ ।।

(७) **मणिरामः।** विशेषमाह **अमावास्येति** ।। ११४ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** यस्मात् अमावास्येति। **अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं च चतुर्दशी** हन्ति वेदं **चाष्टमीपौर्णमास्यौ** विस्मारयतः। **तस्मादेतासु** नित्यमध्ययनं परिहरेत् ।। ११४ ।।

**पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ।।**
**श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ।। ११५ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **गोमायुः** शृगालः। तस्य **विरुतं** शब्दकरणम्। श्वखरोष्ट्राणां पङ्क्त्यवस्थितानां शब्दं कुर्वतामनध्यायः। एकैकस्य समानजातीयपङ्क्तौ ।। ११५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **गोमायुः** शृगालः। **पङ्क्तौ** श्वखरादिपङ्क्तिमध्ये। केचिदपाङ्क्त्यपङ्क्तावित्याहुः। केचित्तु पङ्क्तीभूय नाध्येतव्यमित्यस्यार्थमित्याहुः ।। ११५ ।।

(३) **कुल्लूकः।** धूलीवर्षे **दिशां दाहे** शृगालकुक्कुरगर्दभोष्ट्रेषु च रुवत्सु **पङ्क्तौ** चोपविश्य प्रकृतत्वाच्छ्‌गालश्वखरादीनामेव ब्राह्मणो **न पठेत्** ।। ११५ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच **पांसुवर्षे** रजसा पूर्णे पूर्वं 'पांसुसमूहन' इति **चक्रवातोक्तेः। दिशां दाहे** दिग्दाह इति प्रसिद्धे — **गोमायुरुदिते** गोमायोः शृगालविशेषस्य विरुद्धरुतौ। स्वाभाविकविरुद्धारावे खरादीनां तेषां **पङ्क्तौ** प्रविश्य च जनसमूहे निषेधस्योक्तत्वात् ।। ११५ ।।

(५) **नन्दनः।** **ब्रह्मेति** शेषः ।। ११५ ।।

(७) **मणिरामः।** **गोमायुः** शृगालः तस्य विकृते शब्दे। **पङ्क्तौ** उपविश्य खरादीनामेव ।। ११५ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **पांसुवर्ष इति। रजोवर्षे दिग्दाहे च** यत्र ज्वलिता इव दिशो लक्ष्यन्ते। शृगालश्वखरविरुते पङ्क्त्याकारेण चोपविश्य **द्विजो न पठेत्** ।। ११५ ।।

**नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।।**
**वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ।। ११६ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **अन्तःशब्दः** सामीप्यवचनः। श्मशानसमीपे ग्रामसमीपे च। **गोव्रजे।** गावो यत्र चरितुं व्रजन्ति। गोष्ठो वा 'गोव्रजः'। स्त्रीसंप्रयोगकाले यत्प्रावृतं वासस्तदेव प्रावृत्य नाधीयीत। **मैथुन**शब्दः साहचर्यात्तत्कालप्रवृत्ते वाससि वर्तते। **श्राद्धिकं** श्राद्धनिमित्तं शुष्कान्नाद्यमपि गृहीत्वा नाधीयीत ।। ११६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **श्मशानान्ते** श्मशानसमीपे **ग्रामान्ते** ग्रामरयान्ते समीपे, तत्र विष्ठाद्यशुचिलेपसंभवात्। **गोव्रजे** गवां मध्ये। **मैथुनं** वासो यत्परिधाय मैथुनं कृतम्। एतेषु यात्रिनिमित्तानुवृत्त्यनध्याय इत्यर्थसिद्धत्वान्नोक्तम्। **श्राद्धिकं** प्रेतश्राद्धव्यतिरिक्त-श्राद्धसंबन्ध्यन्नदक्षिणादि **प्रतिगृह्य** तद्दिनेऽनध्यायः॥ ११६॥

(३) **कुल्लूकः।** श्मशानसमीपे ग्रामसमीपे गोष्ठे च **मैथुन**समयधृतवासः परिधाय श्राद्धीयं च सिद्धान्नादि **प्रतिगृह्य नाधीयीत**॥ ११६॥

(४) **राघवानन्दः।** **श्मशानान्त** इत्यादौ अन्तपदं सामीप्ये। मैथुनसमये धृतवस्त्रं **मैथुनं वासः।** **श्राद्धिकं** सिद्धान्नादिकमेकोद्दिष्टातिरिक्तम्॥ ११६॥

(५) **नन्दनः।** **श्मशानान्ते** श्मशानसमीपे। **गोव्रजे** घोषे **मैथुनं** मैथुनसंबन्धि। प्रतिगृह्य स्वीकृत्य॥ ११६॥

(६) **रामचन्द्रः।** **मैथुनं वासः** मैथुनसंबन्धि **वासः** वस्त्रं परिधाय। **श्राद्धिकं** वस्तु **प्रतिगृह्य** अनध्यायः स्यात्॥ ११६॥

(७) **मणिरामः।** **अन्ते** समीपे। **वसित्वा** परिधाय॥ ११६॥

(८) **गोविन्दराजः।** **नाधीयीतेति।** 'श्मशाने सर्वतः शम्याप्रासान्नाधीयीत' इत्यापस्तंबस्मरणात् तथाविधश्मशानसमीपगोष्ठयोश्च स्त्रीसंप्रयोगप्रावृतं च **वासः** प्रावृत्य श्राद्धार्थं (चा) कृतान्नाद्यर्थं प्रतिगृह्य **नाधीयीत**॥ ११५॥

**प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत्॥**
**तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः॥ ११७॥**

(१) **मेधातिथिः।** श्राद्धनिमित्तं दीयमानं भक्तादि **श्राद्धिकमिति** प्रसिद्धं, तन्निवृत्त्यर्थमिदमुच्यते। न केवलं व्रीहितण्डुलादिप्रतिग्रह एव श्राद्धेऽनध्यायहेतुः। याव-दन्यदपि **प्राणि वा** गवादि तथा**ऽप्राणि** वासोयुगादि। **तदप्यालभ्य** प्रतिग्रहकाले हस्तेन स्पृष्ट्वा नाधीयीत। यतस्तदेव तस्य भोजनम्। पाणिरेवास्यमस्येति **पाण्यास्यः।** श्राद्धे भोजनं तन्निमित्तं च द्रव्यग्रहणं तुल्यमिति दर्शयति॥ ११७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **प्राणि** पश्वादि। **अप्राण्य**न्नादि। **श्राद्धिकं** श्राद्धसंबन्धि। **आलभ्य** प्रतिग्रहार्थं स्पृष्ट्वापि। एतेनापदि सामान्यत उत्सृज्य प्रतिपादनमात्रं श्राद्धिक-द्रव्यस्य कृतं तद्ग्रहणेऽपि तद्दिनेऽनध्याय इत्युक्तम्। **पाण्यास्य** इति। यथा भुक्त्वा दुष्यति तथा हस्तेन गृहीत्वापि। यथा ह्यस्य मुखेऽग्निस्तथा पाणावपीति तयोः साम्यम्॥ ११७॥

(३) **कुल्लूकः।** **श्राद्धिकम**न्नादि भुक्त्वा तावदनध्यायो भवतीत्युक्तम्। **प्राणि** वा गवाश्वाद्य**प्राणि** वा वस्त्रमाल्यादि प्रतिग्रहकाले हस्तेन गृहीत्वाऽनध्यायो भवति यस्मात्पाणिरेवास्यमस्येति **पाण्यास्यो** हि ब्राह्मणः **स्मृतः**॥ ११७॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह **प्राणीति**। **प्राणि** गवाश्वादि **अप्राणि** हिरण्य-वस्त्रादिकं तत्प्रतिग्रहकाले **आलभ्य** स्पृष्ट्वा स्थितस्यानध्यायः। तत्र हेतुः **पाण्यास्यः** तेनास्य दुष्टत्वाद्वेदोच्चारणमयुक्तम्, एकाहमिति शेषः ॥ ११७ ॥

(५) **नन्दनः**। **श्राद्धिकं**। 'प्रतिगृह्य चे'त्येतत्प्रपञ्चयति **प्राणि वेति**। **आलभ्य** दत्तं पाणिना स्पृष्ट्वा। प्रतिग्रह एव भोजनमित्युक्तं **पाण्यास्यो हीति** ॥ ११७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्राणि** पश्वादिः। **अप्राणि** वस्त्रादि **यत्किञ्चित् श्राद्धादिकं** भवेत् तत् श्राद्धिकं **आलभ्य** प्राप्य **अनध्यायः**। पाणिरेव आस्यं यस्य सः **पाण्यास्यः द्विजः** अग्निमान्स्मृतः ॥ ११७ ॥

(७) **मणिरामः**। **आलभ्य** प्रतिग्रहकाले हस्तेन गृहीत्वा। **पाण्यास्यः** पाणिरेव आस्यं यस्य स पाण्यास्यः ॥ ११७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। गोहिरण्यादि **यत्किञ्चित्** श्राद्धार्थं तत् स्पृष्ट्वाप्य**नध्यायः**। किमुत प्रतिगृह्य। यस्मात् पाणिरेवास्यमस्येति **पाण्यास्यो** ब्राह्मणः ॥ ११७ ॥

**चौरैरुपप्लुते ग्रामे सम्भ्रमे चाग्निकारिते ॥**
**आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥ ११८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उपप्लुते** उपद्रुते। यत्र बहवश्चौरा ग्रामे वातार्थं पतन्ति तत्र नाध्येयम्। **संभ्रमे** यत्राग्निना 'संभ्रमो' भयं जन्यते गेहदाहादिप्रवृत्तेनादग्धेऽपि गेहादौ। **आकालिकोऽनध्यायः**। प्रवृत्तिकालादारभ्य यावदन्येद्युः स एव कालः। अन्येषु **चाद्भुतेषू**त्पातेषु दिव्यभौमान्तरिक्षेषु शिलाप्लवादिषु दिवाऽदर्शनादिषु ॥ ११८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उपप्लुते** आकुलिते **अग्निकारिते**ऽग्निदाहशङ्कया। **संभ्रमे** भये एषु श्राद्धिकप्रतिग्रहादिषु पञ्चस्वा**कालिकं** यावद्दिनान्तरीयतत्कालप्राप्तिः। **सर्वाद्भुतेषु** तण्डुलोत्पतनाद्युत्पातेषु दण्डलोष्टताडनाद्युत्पातेषु ॥ ११८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **चौरैरुपप्लुते ग्रामे** गृहादिदाहादिकृते भये दिव्यान्तरिक्षभौमेषु **चाद्भुतेषू**त्पातेष्वा**कालिकमनध्यायं** जानीयात् ॥ ११८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **चौरेत्यादि**। त्रिष्वप्या**कालिकं** निमित्तकालादारभ्य परेद्युस्तावत्कालपर्यन्तम्। **सर्वाद्भुतेषू**त्पातेषु ॥ ११८ ॥

(५) **नन्दनः**। **सर्वाद्भुतेषु** दिव्यान्तरिक्षभौमेषूत्पातेषु ॥ ११८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **आकालिकं** दिनान्तरे तावत्कालपर्यन्तं **अनध्यायः** स्यात् ॥ ११८ ॥

(७) **मणिरामः**। **सम्भ्रमे** भये। **सर्वाद्भुतेषु च** दिव्यान्तरिक्षभौमाद्युत्पातभयेषु च ॥ ११८ ॥

(८) **गोविन्दराजः। चौरैरिति। चौरैरुपप्लुते ग्रामे** अग्निदाहकृते च भये दिव्यान्तरिक्षभौमेषु चाश्चर्यरूपेषु उत्पातेषु रुधिरवर्षणादिषु **आकालिकमनध्यायं** जानीयात् ॥ ११८ ॥

## उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥
## अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥ ११९ ॥

(१) मेधातिथिः। **उत्सर्गे** पक्षिण्यहोरात्रं च पूर्वमुक्तम्, अनेन त्रिरात्रेण विकल्प्यते। **उपाकर्मण्य**पूर्वो विधिः। **अष्टका** ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तमिस्रपक्षेऽष्टम्यस्तिस्रश्चतस्रो वा। यद्यपि सर्वास्वष्टमीष्वहोरात्रमुक्तं तथापि नित्यार्थोऽयमारम्भो युक्त एव। विकल्पश्च सर्वत्रास्मिन्प्रकरणे कृतार्थत्वापेक्षः। **ऋत्वन्तासु** अहोरात्रमित्यनुषज्यते। षडृतवः; तेषां यत्र पूर्वो निवर्तते अपरश्च प्रवर्तते तत्रानध्यायः। रात्रिग्रहणमुपलक्षणार्थम् ॥ ११९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। त्रिरात्रं क्षेपणमिति** मुख्यः कल्पः। तावद्विलम्बेनाध्ययननिरोधसंभवे **चोत्सर्गे** विरमेत्पक्षिणीमहोरात्रं चेति पक्षद्वयमुक्तम्। **अष्टकासु** अष्टकाश्राद्धतिथिषु हेमन्तशिशिरकृष्णपक्षाष्टमीनवमीषु श्राद्धकरणतदन्नभोजनयोरभावेऽप्य**होरात्रम्।** अष्टमीषु प्रागनध्ययनमुक्तमेव, इदं तु नवम्यामप्यन्वष्टकातिथावहोरात्रानध्ययनार्थम्। तथाल्पकालिकतत्तिथिसंबन्धेऽप्यन्वष्टकाकर्मयोग्याहोरात्रे कृत्स्न एवानध्याय इत्येतदर्थमष्टकापदम्। **ऋत्वन्तासु** हेमन्तादीनां षण्णामृतूनामन्त्या याः षट् रात्रयस्तासु। एतच्चान्द्रमासकृतर्त्वन्तरात्रिषु दशरात्रित्वादेवानध्ययनसिद्धौ वचनं सौरमासद्वयकृतर्त्वन्तदिनेऽनध्ययनसिद्ध्यर्थम् ॥ ११९ ॥

(३) **कुल्लूकः। उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रमध्ययनक्षेपणम्। उत्सर्गे** पक्षिण्यहोरात्रावनध्यायावुक्तौ। तत्रायं धर्मनैपुण्यकामं प्रति त्रिरात्रोपदेशः। तथाऽऽग्रहायण्या ऊर्ध्वं कृष्णपक्षाष्टमीषु तिसृषु चतसृषु चाहोरात्रमनध्यायः। दिवाकालमात्रसद्भावेऽपि 'पौर्णमास्यष्टकासु चे'त्यनेन यावदष्टम्येवानध्याय इतराष्टमीषूक्त इत्यपुनरुक्तिः। **ऋत्वन्ताहोरात्रेषु** चानध्यायः ॥ ११९ ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **उपेति। क्षेपणं** त्यागोऽध्ययनस्य उत्सर्गे पक्षिण्यादेरुक्तत्वात् उपाकर्मणि उत्सर्गे इव कालाकांक्षायामाह **त्रिरात्रमि**त्यत्र पूर्वविधिः धर्मकामानामुभयत्र त्रिरात्रमिति वा। पक्षिण्या सह विकल्प इति **मेधातिथिः।** निषिद्धकालमाह **अष्टकास्विति।** अष्टकाश्चतस्रो न तु सर्वाष्टम्यः। **ऋत्वन्तासु** प्रतिपत्सु तिसृष्वेव 'आद्याः प्रतिपदस्तिस्रो वा' इति **हारीतोक्तेः।** एतासु सप्ताहोरात्रमनध्यायः एकवाक्यनिर्दिष्टानाममावास्यादीनामपि तथा ॥ ११९ ॥

(५) **नन्दनः। त्रिरात्रं क्षेपणं** त्रिरात्रमनध्यायः। प्रथमप्रयोगे त्रिरात्रमन्यत्र पक्षिण्यहर्वा पूर्वोक्तं द्रष्टव्यम्। **अष्टकाः** श्राद्धकालत्वेन विहिताश्चतस्रस्तिस्रो वा प्रसिद्धास्तासु **अहोरात्रं** क्षेपणमिति ॥ ११९ ॥

(६) **रामचन्द्रः । त्रिरात्रं क्षेपणं** अनध्यायः स्मृतः **ऋत्वन्तासु रात्रिषु** ऋतुसन्धिगतासु । श्राद्धिकं भुक्त्वा तत्प्रतिग्रहदिने अनध्यायः । 'द्वितीया माघमासस्य ज्येष्ठश्रावणयोस्तथा । मार्गस्य चैत्राश्विनयोर्ऋतुसन्धिः स उच्यते' ।। ११९ ।।

(७) **मणिरामः । क्षेपणं** अनध्ययनम् ।। ११९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । उपाकर्मणीति ।** उपाकर्मोत्सर्गाख्ययोः गृह्योक्तकर्मणाः कृतयोः **त्रिरात्रमध्ययनेन क्षेपणं स्मृतम्** । तत्रोत्सर्गे पक्षिण्यहोरात्राभ्यामुक्ताभ्यां सह अनेन विकल्पः । ऊर्ध्वमाग्रहायण्याः कृष्णपक्षाष्टमीषु तिसृषु चतसृषु वा अहोरात्रमनध्यायः । पौर्णमास्यष्टकास्वपि सिद्धे पुनर्वचनं कालमात्रसद्भावेऽपि अष्टकास्वहोरात्रमेवानध्यायः । अष्टमीषु पुनः यावदष्टमीत्येवमर्थम् । तथा च तत्र "अष्टकासु नाधीयीते"-त्युक्तम् । इह पुनः "अष्टकासु त्वहोरात्र"मिति यत् पुनर्वचनं नित्यार्थमित्याहुः—तदसत् ; तत्रापि 'अमावास्या गुरुं हन्ति' इत्यर्थवादेन नित्यत्वस्य समर्थितत्वात् ऋत्वन्तरेषु चाहोरात्रमनध्यायः ।। ११९ ।।

**नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ।।**
**न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ।। १२० ।।**

(१) **मेधातिथिः । इरिणं** बहिर्ग्रामं जलतृणवर्जितो देश ऊषरापरपर्यायः । **यानं** गन्त्रीशकटशिबिकादि । तेन गच्छतो निषेधः ।। १२० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । न खरं नोष्ट्रमिति** तद्युक्तयानपरं साक्षात्तदारोहणस्य निषिद्धत्वात् । **इरिणमूषरभूः । यानमुक्तेभ्योऽन्यत्** दोलारथादि तद्गतः ।। १२० ।।

(३) **कुल्लूकः ।** तुरगतरुकरिनौकाखरोष्ट्रारूढस्तथोषरदेशस्थः शकटादियानेन **गच्छन्नाधीयीत** ।। १२० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** अश्वाद्यारूढो नाधीयीतेत्याह **नेति । नेरिणस्थो** नोषरस्थः । **यानमत्र** शकटादि, परिशेषात् ।। १२० ।।

(५) **नन्दनः । इरिणमूषरं** स्थलम् । **यानमुक्ताश्वादिव्यतिरिक्तम्** ।। १२० ।।

(६) **रामचन्द्रः । अश्वादिमारूढः नाधीयीत इरिणस्थः** ऊषरभूमिस्थः सन्वेदं **नाधीयीत** ।। १२० ।।

(७) **मणिरामः । नेरिणस्थः** नोषरदेशस्थः ।। १२० ।।

(८) **गोविन्दराजः । नाधीयीतेति ।** अश्ववृक्षहस्तिनौखरोष्ट्रारूढः तथोषरप्रदेशस्थः गन्त्र्यादिभिर्यानेन च गच्छन् **नाधीयीत** ।। १२० ।।

**न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे ।।**
**न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न शुक्तके ।। १२१ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **विवादः** क्रोशपूर्वको व्याक्रोशः। **कलहो** दण्डादिनेतरेतरताडनम्। **सेना** हस्त्यश्वरथपदातिः। **सङ्गरः** सङ्ग्रामः। असङ्गरेऽपि सेनास्थस्य निषेधः। **भुक्तमात्रं** "यावदार्द्रपाणिरिति" स्मृत्यन्तरम्। **अजीर्णं** पूर्वेद्युर्भुक्तमपरेद्युरपरिणतमुच्यते। **वमनं** प्रसिद्धम्। **शुक्तके** उद्गारेऽसत्यप्यजीर्णे तदहरपरेद्युर्वा।। १२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **विवादे** ऋणदानादिविप्रतिपत्तिशब्दश्रवणे। **कलहे**ऽन्योन्यापेक्षशब्दश्रवणे। **सेनायां** मध्ये। **सङ्गरे** युद्धमध्ये। **भुक्तमात्रे** यावदार्द्रपाणिः। **अजीर्णे** जीर्णताकालेऽप्यन्नस्याजीर्तौ **शुक्तके** जीर्णेऽप्यन्नेऽर्चितादिनाम्लोद्गारे ।। १२१ ।।

(३) **कुल्लूकः।** **विवादे** वाक्कलहे **कलहे** दण्डादण्ड्यादौ **सेनायाम**प्रवृत्तयुद्धायां **सङ्गरे** युद्धे भोजनानन्तरं च यावदार्द्रहस्तो 'यावदार्द्रपाणि'रिति **वसिष्ठस्मरणात्** तथाऽ**जीर्णे**ऽन्ने वमनं च कृत्वाऽम्लोद्गारे च न पठेत्।। १२१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच विवादाद्यष्टसु नाधीयीतेत्यनुषज्यत इत्याह **नेति**। **विवादे** वाक्कृते। **कलहे** दण्डादिजे। **सङ्गरे** युद्धे। **वमित्वा** उद्गीर्य च भुक्तान्नं। **शुक्तके** अम्लोद्गारे ।। १२१ ।।

(५) **नन्दनः।** वाग्युद्धं **विवादः**। अङ्गयुद्धं **कलहः**। शस्त्रयुद्धं **सङ्गरः**। 'समवाये जनस्य चे'ति सिद्धे जनसंमर्दे दोषातिशयप्रकाशनार्थं सेनाग्रहणम्। सेनायामित्येव सिद्धे युद्धे द्वयोरपि युद्धं संभवेदिति सङ्गरग्रहणम्। **शुक्तके** भुक्तस्यान्नस्य यातयामस्य गन्धरसाविर्भावे। नाधीयीतेत्यनुवर्तते ।। १२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **वमित्वा** छर्दिं कृत्वा नाधीयीत।। १२१ ।।

(७) **मणिरामः।** **विवादे** वाक्कलहे। **कलहे** यष्ट्यादिकृते।। १२१ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **न विवाद इति**। व्याक्रोशायां प्रवृत्तायां दण्डादण्डि वा यदोत्पन्नं भवति अप्रवृत्तयुद्धायां वा **सेनायां** प्रवृत्तयुद्धे वा स्थितः भोजनसमनन्तरं च "यावदार्द्रपाणिः" इति **वसिष्ठस्मरणात्**। अपरेद्युश्चा**जीर्णे** **वमित्वा** चान्नानि **शुक्तके** वोद्गारे नाधीयीत।। १२१ ।।

## अतिथिं चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम्।।
## रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते।। १२२ ।।

(१) **मेधातिथिः।** 'अतिथि'ग्रहणं शिष्टोपलक्षणार्थम्। अनित्यागमनः शिष्टश्चातिथिस्तस्मिन्गृह आगतेऽसावध्येषितव्यः 'अधीमह' इति-तेनानुज्ञातोऽधीयीत। तथा च स्मृत्यन्तरं "शिष्टे च गृहमागत" इति। **मारुते** वायौ **वाति** वेगेन। "ननु 'कर्णश्रव' इत्याद्युक्तमेव"। सत्यम्। ततोऽधिकतरे ततो वर्षाभ्योऽन्यत्र वाति प्रतिषेधः। अथवा 'वाति' परिशुष्यति, वातः शोषणार्थत्वात्। मारुतग्रहणं च धातुमात्रोपलक्षणार्थम्। अध्ययनश्रमेण धातुषु क्षीयमाणेष्वप्यनध्यायः। मारुते वर्ध-

माने विद्यायिन्यध्येतरीति भिन्नसम्बन्धे व्यधिकरणसप्तम्यौ। **रुधिरे** जलौकादिना परिस्तुतेऽथवा **शस्त्रेण च परिक्षते** शरीरे 'रुधिरे च स्रुते गात्रादि'ति वाक्येनैकवाक्यता ।। १२२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अतिथिमभ्यर्हितमभ्यागतं। अतिवायति गृहादिभङ्गकारिणि **चातिवाति** वर्षाभ्योऽन्यत्रापि। **शस्त्रेण क्षते**। तथा गण्डादावपि **रुधिरे स्रुते** यावत्तद्विरामता तावदनध्यायकालः ।। १२२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अध्ययनं करोमीति यावदतिथिरनुज्ञापितो न भवति **मारुते** चात्यर्थं **वाति रुधिरे** च गात्रात्स्रुते रुधिरस्रावं विनाऽपि **शस्त्रेण क्षतमात्रे**ऽपि नाऽधीयीत ।। १२२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **भृशमत्यर्थं वाति मारुत** इत्यन्वयः। रुधिरदर्शनाभावेऽपि **शस्त्रेण परिक्षते**। एतच्चतुर्ष्वपि नाधीयीतेत्यनुषज्यते ।। १२२ ।।

(५) **नन्दनः**। **परिक्षते** गात्र इति शेषः। नाधीयीतेत्येव ।। १२२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अतिथीन् अनुज्ञाप्य** अधीयीत। च पुनः **शस्त्रेण परिक्षते** अशुद्धे शुष्के ।। १२२ ।।

(७) **मणिरामः**। **अतिथिं चाननुज्ञाप्य**। अध्ययनं करोमीति यावदतिथिरनुज्ञापितो न भवति तावत् ।। १२२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अतिथिमिति**। **अतिथिः** अधीष्वेत्येवं यावदननुज्ञापितः, वायौ चाध्ययनश्रमेणातिकुप्यति **रुधिरे** च शरीरात्स्रुते, **शस्त्रेण** चारुधिरोत्पादिनापि **क्षते** उत्पन्ने नाधीयीत ।। १२२ ।।

**सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ।।**
**वेदस्याधीत्य वाऽप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ।। १२३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **ऋचो यजूंषि सामध्वनौ** श्रूयमाणे नाधीयीत। ऋग्वेदयजुर्वेदब्राह्मणयोरप्रतिषेधः। पञ्चविंशे च श्रूयमाणऋग्यजुषयो(षो)रप्ययं प्रतिषेधः। **वेदस्यान्तो** यत्र वेदः समाप्तिमुपैति, मन्त्रान्तो ब्राह्मणान्तश्च। **आरण्यको** नाम वेदैकदेशः। **तमधीत्या**न्यो ग्रन्थो नाध्येतव्यः ।। १२३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सामध्वनौ** श्रूयमाणे। **वेदस्यान्तं** षड्वाक्यमधीत्य सर्ववेदानध्यायः **आरण्यकमरण्ये**ऽध्येतव्यं **वेदभागमधीत्याग्रतो**ऽन्यत्र**ाध्येतव्ये**ऽनध्यायः ।। १२३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **सामध्वनौ** च श्रूयमाणे ऋग्यजुषोः कदाचिदध्ययनं न कुर्यात्। **वेदं च** समाप्य **चारण्यका**ख्यं **च** वेदैकदेशमधीत्य तदहोरात्रे वेदान्तरं **नाधीयीत** ।। १२३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **सामध्वनौ** श्रूयमाणे सति। **अधीत्य चान्तं** अध्यायं समाप्य। **आरण्यकमधीत्य** ग्रन्थान्तरं नाध्येतव्यमिति शेषः ।। १२३ ।।

(५) **नन्दनः।** **सामध्वनौ** सामगाने। **सामाधीत्य** तत्क्षण **एवर्ग्यजुषी नाधीयीत। कदाचन** आपद्यपि। अध्यायकालेऽपि **वेदस्यान्तमु**पनिषद**मारण्यकमा**श्वकेतुकं चाधीत्य तत्क्षण एव**र्ग्यजुषी नाधीयीत** ।। १२३ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **सामध्वनौ** सति **ऋग्यजुषी नाधीयीत च** पुनः **वेदस्य अन्तं अधीत्य च** पुनः **आरण्यकं अधीत्य** आरण्यकाध्यायं **अधीत्य** अनध्यायः ।। १२३ ।।

(७) **मणिरामः।** वेदं समाप्तं कृत्वा **आरण्यकं च अधीत्य** अहोरात्रे वेदान्तरं **नाधीयीत** ।। १२३ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **सामध्वनाविति।** **सामध्वनौ** श्रूयमाणे ऋग्यजुषोर्न कदाचिदप्यध्ययनं कुर्यात्। तथा वेदं समाप्य **आरण्यका**ख्यं च वेदैकदेशं **अधीत्य** तस्मिन्नहोरात्रे अन्यत् **नाधीयीत** ।। १२३ ।।

**ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ।।**
**सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ।। १२४ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** सामगीतध्वनावृग्यजुषस्यानध्याय उक्तः। तत्रायमर्थवादः। देवा देवता अस्य इति **देवदैवत्यो** देवतास्तुतिपर इत्यर्थः। ऋचः प्रायेण स्तुतिप्रधानाः। अत उक्तं **देवदैवत्य** इति। मनुष्याणां कर्मप्रधानत्वाद्यजुर्वेदे च कर्मणां बाहुल्योपदेशादेतेन साम्येन यजुर्वेदो **मानुष** इत्युच्यते। मानुषशब्दो मनुष्यजातिवचनः। अभेदाध्यासाद्य**जुर्वेदो मानुष** इत्युक्तम्। **पित्र्यः** पितृभ्यो हितः। पितरो वा देवता अस्येति यथाकथंचित्पितृशब्दसम्बन्धेन श्रूयते। त्रयो लोकास्तेषां त्रय एवाधिष्ठातारः। दिवो देवता, भूमेर्मनुष्या, अन्तरिक्षस्य पितरः। एवं त्रयो वेदाः। द्वयोर्देवमनुष्यसम्बन्धोक्तत्वात्पारिशेष्यात्पित्र्यः सामवेदः। **तस्याशुचिर्ध्वनिः** नात्र तदीयस्य ध्वनेरशुचित्वं परमार्थतो विज्ञेयम्। किं तर्हि? यथाऽशुचिसन्निधाने नाध्येतव्यं एवं तत्सन्निधान इति सामान्यमशुचित्वालम्बनम्। अयं चाध्ययनविधौ प्रकरणात्साम्नि गीयमाने ऋग्यजुःप्रतिषेधो, न यज्ञप्रयोगे ।। १२४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** 'सामध्वनावि'त्युक्तस्यास्योपादान**मृग्वेदो देवदैवत्य** इति। देवा अधिष्ठात्री देवता अस्येति **देवदैवत्यः। तस्मा**त्पितृसंबन्धिनां देवसंबन्धिनां चापेक्षया अशुचित्वस्य कर्मादिषु दृष्टत्वात् ।। १२४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** सामगानश्रुतावृग्यजुषोरनध्याय उक्तस्तस्यायमनुवादः। **ऋग्वेदो** देवं एव देवता अस्येति **देवदैवत्यः। यजुर्वेदो मानुषो** मानुषदेवताकत्वात्प्रायेण मानुषकर्मोपदेशाद्वा मानुषः। **सामवेदः** पितृदेवताकत्वात् **पित्र्यः** पितृकर्म कृत्वा जलोपस्पर्शनं स्मरन्ति। **तस्मात्तस्याशुचिरिव ध्वनिः** न **त्वशुचिरेव**। अतस्तस्मिञ्छ्रूयमाण ऋग्यजुषी नाधीयीत ।। १२४ ।।

(४) **राघवानन्दः।** सामध्वनेरशुचित्वमाह **ऋगिति।** देवा देवता अस्येति **देवदैवत्यः। अशुचिरिति** अशुचिरिव पितृपक्षपातित्वात् न त्वशुचिरेव वेदध्वनेरशुचित्वाभावात् वचनात् पितृदेवताकत्वाच्च ऋग्यजुषी नाध्येतव्य इति भावः ॥ १२४ ॥

(५) **नन्दनः।** सामध्वनादृग्यजुषोरनध्यायेऽर्थवादमाह **ऋग्वेद इति।** 'पितृकर्मानुष्ठायिनोऽपामुपस्पर्शन' (इति) स्मरणात्। श्राद्धकर्तृप्रतिग्रहीत्रोरध्ययननिषेधाच्च पित्र्यस्याशुचित्वमुपपन्नम्। **सामवेदश्चापि पित्र्यस्तस्मात्तस्य ध्वनिरशुचिः।** तेन समधीत्य तत्क्षणमेवर्ग्यजुषी नाधीयीतेति ॥ १२४ ॥

(७) **मणिरामः। देवदैवत्य इति।** देवो देवता अस्येति **देवदैवत्यः। मानुषः** प्रायेण मानुषकर्मोपदेशात्। **पित्र्यः** पितृदेवताकत्वात् ॥ १२४ ॥

(८) **गोविन्दराजः। ऋग्वेद इति।** देवा देवता यस्यासौ **देवदैवत्य** ऋग्वेदः। मनुष्यदेवताकत्वात् **यजुर्वेदो मानुषः। सामवेदः** पितृदेवताकः **स्मृतः।** पित्र्यं कर्म कृत्वा आचम्यते। तस्मात्तस्याशु**चिरिव ध्वनिः।** अतस्तस्मिन् श्रूयमाणे ऋग्यजुषी नाध्येये इति पूर्वविध्यर्थवादः ॥ १२४ ॥

**एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥**
**क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥ १२५ ॥**

(१) **मेधातिथिः। एतत्** त्रिलोक्यधिष्ठातृसम्बन्धित्वं 'ऋग्वेदो देवदैवत्य' इत्यादि **विदन्तो विद्वांसः** प्राज्ञास्त्रय्या निष्कर्षं सारभूतं **पूर्वमभ्यस्य** प्रणवव्याहृतिसावित्र्यनुक्तेन क्रमेण **पश्चाद्वेदमधीयते** पठन्ति। तेन त्रयो लोकास्तिस्रो देवता एतत्त्रिकाध्ययनेन परिगृहीता भवन्ति। उक्तोऽप्ययमर्थो द्वितीयेऽध्याये पुनरुच्यते। यथाऽनध्यायेषु न पठ्यते तथा त्रयीनिष्कर्षं प्रागनधीते ॥ १२५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। त्रयीनिष्कर्षं** त्रय्यास्तत्वं वेदत्रय उत्तरापेक्षया पूर्वस्य श्रेष्ठताम्। ऋगादिषु **यत्पूर्वं तदभ्यस्य क्रमशः** उत्तरोत्तरक्रमेण **पश्चाद्वेदं** तदनन्तरवेदम्। एवं च यजुर्वेदीयसामवेदीयविधिना संस्कृतेनापि ऋग्वेदाध्ययनपूर्वकं ऋग्यजुषामध्ययनपूर्वकं च स्ववेदाध्ययनं कार्यमित्यत्रापेक्षितम्। एतच्चानेकशाखाध्ययनपक्षे, एकशाखाध्ययनपक्षे तु स्वशाखाध्ययनमात्रमिति ग्राह्यम् ॥ १२५ ॥

(३) **कुल्लूकः। एतद्वेदत्रयस्य** देवमनुष्यपितृदेवताकत्वं **जानन्तः** शास्त्रज्ञास्त्रयी**निष्कर्षं** सारोद्धृतं प्रणवव्याहृतिसावित्र्यात्मकं प्रणवव्याहृतिसावित्रीः क्रमेण **पूर्वमधीत्य पश्चाद्वेदाध्ययनं** कुर्युः। द्वितीयाध्यायोक्तोऽप्ययमर्थः पुनरनध्यायप्रकरणेऽभिहितः यथैते यथोक्तानध्याया एवं प्रणवव्याहृतिसावित्रीष्वपठितास्वनध्याय इति दर्शयितुं शिष्यस्याध्यापनमेवं कर्तव्यमिति स्नातकव्रतत्वावगमार्थं च ॥ १२५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** एतत्पठनमाह **एतदिति। त्रय्या निष्कर्षं** सारभूतं बीजभूतं वा प्रणवव्याहृतिसावित्रीः ॥ १२५ ॥

(५) **नन्दनः।** एवं च सति कथमध्येतव्यमित्यपेक्षायामाह **एतमिति। एतत् त्रयीनिष्कर्षं** दैवमानुषपित्र्यात्मकं पृथग्भावं विदित्वा **विद्वांसः** पूर्ववेदविदः **पूर्वमा**दावृग्वेद**मभ्यस्याधीत्य पश्चात्क्रम**शोऽन्व**हमधीयते।** एकस्मिन्दिन ऋचोऽधीत्य परस्मिन्यजूंषि परस्मिन्सामान्यधीयीतेत्यर्थः। विद्वद्भिः कृतमन्यैरपि कर्तव्यमित्यभिप्रायः ।। १२५ ।।

(६) **रामचन्द्रः। त्रयी** वेदत्रयी **निष्कर्षं** अन्वेषणं प्रत्यहं कुर्यात् **एतद्विद्वांसः विदन्तः** जानन्तः न पश्चात् अनन्तरं **वेदं** स्वकीयं **अधीते** ।। १२५ ।।

(७) **मणिरामः।** एतत् वेदत्रयस्य देवमनुष्यपितृदेवताकत्वं **विदंतः** जानंतः। **निष्कर्षं** सारोद्धृतं व्याहृतिसावित्र्यात्मकं **क्रमेण** प्रणवव्याहृतिसावित्रीक्रमेण **पूर्वं अभ्यस्य पश्चाद्वेदाध्ययन** कुर्युः ।। १२५ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** एतत् देवपितृमनुष्यादौ देवत्वं (त्वात् कथं) वेदत्रयस्य (जानन्तः) नानाशास्त्रज्ञा ऋग्यजुस्सामात्मिकायास्**त्रय्याः** सारभूतं प्रणवव्याहृतिसावित्र्याख्यं प्रत्यहं प्रणवव्याहृतिसावित्र्यात्मकेन द्वितीयाध्यायोक्तक्रमेण प्रथमं **अभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते।** यथाऽनध्यायेषु नाध्ययनं एवं प्रणवाद्यभ्यासं विना नाध्येयमित्येतदस्येह पुनर्वचनम् ।।१२५।।

**पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ।।**
**अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ।। १२६ ।।**

(१) **मेधातिथिः। अन्तरागमने**ऽध्याप्याध्यापकयोर्मध्येनाधीयानानां वा। **अहर्निश**महोरात्रम्। **गौतमेन** तु "त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्चोक्तः"। श्मशानाध्ययने च एतदेव। अत्र विकल्पो विज्ञेयः ।। १२६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पशुः** छागः। **अन्तराऽध्याप**काध्येत्रोः ।। १२६ ।।

(३) **कुल्लूकः। पशु**र्गवादिः **मण्डूक**बिडालकुक्कुरसर्पनकुलमूषिकैः शिष्योपाध्याययोर्म**ध्यागमनेऽनध्याय**महोरात्रं जानीयात् ।। १२६ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किं च पश्वादिभिः सप्तभिरन्तरागमनेऽप्यनध्याय इत्याह **पश्विति। पशु**र्गवादिः ।। १२६ ।।

(५) **नन्दनः। पशु**शब्देनात्र ग्राम्याश्चारण्याश्च पशव उच्यन्ते। 'पशुना यजेते'-त्यत्रापि नित्यवदुपादानाच्छाग एवेत्यपरे ।। १२६ ।।

(६) **रामचन्द्रः। पशुः** छागः। गुरुशिष्ययोः पश्वादीना**मन्तरागमने अहर्निशं अनध्यायः** ।। १२६ ।।

(७) **मणिरामः। आखुः** मूषकः ।। १२६ ।।

(८) **गोविन्दराजः। पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिरिति।** शिष्योपाध्याययोरधीयानयोः गवादिपशुमण्डूकबिडालश्वसर्पनकुलमूषकैः **मध्यगमने कृते** अहोरात्रमन**ध्यायं** जानीयात् ।। १२६ ।।

**द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ।।**
**स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ।। १२७ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **नित्यग्रहणात्पूर्वत्रानध्यायानां** विकल्पः। तत्रापि येषां नित्यत्वमात्रं तत्प्रदर्शितमेव, यत्र नित्यग्रहणमर्थवादो वा यथा "अमावास्या गुरुं हन्तीति"। **भूमेश्चाशुद्धिररिष्टभगलिङ्गादिकामेध्यादिसंसर्गः।** आत्मनस्तु पञ्चमे वक्ष्यते। यद्यप्यध्ययनविधिप्रकरण एतावनध्यायौ तथापि नैत्यके भवतः। न ह्यशुचिरधिक्रियते। तथा च **ब्राह्मणं** "तस्य वा एतस्य यज्ञस्य द्वावनध्यायौ यदात्माशुचिर्यद्देश" इति। ब्रह्मयज्ञश्च नित्यो जपः ।। १२७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** वक्ष्यमाणौ **द्वावेव वर्जयेत् नित्यं** नित्यकर्तव्ये ब्रह्मयज्ञे। अत एव श्रुतौ 'तस्य वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य द्वावनध्यायौ यदात्मा अशुचिर्यद्देश' इत्युक्तम्। अत्र नाधीयीतेति निषेधे अध्यापनमपि निषिद्धं, तत्रापि वेदोच्चारणरूपाध्ययनसंभवात् ।। १२७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** संप्रति विद्यानैपुण्यकामं प्रति पूर्वोक्तानध्यायविकल्पार्थमाह **द्वावेवेति। स्वाध्यायभूमिं** चोच्छिष्टाद्यमेध्योपहतां। **आत्मानं च** यथोक्तशौचरहितमिति द्वावेवानध्यायौ नित्यं **प्रयत्नतो वर्जयेत्** नतु पूर्वोक्तान्। तेषामपि यत्र नित्यग्रहणमनुवादो वा नित्यत्वख्यापको वाऽस्ति तानपि नित्यं **वर्जयेत्।** अन्यत्र विकल्पः ।। १२७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** पर्युदासाधिकरणन्यायेन भूम्यात्माशुद्धिव्यतिरिक्तेषु निषिद्धेषु नित्याध्ययनं कर्तव्यमिति प्रदर्शनार्थम् **द्वावेवेति,** 'वेदरक्षाहेतुत्वात्तस्य, वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यक' इत्युक्तत्वात्। 'अष्टकासु त्वहोरात्र'मिति यद्यप्यत्र स्वाध्यायविचारः प्रकरणात्स्नातकस्य तथापि अधीयान इति लिङ्गात्प्रथमाध्ययनेऽप्यङ्गम्, अतः प्राथमिकाध्ययनमपि मनूक्तसर्ववर्जनपुरःसरमिति भावः। **इत्यनध्यायप्रकरणम्** ।। १२७ ।।

(५) **नन्दनः।** **नित्यमापद्यपि।** अनेनान्येषामनध्यायनिमित्तानामापद्यनुज्ञा सूचिता ।। १२७ ।।

(६) **रामचन्द्रः। द्विजः द्वावेव विवर्जयेत्। अशुद्धां भूमिं। च पुनः आत्मानमशुचिम्** ।। १२७ ।।

(७) **मणिरामः। द्वाविति** ।। १२७ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** विद्यानैपुणकामं प्रति पूर्वोक्तानध्यायविकल्पार्थमाह **द्वाविति।** अध्ययनभूमिम**शुद्धां आत्मानं चाशुचि**मपेक्ष्य **द्वौ** वाऽ**नध्यायौ।** तावेव **प्रयत्नेन नित्यं द्विजो वर्जयेत्।** ताभ्या(मन्त्रोऽपि)मन्यत्रापि यत्र नित्यग्रहणमर्थवादादि वा नित्यत्वे लिङ्गमस्ति तथापि नित्यमेव वर्जयेत्। अन्यत्र तु विकल्पः ।। १२७ ।।

**अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।।**
**ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ।। १२८ ।।**

[ **षष्ठचष्टमीममावास्यामुभयत्र चतुर्दशीम् ।। वर्जयेत्पौमासीं च तैले मांसे भगे क्षुरे ।। १ ।।**]

(१) **मेधातिथिः। ब्रह्मचारी भवेत्** ब्रह्मचारिधर्मो मैथुननिवृत्तिरतिदिश्यते, न पुनर्भिक्षाचरणादिः। **अप्यृताविति** सम्बन्धात्तदेव प्रथमं हृदयमागच्छति। अन्ये तु मधुमांसनिवृत्तिमपीच्छन्त्येतेष्वहःसु। तत्र स्मृत्यन्तरमुदाहार्यम्। "षष्ठचष्टमीममावास्यामुभयत्र चतुर्दशीम्। वर्जयेत्पौर्णमासीं च तैले मांसे भगे क्षुरे॥"

अन्ये त्वाहुः-'ब्रह्मचारीति' विशिष्टाश्रमिणो नामधेयमेतत्। अत आश्रमान्तरवर्तिनि गृहस्थादौ प्रयुज्यमानो वेदग्रहणार्थधर्मलक्षणयाऽतिदेशार्थो भवति। **ब्रह्मचारी भवेत्।** परशब्दो हि परत्र प्रयुज्यमानो वत्यर्थं गमयति। सर्वेषु ब्रह्मचारिधर्मेषु प्राप्तेष्वग्नीन्धनभैक्ष्यचरणादयः 'आ समावर्तनात्कुर्यादिति' वचनात्, 'गृहस्थः शेषभुगिति' च प्रत्यक्षे विनिवर्तन्ते। केवलं मधुमांसमैथुनप्रतिषेधमात्रमतिदिश्यत" इति। प्रसिद्धस्तु ब्रह्मचारिशब्दो मैथुननिवृत्तावेवेति यत्किंचिदेतत्॥ १२८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। ब्रह्मचारी** मैथुनरहितः॥ १२८॥

(३) **कुल्लूकः।** अमावास्यादिष्वृतावपि **स्नातको द्विजो** न स्त्रियमुपगच्छेत्। 'पर्ववर्जं व्रजेच्चैना' (३।४५) मित्यनेनैव निषेधसिद्धौ स्नातकव्रतलोपप्रायश्चित्तार्थमिह पुनर्वर्जनम्॥ १२८॥

(४) **राघवानन्दः।** अमावास्यामित्यत्र कालः कर्म तेनैतेषु स्त्रियमृतावपि न गच्छेत् 'पर्ववर्जं व्रजेच्चैना'मित्यादिना निषेधस्य प्राप्तत्वेऽपि स्नातकव्रतलोपार्थं पुनर्ग्रहणं। **ऋताविति** लिङ्गात् ब्रह्मचारीति पदं मैथुननिवृत्तिमात्रपरम्॥ १२८॥

(५) **नन्दनः।** अथ स्नातकस्य व्रतान्तराण्याह **अमेति**॥ १२८॥

(६) **रामचन्द्रः। स्नातको द्विजः** अमावास्यादिषु नित्यं **ऋतावपि ब्रह्मचारी** भवेत्॥ १२८॥

(**रामचन्द्रः। षष्ठीति** तैले तैलाभ्यङ्गे मांसभक्षणे भगे सुरते क्षुरे श्मश्र्वादिक्रियायां वर्जयेत्॥ १॥)

(७) **मणिरामः। ऋतावप्यासु ब्रह्मचारी भवेत्।** पूर्वमुक्तमपि स्नातकव्रतलोपप्रायश्चित्तार्थं पुनरिदमुक्तम्॥ १२८॥

(८) **गोविन्दराजः। अमावास्यामिति।** अमावास्यादिषु **स्नातको द्विजः ऋतावपि** नित्यं स्त्रियं नोपेयात्। 'पर्ववर्जं व्रजेच्चैना'मित्यनेन पौनरुक्त्यं तत्रैव परिहृतम्। स्नातकव्रतप्रायश्चित्ताङ्गत्वेनास्येहाभिधानम्॥ १२८॥

**न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि॥**
**न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये॥ १२९॥**

(१) **मेधातिथिः।** नित्यस्य स्नानस्य भुक्तवतः प्राप्त्यभावान्नायं प्रतिषेधः। स्मृत्यन्तरे हि "स्नानं महायज्ञाः शेषभोजनम्" इत्यर्थक्रमः श्रुतः। न चण्डालस्पर्शनादिनिमित्तकस्यापि, "नाशुचि क्षणमपि तिष्ठेदिति" विरोधात्। अत इच्छालक्षणस्य घर्माद्यपनोद-

हेतोरयं प्रतिषेधः। **आतुरो** व्याधिगृहीतः। तस्य सर्वप्रकारस्नानप्रतिषेधोऽशुचित्वेऽपि "सर्वत एवात्मानं गोपायेदिति"। "का तर्हि तस्य शुद्धिः?" मार्जनं मन्त्रवत्प्रोक्षणं वस्त्रत्याग एवमादि कर्तव्यम्।

**महानिशा** चतुर्मुहूर्तं उभयतोऽर्धरात्रितः। ये तु—"महती निशा यस्मिन्काले हेमन्तादाविति" व्याचक्षते तेषां माघफाल्गुनयोः प्रातःस्नानविधिविरोधादपव्याख्यानम्। नापि हैमन्तिकीषु रात्रिषु निषेध इति प्रमाणमस्ति; द्वितीयस्य निशाशब्दस्याभावात्। **वासोभि**रिति सामर्थ्यलक्षणे शीतादौ वाससां बहुत्वे सति प्रतिषेधः। एकेन विहितमेव "न नग्नः स्नायात्" (४।४५) इति। द्वाभ्यामनियमः, बहूनां प्रतिषेधः। **जलाशयो** जलाधारः **अविज्ञातः** गाधागाधतया ग्राहादिभयेन च। अजस्रं सर्वदेत्यर्थः॥ १२९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आतुरो रोगी। '**महानिशा** तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वय'मिति स्मृतिः। **न वासोभिर्बहुभिः** सह सचैलस्नानादन्यत्र। **नाजस्रं** पुनःपुनरेकस्मिन्दिने निमित्तान्तरपातं विना। **अविज्ञाते** विशेषतोऽन्त्यजाद्यखातत्वादिनाऽज्ञाते॥ १२९॥

(३) **कुल्लूकः**। नित्यस्नानस्य भोजनानन्तरमप्रसक्तेश्चाण्डालादिस्पर्शनिमित्तस्य "मुहूर्तमपि शक्तिविषये नाप्रयतः स्यादि"त्या**पस्तंब**स्मरणान्निषेद्धुमयोग्यत्वाद्यदृच्छास्नानमिदं भोजनानन्तरं निषिध्यते तथा रोगी नैमित्तिकमपि स्नानं न कुर्यात्, किंतु यथासामर्थ्यं 'अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्। आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदु'रित्यादि**जाबाला**द्युक्तमनुसंधेयम्। तथा '**महानिशा** तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम्। तस्मिन् स्नानं न कुर्वीत काम्यनैमित्तिकादृत' इति **देवल**वचनात्तत्र न स्नायात्। बहुवासाश्च नित्यं न स्नायात्। नैमित्तिकचाण्डालादिस्पर्शे सति तु स्नानं बहुवाससोऽप्यनिषिद्धम्। ग्राहाद्याक्रान्तागाधरूपतया च विशेषेणाज्ञाते जलाशये च॥ १२९॥

(४) **राघवानन्दः**। **महानिशीति**। "**महानिशा** तु सा ज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्। तस्यां स्नानं न कुर्वीत काम्यनैमित्तिकादृत" इति **हारीतोक्तेः**। मुहूर्तमपि शक्तिविषये नाप्रयतः स्या'दित्या**पस्तम्ब**स्मरणात्। चण्डालादिस्पर्शेऽवश्यं स्नानमिति यादृच्छिकस्नानविषयो निषेधः। **वासोभिर्विशिष्ट** इति। कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन त्रित्वं विवक्षितम्। **अविज्ञाते** नक्राद्याक्रान्तेऽगाधाद्ये॥ १२९॥

(५) **नन्दनः**। "न स्नानमाचरेत् भुक्त्वे"ति दृष्टार्थस्नानस्य प्रतिषेधः नातुर इत्याद्यदृष्टार्थस्नानस्य च। अन्तर्वास उत्तरवासो बहिर्वास इति त्रीणि वासांसि धार्याणि। तेषु बहिरुत्तरवाससोराप्लवननिषेधो बहुवचनग्रहणाद्गम्यते। अजस्रग्रहणादत्यन्तोपहतयोराप्लावनानुज्ञा च॥ १२९॥

(६) **रामचन्द्रः**। निमित्तं विना **वासोभिः** सह स्नानं न समाचरेत्। **अविज्ञाते** अन्त्यजादिना खानितत्वाज्ञाते॥ १२९॥

(७) **मणिरामः**। **न वासोभिः सह** बहुवस्त्रसहितः॥ १२९॥

(८) **गोविन्दराजः । न स्नानमिति । भुक्त्वा** नित्यं यादृच्छिकं च **स्नानं न** कुर्यात् । नैमित्तिकं पुनः "मुहूर्तमपि शक्तिविषये नाप्रमत्तः स्यात्" इत्यापस्तम्बस्मरणान्न निषिध्यते । तथा व्याधितो नैमित्तिकमपि स्नानं न कुर्यात्, अपि यथासंभवं मन्त्रवन्मार्जनहिरण्योदकाभ्युक्षणगोस्पर्शनादीन् स्नानप्रतिनिधीन् पटपरिवर्तनं च कुर्यात् । "महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् । तस्यां स्नानं न कुर्वीत काम्यनैमत्तिकादृते" इति देवलस्मरणात् तत्र न स्नायात् । बहुवासस्कश्च सततं न स्नायात् । नैमित्तिके त्वनिषेधः । गाधागाधग्राह्याद्याकीर्णतया वा अज्ञाते जलाधारे न स्नायात् ।। १२९ ।।

**देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ।।**
**नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ।। १३० ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** प्रतिकृतयोऽत्र **देवताः,** तासां छायासम्भवात् । **गुरुः** पिता । **आचार्य** उपनेता । भेदोपादानमातिदेशिकगौरवनिवृत्त्यर्थम् । तेन मातुलादिषु नायं विधिरिति । केचित् "समानाराविरोधान्नैतद्युक्तं गोबलीवर्दवद्भेदो विज्ञेयः" इति वदन्ति । **बभ्रुः** कपिलो वर्णः । तद्गुणयुक्तं द्रव्यम् । बभ्रुत्र गौः कपिला, सोमलता वा । उभयोर्बभ्रुशब्देन वेदे प्रयोगदर्शनात् । **कामत** इत्यबुद्धिपूर्वमदोषः ।। १३० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । देवतानां** देवतार्चानाम् । **बभ्रुणः** कपिलस्य प्राणिनश्छायाम् । **दीक्षितस्य** दीक्षाकाले ।। १३० ।।

(३) **कुल्लूकः । देवतानां** पाषाणादिमयीनां **गुरोः** पित्रादेर्नृपतेः **स्नातकस्याचार्यस्य** च । गुरुत्वेऽप्याचार्यस्य प्राधान्यविवक्षया पृथङ्निर्देशः । **बभ्रुणः** कपिलस्य यज्ञे **दीक्षितस्या**वभृथस्नानात्पूर्वमिच्छया **छायां नाक्रामेत्** चशब्दाच्चांडालादीनामपि । **कामत** इत्यभिधानादबुद्धिपूर्वके न दोषः ।। १३० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** किंच **देवतानामिति ।** आक्रमणं तदुपर्युपवेशनं उल्लङ्घनं चङ्क्रमणं अबुद्धिपूर्वे न दोषः । नापि स्पर्शे **बभ्रुणः** कपिलस्य **दीक्षितस्य** कृतयज्ञस्य ।। १३० ।।

(५) **नन्दनः । देवतानां** देवताप्रतिमानाम् । **स्नातको** ब्राह्मणः । **आचार्य** उपनेता । **बभ्रुः** कपिला गौः ।। १३० ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** देवतादीनां **छायां कामतः नाक्रामेत् बभ्रूणां** गवां कपिलां **छायाम् ।** च पुनः **दीक्षितस्य छायां नाक्रामेत्** ।। १३० ।।

(७) **मणिरामः । बभ्रुणः** कपिलवर्णपुरुषस्य ।। १३० ।।

(८) **गोविन्दराजः । देवतानामिति । देवतानां** चित्रपुस्तकादिकृतानां **गुरोः** पित्रादेः नृपतेः **स्नातकाचार्यस्य च** प्राधान्यात् गुरुतः पृथगुपदिष्टस्य कपिलस्य यज्ञार्थं कृतदीक्षस्येच्छातः **छायां नाक्रामेत्** ।। १३० ।।

**मध्यंदिनेऽर्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ।।**
**सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ।। १३१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। मध्याह्नेऽर्धरात्रे महानिशायां समांसं च **श्राद्धं भुक्त्वा न सेवेत** चिरं न तत्रासीत। यदि कथंचिद्ग्रामादि गच्छतो नान्तरेण चतुष्पथं मार्गान्तिरमस्ति, तदा तादन्मात्रसम्बन्धो न निषिध्यते। केचित्तु चकारमेवं योजयन्ति—'श्राद्धं भुक्त्वा सामिषं चान्यदपि भोजनम्'। अस्मिंश्च सम्बन्धे समाचारोऽन्वेष्यः। नान्यथा व्यवहितः सम्बन्धो लभ्यते॥ १३१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **श्राद्धं भुक्त्वा तथामिषं भुक्त्वापि; मध्यन्दिनार्धरात्रयोः सन्ध्ययोश्च**। **न सेवेत** चिरं न तत्र तिष्ठेत॥ १३१॥

(३) **कुल्लूकः**। दिवारात्रे च संपूर्णे प्रहरद्वये **समांसं** च **श्राद्धं** **भुक्त्वा** प्रातःसायं **सन्ध्ययोश्च** चिरं **चतुष्पथं** नाधितिष्ठेत्॥ १३१॥

(४) **राघवानन्दः**। **सामिषमा**मिषमित्यसकृन्निषेधाच्छ्राद्धे तद्दानं भक्षणं चावश्यकम्॥ १३१॥

(५) **नन्दनः**। **सामिषं श्राद्धं भुक्त्वा** मध्यन्दिनादिषु च **चतुष्पथं न सेवेत**॥ १३१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **चतुष्पथं मध्यंदिने** मध्याह्नकाले **न सेवेत**॥ १३१॥

(७) **मणिरामः**। **मध्यंदिन** इति॥ १३१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मध्यन्दिन इति**। मध्यान्हार्धरात्रसन्ध्यासु समांसं च **श्राद्धं** **भुक्त्वा** चतुष्पथे चिरं न तिष्ठेत्॥ १३१॥

**उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च।**
**श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः॥ १३२॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उद्वर्तनम**भ्यङ्गमलापकर्षणं पिष्टादि। **अपस्नानम**पुपयुक्त-मुदकम्। **निष्ठ्यूतम**श्लेष्मरूपमपि भुक्त्वा त्यक्तं ताम्बूलवीटिकादि। अधिष्ठानं तदु-परिस्थानम्। **कामतः** अज्ञानपूर्वमदोषः॥ १३२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उद्वर्तनं** गात्रोद्वर्तनमलम्। **अपस्नानं** मृतनिमित्तकस्नानजलं मृतज्ञात्यादीनाम्। **नाऽधितिष्ठेन्नो**परि तेषां तिष्ठेत्॥ १३२॥

(३) **कुल्लूकः**। **उद्वर्तनम**भ्यङ्गमलापकर्षणपिष्टकादि। **अपस्नानं** स्नानोदकं **मूत्रपुरीषे** रुधिरं च श्लेष्माणं निष्ठ्यूतमश्लेष्मरूपमपि चर्वितपरित्यक्तरूपताम्बूलादि वान्तं भुक्त्वोद्गीर्णभक्तादि एतानि **कामतो नाधितिष्ठेत्**। **अधिष्ठानं तदुपर्य-वस्थानम्**॥ १३२॥

(४) **राघवानन्दः**। **उद्वर्तनं** गात्रान्निःसारितं मलं। **अपस्नानं** स्नानोदकं। **निष्ठ्यूतं** मुखनिःसृतं। कफं नाधितिष्ठेत्, तदुपरीति शेषः॥ १३२॥

(५) **नन्दनः**। **उद्वर्तनं** शरीरत्यक्तं मलं। **अपस्नानं** मृतस्नानजलम्॥ १३२॥

(६) **रामचन्द्रः**। उद्वर्तनादिषु **कामतः नाधितिष्ठेत्** उद्वर्तनं अभ्यङ्गं मलापकर्षणं **विण्मूत्रे** च रक्तमेव **श्लेष्मनिष्ठचूतवान्तानि** एतेषु स्थानेषु **कामतः नाधितिष्ठेत्** ।। १३२ ।।

(७) **मणिरामः**। **उद्वर्तनं** अभ्यङ्गमलापकर्षणं, **अपस्नानं** कृतस्नानोदकम् ।। १३२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **उद्वर्तनमिति**। **उद्वर्तनं** स्नानोदकमूत्रपुरीषरुधिर**श्लेष्मवान्तानि** इच्छातो नाक्रामेत् **निष्ठचूतं** च ताम्बूलाद्यं श्लेष्मरूपमपि ।। १३२ ।।

**वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः ।।**
**अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ।। १३३ ।।**

(१) मेधातिथिः। **वैरी** शत्रुस्तस्य **सर्वत्र** उपायनप्रेषणान्येकत्र स्थानासने गृहगमनादिकथाप्रवृत्तिरित्येवमादि न कार्यम्। **अधार्मिकः** पातकी, यश्च कुसृत्या वर्तते। **तस्करश्चौरः**। अस्मादेव च भेदोपादानादधार्मिको न सर्वः, किं तर्हि? यथा व्याख्यातम्। **परस्य योषितं** स्त्रियम्। योषिद्ग्रहणान्न पत्न्येव; किं तर्हि? अवरुद्धाऽपि, वैरकरणत्वादुभयोर्दृष्टदोषनिमित्तैश्च प्रतिषेधः, साहचर्यात्। उत्तरत्र च 'दार'ग्रहणमदृष्टदोषातिशयदर्शनार्थम्। न पुनरेवं वक्तव्यं "योषितमिति सामान्यनिर्देशे दारशब्दार्थवादाद्विशेषावगतिः।" नायमस्यार्थवादः। भिन्नमेवैतद्वाक्यम् ।। १३३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अरिं **न सेवेत** चिरं न तत्समीपे तिष्ठेत् ।। १३३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शत्रुं तन्मंत्रिण**मधर्म**शीलं चौरं परदारांश्च न **सेवेत**। **चौरस्याधार्मिकत्वेऽप्यन्यगर्हितत्वात्पृथङ्निर्देशः** ।। १३३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **वैरिणः सहायमित्यन्वयोऽतस्तन्मित्रं** वर्जयेत् ।। १३३ ।।

(५) **नन्दनः**। **योषितो** दारान् ।। १३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **परस्य योषितं न सेवेत** ।। १३३ ।।

(७) **मणिरामः**। स्पष्टम् ।। १३३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वैरिणमिति**। शत्रुतन्मित्राधर्मशीलचौरपरदारान् **नोपसेवेत**। चौरस्यात्यन्तकुत्सितत्वात् अधार्मिकात् पृथक्ग्रहणम्। शत्रुसेवनादौ च यद्यपि दृष्ट एव दोषः तथापि शास्त्रनिषेधसामर्थ्याददृष्टोऽपि भवतीत्यवसीयते। एवमन्यत्रापि विज्ञेयम् ।। १३३ ।।

**न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।।**
**यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।। १३४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अजीर्णकारकभोजनादि सुवर्णापहरणादि। **नहीदृशमनायुष्य**मायुष्यक्षयकरं **यादृशं** परदारगमनम्। अदृष्टेन दृष्टेन च **दोषः** ।। १३४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अनायुष्यं**। **लोके** इहलोके ।। १३४ ।।

(३) कुल्लूकः। यस्मादीदृशमनायुष्यमिह लोके पुरुषस्य न किंचिदस्ति यादृशं परदारगमनम् तस्मादेतन्न कर्तव्यम् ।। १३४ ।।

(४) राघवानन्दः। तेषु परस्त्रीगमनमत्यर्थं निराकर्तव्यमित्याह नहीति। सेवनं संभोगः ।। १३४ ।।

(६) रामचन्द्रः। परदारोपसेवनं यादृशं अनायुष्करं ततोऽन्यतरम् ।। १३४ ।।

(७) मणिरामः। स्पष्टमेतत् ।। १३४ ।।

(८) गोविन्दराजः। न हीदृशमिति। यस्मात पुंस एवंविधं आयुःक्षयकरं लोके अन्यन्न किञ्चिदस्ति यादृक् लोके परदारगमनं, तस्मादेतन्न कार्यम् ।। १३४ ।।

**क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ।।**
**नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ।। १३५ ।।**

(१) मेधातिथिः। अवमान अनादरो गौरवाभावस्तिरस्कारश्च। कृशानपि तदात्वे प्रीतिं (प्रति)कर्तुमसमर्थानपि ।। १३५ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। नावमन्येताधिक्षेपादिनाऽवमतान् कुर्यात्, भूष्णुर्भूतिशील इति भूतिकामिताऽभिप्रेता ।। १३५ ।।

(३) कुल्लूकः। वृद्धयर्थे भूधातुः। भूष्णुः वर्धिष्णुर्धनगवादिना वर्धनशीलः क्षत्रियं सर्वं बहुश्रुतं च ब्राह्मणं नावजानीयात्। कृशानपि तत्काले प्रतीकाराक्षमान् ।। १३५ ।।

(४) राघवानन्दः। किंच क्षत्रियमिति द्वाभ्याम्। बहुश्रुतं विद्वांसं। भूष्णुरायुरादिना वर्धनशीलः ।। १३५ ।।

(५) नन्दनः। क्षत्रियमभिषिक्तम् ।। १३५ ।।

(६) रामचन्द्रः। भूष्णुः वर्धिष्णुः क्षत्रियादिकं नावमन्येत न तिरस्कुर्यात् ।। १३५ ।।

(७) मणिरामः। भूष्णुः धनादिना वर्धनशीलः ।। १३५ ।।

(८) गोविन्दराजः। क्षत्रियं चैवेति। यो भवनशीलः क्षत्रियसर्पविद्वद्ब्राह्मणान् तदानीं दुर्बलानपि कदाचिन्नावजानीयात् ।। १३५ ।।

**एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ।।**
**तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ।। १३६ ।।**

(१) मेधातिथिः। निर्दहेत् अवमन्तारं पुरुषम्। त्रयमवमानितम्। क्षत्रियः सर्पो दृष्टया शक्त्या, ब्राह्मणो जपहोमैः अदृष्टेन च दोषेण। तस्मादेतत् त्रयं नित्यमित्युपसंहारः। विधाय दोषदर्शनं पुनरुपसंहारो यत्नेन परिहारार्थः। यत्नातिशयाच्च प्रायश्चित्ते गौरवमप्यनुमीयते ।। १३६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । तस्मादित्युक्तोपसंहारो** दोषाधिक्यज्ञापनार्थः ।। १३६ ।।

(३) **कुल्लूकः । एतत्त्रयमवमानितं** सदवमन्तारं विनाशयति । क्षत्रियसर्पौ दृष्टशक्त्या ब्राह्मणश्चाभिचारादिना दृष्टेन तस्मात्कल्याणबुद्धिरेतत्त्रयं सर्वदा नावजानीयात् ।। १३६ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** तत्काले अनपकारित्वेऽपि उदर्के अनर्थाविहमित्याह **एतदिति ।** त्रयं क्षत्रियादि । **अवमानितं** सत्पुरुषमवमन्तारं दृष्टादृष्टाभ्यां दहति ।। १३६ ।।

(५) **नन्दनः ।** उक्तमर्थं निगमयति **एतदिति** ।। १३६ ।।

(६) **रामचन्द्रः । क्षत्रियः ब्राह्मणः सर्पः** एतत्त्रयम**वमानितं** तिरस्कृतं निर्दहति ।। १३६ ।।

(७) **मणिरामः ।** स्पष्टम् ।। १३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः । एतत्त्रयमिति ।** यस्मादेतत्त्रयमवज्ञातं **पुरुषं** विनाशयति । क्षत्रियसर्पौ दृष्टशक्त्या ब्राह्मणस्त्वभिचारादिना; तस्मात् प्रशस्तबुद्धिः **एतत्त्रयं** सर्वदा न तिरस्कुर्यात् ।। १३६ ।।

**नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।।**
**आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।। १३७ ।।**

(१) **मेधातिथिः । असमृद्धिर्धनाद्यसंपत्तिः,** कृष्यादिना धनार्जनावसरे । तत्र नात्माऽवमन्तव्यो 'दुर्भगोऽहमकृतपुण्यो, नास्मिन्नवसरे धनं मया लब्धं, कुतोऽन्यदा प्राप्स्यामीति' नावसादो भावनीयः । **आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेत् ।** आऽन्त्यादुच्छ्वासाद्धनार्जनकामो न त्यक्तव्यः । **न चैनां** श्रियं **दुर्लभां मन्येत ।** 'अवश्यं मम सम्पद्यते मद्व्यवसाय' इति ग्रहदौःस्थित्याद्यपरिगणय्य तदर्जने प्रयतितव्यम् । अस्ति कस्यचित्सुभाषितम् — "हीनाः पुरुषकारेण गणयन्ति ग्रहस्थितिम् । सत्त्वोद्यमसमर्थानां नासाध्यं व्यवसायिनाम् ।।" अनेन चैतद्दर्शयति—'अहं दुर्गतः क्लेशप्राप्यधन आधानादौ नाधिक्रिये । ततोऽग्निहोत्रहोमक्लेशादुत्तीर्णोऽस्मीति' यस्य बुद्धिः स न सम्यङ्मन्यत इति । अतस्तदर्थं प्रयतेत ।। १३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । पूर्वाभिः** पित्रादिक्रमागताभिः । **अन्विच्छेत्** प्रयत्नेनानुसंदध्यात् ।। १३७ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** प्रथमं धनार्थमुद्यमे कृते तत्र धनानामसंपत्तिभिर्मन्दभाग्योऽहमिति **नात्मानमव**जानीयात् । किंतु मरणपर्यन्तं श्रीसिद्धयर्थमुद्यमं कुर्यात्, न त्विमां **दुर्लभां** बुध्येत ।। १३७ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** अवमाननप्रसङ्गेनाह **नेति ।** पूर्वं संपन्नः सांप्रतं हृतधनः कृतोद्यमस्तदशक्त्या मन्दभाग्योऽहमित्यात्मानं नावजानीयादिति । उक्तनिषेधातिक्रमिणं

स्वावमानेनावसन्नं प्रत्याह **आ मृत्योरिति। एनां** श्रियं पुरुषकारस्यासाध्यत्वाभावात् ।। १३७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** एनां श्रियं **दुर्लभां न मन्येत** नासाध्यं व्यवसायिनः, **पूर्वाभिरसमृद्धिभिः** पित्रादिक्रमादागताभिः ।। १३७ ।।

(७) **मणिरामः। पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।** धनार्जनोद्यमे कृते तदप्राप्तौ मंदभाग्योऽहमित्यात्मानं नावजानीयात् किंतु आ मृत्योरुद्यमं कुर्यात् ।। १३७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। नात्मानमिति।** प्रथमोत्पन्नाभिरसंपद्भिः आत्मानं नावजानीयात्। अपितु **आ मृत्योः** श्र्यर्थमुद्यमं कुर्यात्, **न दुर्लभा श्री**रिति **बुध्येत** ।। १३७ ।।

**सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।।**
**प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।। १३८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** अर्थप्रयुक्तवचनं सत्ये नियम्यते। यथादृष्टं श्रुतं च **सत्यम्! प्रियं ब्रूयात्।** द्वितीयोऽयं विधिः। औदार्यादिगुणानुकथनं परस्यादृष्टेनापि केनचिदवसरेण। तथा पुत्रजन्मादि 'ब्राह्मण पुत्रस्ते जात' इत्यसत्यपि स्वप्रयोजने यदि सत्यं तद्वक्तव्यम्। यदि तस्य तत्र विदितम्। 'सत्यं' प्रियमप्रियं चाऽस्ति। प्रियं दर्शितं—'ब्राह्मण पुत्र' इत्यादि। अप्रियं यथा 'ब्राह्मण कन्या ते गर्भिणी'-तदसत्यं न ब्रूयात् सत्यमपि कन्यागर्भग्रहणमप्रियत्वादप्रकाश्यम्। सत्यां गतौ तूष्णीमासितव्यम्। ननु गर्भिण्यामगर्भिणीति वक्तव्यं, प्रियत्वादत आह **प्रियं च नानृतं ब्रूयादिति।** एवं च यस्य प्रथमः साक्षात्कारस्तेन तत्र तूष्णीमासितुं लभ्यते। **एष सनातनो धर्मः। सनातनो** नित्यो वेदस्तेन विहितत्वाद्धर्मोऽपि सनातनः ।। १३८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयादिति** समुच्चितं वाक्यमिति स्फुटयितुम् **न ब्रूयादिति** व्यतिरेकोपदर्शनम् ।। १३८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** यथा दृष्टश्रुतं तत्त्वं **ब्रूयात्** तथा प्रीतिसाधनं **ब्रूयात्** पुत्रस्ते जात इति। यथा दृष्टश्रुतमप्यप्रियं 'पुत्रस्ते मृत' इत्यादि न वदेत् **प्रियमपि** मिथ्या न वदेत्। **एष** वेदमूलतया नित्यो **धर्मः** ।। १३८ ।।

(४) **राघवानन्दः। किंच सत्यमिति।** विप्रं क्षत्रियं वैश्यं वा न। भो भो क्षत्रियदायाद, न क्षत्रियाधमेति। क्षत्रियं ब्राह्मणं न **ब्रूयात्** ।। १३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः। प्रियमपि अनृतं न ब्रूयात्** ।। १३८ ।।

(७) **मणिरामः। सत्यं** यथा दृष्टं श्रुतं तत्त्वं ब्रूयात्। तथा **प्रियं** प्रीतिसाधनमपि तत्त्वं ब्रूयात्। पुत्रस्ते जात इत्यादि। **न ब्रूयात्सत्यमप्रियं** यथा दृष्टं श्रुतम् प्रियं **न ब्रूयात्। प्रियं च नानृतं प्रियं** च न मिथ्या **ब्रूयात्** ।। १३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सत्यमिति**। केनचित्पृष्टः सन् **सत्यमेव ब्रूयात्**। **सत्यं प्रियं** चाप्यपृष्टोऽपि पुत्रजन्मादि कथयेत्। **अप्रियं** पुनः **सत्यं** बन्धुवियोगादि न वदेत्, अपितु सत्यां गतौ तूष्णीमासीत। **प्रियमपि** चासत्यं नापि(भि)**ब्रूयात्** **इत्येष** नित्यो **धर्मः**॥ १३८॥

**भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्॥**
**शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥ १३९॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्र प्रथमस्य भद्रशब्दस्य नञ्लोपं व्याचक्षते। यदभद्रं तद्भद्रमिति ब्रूयात्। **इति**करणः प्रदर्शनार्थः। 'कल्याणं' 'मङ्गलं' 'सिद्धं' 'श्रेय' इत्यादयः सिद्धाः शब्दाः प्रयोक्तव्याः। पूर्वपदस्यापि प्रदर्शनार्थत्वेऽन्धे 'चक्षुष्मान्' मूर्खे 'प्राज्ञ' इत्यादिवचनं लभ्यते। अथवा भद्रमित्येष एव-शब्द एवमादिषु वक्तव्यः। **शुष्कवैरं** असत्यर्थादिप्रयोजने आहोपुरुषिकं वाक्यं न कर्तव्यम्। एवं राजाधिकरणे **विवादं** शुष्कमेवेत्यादि सम्पद्यते। **केनचिद**समर्थेनापि॥ १३९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **भद्रं** वस्तुतो यच्छोभनं **भद्रमित्येव वा**ऽभद्रमपि। **शुष्कं वैरं** निर्निमित्तं द्वेषं **विवादं** विरुद्धवादम्॥ १३९॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रथमं भद्रपदमभद्रपदपरं, द्वितीयं भद्रशब्दपर्यायपरं; **अभद्रं** यत्तद्भद्रशब्दपर्यायपरप्रशस्तादिशब्देन प्रब्रूयात्। तथा**चापस्तम्बः** "नाभद्रमभद्रं ब्रूयात्पुण्यं प्रशस्तमिति ब्रूयात्" **भद्रमित्येवेति** भद्रपदमेव वा तत्र योज्यं—**शुष्कं** निष्प्रयोजनं **वैरं** विवादं न **केनचित्सह कुर्यात्**॥ १३९॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **भद्रमिति**। **भद्रं भद्रमिति** वीप्सा। **शुष्कं** वैरमिति फलरहितवैरम्॥ १३९॥

(५) **नन्दनः**। शुभाशुभेषु सर्वत्र **भद्रं भद्रमिति** ब्रूयात्। भद्रमिति ब्रूयादिति यावत्। **भद्रमित्येव** वा वदेत्। सकृ**द्भद्रमित्येव** वा ब्रूयात्। **शुष्कं** निरर्थकम्॥ १३९॥

(६) **रामचन्द्रः**। अभद्रमपि वस्तु **भद्रं भद्रमिति** ब्रूयात्, **शुष्कवैरं** निष्प्रयोजनं वरं न **कुर्यात्**॥ १३९॥

(७) **मणिरामः**। प्रथमं भद्रपदं अभद्रपरं, द्वितीयं भद्रपदं भद्रशब्दपर्यायपरं; तथा च अभद्रं जातमिति वक्तव्ये प्रशस्तं जातं कल्याणं जातमित्यादि वक्तव्यं। **भद्रमित्येव वा वदेत्**, पर्यायशब्दो न वक्तव्य इत्यर्थः। **शुष्कं** निष्प्रयोजनम्॥ १३९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **भद्रमिति**। 'अभद्रं भद्रमिति' **गौतमस्मरणा**दिह वृत्तवशात् प्रयुक्तम्। तत्राध्याहारेण व्याख्येयं अकल्याणरूपं यत् तत् **भद्रं** कल्याणं श्रेय इत्येवमादिभिः शब्दैः **इति** करणस्य प्रकारार्थत्वात् **ब्रूयात्**। **भद्रमित्य**नेनैवं **वा**-शब्देन तत्। वादानिमित्तौ वैरकलहौ चासमर्थेनापि सह **नैव कुर्यात्**॥ १३९॥

**नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्यंदिने स्थिते ॥**
**नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥ १४० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **अतिकल्य**शब्दश्चाहर्मुखे वर्तते। उषःकाले न गन्तव्यम्। **अतिसायं** पश्चिमसन्ध्यासमये **अज्ञातेन पुरुषेण सह न गच्छेत्।** असहायश्च **वृषलैः** शूद्रैश्च **सह** ॥ १४० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अतिकल्यमुदयसमये न गच्छेत् पन्थानं। **स्थिते** वर्तमाने। न **वृषलैरेव सह** ॥ १४० ॥

(३) **कुल्लूकः।** उषःसमये प्रदोषे च दिवा संपूर्णप्रहरद्वये च अज्ञातकुलशीलेन पुरुषेण शूद्रैश्च **सह न गच्छेत्।** 'नैकः प्रपद्येताध्वान' (४।६०) मित्युक्ते प्रतिषेधेऽपि पुनर्नैक इति स्नातकव्रतलोपप्रायश्चित्तगौरवार्थः ॥ १४० ॥

(४) **राघवानन्दः।** षडेतान्वर्जयेदित्याह **नेति।** **अतिकल्यं** 'उषसि'स्थिते, सूर्य इति शेषः। **अज्ञातेन** कुलशीलादिना **वृषलैर्वे**ष्टितो **नैको** विप्रः ॥ १४० ॥

(५) **नन्दनः।** **अज्ञातेना**विदितस्वभावेन ॥ १४० ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **अतिकल्यं** प्रातः **अज्ञातेन पुरुषेण** समं नाधिगच्छेत्। 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्य'मित्यमरः। **अतिसायं** कालं **अतिमध्यंदिने** स्थिते तथा **वृषलैः सह** न गच्छेत् ॥ १४० ॥

(७) **मणिरामः।** **नातिकल्यं** उषःकाले। **नातिसायं** सायंकाले **वृषलैः** शूद्रैः ॥ १४० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **नातिकल्यमिति।** उषःप्रदोषयोः मध्याह्ने च जाते **अविज्ञातेन** पुरुषेण शूद्रैश्चाध्वानं न **गच्छेत्।** "**नैकः** प्रपद्येताध्वानं" इत्युक्तेऽपीह एक इति पुनर्वचनं प्रायश्चित्तविशेषार्थम् ॥ १४० ॥

**हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोतिगान् ॥**
**रूपद्रविणहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ १४१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **हीनाङ्गाः** काणकुष्ठिकुब्जादयः। **अतिरिक्तमधिकं** अङ्गं येषां श्लीपद्यादयः। **विद्याहीना** मूर्खाः। **वयोतिगा** अत्यन्तवृद्धाः। **रूपहीना** दुःसंस्थानाश्चिपिटकेकरादयः। **द्रविणहीनाः** दरिद्राः। द्रविणं धनं तेन हीना वर्जिताः। **जात्या हीना** निकृष्टजातयः कुण्डगोलकाद्याः, **तान्नाक्षिपेत्।** 'आक्षेपः' कुत्सा। एतेषां एतैः शब्दैराह्वानमेव कुत्सा ॥ १४१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **वयोतिगा**नतिवृद्धान्। **द्रविणं** धनं। **जाति**र्विशिष्टकुलजन्म**नाऽऽक्षिपे**द्धीनाङ्गत्वाद्यन्तर्भावेनाक्षेपं न कुर्यात् ॥ १४१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** हीनाङ्गाधिकाङ्गमूर्खवृद्धकुरूपार्थहीनहीनजातीन् काणशब्दा-ह्वानादिना न निन्देत् ।। १४१ ।।

(४) **राघवानन्दः।** खञ्जपाद इति वा अङ्गहीनान् षट् नाधिक्षिपेदित्याह **हीनाङ्गानिति** ।। १४१ ।।

(५) **नन्दनः। द्रव्यं** धनम्। जातिराभिजात्यं ।। १४१ ।।

(६) **रामचन्द्रः। हीनाङ्गादींश्च न क्षिपेत्** न तिरस्कुर्यात् ।। १४१ ।।

(७) **मणिरामः। नाक्षिपेत्** न निन्दां कुर्यात्। काण 'बधिर' एहीत्याह्वानं न कुर्यादित्यर्थः ।। १४१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। हीनाङ्गानिति।** हीनाङ्गाधिकाङ्गमूर्खातिवृद्धविरूपदरिद्र-वैश्वदेयादीन् काणादिशब्दाह्वानादिना नोपहसेत् ।। १४१ ।।

**न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ।।**
**न चापि पश्येदशुचिः स्वस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि ।। १४२ ।।**

(१) **मेधातिथिः। उच्छिष्टो** भुक्तवाननाचान्तः कृतमूत्रपुरीषश्च। अशुचि-मात्रमिहोच्छिष्टशब्देनोच्यते। तथा चोच्छिष्टस्य गवादिस्पर्शः प्रतिषिध्यते। **अशुचि-**शब्देन प्रायश्चित्तं वक्ष्यति। **पाणिग्रहणमतन्त्रम्।** अन्येनाप्यङ्गेन स्पर्शो नेष्यते। वस्त्राद्यान्तरिते न निषेधः। **दिवि ज्योतिर्गणं न पश्येत्। स्वस्थोऽ**नातुरः। **दिवीति** वचनाद्भूमौ ज्योतिषोऽग्नेरप्रतिषेधः ।। १४२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। पाणिना न स्पृशेदिति** गात्रान्तरेण स्पर्शे तादृशदोषा-भावार्थः। **उच्छिष्ट** इत्यशुचिमात्रोपलक्षणम् ।। १४२ ।।

(३) **कुल्लूकः।** कृतभोजनः कृतमूत्रपुरीषादिश्चाकृतशौचाचमनो ब्राह्मणो हस्तादिना गोब्राह्मणाग्नीन्न स्पृशेत्। **नचाशुचिः** सन्ननातुरो **दिविस्थात्सूर्यचन्द्रग्रहादि-ज्योतिर्गणान्न पश्येत्** ।। १४२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच **नेति। स्वयमुच्छिष्टो विप्रः पाणिना** गोब्राह्मणादीन् **न स्पृशे**दित्यन्वयः। तथा स्वयं **स्वस्थो** अशुचिः सन् ।। १४२ ।।

(५) **नन्दनः। उच्छिष्टः** स्नानाचमनशोध्याशौचयुक्तः। **स्वस्थः** सावधानः। अत्र दिवीति विशेषणजलेऽनुज्ञातं दर्शनमिति गम्यते ।। १४२ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** युग्मं। **न स्पृशेदिति। अशुचिः सन् ज्योतिर्गणं न** पश्येत् ।। १४२ ।।

(७) **मणिरामः। उच्छिष्टो** विप्रः कृतभोजनादिः अकृतशौचाचमनः **न चाशुचिः सन् पाणिना** गवादीन् **स्पृशेत्। स्वस्थः** अनातुरः **दिविस्थान् ज्योतिर्गणान् न पश्येत्** ।। १४२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **न स्पृशेदिति**। आचमनाद्यर्हो ब्राह्मणः गोब्राह्मणाग्नीन् न स्पृशेत्। तथा **शुचिः सन्** अनातुरो द्युलोकगतमादित्यादिज्योतिःसमूहमपि **न पश्येत्**॥ १४२॥

**स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत्॥**
**गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु॥ १४३॥**

(१) **मेधातिथिः**। अविशेषवचनेऽपि प्राणाश्चक्षुरादय एव मूर्धन्या उच्यन्ते। प्राणशब्दश्चक्षुरादिवचनो वेदे प्राणसंवादे उपनिषदि दृश्यते। **गात्राणि** अंसजानुपादादीनि। **पाणितलेना**पो गृहीत्वा स्पृशेत्॥ १४३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **एतान्** गोब्राह्मणानलान् **स्पृष्ट्वा** ज्योतिर्गणं च दृष्ट्वेत्यपि। **अद्भिः प्राणानिति**। आचमनं कृत्वा जलसहितेन हस्तेन मूर्धन्येन्द्रियस्थानानि सप्त हस्ततलेन **सर्वगात्रं नाभिं च स्पृशेदिति** तस्य प्रायश्चित्तमित्यर्थः॥ १४३॥

(३) **कुल्लूकः**। **एतान्**गवादीन**शुचिः सन्स्पृष्ट्वा** कृताचमनः पाणिना गृहीता**भिरद्भिः प्राणांश्च**क्षुरादीनीन्द्रियाणि शिरःस्कन्धजानुपादान्नाभिं च **स्पृशेत्**। अप्रकरणे चेदं प्रायश्चित्ताभिधानं लाघवार्थम्। तत्र प्रकरणे गवादिग्रहणमपि कर्तव्यं स्यात्॥ १४३॥

(४) **राघवानन्दः**। दैवाच्चेत्तत्राह **स्पृष्ट्वेति**। **प्राणान्** चक्षुरादीन्द्रियाणि जलपूर्व**मुपस्पृशेदिति**। नाभिं च **पाणितलेन** करणेन॥ १४३॥

(५) **नन्दनः**। अत्र प्रायश्चित्तमाह **स्पृष्ट्वेति**। एतान् गोब्राह्मणानलान्पाणिना ज्योतिर्गणांश्चक्षुषा **स्पृष्ट्वा अद्भिः** सह **पाणितलेन प्राणांश्च**क्षुरादीनि प्राणस्थानानीति। **गात्राण्यवयवांश्च नाभिं चोपस्पृशेत्**॥ १४३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एतान्** विप्रादीन् **अशुचिः** सन् **स्पृष्ट्वा अद्भिः प्राणान्** प्राणेन्द्रियादीन् **उपस्पृशेत्**। **सर्वाणि गात्राणि नाभिं च पाणितलेन स्पृशेत्**॥ १४३॥

(७) **मणिरामः**। **एतानि** पूर्वश्लोकोक्तगवादीनि **स्पृष्ट्वा**। **अशुचिः** सन् **पाणिना** गृहीताभिः **अद्भिः प्राणान्** चक्षुरादीद्रियाणि **गात्राणि** शिरःस्कंधजानुपादान् **नाभिं** च नित्यं स्पृशेत्। नित्यमित्यनेन आचमनोत्तरमपि स्पृशेदित्याशयः॥ १४३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्पृष्ट्वेति**। **अशुचिः** सन् गवादीन् **स्पृष्ट्वा अद्भिः** प्राणायतनानि चक्षुरादीन्यङ्गानि च **सर्वाणि स्पृशेत्** "नाभिमद्भिर्हस्तमध्येन स्पृशेत्" इति प्रकरणपठितं प्रायश्चित्तं लाघवार्थम्। तत्र हि क्रियमाणे गवादिस्पर्शे कर्तव्यं स्यात्॥ १४३॥

**अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः॥**
**रोमाणि च रहःस्थानि सर्वाण्येव विवर्जयेत्॥ १४४॥**

(१) **मेधातिथिः ।** **अनिमित्ततः** कण्डूयनादिनिमित्तं विना । **स्वानि खानि** चक्षुरादीनि छिद्राणि न स्पृशेत् । **रहःस्थानि** कक्षोपस्थगतानि **विवर्जयेत्** प्रकृतेन स्पर्शेन । श्लोकपूरणार्थमाख्यातान्तरोपादानम् ! अन्ये त्वाहुः आख्यातान्तरनिर्देशाद्दर्शनं प्रतिषिध्यते ।। १४४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** **अनातुरः** कण्डूत्यादिपीडाभावे । तथाऽ**निमित्तत** आचमनादिनिमित्तव्यतिरेकेण । **खानि** इन्द्रियस्थानानि नाभ्यूर्ध्वस्थान्यपि **न स्पृशेत् ।** रहःस्थान्युपस्थादिस्थितानि वर्जयेत् । न स्पृशेन्नित्यमेवातुरत्वेऽपि ।। १४४ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** **अनातुरः सन् स्वानि खानी**न्द्रियछिद्राणि **रोमाणि च** गोप्यान्युपस्थकक्षादिगतानि **निर्निमित्तं** न स्पृशेत् ।। १४४ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** **अनिमित्ततः** आचमनादिनिमित्तं विना । **रहःस्थानि** कक्षोपस्थगतानि **विवर्जयेन्न** स्पृशेत् ।। १४४ ।।

(५) **नन्दनः ।** **अनातुरः** श्रोत्रादिषु पीडारहितः । **खानि** श्रोत्रादीनि । **वर्जयेत्** स्पर्शेन इति शेषः ।। १४४ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** **स्वानि खानि ।** छिद्राणि **अनिमित्ततः न स्पृशेत् ।** सरहस्यानि गुह्यस्थानि यानि **रोमाणि** तानि **वर्जयेत्** ।। १४४ ।।

(७) **मणिरामः ।** **अनातुरः** सन् । **खानि** इंद्रियाणि । **रहःस्थानि च** रोमाणि कक्षादिस्थानि ।। १४४ ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** **अनातुर इति ।** स्वस्थः सन् **स्वानि** छिद्राणि **रोमाणि च** पायूपस्थगतानि **अनिमित्तं न स्पृशेत्** ।। १४४ ।।

**मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।।**
**जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ।। १४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अभिलषितायुर्धनादिसिद्धि**र्मङ्गलम् ।** तदर्थमाचारो **मङ्गलाचारो** गोरोचनातिलकशुभफलादिस्पर्शस्तेन युक्तो नित्यं तत्सेवापरः स्यात् । "ननु चाचारस्य प्रामाण्यमुक्तमेव" । सत्यम् । अदृष्टस्यार्थस्यानेनोच्यते । दृष्टबुद्ध्या हि क्रियमाणस्य व्यभिचारदर्शनेन कश्चिदनादरपरः स्यात् । तदर्थं पुनरुच्यते । यथा प्रस्थानकाले सन्निहिते पुनः कथनं दध्यादौ वन्दनं, शुक्लनिवसनदर्शनं, दक्षिणतः कपिञ्जलवासितं, फलिते वृक्षे दक्षिणत एव वायसस्य,—एवमादि मङ्गलार्थमादरणीयं; विपरीतं वर्जनीयम् । **जितेन्द्रियो** विषयेष्वलालसः । पुरुषार्थतयैतदसकृदुक्तमपि विनिपातनिवृत्त्यर्थमुच्यते । **अग्ने**रन्यत्रापि होमसम्भवा**ज्जुहुयादग्निमि**त्याह । **अतन्द्रित** इत्युक्तानुवादः ।। १४५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** **मङ्गलाचारः** पापालक्ष्मीनाशहेतुराचारः । **नियतात्मा** शुचिः । **जितेन्द्रियो** नियतेन्द्रियः । **जपेत्** गायत्र्यादि **जुहुया**त्तेनैव पापशान्त्यर्थम् ।। १४५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अभिप्रेतार्थसिद्धिर्मङ्गलं तद्धेतुत्वेन गोरोचनादिधारणमपि **मङ्गलम्**। गुरुसेवादिकमाचारस्तत्रोद्युक्तः स्यात्। बाह्याभ्यन्तरशौचोपेतो **जितेन्द्रियश्च** भवेत्। **गायत्र्यादिजपं विहितहोमं च नित्यं कुर्यात्। अतन्द्रितोऽनलसः।** अत्राचारादीनामुक्तानामपि विनिपातनिवृत्त्यर्थत्वात्पुनरभिधानम् ।। १४५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **मङ्गलेति**। मङ्गल्यं स्वर्णदूर्वादि। **प्रयतात्मा** शुचिः **जपेद्**, **गायत्रीमिति** शेषः ।। १४५ ।।

(५) **नन्दनः**। नैमित्तिकानाचारानाह **मङ्गलेति**। मङ्गलानि "सुवर्णं चन्दनं रत्नं पञ्चगव्यानि रोचनां। प्रियङ्गुं सर्षपं क्षौद्रं मङ्गलानि प्रचक्षते"।। **आचारो** व्याख्यातः ।। १४५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। मङ्गलाचारयुक्तः स्याद्रत्नालंकारयुक्तः स्याद्गायत्रीं **जपेत्** ।। १४५ ।।

(७) **मणिरामः**। **मंगलयुक्तः** आचारयुक्तश्च स्यात्। **जपेत्** गायत्र्यादि। **अतंद्रितः** अनलसः ।। १४५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **मङ्गलाचारयुक्त** इति। अभिप्रेतसिद्धिरूपमङ्गलहेतुत्वात् गोरोचनाचन्दनादौ **मङ्गले** प्रत्युत्थानादौ **आचारे** यत्नवान् शुद्धात्मा वशीकृतजिह्वादीन्द्रियः स्यात्, अनलसश्च सन् जपहोमौ **नित्यं कुर्यात्**। अत्र आचारादीनामुक्तानामपि विनिपातविनिवृत्त्यर्थं विवक्षया पुनरभिधानम् ।।१४५ ।।

**मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।।**
**जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ।। १४६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **विनिपातः** प्राक्ताशुभनिमित्तको दैवोपद्रवो व्याधिर्धननाश इष्टवियोगादिः। स एवमाचाराणां माङ्गल्यकान्निवर्तते। अनेनापि नित्यतैवोक्ता भवति, सत्यपि फलार्थत्वे। न हि कश्चिद्दैवोपद्रवानिवृत्तिमर्थयते। अतो 'नित्य'ग्रहणमनुवादः। अथापि कश्चिदनर्थी स्यात्तथापि नित्य एवायं विधिः। एवं चोभयार्थता तस्य नित्याधिकारवृत्तिर्विनिपातनिवृत्तिश्च ।। १४६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विनिपात** इहलोके परलोके च ।। १४६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अत आह **मङ्गलाचारयुक्तानामिति**। मङ्गलाचाराभ्यां युक्तानां नित्यं शुचीनां जपहोमरतानां दैवमानुषोपद्रवो न जायते ।। १४६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उक्तानामनुष्ठाने अर्थवादमाह **मङ्गलेति**। **विनिपातो** दैवमानुषोपद्रवः जपादिफलराहित्यं वा। **मङ्गलाचारयुक्तानामित्याद्यनुवादः** ।। १४६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **मङ्गलेति**। **मङ्गलाचारयुक्तादीनां विनिपातो** व्याध्यादिभिः चरणादेरनिष्टप्राप्तिर्न विद्यते ।। १४६ ।।

(७) **मणिरामः।** **विनिपातः** दैवमानुषोपद्रवः ।। १४६ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** यथा चाह **मङ्गलाचारयुक्तानामिति।** मङ्गलाद्यनुष्ठानशीलानां शुद्धानां जपहोमपरायणानां दैवपुरुषकृत उपद्रवो **न विद्यते** ।। १४६ ।।

**वेदमेव जपेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।।**
**तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ।। १४७ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** 'जपेच्च जुहुयाच्चैवे'त्युक्तम्। तत्र तावज्जपस्य साधनमाह **वेदमेव जपेदिति।** अवशिष्टोऽर्थवादः। **यथाकालं** यस्मिन्यस्मिन्काले। वीप्सायामव्ययीभावः। यदैव ह्यैहिकी चेष्टा नातिपद्यते तदैव जपेत्। अन्यान्यग्निहोत्रादिकर्माणि नियतकालानि। जपस्य तु शुचित्वमेव कालः। अयं मुख्यो धर्मः। **उपधर्मः** धर्मस्य समीपे उपधर्मः। समीपप्रधानस्तत्पुरुषो नाव्ययीभावः। "उपमानानि सामान्यवचनैरिति" (पा. २।१।५५) यथा धर्मान्तरनिन्दा वेदजपस्तुत्यर्था, न तन्निषेधार्था ।। १४७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **वेदमेव यथाकालं** स्वाध्यायकाले **जपेत्** **वेदजपमेव** कुर्यात्। नतु तद्विरोधि कर्मान्तरमिति। अभ्युदयसाधनं नियते**नास्य** स्नातकस्य **उपधर्मो**ऽल्पधर्मः ।। १४७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** नित्यकृत्यावसरे श्रेयोहेतुतया प्रणवगायत्र्यादिकं **वेदमेवानलसो जपेत्।** यस्मात्तं ब्राह्मणस्य श्रेष्ठं धर्मं मन्वादयो वदन्ति। **अन्यः** पुनरततोऽपकृष्टो **धर्मो** मुनिभि**रुच्यते।** उक्तस्यैव वेदाभ्यासादेः पूर्वजातिस्मरणद्वारेण मोक्षहेतुत्वं वदितुं पुनरभिधानम् ।। १४७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** **तं** वेदजपं **उपधर्मः।** अपकृष्टधर्म विधर्मो ना ।। १४७ ।।

(५) **नन्दनः।** जपेच्चेत्युक्तम्, किं जप्यमित्यपेक्षायामाह **वेदमिति।** **तं** वेदजपम्। **अन्यो**ऽवेदजपः ।। १४७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **तं परं धर्मं** आहुः। **अन्यो** धर्म **उपधर्म उच्यते** ।। १४७ ।।

(७) **मणिरामः।** **वेदमिति** ।। १४७ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **वेदमेव जपेन्नित्यमिति।** यस्मिन् यस्मिन् काले दृष्टार्थकर्मोपरोधो भवति तत्र नित्यं **वेदमेवानलसः सन् जपेत्।** यस्मात् तं ब्राह्मणस्य **परं धर्मं** मन्वादय **आहुः।** तदन्यस्त्वमुख्यो **धर्मस्तैरुच्यते** ।। १४७ ।।

**वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।।**
**अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।। १४८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **अद्रोहो**ऽहिंसा। **भूतानि** स्थावरजङ्गमानि। जातिस्मरणफलान्येतानि कर्माणि चत्वारि यावज्जीवमनुष्ठीयमानानि भवन्ति। **जातिर्जन्मान्तरम्।** पूर्वभवा **पौर्विकी** ।। १४८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एष च **वेदाभ्यासः** शौचादिभिर्धर्मस्तपःप्रभृतिभिर्नियमैश्च सहित एवाभ्युदयहेतुरित्याह **वेदाभ्यासेनेति**। **तपसा** प्राणायामादिना शौचादिकं यमस्य तपश्च नियमस्योपलक्षणम्। **जातिं** जन्म॥ १४८॥

(३) **कुल्लूकः**। **सततवेदाभ्यासशौचतपो**ऽहिंसाभिः पूर्वभवस्य **जातिं स्मरति** ॥ १४८॥

(४) **राघवानन्दः**। वेदाभ्यासादिचतुष्टयं जातिस्मृतेरपि हेतुरित्याह **वेदेति** ॥ १४८॥

(५) **नन्दनः**। योऽयं वेदजपः स **शौचसत्यतपो**ऽहिंसायुक्तश्चेत्परमो धर्मो भवति, नान्यथेत्याह **वेदेति**॥ १४८॥

(६) **रामचन्द्रः**। **भूतानामद्रोहेणैव पौर्विकीं जातिं स्मरति**॥ १४८॥

(७) **मणिरामः**। वेदाभ्यासादिफलमाह **वेदाभ्यासेनेति**॥ १४८॥

(८) **गोविन्दराजः**। उक्तस्यापि वेदाभ्यासस्य यदर्थं पुनरभिधानं तदाह **वेदाभ्यासेनेति**। नित्यं **वेदाभ्यासशौच**तपोऽहिंसाभिः पूर्वभवस्य जन्म **स्मरति**॥ १४८॥

**पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यस्यते द्विजः॥**
**ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते॥ १४९॥**

(१) **मेधातिथिः**। ननु चेष्टफलकामः सर्वं समीहते। न च जन्मान्तरानुस्मरणमेकान्तसुखं येन फलत्वेन वेदाभ्यासादिचतुष्टयस्य वर्ण्यते। तत आह **पौर्विकीं जातिं स्मरन् ब्रह्म** वेद **अभ्यस्यते** तत्र श्रद्धावान् भवति। 'ईदृशो ब्रह्माभ्यासो येन जन्मान्तरं स्मर्यते' इति। स्मरन्पुनस्तदभ्यासे वर्तते। तस्माच्चानेकजन्माभ्यस्तादनन्तरं ब्रह्मप्राप्तिलक्षणं **सुखम्**। **अजस्र**मपुनरावृत्ति **अश्नुते** प्राप्नोति। 'अनन्त'शब्देन सुखविशेष उपलक्ष्यते, असाधना परितृप्तिरात्मनः। तस्याजस्रपदेन शाश्वतं प्रतिपाद्यते। शाश्वतं तादृशं सुखं प्राप्यते, न चैतत्क्षीयते।

समानार्थत्वेऽप्यपुनरुक्तौ। यथा 'वृत्तकं वहतः पुरीषमिति'। वृत्तकमुदकं पुरीषं च। तत्रैको रूढोऽपरः क्रियाशब्दः। 'पुरीषं' पूरणसमर्थं 'वृत्तक'मुदकम्॥ १४९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अजस्रं** सर्वदा ब्रह्मणो वेदस्याभ्यासेन आनन्त्यमनन्तकालस्थायि॥ १४९॥

(३) **कुल्लूकः**। ततः किमत आह **पौर्विकीमिति**। पूर्वजातिं **स्मरन्** जातिमित्येकत्वमनाकाङ्क्षितत्वादविवक्षितम्। बहूनि जन्मानि स्मरंस्तेषु **च गर्भ**जन्मजरामरणदुःखान्यपि **स्मरन्**संसारे विरज्यन्**ब्रह्मैवाजस्र**मभ्यसति श्रवणमननध्यानैः साक्षात्करोति तेन चानन्तमविनाशि परमानन्दाविर्भावलक्षणं मोक्षसुखं प्राप्नोति॥ १४९॥

(४) **राघवानन्दः** । पूर्वजातिस्मृतौ किं स्यादित्यत्राह **पौर्विकीमिति** । **वेदाभ्यासेनैवं** मम जातिं स्मरता जातेति कृत्वा **ब्रह्मैवाभ्यस्यते** ततोऽनन्तमविनाशि मोक्षरूपम् ।। १४९ ।।

(५) **नन्दनः** । जातिस्मरणेन किं प्रयोजनमित्यपेक्षायामाह **पौर्विकीमिति** । **ब्रह्म** वेदम**नन्तरं सुखं** मुक्तिम् ।। १४९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **ब्रह्मैव** वेदमेव । **पुनरभ्यसेत** ब्रह्माभ्यासेन अजस्रं निरन्तरं **आनन्त्यफलं** अश्नुते ।। १४९ ।।

(७) **मणिरामः** । जातिस्मरणेन किमित्यत आह **पौर्विकीमिति** । **ब्रह्मैवाभ्यस्यते** । श्रवणमननादिभिः साक्षात्करोति । **अनंतं सुखं** मोक्षसुखं ।। १४९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । ततः किमत आह **पौर्विकीमिति** । पूर्वजातिं स्वां **संस्मरन्** ईदृगयं वेदाभ्यासः येन जन्मान्तरं स्मर्यत इति मत्वा अभीक्ष्णं वेदाभ्यासमेव करोति तेन चानवरतमाचर्यमाणे वेदार्थावबोधजाते सति ब्रह्मप्राप्तौ परमात्मरूप**मक्षयं सुखं** प्राप्नोति ।। १४९ ।।

## सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।।
## पितृंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ।। १५० ।।

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वोक्तानां होमानां स्वरूपमुच्यते । **सावित्राः** सवितृदेवताकाः । **पर्वसु** च पौर्णमास्यमावास्ययोः कर्तव्याः । **शान्त्यर्था होमा** अनिष्टनिवृत्तिप्रयोजनाः । द्रव्यं चात्राज्यमेवानुपात्तद्रव्यविशेषेषु सर्वहोमेषु श्रूयते "सर्वस्मै वा एतद्यज्ञाय गृह्यते यत् ध्रुवायामाज्यमिति" । पर्वस्विति च सप्तमी द्वितीयार्थे द्रष्टव्या । अधिकरणमग्निर्होमस्य, न कर्म क्वचित् । होतव्यानि पठचन्ते–'लाजाज्यमांससक्तुदधिपयोधानाः पिष्टमित्यादि' ।

एते च होमा अपूर्वाः । यावती च समाचारादितिकर्तव्यता सा प्राग्दर्शिता । **अष्टका** ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तमिस्रपक्षाणां तिस्रोऽष्टम्यः । केषांचित् "हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामिति" वचनम् । तत्र **पितृनर्चये**च्छ्राद्धेन । पितृशब्दः पूर्वप्रमीतपित्रादिवचनः । **अन्वष्टका**स्ता एव नवम्यः ।। १५० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **सावित्रान्** सावित्रीमन्त्रनिष्पाद्यान् । **शान्तिहोमान्** पापशान्त्यर्थहोमान् । **पर्वस्व**मावास्यापौर्णमास्योः । **नित्यशः** सर्वदा **अष्टकासु** हेमन्तशिशिरकृष्णाष्टमीषु । **अन्वष्टकासु** तन्नवमीषु ।। १५० ।।

(३) **कुल्लूकः** । सावित्रीदेवताकान्होमाननिष्टनिवृत्त्यर्थं च **शान्तिहोमान्**पौर्णमास्यमावास्ययोः **सर्वदा कुर्यात्** । तथा आग्रहायण्या ऊर्ध्वं कृष्णाष्टमीषु तिसृषु चाष्टकाख्येन कर्मणा श्राद्धेन च तदन्तरितकृष्णनवमीषु **चान्वष्टकाख्येन** परलोकगता**न्पितृन्यजेत्** ।। १५० ।।

(४) राघवानन्दः। सावित्रान् सवितृदेवताकान्। शान्त्यर्थं होमान् शान्तिहोमान्। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्याय स्वाहेति मन्त्रलिङ्गादाज्यद्रव्यकान्। सर्वस्मै वा एतद्यज्ञाय गृह्यते यत् ध्रुवायामाज्यमिति। अतस्तेषां रूपसमर्पणमात्रमनेन। पर्वस्विति। दर्शादिकालविधिस्तेषां अष्टकान्वष्टकासु च पितृंश्चार्चयेदित्यन्वयः। आग्रहायण्या ऊर्ध्वं चतसृष्वष्टकासु अष्टकाख्येन कर्मणा अन्वष्टकासु अन्वष्टकाख्येन च ।। १५० ।।

(५) नन्दनः। जुहुयाच्चैवेत्युक्तम् तत्केन मन्त्रेणेत्यपेक्षायामाह सावित्र्येति। सावित्र्या आज्येन शान्तिहोमान्कुर्यात्। अष्टकासु हेमन्ताद्यष्टमीषु। अन्वष्टकासु नवमीषु ।। १५०–५१ ।।

(६) रामचन्द्रः। सावित्रान्सवितृदेवताकान् गायत्र्यादिमन्त्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात्। अष्टकासु हेमन्तशिशिरकृष्णनवमीषु अन्वष्टकासु पितॄनर्चयेत् ।। १५० ।।

(७) मणिरामः। सावित्रान् सावित्रीदेवताकान् शांतिहोमान् अनिष्टनिवारकान्। पर्वसु पौर्णमास्यमावास्ययोः। अष्टकासु अन्वष्टकासु च आग्रहायण्या ऊर्ध्वं कृष्णाष्टमीषु नवमीषु च ।। १५० ।।

(८) गोविन्दराजः। सावित्रानिति। सवितृदेवताकान् अनिष्टनिवृत्त्यर्थांश्च होमान् पक्षसन्धिषु अमावास्यादिषु च 'आज्यं हविरनादेयं' इति सूत्रकारस्मरणात् आज्येन नित्यं कुर्यात्। तथा अष्टकाख्येन कर्मणा अष्टकापश्चाद्भाविनीषु च नवमीषु अन्वष्टकाख्येन कर्मणा प्रमीतान् पित्रादीन् तर्पयेत् ।। १५० ।।

**दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।।**
**उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ।। १५१ ।।**

(१) मेधातिथिः। पादाववसिच्येते येनोदकादिना तत्पादावसेचनं तद्दूरात्क्षिपेत्। अथवा पादप्रक्षालनमेव दूरात्कुर्यात्। निषेकः परिषेकः। तैलादिकृतस्नानोदकमपि शक्यते निषेकशब्देनाभिधातुम्। उपयुक्तशेषस्य त्याज्यस्यायं दूरतो निक्षेप उच्यते। तद्धि निषेकशब्देन प्रसिद्धतरम् ।। १५१ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। उच्छिष्टान्नस्य निषेकं त्यागम् ।। १५१ ।।

(३) कुल्लूकः। "नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः" इति विष्णुपुराणवचनादेवंविधादग्निगृहस्य दूरान्मूत्रपुरीषपादप्रक्षालनसकलोच्छिष्टान्नानि। निषिच्यत इति निषेकं रेतश्चोत्सृजेत् ।। १५१ ।।

(४) राघवानन्दः। किंच दूरादिति। निषेकं रेतः समाचरेद्दूरे कुर्यात् ।। १५१ ।।

(६) रामचन्द्रः। उच्छिष्टान्नं निषेकं रेतः दूरादेव समाचरेत् ।। १५१ ।।

(७) मणिरामः। आवसथात् अग्निगृहात्। नैर्ऋत्यां दिशि। "नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः" इति विष्णु(पुराण)वचनात् ।। १५१ ।।

(८) गोविन्दराजः । दूरादिति । 'क्षिप्रं गत्वा क्षेपमात्रं शरस्ये'ति पुराणस्मरणादेवं-विधात् गृहस्य दूरात् मूत्रपुरीषपादधावनोदकोच्छिष्टपरिषेकोदकान्युत्सृजेत् ।। १५१ ।।

**मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।।**
**पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ।। १५२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । अर्थवादेषु पश्वङ्गसंस्तवे **मैत्रः** पायुरिति श्रूयते । तदिहाप्यभेदोपचारान्मित्रः पायुस्तत्र भवं शौचं मैत्रम् । **प्रसाधनं** केशरचनामुपलेपनादि । अथवा विशेषणविशेष्ये पदे 'मैत्रं प्रसाधनम्' । अकृतशङ्कतार्ऽपि प्रातः पायुप्रक्षालनं कर्तव्यम् । यथा हि सुप्तस्य लालास्रावादेरवश्यंभावित्वान्मुखधावनं विहितम्, एवमेतदपि विनैव वा निमित्तेन मुखस्य जघन्ययोरङ्गयोः प्रक्षालनमवश्यं कर्तव्यम् ।

अन्ये त्वाहुः—मित्रकार्यं 'मैत्रं'; तत्सर्वकार्येभ्योऽन्तरङ्गेभ्योऽपि पूर्वं कर्तव्यम् । तत्राप्यशुचेः क्षणमप्यवस्थाभावात्स्वकार्यापेक्षया पूर्वत्वं द्रष्टव्यम् । तदा च पूर्वाह्णशब्दः कार्यान्तरेभ्यः पूर्वतामात्रोपलक्षणार्थः, न पुनरपराह्णप्रतिषेधार्थः । अथवा मित्र आदित्यस्तदुपस्थानं **मैत्रम्** ।। १५२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । मैत्रं** विष्ठोत्सर्गं, मित्रदैवततया प्रसाध्यत्वात् । वक्ष्यति च 'मित्रमुत्सर्गे' इति । **प्रसाधनपदेनैव** चक्षुरञ्जनस्य प्राप्तत्वात् । **अञ्जनं** तैलाभ्यङ्गम् । **पूर्वाह्ण** एव संभवे, असंभवे त्वन्यदापि ।। १५२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । मित्रदेवताकत्वान्मैत्रः पायुस्तद्भवत्वान्**मैत्रं** पुरीषोत्सर्गम् । तथा देह**प्रसाधनं प्रातःस्नानदन्तधावनाञ्जन**देवार्चनादि **पूर्वाह्ण** एव कुर्यात् । पूर्वाह्णशब्देन रात्रिशेषदिनपूर्वभागाविह विवक्षितौ । पदार्थमात्रविधिपरत्वाच्चास्य पाठक्रमोऽपि नादरणीयः । नहि स्नानान्तरं दन्तधावनम् ।। १५२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंचैतान् सप्तारुणोदयमारभ्य कुर्यादित्याह **मैत्रमिति** । मित्रदेवताकत्वात् मैत्रः पायुः तदुद्भवत्वान्**मैत्रं** पुरीषोत्सर्गं । **प्रसाधनं** केशानां । पूर्वाह्णशब्देन जहल्लक्षणया रात्रिशेषो ग्राह्यः । तेनानुदितहोमनिर्वाहः । अत्र पाठक्रमं बाधित्वा अर्थाच्चेति न्यायेन दन्तधावनमादौ बोद्धव्यम् । 'उदिते पद्मिनीनाथे यः कुर्याद्दन्तधावनम् । स निर्लज्जः कथं ब्रूयात्पूजयामि जनार्दन'मिति निन्दास्मरणात् ।। १५२ ।।

(५) **नन्दनः** । **मैत्र**मुच्चारः ।। १५२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **मैत्रं** मूत्रपुरीषोत्सर्गः । **अंजनं** प्रसाधनं केशानां कर्म **पूर्वाह्ण एव कुर्वीत** ।। १५२ ।।

(७) **मणिरामः** । **मैत्रं** पुरीषः, मित्रदेवताकपायूत्पन्नत्वात् ।। १५२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **मैत्रमिति** । मैत्रं पायुरिति पश्वङ्गसंस्तवे पायौ मित्रदेवताकथनश्रवणादिहाप्यभेदोपचारेण **मैत्रः** पायुः । तत्र भवः उत्सर्गे सति **शौचं** तथाऽनुलेपनादिशरीरसंस्कारनित्य**स्नानदन्तधावनाञ्जन**देवार्चनानि **पूर्वाह्ण एव कुर्वीत** ।। १५२ ।।

**दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥**
**ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ १५३ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः। दैवतानि। धार्मिकद्विजांश्च** नमस्कारार्थम्। **ईश्वरं** च **रक्षार्थं** नित्यम**भिगच्छेत्। गुरूंस्तु पर्वसु** नमस्क्रियार्थम् ॥ १५३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** पाषाणादिमयानि धर्मप्रधानांश्च ब्राह्मणान् **रक्षार्थं** राजादिकं **गुरूंश्च** पित्रादीनमावास्यादि**पर्वसु** द्रष्टु**मभि**मुखो गच्छेत् ॥ १५३ ॥

(४) **राघवानन्दः। दैवतानि** पाषाणादिप्रतिमाः। **धार्मिकान्** धर्मोपदेष्टॄन्। **पर्वस्व**मादिषु ॥ १५३ ॥

(५) **नन्दनः। दैवतानि** देवताप्रतिमाः। **ईश्वरं** राजानमन्यं वा प्रभुम् ॥ १५३ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** ईश्वरं ग्रामाधिपं **योगक्षेमार्थं** गच्छेत्। अलब्धलाभो **योगः**, लब्धस्य परिपालनं **क्षेमः**, तं कुर्वीत। **गुरून्** आचार्यान् ॥ १५३ ॥

(७) **मणिरामः। दैवतानि** पाषाणादिमयानि। **ईश्वरं** राजानं, **अभिगच्छेत्** द्रष्टुं संमुखो गच्छेदित्यर्थः ॥ १५३ ॥

(८) **गोविन्दराजः। दैवतान्यभिगच्छेदिति। दैवतानि** सुवर्णमण्यादिकृतानि धर्मप्रधानांश्च ब्राह्मणान् पालनसमर्थं च राजादिकं **रक्षार्थं गुरूंश्चापि** पित्रादीन् अमावास्यादिषु पक्षसन्धिषु च द्रष्टुं गच्छेत् ॥ १५३ ॥

**अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥**
**कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १५४ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वृद्धान्** विद्यादिवृद्धान्। **पृष्ठतोऽन्वियात्** न त्वग्रतः ॥१५४॥

(३) **कुल्लूकः।** गृहागतान्गुरू**नभिवादये**त्तेषां च स्वीयमासनमुपवेष्टुं च **दद्यात्**। बद्धाञ्जलिश्च **गुरुसमीप आसीत। गच्छतश्च** पृष्ठदेशेऽनुगच्छेत्। उक्तोऽप्ययमभिवादनाद्याचारः फलाभिधानाय पुनरुच्यते ॥ १५४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** संभ्रमेणासनं **दद्यादिति** भावः। **उपासीत** आसीनानिति शेषः। **गच्छतस्तस्य पृष्ठतः** ॥ १५४ ॥

(६) **रामचन्द्रः। स्वं** स्वकीयं **आसनं** दद्यात् ॥ १५४ ॥

(७) **मणिरामः। अभिवादयेत्** गृहागतान् ॥ १५४ ॥

(८) **अभिवादयेदिति।** गृहागतान् (गता) ज्यायसो (ज्यायांसो)ऽ**भिवादयेत्** तेषां चात्मीय**मासन**मुपवेशनार्थं **दद्यात्**। बद्धाञ्जलिश्च तत्समीप**मासीत। गच्छतश्च** पश्चादनुव्रजेत्। उक्तमपीदमभिवादनादि वक्ष्यमाणफलाभिधित्सया पुनरुच्यते ॥ १५४ ॥

**श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।।**
**धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ।। १५५ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रुतिस्मृत्युदितं **सदाचारं** च **धर्ममूलं** धर्मसाधनं **स्वेषु** स्ववर्णाश्रम**कर्मसु निबद्धं** संबद्धं तत्कर्मानुगुणं **सेवेत** ।। १५५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वेदस्मृतिभ्यां सम्यगुक्तं **स्वेषु कर्म**स्वध्ययनादिष्वङ्गत्वेन संबद्धं धर्मस्य हेतुं साधूनामाचारमनलसः सन्नितान्तं सेवेतेति सामान्येनाचारानुष्ठानोपदेशः फलाकथनाय ।। १५५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। निबद्धं कर्माङ्गत्वेन **सदाचारं** 'हृद्गाभिः पूयतो विप्र' (२/६२) इत्यादिना आचमनाद्यनुष्ठानं। **धर्ममूलं** अङ्गारपात्रादिधारणलक्षणशिरोव्रतादिधर्महेतुः ।। १५५ ।।

(५) **नन्दनः**। **स्वेषु कर्मसु निबद्धं** स्वानि कर्माणि वर्णाश्रमप्रयुक्तानि कुर्वन्**धर्ममूलं धर्मस्य मूलम्**। धर्ममूलत्वं च 'आचारप्रभवो (परमो) धर्मः 'श्रुत्युक्तं' स्मार्त एव चे' (१/१०८) त्यत्र प्रतिपादितम् ।। १५५–५६ ।।

(७) **मणिरामः**। **स्वेषु कर्मसु निबद्धं** अध्ययनादिषु अङ्गत्वेन संबद्धम् ।। १५५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **श्रुतिस्मृत्युदितमिति**। श्रुतिस्मृतिभ्यां सम्यगुक्तं स्वेषु चाध्ययनयागादिष्वङ्गत्वेन संबद्धं **धर्मस्य मूलभूतं** साध्वाचारं अनलसः सन् अभीक्ष्णमनुतिष्ठेत् ।। १५५ ।।

**आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।।**
**आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।। १५६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। न चायमेष विद्वत्तादिगुणसम्पन्नः साध्यते। प्रजाया ह्येते गुणाः प्रार्थ्यन्ते। तदुक्तम् "तया गवा किं क्रियते या न धेनुर्न गर्भिणी। कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः।" **अक्षय्यमपि** प्रभूतं यदसद्व्यसनैरपि **अक्षयम्**। **अलक्षणं** स्कन्धोपरि तिलकादिदारिद्र्यादिदौर्भाग्यसूचकम्। तदप्या**चारो हन्ति**। तेन ह्यधर्म आचारपरत्वेन नश्यति ।। १५६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **आचाराद्धर्माचरणात् अलक्षणमलक्ष्मीम्** ।। १५६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **आचाराद्वेदोक्तमायुर्लभतेऽभिमताश्च प्रजाः** पुत्रपौत्रदुहित्रात्मिकाः प्रभूतं च **धनम्**। अशुभफलसूचकं च देहस्थ**मलक्षणमाचारो** निष्फलयति आचाराख्यधर्मेणालक्षणसूचितारिष्टनाशात् ।। १५६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। आचारानुष्ठानं स्तौति **आचारादिति**। **आचारः** स्मार्ताचमनादिः। **अक्षय्यं** पुत्रपौत्रादि। **अलक्षणं** निन्दितरोगपरदारादिसेवनम् ।। १५६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अलक्षणं** अलक्ष्मीम् ।। १५६ ।।

(७) **मणिरामः**। अलक्षणम् अशुभफलसूचकं देहस्थचिह्नं मशकादि ॥ १५६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। यदर्थमाचारस्य पुनर्वचनं तदाह **आचारादिति**। आयुरिष्टापत्याक्षयधनान्याचारात् तदनुष्ठानाल्लभते। दुष्टलक्षणं च प्रियभार्याविनाशसंसूचकं तिलकाद्याचारो निष्फलीकरोतीत्याचारफलकथनम्। न चानित्यतापत्तिः, 'सावित्रीमात्रसारोऽपि' (२/११८) इत्यादिना नित्यत्वस्य समर्पितत्वात् ॥ १५६ ॥

**दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥**
**दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ १५७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **दुराचारो** दुष्टाचरणशीलः ॥ १५७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्माद्दुराचारः **पुरुषो लोके** गर्हितः स्यात्सर्वदा दुःखान्वितो रोगवानल्पायुश्च भवति तस्मात्सदाचारयुक्तः स्यात् ॥ १५७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। विपक्षे त्वाह **दुराचार इति** ॥ १५७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **दुराचारः** अश्रद्दधानः ॥ १५७ ॥

(७) **मणिरामः**। सुस्पष्टः ॥ १५७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **दुराचार इति**। यस्माद्दुराचारः **पुरुषो लोके च** गर्हितः सर्वदा च दुःखितो **व्याधितोऽल्पायुर्भवति**, तस्मात् स्वाचारेण भाव्यम् ॥ १५७ ॥

**सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ॥**
**श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १५८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। लक्षणं एतज्जन्मशुभसूचकं कुलरेखादि। **सदाचारः** समीचीनाचारः **श्रद्दधानः**। **अनसूयः** परगुणसहनः ॥ १५८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यः **सदाचारवाञ्छ्रद्धान्वितः** परदोषानभिधाता स शुभसूचकलक्षणशून्योऽपि **शतायुर्भवति** ॥ १५८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **सदाचारः** सतामाचारे **श्रद्दधानः** ॥ १५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सर्वलक्षणहीन इति**। यः **सम्यगाचारवान् श्रद्दधानोऽकुत्सकः** स आजानुबाहुत्वादिसर्वप्रशस्तलक्षणशून्योऽपि **वर्षशतं जीवति**। प्रथमेऽध्याये शास्त्रस्तुत्यर्था आचारस्तुतिः। इह त्वाचारफलसमर्पणार्थमेतत् ॥ १५८ ॥

**यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥**
**यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यत्परप्रार्थनया स्वपरहितादि क्रियते **तत्परवशं** वर्ज्यते, न तु यद्वृत्तिसाध्यमार्त्विज्यादि। तद्धि स्ववशमेव। तद्विषयकमेव भृत्यादि स्वीक्रियते। न

चानेन परवशमपि दीक्षितस्य निषिध्यते; स्मृत्या श्रुतिं बाधितुमन्याय्यत्वात्। उक्ते च विषये सावकाशत्वात्स्मृतेः।

यत्त्वात्मनो वश्यं, स्वल्पया धनमात्रया परोपकारः स्वल्पोऽपि, स्वयं तत्कर्म कुर्यात्। नित्यकर्मासिम्पत्तौ कुटुम्बोपयोगिनि धनेऽसति कर्तव्यैव याच्ञा, उपायान्तराभावे। किन्तु 'विशेषतो यक्ष्ये' 'विशेषतो दास्य' इति सत्यां कस्याञ्चिद्धनमात्रायां सन्तोषपरेण भवितव्यमित्येवमस्य तात्पर्यम् ।। १५९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। परवशं नित्यं पराधीनं **कर्म** दृष्टार्थम् ।। १५९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **यद्यत्कर्म** पराधीनं परप्रार्थनादिसाध्यं **तत्तद्यत्नतो वर्जयेत्। यद्य**-त्स्वाधीनदेहव्यापारसाध्यं परमात्मग्रहादि तत्तद्यत्नतोऽनुतिष्ठेत् ।। १५९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। नैतादृशं दुःखहेतुरित्यनुभवाधिरूढमाह **यदिति** त्रिभिः। अध्यापनादित्रितयं परित्यज्य यथालाभेन संतुष्टो वेदानभ्यसेदिति तात्पर्यार्थः ।। १५९ ।।

(५) **नन्दनः**। **परवशं** पराधीनम्, अनावश्यकं **यत्कर्म** तत्फलवदपि **वर्जनीय-मित्यर्थः** ।। १५९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **यद्यत्** परवशं कर्म पराधीनं **कर्म तत् यत्नेन वर्जयेत्। यद्यत् आत्मवशं** कर्म **तद्यत्नेन च सेवेत** ।। १५९ ।।

(७) **मणिरामः**। **परवशं** परप्रार्थनादिसाध्यम् ।। १५९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यद्यत्परवशमिति**। **यद्यत्** परायत्तं अयाचितलाभादिना **विशेष**-दानादि **कर्म** तत्तत् **यत्नतो वर्जयेत्** यद्यत्पुनरात्माधीनं स्वधनलेशेनापि केनचित् **स्वलाभ**-परोपकारादिना तत्तत् यत्नेन अभ्यसेत् ।। १५९ ।।

**सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।।**
**एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ।। १६० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। याच्ञां निन्दति—**यत्परवशं तत्सर्वं दुःखम्**। तिष्ठतु तावत्परस्य गृहद्वार्युपस्थानमनुवृत्तिरत्र चामुत्र च भ्रमणम्। यत्तु "सङ्कल्प एव याच्ञायां हृदयं न प्रसह्यते। नूनं मायामसन्दिग्धां सृष्टिर्नासौ स्वयम्भुवः।।" **समासेन** संक्षेपेणैतद्दुःखस्य **लक्षणं** या याच्ञा। सुखं चैतद्याऽस्पृहा ।। १६० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **लक्षणं** कारणम् ।। १६० ।।

(३) **कुल्लूकः**। अत्र हेतुमाह **सर्वं परवशमिति**। **सर्वं** परप्रार्थनादिसाध्यं दुःखहेतु, **सर्वमात्माधीनं** सुखहेतु। **एतत्सुखदुःखयोः कारणं** जानीयात् ।। १६० ।।

(४) **राघवानन्दः**। **आत्मवशं** देहमात्रनिर्वाह्यं। "शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिष"मिति (४।२१) **गीतोक्तेः**। **समासेन** संक्षेपेणेत्याह **सर्वमिति** ।। १६० ।।

(५) **नन्दनः**। यस्मादेवं तस्मात्

(६) रामचन्द्रः। सुखदुःखयोः लक्षणं कारणं एतद्विद्यात् ।। १६० ।।

(७) मणिरामः। सामान्यतः सुखदुःखलक्षणमाह सर्वमिति ।। १६० ।।

(८) गोविन्दराजः। यस्मात्–सर्वमिति। यत् परप्रार्थनादिसंसाध्यं तत्सर्वं दुःख-हेतु। यच्चात्मैकसाधनं तत्सर्वं सुखनिमित्तमित्येतत् संक्षेपतः सुखदुःखलक्षणं जानीयात् ।। १६० ।।

**यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ।।**
**तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ।। १६१ ।।**

(१) मेधातिथिः। आत्मतुष्टेः प्रागुक्तायाः पुनर्वचनं स्मरणार्थम्। विषयश्च तस्या दर्शन एव। यत्र कर्मणि क्रियमाणे किंकथिका न भवति, तत्कर्तव्यम्। यत्र तु हृदयं न तुष्यति, तद्वर्जनीयम् ।। १६१ ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। परितोषो धर्मसाधनं ममैतदिति बुद्ध्या प्रीतिः। एतच्च बहुषु धर्मप्रकारेषु मध्ये द्रष्टव्यं, एतदेव स्वस्य च प्रियमात्मन इति। प्रागुक्तं विपरीतं यत्र न कदाचित्परितोषः ।। १६१ ।।

(३) कुल्लूकः। यत्कर्म कुर्वतोऽस्यानुष्ठातुं पुरुषस्यान्तरात्मनस्तुष्टिः स्यात्तत्प्रयत्नतोऽनुष्ठेयमतुष्टिकरं वर्जयेत्। एतच्चाविहितानिषिद्धगोचरं वैकल्पिकविषयं च ।। १६१ ।।

(४) राघवानन्दः। किंच–परवशमपि पुत्रोत्पादनादिकार्यमन्तरात्मनो मनसः संतोष-हेतुत्वात्तद्विपरीतं पारदार्यादि न कार्यं, तस्योदर्केऽसंतोषहेतुत्वात् ।। १६१ ।।

(५) नन्दनः। एवं वर्जनीयं च कार्यं च यत्तल्लक्षणं उक्तम्, इदानीं लक्षणान्तरमाह यत्कर्मेति। सतामयमुपदेशो नासताम् ।। १६१ ।।

(६) रामचन्द्रः। अस्य द्विजस्य यत्कर्म कुर्वतः अन्तरात्मनः परितोषः स्यात् तत्कर्म कुर्वीत कुर्यात् ।। १६१ ।।

(७) मणिरामः। विपरीतं अतुष्टिकरम् ।। १६१ ।।

(८) गोविन्दराजः। अशिष्टाप्रतिषिद्धं वैकल्पिकं वा। यत्कर्मेति। यत्कर्म अनुतिष्ठतः पुंसोऽन्तरात्मनः परितोषो भवति तत् यत्नतः कुर्वीत। आत्मतुष्टिकरं पुनर्वर्जयेत् ।।१६१।।

**आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ।।**
**न हिंस्याद् ब्राह्मणान् गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ।। १६२ ।।**

(१) मेधातिथिः। आचार्य उपनेता। प्रवक्ता अध्यापको व्याख्याता। गुरुस्ताभ्यामन्यः पितृव्यमातुलादिः। सर्वांश्चैव तपस्विनः। प्रायश्चित्तप्रवृत्तान्पातकिनोऽपीति सर्वग्रहणम्। अविशेषेण सर्वभूतानां तत्र तत्र हिंसा निषिद्धा। पुनर्वचनमाचार्यादीनामाततायिनामपि निषेधार्थमिति केचित्। यस्तु "गुरुं वा बालवृद्धौ वा" (८।३५०) इत्यादिरर्थ-

वादोऽस्यैव प्रतिप्रसवः। उपाध्यायस्त्वाह—नायं प्रतिषेधः। पर्युदासोऽयम्। सङ्कल्प-विधानार्थो "नोद्यन्तमादित्यमीक्षेत" (४। ३७) इतिवत्। अतः प्रयत्नेऽतिक्रान्ते भवत्ययं सङ्कल्पप्रतिषेध इति।

अथवा दुरुक्तभाषणं 'हिंसा'। "वाग्भिस्तैस्तैर्जघान ताम्" इति प्रयोगदर्शनात्। अथवा प्रतिकूलाचरणे हन्तिः प्रयुक्तः ।। १६२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आचार्यमुपनीयाध्यापकम्। **प्रवक्तारं** उपाध्यायं व्याख्यातारं च। **गुरु**मुपनयनकारिणमन्यं च। **तपस्विन**स्तपःशीलाः। **न हिंस्यात्** प्रतिकूलं तेषां नाचरेत् ।। १६२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **आचार्य**मुपनयनपूर्वकवेदाध्यापकं **प्रवक्तारं** वेदार्थव्याख्यातारं **गुरु-मल्पं** वा बहु वा यस्येत्युक्तम्। आचार्यादींस्तु **न हिंस्यात्** प्रतिकूलाचरणेऽत्र हिंसाशब्दः। **गोविन्दराज**स्तु सामान्येन हिंसानिषेधादाततायिनोऽप्येतान्न हिंस्यादिति व्याख्यातवान्—तदयुक्तम्; 'गुरुं वा बालवृद्धौ वे' (८। ३५०) त्यनेन विरोधात् ।। १६२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच एतानष्टौ कदाचिदपि न पीडयेदित्याह **आचार्येति**। **आचार्य**मुपनेतारं। **प्रवक्तार**मध्यापकं। **गुरुं** हितोपदेष्टारम् ।। १६२ ।।

(५) **नन्दनः**। **न हिंस्यान्न** प्रतिकूलं कुर्यात् ।। १६२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **आचार्यं** उपनेतारं। **प्रवक्तारं** उपाध्यायं व्याख्यातारं। **पितरं, मातरं, गुरुं, ब्राह्मणान्, गाश्च, सर्वांश्चैव तपस्विनः,** प्रायश्चित्तप्रवृत्तान् एतान् आचार्यादीन् न हिंस्यात्। न साक्षाद्धननेन, अपि तु वचनेनापि दुःखं नोत्पादयेत्। प्रति-कूलाचरणं हननं न कार्यम् ।। १६२ ।।

(७) **मणिरामः**। **प्रवक्तारं** वेदादिव्याख्यातारं **न हिंस्यात्** प्रतिकूलाचरणरूपां हिंसां न कुर्यात् ।। १६२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **आचार्यं चेति**। **आचार्यं** अध्यापयितारं चोपनयनमात्रकारिणं लोकवत् **पितरं मातरं गुरुं** 'अल्पं वा बहु वा यस्ये' (२।१४९) त्युक्तम् **गोब्राह्मणतपोनिष्ठांश्च** आततायिनोऽपि **न हिंस्यात्**। अन्यथा सामान्यहिंसानिषेधे सति इदं पृथग्वचनमनर्थकं स्यात् ।। १६२ ।।

**नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।।**
**द्वेषं स्तम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ।। १६३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। वेदप्रमाणकानामर्थानां मिथ्यात्वाध्यवसायो 'नास्तिक्यम्'। शब्देन प्रतिपादनं **निन्दा**। 'पुनरुक्तो वेदोऽन्योन्यव्याहतो नात्र सत्यमस्तीति' भावदोषेण, न पूर्वपक्षभङ्ग्या। अग्न्यादयो 'देवता'स्तासां 'कुत्सनं' निन्दैव। यथा 'दग्धदैवेन हताः स्म' इति दैवे भवन्ति वक्तारः। **द्वेषो** मात्सर्यादिहेतुकाऽप्रीतिः। **स्तम्भो**ऽहङ्कारादनम्रता। **मानो**ऽहङ्कार आत्माभिमानः 'पण्डितोऽहमाढ्योऽहमिति'। अमर्षः **क्रोधस्तैक्ष्ण्यं** पारुष्यम्। द्वेषपूर्वकः क्रोधः ।। १६३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **नास्तिक्यं** परलोकनास्तितोपपादनम्। **द्वेषो**ऽपचिकीर्षा। **स्तम्भो** विनयाभावः। आत्मन्युत्कर्षप्रत्ययो **मानम्**। द्वेषहेतुरात्मगुणविशेषः **क्रोधः**। **तैक्ष्ण्यं** हिंसापरता ।। १६३ ।।

(३) **कुल्लूकः।** नास्ति परलोक इति बुद्धिं, वेदानां **देवतानां च निन्दां**, मात्सर्यं, धर्मानुत्साहाभिमानकोपक्रौर्याणि त्यजेत् ।। १६३ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच नास्तिक्याद्यष्टवर्जनमतीव सुखहेतुरित्याह **नेति। कुत्सनं** धिगित्यादितिरस्करणं। **मानं** पूजाकांक्षा। **तैक्ष्ण्यं** क्रौर्यम् ।। १६३ ।।

(५) **नन्दनः। नास्तिक्यं** परलोकाभावनिश्चयः। **वेदनिन्दा** वेदाप्रामाण्यनिर्णयव्यवहारः। **देवताकुत्सनं** देवतानिकर्षवादः। **द्वेषो** मानसो विकारः। **दम्भः** परसत्कारेऽनुद्यमः। अलभ्यलाभेऽपि प्रभुत्वं **मानः। क्रोधो** बहिर्विकारः। **तैक्ष्ण्यं** क्रूरता ।। १६३ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **च** पुनः वेदविदां मिथ्यात्वाध्यवसायश्च, अन्यत्प्रसिद्धं, **तैक्ष्ण्यं** हिंसाभिरतिः इत्यादि **वर्जयेत्** ।। १६३ ।।

(७) **मणिरामः। नास्तिक्यं** परलोको नास्तीति बुद्धिम्, **तैक्ष्ण्यं** कठोरवचनम् ।। १६३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। नास्तिक्यमिति। द्वेषं स्तंभं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत्।** नास्त्यदृष्टमित्येव बुद्धित्वं, वेददेवतागर्हणं मात्सर्यानम्रत्वश्रुतादावभिमानक्रोधक्रौर्याणि **वर्जयेत्** ।। १६३ ।।

**परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ।।**
**अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्टयर्थं ताडयेत्तु तौ ।। १६४ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** येन दम्यते स 'दण्डः' करलगुडशिफारज्जुविदलादि। तं **परस्य** क्रुद्धः **सन्नोद्यच्छेन्नो**त्क्षिपेत्। प्रहारार्थं तिर्यगपि न निपातयेत्। **निपातनं** वेगेन तदङ्गसंयोगः। **पुत्रशिष्यावनताडये**च्छिफावेणुदलचपेटाभिर्यथाऽष्टमे वक्ष्यति, न दण्डेन। तौ च न क्रोधेन, किं तर्हि? **'शिष्टयर्थं'**मनुशासनार्थं, बाल्याद्यदि चापलमाचरतः। तथा "पृष्ठतस्तु शरीरस्य" (८।३००) इतीषत्ताड्यौ। शिष्यग्रहणं दासीदासस्यापि प्रदर्शनार्थम्; समानकार्यत्वात् ।। १६४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। दण्डं** ताडनार्थं लगुडादि। **नोद्यच्छेन्न** व्यापारयेत् न **निपातयेत्** ताडनफलं न निष्पादयेत्। **शिष्टयर्थं** शिक्षार्थं नतु द्वेषमात्रेण, शिष्यपदं शासनीयपरम्। तथाच भार्यादिप्राप्तिरित्येके ।। १६४ ।।

(३) **कुल्लूकः। परस्य** हननार्थं क्रुद्धः सन्दण्डादि नोत्क्षिपेन्न **च** परगात्रे **निपातये**त्पुत्रशिष्यभार्यादासादेरन्यत्र कृतापराधानेताननुशासनार्थं 'रज्ज्वा वेणुदलेन वे'(८।२९९)-त्यादिवक्ष्यमाणप्रकारेण **ताडयेत्** ।। १६४ ।।

(४) **राघवानन्दः। नोपयच्छेत्परस्य** हननार्थं नादद्यात्। **न एनं** दण्डं **निपातयेत् शिष्टयर्थं** शिष्टिरनुशासनं तदर्थम् ।। १६४ ।।

(५) **नन्दनः। एनं दण्डं निपातयेत्।** परस्योपरीति शेषः ।। १६४ ।।

(६) **रामचन्द्रः। परस्येति। परस्य** अन्यस्य **दण्डं न उद्यच्छेत्** न कुर्यात्। **क्रुद्धः सन् पुत्रात् शिष्यात्** अन्यत्र **एनं दण्डं न निपातयेत्।** शिक्षार्थं तु निश्चयेन **तौ** पुत्रशिष्यौ **ताडयेत्** ।। १६४ ।।

(७) **मणिरामः। परस्य** ताडनार्थम् ।। १६४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। परस्येति। परस्य** दण्डादि नोद्गुरेत् क्रुद्धश्च सन् आत्मनः पुत्रशिष्यभार्याकनीयान्सोदर्यभ्रातृदासान् वक्ष्यमाणान् वर्जयित्वा न प्रहारेण। तान् पुनरनुशासनार्थं 'रज्ज्वा वेणुदलेन वे' त्यादिप्रकारेण **ताडयेत्** ।। १६४ ।।

**ब्राह्मणायावगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ।।**
**शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते ।। १६५ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** अविशेषेण सर्वविषये ताडने निषिद्धे ब्राह्मणे तत्क्रियाया दोषातिशयदर्शनार्थं पञ्चश्लोकी। **अवगुर्य** उद्यम्यैव दण्डादि **वधकाम्यया** ताडनेच्छया विनैव निपातेन। **शतं वर्षाणि नरके पच्यते** परिवर्तते तत्फलमुपभुङ्क्ते ।। १६५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। वधकाम्यया** ताडनार्थतया ।। १६५ ।।

(३) कुल्लूकः। द्विजातिरपि ब्राह्मणस्य हननार्थं दण्डादिकमुद्यम्यैव नतु निपात्य **वर्षशतं तामिस्रादिनरके** परिभ्रमति ।। १६५ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तत्राप्यहो कष्टं ब्राह्मणताडनमित्याह **ब्राह्मणायेति। अवगुर्य** वधकाम्यया दण्डाद्युद्यम्य। एतत्त्रयं कदापि न कुर्यात्। **द्विजातिश्चातुर्वर्ण्यम्** ।। १६५ ।।

(५) **नन्दनः।** दण्डोद्यमने ब्राह्मणविषये दोषविशेषमाह **ब्राह्मणायेति। अवगुर्य** दण्डमुद्यम्य ।। १६५ ।।

(६) **रामचन्द्रः। द्विजातिः वधकाम्यया** ब्राह्मणान् **अवगुर्यैव** दण्डं उत्थाप्यैव ।। १६५ ।।

(७) **मणिरामः। अवगुर्यैव** उद्यम्य न तु निपात्य ।। १६५ ।।

(८) **गोविन्दराजः। ब्राह्मणायेति। द्विजातिरपि** हननेच्छया ब्राह्मणस्य दण्डाद्युद्यम्यैव **वर्षशतं तामिस्राख्ये नरके** परिभ्राम्यति ।। १६५ ।।

**ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ।।**
**एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ।। १६६ ।।**

(१) **मेधातिथिः। संरंभः** क्रोधावेशः, न तु नर्मणा। बुद्धिपूर्वम्। **एकविंशतिमाजातीः** जातिर्जन्म। आकारोऽनर्थकः, प्रलम्बत इतिवत्। पापानां योनय इति तिर्यग्जन्तवो दुःखबहुलाः। तिष्ठतु तावद्दण्डादिः पीडाकरपदार्थः। तृणेनापि ताडने दीर्घकालो **नरकानुभवः** ।। १६६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। संरम्भात्** क्रोधात् न तु कर्मणा। **आजातीर्जन्मान्येकविंशतिं पापयोनिषु** श्वादिषु। एतच्च तामिस्रे दुःखमनुभूय पश्चात् ॥ १६६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** तृणेनापि क्रोधाद्बुद्धिपूर्वकं ब्राह्मणान् **ताडयित्वा एकविंशतिजन्मानि पापयोनिषु** कुक्कुरादियोनिषु **जायते** ॥ १६६ ॥

(४) **राघवानन्दः। संरम्भात्** क्रोधात्। **आजातीः** जन्मानि। **पापयोनिषु** शूकरादिषु ॥ १६६ ॥

(५) **नन्दनः।** ब्राह्मणविषये दण्डपातने दोषविशेषमाह **ताडयित्वेति। आजातेः** आजननात्। जायतेः सकर्मत्वमृषिनिपातनात् ॥ १६६ ॥

(६) **रामचन्द्रः। तृणेनापि ताडयित्वा एकविंशतिजन्मानि** प्राप्नोति ॥ १६६ ॥

(७) **मणिरामः। एकविंशतिमाजातीः** एकविंशतिजन्मानि ॥ १६६ ॥

(८) **गोविन्दराजः। ताडयित्वेति।** क्रोधेन बुद्धिपूर्वं तृणेनापि प्रहृत्य एकविंशतिजन्मानि **पापनिमित्तासु** श्वादि**योनिषु जायते**। आजातीरित्याङ् पादपूरणः ॥ १६६ ॥

**अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः।**
**दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ १६७ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** असृग्लोहितम्। **तदङ्गतो**ऽङ्गाद्यत्रोत्पादयति **ब्राह्मणस्य** खड्गप्रहारादिनाऽ**युद्धयमानस्य,** न तु द्रोणाचार्यवत्क्षात्रेण धर्मेण युयुत्सोः **सुमहद्दुःखं** नरकादि **प्रेत्य** मृतो जन्मान्तरे। **अप्राज्ञतये**त्यनुवादः। प्राज्ञो हि शास्त्रार्थज्ञानान्न कथमप्येवं कुर्यात् ॥ १६७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अयुध्यमानस्येति।** युध्यमानस्य क्षतकरणे दोषाल्पता दर्शिता। अत एव तद्वधेऽपि प्रायश्चित्ताल्पत्वमुन्नेयम्। सामान्योक्तदुःखपरिमाणाभिधानं शोणितम् ॥ १६७ ॥

(३) **कुल्लूकः। अयुध्यमानस्य ब्राह्मणस्याङ्गे** शास्त्रानभिज्ञतया शोणित**मुत्पाद्य** परलोके **महद्दुःखमाप्नोति** ॥ १६७ ॥

(४) **राघवानन्दः। असृग्रक्तं। अङ्गतो** देहात्। युद्धे तु न दोषः, न तु दृश्यते दुःखमिति चेत्तत्राह **प्रेत्येति। अप्राज्ञतया** अदोषज्ञत्वेन ॥ १६७ ॥

(६) **रामचन्द्रः। अयुध्यमानस्य** शास्त्रेण धर्मेण युयुत्सोः 'ब्राह्मणस्य' **अन्ततः** 'मध्यतः' **असृक् उत्पाद्य प्रेत्य** परलोके **अप्राज्ञतया नरः सुमहद्दुःखं प्राप्नोति** ॥ १६७ ॥

(७) **मणिरामः। अप्राज्ञतया** शास्त्रानभिज्ञतया ॥ १६७ ॥

(८) **गोविन्दराजः। अयुध्यमानस्येति।** युद्धं विना ब्राह्मणशरीरतो मौर्ख्यात् रुधिरं **नर उत्पाद्य** परलोके **महद्दुःखं प्राप्नोति** ॥ १६७ ॥

**शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात् ॥**
**तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ १६८ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** ईषत्प्रहारे पूर्वफलम् । अधिके तु **पांसवो** रजांसि धूल्यवयवास्ता-**न्यावतो** यत्परिमाणान्गृह्णाति संहन्ति ब्राह्मणाङ्गच्युतं भूमिपतितं लोहितम् । **तावतोऽब्दां-**स्तावन्ति वर्षाण्यमुत्र परलोकेऽद्यते श्वशृगालैर्यः **शोणितस्योत्पादकः** प्रहर्ता ॥ १६८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । संगृह्णाति** संग्रहीतुं शक्नोति । **अमुत्र** नरके । **अद्यते** भक्ष्यते ॥ १६८ ॥

(३) **कुल्लूकः ।** खड्गादिहतब्राह्मणाङ्गनिर्गतं रुधिरं भूमिपतितं **यावतो** धूलिद्व्यणु-कान्पिण्डीकरोति तावत्संख्यानि वर्षाणि परलोके **शोणितोत्पादकः** प्रहर्ता **अन्यैः** श्वशृगाला-दिभिर्भक्ष्यते ॥ १६८ ॥

(४) **राघवानन्दः । संगृह्णाति** पिण्डं करोति **पांशुः** त्रसरेणुः । **तावतस्तत्सङ्ख्या-**कान् । **अन्यैः** गृध्रादिभिः ॥ १६८ ॥

(५) **नन्दनः । अन्यै**रिहलोकगतैः ॥ १६८ ॥

(६) **रामचन्द्रः । तावतः अब्दान्** वर्षान् **अमुत्र** परलोके **अद्यैः** अदनीयैः सह **शोणितो-त्पादकः अद्यते** भक्ष्यते ॥ १६८ ॥

(७) **मणिरामः । संगृह्णाति** पिंडीकरोति । तावद्वर्षाणि **अमुत्र ।** परलोके शोणितो-त्पादकः ब्राह्मणगात्राद्रुधिरोत्पत्तिकर्ता, **अन्यैः** श्वशृगालादिभिः **अद्यते** भक्ष्यते ॥ १६८ ॥

(८) **गोविन्दराजः । शोणितमिति ।** प्रहृतब्राह्मणोत्पन्नं रुधिरं क्षितिपृष्ठान् यत्सङ्-ख्याकान् रजःकणान् पिण्डीकरोति तत्सङ्ख्याकानि वर्षाणि रुधिरस्योत्पादकः परलोके श्वादिभिः भक्ष्यते ॥ १६८ ॥

**न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥**
**न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥ १६९ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** पूर्वस्य क्रियात्रयप्रतिषेधविधेः निपातनविषयस्योपसंहारः । **न कदाचिदा**पद्यपीत्यर्थः ॥ १६९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । द्विजे** विप्रे । **अवगुरेदप्यु**द्यच्छेदपि ॥ १६९ ॥

(३) **कुल्लूकः ।** तस्मादवगोरणादिदोषाभिज्ञो ब्राह्मणे दण्डाद्युद्यमननिपातरुधिर-स्रवणानि नापद्यपि कुर्यादिति पूर्वोक्तक्रियात्रयस्योपसंहारः ॥ १६९ ॥

(४) **राघवानन्दः ।** हिंसाप्रकरणमुपसंहरति **नेति । असृगिति** द्वितीयान्तम् ॥ १६९ ॥

(५) **नन्दनः ।** उपसंहरति **नेति** ॥ १६९ ॥

(६) रामचन्द्रः। द्विजे तस्मात्कदाचिदपि विद्वान्नावगुरेत् न दण्डमुत्थापयेदित्यर्थः ।। १६९ ।।

(७) मणिरामः। तस्मात् कारणात् नावगुरेत् दण्डं नोत्थापयेत् ।। १६९ ।।

(८) गोविन्दराजः। न कदाचिद्विज्ञ। यत एवं ब्राह्मणावगोरणादिना भवति तस्मात् शास्त्रविन्न कदाचिदपि ब्राह्मणस्य दण्डादि उद्यच्छेत्। नापि तं तृणेनापि हन्यात्। न च शरीराद्रुधिरमुत्पादयेत् ।। १६९ ।।

**अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।**
**हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ।। १७० ।।**

(१) मेधातिथिः। सामान्यतः सर्वहिंसाप्रतिषेधशेषोऽयम्। अधर्मः शास्त्रप्रतिषिद्धोऽगम्यागमनादिस्तं चरत्यधार्मिकः। यस्य चानृतमेव धनम्। साक्ष्ये व्यवहारनिर्णयादौ चासत्यमुक्त्वा उत्कोचधनं साधयति। यश्च हिंसारतिर्हिंसायां अभिरतो, वैरानुबन्धादर्थहेतोर्वा परान्हिनस्ति। नासौ सुखमेधते न सुखं प्राप्नोति। इहास्मिल्लोके ।। १७० ।।

(२) सर्वज्ञनारायणः। अधार्मिकोऽधर्मवृत्तिः। अनृतं मिथ्यावचनं धनमिवोपादेयम् ।। १७० ।।

(३) कुल्लूकः। अधर्मेण व्यवहरतीत्यधार्मिकः शास्त्रप्रतिषिद्धागम्यागमनाद्यनुष्ठाता यो मानुषो यस्य च साक्ष्ये व्यवहारनिर्णयादौ च मिथ्याभिधानमेव धनोपाय असत्यमभिधायोत्कोचधनं गृह्णाति यश्च परहिंसाभिरतः नासाविहलोके सुखयुक्तो वर्तते तस्मादेतन्न कर्तव्यमिति निन्दया निषेधः कल्प्यते ।। १७० ।।

(४) राघवानन्दः। अधार्मिकः परदारादिनिरतः। अनृतं धनं मिथ्याभिधानमेव धनोपायः। असाविति परोक्षनिर्देशादमुत्रापि ।। १७० ।।

(५) नन्दनः। एवमधर्मस्य वर्जनीयत्वमुक्तम्। इदानीं न केवलामुत्रिकाद्भयादधर्मो वर्जनीयः किन्त्वैहिकादपीत्याह अधार्मिक इति। अधार्मिकमानसदोषयुक्तस्योपलक्षणम्। अनृतं धनमिति। वाचिकदोषयुक्तस्य। हिंसारत इति कायिकदोषयुक्तस्य। इहास्मिन्नेव लोके न सुखमेधते। अधार्मिकं वर्जयन्ति सन्तोऽनृतबहुलं वर्जयन्ति द्विषन्ति च हिंसारतं वर्जयन्ति द्विषन्ति हिंसन्ति च। तस्मादैहिकादपि भयादधर्मो वर्जनीय इत्यभिप्रायः ।। १७० ।।

(६) रामचन्द्रः। अधार्मिकादीनां मध्ये च पुनः हिंसारतिः असौ नेहलोके सुखं वर्धते ।। १७० ।।

(७) मणिरामः। अनृतं धनं। साक्ष्यादौ अनृतमेव। मिथ्याकथनमेव धनोपायो 'यत्र' तत् ।। १७० ।।

(८) गोविन्दराजः। **अधार्मिक इति**। यस्माद्यो **नरः** अधर्माचरणशीलो **यस्य वा** असत्यमेव धनं तत्प्राधान्येन व्यवहाराख्यं सर्वदा **हिंसानिरतः स इहलोकेऽपि न सुखं** वर्धते। तस्मादेतन्न कार्यम् ॥ १७० ॥

**न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।**
**अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ १७१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **धर्मः** शास्त्रमर्यादा। तेन वर्तमानः **सीदन्न**प्यवसादमपि प्राप्नुवन्**ना-धर्मे मनो निवेशयेत्**। यत **अधार्मिका** यद्यपि चौर्योत्कोचदम्भादिभिर्धनसमृद्धा दृश्यन्ते, तथापि तेषा**माशु विपर्ययो** दृश्यते धननाशादि, अतो न धर्माद्विचलेत् ॥ १७१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **धर्मेण** धर्मे क्रियमाणे **सीदन्न**वसीदन्नपि। **अधार्मिकाणामधर्म-**हेतुर्हिंसादिकारिणां **पापाना**मकृतप्रायश्चित्ततया तज्जन्यपापवतां **आशु** परलोके परलोक-गमनमात्रेण **विपर्ययं** दुःखम् ॥ १७१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। शास्त्रविहितमनुतिष्ठन्धनाद्यभावेनाऽवसीदन्नपि कदाचि**न्नाधर्मे** बुद्धिं कुर्यात्। यस्मादधर्मव्यवहारिणो यद्यप्यापाततो धनादिसंपद्भागिनोऽपि दृश्यन्ते, **तथापि तेषामधार्मिकाणा**मधर्मचौरादिव्यवहारिणां **पापिनां** तज्जनितदुरितशालिनां शीघ्रं धनादि-विपर्ययोऽपि दृश्यते। तं **पश्यन्नाधर्मे** धियं दद्यादिति **शिष्य**हिताय दृष्टमर्थं दर्शितवान् ॥ १७१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **नेति**। **धर्मेण सीदन्नपि मनोऽधर्मे न निवेशयेदि**-त्यन्वयः ॥ १७१॥

(५) **नन्दनः**। न केवलमधर्मप्रकर्षो लोकोपक्रोशभयाद्वर्जनीयः किंतु प्रत्यक्षतोऽनर्थ-बहुत्वादपीत्याह **नेति**। प्रमुखदुःखेन परिणामसुखेन भेषजेनेव सेव्यमानेन **धर्मेण** शास्त्र-व्यवस्थारूपेणात्मसंकोचाख्येन **सीदन्नपि** तद्विपरीतरूपे विषमिश्रे मधुनीवा**धर्मे मनो न निवेशयेत्**। अत्र हेतुरुत्तरार्धेनोक्तः। **अधार्मिकाणां** धर्मानुष्ठानरहितानां **पापानां** पापकारिणां चोरादीना**माशु** सद्यो **विपर्ययमनर्थं** राजदण्डादिकं **पश्यन्निति**। न हि **पापानां** पापाचरणा-नन्तरमेवानर्थ उपलभ्यते ॥ १७१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **धर्मेण** धर्मशास्त्रमर्यादया **सीदन्नपि नरः मनः अधर्मे न निवेशयेत्। अधार्मिकाणां आशु विपर्ययं पश्यन्**। यद्यपि चौर्योत्कोचादिना धनसमृद्धिः, तथापि तस्याः समृद्धेरपि **आशु** विनाशः ॥ १७१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **न सीदन्निति**। यथा धर्मशब्दो यागादौ तज्जन्ये चात्मसंस्कारे दृष्टप्रयोगः, एवमधर्मशब्दोऽपि हिंसादौ तज्जन्ये चात्मसंस्कारे दृष्टप्रयोगः; अतः **अधार्मिकाणां पापाना**मित्येवं व्याख्यायते। हिंसाद्यधर्मचरणशीलाना तज्जन्यपापाख्यसंस्कारयुक्तानां **इहलोके** राजोपद्रवं क्षिप्रं **पश्यन्** परलोके च शास्त्रदृष्ट्या नरकं **पश्यन्** धर्मानुष्ठानेनात्म-संयमातिशये सति अवसादं गच्छन्नपि **मनः अधर्मे न नियोजयेत्** ॥ १७१ ॥

**नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।।**
**शनैरावर्त्यमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।। १७२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । सुहृद्भूत्वा दृष्टमर्थं दर्शितवान् । इदानीं शास्त्रार्थमाह । अनियतकालत्वाद्वैदिकानां शुभाशुभफलानां कर्मणामेवमुच्यते । **नाधर्मश्चरितो**ऽनुष्ठितः **सद्यः फलति** फलं ददाति । वेदे हि केवलं कर्मणां विहितप्रतिषिद्धानां सुखदुःखफलत्वं श्रुतम् । कालविशेषस्तु नावगमितः । वाक्यव्यापारो हि कर्तव्यतावगमपरत्वेऽपि कर्मफलसम्बन्धबोधमात्रे पर्यवस्यति, न कालविशेषमाक्षिपति फलवतां कर्मणाम् । नित्यानां तु न फलतः कर्तव्यताप्रतिषिद्धपरिहारेऽपि नैव नरकादिदुःखानिवृत्तिकामस्याधिकारः, किन्तु शास्त्रप्रतिषेधसामर्थ्यात् । स तु प्रतिषेधो दुःखफलत्वं प्रतिषिद्धानुष्ठानस्य बोधयति । निपुणत एतदुच्यमानमतिग्रन्थविस्तरमाक्षिपतीत्युपरम्यते । **गौरिव** साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामयं दृष्टान्तः । यथा **गौः** पृथिवी व्युप्तबीजा न तदैवानेकसस्यशालिनी भवति, किं तर्हि? परिपाकमपेक्षते, तादृशं वैदिकं कर्मेति साधर्म्यम् । वैधर्म्येणापि, यथा गौः पशुर्वाहदोहाभ्यां सद्यः फलति; नैवं धर्माधर्मौ । अधर्मग्रहणं धर्मस्यापि फलदानं प्रति कालानियमप्रदर्शनार्थम् । **आवर्त्यमानः** कालेनोपचीयमानः । **कर्तुः** प्रतिषिद्धानुष्ठातुः **मूलानि कृन्तति** छिनत्ति । मूलकर्तनेन सर्वेण सर्वविनाश उपलक्ष्यते । यथा मूलच्छेदाद्वृक्षादिस्थावराणामपुनर्भवस्तद्वदधर्मकारिणाम् ।। १७२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । सद्यस्तत्क्षणादेव** यथा **गौर्दुग्धं फलति न** तथा **अधर्मः आवर्त्यमानः** पुनः पुनः क्रियमाणः **मूलानि** भोगस्य साधनानि कर्माणि **कृन्तति** छिनत्ति, तच्छेदानन्तरं तु स्वफलं दुःखं करोतीत्यपि द्रष्टव्यम् ।। १७२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । शास्त्रेणानियमितकालपरिपाकत्वात् शुभाशुभकर्मणां **नाधर्मो**ऽनुतिष्ठतस्तत्काल एव **फलति गौरिवेह** भूमिपक्षे साधर्म्यदृष्टान्तः । यथा भूमिरुप्तबीजमात्रा तदैव प्रचुरपचेलिमफलव्रीहिस्तबकसंवलिता न भवति, किंतु नियमफलपाकसमयमासाद्य । पशुपक्षे वैधर्म्यदृष्टान्तः यथा **गौः** पशुर्वाहदोहाभ्यां सद्यः फलति, नैवमधर्मः, किंतु क्रमेणा**वर्त्यमानः** फलोन्मुखी भवन्नधर्म**कर्तुर्मूलानि** छिनत्ति मूलच्छेदेन सर्वनाशो लक्ष्यते देहधनाद्यन्वितो नश्यति ।। १७२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । विपर्ययं विवृणोति **नेति** । **चरितो**ऽनुष्ठितः । **गौः** पृथिवी सा यथा विलम्बेन सस्यवती । व्यतिरेके वा धेनुरिव दृष्टान्तः **आवर्त्यमानो**ऽभ्यस्यमानः **मूलानि** देहधनादीनि **कृन्तति** छिनत्ति ।। १७२ ।।

(५) **नन्दनः** । तदिष्टविरुद्धमिदमुक्तमित्याशङ्क्य परिहरति **नेति** । **गौरिवेति** वैधर्म्यदृष्टान्तः । **लोके**ऽस्मिंल्लोके । **कर्तुर्मूलानि** कर्तुरपेक्षितार्थमूलानि गृहक्षेत्रादीनि । तस्मात्कालान्तरेऽपि फलोपलम्भान्न दृष्टविरोध इत्यभिप्रायः ।। १७२ ।।

(६) **रामचन्द्रः । चरितः अधर्मः सद्यः गौरिव न फलति** । साधर्म्येण दृष्टान्तः । पृथिवीसाधर्म्ये पशुवैधर्म्ये शनैः **आवर्त्यमानस्तु** प्रवर्तमानः अधर्म**कर्तुर्मूलानि** भोगसाधनानि **कृन्तति** छिनत्ति ।। १७२ ।।

(७) **मणिरामः । गौरिव । गौर्भूमिः** पशुश्च तद्वत् । यथा गौः पशुः वाहदोहाभ्यां **सद्यः फलति** । तथा **अधर्मो न फलति**, किंतु क्रमेणैवेति वैधर्म्येण दृष्टांतः । भूमिपक्षे साधर्म्येण यथा भूमिः उप्तबीजमात्रात् तदैव न **फलानि** ददाति, किंतु समयमासाद्य ददाति । तथा अधर्मोऽपीत्यर्थः ।। १७२ ।।

(८) **गोविन्दराजः । नाधर्म इति** । यथा गौः वाहनदोहनादिना **सद्यो लोके फलति** तथाऽधर्मश्चरितः **सद्यो न फलति** । किं तर्हि ? **शनैः शनैः** कालान्तरेण फलदानोन्मुखीभवन् **कर्तुर्मूलानीव कृन्तति** । कृत्तमूलपादपवत् कर्तारं निरन्वयं नाशयति ।। १७२ ।।

**यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ।।**
**न त्वेव तु कृतो धर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ।। १७३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । "इदमयुक्तं यदन्यकृतस्य कर्मणोऽन्यगामिता फलस्योच्यते । कर्तुः फलदानि वैदिकानि कर्माणि । न वैश्वानरन्यायोऽस्ति, श्रवणाभावात् । न हि पुत्राद्यर्थताऽत्र श्रुता" ।

सत्यम् । पुत्रे पीड्यमाने पीडितस्य पितुरधिकतरं दुःखं भवति । अतः कर्तुरेव दुःखम् । पुत्रस्यापि स्वकृतात्पौर्वदेहिकात्कर्मणस्तत्फलमित्यविरुद्धम् । एवं **नप्तृष्वपि** द्रष्टव्यम् । नप्तारः पौत्राः । **कृतो धर्म** इति संहितायास्तुल्यत्वाद्धर्माधर्मौ द्वावप्युपात्तौ ।। १७३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अस्मिन्नेव तावद्रोगादिदुःखं जनयति कथंचिदुत्कटधर्मप्रतिरोधेन साक्षाद्दुःखजननाशक्तौ पुत्रपौत्रादिद्वारेण रोगाद्युत्पादनद्वारापि दुःखं जनयतीत्यर्थः ।। १७३ ।।

(३) **कुल्लूकः । यदि** स्वयं कर्तुर्देहधनादिनाशं फलं न जनयति तदा **तत्पुत्रेषु** नोचेत्पौत्रेषु जनयति, **नतु निष्फल** एव भवति । ननु अन्यकृतस्य कर्मणः कथमन्यत्र फलजनकत्वम् ? उच्यते—पुत्रादिनाशस्य पितुः क्लेशहेतुत्वात् । शास्त्रीयत्वाच्चास्यार्थस्य नाविश्वासः ।। १७३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । कर्तर्यदृश्यमानमपि कृतं पुत्रादिषु फलतीत्याह **यदीति** । 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभ'मिति स्मरणात् **नात्मनि** तच्छरीरावच्छेदेन **फलति** चेत्पुत्रपौत्रादिरूपशरीरप्राप्तावपि फलति; वाचनिकातिरिक्तफलस्यान्यत्रासंभवात् । न चैतद्वचनं व्यर्थं अर्थवादेनाप्युपपत्तेः, अत एव प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु तु दुष्कृतमित्याद्यपि स्तुतिवादो 'हानौ तूपायनमि'त्यादिसूत्रे निरटङ्कि ।। १७३ ।।

(५) **नन्दनः** । यदा तु कर्तारं प्रबलधर्मसहितमधर्मः साक्षात्पीडयितुं न शक्नोति तदा सन्तानपीडाद्वारेणापि तं पीडयतीत्याह **यदीति । अधर्मः** कृत **आत्मनि** कर्तरि यदि न फलति, ततः **पुत्रेषु** फलति, न चेत्पुत्रेषु ततो **नप्तृषु पौत्रेषु** फलतीति ; पुत्राद्यनर्थकरणस्य कर्तृफलत्वं कर्तुस्तथाभिमानात् तत्पीडया पीडोपलम्भाच्चेति ।। १७३ ।।

(६) **रामचन्द्रः । यदि आत्मनि** पापः **अधर्मः न फलति तदा पुत्रेषु** फलेत्, यदि पुत्रेषु न, तर्हि **नप्तृषु** फलेदिति । **कर्तुः** कृतं कर्म **निष्फलं न भवति** ।। १७३ ।।

(७) **मणिरामः**। क्रममेवाह **यदीति**। कर्तुश्चेद्धनादि नाशं न करोति तदा तत्पुत्रेषु तदभावे **नप्तृष्विति** प्रकारेण ।। १७३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यदीति**। **यदि** स्वशरीरव्याध्युत्पादनद्वारेणाधर्मो न फलति तदा पुत्रपौत्ररोगाद्युद्भवमुखेन फलति। न त्वसौ कृतः कदाचित् **कर्तुर्निष्फलो भवति** यैश्च दुष्कृतवशेन व्याध्याद्युपेतैर्भवितव्यं तथाविधाः तस्यात्मदुष्कृतबलात् तद्विपत्त्यादिदर्शन-पीडानुभवार्थं पुत्रपौत्रा इह जन्मनि जन्मान्तरे वा जायन्ते ।। १७३ ।।

**अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।।**
**ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ।। १७४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अधर्मेण** प्रभुद्रोहादिनै**धते** वृद्धिं लभते। **ताव**त्तस्मिन्नेव काले। ततो धनं ग्रामं वा प्राप्य। **ततो भद्राणि** बहुभृत्यगवाश्वादिसम्पत्तिलक्षणानि **पश्यत्य**नुभवति। **ततः सपत्ना**नरीन्दरिद्रा**ञ्जयति** परिभवति। तर्हि धर्मे स्थितान्कुतश्चन कुसृतिहीना लभन्ते। अतस्तेषां दारिद्र्यशब्द ऐश्वर्ये परिभवः। **समूलं** च कियन्तं कालमेवं भूत्वा सपुत्रज्ञातिधन-बान्धवा उच्छिद्यन्ते। तस्माद्धर्मो न ह्यातव्यः ।। १७४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अधर्मेणा**पि क्रियमाणेनोपलक्षितो धनादिभिर्वर्धत एव **ताव**-द्यावदुत्कटो धर्मोऽस्ति। तदनन्तरं च **भद्राणि** सुखानि **पश्यति**। **ततः** शत्रूनभिभवति, ततस्तेन फलदानोपक्षीणेन धर्मेण भोगमूलेन सह **नश्यति** ।। १७४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **अधर्मेण** परद्रोहादिना तावदापाततो ग्रामधनादिना वर्धते। **ततो भद्राणि** बहुभृत्यगवाश्वादीनि लभते। **ततः** शत्रूनस्वस्मादपकृष्टा**ञ्जयति** पश्चात्कियता कालेनाधर्मपरिपाकवशाद्देहधनतनयादिसहितो **विनश्यति** ।। १७४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच, प्रभुद्रोहादिनाऽ**धर्मेण** तावद्वर्धते पुत्रपौत्रादिना। **भद्राणि** गवाश्वादीनि **पश्यति** च लभत–इति। इदमत्राकूतम्–चित्रायागादिरिवेहामुत्रानियतफलतया कदाचिदपि कुवचित्फलनिन्दाभावि, अथवा सर्वधर्मस्य ज्ञानमेव फलं प्रसिद्धम्। 'धर्मात्सुखं ज्ञानं चे'ति श्रुतेः। प्राक्तनकर्मफलं भुञ्जानः ऐहिकं मन्यते ।। १७४ ।।

(५) **नन्दनः**। नन्वधर्मं कुर्वन्कश्चित्क्षेमी दृश्यते, तेनाभ्युदयहेतुत्वमप्यधर्मस्या-भ्युपगन्तुं शक्यते, ततः कथं तस्यैकान्ततोऽनर्थहेतुत्वमित्याशङ्क्य परिहरति **अधर्मेणेति** ।। १७४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **तावत् अधर्मेण** अधर्माचरणेन पूर्वपुण्येन **एधते** वर्धते। यावदुत्कृष्टो धर्मः ततः तस्माद्**भद्राणि पश्यति**। च पुनः **सपत्नान् जयति**। धर्मं सर्वस्य दानं **ततः** धर्मक्षयात् **समूलं** सपुत्रज्ञातिधनबान्धवादिरूपशर्मसहितो विनश्यति ।। १७४ ।।

(७) **मणिरामः**। तावत् आपाततः। **एधते** धनादिना वृद्धिं प्राप्नोति। ततः कालेन अधर्मपरिपाकवशात् **समूलः** देहधनादिसहितः ।। १७४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अधर्मेणेति।** **अधर्मेण** परस्वहरणादिना संप्रति धनवृद्ध्यादि-युक्तो भवति। तदनन्तरं तद्धनाद्युपभोगद्वारेण सुखान्यनुभवति, तदनुभवाच्च सुखितत्वादिना शत्रूनभिभवति, ततोऽस्मिन्नेव जन्मनि सर्वनाशं नश्यति मृतो वा अपुनर्भवं नरकमुपैति ।। १७४ ।।

**सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।।**
**शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ।। १७५ ।।**

(१) **मेधातिथिः। सत्यं** यथादृष्टार्थवादिता। **धर्मः** श्रुतिविषयौ विधिप्रतिषेधौ। सत्यस्य ताद्रूप्येऽपि भेदेन निर्देशोऽतिशयार्थः। अनृतं पुरुषाणां स्वभावभूतम्। अतो यत्नेन पुनः पुनः प्रतिषिध्यते। **आर्यवृत्तं** सदाचारः। आर्याः शिष्टास्तेषां वृत्तमाचरितम्। तत्र **आरमेत्**। 'रतिः' परितोषः। एतेष्वर्थेषु परितोषोऽनेन विधीयते। अन्यानप्येवमाचारान्दृष्ट्वा मनःप्रसादं कुर्यात्। **शिष्याश्चैव** भार्यापुत्रदासच्छात्रा धर्मेणानुशासनीयाः। "पृष्ठतस्तु शरीरस्येत्यादि" (८।२९९) धर्माः। **वाग्बाहूदरसंयतः**। सत्यसति च प्रयोजने अबहुभाषिता 'वाक्संयमः'। 'बाह्वोः संयमो' बाहुबलाश्रयणेन कस्यचिदपि अपीडनम्। 'उदरस्य संयमो'ऽनौदरिकता अबहुभोजित्वम्। औदरिकता बहुभोजित्वं भोज्यविशेषे गर्धया परगृहे बाहुल्येन भोजनम्। उक्तोऽप्यर्थः पुनरुच्यते, बहुकृत्वोऽपि पथ्यं वदितव्यमिति सर्वत्र पौनरुक्त्यपरिहारः ।। १७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। धर्मो** धर्मसाधनं **सत्यस्य शौचस्य** च धर्मत्वेऽपि अभ्यर्हिततया पृथगुक्तिः। **आर्याः** आराद्दूरं पापेभ्यो गताः; तेषां **वृत्तमाचारो** धर्मेण भोगहेतुरपि तत्रैव **शौचं** बाह्याभ्यन्तरम्। **आरमेत्** सर्वदा रतः स्यात्। **धर्मेण** धर्मोपदेशेन वागादिसंयतश्च स्यात्। **वाक्संयमः** परुषावचनादिः **बाहुसंयमो**ऽहिंसादिः **उदरसंयमः** अनदनीयाभक्षणादिः ।। १७५ ।।

(३) **कुल्लूकः। सत्यधर्मसदाचारशौचेषु** सर्वदा रतिं कुर्यात् **शिष्यांश्चा**नुशासनीयान् भार्यापुत्रदासच्छात्रान् 'रज्ज्वा वेणुदलेन वे'(८।२९९)ति प्रकारेण शासयेत्। उक्तानामप्य-भिधानादादरार्थं **वाग्बाहूदरसंयतश्च** स्यात्। **वाक्संयमः** सत्यभाषिता। **बाहुसंयमो** बाहुबलेन कस्याप्यपीडनम्। **उदरसंयमो** यथालब्धाल्पभोजनम् ।। १७५ ।।

(४) **राघवानन्दः।** प्राक्तनजपुण्यफलं भुञ्जानोऽपि वा लोकप्रतीत्या अधर्मेण वर्धत इवेत्यनूद्य धर्मक्षये समूलो नंक्ष्यतीत्याह **सत्येत्यादि**। सत्यं यथाश्रुतस्य यथादृष्टस्य भाषणं। **धर्मो** बलवद्दुःखाजनकत्वे सति विधिबोध्यः। **आर्यवृत्तः** सदाचारः। **वाक्संयमः** सत्यं ब्रूयादिति श्लोकोक्तः। **बाहुसंयमो** 'न पाणिपादचपल' (श्लो. १७७) इत्यादिना वक्ष्यते। **उदरसंयमो** 'गर्हितं चातिभोजन'मित्याद्युक्तः। **संयतस्तेषां** निग्रहयुक्तः ।। १७५ ।।

(५) **नन्दनः।** एवं दृष्टविरुद्धत्वेनाप्यधर्मस्य वर्जनीयत्वमुक्तम्, इदानीं व्रतान्तरा-ण्येवाह **सत्येति** ।। १७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **सत्यं** यथार्थभाषणं । **धर्मः** श्रुतिस्मृत्यभिहितः । **आर्यवृत्तं** सद्वृत्ताचरणम् । तेषु **सदा रमेत च** पुनः **शौचे** अन्तर्बाह्यशौचे सदा रमेत । **वाग्बाहूदरसंयतः** नियतगात्रः । वाक्मौनं व्यर्थालापरहितं । **बाह्वोः** संयमः बाहुबलाश्रयः । **उदरं** (अ) बहुभोजितं भवेत् ।।१७५ ।।

(७) **मणिरामः** । **शिष्यान्** अनुशासनीयान् भार्यापुत्रदासशिष्यान् शिष्यान् । बध्वा वेणुदलेन वा शासयेत् । **वाग्बाहूदरसंयतः** स्यात् । सत्यभाषिता वाक्संयमः । बाहुबलेन कस्याप्यपीडनं वाहुसंयमः । यथालाभाल्पभोजनं **उदरसंयमः** ।। १७५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । यत एवमतः, **सत्यधर्मार्यवृत्तेष्विति** । **सत्यधर्म**साध्वाचारशौचेषु, सर्वदा रतिं भावयेत् । शासनीयांश्च भार्यादीन् 'पृष्ठतस्तु शरीरस्ये'त्यादिशास्त्रमर्यादया वाग्बाहूदरसंयमयुक्तो नियमयेदित्युक्तम् । पुनर्वचनं अशिष्टान (म) भिनिवेशदाढर्यार्थम् ।। १७५ ।।

**परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।।**
**धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकसंक्रुष्टमेव च ।। १७६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । उक्तस्त्रिवर्गः पुरुषार्थः । कश्चित्तुल्यतां मन्यमानः—"अर्थकामपरिहारेण यथा धर्मः सेव्यते तद्विरोधी ज्योतिष्टोमादिः—स ह्यर्थविरोधी दक्षिणादिदानेन, कामविरोधी दीक्षितस्य ब्रह्मचर्यविधानात्—एवमर्थकामावपि धर्मपरिहारेण सेवेत । तत्र "न हिंस्याद्भूतानीति' यत्र कामो हिंसाया वैरानुबन्धाद्यः कश्चिद्वक्तुमिष्यते तत्र स विषयप्रतिषेधाय, यत्र तु कस्यचिद्धिंसयाऽर्थकामाविष्येते तत्र नास्ति हिंसादोष इति"—प्रवर्तते तद्भ्रान्तिनिवृत्त्यर्थमिदमुच्यते । **परित्यजे**त्परिहरेत्तादृशा**र्थकामौ** यत्र धर्मविरोधः ।

एवं सर्वतो धर्मस्य बलीयस्त्वमुक्त्वा कस्मिंश्चिद्विषये तस्यापि परिहर्तव्यतामाह **धर्मं चाप्यसुखोदर्कम्** । उदर्क उत्तरकालः सोऽसुखो यस्य । यथा सर्वस्वदानं वा ददाति धार्मिकोऽयं महापुण्य इति । यथा नदीतीरेष्वेकान्तेष्वपि प्राकृतजना बहवः पश्यन्ति तत्र स्नानं भवतीत्यर्थस्नानं धर्मार्जनसमक्षापेक्षा तु साधुवादाय । यथा च तीर्थकाकेभ्यो दानं भवति दानं धर्मो दातृत्वप्रसिद्धयुत्पादनार्थत्वात्तेभ्यो भिद्यते । अथवा यद्गर्ह्यतया लोकः संक्रोशति । यथा गोरवध्यस्य वधः, मांसस्य भक्षणं च तद्विगर्हिततरं पश्वन्तरेभ्यो लोके । दृष्टमूलश्चायमहिस्पर्शवत्प्रतिषेधः । विहितोऽयमर्थ इत्यवैधतया प्राकृतजना अजानाना अधार्मिकत्वं यष्टुः प्रख्यापयेयुस्तेषां च बहुत्वतः प्रसिद्धया शिष्टा अप्येवं प्रसिद्धमूलमनवगच्छन्तः परिवर्जयेयुः । तदुक्तं "धार्मिके सति राजनीति" । एतदुक्तं पूर्वैर्व्याख्यातमित्यनुगतम् । न हि प्रत्यक्षश्रुतिविहितस्य स्मृत्या बाधो न्याय्यः । इदं तु युक्ततरमुदाहरणम् । नियोगधर्मः स्मृत्या विहितो लोकसंक्रुष्टत्वान्न क्रियते । तथा यः कश्चिदनाथतरुणीं स्त्रियं कारुण्याद्बिभर्ति, तत्र यदि लोकसंक्रोश आशङ्क्यते—'स्त्रीत्वेनैवास्मा एषा रोचते', स लोकसंक्रुष्टधर्मः ।। १७६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । धर्मवर्जितौ** धर्मविरोधिनौ । **असुखोदर्कं** यावान्धर्मस्तदधिक-प्रत्यवायाविनाकृतं यथा वातरोगिण उपवासादितीक्ष्णव्रतानुष्ठानमित्यादि । **लोकविक्रुष्टं** लोकनिन्दितं कलियुगे सुराग्रहादि ।। १७६ ।।

(३) कुल्लूकः । **यावर्थकामौ** धर्मविरोधिनौ भवेतां तौ परिहरेत् । यथा चौर्यादिना ऽर्थोपपादनं दीक्षादिने यजमानस्य पत्न्युपगमः । **उदर्क** उत्तरकालस्तत्रासुखं यत्र धर्मे तद्धर्म-मपि **परित्यजेत्** यथा पुत्रादिवर्गपोष्ययुक्तस्य सर्वस्वदानं, **लोकविक्रुष्टं** यत्र लोकानां विक्रोशः यथा कलौ मध्यमाष्टकादिषु गोवधादिः ।। १७६ ।।

(४) **राघवानन्दः । किंच परीति । धर्मवर्जितौ** धर्मविरोधिनौ । **असुखोदर्कं** आयत्या-मनुतापजनकं श्येनादि पुत्राद्यर्थपरस्वादानं वा । **लोकविक्रुष्टं** यत्र लाकानां विक्रोशः । यथा कलौ मध्यमाष्टकासु गोवधादि ।। १७६ ।।

(६) रामचन्द्रः । धर्मं सर्वस्वदानं उत्तरकाले **असुखोदर्कं** । **च** पुनः **लोकसंक्रुष्टं धर्मं** लोकनिन्दितं **परित्यजेत्** ।। १७६ ।।

(७) **मणिरामः । उदर्कं** उत्तरकालः । **लोकविक्रुष्टं** लोकविरुद्धम् ।। १७६ ।।

(८) **गोविन्दराजः । परित्यजेदिति ।** सत्यपिच त्रिवर्गस्य पुरुषार्थत्वाभिधाने **परित्यजेदिति । धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकसंक्रुष्टमेव च ।** धर्मविरुद्धार्थकामौ असुखोत्तरकालं चाशक्तस्य तीव्रतपश्चरणादिरूपं **धर्मं** लोकाभिशापजनकं च मधुपर्कगोवधादिरूपं नाचरेत् ।। १७६ ।।

## न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ।।
## न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ।। १७७ ।।

(१) **मेधातिथिः । पाणिपादाभ्यां चपलः ।** 'तृतीया' (पा० २ । १ । ३० ) इति योगविभागात्समासः । चापलं च हस्तेनानुपयुज्यमानस्यापि वस्तुनो ग्रहणापसारणे । परस्त्रीप्रेक्षणचित्रसंदर्शनादि **नेत्रचापलम् । परद्रोहार्थं कर्मबुद्धिश्च** न कर्तव्या ।। १७७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** पाणिपादनेत्रवाक्चापलानि वृथा हस्तचरणोत्प्लवनकुतूहलि-त्वासंबद्धप्रलापाः । **अनृजुर्वक्रमतिः । परद्रोहार्थं यत्कर्म तद्धीस्तत्परः** ।। १७७ ।।

(३) **कुल्लूकः । पाण्यादिचापलं** त्यजेत् अनुपयुक्तवस्तूपादानादि **पाणिचापलं**, निष्प्रयोजनं भ्रमणादि **पादचापलं** । परस्त्रीप्रेक्षणादि **नेत्रचापलं** बहुगर्ह्यवादिता **वाक्चापलं । अनृजुः** कुटिलो न स्यात् **परद्रोहो** हिंसा तदर्थं चेष्टां धियं च न कुर्यात् ।। १७७ ।।

(४) **राघवानन्दः । किंच नेति । अनृजुः** ऋजुभिन्नः कुटिलो न स्यात् । परद्रोहकर्मणि धियो निषेधोऽभ्यासस्तस्यातिनिन्दितत्वसूचनार्थः । इदमत्राकूतम् "शतकृत्वः पथ्यं रोचयन्ते स्म वृद्धा" इति न्यायेन निषिद्धाचरणस्य कायिकादिभेदेनानेकधात्तस्य दृष्टफलतया च तदभ्यासस्य प्रबलत्वाच्छतधा निषेधोऽपि निवर्तयितुमशक्यत्वान्नैतेषु पुनरुक्तिरिति ।। १७७ ।।

(५) **नन्दनः। पाणिपादचपलः** पाणिभ्यां पादाभ्यां च कर्तव्यकरणे चागम्यागमने च निरतः। एतेनोत्तरमपि चापलं व्याख्यातम् ।। १७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः। पाणिपादचपलो न भवेत्।** अनियुक्तचरस्तु न ग्रहणाय। **नेत्रे चले** परस्त्रीषु। **परद्रोहार्थं कर्म न कुर्यात्, अनृजुः** न स्यात्, किंतु ऋजुरेव स्यात् ।। १७७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। न पाणिपादचपल इति। हस्तपादचक्षुर्वाग्व्यापारान्** निष्प्रयोजनान्न कुर्यात् अनृजुश्च क्रूरकृत् परोपघातकमयुक्तबुद्धिश्च न स्यादिति। पुनर्वचनमुक्तप्रयोजनम् ।। १७७ ।।

**येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।।**
**तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यते ।। १७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** यो धर्मः पित्रादिभिरनुष्ठितो, यैश्च सह प्रीतिर्भाविता, यैः सह कन्याविवाहादिः कृतः, यैव च शाखा अधीता, स एव पन्था आश्रयणीयः। तथा कुर्वन्न **रिष्यति** न बाध्यते लोके न निन्द्यते। अन्ये त्वविदुषः पुरुषधर्मेष्वहिंसादिषु प्राप्त्युपायोऽयं, राजपटह इव म्लेच्छादीनाम्। अग्निहोत्रादयस्तु स्वप्रत्ययापेक्षा एव।

अत्र चोदयन्ति "यदि निर्मूलः पित्रादिभिरनुष्ठितोऽर्थः कथं तस्य धर्मत्वम्, अथास्ति मूलं, तत् पुत्रस्यापि भविष्यति। किं पित्रादिग्रहणेन"? तदेतत्परिहृतमविदुषां मूलमजानानामुपदेशोऽयमिति।

अन्ये तु "यत्र निपुणतोऽपि निरूप्यमाणे संदेहो न निवर्तते, उभयथा वाक्यार्थप्रतिपत्तिः, तत्र पित्राद्याचरितः पन्था आश्रयणीय" इत्याहुः। एतदपि चिन्त्यम्। न हि नित्यसंदिग्धं नाम प्रमाणमस्ति। अवश्यं ह्येकार्थनिष्ठेन वाक्येन भवितव्यम्। विकल्पितेषु वा पदार्थेषु पित्राद्याचरितं कर्मानुचरणीयम्। यतोऽन्य आचरितवन्तः। **सतां मार्गमिति।** यदि पितृपितामहादिभिः कैश्चित्कथंचिदधर्म आचरितपूर्वः स न आश्रयणीय इति सतां मार्गमित्याह ।। १७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। येनास्येति।** यत्र श्रुत्यर्थे अयमर्थोऽयं वेति संदेहे व्याख्यातृविप्रतिपत्त्या विवादस्तदेकपक्षविषयमेतत्। अत एव **सतां मार्गं** सदाचारविषयं **यायादि**त्युक्तम्। **न रिष्यते** न हिंस्यते ।। १७८ ।।

(३) **कुल्लूकः।** बहुविधशास्त्रार्थसंभवे पितृपितामहाद्यनुष्ठित एव शास्त्रार्थोऽनुष्ठातव्यः, **तेन गच्छन्न रिष्यते** नाधर्मेण हिंस्यते ।। १७८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** बहुशास्त्रानभिज्ञस्य शास्त्रवर्त्मानुसारित्वमाह **येनेति। सतां मार्गं** सद्भिराचरितं पन्थानं। तेन पित्रादिकृतमद्यपानमातुलकन्यापरिणयनादिषु नातिप्रसङ्गः **रिष्यति** अधर्मेण न हिंस्यते ।। १७८ ।।

(५) **नन्दनः। न रिष्यति** न हिंस्यते ।। १७८ ।।

(६) **रामचन्द्रः । येन** धर्ममार्गेणास्य **पितरो** याताः **येन** धर्ममार्गेण **पितामहा याताः ।** अस्यार्थः—ये धर्माः पित्रादिभिः कृताः यैस्ते ये च पितामहादिभिः कृताः प्रीतिं गताः तानाचरंस्तेन मार्गेण **गच्छन् न रिष्यति,** तेन सतां मार्गमाश्रयेदित्यर्थः ।। १७८ ।।

(७) **मणिरामः । येन** मार्गेण । **न रिष्यति** न निष्पतते ।। १७८ ।।

(८) **गोविन्दराजः ।** द्विधावाक्यार्थप्रतिभाने वैकल्पिकपदार्थेषु वा य एव पितृपितामहादिभिः तस्यानुसृतो मार्गः यदेव तैरनुष्ठितं तेनैव (तमेव) साधुमार्गमनुसरेत् तदेवाचरेत्, तदाचरन् धर्मेण न हिंस्यते ।। १७८ ।।

**ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ।।**
**बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ।। १७९ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** 'न समाचरे'दित्येकैकेन सम्बध्यते । **संश्रिता** आश्रयागता उपजीविनः । **वैद्या** विद्वांसो, भिषजो वा । **ज्ञातयः** पितृपक्षाः । **सम्बन्धिनो** वैवाह्याः । **बान्धवा** मातृपक्षा मातृष्वस्रीयप्रभृतयः ।। १७९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । संश्रितैः**रनुगतैः । **आतुरो**ऽत्र व्याधितः । कृशश्चान्नाभावादिना **वैद्यै**र्विद्यावद्भिः । **ज्ञातयः** सपिण्डाः । **संबन्धिनः** आगन्तुसंबन्धाः श्यालाद्याः । **बान्धवाः** आत्ममातृपितृबान्धवाः ।। १७९ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** ऋत्विगिति वचनद्वयम्, ऋत्विगादिभिर्वाक्कलहं न कुर्यात् । शान्त्यादिकर्ता **पुरोहितः । संश्रिता** अनुजीविनः **ज्ञातयः** पितृपक्षाः **सम्बन्धिनो** जामातृश्यालकादयः **बान्धवा** मातृपक्षाः । **जामयो** भगिनीस्नुषाद्याः ।। १७९–१८० ।।

(४) **राघवानन्दः ।** सार्थवादमृत्विगादिभिर्विवादपरिहारमाह **ऋत्विगिति** सप्तभिः । **संश्रितैः** शरण्यैः अनुजीविभिर्वा । **संबन्धिनः** श्वशुराद्याः । **बान्धवा** मातुलेयाद्याः ।। १७९ ।।

(५) **नन्दनः । वैद्यै**र्विद्वद्भिः ।। १७९ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** त्रिभिराह **ऋत्विज इति ।** ऋत्विगादिभिः संविवादं न कुर्यात् । वेदविद्भिः भिषजैर्वा । **ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः** सह विवादं न कुर्यात् । **ज्ञातयः** पितृपक्षीयाः । **संबन्धिनः** वैवाह्याः । **बान्धवाः** मातृपक्षीयाः ।। १७९ ।।

(७) **मणिरामः ।** शांत्यादिकर्ता **पुरोहितः । संश्रिता** अनुजीविनः । **ज्ञातयः** पितृपक्षीयाः । **संबंधिनः** श्वशुरपक्षीयाः । **बांधवाः** मातृपक्षीयाः ।। १७९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । ऋत्विगिति । मातापितृभ्यामिति ।** ऋत्विगादिभिः सह वाक्कलहं न कुर्यात् । **पुरोहितः** शान्त्यादिकर्ता । **संश्रिता** अनुजीविनः । **आतुरो** रोगी । **ज्ञातयः** पितृपक्षसंबन्धिनः वैवाह्या **बान्धवाः** मातृपक्षा जामिर्भगिनीस्नुषाद्याः । **दासवर्गो** दासगणः ।। १७९–८० ।।

मनुस्मृति २/२८

**मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ॥**
**दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ १८० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **जामयो** भगिन्यः सुवासिन्यश्च। **विवादो** विरोधः प्रतिकूलाचरणं वाक्कलहश्च। एतैर्न कुर्यात् ॥ १८० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **जामी** स्वसा। **विवादं** विरुद्धभाषणम् ॥ १८० ॥

(४) **राघवानन्दः।** **यामयो** भ्रातृपत्नीभगिनीस्नुषाद्याः। **दुहिता** कन्या ॥ १८० ॥

(५) **नन्दनः।** **जामीभिर्भगिनीभिः** ॥ १८० ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **जामीभिः** भगिनीभिः ॥ १८० ॥

(७) **मणिरामः।** **जामीभिः** भगिन्यादिभिः ॥ १८० ॥

**एतैर्विवादान्सन्त्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥**
**एतैर्जितश्च जयति सर्वाँल्लोकानिमान्गृही ॥ १८१ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **एतैर्विवादैः** क्रियमाणैर्यः पापयोगो भवति, अकर्तुस्तेन न सम्बन्धः। **सर्वपापैः प्रमुच्यत** इत्युच्यते। **एतैश्च जितै**रुपेक्षितैः **सर्वाँल्लोकाञ्जयति** स्वीकरोतीत्यर्थवादः ॥ १८१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **जितो** विवादे तैरधिक्षिप्तः सहमानः। एतान् **जित्वा जयतीति** क्वचित्पाठः ॥ १८१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** **एतैः** ऋत्विगादिभिः सह **विवादान्परित्यज्याज्ञातपापैः प्रमुच्यते** तथै**तैर्विवादै**रुपेक्षितै**रिमान्**वक्ष्यमाणान् सर्वलोकान् गृहस्थो **जयति** ॥ १८१ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **विवादान्** विवादविषयीभूतान्। **एतैर्जितो** वशीकृतः ॥ १८१ ॥

(५) **नन्दनः।** **इमान्**वक्ष्यमाणान् ॥ १८१ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **एतैः** ऋत्विगादिदासान्तैः विवादरहितैः उपेक्षितैः **इमान् लोकान् जयति** स्वीकरोति ॥ १८१ ॥

(७) **मणिरामः।** **एतैः** ऋत्विगादिभिः ॥ १८१ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **एतैरिति।** एभिः सह **विवादान्** परित्यज्यासौ अतिकृतप्रतनुभिः (?) **सर्वपापैः प्रमुच्यते।** तथै**तैर्विवादैः** न्यक्कृतैः **इमान्** वक्ष्यमाणान् **सर्वान् लोकान्** गृहस्थः स्वीकरोति ॥ १८१ ॥

**आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः ॥**
**अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥ १८२ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **आचार्यो ब्रह्मलोकस्येशः** प्रभुस्तस्मिन्परितुष्टे ब्रह्मलोकः प्राप्यते। अतो गुणतो **ब्रह्मलोकेश** इत्युच्यते। **प्राजापत्ये** लोके **पिता प्रभुः** ॥ १८२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** जेतव्यलोकान्दर्शयति **आचार्य इति।** आचार्यपदं वैद्यानामुपलक्षणम् ।। १८२ ।।

(३) **कुल्लूकः। आचार्यो** ब्रह्मलोकस्य प्रभुः, तेन सह विवादपरित्यागेन तत्संतुष्टचा तु ब्रह्मलोकप्राप्तेर्गौणं ब्रह्मलोकेशत्वम्। एवं प्राजापत्यलोकेशः **प्राजापत्ये पिता च प्रभुः अतिथिरिन्द्रलोके देवलोकस्य चर्त्विजः।** एवमुत्तरत्रापि तत्तल्लोकेशत्वं बोद्धव्यम् ।। १८२ ।।

(४) **राघवानन्दः।** सर्वलोकजयं विवृणोति **आचार्य इति।** आचार्यदत्तविद्यया ब्रह्मलोकाद्याप्तेः। पितृभक्तस्य प्राजापत्यत्वं, 'दातारो नोऽभिवर्धन्ता'मिति मन्त्रलिङ्गात्। अतिथेरतिपुण्यदत्वेनेन्द्रत्वावाप्तिहेतुत्वादृत्विजो यज्ञद्वारा देवत्वहेतुत्वादित्याद्यूहनीयम् ।। १८२ ।।

(५) **नन्दनः। प्राजापत्यो** दक्षादीनां लोकः ।। १८२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। पूजिता** आचार्यादयो ब्रह्मलोकादीन्प्रापयन्ति ।। १८२ ।।

(७) **मणिरामः।** आचार्यादीनां सन्तोषेण ये ये लोकाः प्राप्यन्ते तानाह **आचार्य** इत्यादिचतुर्भिः। यो यस्य लोकस्य स्वामी तत्सन्तुष्टचा तल्लोकप्राप्तिरित्यर्थः ।। १८२–१८३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। आचार्य इति।** यत आचार्यादयो दृष्टचा शक्त्या **ब्रह्मप्रजापतीन्द्रदेवलोकानां प्रभवः** अतः परिहृततद्विवादस्य गृहस्थस्यैतान् लोकान् वदन्ति। तद्विवादपरित्यागेन ब्रह्मलोकादि प्राप्यत इत्येतदनया भङ्गया उक्तमेव (वं) उत्तरत्रापि विज्ञेयम् ।। १८२ ।।

**जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः।**
**सम्बन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्या मातृमातुलौ ।। १८३ ।।**

(१) **मेधातिथिः। जामय इति।** सुस्पष्टः ।। १८३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अप्सरसां लोके** लोकस्य **वैश्वदेवस्य** विश्वेषां देवानां लोकस्य संबन्धिपदं ज्ञातीनामप्युपलक्षणम् ।। १८३ ।।

(३) **कुल्लूकः। अप्सरसां लोके जामयः** प्रभवन्ति **वैश्वदेवलोके बान्धवाः** वरुणलोके **संबन्धिनः** भूर्लोके **मातृमातुलौ** ।। १८३ ।।

(४) **राघवानन्दः। जामयः,** यामय इति वा क्वचित्पाठः ।। १८३ ।।

(६) **रामचन्द्रः। जामयः** भगिन्यः विवासिन्यः ।। १८३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। जामय इति। जामयोऽप्सरसां लोके** प्रभवन्ति **बान्धवा वैश्वदेवलोके, मातृमातुलौ** भूलोके ।। १८३ ।।

**आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः ॥**
**भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥ १८४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **भार्या पुत्रः** स्वकीया **तनु**रात्मीयमेव शरीरम् ॥ १८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** आकाशमन्तरिक्षलोकः। **कृशो**ऽभोजनादिना। **समः पित्रा** प्राजापत्यलोकेशः। **स्वका तनु**रतः स्वप्राप्यलोकेशः ॥ १८४ ॥

(३) कुल्लूकः। **कृशः** 'कृशधनः' संश्रितो विवक्षितः, **बालवृद्धसंश्रितातुरा** अन्तरिक्षे प्रभवन्ति। **भ्राता च ज्येष्ठः** पितृतुल्यस्तस्मात्सोऽपि प्रजापतिलोकप्रभुः। **भार्यापुत्रौ** च स्वशरीरमेवातः कथमात्मनैव सह विवादः संभवति ? ॥ १८४ ॥

(४) **राघवानन्दः।** **आकाशेशा** अन्तरिक्षलोकहेतवः। **कृशः भ्राता** संश्रितः प्राजापत्येशः **पित्रा** समत्वात्। **स्वका तनुः** 'अर्धं वा एष आत्मनः यत्पत्नी नाम आत्मा वै जायते पुत्र' इति श्रुतेः ॥ १८४ ॥

(७) **मणिरामः।** **भार्यापुत्रौ** च स्वशरीरम् अतः कथमात्मनैव सह विवादः संभवति इति न लोककथनम् ॥ १८४ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **आकाशेशा** इति। **बालवृद्धसंश्रितातुराः** अन्तरिक्षलोके प्रभवन्ति। **ज्येष्ठो भ्राता** पितृतुल्यः। अतोऽसावपि प्रजापतिलोके प्रभुः। **भार्यापुत्रौ** "अर्धो ह वा एष आत्मनः यज्जाया आत्मा वै पुत्रनामासि" (कौषी. उ. २।११) इति श्रुतेः स्वमेव शरीरं अतः आत्मना सह कथं विवदेत् ? ॥ १८४ ॥

**छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥**
**तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासञ्ज्वरः सदा ॥ १८५ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** यो भृत्यवर्गः स आत्मीया च्छाया। यथा छाया नित्यानुगता न क्रोधविषयः एवं भृत्यवर्गोऽपि। **दुहिता कृपण**मनुकम्प्या दयनीया। **एतैः** पूर्वोक्तैर**धिक्षिप्तः** परुषवचनैराक्रुष्टः कोपितः **सहेत** क्षमेत। **असंज्वरो**ऽविद्यमानज्वरः। ज्वराभावेन च चित्तस्यासंक्षोभो लक्ष्यते। ज्वरितस्य हि चित्तसंक्षोभो भवति तद्वत्क्रुद्धस्य। अथवा पाठान्तरं 'असंज्वरः'। संतापः 'संज्वरः' (अमर. १।१।६०)। स नञा प्रतिषिध्यते ॥ १८५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** स्वच्छायातुल्यः। एतेन यत्र स्वयं गच्छति तत्र यथा छाया तथा दासवर्गोऽपीति स्वलोकेशतैवोक्ता। **कृपणं** कृपाविषयः। तेन परकरुणया यो लोको जीयते स दुहित्रा सहाविवादेनेत्यर्थः। **असंज्वरो** मानसाभिनिवेशेनापि शून्यः ॥ १८५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** स्वदासवर्गश्च नित्यानुगतत्वादात्मच्छायेव न विवादार्हो **दुहिता** च परं कृपापात्रं **तस्मादेतैरधिक्षिप्तः** सन्न संतापः **सहेत** नतु विवदेत् ॥ १८५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** छाया स्वदासवर्गः स्वच्छायावदव्यभिचारित्वात्। **दुहिता कृपणं** कृपापात्रम्। **असंज्वर** उदर्कसंतापरहितः ॥ १८५ ॥

(५) **नन्दनः। छायेति** ॥ १८५ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** यो दासवर्गः सः **स्वा** स्वकीयछायानुगता भवति। **दुहिता परं** कृपास्थानं तस्मात्कारणादेतैराचार्यादिभिः **अधिक्षिप्तस्तिरस्कृतः असञ्ज्वरः** क्लेशरहितः **सन् सहेत** ॥ १८५ ॥

(७) **मणिरामः। कृपणं** कृपापात्रं **तस्मादेतैरधिक्षिप्तः** सन् **असञ्ज्वरः** असंतप्तः **सहेत,** नतु विवदेदित्यर्थः ॥ १८५ ॥

(८) **गोविन्दराजः। छायेति : स्वो** दासवर्गः नीचैर्गामित्वात् आत्मच्छायेव। अतो नासौ विवादास्पदं, **दुहिता** च **कृपणं** कृपापात्रं अत **एतै**राकृष्टोऽसन्तप्तः सर्वदा क्षमेत ॥ १८५ ॥

## प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ॥
## प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥

(१) **मेधातिथिः।** परस्माददृष्टप्रयुक्ताद्यल्लभ्यते **स प्रतिग्रहः।** तत्र **समर्थः** शक्तोऽपि **प्रसङ्गं** पुनःप्रवृत्तिं **वर्जयेत्।** श्रुताध्ययनशीलसंपत्तिर्द्रव्यविधिज्ञता च 'सामर्थ्यम्। 'तस्मादविद्वान्न बिभियादि'(४। १९१)त्यत्रोक्तमप्येतदुत्तरार्धं पुनरनूद्यते ॥ १८६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। प्रसङ्गं** पुनःपुनःकरणम्। **ब्राह्मं** वेदाध्ययनकृतम् ॥ १८६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** विद्यातपोवृत्तसंपन्नतया **प्रतिग्रहे**ऽधिकार्यपि तत्र पुनःपुनःप्रवृत्तिं त्यजेत्। **यस्मात्प्रतिग्रहेणाऽस्य** वेदाध्ययनादिनिमित्तप्रभावः शीघ्रमेव विनश्यति। 'यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थ'(४। ३)मित्युक्तेऽपि सामान्येनार्जनसंकोचे विशेषेण प्रतिग्रहस्य ब्राह्मप्रभावप्रशमनफलत्वकथनार्थं वचनम् ॥ १८६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** प्रकारान्तरेण जीवन् प्रतिग्रहं न कुर्यादित्याह **प्रतीति। समर्थो** विद्यातपोभिः। **प्रसङ्गं** प्रसक्तिं। **ब्राह्मं** वेदाध्ययनजम् ॥ १८६ ॥

(५) **नन्दनः। प्रतिग्रह**विधिज्ञो विद्यादियुक्तश्च **प्रतिग्रहसमर्थः।** अयावदर्था पुनःपुनःप्रवृत्तिः **प्रसङ्गः, ब्राह्मं तेजो** ब्राह्मी शक्तिः। 'समर्थोऽपी'ति वचनादर्थस्य दोषातिशयः सूचितः ॥ १८६ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** प्रतिग्रहं ग्रहीतुं समर्थोऽपि तत्र **प्रसङ्गं वर्जयेत्।** प्रतिग्रहस्वीकारेणाशु **ब्राह्मं तेजः शाम्यति** ॥ १८६ ॥

(७) **मणिरामः। प्रसङ्गं** प्रतिग्रहेच्छाम् ॥ १८६ ॥

(८) **गोविन्दराजः । प्रतिग्रहसमर्थ इति ।** श्रुताध्ययनादिना **प्रतिग्रहेण समर्थोऽपि** तत्र पुनःप्रवृत्तिं वर्जयेत् । यस्मात् **प्रतिग्रहेणास्या**ध्ययनादिनिमित्तप्रभावः क्षिप्रमेव **प्रलीयते** 'यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थ'मित्यादिनोक्तमप्येतत् **तेजः** प्रशमफलकथनार्थं पुनरुच्यते ।। १८६ ।।

**न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ।।**
**प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ।। १८७ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** तद्दर्शयति—**अविज्ञाय** कामोपभोगाद्यर्थं न प्रतिग्रहः कर्तव्यः । एतदुक्तं भवति—आत्मनः कुटुम्बस्थित्यै नित्यकर्मसम्पत्त्यै च प्रतिग्रहः कर्तव्यो नान्यथा । **अवसीदन्नपि क्षुधा ।** अप्रतिगृह्णन्नप्यवसादं गच्छति । 'अवसादः' शरीरस्यानभिवृद्धिः । अथवा **'द्रव्याणां विधिं धर्म्यं प्रतिग्रह'** इत्येवं सम्बन्धः क्रियते । कोऽसौ धर्म्यो विधिः ? धर्म्यं प्रयोजनं विज्ञाय प्रतिग्रहमन्त्रद्रव्याणां च देवताः—"अग्नये हिरण्यं रुद्राय गाम्" इत्यादिः ।। १८७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । द्रव्याणां प्रतिग्रहे धर्म्यं विधिं** द्रव्यदेवताज्ञानमन्त्रपाठादिकम् ।। १८७ ।।

(३) **कुल्लूकः । द्रव्याणां प्रतिग्रहे** धर्माय हितं विधानं ग्राह्यदेवताप्रतिग्रहमन्त्रादिकमज्ञात्वा **क्षुधा**ऽवसादं गच्छन्नपि **प्राज्ञो न प्रतिगृह्णीया**त्किं पुनरनापदि ।। १८७ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** तेन विना जीवन्तं प्रति द्रव्याद्य**विज्ञाय** प्रतिग्रहो न कार्य इत्याह **नेति** पञ्चभिः । **धर्म्यं** 'अग्नये हिरण्यं रुद्राय गामि'त्यादिप्रतिग्रहमन्त्रादिकम् ।। १८७ ।।

(५) **नन्दनः ।** तं व्यक्तीकरोति, **नेति ।** यत्किंच प्रतिगृह्णीयात्तत्सर्वमुत्तानस्त्वाङ्गिरसः प्रतिगृह्णात्वित्येव प्रतिगृह्णीयादित्ययं विधिर्द्रव्यप्रतिग्रहे विधिः ।। १८७ ।।

(६) **रामचन्द्रः । द्रव्याणां** विधिं द्रव्यदेवताप्रतिग्रहमन्त्रादिं **अविज्ञाय । द्रव्यं** हिरण्यादि । **प्राज्ञः** पण्डितः । **क्षुधा अवसीदन्** अवसादं गच्छन् **प्रतिग्रहं कुर्यात्** ।। १८७ ।।

(७) **मणिरामः । क्षुधा** कृत्वा **अवसीदन्नपि** नाशं गच्छन्नपि ।। १८७ ।।

(८) **गोविन्दराजः । न द्रव्याणामिति ।** प्रतिग्रहमन्त्रद्रव्यदेवतादिकं धर्मादनपेतं प्रतिग्रहविधानमबुद्ध्वा । क्षुधाऽवसादं गच्छन्नपि **न प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यात्** किं पुनरनापदि ।। १८७ ।।

**हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ।।**
**प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ।। १८८ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अविदुषो द्रव्यविशेषं प्रति प्रतिग्रहे दोषातिशयमाह **भस्मीभवति दारुवत् ।** यथा **दार्वग्निना** दग्धं **भस्मीभवति** तथा यो ब्राह्मणो विद्यासम्पन्नो न भवति स एतानि **हिरण्यादीनि** द्रव्याणि **प्रतिगृह्णन्भस्मीभवति** ।। १८८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्नं पक्वान्नम्। अविद्वान् धर्म्यं विधिमजानन्। **भस्मीभवति** फलशून्यो भवति ॥ १८८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वर्णादिक्छ्रुतस्वाध्यायहीनः प्रतिगृह्णन्नग्निसंयोगेन **दारुवद्भस्मीभूतो भवति** पुनरुत्पत्तिं न लभते ॥ १८८॥

(४) **राघवानन्दः**। अज्ञायापि कृते दोषमाह **हिरण्यमिति**। **भस्मीभवति अविद्वान्** तपोविद्यादिरहितप्रतिग्रहाग्निना ॥ १८८ ॥

(५) **नन्दनः**। विशेषतो हिरण्यादिकं विदुषा न प्रतिग्राह्यमित्याह **हिरण्यमिति** ॥ १८८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अविद्वान् मूर्खः हिरण्यादि **प्रतिगृह्णानो दारुवद्भस्मीभवति** ॥ १८८ ॥

(७) **मणिरामः**। **भस्मीभवति**—न पुनरुत्पद्यते ॥ १८८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **हिरण्यमिति**। श्रुताध्ययनशून्यः सुवर्णादीन् **प्रतिगृह्णन्** अग्निसंयोगेन **दारुवत् भस्मीभवति** ॥ १८८ ॥

**हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ॥**
**अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥ १८९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भूर्गौश्च तनुं** शरीरम् **ओषतो** दहतः। **हिरण्यमायुर्विभक्तिपरिणामः** ओषतीति कर्तव्यः। एवं **अश्वश्चक्षुरित्यादिषु** क्रियापदानुषङ्गः कर्तव्यः॥ १८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तस्यैव प्रपञ्चो **हिरण्यमायुरित्यादि**। **उषतो** दहतः **त्वचो** दाहः। कुष्ठाद्युपहत्या ॥ १८९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अविदुषः प्रतिग्रहीतुर्**भूर्गौश्च शरीरमोषतो** दहतः। 'उष दाहे' भौवादिकस्तस्येदं रूपम्। भूगवोर्द्वित्वविवक्षायां द्विवचनम्। एवं **हिरण्यमन्नं चायुरोषतः**। **अश्वश्चक्षुरित्यादिषु** विभक्तिविपरिणामादोषतीत्येकवचनान्तस्यानुषङ्गः ॥ १८९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किं किं नाशयतीत्याह हिरण्याद्यष्टद्रव्याणि प्रतिगृहीतानि आयुरादीनि षट् नाशयन्तीत्यर्थः। **ओषतः** भूगावौ ॥ १८९ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ हिरण्यादीनां प्रतिग्रहेषु दोषविशेषानाह **हिरण्यमिति**। **ओषतो** दहतः। दाहश्चात्र रोगः ॥ १८९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **हिरण्यं** हिरण्यप्रतिग्रहः आयुर्हरति। **च** पुनः रत्नं **आयुर्हरति** **भुवः गोश्च** प्रतिग्रहः **तनुं** देहं **उषतः** दहतः। **अश्वः** अश्वप्रतिग्रहः **चक्षुर्हरति**। **वासः** वस्त्रप्रतिग्रहः **त्वचं** हरति। **घृतं** घृतप्रतिग्रहः **तेजः** हरति। तिलप्रतिग्रहः **प्रजां** हरति ॥ १८९ ॥

(७) **मणिरामः।** **तनुं ओषतः** दहतः। **भूमिं गां च** गृहीत्वा द्विवचनोक्तिः। एवं हिरण्यमन्नं चैकीकृत्य द्विवचनं। अश्वादौ विभक्तिविपरिणामात् ओषति इत्येक वचनांतस्यानुषंगः। तथाच **हिरण्यान्ने**(न) गृहीते **आयुर्दहतः। भूगावौ तनुं दहतः अश्वश्चक्षुर्दहतीत्यादि** ज्ञेयं ॥ १८९ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** तथा चाह **हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम्** इति। **हिरण्यान्ने** प्रतिगृहीते अविदुषश्चायुर्दहतः **गोभूमी** च शरीरम्। अश्ववस्त्रघृततिलाः यथाक्रमं चक्षुस्त्वक्तेजोऽपत्यानि दहन्ति। न केवलमविद्वान् प्रतिग्रहेण सर्वदा तं दहति यावत् ॥ १८९ ॥

**अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥**
**अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥ १९० ॥**

(१) **मेधातिथिः।** यस्य तपो नास्त्यनधीयानो न चाधीते। अध्ययनेन प्रकृता विद्या लक्ष्यते। समुदिते नैते विद्यातपसी प्रतिग्रहाधिकारनिमित्तम्। उभयगुणभ्रष्टः प्रतिग्रहे चाभिलाषी **स तेन सह मज्जत्यधो**गच्छति। केन सह? अन्यस्यानिर्देशाद्दातुश्च सन्निधानात्तेन दात्रा सहेति गम्यते। प्रतिग्रहीतारं प्लवमिवात्मोत्तारणाय याचते। यस्त्वीदृशोऽपात्रभूतः स दातारमात्मानमुभावप्यधो नयति। **यथाऽम्भस्यश्मप्लवः** अश्ममयः प्लवः अश्मप्लवः। पारं तरति येन स प्लवो नावादिः। तत्र यथाऽश्मप्लवारूढो नदीतरणार्थमम्भसि मज्जत्यश्मप्लवेन सह गम्यते। दाता हि ब्राह्मणाय ददानश्च तादृशो ब्राह्मण उभावपि नरकं गच्छतः ॥ १९० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अनधीयानोऽपि** अतिशयिततया न मज्जतीत्येतदर्थमतपास्त्वीति। **प्लवो** भेडः। **तेन** दात्रा **सह मज्जति।** दातुरपि तादृक्फलाभावान्मज्जनोक्तिः ॥ १९० ॥

(३) **कुल्लूकः।** यस्तपोविद्याशून्यः प्रतिग्रहेच्छुः ब्राह्मणो भवति स प्रतिग्रहाविनाभावाद्बुद्धिस्थेन **तेन** इति परामृष्टे **तेनैव** दात्रैवानर्हप्रतिग्रहादानपापयुक्तेन सह नरके मज्जति यथा पाषाणमयेनोडुपेनाम्भस्तरंस्तेनैव **सहाम्भसि** मग्नो भवति ॥ १९० ॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **अतपा इति द्वाभ्यां। अश्मप्लवेन** पाषाणनावा **सह। तेन** दात्रा ॥ १९० ॥

(५) **नन्दनः।** न केवलमविद्वान्प्रतिगृह्णन्नात्मानमेव पातयति किंतु दातारमपीत्याह **अतपास्त्विति। अनधीयानो**ऽविद्वानतपाश्च **सन्नम्भस्यश्मप्लवेनेव तेन** दात्रा **सहैव मज्जति।** यथा जले स्वयमेव मज्जन्नश्मा स्वाश्रितमप्यधो नयति एवं स्वयमेव नरके पतन्नविद्वान्स्वाश्रितं दातारमप्यधो नयतीत्यभिप्रायः। 'अतपा' इति विशेषणात्सतपसो दोषमात्रत्वं गम्यते ॥ १९० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अतपस्वी** तपोरहितः। **अनधीयानः** मूर्खः। एतादृशः **प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः** यथा **अम्भसि अश्मप्लवेन** तरति कश्चित्स मज्जति तथा **तेन** दात्रा **सह** प्रतिग्रहीता **द्विजः मज्जति** ।। १९० ।।

(७) **मणिरामः**। **तेन सह** दात्रा सह प्रतिग्रहीता **मज्जतीत्यर्थः** ।। १९०–१९१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अतपस्व्यनधीयान इति**। **यस्तपःस्वाध्यायशून्यः** प्रतिग्रहेऽभिलाषुको भवति **स दात्रैवानर्हप्रतिग्रहदानपापयुक्तेन** सह पाषाणमयेन नावादिना तरन् उदक इव नरकेऽन्तर्धीयते। दाता ह्यत्र प्रतिग्रहसंबन्धादज्ञो। दातृप्रतीच्छकाविति वक्ष्यमाणदर्शनात् तेनेति परामृश्यते ।। १९० ।।

**तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ।।**
**स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति ।। १९१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अतो नरकभयाद**विद्वान्मूर्खः** प्रतिग्रहात् **बिभियात्** त्रस्येत्, न प्रतिगृह्णीयादिति यावत्। तिष्ठतु तावद्धिरण्यादीनि द्रव्याणि, **स्वल्पकेनापि** त्रपुसीसादिना असारेण स्वल्पया मात्रया प्रतिगृहीते**नाविद्वान्पङ्के कर्दमे गौरिव सीदति** ।। १९१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **यस्मात्तस्माद्धि**रण्यादिव्यतिरिक्तप्रतिग्रहादपि ।। १९१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मादसावल्पद्रव्यप्रतिग्रहेणापि मूर्खः **पङ्के गौरिव** नरकेऽसमर्थो भवति **तस्माद्यतः** कुतश्चित्सुवर्णादिव्यतिरिक्तसीसकाद्यसार**प्रतिग्रहादपि** त्रस्येत् ।। १९१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अतोऽ**विद्वान्** प्रतिग्रहीता **बिभियात् अल्पकेन** हिरण्याद्यन्यतमेन **सीदत्येव**। अविद्वान्निषेधाभ्यासो निन्दातात्पर्यकः न विद्वत्प्रतिग्रहतात्पर्यकः, 'प्रतिग्रहसमर्थोऽपी' (४।१८६) त्यत्र तन्निषेधोक्तेः ।। १९१ ।।

(५) **नन्दनः**। उपसंहरति **तस्मादिति**। न केवलमश्वादिप्रतिग्रहाद**विद्वान्बिभियात्** किंतु **यस्मात्कस्मात्प्रतिग्रहादपि बिभियात्** ।। १९१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **तस्मात् विद्वान् बिभियात् स्वल्पकेनापि** प्रतिग्रहेण। **अविद्वांस्तु सीदति** ।। १९१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **तस्मादिति**। यस्मादसारद्रव्यप्रतिग्रहेऽपि अज्ञः कर्दमे **गौरिव** नरके मज्जति, **तस्मादविद्वान्** यतः कुतश्चित् हिरण्यादिव्यतिरिक्त**प्रतिग्रहादपि** त्रस्येत् ।। १९१ ।।

**न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ।।**
**न बकव्रतिके पापे नावेदविदि धर्मवित् ।। १९२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रतिग्रहीतुर्धर्म **उक्तः**, इदानीं दातुरुच्यते। **अपिशब्दात्सर्वं** देयं निवार्यते। यत्र **वारि** न कस्मैचिद्वार्यते तदपि नैभ्यो दातव्यं कुतोऽन्यद्द्रव्यं दीयते। अतिशयोक्त्या द्रव्यान्तरदाननिषेधोऽयम्। **वारिणस्तु** सर्वार्थत्वादनिषेधः। "ननु च

'बैडालव्रतिकान्वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्' इत्युक्तमेव"। सत्यम्। तत्रार्चा निषिद्धा, इह तु दानम्। तच्च धनस्य नान्यस्य। एवं द्विःप्रतिषेधोऽर्थवान्भवति। तथा चोत्तरत्र वक्ष्यति "विधिनाऽप्यर्जितं धनमिति" (श्लो. १९३)। अतः पाषण्डयादिभ्यः सावज्ञमन्नदानं न निषिध्यते।

अत्र कश्चिदाह "यद्यवेदविदी'ति श्रुतं तथाऽप्यनधीयान इत्यपि द्रष्टव्यम्। तथाहि केवलवेदाध्यायिभ्यो दानमुक्तम्। न च दाम्भिकेभ्यः साम्यं युक्तम्"। स इदं प्रष्टव्यः—क्व पुनर्वेदाध्यायिमात्राय विद्यारहिताय दानमुक्तम्?।

"श्रोत्रियायैव देयानीति" चेत्। न त्वर्हत्तमायेत्यप्राप्तिकत्वादत्र विद्यया विना। वाक्यान्तराणि च "विदुषे दक्षिणे" त्यादीन्येकप्रकरणगतानि सन्त्येव। अतस्तत्पर्यालोचनयोभयविशेषणचेष्टया देयमिति गम्यते। अतः श्रुतार्थपरित्यागे न किंचित्कारणं पश्यामः। यत् तु साम्यमयुक्तमिति। वचनगम्येऽर्थे का नामायुक्तता? बिडालव्रतेन चरति **बैडालव्रतिकः**। बकानां व्रतं तदस्यास्तीति **बकव्रतिकः**। अधिकरणविवक्षायां 'बैडालव्रतिके'। सम्प्रदानविवक्षायां चतुर्थी युक्ता।। १९२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वार्यपि** प्रतिग्रहरूपेण न देयम्। करुणया तु देयमित्यर्थः ।। १९२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। प्रतिग्रहीतुर्धर्ममभिधायाऽधुना दातुराह **न वार्यपीति**। वायसादिभ्यो यद्दीयते तदपि बैडालव्रतिकेभ्यो धर्मज्ञो न दद्यादित्यतिशयोक्त्या द्रव्यान्तरदानं निषिध्यते, नतु वारिदानमेव। 'पाषण्डिनो विकर्मस्थानि'(४।१३०)त्यनेन बैडालव्रतिकायाऽतिथित्वेन सत्कृतार्थदानादि निषिद्धम्। इह तु धनदानं निषिध्यते। अत एव 'विधिनाप्यर्जितं धन'मिति (श्लो. १९३) वक्ष्यति। **नावेदविदीति** वेदार्थानभिज्ञे एतच्च विद्वत्संभवे नावेदविदीति निषिध्यते।। १९२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। निन्दार्थवादसहितं दानपात्रं निन्दति **न वार्यपीति नवभिः**। **अवेदविदि** वेदानभिज्ञे।। १९२ ।।

(५) **नन्दनः**। दातृप्रतिग्रहीतृप्रसङ्गाद्दातारं प्रत्याह **नेति**। **बैडालबकवृत्तिकौ** वक्ष्यति। **धर्मवित्प्रतिषेधशास्त्रज्ञः**।। १९२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **वार्यपि** जलमपि **अवेदविदि**।। १९२ ।।

(७) **मणिरामः**। दातुर्धर्ममाह **न वार्यपीति**। अपिशब्दात् द्रव्यान्तरमपि न देयमिति निषिध्यते।। १९२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **न वारीति**। उदकं किल सर्वदेयं तदपि बैडालव्रतिकादिभ्यो धर्मज्ञो न दद्यात् इत्यतिशयोक्त्या द्रव्यान्तरदानं निषिध्यते, न तु वारिदानम्, पाखण्डयादि लोकविद्धोऽपि बैडालव्रतिके दाननिषेधः तल्लक्षणविवक्षयेह पुनरुच्यते। अविद्वद्दाननिषेधः पुनः विद्वत्संभवे सति अविद्वद्दानप्रतिषेधार्थः। एवं च 'श्रोत्रियायैव देयानि' इत्येतत् विद्वच्छ्रोत्रियासंभवे सति द्रष्टव्यम्।। १९२ ।।

**त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाऽप्यर्जितं धनम् ॥
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** धनग्रहणादन्नदानं न निषिध्यत इत्युक्तं भवति। **विधिनाऽप्यर्जितं** सत्प्रतिग्रहक्रयादिना शास्त्राभ्यनुज्ञातेन प्रकारेण। **दातुरादातुश्च** तादृशं दानं दत्तोभयोरनर्थाय ॥ १९३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अनर्थाय दोषाय ॥ १९३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** एतेषु त्रिष्वपि बैडालव्रतिकादिषु न्यायार्जितमपि **धनं** दत्तं **दातुः** प्रतिग्रहीतुश्च परलोके नरकहेतुत्वादनर्थाय **भवति** ॥ १९३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** त्रिषु बैडालव्रतिकादिषु। **विधिनोपार्जितं** न्यायोपार्जितमपि **अनर्थाय** नरकाय ॥ १९३ ॥

(५) **नन्दनः।** न केवलमेतेभ्यो दानेन दृष्टे धनहानिरदृष्टे फलहानिश्च भवतः, किंतु प्रतिषिद्धाचरणात् पापमप्यस्तीति व्यक्तमुक्तम**नर्थायेति**। **आदातुः** प्रतिग्रहीतुः ॥ १९३ ॥

(६) **रामचन्द्रः। एतेषु त्रिषु** बैडालवृत्तिबकवृत्त्यवेदवित्सु **दत्तं दातुः आदातुः** उभयोश्च **अनर्थाय भवति** ॥ १९३ ॥

(७) **मणिरामः। आदातुः** प्रतिग्रहीतुः ॥ १९३ ॥

(८) **गोविन्दराजः। त्रिष्विति।** न्यायोपार्जितमपि **धनं** बैडालव्रतिकादिषु **त्रिष्वपि दत्तं** दातृप्रतिग्रहीत्रोः परलोके नरकपातहेतुत्वात् **अनर्थाय** संपद्यते ॥ १९३ ॥

**यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥**

(१) **मेधातिथिः। औपल** आश्मनः। जलसंतरणाय नावादिः प्लवस्तेन **यस्तरति** तरितुं प्रवर्तते सोऽधस्ताज्जलस्य **मज्जत्यन्तर्धीयते**। **एवमज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ। प्रतीच्छकः** प्रतीच्छां करोतीति णिचं कृत्वा ण्वुल्कर्तव्यः। 'प्रतीप्सक' इति पाठान्तरम्। तत्र सन्नन्तादाप्नोतेर्ण्वुल्। अर्थस्तूभयोरेक एव ॥ १९४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** दातुरज्ञत्वं पात्राज्ञानात् दानफलाज्ञानाच्च ॥ १९४ ॥

(३) **कुल्लूकः।** यथा पाषाणमयेनोडुपादिना जले **तरंस्तेनैव** सहाधो **गच्छत्येवं दान**प्रतिग्रहशास्त्रानभिज्ञौ **दातृ**ग्राहकौ नरकं गच्छतः। 'अतपास्त्वनधीयान' (४।१९०) इति प्रतिग्रहीतृप्राधान्येन निन्दोक्ता, इह तु दातृप्राधान्येनेत्यपुनरुक्तिः ॥ १९४ ॥

(४) **राघवानन्दः। औपलेनाश्म**निर्मितेन। **प्रतीच्छको** धनं प्रति लुब्धो ग्रहीता ॥ १९४ ॥

(५) **नन्दनः।** उक्तेऽर्थे दृष्टान्तं प्रपञ्चयति **यथेति। अज्ञौ** अपात्रदाने दोषमविदुषः प्रतिग्रहदोषं चाजानन्तौ। **प्रतीच्छकः** प्रतिग्राहकः ॥ १९४ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** यथा **औपलेन प्लवेन** पाषाणप्लवेन **उदके तरन् निमज्जीत** तथा **अज्ञौ। दातृप्रतीच्छकौ** दातृग्रहीतारौ **अधस्तान्निमज्जतः।।** १९४ ।।

(७) **मणिरामः। औपलेन प्लवेन** पाषाणनौकया ।। १९४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। यथेति। तथा निमज्जतो विप्रावज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ।** यथाऽश्ममयेन नावादिना तरन् तेनैव सह (नरके) उदकेऽन्तर्धीयते एवं दातृप्रतिग्रहीतारौ प्रतिग्रहशास्त्रानभिज्ञौ अनर्हदानप्रतिग्रहकर्तारौ नरकं यातः। दाता किल प्रतिग्रहीतृपोतान्तरणमार्गेण संसारार्णवपारमुत्तितीर्षुः यदि बालिशतया उपप्लवप्रख्यप्रतिग्रहीतृसमवलम्बनमुररीकरोति तदा प्रत्युत तेनैव समं अगाधो दध्यन्तर्धानवेदनासन्निहितमधिकतरां अर्थान्तिरतयाऽनर्थान्तिरमधिकमपि मज्जत इत्युपमार्थः। 'अतपास्त्वनधीयान' इति प्रतिग्रहीतृप्राधान्येनोक्तं, इदं तु दातृप्राधान्येनेति अपौनरुक्त्यं (अप्रसिद्धात्) प्रतिषिद्धाद्यत्नतः परिहारार्थम् ।।१९४।।

**धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।।**
**बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ।। १९५ ।।**

**[*"यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुरध्वज इवोच्छ्रितः ।।**
**प्रच्छन्नानि च पापानि बैडालं नाम तद्व्रतम्" ।।]**

(१) **मेधातिथिः।** उपचारेणैतौ शब्दौ प्रयुज्येते। अनेकस्मिंश्चोपचारहेतौ स एव सम्भवति यन्निमित्तं प्रयोगः तदवधारणप्रतिषेधविषयप्रक्लृप्त्यर्थम्। धर्मो ध्वजमिव। व्याघ्रादेराकृतिगणत्वात्समासः। कदाचित्कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थ इति। ततः सोऽस्यास्तीति मत्वर्थीयः। यः ख्यात्यर्थमेव धर्मं करोति न शास्त्रपरतया स एवमुच्यते। यस्तत्रैव धर्मं करोति यत्र जनाः पश्यन्ति स्वपुरुषैश्च ख्यापयति—'धार्मिकत्वप्रसिद्ध्या प्रतिग्रहादि लप्स्ये' इति। **लुब्धो** मत्सरी कृपणश्च। लोकं दभ्नोति वञ्चयति **लोकदम्भकः।** छद्मना चरति **छाद्मिकः।** 'छद्म' व्याजः। प्रकाशं धार्मिको रहसि निक्षिप्तमपहरत्यप्रकाश्यं प्रकाशयति। 'धार्मिकोऽयमेतस्य यत्समक्षं कथितं तन्नान्यत्र यातीति' केनचिद्विश्वस्य कथितं दृश्यते यावद्यत एव गोप्यं तस्यैवाभिमुखे कथितमिति परद्रोहः। **सर्वेषां चाभिसंधाताऽऽक्षेपकः** परगुणान्न सहते। ईदृशो बैडालव्रतिको ज्ञेयः। **अभिसन्धकः** अभिसंधत्त इति। "आतश्चोपसर्गे" (पा० ३।१।१३६) इति कः। ततः स्वार्थे कः। सर्वेषामभिसंधक इति षष्ठीसमासः।

*केचिदत्र श्लोकं पठन्ति– एष एवार्थः संक्षेपेण कथ्यते। एकैकगुणसम्बन्धे बैडालव्रतिको ज्ञेयः। अस्मादेव श्लोकादेवमनुमीयते। 'प्रच्छन्नानि च पापानीति' विशेषाश्रवणात् सर्वेषां चैषां- पापत्वादुभयथाऽऽचार्येण शिष्याः प्रतिपादिताः।

केचिदिमं श्लोकमध्यापिताः केचित्पूर्वम्। उभयं च प्रमाणम्। तेन यद्यपि—'अङ्गदी कुण्डली पीनस्कन्धः पृथुवक्षा देवदत्त' इति समुदितानां लक्षणत्वं प्रतीयते—तथापीह प्रत्येकमेतानि लक्षणानि।। १९५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **धर्मध्वजी** धर्मप्रकाशनशीलः। **सदा** अतिधनत्वेऽपि **लुब्धः।** **लोकानां दम्भको हिंस्रो** धनग्रहणेन **हिंस्रो** वधादिहिंसारतिः। **सर्वाभिसंधकः** सर्वेषु पित्रादिष्वपि स्वोपकाराभिसंधिनैवोपकर्ता ॥ १९५ ॥

(३) **कुल्लूकः।** यो बहुजनसमक्षं धर्ममाचरति स्वतःपरतश्च लोके ख्यापयति तस्य धर्मो ध्वजचिन्हमिवेति **धर्मध्वजी।** **लुब्धः** परधनाभिलाषुकः। छद्मना व्याजेन चलतीति **छाद्मिकः।** **लोकदम्भको** निक्षेपापहारादिना जनवञ्चकः। **हिंस्रः** परहिंसाशीलः। **सर्वाभिसन्धकः** परगुणासहनतया सर्वाक्षेपकः। विडालव्रतेन चरतीति **बैडालव्रतिकः** विडालो हि प्रायेण मूषिकादिहिंसारुचितया ध्याननिष्ठ इव विनीतः सन्नवतिष्ठत इत्युपचाराद्विडालव्रतशब्दः ॥ १९५ ॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्र द्वाभ्यामुक्तबैडालबकव्रतिनोर्लक्षणमाह **धर्मेति!** **धर्मध्वजी** बहुजनेषु धर्म एव ध्वजवत्प्रकाश्यतया यस्य सः। **छाद्मिकः** सर्वत्र छद्मना व्यवहरति **सर्वाभिसन्धकः** परगुणासहनतया सर्वाक्षेपकः ॥ १९५ ॥

(५) **नन्दनः।** बैडालवृत्तिकमाह **धर्मेति।** **धर्मध्वजी** धर्मलिङ्गधारी। **छाद्मिको** व्याजवृत्तिः। **दाम्भिको** विशिष्टवेषेण स्वदोषतिरस्कारी। **अभिसन्धको** वञ्चकः ॥ १९५ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **धर्मध्वजी** धर्मस्थापकः पुरुषेभ्यः ख्यापयन्। **छाद्मिकः** कृतव्याजः, प्रकाशं धार्मिकः रहसि निक्षिप्तमपि अपहरति। **लुब्धः** कृपणः प्रसिद्धः, प्रतिग्रहादिलभ्य इत्येतादृशो **बैडालव्रतिकसंज्ञः।** **हिंस्रः** हिंसारुचिः। **सर्वाभिसन्धिकः** परगुणासहनतया सर्वेषु निन्दाकरः ॥ १९५ ॥

(७) **मणिरामः।** बैडालव्रतिकलक्षणमाह **धर्मध्वजीति।** यो लोकख्यात्यर्थं धर्माचरणं करोति। न तु धर्मबुद्धया **स धर्मध्वजी।** छद्मना व्याजेन करोतीति **छाद्मिकः।** **लोकदंभकः** निक्षेपापहारादिना जनवंचकः। **सर्वाभिसंधकः** परगुणासहनतया सर्वाक्षेपकः। एतादृशः स **बैडालव्रतिकः।** विडालो मूषकादिहिंसारुचितया ध्याननिष्ठ इव विनीतः सन्नवतिष्ठत इत्युपचाराद्विडालव्रतशब्दः ॥ १९५ ॥

(८) **गोविन्दराजः।** बैडालव्रतिकादिलक्षणमाह **धर्मध्वजीति।** धर्मः चिह्नमिति लोकख्यापनार्थं प्रकाशदेशावरणात् यस्य स **धर्मध्वजी।** **लुब्धः** कृपणः **छाद्मिकः** गूढपापो **लोकदंभको** वञ्चकः **हिंस्रः** हिंसाशीलः **सर्वाभिसंधकः** परगुणासहनतया सर्वाक्षेपकः स बिडालव्रतेन चरतीति **बैडालव्रतिको** ब्राह्मणो ज्ञेयः ॥ १९५ ॥

**अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥**
**शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **बकव्रतलक्षणमधोनिरीक्षणम्।** अथवा नीचदृष्टिः। 'नीचो' दीनः। सर्वदैव व्यापारयति कथंचित्कुतश्चन लभतेऽधमादपि गृह्णाति। **निष्कृतिर्निष्ठुरता—** तया चरति तत्प्रधानो **नैष्कृतिकोऽ**सम्यग्भाषी।

अलीकविनीतः श्रयति प्रश्रयं नम्रतां, कार्ये तु व्याघातकः। बिडालोऽलीकनिद्रां करोत्यामिषं जिघृक्षन्। एवं सोपधो धर्मचरणो बैडालव्रतिक उक्तः। तथैव बकव्रतचरोऽपि। बका हि मत्स्यान् गृह्णन्तो जलचरेष्ववज्ञां दर्शयन्ति— अथ च मत्स्यग्रहणबुद्धय एव। 'व्रतेन' शीलितं कर्मोच्यते। प्रदर्शितं पदानामपौनरुक्त्यम्। अथापि स्याल्लक्षणत्वाददोषः। अविज्ञातं हि लक्षणं भवति। पौनःपुन्याभिधानेन सुग्रहोऽर्थो भवति।

"कः पुनः बैडालव्रतिकबकव्रतिकयोर्भेदः"? उच्यते। अयं स्वार्थसाधनपरो नान्यस्य कार्यं विहन्ति। पूर्वस्तु मात्सर्यात्स्वार्थसिद्धावसत्यामपि परस्य नाशयति ।। १९६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अधोदृष्टिरुपरो**धभयान्मुखानिरीक्षकः। **नैष्कृतिकश्छद्म-**वृत्तिः। **शठो** वक्रगतिः। **मिथ्याविनीतो** वाचा देहेन च विनयं कुर्वन् मनसा विपरीतः। **बकव्रतध(च)रो** बकवृत्तिः ।। १९६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **अधोदृष्टिर्निजविनय**ख्यापनाय सततमध एव निरीक्षते। निष्कृतिर्निष्ठुरता तया चरतीति **नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः** परार्थखण्डनेन। **शठो वक्रः मिथ्याविनीतः** कपटविनयवान्। बकव्रतं चरतीति **बकव्रतचरः**। बको हि प्रायेण मीनहननरुचितया मिथ्याविनीतः सन्नेवंशीलो भवतीति गौणो बकव्रतशब्दः ।। १९६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। निजविनयख्यापनाय सततम**धोदृष्टिः**। निष्कृत्या निष्ठुरतया चरति **नैष्कृतिकः** निष्ठुरो निराकृतिः। **शठो** वञ्चकः। **मिथ्याविनीतः** धनाद्यर्थे मिथ्या-विनयी ।। १९६ ।।

(५) **नन्दनः**। **अधोदृष्टिः** परलोकानवेक्षकः। **नैष्कृतिको** गूढैरुपायैः परानर्थकारी। **शठो** नृशंसः ।। १९६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अधोदृष्टिः** उपरोधभयान्मुखानिरीक्षकः। **नैष्कृतिकः** छद्मवृत्तिः। **स्वार्थसाधनतत्परः** स्वकार्यसाधकः। **शठः** वक्रमतिः ।। १९६ ।।

(७) **मणिरामः**। बकवृत्तिलक्षणमाह **अधोदृष्टिरिति**। **नैष्कृतिकः** निष्ठुरा-चरणशीलः। **शठः** वक्रः। एतादृशो यः स **बकवृत्तिः**। बको हि मत्स्यहननार्थं **मिथ्याविनीतः** सन्नेवंविधोअततीति (?) गौणो बकव्रतशब्दः ।। १९६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अधोदृष्टिर्नैष्कृतिक इति**। **अधोदृष्टिर्विनीतत्वख्यापनार्थम्**। अध एव निरीक्षते। **नैष्कृतिकः** नैष्ठुर्यव्यवहारी **स्वार्थसाधनतत्परः** स्वार्थसाधननिष्ठः **शठः** परान्नस्योपेक्षकः **मिथ्याविनीतः** कपटे प्रश्रयवान् यः स बकवृत्तेन चरति इति **बकव्रतधरो** ब्राह्मणः ।। १९६ ।।

**ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ।।**
**ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ।। १९७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। स्वशब्दैश्च व्याख्यातः श्लोकः ।। १९७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। ये विप्रा इति** विप्राणां हिंसाछद्मप्रधानतयैतद्विधर्मातिदुष्टे-त्यर्थः ।। १९७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** ये बकव्रतं बिडालव्रतं **चरन्ति** ते ब्राह्मणास्तेन पापहेतुना **कर्मणा अन्धतामिस्र**नाम्नि नरके **पतन्ति** ।। १९७ ।।

(४) **राघवानन्दः।** तेन बकादिवृत्त्या **पापकर्मणा** ।। १९७ ।।

(५) **नन्दनः।** अन्धतामिस्रेऽन्धतामिस्राख्ये नरके ।। १९७ ।।

(६) **रामचन्द्रः। य इति** ।। १९७ ।।

(७) **मणिरामः। तेन पापेन कर्मणा** पापहेतुना कर्मणा ।। १९७ ।।

(८) **गोविन्दराजः।** य इति। ये ब्राह्मणाः **बकव्रतबिडाल**चिह्नयुक्ताः **तेन** पापहेतुना **कर्मणा** अन्धतामिस्राख्ये नरके **पतन्ति** ।। १९७ ।।

**न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् ।।**
**व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ।। १९८ ।।**

(१) **मेधातिथिः। पापं कृत्वा व्रतं** प्रायश्चित्तं न कुर्यात्। धर्मस्यापदेशेन धर्म-मपदिश्य लोके ख्यापयति धर्मार्थमहं व्रतं करोमि न मे प्रायश्चित्तनिमित्तमस्तीति। परमार्थ-तस्तु प्रायश्चित्तार्थमेव करोति। एवं न कर्तव्यम्। **पापं प्रच्छाद्या**पह्नुत्य तेन व्रतेन **स्त्रीशूद्र-दम्भनं न** कुर्यात्। प्रकटं प्रायश्चित्तं कर्तव्यमन्यत्र रहस्यात् ।। १९८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** धर्मध्वजित्वं केवलमपि दुष्टमित्याह **न धर्मस्येति। अपदेशेन** धर्मं साधयितुमेतत् करोमीति व्यपदेशेन **व्रतं** चान्द्रायणादिप्रायश्चित्तं **न चरेत्। पापं** कृतं **प्रच्छाद्य** निह्नुतं कृत्वा तदपगमार्थं **कुर्वन्नपि। व्रतेन स्त्रीशूद्रदम्भनं** स्त्रीशूद्राद्यज्ञानाद्दम्भनं विप्रलम्भनं **कुर्वन्** ।। १९८ ।।

(३) **कुल्लूकः। पापं कृत्वा** प्रायश्चित्तरूपं प्राजापत्यादिव्रतं पापमपनयति, तन्नेदं प्रायश्चित्तं किंतु धर्मार्थमहमनुतिष्ठामीति **स्त्रीशूद्र**मूर्खादिजनमोहनं कुर्वन्नानुतिष्ठेत् ।। १९८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** पापनुत्त्यै व्रतमनुतिष्ठतो धर्मं करोमीति ख्यापनशीलस्य न शुद्धिः, किंतु दम्भमात्रमित्याह **न धर्मस्येति। स्त्रीशूद्रदम्भनं** स्त्रीशूद्रं दम्भयति दम्भेन व्यामोहय-तीति ।। १९८ ।।

(५) **नन्दनः।** धर्मध्वजित्वादीनां वृत्तान्तमाह **नेति। पापं कृत्वा** तत्प्रायश्चित्तरूपं **व्रतं** धर्मव्याजेन न कुर्यात्। **पापं प्रच्छाद्य व्रतेन स्त्रीशूद्रदम्भनं कुर्वन्।** स्त्रीशूद्रग्रहणम-विद्वदुपलक्षणम्। **दम्भनं** वञ्चनम् ।। १९८ ।।

(६) **रामचन्द्रः। धर्मस्य अपदेशेन** व्याजेन **व्रतं न चरेत्। स्त्रीशूद्रदम्भनं** स्त्री-शूद्रदम्भयोर्वचनं **कुर्वन्** ।। १९८ ।।

(७) मणिरामः। धर्मस्य अपदेशेन। इदं प्राजापत्यादिप्रायश्चित्तं न किंतु धर्मार्थमहं करोमि इति मिषेण व्रतं न कुर्यात्। दंभनं मोहनम्॥ १९८॥

(८) गोविन्दराजः। न धर्मस्येति। पापं कृत्वा धर्मार्थव्रतख्यापनव्याजेन धार्मिकोऽयमिति शूद्रादिमूर्खलोकमोहनं कुर्वन् तेन धर्मव्रतव्याजेन पापमवच्छाद्य प्रायश्चित्तं न कुर्यात्॥ १९८॥

**प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः॥**
**छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति॥ १९९॥**

(१) मेधातिथिः। इह पदार्थस्वाभाव्येनान्योद्देशेनापि कृतं यत्फलं ततो भवत्येव। तथाहि गुरुनियोगे प्रवृत्तो धर्मोद्देशेन गुरुवचनं करोमीति न कामहेतोः, अर्थस्वाभाव्यात्तु कामं प्रतिजनयति।

एवं कश्चिन्मन्यते—"व्रतानि पापापनोदार्थानि। तानि अन्योद्देशेनापि क्रियमाणानि न स्वभावं जहति। एवमेतन्मम प्रायश्चित्तमुभयार्थं भविष्यति। लोके तपस्वीति ख्यातो भविष्यामि पापं चापनोत्स्यते"। तस्यैवं बुद्धिमतो निवृत्त्यर्थमिदमारभ्यते। तदेतद्व्रतं छद्मना चरितमनुष्ठितं रक्षांसि गच्छति निष्फलं भवति, न पापमपनुदतीत्यर्थः। न केवलं कार्याकारणं भवति यावदीदृशा विप्रा व्रतचारिणो गर्ह्यन्ते निन्द्यन्ते ब्रह्मवादिभिः वेदप्रमाणज्ञैः शिष्टैः॥ १९९॥

(२) सर्वज्ञनारायणः। प्रेत्य पारलौकिककर्मणि। इहैव लौकिककर्मणि। तच्च व्रतं धर्मध्वजिनाम्॥ १९९॥

(३) कुल्लूकः। प्रेत्येह इति श्लोकद्वयम्। प्रथमं सुबोधम्॥ १९९॥

(४) राघवानन्दः। किंचैतादृशा अतीव पापिष्ठा इत्याह प्रेत्येति। तत्फलं रक्षोगामीति भावः॥ १९९॥

(५) नन्दनः। अत्र कारणमाह प्रेत्येति॥ १९९–२००॥

(६) रामचन्द्रः। ईदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते। छद्मना धारितं व्रतं रक्षांसि प्रतिगच्छति निष्फलं भवति॥ १९९॥

(७) मणिरामः। ब्रह्मवादिभिः परलोके इहलोके च ईदृशाः पूर्वोक्ता विप्रा गर्ह्यंते निंद्यंते। तत्र हेतुः छद्मनेति॥ १९९॥

(८) गोविन्दराजः। प्रेत्येति। एवंविधा ब्राह्मणा जीवन्तः मृताश्च आत्मस्वरूपनिरूपणपरैः निन्द्यन्ते। तच्च व्याजचरितं व्रतं रक्षांसि गच्छति॥ १९९॥

**अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति॥**
**स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥ २००॥**

(१) **मेधातिथिः।** प्रत्याश्रमं लिङ्गधारणम्। यथा ब्रह्मचारिणो मेखलादिधारणं, गृहस्थस्य वैणवदण्डकुण्डलकमण्डल्वादि, वानप्रस्थस्य चर्मचीरजटादि, परिव्राजकस्य कषायवसनदण्डादि। एतेन वेषेणानाश्रमी यो भिक्षाहेतोर्लोके चरति **वृत्तिमुपजीवति स लिङ्गिनामेनः पापं हरति** आनृण्यं तर्पयति। **तिर्यग्योनौ** तिरश्चां श्वशृगालादीनां योनौ **जायते।** न चात्रैतदाशङ्कनीयं "लिङ्गिनां यत्पापं तत्तेभ्योऽपसृत्य तस्मिन्संचरतीत्यसंभाव्यम्।" अकर्तव्यता परलिङ्गधारणस्य प्रतीयते। अश्रुतेऽपि प्रतिषेधे निन्दार्थवादादेव तदवगतिः॥ २००॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अलिङ्गी** तत्तद्दीक्षितस्नातकादिलिङ्गानर्हः। **वृत्तिं** प्रतिग्रहादिना धनोत्पत्तिम्॥ २००॥

(३) **कुल्लूकः।** अब्रह्मचारी यो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यादिलिङ्गं मेखलाजिनदण्डादिवेषोपलक्षितस्तद्वृत्त्या भिक्षाभ्रमणादिना जीवति स ब्रह्मचार्यादीनां यत्पापं तदात्मन्या**हरति,** कुक्कुरादि**तिर्यग्योनौ** चोत्पद्यते। तस्मादेतन्न कर्तव्यमिति निषेधः कल्प्यते॥ २००॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच स्वयम**लिङ्गी लिङ्गिनां** संन्यास्यादीनाम्॥ २००॥

(६) **रामचन्द्रः।** यः **अलिङ्गी** अनाश्रमी भूत्वा **लिङ्गिवेषेण** आश्रमिवेषेण **वृत्तिं उपजीवति** स **लिङ्गिनां** आश्रमिणां **एनः** पापं **हरति** आनृण्यं तर्पयति स्वयं **तिर्यग्योनौ** शृगालयोनौ च **प्रजायते**॥ २००॥

(७) **मणिरामः। अलिङ्गी** अब्रह्मचार्यादिः **लिङ्गवेषेण** मेखलाजिनादिधारणवेषेण॥ २००॥

(८) **गोविन्दराजः। अलिङ्गीति।** अब्रह्मचारी ब्रह्मचार्यादिवेषेण यस्तद्वृत्त्या जीवति स ब्रह्मचार्यादीनां यत्पापं तदात्मन्या**हरति।** श्वादियोनौ च **जायते।** तस्मादेतन्न कर्तव्यम्॥ २००॥

**परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन॥**
**निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते॥ २०१॥**

**[सप्तोद्धृत्य ततः पिण्डान् कामं स्नायाच्च पञ्चधा॥**
**उदपानात्स्वयंग्राहाद्बहिः स्नात्वा न दुष्यति॥]**

(१) **मेधातिथिः।** निपिबंत्यस्मिन्नतो वेति **निपानं** जलाशयः। स च वापीकूपतडागादिः। तस्मिन् परकीये परेण यदात्मार्थं कृतं सर्वार्थं नोत्सृष्टं तत्र न कदाचि**त्स्नायात्।** नित्यं चण्डालादिस्पर्शने च नैमित्तिकं धर्मस्वेदापनोदार्थं च सर्वं स्नानं प्रतिषिध्यते। अत्र व्यतिक्रमे दोषमाह— निपानस्य यः कर्ता तस्य यत्किंचिद्दुष्कृतं तस्य **केनचिदंशेन** भागेन **लिप्यते** सम्बध्यते। निन्दार्थवादोऽयं प्रतिषेधशेषः॥ २०१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** जलं निपीयते येषु **निपानेषु** पुष्करिण्यादिषु **परकीयेषु** परेण खातेषु सर्वार्थमनुत्सृष्टेषु। **अंशेन** चतुर्थेन॥ २०१॥

(३) **कुल्लूकः।** **निपानं** जलाधारः, परकृतपुष्करिण्यादिषु न कदाचित्स्नायात्तत्र स्नात्वा पुष्करिण्यादिकर्तुर्यत्पापं तस्यांशेन वक्ष्यमाणचतुर्थभागरूपेण संबध्यते। अकृत्रिमनद्याद्यसंभवे परकृतेऽपि पुष्करिण्यादौ प्राक्प्रदानात्पञ्चपिण्डानुद्धृत्य स्नातव्यम्। तदाह **याज्ञवल्क्यः** (आचार. ६।१५९) "पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु। उद्धृत्य चतुरः पिण्डान्पारक्ये स्नानमाचरेत्। स्नात्वा च तर्पयेद्देवान्पितॄंश्चैव विशेषतः"॥ २०१॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्र 'नित्यनैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्। क्रिया स्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम्॥ अस्नातः पुनरानर्हो जप्याग्न्यहवनादिषु। प्रातःस्नानं तदर्थं तु नित्यस्नानं प्रकीर्तितम्'॥ नित्यस्नानं ग्रहवैगुण्यशमं। काम्यं देवतार्चाद्यर्थं। क्रियाङ्गं अपूर्वनद्यादिषु स्नानं क्रियास्नानं। तत्रापि 'तीर्थे प्राप्यानुमार्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत्। स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न च'ेति शङ्खोक्तेः। स्नानाधिकरणविधिनिषेधावाह **परेति त्रिभिः।** परकीयत्वं तत्कृतिसाध्यत्वे सति तदनुत्सृष्टत्वं कूपतडागादिष्वदत्तेषु अदत्तानीत्युत्तरलिङ्गात्। **अंशेन** चतुर्थांशेन 'तुरीयभागि'ति (४।२०२) वक्ष्यमाणत्वात्। 'पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु'इति (याज्ञ. आचार. १५९) । वाचनिकं सर्वसत्वोद्देशेनोत्सृष्टत्वात्। अत एवाह यदात्मार्थं कृतं सर्वार्थं नोत्सृष्टमिति **मेधातिथिः**॥ २०१॥

(५) **नन्दनः।** अत्रांशशब्दश्चतुर्थभागवचनः, उत्तरत्र तुरीयग्रहणात्॥ २०१॥

(६) **रामचन्द्रः।** स्नानविधिमाह **परकीयेति। परकीयनिपानेषु कदाचन न स्नायात्। स्नात्वा निपानकर्तुः दुष्कृतांशेन लिप्यते।** कूपसमीपं निबद्धं पशुपानाय निपानसंज्ञम्॥२०१॥

(७) **मणिरामः। निपानेषु** तडागादिषु॥ २०१॥

(८) **गोविन्दराजः। परकीयनिपानेष्विति।** परकीयपुष्करिण्यादिषु **न** कदाचिदपि **स्नायात्।** तत्र स्नात्वा तत्पुष्करिण्यादिषु यत्पापं **कर्तुः** तच्चतुर्थांशेन वक्ष्यमाणेन संबध्यते। धार्मिकाणामपि सञ्चितकृतं जन्मान्तरकृतं दुष्कृतं भवत्येव। अतो न धार्मिकनिपानस्नानेन पापाभावप्रसङ्गः॥ २०१॥

**यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च॥**
**अदत्तान्युपयुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक्॥ २०२॥**

(१) **मेधातिथिः।** यानादीनि परकीयान्यदत्तान्यु**पयुञ्जान एनस**स्तदीयस्य **तुरीयभाक्** चतुर्थं भागं प्राप्नुयात्। अत्र कश्चिदाह—"अदत्तानीति वचनात्सर्वार्थतयाऽप्युपकल्पितानि नोपयोज्यानि।" तदयुक्तम्; परकीयाधिकारात्। न च तानि परकीयानि। त्यक्तं हि तत्सम्यक् तुरीयग्रहणमविवक्षितमिति प्रागेव व्याख्यातम्॥ २०२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** एवं परयानाद्युपभोगेऽपि दोष इत्याह **यानशय्येति। अस्य** परस्य॥ २०२॥

(३) **कुल्लूकः। अस्येति** प्रकृतः पुनः परामृश्यते। परस्य यानादीन्य**दत्तान्युपयुञ्जान**स्तदीयपापचतुर्थभागभागी भवति। **अदत्तानीति** परस्यानुमत्यभावश्च विवक्षितस्तेन सर्वार्थोत्सृष्टमठकूपादावुपयोगार्थात्मकस्नानादौ न विरोधः॥ २०२॥

(४) **राघवानन्दः।** **मनुरप्याह** **पानेत्यादि।** **अदत्तान्यनुत्सृष्टानीति** 'स्वखातः सागरोपमः' इत्युक्तेः खातकृदुत्सृष्टे। विश्वस्याधिकारो वाचनिकः॥ २०२॥

(५) **नन्दनः।** **अस्य** परस्य। **तुरीयभाक्** तुरीयांशभाक्॥ २०२॥

(६) **रामचन्द्रः।** **यानादीनि अदत्तानि भुञ्जानः।** **अस्य** एतेषां प्रभोः **एनसः।** **तुरीयभाक्** चतुर्थांशभाक् स्यात्॥ २०२॥

(७) **मणिरामः।** **एनसस्तुरीयभाक्** पापचतुर्थांशभाक्॥ २०२॥

(८) **गोविन्दराजः।** **यानशय्यासनानीति।** **यानशय्यासनानि** रथखट्वामञ्चकादीनि कूपारामगृहाणि च परस्य संबन्धीनि **अदत्तान्युपभुञ्जानः** तत्पापस्य चतुर्भागं प्राप्नोति। अत्र च परकीयग्रहणात् अदत्तग्रहणाच्च सर्वार्थोत्सृष्टानुज्ञातस्नाने नास्ति दोषः॥ २०२॥

**नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च।**
**स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥ २०३॥**

(१) **मेधातिथिः।** सर्वा नद्यो देवखाताः। अतस्तासामुभयथाऽसंभवाद्देवखात-ग्रहणवाच्यत्वेन तल्लिङ्गं पठितव्यम्। तडागादीनि हि देवखातानि मनुष्यखातान्यपि सन्ति। न च देवैः खन्यन्ते। केवलं महत्त्वमस्मर्यमाणकर्तृकत्वेन लक्ष्यते॥ २०३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **देवखातेषु** पुष्करादिषु **तडागेषु।** अन्येन खातेषु उत्सृष्टेषु गर्तेषु नद्यादिकृतह्रदेषु। **प्रस्रवणेषु** निर्झरेषु॥ २०३॥

(३) **कुल्लूकः।** सर्वदा स्नानमाचरेत्। **देवखातेष्विति** तडागविशेषणम्। **देवसं-**बन्धित्वेन प्रसिद्धेषु **सरःसु** **गर्तेषु** अष्टधनुःसहस्रेभ्यो न्यूनगतिषु। तदुक्तं **छन्दोगपरिशिष्टे** "धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः।" चतुर्हस्तप्रमाणं धनुः। **प्रस्रवणेषु** निर्झरेषु चानेनैव परकीयनिपानव्यावृत्तिसिद्धौ यत्पृथग्वचनं तदात्मीयोत्सृष्टतडागादिषु स्नानाद्यनुज्ञानार्थं तदपि नद्याद्यसंभवे द्रष्टव्यम्॥ २०३॥

(४) **राघवानन्दः।** किंच **देवखातेषु** तत्कृतत्वेन प्रसिद्धेषु **सरःसु** समंतात् समेषु तटाकेषु विन्ध्यादिगर्तेषु। अष्टधनुःसहस्रेभ्यो न्यूनगतिषु। तदुक्तं **छन्दोगपरिशिष्टे** "धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः।" धनुर्हस्तचतुष्टयम्। **प्रस्रवणेषु** निर्झरेषु। अत्र पञ्चपिण्डानुद्धरणेऽप्यदोषः। अदत्ते अन्त्यज-कृतेऽपि न दोषः। "अन्त्यजेन कृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते। जानुदघ्नमदूष्यं स्यादधःस्थमशुचि स्मृतम्।" एतेन परकीयवारिनिषे-धोऽर्थवाद इति **मेधातिथिमतम्।** यानादिपञ्चकं प्रासङ्गिकं जलाशये दर्शितत्वात्॥ २०३॥

(५) **नन्दनः।** मनुष्यैरखातो जलाशयो **देवखातः।** मनुष्यैः खात**स्तडागः,** ऋषि-सेवितं **सरः।** **गर्तो** ह्रदः। **प्रस्रवणं** निर्झरः॥ २०३॥

(७) **मणिरामः।** **देवखातेष्विति** तडागविशेषणं। **सरःसु** देवसंबंधित्वेन प्रसिद्धेषु, **गर्तेषु** अष्टधनुःसहस्रेभ्यो न्यूनेषु। चतुर्हस्तप्रमाणं धनुः। **प्रस्रवणेषु** निर्झरेषु। नदी-

ष्वित्यादिनैव परकीयतडागादिषु स्नाननिषेधे सिद्धे परकीयनिपानेष्विति यत् पृथग्वचनं तन्नद्याद्यसंभवे स्वोत्सृष्टतडागादिषु स्नानाद्यनुज्ञानार्थम् ।। २०३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। नदीष्विति। नदीष्वकृतकेषु तडागेषु सरस्सु** च महत्सु उदकाधारेषु छिद्रस्रोतस्सु च सर्वदा **स्नानं समाचरेत्** अनेनैव परकीयनिपानव्यावृत्तिसिद्धौ च पृथग्वचनं तदात्मीयोत्सृष्टानुज्ञातेषु स्नानाभ्यनुज्ञानार्थं, तत्रापीह नित्यग्रहणात् प्रथमं नद्यादिस्नाने यतितव्यम्। तदभावे आत्मीयादिषु ।। २०३ ।।

**यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ।।**
**यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान् भजन् ।। २०४ ।।**

**[*आनृशंस्यं क्षमा सत्यं अहिंसा दममस्पृहा। ध्यानं प्रसादो माधुर्यमार्जवं च यमाः दश ।।१।।**
**अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता। अस्तेयमिति पञ्चैते यमाश्चोपव्रतानि च ।।२।।**
**शौचमिज्या तपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ। व्रतोपवासौ मौनं च स्नानं च नियमा दश ।।३।।**
**अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्। अप्रमादश्च नियमाः पञ्चैवोपव्रतानि च ।।४।।]**

(१) **मेधातिथिः।** प्रतिषेधरूपा **यमा** "ब्राह्मणो न हन्तव्यः" "सुरा न पेया" इत्यादयः। अनुष्ठेयरूपा **नियमाः** "वेदमेव जपेन्नित्यं" (४।१४७) इत्यादयः। **न नित्यं नियमान्।** नानेन नियमानामसेवोच्यते, किंतु यमानां नियमेभ्यो नित्य(तर)त्वम्। तथा चाह। **यमान्पतत्यकुर्वाणः।** ब्रह्महत्यादिभिर्यमलोपे सति पतितत्वात्सन्ध्योपासनादिभिर्नाधिक्रियते। न तु तथा नियमलोपे। तथा च शिष्टस्मरणम्। "पतति नियमवान्यमेष्वसक्तो न तु यमवान्नियमालसोऽवसीदेत्"। "न नियमानसमीक्ष्य बुद्धया यमबहुलेष्वतिसंदधीत बुद्धिम्" ।। इति।

येषामपि पारिभाषिका यमनियमाः।—

"अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता। अस्तेयमपि पञ्चैते यमाश्चैव व्रतानि च" अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाचारलाघवम्। अप्रमादश्च नियमाः पञ्चैवोपव्रतानि च"— तेषामपि गुरुलाघवमनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते। अतो नानेन यमानां सेवोच्यते, नापि नियमानामसेवा। उभयेषां तैः शास्त्रैर्विहितत्वात् ।। २०४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। यमान्नित्यकर्माणि। नियमान्** कामनानियतानि काम्यकर्माणि नित्यं न सेवेतेति। किंतु कामनोदय एव। **केवलान्** कृत्स्नानपि **भजन्।** अहिंसासत्यास्तेयापरिग्रहेन्द्रियनिग्रहादयः शरीरमात्रापेक्षानियतकर्तव्या यमाः। तपः स्वाध्यायादयोऽधिकसाधनापेक्षा नियमा अत्रेत्येके ।। २०४ ।।

(३) **कुल्लूकः।** नियमापेक्षया यमानुष्ठानगौरवज्ञापनार्थमिदम्, नतु नियमनिषेधार्थं; द्वयोरेव शास्त्रार्थत्वात्। यमनियमविवेकश्च मुनिभिरेव कृतः। तदाह **याज्ञवल्क्यः** (प्राय. ५।३१२) 'ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता। अहिंसास्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः। स्नानं मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः। नियमो गुरु-

शुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता ।।' यमनियमस्वरूपज्ञः समस्तस्नानादिनियमत्यागेनाप्यहिंसादिरूपं यममनुतिष्ठेत् । नियमाननुतिष्ठन्नपि यमानुष्ठानरहितः पततीत्ययं यमस्तुत्यर्थमारंभ इति **मेधातिथि-गोविन्दराजौ** । हिंसादिप्रतिषेधार्थका यमाः । 'वेदमेव जपेन्नित्य'-मित्यादयोऽनुष्ठेयरूपा नियमा इति व्याचक्षते । 'अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता । अस्तेयमिति पञ्चैते यमा वै परिकीर्तिताः । अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् । अप्रमादश्च सततं पञ्चैते नियमाः 'स्मृताः' ।। २०४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । स्नातकस्यापि नित्यं यमस्यावश्यकत्वमाह **यमानिति** । अत्र 'ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता । अहिंसास्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमा दश ।। स्नानं मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः । नियमो गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादिते'ति **याज्ञवल्क्योक्तयमनियमग्रह** इति केचित् । 'यः स्वशाखां परित्यज्ये'ति न्यायात् । अत्रैवोक्ता हिंसानिषेधकोपायसाध्या 'वेदमेव जपेन्नित्य'मित्यादिरूपनियमा ग्राह्या इति तु **मेधातिथि-गोविन्दराजमतम्** । यमानां नित्यत्वे पततीत्येव हेतुः ।। २०४ ।।

(५) **नन्दनः** । व्रतान्तरमाह **यमानिति** । अत्र **व्यासः** 'अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता । अस्तेयमिति पञ्चैते यमाश्चैव व्रतानि च ।। अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् । अप्रमादश्च नियमाः पञ्चैवोपव्रतानि चे'ति ।। उभयेषां यमेष्वादरः कर्तव्य इत्युक्तं **न नित्यं नियमान् बुध इति** । उक्तमर्थमुपपादयत्युत्तरार्धेन । **केवलान्यमहीनान्** । **पतति** दोषयुक्तो भवतीति यावत् ।। २०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **यमान्नित्यकर्माणि सततं सेवेत** अनुतिष्ठेत् ।। २०४ ।।

[ ***रामचन्द्रः** । यमनियममाह **चतुर्भिः** । **प्रसादः** ईश्वरप्रसन्नता (१) ]

[ **व्रतं** स्नातकव्रतादि । **उपवासो** मासोपवासादिः (३) ]

(७) **मणिरामः** । नियमापेक्षया यमानुष्ठानं प्रशस्तमिति ज्ञापनार्थमाह **यमानिति** ।। २०४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **यमानिति** । हिंसादयो वर्जनीया **यमाः** सन्ध्यानुष्ठानादयः कर्तव्यात्मका **नियमाः** तत्र गुरुलाघवज्ञः नियमकोपेनापि सर्वदा यमाननुतिष्ठेत् । न यमत्यागेन नियमान् यस्मात् **केवलान्** कर्तव्यरूपाननुतिष्ठेत् वर्जनीयान् ब्रह्महत्यादीन् अवर्जयन् **पतति** । नियमानुष्ठानेऽप्यनधिकृतो भवति । यथोक्तं **गौतमेन** 'द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम्' इति । एतच्च यमगौरवख्यापनार्थमुच्यते, न नियमनिषेधार्थम्; तेषां शास्त्रेण कर्तव्यतया चोदितत्वात् ।। २०४ ।।

**नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा ।।**

**स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ।।२०५।।**

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वेण श्लोकेन व्रताधिकारो विच्छिन्नः । इदानीं प्रतिषेधप्रकरणमारभ्यते । तत्र भोजनमेव तावदर्थित्वाद्यत्र कुत्रचित्प्राप्तं निषिध्यते । **अश्रोत्रियोऽ**नधीयानस्तेन **तते** प्रारब्धे यज्ञ ऋत्विग्भिर्वाऽ**श्रोत्रियैस्तते** न भुञ्जीत ब्राह्मणः । **ग्रामयाजी**

ग्रामयाजकास्तेन यत्र हूयते, यत्र च स्त्री होमं करोति। छान्दोग्ये हि स्त्रीणां **गृह्यस्मृतिकारै**-रग्निहोत्रहोम उक्तोऽतस्तं पश्यन्प्रतिषेधति। अथवा यत्र यज्ञे स्त्री प्रधानं भर्ता दारिद्र्यादि-दोषैरुपहतः स्त्री च सौदायिकेन धनेन ज्ञातिबलेन च दर्पिता तत्रायं प्रतिषेधः। **क्लीबो** नपुंसकम्॥ २०५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अश्रोत्रियैर्धर्मतोऽनधीतवेदैर्ऋत्विग्भिस्तादृशा यजमानेन **तते** प्रारब्धे **यज्ञे** प्रक्रान्ते दर्शपूर्णमासादौ सोमे वाऽग्नीषोमीयवपाहोमानन्तरमपि यज्ञ-निमित्तभोजने न **भुञ्जीत**। ग्रामयाजी बहूनां क्रोशतामुपदेष्टा। **स्त्रिया हुते** हाविते स्त्रीमात्रयजमानकव्रतादिहोमे निमित्ते। एवं **क्लीबेन हुत** इत्यत्रापि। 'स्त्रिया शूद्रेण वे'ति क्वचित्पाठः॥ २०५॥

(३) **कुल्लूकः**। अनधीतवेदेनोपक्रान्ते यज्ञेऽग्नीषोमीयादूर्ध्वमपि भोजनयोग्य-समये ब्राह्मणो **न भुञ्जीत** तथा बहूनां याजकेनर्त्विजा **स्त्रिया** नपुंसकेन च यत्र यज्ञे हूयते तत्र कदाचिन्न **भुञ्जीत**॥ २०५॥

(४) **राघवानन्दः**। पूर्वश्लोके व्रताधिकारो विच्छिन्नः, इदानीं निषेधोऽधिक्रियते **नाश्रोत्रिय इति** त्रयोदशभिः। **एतैर्हुते** यज्ञादिकृते **न ब्राह्मणो भुञ्जीत**॥ २०५॥

(५) **नन्दनः**। **अश्रोत्रियतते**ऽनधीतवेदबहुले। श्रोत्रियततेऽपि **ग्रामयाज्या**दिहुते। ग्रामयाजी बहूनां याजकः। **क्वचि**त्कर्मण्यभ्युदयश्राद्धादावपि॥ २०५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अश्रोत्रियतते यज्ञे** विस्तृते **ब्राह्मणः क्वचिन्न भुञ्जीत**। **ग्रामयाजिना** पुरोहितेन। स्त्रीप्रधानं **स्त्रिया हुते होमे** तत्र **न भुञ्जीत क्लीबेन हुते** होमे तत्र **न भुञ्जीत**॥ २०५॥

(७) **मणिरामः**। **अश्रोत्रियकृते** अनधीतवेदकृते॥ २०५॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नाश्रोत्रियतत इति**। अनधीतवेदेन प्रारब्धे यज्ञे अग्नीषो-मीयादूर्ध्वमपि **ब्राह्मणो न भुञ्जीत**। अर्थात् (पुनः) [पूर्व]मग्नीषोमीयात् 'दीक्षितस्य कदर्यस्ये'(४।२१०)त्यनेनैव प्रतिषेधसिद्धेः। सूत्रकारेणाग्नीषोमीयावधिकं दीक्षितस्या-भोज्यान्नत्व मुक्तम्। अतो 'दीक्षितस्य कदर्यस्ये'त्ययं प्रतिषेधस्तदवधिक एव। सदा बहूनां याजकेन ऋत्विजा **स्त्रिया** वा नपुंसकेन वा यत्र गृहे वैश्वदेवादिहोमः कृतः **न** तत्र कदाचिदपि **ब्राह्मणो भुञ्जीत**॥ २०५॥

**अश्लीलमेतत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः॥**
**प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत्॥ २०६॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य प्रतिषेधविधेरर्थवादोऽयम्। **अश्लील**मश्लाघ्यं **साधूनां** शिष्टानाम्। **यत्र** ह्येते **हविर्जुह्वति** यज्ञं कुर्वन्ति। **देवानां प्रतीपं** प्रतिकूलम्। **तस्मा**दीदृशे यज्ञे गमनं **परिवर्जयेत्**।॥ २०६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अश्लीलं** पापकरम्। **जुह्वति** हावयन्ति वा। **अमी** अश्रोत्रियाद्याः। **प्रतीपं** विपरीतं, अनिष्टमिति यावत्॥ २०६॥

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वोक्ता बहुयाजकादयो यत्र होमं कुर्वन्ति तत्कर्म शिष्टाना**मश्लीकम**श्रीकं श्रीघ्नं रेफस्य स्थाने लकारः। **देवानां** प्रतिकूलं **तस्मादेतद्धोमं** न कारयेत्॥ २०६॥

(४) **राघवानन्दः**। तद्भक्षणे दोषमाह **अश्लीकं** श्रीघ्नं **साधूनाम**श्लाघ्यमिति वा। **अमी** अश्रोत्रियादयः। **प्रतीपं** प्रतिकूलं, अभक्ष्यमित्यर्थः॥ २०६॥

(५) **नन्दनः**। तत्र कारणमाह **अश्लीकमिति**। **अमी यत्र** यज्ञे कर्मणि वा **जुह्वति** तत्रैतद्भोजनं **साधूनामश्लीक**ममङ्गलं **प्रतीपं** प्रतिकूलम्॥ २०६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अमी** चत्वार अश्रोत्रियादयः **हविर्यत्र जुह्वति** तत्राश्लीलं **देवानां प्रतीपं** विपरीतं भवति॥ २०६॥

(७) **मणिरामः**। **अश्लीकं** रलयारभेदात् अश्रीकमित्यर्थः। **अमी** पूर्वोक्ताः अश्रोत्रियादयः॥ २०६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अश्लीलमिति**। यत्र पूर्वोक्ता होमं कुर्वन्ति **तत्** शिष्टानां तदश्लीकमयुक्तं **देवानां** च प्रतिकूलं। तस्मादेतान् होमं न कारयेत्॥ २०६॥

**मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन।**
**केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः॥ २०७॥**

(१) **मेधातिथिः**। यावन्मदादियोग एतेषां तावदभोज्यता। अन्ये बाहुल्यं मन्यन्ते। बाहुल्येन यः क्षीबो भवति मद्यशौण्डस्तदन्नं न भोक्तव्यम्। एवं क्रोधप्रधानस्य भृशं कोपनस्य च प्रायेण **चातुरस्य** रोगामयाव्यादेः। **केशकीटैरवपन्नं** संसर्गेण दूषितम्। कीटाश्च केचिन्मृता दूषयन्ति न जीवन्तो यथा मक्षिका गृहगोधाश्च। अन्ये तु जीवन्त एव। कीटग्रहणं क्षुद्रजन्तूनां कृमिपतङ्गानामपि प्रदर्शनार्थम्। केशग्रहणं नखरोम्णां दूषिकादीनां मलानां, समाचारात्। **पादेन** बुद्धिपूर्वं कामकारेण स्पृष्टम्। प्रमादतस्तु न दोषः॥ २०७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मत्तो** मद्यादिना **क्रुद्धो** भोक्तारं प्रति। **आतुरो** रोगी। **केशकीटाभ्यामवपन्नं** मिश्रम्॥ २०७॥

(३) **कुल्लूकः**। क्षीबक्रुद्धव्याधितानामन्नं तथा **केशकीटसंसर्ग**दुष्टं पादेन चेच्छातः संस्पृष्टमन्नं **न भुञ्जीत**॥ २०७॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **मत्तेति** ताच्छील्यपरं। **कामत इति**। गुर्वाद्यनुज्ञया भुञ्जानोऽपि मृत्क्षेपेण शोधयित्वा भुञ्जीतेति भावः॥ २०७॥

(५) **नन्दनः**। **मत्तक्रुद्धातुराणा**मन्नमिति शेषः। **कामत** इति विशेषणादकामतः पादस्पृष्टमनुज्ञातं गम्यते॥ २०७॥

(६) **रामचन्द्रः** । मत्तानां क्रुद्धानां रोगिणां एतेषां च पुनः **केशकीटादिभिः** सह **अवपन्नं** पक्वं । **कामतः पदा स्पृष्टं** अन्नं न **भुञ्जीत कदाचन** ।। २०७ ।।

(७) **मणिरामः** । **केशकीटावपन्नम्** केशकीटसंसर्गदुष्टम् ।। २०७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **मत्तक्रुद्धातुराणामिति** । क्लीबक्रुद्धव्याधितान्नं केशादिसकलद्वादश-कृमिसंसर्गदुष्टं पादेन चेच्छातः **स्पृष्टं न** भुंजीत ।। २०७ ।।

**भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया ।।**
**पतत्रिणाऽवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ।। २०८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **भ्रूणहा** ब्रह्मघ्नस्तेनावेक्षितं निपुणतो दृष्टम् । प्रदर्शनं चतदन्येषामपि पातकिनाम् । पातकिभिः अवेक्षितस्य निषेधः । तैः स्पृष्टस्य तु प्रतिषेधः स्नानविधानादेव सिद्धः ।

**उदक्या** रजस्वला तया **स्पृष्टस्य** प्रतिषेधो, नावेक्षितस्य । "ननु च तत्स्पर्शिनोऽपि यावत्स्नानं वक्ष्यति–अतस्तेनैवाशुचित्वे सिद्धे कुतस्तत्स्पृष्टस्य भोजनप्राप्तिः ?" उच्यते । प्रक्षाल्य तदन्नं भोज्यम् । अथवा भ्रूणहग्रहणं प्रदर्शनार्थमित्युक्तं–तत्र कश्चिन्मन्येत दिवा-कीर्तिश्लोकपठितानां प्रदर्शनार्थमिति । तथा चोदक्यावेक्षितस्यापि प्रतिषेधः स्यात् । एतेन **शुना संस्पृष्टं** व्याख्यातम् । अत उक्तं पतितानामेवान्येषां प्रदर्शनार्थम् । तदत्र युक्तः पतित-सूतिकेत्यादीनाम् । उदक्याग्रहणं सूतिकाया निदर्शनार्थम् । **पतत्रिणा** पतत्री पक्षी, स च क्रव्यादो गृध्रवायसादिः समाचारान्न तु हंसादिः ।। २०८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **भ्रूणहापदं** महापातकिपरम् । 'पतितेक्षित'मिति **याज्ञवल्क्ये-नोक्तत्वात्** । **संस्पृष्टं** नापीति चकाराद् दृष्टं च । **पतत्रिणा** अनिन्दितेनापि पक्षिणा **अवलीढं** चञ्च्वा स्पृष्टम् । **संस्पृष्टमेव** चेति अवलीढं चेत्यपीति ।। २०८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । भ्रूणघ्नेत्युपलक्षणाद्गोघ्नेत्यादिपतितावेक्षितं रजस्वलया च **स्पृष्टं** पक्षिणा च काकादिना स्वादितं कुक्कुरेण च स्पृष्टमन्नं न भुञ्जीत ।। २०८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंचैतान्यतुष्टिकरपर्यन्तानि द्विषष्टिप्रकारान्यन्नानि न भुञ्जीतेत्याह **भ्रूणघ्नेत्यादि** । **उदक्यया** रजस्वलया । **पतत्रिणा** काकादिना **अवलीढं** भक्षितम् ।। २०८ ।।

(५) **नन्दनः** । अन्नं न भुञ्जीतेत्यनुवर्तते ।। २०८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **भ्रूणघ्नावेक्षितं दृष्टं पतत्रिणा** अवलीढम् ।। २०८ ।।

(७) **मणिरामः** । भ्रूणघ्नेत्युपलक्षणात् गोघ्नादिपतितावेक्षितं । **उदक्यया** रजस्वलया **पतत्रिणा** काकादिना । **अवलीढं** स्वादितं ।। २०८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **भ्रूणघ्नावेक्षितमिति** । ब्रह्महादिपतितावेक्षितं रजस्वलाद्यस्पृश्य-स्पृष्टं पक्षिणा काकादिना आस्वादितं **शुना स्पृष्टं** न भुञ्जीत ।। २०८ ।।

**गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः ।।**
**गणान्नं गणिकान्नं च विदुषा च जुगुप्सितम् ।। २०९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** : **घुष्टान्नं** यदुद्घुष्य दीयतेऽनामन्त्रिताय कस्मैचिदर्थिने मठसत्त्र-भक्तादिविशेषानुद्देशेन । यद्वाऽन्यस्मै प्रतिश्रुत्यान्यस्मै दीयते । प्रतिपत्तिज्ञाने ह्ययं धातुः पठ्यते । तदभावे बाधितं स्मरन्ति यज्ञविवाहादिष्वनामन्त्रितभोजनम् । अयं च **गणः** संघातस्तस्माद्भ्रातॄणां त्वविभक्तानां न गणव्यपदेशः । "भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते" (९ । २१५) इति वचनादेकश्च धर्मस्तेषामातिथ्यादिक्रियैवेति नवमे दर्शितम्— "ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः" (९ । १०५) इति । तस्य च ग्रहणमवश्यकर्तव्ये-ष्वधिकार इति दर्शयति । साधारणस्यापि अन्यस्यातन्मध्यगतस्य प्रतिषेधः । **गणिका** वेश्या । **जुगुप्सितं** निन्दितम् । **विदुषा** वेदार्थविदा । भक्ष्यमपि त्रिसखल्यादि ।। २०९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **उद्घुष्टान्नं** को भुङ्क्ते इत्युद्घुष्य दत्तम् । **गवा अन्नमुपाघ्रातं** गन्धमुपादाय विमुक्तम् । **गणान्नमनेकेषामन्नमेकत्र** पक्वम् । **गणिका** वेश्या । **विदुषां** तद्दोषज्ञानां **जुगुप्सितं** स्वयमदृष्टदोषमपि ।। २०९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यदन्नं **गवाघ्रातं घुष्टान्नं** को भोक्तेत्युद्घुष्ट्वान्नं सत्त्रादौ यद्दीयते विशेषत इति भूरिदोषतया प्रायश्चित्तगौरवार्थम् । **गणान्नं** शठब्राह्मणसंघान्नम् । **गणिका** वेश्या तस्या अन्नं शास्त्रविदा च **यद्दृष्टमिति** निन्दितम् तच्च न भुञ्जीत ।। २०९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । **घुष्टान्नं** को भोक्ताऽस्तीत्याद्युद्घुष्य यद्दीयते । **गणान्नं** मठ-ब्राह्मणसङ्घातान्नं । **गणिकान्नं** गणिका वेश्या । **विदुषा** अलौकिकादिज्ञेन **जुगुप्सितं** निन्दितम् ।। २०९ ।।

(५) **नन्दनः** । **घुष्टं** बहुभ्यः ख्यापितम् । **विदुषां जुगुप्सितं** निषेधशास्त्राभावेऽपि वर्जनीयम् ।। २०९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । कैश्चिदर्थिने कः को भोक्तेति उद्घुष्य यत् दत्तं **तद्घुष्टान्नं** यज्ञविवाहादौ अनिमन्त्रितभोक्तुरन्नम् ।। २०९ ।।

(७) **मणिरामः** । **घुष्टान्नं** को भोक्तेत्युक्त्वा सत्त्रादौ यदन्नं दीयते तत् **घुष्टान्नं** । **गणान्नं** शठब्राह्मणसंघान्नं । **गणिकान्नं** वेश्यान्नम् ।। २०९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **गवेति** । **गवाघ्रातं** 'को भुङ्क्ते' इति च यदाघुष्य दीयते मठब्राह्मणादिसङ्घान्नं च तथा **वेश्यान्नं** शास्त्रविदा चैतत् कुत्सितमिति यदुक्तं तन्नाश्नीयात् **विशेषत** इति प्रायश्चित्तविशेषार्थम् ।। २०९ ।।

**स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च ।।**
**दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ।। २१० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **गायनो** यो गीतेन जीवति । अन्यस्य त्वपरान्तकादिगानं विहितमेव (याज्ञ. ३ । ११३) । **कदर्यः** कृपणः । **बद्धनिगडयोर्विशेषः**—एको वाङ्मात्रेणावरुद्धः,

अपरो रज्ज्वायसनिगडैर्यन्त्रितः। 'विशदस्य चे'त्यन्ये पठन्ति। कष्टं न विशदमाचक्षते ॥ २१० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **स्तेनो**ऽल्पस्तेयवृत्तिः। **गायनो** गानवृत्तिः। एवं **तक्ष्णः** काष्ठादितक्षणवृत्तेः। **वार्धुषिकस्य** धनवर्धनेन जीवतः। **दीक्षितस्य** अग्नीषोमीयवपाया-गात्प्राक्। **कदर्यस्य** कृपणस्य। **बद्धस्य** रज्ज्वादिना। **निगडस्य** निगडबद्धस्य ॥ २१० ॥

(३) **कुल्लूकः।** चौरगायनजीविनोस्तथा तक्षवृत्तिजीवनस्य वृद्ध्युपजीविनश्चान्नं न भुञ्जीत। तथा यज्ञे **दीक्षितस्य** प्रागग्नीषोमीयात्। **कदर्यस्य** कृपणस्य, **निगडस्येति** तृतीयार्थे षष्ठी। निगडेन बद्धस्य। **गोविन्दराजस्तु** बद्धशब्दस्य बन्धनैर्विनाप्ययोनिगडै-र्निगडितस्य दत्तायोनिगडस्येति व्याख्यातवान् ॥ २१० ॥

(४) **राघवानन्दः।** जात्या **तक्ष्णः।** **वार्धुषिकस्य** वृद्धिमात्रोपजीविनः। यज्ञे **दीक्षितस्य** प्रागग्नीषोमीयात्। **कदर्यस्य** कृपणस्य। 'आत्मनो धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च वर्जयन्नि'त्याद्युक्तलक्षणस्य वा। **बद्धस्य** दण्डाद्यर्थमवरुद्धस्य। **निगडस्य** निगडैर्बद्धस्य शरैः शाततपत्रवत् ॥ २१० ॥

(५) **नन्दनः।** **बद्धस्य** रज्ज्वादिना। **निगडस्य** निगडवतो, निगडितस्येति यावत्। निगडेनेति साधुः पाठः ॥ २१० ॥

(६) **रामचन्द्रः।** **दीक्षितस्य** असंस्कृताग्नीषोमीयपशोः। **कदर्यस्य** **बद्धस्य** वास-मात्रेण निरुद्धस्य निगडादिना ॥ २१० ॥

(७) **मणिरामः।** **तक्ष्णः** काष्ठतक्षकस्य **वार्धुषिकस्य** वृद्धिजीविनः। **दीक्षितस्य** प्रागग्नीषोमीयात् नतु सदा। **कदर्यस्य** कृपणस्या**निगडेन** **बद्धस्य** ॥ २१० ॥

(८) **गोविन्दराजः।** **स्तेनगायनयोरिति।** चोर-गेयजीवि-तक्षक-वृद्ध्युपजीव्यन्नं न भुञ्जीत। यज्ञार्थे **दीक्षितस्य** प्रागग्नीषोमीयात् **बद्धस्य,** बन्धनेन विनाप्ययोनिगडैर्निगडि-तस्य दत्तायोनिगडस्य अबन्धनेऽपि च ॥ २१० ॥

**अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ॥**
**शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥ २११ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** **पुंश्चली** यस्य कस्यचिन्मैथुनसम्बन्धेन घटते। "ननु च गणिकान्नं प्रतिषिद्धमेव"। नैतदेवम्; अन्या गणिकाऽन्या पुंश्चली। गणिका वेश्यावेशेन जीवति। पुंश्चली त्विन्द्रियचपला। **दाम्भिको** बैडालव्रतकादिः सोपधो धर्मचरणः। प्रायश्चित्तविशेषार्थं **शूद्रोच्छिष्टं** प्रतिषिध्यते; सर्वस्यैवोच्छिष्टभोजनप्रतिषेधात्। अन्ये तु **शूद्रोच्छिष्टं** स्थालीस्थं भोज्यान्नं शूद्रभुक्तशिष्टमुच्छिष्टमुच्यत इत्याहुः। पाठान्तरं तु "उच्छिष्टमगुरोस्तथेति"। उच्छिष्टमुच्यते यत्परस्य स्पर्शनादशुद्धं भुक्तोज्झितं च। आत्मीये ह्यभुक्तोऽज्झित एकग्रासाशनमेव स्यात्। न चैष शिष्टानां समाचारो यत्सकृदन्नं दत्तं भुक्त्वा पुनराचम्य पात्रान्तरे गृहीतं भुज्यते।

तथा नाद्यादन्नम्। 'तथा'अन्तरेऽभ्युत्थानादिक्रियान्तरस्य प्रतिषेधः। अत आतृप्तेः **प्रागाचमनात् पश्चात्स्पर्शे न दोषः।**

सहभोजनं तु सत्यपि परस्य स्पर्शे पदार्थान्तरत्वान्नोच्छिष्टभोजनम्। अत्र पित्रा पुत्रादिभिः शिष्टं सह भुज्यते। तथा **चापस्तम्बादयो** देशग्रहणात्प्रसङ्गेन "अनुपनीतेन सह भोजनं" निन्दन्ति, नोपनीतेन। अस्मिंस्तु पक्षे विजातीयैः सह भोजनप्रतिषेधः। व्यवधानान्तरमाश्रयणीयम्। भुक्तोज्झितं तु धात्वर्थयोगादुच्छिष्टमन्यदीयमपि ।। २११ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अभिशस्तस्य** दोषतया शङ्कितस्य। **षण्ढस्य** क्लीबस्य **पुंश्चल्याः** स्वपतिव्यभिचारिण्याः। **शुक्तमनम्लमम्लतां** कालवशाद्गतम्। **पर्युषितं** स्वाभाविकरसगन्धादिविपरिवर्तनकालपर्यन्तं स्थितम्। एवं च शुक्तस्य पृथक्ग्रहणं दोषातिशयप्रदर्शनार्थं निगडस्येतिवत्। तथा **शूद्रस्य** यदन्नं तदभक्ष्यम्। उच्छिष्टं च सर्वेषाम् ।। २११ ।।

(३) **कुल्लूकः।** महापातकित्वेन संजातलोकविक्रोशस्य नपुंसकस्य **पुंश्चल्या** व्यभिचारिण्या अगणिकाया अपि **दांभिकस्य** छद्मना धर्मचारिणो बैडालव्रतिकादेरन्नं न भुञ्जीत। **शुक्तं** गतस्वभावतो मधुरं दध्यादिसंपर्कवशेनोदकादीनां चाम्लादिभावं गतम्। **पर्युषितं** रात्र्यन्तरितं **शूद्रस्यान्नं न भुञ्जीतेति** संबन्धः। **उच्छिष्टं** च भुक्तावशिष्टान्नमविशेषात्कस्यापि न भुञ्जीत। गुरूच्छिष्टं च विहितत्वाद्भोज्यम्। **गोविन्दराजस्तु** शूद्रस्योच्छिष्टं तद्भुक्तावशिष्टं च स्थालीस्थमपि न भुञ्जीतेत्याह ।। २११ ।।

(४) **राघवानन्दः।** महापातकित्वेना**भिशस्तस्य** संजातलोकविक्रोशस्य। **षण्ढस्य** नपुंसकस्य। **पुंश्चल्याः** वेश्याभिन्नव्यभिचारिण्याः। **शुक्तस्य** स्वाभाविकमधुरत्वेऽपि कालवशादुदकादिरसवशाद्वा यदाम्लीभवति तदपि वर्ज्यं। **पर्युषितं** रात्र्यन्तरितं प्रतिप्रसवशास्त्रबोधिताद्यतिरिक्तं। **शूद्रोच्छिष्टं** शूद्रपक्वान्नाशने तु दोषोक्तेः शूद्रभुक्तावशिष्टः स्थालीस्थमपि। ब्रह्मचर्यादिप्रकरणादौ यच्छुक्तादिनिषेधः प्रायश्चित्तगौरवार्थः ।। २११ ।।

(५) **नन्दनः।** कालातिक्रमेण रसान्तरं प्राप्तं **शुक्तम्। पर्युषित**मेकाहान्तरितम्। **शूद्रस्योच्छिष्टं** शूद्रेण भुक्तान्नं स्थाल्यादिस्थम् ।। २११ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** योऽ**भिशस्तस्तस्य** कलङ्कवतः **पुंश्चली** परपुरुषरता। स्वयमेव अथवा कालपरिपाकेन अम्लं भवति तत् **शुक्तं** रात्र्यन्तरितं **पर्युषितम्** ।। २११ ।।

(७) **मणिरामः। अभिशस्तस्य** महापातकित्वेन लोकविक्रोशस्य। **पुंश्चल्याः** व्यभिचारिण्याः। **दाम्भिकस्य** छलेन धर्मचारिणः बैडालव्रतिकादेः। **शुक्तं** द्रव्यांतरसंयोगेनाम्लीभूतां। **पर्युषितं** रात्र्यंतरितं ।। २११ ।।

(८) **गोविन्दराजः। अभिशस्तस्येति।** महापातकित्वेन उत्पन्नाभिशापस्य, अनिश्चितपापस्यापि नपुंसकस्य **पुंश्चल्या** व्यभिचारिण्याः अगणिकाया अपि, **दाम्भिकस्य** व्याजधर्मचारिणः अन्नं न भुञ्जीत। तथा **शुक्तं** यत्प्रातः स्वरसं कालान्तरेण उदकादि-

संसर्गकालान्तराभ्यां चाम्लीभवति, पर्युषितं च रात्र्यन्तरितं शूद्रस्य चोच्छिष्टं नाश्नीयात्। शुक्तपर्युषितयोः अभक्षणं पञ्चमे वक्ष्यति। इह तु स्नातकव्रतत्वार्थमभिधानम्।। २११।।

**चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः।।**
**उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम्।।२१२।।**

(१) **मेधातिथिः।** स्मृत्यन्तरे विशेषः श्रूयते "शल्या नर्तकजीविना" मृगयुर्मृगव्याधः। आखेटकार्थं मांसविक्रयार्थं वा यो मृगान्हन्ति। क्रूर अनृजुप्रकृतिः दुष्प्रसादः। **उच्छिष्टभोजी** निषिद्धोच्छिष्टभोजी। **उग्रो** जातिविशेषः। राजेत्येतस्य वेदे प्रयोगो दृश्यते। "उग्रो मध्यमशीरि वेति"। (ऋग्वेद. १०। ९७। १२)। न च तस्यान्यः प्रतिषेधोऽस्ति दोषप्रदर्शनप्रकारेण च न श्रूयते। "राजान्नं तेज आदत्ते" (४।११८) इत्यर्थवादान्न प्रतिषेधः। **सूतिकान्नं** सूतिकामुद्दिश्य यत्कृतं तत्कुलीनैरपि तदभोज्यम्। तदनाद्यमनिर्दशं दशाहानि यावत्। तेन यद्यपि क्षत्रियादीनां दशाहादूर्ध्वमाशौचं तथापि दशाहानि न भोज्यम्। पाठान्तरं 'सूतकान्न'मिति। सूतकशब्देन च तद्वन्तः पुरुषा लक्ष्यन्ते। येषां कुले सूतकं ते दशाहं न भोज्यान्ना इति। यस्मिन्पक्षे सर्वेषां दशाहं सूतकाशौचं तत्रायं प्रतिषेधः। यदा तु मातापित्रोः सूतकं मातुर्वेति पक्षस्तदा यावदाशौचं न भोज्यम्। **अनिर्दशग्रहणमाशौचनिवृत्त्युपलक्षणार्थम्**। तेन क्षत्रियादीनां यस्य यावदाशौचकालः स तावत्कालमभोज्यान्नः। "सूतिकान्नमनिर्दशमिति" पठितव्ये वृत्तानुरोधात्पर्याचान्तपदेन व्यवधानम्। अन्यैस्तु स्वतन्त्रमनिर्दशग्रहणं व्याख्यातम्। सूतकशब्देन आशौचकालोऽनुद्योत्यते। **अनिर्दशं** गवादीनां पयः। **पर्याचान्तं** शौचाचमनव्यपेतमर्धभुक्ते केनचित्कारणेन यत्राचामति तदा पुनर्भुक्तोज्झितं नाशितव्यम्।। २१२।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **चिकित्सकस्य** भिषग्वृत्तेः। **मृगयोर्मृगबन्धजीविनः।** **क्रूरस्य** हिंसारुचेः। **उच्छिष्टभोजिनः** उच्छिष्टभोजनशीलस्य। **उग्रः** क्षत्रियात् शूद्रायां जातः। **सूतिकान्नं** सूतिकाभोजनार्थं पक्वमन्नम्। **पर्याचान्तं** तत्पङ्क्तिभोजिना यत्राचमनं कृतम्। **अनिर्दशं सूतकिना** सूतकमध्ये **दत्तम्**।। २१२।।

(३) **कुल्लूकः।** चिकित्साजीविनः। **मृगयोर्मांसविक्रयार्थं** मृगादिपशुहन्तुः। **क्रूरस्यानृजुप्रकृतेः।** निषिद्धोच्छिष्टभोक्तुरन्नं न भुञ्जीत। **उग्रो** दारुणकर्मा तस्यान्नम्। "**गोविन्दराजो मञ्जर्यामुग्रं** राजानमुक्तवान्। **मनुवृत्तौ** च शूद्रायां क्षत्रियोत्पन्नमभ्यधात्।। भेदोक्तेर्याज्ञवल्कीये तो(तू)ग्रो राजेति वाऽवदत्। आश्चर्यमिदमेतस्य स्वकीयहृदि भूषणम्।।" **सूतिकान्नं** सूतिकामुद्दिश्य यत् क्रियते तदन्नं तत्कुलजैरपि न भोक्तव्यम्। एकपङ्क्तिस्थानन्यानवमन्य यत्रान्ने भुज्यमाने केनचिदाचमनं क्रियते **तत्पर्याचान्तम्। अनिर्दशं** सूतिकान्नं वक्ष्यमाणत्वान्न भुञ्जीत।। २१२।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच **चिकित्सकस्य** भिषजः। **मृगयोर्व्याधस्य** जातितः कर्मतो वा। **उच्छिष्टभोजिनः** निषिद्धोच्छिष्टभोजिनो न तु गुर्वाद्युच्छिष्टभोजिनः ताच्छील्यार्थो वा। **उग्रान्नं** उग्रो जातिविशेषो दारुणकर्मी वा। **सूतिकान्नं** सूतिकामुद्दिश्य

यत्क्रियते तदन्नं तत्कुलजैरपि न भोक्तव्यम्। एकपङ्क्तिस्थानादलम्बिनामन्यस्मिन् भुज्यमाने तं परित्यज्य केनाप्याचमनं क्रियते **तत्पर्याचान्तम्। अनिर्दशं** सूतकाद्याशौचान्तर्गतम्॥ २१२॥

(५) **नन्दनः। उग्रो** वैश्येन शूद्रायां जातः। **पर्याचान्तं** प्रतिदानपरम्परया प्राप्तवारम्। **अनिर्दशं सूतिकान्नमित्यन्वयः**॥ २१२॥

(६) **रामचन्द्रः। क्रूरस्य** हिंसारुचेः। **उग्रान्नं** क्षत्रियात् शूद्रायामुत्पन्न उग्रसंज्ञस्तस्यान्नं। यद्वा वाक्कायव्यापारेणोद्वेजक उग्रः। पङ्क्तिभोजने यत्र एकेनाचमनं कृतं **तत्पर्याचान्तं अनिर्दशं** अनतिक्रान्तदशाहं अनिर्गताशौचम्॥ २१२॥

(७) **मणिरामः। मृगयोः** मांसविक्रयार्थं मृगादिपशुहंतुः **उग्रः** दारुणकर्मकर्ता, **सूतिकान्नं**-सूतिकानिमित्तं कृतं। **पर्याचांतं** एकपंक्त्योपविष्टा यत्र भोजनं कुर्वंति तत्रैकेनाचमनं चेत् क्रियते तत्पर्याचांतं तदा अन्यैर्न भोक्तव्यमित्यर्थः। **अनिर्दशं** सूतिकान्नम्॥२१२॥

(८) **गोविन्दराजः। चिकित्सकस्येति**। वैद्यस्य चिकित्साजीविनः। तथा लुब्धकानार्जवप्रकृत्युच्छिष्टादीनां **उग्रस्य** क्षत्रियेण शूद्रायामुत्पन्नस्य सूतिकोद्देशेन अनाशौचिभिरपि यत्कृतं कृतान्तराचमनं च तथा अनिर्गतदशाहिकं **सूतिकान्नं** प्रेतान्नस्य वक्ष्यमाणत्वात् न भुञ्जीत। अन्ये तु उग्रं राजानमाहुः। तदसत्; **याज्ञवल्क्येनो**भयपाठात्॥ २१२॥

**अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः॥**
**द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम्॥ २१३॥**

(१) **मेधातिथिः।** अर्चार्हस्य यदवज्ञया दीयते तद**नर्चितम्**, न तु सुहृदादेः। **वृथामांसं** देवाद्यर्चनशिष्टं यन्न भवत्यात्मार्थं यत्साधितम्। **अवीरा** स्त्री यस्या न भर्ता नापि पुत्रः। **द्विषच्छत्रुः। नगरी** नगरस्वाम्यराजाऽपि। अवक्षुतमुपरि यस्मिन्क्षवथुः कृतः॥ २१३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अनर्चितं** संमानेनादत्तम्। **वृथामांसं** पशुबन्धव्यतिरेकेण मांसम्। **अवीरायाः** पुत्रपतिहीनायाः। **द्विषतः** शत्रोः। **नगरी** नगरवान् नगराधिपतिस्तदन्नम्। **पतितः** कृतपापोऽकृतप्रायश्चित्तः। **अवक्षुतं** यदुपरि क्षुतं कृतम्॥ २१३॥

(३) **कुल्लूकः।** अर्चार्हस्य यदवज्ञया दीयते। **वृथामांसं** देवतादिमुद्दिश्य यन्न कृतं। **अवीरायाः** पतिपुत्ररहितायाः। शत्रुनगरपतितानां च उपरिकृतक्षुतं चान्नं न भुञ्जीत॥ २१३॥

(४) **राघवानन्दः।** योग्येष्ववज्ञया दत्त**मनर्चितं। वृथामांसं** देवपित्राद्युद्देशरहितम्। **अवीरायाः** पतिपुत्ररहितायाः **योषितो** रूपयौवनशालिन्याः, अन्नमिति शेषः। **नगर्यन्नं** नगरस्थस्यान्नं। कर्मतो जातितो वा **पतितस्यान्नं। अवक्षुतं** यदुपरि क्षुतं कृतम्॥ २१३॥

(५) **नन्दनः**। **अनर्चितमवज्ञया** दत्तम्। **वृथामांसं** आत्मार्थं संस्कृतं मांसम्। **अवीरायाः** पतिपुत्रहीनायाः **नगर्यन्नं** देशसंबन्धेनायमन्नस्य निषेधः। यस्योपरि क्षुतं तदवक्षुतं ॥ २१३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अहरहर्यदवज्ञया दत्तं तदनर्चितम्, अविहितफलसाधनं मांसं तद्वृथामांसम्। च पुनः **अवीराया योषितः** अवीरा पतिपुत्ररहिता। **द्विषतः** अन्नं। नगराधिपतेस्तस्य राज्ञोऽन्नं। **पतितान्नं** च महापातकिनोऽन्नम्। **अवक्षुतं** यस्याज्ञातस्य उपरि क्षुतं तदवक्षुतम् ॥ २१३ ॥

(७) **मणिरामः**। **अनर्चितं** अर्चायोग्यस्य तदवज्ञया दीयते तदनर्चितं। **वृथामांसं** देवपितृमुद्दिश्येन यन्न कृतं **अवीरायाः** पतिपुत्ररहितायाः। **नगर्यन्नं** सकलनगरसंबंध्यन्नं **अवक्षुतं** उपरिकृतक्षुतं ॥ २१३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अनर्चितमिति**। अर्चार्हस्य यदकृतार्चं दीयते अकृतदेवताद्यर्चनं यन्मांसमतिथ्यादेर्दीयते कल्पयितुं 'देवान् पितॄंश्चार्चयित्वे'त्येवमादेर्वक्ष्यमाणत्वात् न भुञ्जीत ॥ २१३ ॥

**पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयकस्य च ॥**
**शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ २१४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पिशुनो** यो विश्रब्धमर्थं कथितं भिनत्ति परच्छिद्रवादी वा परोक्षम्। **अनृती** कृतकौटसाक्ष्यः। **क्रतुविक्रयकः** क्रतुर्यज्ञस्तं कृत्वा विक्रीणीते क्रतुफलं मदीयं तवास्त्विति मूल्येन ददाति। यद्यपि परमार्थतः क्रतोर्विक्रयो नास्ति तथापि यत्त्वेवंविधा यात्राऽन्यविप्रलम्भेन वा प्रवृत्तिस्तस्य प्रतिषेधः। **शैलूषो** नटः। भार्यापण्य इत्यपरे। **तुन्नवायः** सौचिकः। **कृतघ्नः** कृतमुपकारं यो नाशयति प्रत्युतोपकर्तुरपकारे वर्तते, न च शक्तः सन्प्रत्युपकारेऽपि ॥ २१४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पिशुनः** परगुणासहनः। **क्रतुविक्रयिकः** परगतं फलमुद्दिश्य क्रतुकारी। **शैलूषो** नटवृत्तिः। **तुन्नवायः** सूचीसीवनवृत्तिः ॥ २१४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **पिशुनः** परोक्षे परापवादभाषणपरः **अनृतीत्यतिशयेनानृतवादी** कूटसाक्ष्यादिः। **क्रतुविक्रयिकः** मदीययागस्य फलं तव भवत्वित्यभिधाय यो धनं गृह्णाति। **शैलूषो** नटः। **तुन्नवायः** सौचिकः। **कृतघ्नो** यः कृतोपकारस्यापकारे प्रवर्तते तस्यान्नं न भुञ्जीत ॥ २१४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। विरुद्धमर्थं कथयतीति **पिशुनः**। **अनृती** कूटसाक्षी। मत्क्रतुफलं तवैवेति वदन् धनं गृह्णाति यः स **क्रतुविक्रयी** तस्य। **शैलूषो** नटः भार्यापण्यः। सौचिकस्तन्तुवायः कर्मतो ज्ञातितो वा। कृतोपकारिणि **कृतघ्नः** ॥ २१४ ॥

(५) **नन्दनः**। परेभ्यो भार्यां दत्त्वा यो जीवति स **शैलूषः**। नट इत्येके ॥ २१४ ॥

(६) **रामचन्द्रः। पिशुनः** सूचकः । **अनृती** परच्छिद्रवादी । च पुनः **ऋतुविक्रयी** याग-विक्रयी यागफलविक्रयी । **शैलूषो** नटवृत्तिः । **तुन्नवायः** सौचिकः **च** पुनः **कृतघ्नस्य अन्नमेव** ।। २१४ ।।

(७) **मणिरामः। पिशुनः** परोक्षे परापवादकर्ता **अनृतिनः** कूटसाक्ष्यादिः । **ऋतुविक्रयिणः** मदीययागस्य फलं तव भवत्वित्यभिधाय यो धनं गृह्णाति तस्य । **शैलूषो** नटः, **तंतुवायः** सौचिकः, सीवनकर्तेति यावत् । **कृतघ्नः** कृतोपकारस्य अपकारकर्ता ।। २१४ ।।

(८) **गोविन्दराजः। पिशुनानृतिनोश्चेति।** भषकासत्यवादिऋतुपुण्यविक्रयिनट-सौचिकानां उपकृतापकारिणामन्नं नाश्नीयात् ।। २१४ ।।

**कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतरकस्य च ।।**
**सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ।। २१५ ।।**

(१) **मेधातिथिः। कर्मारोऽ**यस्कारः । **निषादो** दशमे वक्ष्यते । **रङ्गावतरको** नटगायन-केभ्योऽन्योम ल्लादिः । अथवा प्रतिरङ्गमुपतिष्ठते कुतूहली । **वेणः** वादित्रजीवितः । **शस्त्रविक्रयी** कृतस्य खड्गादेरकृतस्य वाऽयसो विक्रेता ।। २१५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। कर्मारो** लोहकारवृत्तिः । **निषादो** जालवृत्तिः । **रङ्गावतारको** वाद्यादिप्रदर्शनवृत्तिः । **वैणो** वेणुपिटकादिकरणवृत्तिः । **शस्त्रं** खड्गादि ।। २१५ ।।

(३) **कुल्लूकः। कर्मारस्य** लोहकारस्य **निषादस्य** दशमाध्यायोक्तस्य । नटगायन-व्यतिरिक्तस्य **रङ्गावतरण**जीविनः **सुवर्ण**कारस्य **वेणो**र्भेदनेन यो जीवति बुरुड इति विश्वरूपः । **शस्त्रं** लोहः तद्विक्रयिणश्चान्नं न भुञ्जीत ।। २१५ ।।

(४) **राघवानन्दः। कर्मारोऽ**यस्कारः । **रङ्गावतरको** दशमे वक्ष्यमाणः । **वेणः** वाद्योपजीवी । बुरुडः लोहादिनिर्मित**शस्त्रविक्रयी** ।। २१५ ।।

(५) **नन्दनः। कर्मारोऽ**यस्कारः । वैदेहकादम्बष्ठायामुत्पन्नो **वेणः** ।। २१६ ।।

(६) **रामचन्द्रः। कर्मारस्य** लोहकारस्य । **च** पुनः **रङ्गावतरकस्य** वाद्योपजीविनः । **वैण्यस्य** वेणुच्छेदनजीविनः वेणुवादनजीविनो वा ।। २१५ ।।

(७) **मणिरामः। कर्मारः** लोहकारः । **निषादः। रंगावतरकस्य** मल्ल्यादेः । **वंशविक्रयिणः**। बुरुड इति **विश्वकोशे**। तथा **शस्त्रविक्रयिणः** ।। २१५ ।।

(८) **गोविन्दराजः। कर्मारस्येति। कर्मारस्य** निषादवेणयोश्च दशमाध्यायवक्ष्य-माणयोः नटगायनव्यतिरिक्तस्यापि च **रङ्गावतरणजीविनः** सुवर्णकार**शस्त्रविक्रयिणो**श्चान्नं नाश्नीयात् ।। २१५ ।।

**श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च ।।**
**रजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ।। २१६ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** आखेटकाद्यर्थं ये शुनो बिभ्रति ते **श्ववन्तः। शौण्डिका** मद्य-व्यसनिनस्तत्पण्यजीविनो वा । **चैलं** वस्त्रं तन्निर्णेनक्ति प्रक्षालयति । कारुकनामधेयमेतत् ।

**रजको** वाससां नीलादिरागकारकः। **नृशंसो** नॄन्मनुष्याञ्छंसति स्तौति यो लोके बन्दीति प्रसिद्धः। अथवा निर्दयो **नृशंसः**। **उपपतिर्जारो** भार्याया गृहे जारो यस्य वर्तते ॥ २१६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **श्ववतां** श्वपोषकाणाम्। **शौण्डिकानां** मद्यसंधायकानाम्। **चैलनिर्णेजकस्य** वस्त्रक्षालनवृत्तेः। **रञ्जकस्य** वस्त्ररञ्जनकर्तुः। **नृशंसस्य** वृत्त्यर्थं नरस्तोत्रकर्तुः। **यस्य गृहे** भार्याया **उपपतिः** ॥ २१६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। आखेटकाद्यर्थं शुनः पोषकाणां। मद्यविक्रयिणां वस्त्रधावकस्य कुसुम्भादिना वस्त्ररागकृतः निर्दयस्य यस्य **चोपपतिर्गृहे** जारश्च यस्याज्ञानतो गृहे स्थितस्तस्य गेहे नाद्यात् ॥ २१६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **श्ववतां** शुनः पोषकाणां। **चैलनिर्णेजकस्य** वृत्त्यर्थं मलिनवस्त्रक्षालकस्य। **रञ्जकस्य** वस्त्ररागकृतः। **नृशंसस्य** निर्दयस्य **यस्य चोपपतिर्गृहे** तस्याप्यन्नं नाद्यात्, सततं दुष्टभार्यत्वात् ॥ २१६ ॥

(५) **नन्दनः**। **श्ववतां** श्वपोषकारिणाम्। **शौण्डिकानां** सुराविक्रयिणाम्। **चैलनिर्णेजकस्य** वस्त्रशोधकस्य। **रञ्जकस्य** वस्त्रादीनां नीलादिरागकारस्य। **नृशंसस्य** निर्दयस्य। **यस्य गृह उपपतिर्जारो** वर्तते तस्य चान्नं न भुञ्जीतेति ॥ २१६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **श्वपचां** श्वपोषकाणां। श्ववतां वेति पाठः, श्ववतां सारमेयवतां मृगयार्थम्। **शौण्डिकानां** मद्यकर्तॄणां। **च** पुनः **चैलनिर्णेजकस्य** वस्त्रप्रक्षालकस्य। **रञ्जकस्य** वस्त्रादीनां नीलादिरङ्गकारस्य। **नृशंसस्य** वृत्त्यर्थं नरस्तुतिकर्तुः। **च** पुनः **यस्य गृहे उपपतिर्जारः** ॥ २१६ ॥

(७) **मणिरामः**। **श्ववतां** मृगयार्थं स्वपोषकाणां। **शौंडिकः** मद्यविक्रयी। **निर्णेजकः** वस्त्रधावकः। **रजकः** वस्त्ररंजकः। **नृशंसः** निर्दयः। **यस्य चोपपतिर्गृहे**। जारवत्या भर्तुः ॥ २१६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। श्वक्रीडिमद्यविक्रयिवस्त्रधावनपटरागकृन्निष्ठुराणां जायाजारश्च यस्याविज्ञातो गृहेऽस्ति तेषामन्नं न भक्षयेत् ॥ २१६ ॥

**मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥**
**अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥ २१७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वोऽविदितभार्याजारः। अयं तु विदित्वा क्षमते न भार्याया निग्रहं करोति। नापि तस्य अविदुषोऽन्यत्र गृहाज्जारिणो भोज्यान्नं नैव। **स्त्रीजिताः** येषां भार्यैव गृहे कर्त्री हर्त्री च स्वयं परिजनस्य च नेशस्तेन सर्वत्र तद्वशवर्तिनः। **प्रेतान्नं** मरणाशौचे तत्कुलीना अभोज्यान्नाः। **अनिर्दश**ग्रहणं कालोपलक्षणार्थम्। यदाऽनिर्दशग्रहणं पूर्वत्र स्वतन्त्रमाशौचसम्बन्धिनामविशेषेणान्नं प्रतिषेधति तदिह प्रेतान्नकृतं यस्याप्याशौचं नास्ति सुहृद्बान्धवादेः। कारुण्याच्चतुर्थीश्राद्धादिप्रवृत्तस्य यदन्नं तन्न भोज्यम्। "दशाहिकं नावमिकं चतुर्थीश्राद्धमष्टमी" इत्यादि **रामायणे** वर्णितमन्यैरपि गृह्यकारैः। **अतुष्टिकरं** यस्मिन्भुज्यमाने चित्ततुष्टिर्न भवेत् ॥ २१७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। मृष्यन्ति** न तान् भज्यन्तीत्यर्थः। **प्रेतान्नं** शवान्नम- **निर्दशमनिर्गताशौचम्। अतुष्टिकरं** सविचिकित्सया ।। २१७ ।।

(३) **कुल्लूकः।** गृह इत्यनुषज्यते, गेहे ज्ञातं भार्याजारं ये सहन्ते तेषामन्नं न भुञ्जीत। तेन गृहान्निःसारितायां जारसहने नैष दोषः। तथा सर्वकर्मसु स्त्रीपरतन्त्राणां, अनिर्गताशौचं च **सूतकान्नं, अतुष्टिकरमेव** च न भुञ्जीत ।। २१७ ।।

(४) **राघवानन्दः। मृष्यन्ति** ज्ञात्वोपपतिं तस्कर इति कृत्वा अथवा गृहसत्त्वासत्त्व- भेदेन व्यवस्था। **अनिर्दशं** मृतकान्नं दशाहाद्यन्तरे दत्तं। **अतुष्टिकरं** तथैव प्रयच्छति यथा तोषो न जायते तस्यान्नम् ।। २१७ ।।

(५) **नन्दनः।** ये स्वभार्यायां वर्तमानमुपपतिं **मृष्यन्ति** सहन्ते तेषां चान्नम्। **सर्वशः** सर्वावस्थायाम्। **प्रेतान्नं** शावाशौचवतामन्नम्। **अतुष्टिकरम्** अमनःसन्तोषकरम् ।। २१७ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** ये **उपपतिं** जारं **मृष्यन्ति** न त्यजन्ति विदित्वा दमतः। **अनिर्दशं** अनिर्गताशौचं। **च** पुनः **प्रेतान्नं** एकादशाहस्यान्नम्। **च** पुनः **अतुष्टिकरमेव** ।। २१७ ।।

(७) **मणिरामः। मृष्यन्ति** सहन्ते **अनिर्दशं च प्रेतान्नम्** अनिर्गताशौचं सूतकान्नम् ।। २१७ ।।

(८) **गोविन्दराजः। मृष्यन्तीति।** भार्याजारं ये सहन्ते तदन्नमभोज्यमेवं (च) गृहाद्गतायां जारिण्यामुपेक्षितायामपि प्रतिषेधः। सर्वकर्मसु स्त्र्यायत्तानां अनिर्गताशौचं च मृतकान्नमप्रीतिकरं च न भुंजीत ।। २१७ ।।

**राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।।**
**आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ।। २१८ ।।**

(१) **मेधातिथिः।** अथेदानीमतिक्रमफलं दर्शयति। **राजान्न**भोजिनस्तेजोनाशः। एवं सर्वत्र द्रष्टव्यम्। सुवर्णकारादयः शब्दाः शिल्पिविशेषजीविनां वाचकाः। ये सुवर्णं जीविकार्थं घटयन्ति **सुवर्णकारा** उच्यन्ते। एवं रजकादिष्वपि द्रष्टव्यम्। चर्मावकृन्तति छिन्दति **चर्मावकर्तिनः।** तेन कर्मणा ये जीवन्ति तेषामेषा रूढिः। इह येषां पूर्वत्र प्रतिषेधो नास्ति केवलं दोषः श्रूयते तेषां तत एव प्रतिषेधोऽनुमेयः ।।२१८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** इदानीं शूद्रादीनां प्रक्रान्तानामप्रक्रान्तस्य च राज्ञोऽन्नाशने दृष्टं फलमाह **राजान्नमिति। तेज**स्तपोबलं **ब्रह्मवर्चसं** वेदबलम्। **चर्मावकर्तिन**श्चर्मकार- वृत्तेः ।। २१८ ।।

(३) **कुल्लूकः। राजान्नं तेजो** नाशयति, इत एव दोषदर्शनात्तदन्नभक्षणनिषेधः कल्प्यते। एवमुत्तरत्रापि। पूर्वमनिषिद्धस्य दोषदर्शनादेव निषेधकल्पनम्। 'नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्न'(४।२२३) मिति निषेधिष्यति तदतिक्रमणफलकथनमिदम्। **शूद्रस्य** पक्वान्न- मध्ययनादिनिमित्तं **तेजो** नाशयति। **सुवर्णकारस्यान्नमायुः। चर्मकारान्नं** ख्यातिं नाशयति ।। २१८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** एतेषु फलवादेन निषेधोन्मुखं व्यावर्तयति **राजेति** चतुर्भिः। अत्र येषां राजादीनामन्नभक्षणनिषेधो नोक्तस्तेषामपि फलवादेन निषेधः कल्पनीयः। **तेजः-**प्रागल्भ्यं सौन्दर्यं वा। **ब्रह्मवर्चसं** वृत्तस्वाध्यायजं तेजः। **चर्मावकर्तिनः** चर्मकारस्य यश आदत्त इत्यनुषङ्गः ॥ २१८ ॥

(५) **नन्दनः।** अत्रोक्तोपादानं निन्दातिशयार्थम्। अनुक्तोपादानं वर्जनार्थम् ॥ २१८ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** एतेषां अन्नभक्षणे दोषमाह। **राजान्नं** तेजः तपोबलं **आदत्ते** ॥ २१८ ॥

(७) **मणिरामः।** येषामन्न भोजने यत्फलं तदाह **राजान्नमित्या**दिचतुर्भिः ॥ २१८ ॥

(८) **गोविन्दराजः। राजान्नमिति। राजान्नं तेजो** नाशयति अत एव च राजान्नप्रतिषेधो बोद्धव्यः। 'नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं' (४।२२३) अधिकुलमिन्नं वेति शूद्रान्नप्रतिषेधं वक्ष्यति, अतस्तदन्नं अध्ययनादिनिमित्तं तेजोऽपहन्ति **सुवर्णका**रचर्मछेद्यन्ने आयुःख्याती हरत इति व्यतिक्रमफलकथनम् ॥ २१८ ॥

**कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥**
**गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥ २१९ ॥**

(१) **मेधातिथिः। कारुकाः** सूपकारादयः नातिगर्हितकर्माणः। एष एतेषां शिल्पिभ्यो भेदः। प्रजाया विघातोऽनुत्पत्तिः ॥ २१९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। कारुकः** सूपकारादिवृत्तिः। **बलं** देहबलं। **लोकेभ्यः** स्वर्गात्**परिकृन्तति** छिनत्ति, ततः पातयतीत्यर्थः ॥ २१९ ॥

(३) **कुल्लूकः। कारुकस्य** सूपकारादेरन्नं **प्रजामपत्यं निहन्ति।** चर्मकारादेः कारुकत्वेऽपि गोबलीवर्दन्यायेन पृथङ्निर्देशः। **निर्णेजकस्यान्नं** बलं हन्ति। गणगणिकयोरन्नं च कर्मान्तरार्जितेभ्यः स्वर्गादि**लोकेभ्य** आच्छिनत्ति ॥ २१९ ॥

(४) **राघवानन्दः। कारुकः** शिल्पी। **निर्णेजको** वस्त्रधावकः। **लोकेभ्य**स्तज्जन्मनि तद्भक्षणादूर्ध्वं पुण्यसाध्यस्वर्गादिभ्यः तत्फलं न भवतीत्यर्थोऽन्यथानवस्थितिः ॥ २१९ ॥

(५) **नन्दनः। कारुकान्नं** कर्मकारान्नम्। **लोकेभ्यः** स्वर्गादिभ्यः ॥ २१९ ॥

(६) **रामचन्द्रः। कारुकान्नं** सूपकारान्नं **प्रजां हन्ति** असंतोषकरमेव। **च** पुनः **लोकेभ्यः** स्वर्गादिलोकेभ्यः **परिकृन्तति** ॥ २१९ ॥

(७) **मणिरामः। कारुकः** सूपकर्ता ॥ २१९ ॥

(८) **गोविन्दराजः। कारुकान्नमिति।** सूपकाराद्यन्नमपत्यानि हन्ति। अस्याप्यत एव निषेधः। चर्मकारादीनां चान्नं गोबलीवर्दन्यायेन निर्देशो द्रष्टव्यः। एवमिह शास्त्रे

सर्वत्र विज्ञेयम् । निर्णेजकान्नं च कर्मान्तरार्जितेभ्यः स्वर्गादिलोकेभ्यः आच्छिनत्ति ।। २१९ ।।

**पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ।।**
**विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ।। २२० ।।**

(१) **मेधातिथिः।** **पूय**तुल्यं **चिकित्सकस्यान्नं** भोजनम् । **इन्द्रियं** शुक्रम् । **विष्ठा** मलमेकमेव ।। २२० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **इन्द्रियं** शुक्रम् । **मलं** गात्रमलम् ।। २२० ।।

(३) **कुल्लूकः।** **चिकित्सकस्यान्नं पूयं** पूयभक्षणसमदोषम् । एवं **पुंश्चल्या अन्नं इन्द्रियं** शुक्रम् । **वार्धुषिकस्यान्नं पुरीषम्।** **लोहविक्रयिणोऽन्नं** विष्ठाव्यतिरिक्तं श्लेष्मादि । **गोविन्दराजस्तु** चिकित्सकान्नभक्षणेन तथाविधायां जातौ जायते यत्र पूयभुग्भवतीत्याह ।। २२० ।।

(४) **राघवानन्दः।** **इन्द्रियं** तन्निःसृतं रेतः । इन्द्रियं पुंस्त्वं निकृन्ततीति वा । **मलं** विष्ठा । चिकित्सकान्नादनेन तथाविधायां जातावुत्पद्यते यत्र पूयभुग्भवति (इति) **गोविन्दराजः।** पूयादिभक्षणप्रायश्चित्तार्थमेवेति तु तत्त्वम् ।। २२० ।।

(५) **नन्दनः।** **पूयं** पूयवदभक्ष्यमित्यर्थः । एवमुत्तरत्रापि । **इन्द्रियं** रेतः ।। २२० ।।

(६) **रामचन्द्रः।** **पूयं** पूयतुल्यं । **पुंश्चल्या** अन्नं **इन्द्रियं** गुह्येन्द्रियसमं शुक्रसमं वा **वार्धुषिकस्य** परनिन्दकः आत्मप्रशंसी तस्यान्नं **विष्ठा**समम् ।। २२०–२२१ ।।

(७) **मणिरामः।** **पूयम्** पूयभक्षणतुल्यम् । एवमग्रेऽपि ।। २२० ।।

(८) **गोविन्दराजः।** **पूयमिति।** चिकित्सकान्नादनेन तथाविधायां जातावुत्पद्यते यत्र पूयभुक् भवति । एवं पुंश्चल्यन्नं शुक्रं वार्धुषिकान्नं पुरीषं **शस्त्रविक्रयिणः** शुक्र-विष्ठादिव्यतिरिक्तं मूत्रादिमलम् ।। २२० ।।

**य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः ।।**
**तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ।। २२१ ।।**

**[अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतं । वैश्यान्नमन्नमित्याहुः शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ।।१।।]**

(१) **मेधातिथिः।** प्रतिपदनिर्दिष्टेभ्यो येन्येऽप्यभोज्यान्ना अस्मिन्प्रकरणे पठिता-स्तेषां यदन्नं **तत्त्वगस्थिरोमादि।** यस्तदीयायास्त्वचो भुक्ताया दोषः, स एवान्नस्यापि ।। २२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** **य एते क्रमशः कीर्तिताः** ये चान्ये स्मृत्यन्तरसिद्धाः । अत्र पूयत्वाद्यभिधानं तद्भक्षणे कृतप्रायश्चित्तार्थम् । तथाच वक्ष्यमाणप्रायश्चित्तेन तस्य विकल्पः ।। २२१ ।।

(३) **कुल्लूकः।** प्रतिपदनिर्दिष्टेभ्यो येऽन्ये क्रमेणाभोज्यान्ना अस्मिन् प्रकरणे पठितास्तेषां यदन्नं **तत्त्वगस्थिरोमाणि** यास्तदीयास्त्वचः कीकसस्य रोम्णां च भुक्तानां यो दोषः स एव तदन्नस्यापि भुक्तस्य बोद्धव्यः।। २२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः। एते अन्ये** त्वभोज्यान्नाः : मया भृगुणा वा मनुना वा पश्चान्तरम्।। २२१ ।।

(७) **मणिरामः। स इति**।। २२१ ।।

(८) गोविन्दराजः। य इति। साक्षादुक्तफलेभ्यो **ये अन्ये** क्रमेण **भोज्यान्नाः** कथिताः तत्सम्बन्ध्यन्नं चर्मास्थिरोमाणि प्रशस्तबुद्धयो वदन्ति।। २२१ ।।

**भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम्।।**
**मत्या भुक्त्वाऽऽचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ।।२२२।।**

(१) **मेधातिथिः।** त्र्यहं क्षपणमभोजनम्। अमत्याऽबुद्धिपूर्वम्। बुद्धिपूर्वे तु **कृच्छ्रं चरेत्।** तच्च कृच्छ्रं स्मृत्यन्तरैकवाक्यत्वात्तप्तकृच्छ्रम्। तत्र रेतोविण्मूत्रप्राशने तप्तकृच्छ्रमाम्नातम्। 'अमत्या पाने पयोघृतमुदकं वायुः प्रतित्र्यहं तप्तातिकृच्छ्रः। ततोऽस्य संस्कार' इति। अप्रकरणे च प्रायश्चित्तवचनं दोषातिशयदर्शनार्थम्।

**अन्यतमस्येति** षष्ठीनिर्देशात्परिग्रहदुष्ट एवेदं प्रायश्चित्तं मन्यन्ते न कालस्वभाव-संसर्गदुष्टे। शुक्तपर्युषितादौ चतुर्विधं ह्यभोज्यम्। कालदुष्टं शुक्तपर्युषितादि। संसर्गदुष्टं मद्यानुगतादि। स्वभावदुष्टं लशुनादि। परिग्रहदुष्टं प्रकृताभोज्यान्नानां यत्।

अत्रोच्यते। सत्यम्, चतुर्विधमभोज्यं भवति। षष्ठीनिर्देशोऽप्यस्ति। किंतु यदि शुक्तादेर्नेदं प्रायश्चित्तं स्यात्तदिह प्रकरणे तेषामुपादानमनर्थकमेवापद्येत। पञ्चमे हि तयोः प्रतिषेधो नास्ति। तस्मादिह प्रायश्चित्तविशेषार्थमेवैवमादीनानुपादानम्। तत्र तर्हि किमर्थम्? तत्रैव वक्ष्यामः। यदपि 'गर्हितान्नाद्ययोर्जग्धिः' (११।५६) 'अभोज्यानां तु भुक्त्वाऽन्न'मिति (११।१५२) च तत्सर्वमेकादशे विभागतो निर्णेष्यते।। २२२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अत** एषु मध्ये **क्षपणमुपवासेन** कृच्छ्रं प्राजापत्यम्। अत्र च स्मृत्यन्तरदर्शनेन गुरुत्वलघुत्वावधारणेन यथोक्तप्रायश्चित्तद्वयं यथायथं द्वैगुण्यत्रैगुण्यादिना व्यवस्थाप्यम्। **रेतोविण्मूत्रं** नरस्य।। २२२ ।।

(३) **कुल्लूकः।** एषां मध्येऽन्यतमसंबन्धान्नमज्ञानतो भुक्त्वा त्र्यहमुपवासः। ज्ञानतस्तु **कृच्छ्रम्।** एवं **रेतोविण्मूत्र**भोजनेऽपि। एतच्चान्यतमस्येति षष्ठीनिर्देशान्मत्तादिसंबन्धिनः परिग्रहदुष्टान्नस्यैव प्रायश्चित्तं न संसर्गदुष्टस्य केशकीटावपन्नादेः। नाऽपि कालदुष्टस्य पर्युषितान्नादेः। नाऽपि निमित्तदुष्टस्य घुष्टादेः। एकप्रकरणोपदेशश्चैषां स्नातकव्रतत्वज्ञापनार्थम्। प्रायश्चित्तं चैतेष्वेकादशे वक्ष्यति। यदि तु सर्वेष्वेवं प्रायश्चित्तं स्यात्तदा 'भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नं दुष्ट'मित्यभ्यधास्यत्। न त्वन्यतमस्य तु भुक्त्वेति। तस्मादेकप्रकरणाद्यन्मेधातिथिरभ्यधात्। प्रायश्चित्तमिदं युक्तं शुक्तादौ तदसुन्दरम्। अप्रकरणे च प्रायश्चित्तस्याभिधानं लाघवार्थं, तत्र क्रियमाणे मत्तादिग्रहणमपि कर्तव्यं स्यात्।। २२२ ।।

(४) राघवानन्दः। अत एव प्रायश्चित्तभेदमाह **भुक्त्वेति**। **भुक्त्वाऽतोन्यतमस्य अमत्या** अज्ञानेन क्षपणमुपोषणं। **कृच्छ्रं** वक्ष्यमाणलक्षणम् ॥ २२२ ॥

(५) नन्दनः। एषामन्यतमस्य। **अमत्याऽज्ञानेन। क्षपण**मभोजनं तुल्यप्रायश्चित्तत्वात्। तदुक्तं **रेतोविण्मूत्रमेवेति**। अत्र प्रकरणे प्रायश्चित्तोपदेशो निन्दातिशयार्थः ॥२२२॥

(६) रामचन्द्रः। अन्यतमस्यान्नं अनुक्तस्यान्नं **अमत्या** अज्ञानेन **भुक्त्वा त्र्यहं** त्रिदिनपर्यन्तं **क्षपणं** अन्नपरित्याग, उपोषणमित्यर्थः। **मत्या** ज्ञानेन चेत् **भुक्त्वा कृच्छ्र**संज्ञं व्रतं **चरेत्** कुर्यात्। **च** पुनः **रेतोविण्मूत्रमेव** मत्या भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेत् ॥ २२२ ॥

(७) मणिरामः। प्रायश्चित्तमाह **भुक्त्वेति**। अज्ञानतो **भुक्त्वा त्र्यहं क्षपणं** त्र्यहमुपवासः। ज्ञानतस्तु कृच्छ्रम् ॥ २२२ ॥

(८) गोविन्दराजः। **भुक्त्वेति**। एषां मध्यादन्यतमसंबन्ध्यन्नमज्ञानात् भुक्त्वा त्र्यहमभोजनं कुर्यात्। इच्छातस्तु भुक्त्वा चरेत् प्राजापत्यं कृच्छ्रम्। **रेतोविण्मूत्रं चामत्या** भुक्त्वा **गौतमस्मरणात्** तप्तकृच्छ्रमाचरेत्। तथा चाह—सुराया अमत्या पाने पयो घृतं उदकं वायु प्रतित्र्यहं तप्तानि स तप्तकृच्छ्रः, ततोऽस्य संस्कारः। मूत्रपुरीषरेतसां प्राशने चैव'मिति। अत्र चान्यतमस्येति यद्यपि श्रुतं तथापि–'स्वभावकालसंसर्गनिमित्तपरिणामतः। भावाश्रयप्रदुष्टं च नित्यमन्नं विवर्जयेत्॥' इति सप्तविधस्यान्न[ा] पठितस्यापि दुष्टस्येदमेव प्रायश्चित्तमेकप्रकरणोपदेशात्। अस्मिंश्च प्रकरणे एषां प्रायश्चित्तान्तरानाम्नानात्। शुक्तपर्युषितयोश्च पञ्चमाध्यायवक्ष्यमाणनिषेधयोरपि इह प्रायश्चित्तविशेषार्थमेवोपादानमित्याहुः। तदसत्; 'एवमभिप्रेतमुक्त्वा' अतोऽन्यतमदुष्टमित्येवमवक्ष्यत्। अपौरुषेयेषु हि ग्रन्थेषु लिङ्गमात्रमपि व्यवस्थाहेतुर्भवति। तावतैव वक्त्राशयानुमानात्। एकप्रकरणोपदेशश्च स्नातकव्रतत्वख्यापनार्थः। इह प्रायश्चित्तानाम्नानेऽपि च एषां एकादशाध्यायोक्तानि प्रायश्चित्तानि भविष्यन्ति। शुक्तपर्युषितयोश्चेह स्नातकव्रतत्वार्थमेवाभिधानम्। तस्माद्यथाश्रुतमेव त्याज्यं, तत्र स्वभावदुष्टं मूत्रादि, कालदुष्टं पर्युषितादि, संसर्गदुष्टं दुष्टान्नादि, परिणामदुष्टं शुक्तादि, भावदुष्टं सद्यःपीडितद्राक्षारसादि, आश्रयदुष्टं मत्तादिसंबन्धि। अप्रकरणे च प्रायश्चित्तोपदेशो लाघवाद्यर्थं, तत्र हि क्रियमाणे मंत्रादिग्रहणं कर्तव्यं स्यात् ॥ २२२ ॥

**नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥**
**आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥२२३॥**

**[ *चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्यात्स्नात्वा तु मुक्तयोः। अमुक्तयोरस्तगतयोरद्याच्चैव परेऽहनि ॥१॥ ]**

(१) मेधातिथिः। अविशेषेण शूद्रान्नं प्रतिषिद्धं तस्येदानीं विशिष्टविषयतोच्यते **अश्राद्धिनः**। "क्व पुनः शूद्रान्नं प्रतिषिद्धम्?"। "शूद्रस्योच्छिष्टमेव च" (४। २११) इत्यत्र। ननु च तत्र शूद्रस्योच्छिष्टं प्रतिषिद्धं नान्यदन्नम्। नेति ब्रूमः। एवं तत्र सम्बन्धः। 'शूद्रस्यान्नं नाद्यादुच्छिष्टमन्यस्यापि'। यत्तु प्राग्व्याख्यातं तत्पूर्वेषां दर्शनमित्यस्माभिरपि संवर्णितम्। **अश्राद्धिनः** श्राद्धशब्देन पाकयज्ञादिक्रिया शूद्रस्य विहिता लक्ष्यते। ततस्तत्क्रियाननुष्ठायिनः। सच्छूद्रादन्यस्य यत्पक्वमन्नं तन्नाद्यात्। अश्रद्धिन इति वा पाठः।

अश्रद्धावानित्यर्थः। तथा चोत्तरश्लोके श्रद्धायाः प्राधान्यमेवाह "वदान्यस्येति"। **आमं** शुष्कं धान्यं तण्डुलादि। **तथैकरात्रिकमेकस्मिन्नहनि** पर्याप्तं न बहु ॥ २२३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अश्राद्धिनः** श्रद्धारहितस्य **एकरात्रिकमे**काहपर्याप्तम्। एवं श्राद्धिनः पायसादिपक्वमाममपि बहुदिवसवृत्तियोग्यं ग्राह्यमिति लभ्यते। केचित्तु श्राद्धकर्मशीलोऽत्र श्राद्धीत्याहुः। तत्राग्रे श्रद्धास्तुतिरसंगतिरिति हेयमेवैतत् ॥ २२३ ॥

(३) **कुल्लूकः।** अविशेषेण शूद्रान्नं प्रतिषिद्धं, तस्येदानीं विशिष्टविषयतोच्यते **अश्राद्धिनः** श्राद्धादिपञ्चयज्ञशून्यस्य **शूद्रस्य** शास्त्रविद् द्विजः **पक्वान्नं** न भुञ्जीत। किंत्वन्नान्तराभावे सत्येकरात्रनिर्वाहोचित**माम**मेवान्नम**स्मा**द्गृह्णीयात् नतु पक्वान्नम् ॥ २२३ ॥

(४) **राघवानन्दः।** शूद्रोच्छिष्टं निषिद्धमिति चेदन्यदन्नमश्नीयात्तत्राह **नाद्यादिति। अश्राद्धिनः** श्राद्धं पञ्चयज्ञः तच्छून्यस्य **अवृत्तौ** अन्नान्तराभावे सति तेनाश्राद्धिना घृतपक्वादिकं ग्राह्यम्। तदुक्तं 'कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं पायसं दधिसक्तवः। एतानि शूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवी'दिति ॥ २२३ ॥

(५) **नन्दनः। अश्राद्धिनः** श्रद्धाहीनस्य। अश्राद्धिन इति विशेषणाच्छ्रद्धायुक्तस्य पक्वान्नमनुज्ञातमिति गम्यते। आमस्याभ्यनुज्ञानात्पूर्वोक्तेषु मत्तक्रुद्धादिष्ववचनात्पक्वामयोरुभयोरपि वर्जनीयत्वम् ॥ २२३ ॥

(६) **रामचन्द्रः। विद्वान् शूद्रस्य पक्वान्नं** नाद्यात्। **अश्राद्धिनः** श्रद्धाहीनस्य, यद्वा नित्यश्राद्धरहितस्य वा; **अस्मात्** शूद्रात् **आममेव** आमान्नं **अवृत्तौ** भोजनाभावे **एकरात्रिकं** एकदिनपर्याप्तम् ॥ २२३ ॥

[ ***रामचन्द्रः। चन्द्रेति।** चन्द्रसूर्ययोः मुक्तयोः स्नात्वा अद्यात्। अमुक्तयोः परेऽहनि अद्यात्। ]

(७) **मणिरामः।** सामान्यतः शूद्रान्नं निषिद्धमित्युक्तं, इदानीं विशेषविषयमाह **नाद्यादिति। अश्राद्धिनः** श्राद्धपंचयज्ञशून्यस्य। **अवृत्तौ** अन्नांतराभावे ॥ २२३ ॥

(८) **गोविन्दराजः। नाद्यादिति।** श्राद्धादिक्रियाशून्यस्य **सच्छूद्रस्य** शास्त्रवित् द्विजः **पक्वान्नं न** भुंजीत। अपित्वन्नान्तराभावे **आममेव न** पक्वं एकाहोरात्रपर्याप्तं नाधिकमस्मात् प्रतिगृह्णीयात् ॥ २२३ ॥

**श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ॥**
**मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २२४ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** यो ब्राह्मणः सर्वगुणोपेतः श्रोत्रियग्रहणस्य प्रदर्शनार्थत्वात्। **श्रोत्रियो** विद्वान्विहितधर्मानुष्ठानपरः। किन्तु **कदर्यः** कृपणो मित्रं ज्ञातिमतिथिमर्थिनं नाभिनन्दति न कस्मै किंचिदपि दातुमीहते। इतरो **वार्धुषिर्दु**ष्टकर्मा वृद्धिजीवी। अथ **वदान्य** उदारः श्रद्दधानो गृहागतेषु परितुष्यति श्रद्धया भोजनादिना पूजयति। तयोरन्नं **देवाः समं** तुल्य**मकल्पयन्**व्यवस्थापितवन्तः। यदि नामैको गुणवान्साधुचरणस्तथापि कदर्यतयोपहतः।

उक्तं हि "लोभः सर्वगुणानिव" इति । इतरो यदि नाम श्रद्दधानः तथापि कर्मदोषादप्रशस्तः । एवं **मीमांसित्वा** विचार्य देवैर्व्यवस्था कृता तुल्यमेतदिति ।। २२४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । श्रोत्रियस्येति** भोज्यान्नोपलक्षणम्, **कदर्यस्य** कृपणस्य **वार्धुषे-रिति** अभोज्यान्नोपलक्षणम्, **वदान्यस्य** दानशीलस्य । **सममकल्पयन्** क्रमात् द्वयोरेकैकगुणैकैकदोषसाम्यात् ।। २२४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । एकोऽधीतवेदः कृपणश्च परो दाता वृद्धिजीवी च तयोरुभयोरपि गुणदोषवत्त्वं विचार्य देवास्तुल्यमन्नमनयोरिति निरूपितवन्तः, उभयोरपि गुणदोषसाम्यात् ।। २२४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वार्धुषिकस्यान्नशुद्ध्यर्थमितिहासमाह **श्रोत्रियस्येति द्वाभ्यां** । **मीमांसित्वा** विचार्य ।। २२४ ।।

(५) **नन्दनः** । बलाबलपरीक्षारूपपुराकल्पोपन्यासद्वारेण श्रद्धाप्रशंसां प्रसङ्गादाह **श्रोत्रियस्येति** । श्रोत्रियशब्दः श्रेष्ठस्योपलक्षणम् । **कदर्य**शब्दः श्रद्धाहीनस्य । **वदान्य**शब्दः श्रद्धायुक्तस्य **वार्धुषिक**शब्दोऽधर्मस्य ।। २२४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **कदर्यस्य** कदर्यरूपस्य च **श्रोत्रियस्य** च पुनः **वार्धुषेर्वदान्यस्य** उदारस्य एतदुभयं देवा **मीमांसित्वा** विचारयित्वा **उभयोरन्नं सममकल्पयन्** व्यवस्थापितवंतः ।। २२४ ।।

(७) **मणिरामः** । **श्रोत्रियस्य** अधीतवेदस्य **कदर्यस्य** कृपणस्य । इत्येकः । **वदान्यस्य** दातुः **वार्धुषेः** वृद्धिजीविनः अयं द्वितीयः । उभयोरपि गुणदोषौ **मीमांसित्वा** विचार्य **देवाः** अनयोरन्नं **सममिति अकल्पयन्** निरूपितवंतः, तस्मादुभयोरप्यन्नं न ग्राह्यमिति सिद्धं ।।२२४।।

(८) **गोविन्दराजः** । **श्रोत्रियस्येति** । एकोऽधीतवेदः कृपणः पर उदारो वृद्धिजीवी वा तयोर्गुणमुभयं विचार्य देवास्तुल्यमन्नमनयोरिति कल्पितवन्तः, उभयोरपि गुणयोगात् ।। २२४ ।।

**तान् प्रजापतिराहैत्य मा कृढ्वं विषमं समम् ।।**
**श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ।। २२५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । देवान्प्रजापतिरागत्याचष्ट **मा कृढ्वमेवं विषमं** समीकरणमन्याय्यम् । कः पुनरनयोरधिक इति देवा ऊचुः । पुनः प्रजापतिराह । **वदान्यस्य** श्रद्धावतो यदन्नं तत्पूतं पवित्रं श्रद्धया **वार्धुषेः** । इतरद्यदन्नं श्रोत्रियस्य तत्कर्मणोपहतमप्रशस्तम् । देवप्रजापतिसंवादोऽर्थवादः । अश्रद्दधानस्य गुणवतोऽपि न भोक्तव्यमादरेण शूद्रस्यापि भोक्तव्यम् ।। २२५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **कृध्वं** कुरुध्वम् । विकरणलोपश्छान्दसः । वैषम्ये हेतुः **श्रद्धापूतमिति** । श्रद्धापूतं दानश्रद्धापूतम् । वदान्यत्वस्य श्रद्धानियतत्वात् । तेन श्राद्धिनः शूद्रस्यापि पायसादिपक्वान्नं भोज्यमिति तात्पर्यम् । यथा स्मृत्यन्तरे 'कन्दुपक्वं शूलपक्वं पायसं दधिसक्तवः । एतानि शूद्राद् ग्राह्याणि भोज्यानि मनुरब्रवी'दिति ।। २२५ ।।

(३) **कुल्लूकः।** तान्देवानागत्य ब्रह्मा प्रोवाच **विषममन्नं मा समं** कुरुत। विषमसमीकरणमनुचितं कः पुनरनयोर्विशेष इत्यपेक्षायां स एवावोचत्। दानशीलवार्धुषिकस्यापि श्रद्धयान्नं पवित्रं भवति, कृपणान्नं पुनरश्रद्धया **हतं** दूषितमधमं प्रागुभयप्रतिषेधेऽपि श्रद्धादत्तविद्वद्वार्धुषिकान्नविशुद्धिबोधनपरमिदम्॥ २२५॥

(४) **राघवानन्दः।** तान् देवानेत्य प्रजापतिराह। **विषमं** यत् **तत्समं मा कुद्ध्वं** मा कुरुतेति। विषममेवाह **श्रद्धापूतमिति**। ज्ञानपूतमिति यावत्, **इतरत्** कदर्यान्नं **हतं** दुष्टम्॥ २२५॥

(५) **नन्दनः।** विद्वन्ननुभयोरन्नं **समं मा कृध्वमिति** प्रजापतिराह। उत्तरार्धेन वैषम्यमुपपादयति॥ २२५॥

(६) **रामचन्द्रः।** तान्देवान्प्रति प्रजापतिरित्याह **विषममन्नं समं** मा कुरुध्वं वदान्यस्य **श्रद्धापूतमन्नं** ग्राह्यं **अश्रद्धया** दत्तं **इतरत्** श्रोत्रियस्यान्नं **हतं** नष्टं भवति॥ २२५॥

(७) **मणिरामः।** तत्प्रतिषेधमाह **तानिति। तान्** देवान् **एत्य प्रजापतिः** आह। **वदान्यस्य** दानशीलस्य **वार्धुषिकस्यापि श्रद्धापूतं** श्रद्धया पवित्रं भवति। **इतरत्** कृपणान्नं पुनः **अश्रद्धया हतं** दूषितं भवति। तथा च श्रद्धान्वितस्य वार्धुषेरन्नं ग्राह्यमित्याशयः॥ २२५॥

(८) **गोविन्दराजः। तानिति। तान्** देवान् ब्रह्मा **आगत्य विषमं** यत् तत् **मा समं** इति व्याचष्ट। यस्मात् वदान्यान्नं श्रद्धया पवित्रीकृतं भवति। कदर्यान्नं पुनः अश्रद्धया दूषितं इत्युभयप्रतिषेधेऽपि श्रद्धावद्वार्धुषिकान्नप्रतिप्रसवार्थमिदम्॥ २२५॥

**श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः॥**
**श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥ २२६॥**

(१) **मेधातिथिः। इष्टमन्तर्वेदि** यत्क्रियते यज्ञादि कर्म। **पूर्तं** ततोऽन्यत्र सम्मानाद्यदृष्टार्थम्। **ते श्रद्धया** कर्तव्ये। तथा **स्वागतैश्च धनैः** शोभनेनागच्छन्ति यानि धनानि श्रुतशौर्यतपःकन्यादिना। **एवमक्षये**ऽक्षयफले भवतः। यानि तु न स्वागतानि नाक्षयफलानि न पुनर्निष्फलानि। तथाहि तैरपि स्वाम्यमुत्पद्यते। तेन च यागादयः कर्तव्याः। न च यागदानादिप्रकरणे कुसीदादिप्रतिषेधः श्रुतो येन तदङ्गं स्यात्। तस्माद्यावन्तः स्वर्गोत्पत्तिहेतवः तैरर्जितेन धनेन यागादयः कर्तव्याः। फलस्य तु प्रकर्षापकर्षौ भवतः॥२२६॥

के पुनस्ते प्रशस्तधनोपायाः? अत उच्यते।

**श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यान्वयागतम्॥**
**धनं सप्तविधं शुद्धं उभयोऽप्यस्य तद्विधः॥**

तत्र 'श्रुततपसी' प्रतिग्रहनिमित्तम्। एकोऽपि प्रतिग्रहो निमित्तभेदाद्भेदेनोक्तः। प्रतिग्राह्यगुणा अपि सामर्थ्यात्तत्र द्रष्टव्याः। यदि नात्यन्तदुष्टो दाता भवति तदा तस्मा-

दागतं शुद्धं भवति। याज्यशिष्यशब्दाभ्यां याजनाध्यापने गृह्येते। 'अन्वयागतं' पितृपैतामहादि। कन्यादानकाले श्वशुरगृहाल्लब्धम्। शौर्येण क्षत्रियस्य। कन्यान्वयौ सर्वसाधारणौ।

**कुसीदकृषिवाणिज्यशिल्पसेवानुवृत्तितः ॥**
**कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् ॥**

'सेवा' प्रेष्यकरत्वं यथेच्छविनियोज्यता। 'अनुवृत्तिः' प्रियतानुकूला। तत्र कुसीदकृषिवाणिज्यान्यवैश्यस्य, वैश्यस्य प्रशस्तान्येव। 'सेवा' द्विजातिशुश्रूषा शूद्रस्य प्रशस्तैव। अन्या तु तस्य निन्दिता। 'शबल'ग्रहणेनाचिरस्थायिता फलस्योच्यते। यावज्जीवं तत्फलं भवति।

**पार्श्विकद्यूतचौर्यार्तिप्रातिरूप्यकसाहसैः ॥**
**व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदाहृतम् ॥**

'पार्श्विकः' पार्श्वस्थः उत्कोचादिना धनमर्जयति। ज्ञात्वा धनागमं कस्यचिदहं ते दापयामि मह्यं त्वया किंचिद्दातव्यमिति यो गृह्णाति स पार्श्विकः। न कर्ता कारयिता तटस्थो न त्वन्न तया गृह्णाति। यथा च गृहीत्वाऽधमर्णाय प्रतिभूत्वेनावतिष्ठते। 'प्रतिरूपको' दाम्भिकः। कुसुम्भाद्युपहितकुङ्कुमादिविक्रयो 'व्याजः'। 'अर्तिः' परपीडा। प्रच्छन्नहरणं 'चौर्यम्'। प्रसभं 'साहसम्'।

ननु चौर्यसाहसाभ्यां स्वाम्यमेव नास्ति तन्निमित्तेष्वपठितत्वात्। "स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेष्विति"—तथा "विद्याशिल्पं भृतिसेवा" (१०।११६) इत्यादि—तथा "सप्त वित्तागमा धर्म्या" (१०।११५) इति च। अथास्मादेव वचनात्स्वाम्यकारणत्वमनयोरिति। कथं तर्हि बलाद्भुक्तं न जीर्यतीति।

केचित्तावदाहुः। नैवायं पाठोऽस्ति "द्यूतचौर्यार्तीति" अपि तु 'वैरार्तीति'। वैरिणः सकाशाद्यद्गृह्यते सन्धानकाले यद्येतावद्ददासि तदा त्वया सन्धिं करोमि शक्तिविहीनतया ददाति। साहसमपि न प्रसह्य हरणं, किं तर्हि? यत्प्राणसंदेहेनार्ज्यते पोतमात्रतया रहसि राजप्रतिषिद्धप्रतिक्रयेण च।

अन्ये तु मन्यन्ते। नैव बलादपहरणेन स्वाम्यं भोगेन वा जरणं विरुध्यते यतो बलं प्रथममपहारकाले त्वसत्यपि बल उपेक्षया भोगस्तत्र स्वाम्यम्। यत्र त्वारम्भात्प्रभृति सर्वकालिको बलोपभोगस्तत्र जीर्यतीति कथ्यते। तस्मादुभयमविरुद्धम्।

इदं युक्तं यच्चौर्यसाहसाभ्यां स्वत्वानुत्पत्तिः, पाठविभागकृतत्वात् अन्यैश्च स्मृतिकारैः स्वत्वहेतुष्वपरिगणनात्॥ २२६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **इष्टं** यागः। **पूर्तं** पुष्करिण्यादि। **अक्षये** चिरस्थायिफले। एतेनाश्रद्धाकृतयोरपि फलमस्तीति गम्यते। **स्वागतैर्धनैर्**निषिद्धवृत्त्यनुपात्तैः॥ २२६॥

(३) **कुल्लूकः**। अत एवाह **श्रद्धयेति**। इष्टमन्तर्वेदियज्ञादि कर्म **पूर्तं** ततोऽन्यत् पुष्करिणी कूपप्रपारामादि। तदेवमनलसः **सन्नित्यं** काम्यस्वर्गादिफलरहितं श्रद्धया कुर्यात यस्मात्ते इष्टापूर्ते न्यायार्जितधनेन श्रद्धया **कृतेऽक्षये** मोक्षफले भवतः॥ २२६॥

(४) **राघवानन्दः**। तस्मात् श्रद्धयैव सर्वं कार्यमित्याह **श्रद्धयेति** द्वाभ्यां। **इष्टापूर्तं**: **स्वागतैः** स्ववृत्त्योपार्जितैः। **तत्रेष्टं** यागादि। **पूर्तं** खातादि॥ २२६॥

(५) **नन्दनः**। यत एवमतः सर्वे धर्माः श्रद्धया कर्तव्या इत्याह **श्रद्धयेति**। **इष्टं** दैवम्। **पूर्तं** पित्र्यम्, स्वागतैर्विहितोपायार्जितैः॥ २२६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **श्रद्धया इष्टं** यागादि **पूर्तं** कूपादि **नित्यं** कुर्यात्। **इष्टापूर्ते** श्रद्धाकृते श्रद्धया कृते **स्वागतैर्धनैः** स्वकर्मोपार्जितैर्धनैः श्रुतशौर्यकन्यादिना प्राप्तैः **अक्षये** भवतः। 'श्रुतशौर्यतपःकन्यायाज्यशिष्टान्वयागतं। धनं सप्तविधं शुद्धमुदयो यस्य तद्विधः'। **श्रुतं** अध्ययनं। **शौर्यं** क्षात्रधर्मेण लब्धम्॥ २२६॥

(७) **मणिरामः**। अत एवाह **श्रद्धयेति**। **इष्टं** यज्ञादि। **पूर्तं** वाप्यादि। ते इष्टापूर्ते स्वागतैर्धनैः न्यायार्जितधनैः। **कृते अक्षये** मोक्षफले **भवतः**॥ २२६॥

(८) **गोविन्दराजः**। यत एवमतः **श्रद्धयेति**॥ २२६॥

**दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्॥**
**परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः॥२२७॥**

**[पात्रभूतो हि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम्। असत्सु विनियुञ्जीत तस्मै देयं न किंचन॥१॥]**
**[संचयं कुरुते यस्तु प्रतिगृह्य समंततः। धर्मार्थेनोपयुङ्क्ते च न तं तस्करमर्चयेत्॥२॥]**

(१) **मेधातिथिः**। **दानधर्मश्च** तडागादिः। समाहारद्वन्द्वः। अथवा दानं च तद्धर्मश्चासाविति। धर्मग्रहणेन प्रीत्यादिना नियमभावमाह। **भावेन तुष्टेन** प्रसन्नेन चित्तेन पात्रमासाद्य व्रतादिदानं च। एवं **पौर्तिकं** बहिर्वेदिकम्॥ २२७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **दानधर्मं** दानरूपं धर्मसाधनम्। **ऐष्टिकं** यागदक्षिणारूपम्। **पौर्तिक** पूर्तसंगतम्। **परितुष्टेन** नोपरोधेन॥ २२७॥

(३) **कुल्लूकः**। **दानाख्यं धर्ममैष्टिकं पौर्तिकम**न्तर्वेदिकं बहिर्वेदिकं च सर्वदा विद्यातपोयुक्तं **ब्राह्मणमासाद्य** परितोषाख्येनान्तःकरणयुक्तः यथाशक्ति कुर्यात्॥२२७॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **दानेति**। **दानधर्मं** दानं यथाशक्ति अर्थिभ्यो द्रव्यविभागः तद्रूपं **धर्मम्**। **ऐष्टिकं** इष्टिस्वरूपं। **पौर्तं** पूर्तस्वरूपं वाप्यादि। योग्यं पात्रमिति भावेन भावनाश्रयेण मनसा प्रसन्नेन॥ २२७॥

(५) **नन्दनः**। इष्टे भव**मैष्टिकम्**। **परितुष्टेन भावेन** श्रद्धायुक्तेन हृदयेन॥२२७॥

(६) **रामचन्द्रः**। सार्धेनाह **दानेति**। **नित्यं ऐष्टिकपौर्तिकं** कुर्यात्। प्रतिपदीष्टिः पूर्तास्पदं **पौर्तिकं पात्रं आसाद्य** प्राप्य **शक्तितः**॥ २२७॥

(७) **मणिरामः**। **दानधर्मं** दानाख्यं **धर्मं ऐष्टिकं पौर्तिकं** नित्यं **पात्रमासाद्य परितुष्टेन** भावेन **शक्तितः निषेवेत** कुर्यात्॥ २२७॥

(८) **गोविन्दराजः । दानधर्ममिति** । आन्तर्वेदिको बहिर्वेदिकश्च यो दानाख्यो धर्मः तं श्रुताध्ययनादिसर्वगुणोपेतं ब्राह्मणं प्राप्य परितोषाख्येन चित्तधर्मेण यथाशक्ति नित्यं कुर्यात् ।। २२७ ।।

**यत्किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनानसूयता ।।**
**उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ।।२२८।।**

(१) **मेधातिथिः । यत्किञ्चित्**स्वल्पमपि **याचितेन**ार्थितेन दातव्यम् । पात्रापात्रसंदेहे असति निश्चये किञ्चिद्दातव्यं नातिबहु । वचनाच्च संदेहे न दातव्यम् । **उत्पत्स्यते** कदाचित्पात्रमसौ भविष्यति । किंभूतम् ? यत्पात्रं **तारयति** रक्षति **सर्वतो** नरकपातहेतोः सर्वस्मादेनसः । यदुक्तं "वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायेति" तत्रायं संदेहाश्रय ईषद्द्रव्यविषयोऽपवादः ।। २२८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । अनसूयया** अद्वेषेण । **सर्वतः** पापात् बहुषु दीयमानेषु हि तादृक्पात्रं मिलतीत्यर्थः ।। २२८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । प्रार्थितेन परगुणामत्सरेणाल्पमपि यथाशक्ति दातव्यं यस्मात्सर्वदा दानशीलस्य कदाचित्तादृशं पात्रमागमिष्यति तत्सर्वस्मान्नरकहेतोर्मोचयिष्यति ।। २२८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रापि दानमत्यर्थमुररीकरोति **यदिति** । तथाच श्रुतिः 'ह्रिया देयं भिया देयं श्रद्धया देयं अश्रद्धयाऽदेयं' (तैत्ति. १।११।३) इति । **याचितेन** याच्ञाविषयेणापि **हि** यस्मात्सर्वदा दानशीलस्य तादृशपात्र**मुत्पत्स्यते** आगमिष्यति । वार्धुषिकमपि सर्वस्माद्दोषात्तारयतीत्याह **सर्वत** इति ।। २२८ ।।

(५) **नन्दनः** । **अनसूयया** श्रद्धया । अत्र हेतुरुत्तरार्धेनोक्तः । **उत्पत्स्यते** सेत्स्यति । **सर्वतो** दुःखादिति शेषः ।। २२८ ।।

(६) **रामचन्द्रः । यत्किचिदपि दातव्यं । हि** निश्चयेन **यत्पात्रं** उत्पत्स्यते संमिलति **तत्पात्रं सर्वतः** पापात्ता**रयति** उद्धरति ।। २२८ ।।

(७) **मणिरामः** । दानानां फलान्याह **वारिद** इत्यादिसप्तभिः ।।२२८–२२९ ।।

(८) **गोविन्दराजः । यत्किञ्चिदिति** । प्रार्थितेन अकृतदोषविचारेण स्वल्पमपि यथासंभवं दातव्यम् । यस्मादनवरतं दानप्रवृत्तस्य कदाचिदवश्यं तथाविधं पात्रमागमिष्यति यत् दृष्टादृष्टदोषेभ्यो मोचयति ।। २२८ ।।

**वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः ।।**
**तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।।२२९।।**

(१) **मेधातिथिः । तृप्तिः** क्षुत्पिपासाभ्यामपीडनम् । तच्चाढ्यस्यारोगस्य च भवति । तेन बहुधनत्वमरोगता च फलमुक्तं भवति । **अक्षयं सुखम्** । अविशेषितत्वादन्नोपकरणं सुखं प्रतीयते । **अक्षयं** यावज्जीविकमित्यर्थः । **अन्नदः** सक्तवोदनादिसिद्धमन्नमामं च तण्डुलादि । दीपस्य दानं चतुष्पथे ब्राह्मणसभायां वा ।। २२९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तृप्तिं पिपासादुःखाभावम् ॥ २२९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। जलदः क्षुत्पिपासाविगमात्तृप्तिम्। **अन्नदो**ऽत्यन्तसुखं। **तिलप्रद** ईप्सितान्यपत्यादीनि। **दीपदो** विप्रवेश्मादौ निर्दोषं **चक्षुः** प्राप्नोति ॥ २२९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रसङ्गाद्देयद्रव्यभेदेन तत्फलभेदमाह **वारिद** इति **चतुर्भिः**। तृप्तिं क्षुत्पिपासाद्यपीडनं। तेन बहुधनत्वारोग्ये इति मेधातिथिः। **अक्षय्यं** यावज्जीवं प्राप्नोतीत्येवं सर्वत्रानुषङ्गः ॥ २२९ ॥

(५) **नन्दनः**। द्रव्यविशेषात्फलविशेषमाह **वारिद** इति ॥ २२९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **तिलप्रदः प्रजां** संततिं **इष्टां आप्नोति** ॥ २२९ ॥

(७) **गोविन्दराजः**। **वारिद इति**। उदकप्रदः सौहित्यं, **अन्नदः** अनन्तसुखं **तिलप्रदः** ईप्सितान्यपत्यादि, दीपदः तिमिराद्यनुपहतं **चक्षुः** प्राप्नोति ॥ २२९ ॥

**भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ॥**
**गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भूमेराधिपत्यं प्राप्नोति। **हिरण्यं** सुवर्णम्। **रूप्यद** उत्तमं रूपं लभते ॥ २३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **भूमिं** भूमिपतित्वम् ॥ २३० ॥

(३) **कुल्लूकः**। **भूमिदो** भूमेराधिपत्यं **सुवर्णदः** चिरजीवित्वं **गृहदः** श्रेष्ठानि **वेश्मानि**। **रूप्यदः** सकलजननयनमनोहरं रूपं लभते ॥ २३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। **रूप्यं** रजतम् ॥ २३० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **भूमिदः भूमिं आप्नोति** राज्यं आप्नोति। **गृहदः** अग्र्याणि श्रेष्ठानि **वेश्मानि** प्राप्नोति ॥ २३० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **भूमिद इति**। **भूमिदो** भूम्याधिपत्यं च सुवर्णदो **दीर्घमायुः**, **गृहदः** श्रेष्ठानि गृहाणि, **रूप्यदः** उत्कृष्टं **रूपं** लभते ॥ २३० ॥

**वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ॥**
**अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ २३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। चन्द्र इव लोक्यते सर्वस्य प्रियदर्शनो भवति। इतिहासदर्शने चन्द्रलोको नाम स्वर्गस्थानविशेषस्तमाप्नोति। **अश्विनामश्ववतां सालोक्यं** बह्वश्वतां प्राप्नोति। दर्शने पुनरश्विनोर्लोकमाप्नोति। **अनड्वान्पुङ्गवः** शकटवहनसमर्थस्तं ददतः **पुष्टा** महती **श्री**गोऽजाविधनधान्यादिसम्पद्भवति। **ब्रध्न** आदित्यस्तस्य **विष्टपं** स्थानमाप्नोति। महातेजाः सर्वस्योपरि भवति। स्वर्गो वा ब्रध्नविष्टपम्। स्मृत्यन्तरेऽनसो विशेषाश्रयः फलविशेषः श्रूयते—"हेमशृङ्गी रूप्यखुरा सुशीला वस्त्रसंवृता। सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥" सुदक्षिणेति पाठेऽन्यदपि सुवर्णादि तत्र

दातव्यम्। शोभनार्थे वा सुशब्दः पठितव्यः; सा गौः शोभना दक्षिणादानम्। कांस्योपदोहेति पाठान्तरम्। कांस्यं नाम परिमाणविशेषः। तत्रोपदुह्यते बहुक्षीरेत्यर्थः। "मुक्तालाङ्गूलभूषितां भूमिं तु रूपसंच्छन्नां कृत्वा" इत्यादिस्मृत्यन्तरदृष्टो विधिः फलविशेषार्थिनाऽऽश्रयणीयः। तथा (याज्ञ. अचार. २०५) "कपिला चेत्तारयति भूय आ सप्तमात्कुलात्। सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखी ॥"

वत्सवत्याः कपिलाया दान एतत्फलम्। उभयतोमुखी दीयमाना रोमतुल्यानि वर्ष-सहस्राणि स्वर्गं प्रापयति तारयति पापान्मोचयति। भारते सर्वफलं गोदानमुक्तम्। (अनु० १०६–१०९। २३५ (३१–५०); (अश्व. १०२५)। वार्यादीन्यपि स्वर्गफलानि श्रूयन्ते। "भूमिपश्वन्नवस्त्राम्भस्तिलसर्पिष्प्रतिश्रयान्। नैवेशिकमथ स्वर्णं दत्वा स्वर्गे महीयते।" 'नैवेशिकं' वेश्म ॥ २३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ब्रध्नस्य** सूर्यस्य **विष्टपं** लोकम् ॥ २३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **वस्त्रदश्चन्द्रसमानलोकान्प्राप्नोति**। चन्द्रलोके चन्द्रसमविभूतिर्व-सतीति एवमेवाश्विलोकं घोटकदः। बलीवर्दस्य दाता प्रचुरं **श्रियं** स्त्रीगवीप्रदः सूर्यलोकं प्राप्नोति ॥ २३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तावत्पर्यन्तं ऐहिकामुष्मिकफलं। तदुत्तरेषामामुष्मिकमेव। **अनडुत्** बलीवर्दः। **पुष्टिं** महतीं ऐश्वर्यं प्रभुत्वं। महतः श्रीयुक्तस्यापि नियम्यत्वदृष्टेः। **बध्नस्य** सूर्यस्य **विष्टपं** लोकम् ॥ २३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। गोदः गवां दाता **ब्रध्नस्य विष्टपं** सूर्यलोकम् 'भास्कराहस्करब्रध्न–' **इत्यमरः** ॥ २३१ ॥

(७) **मणिरामः**। **गोदः ब्रध्नस्य विष्टपं** ब्रध्नस्य सूर्यस्य विष्टपं लोकम् ॥ २३१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वासोद इति**। **वस्त्रदश्चन्द्रेण** सह समानलोकतां चन्द्रलोकं **अश्वदः** अश्विभ्यां समानलोकतां वृषप्रदः महतीं **श्रियं गोप्रदः** आदित्यलोकं प्राप्नोति ॥२३१॥

**यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ॥**
**धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥२३२॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ऐश्वर्यमीश्वरत्वं** प्रभुत्वम्। सुखित्वं **सौख्यम्**। **धान्यानि** व्रीहिमाषमुद्गादीनि। तिलानां फलान्तरमुक्तम्। **ब्रह्म** वेदः तद्ददाति योऽध्यापयति व्याख्याति च। **ब्रह्मसार्ष्टिता** अर्षणमृष्टिः। समा ऋष्टिर्यस्य असौ सार्ष्टिः। छान्दसत्वात्समानस्य सभावः। ऋषी गतौ। अर्षणां वा सार्ष्टिः। तद्भावः सार्ष्टिता। उभयथाऽपि ब्रह्मणः समानगतित्वमेतत्तुल्यत्वमित्युक्तं भवति ॥ २३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ब्रह्मदो** वेदाध्यापकः ब्रह्मणा हिरण्यगर्भेण सह **सार्ष्टितां** समानायुधत्वं तुल्याकारतामिति यावत्। **ऋष्टिशब्द** आयुधपर्यायः ॥ २३२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। रथादियानस्य शय्यायाश्च दाता भार्यां। **अभयप्रदः** प्राणिनामहिंसकः प्रभुत्वं। **धान्यदो** व्रीहियवमाषमुद्गादिसस्यानां दाता चिरस्थायि सुखित्वं। ब्रह्म वेदस्तत्प्रदो वेदस्याध्यापको व्याख्याता च ब्रह्मणः **सार्ष्टितां** समानगतितां तत्तुल्यतां प्राप्नोति ।। २३२ ।।

(४) **राघवानन्दः। भार्यां** प्रकृष्टां। **अभयप्रदोऽहिंसकः। ब्रह्मदो** वेददः। **ब्रह्म सार्ष्टितां** ब्रह्मसमानगतिं तत्तुल्यतां प्राप्नोतीत्यनुषज्यते। ऋषिर्गतिः। 'ऋषी गतौ' समाना ऋष्टिः सार्ष्टिः ।। २३२ ।।

(५) **नन्दनः। ब्रह्मदो** वेददः ब्रह्मसार्ष्टितां परमात्मसायुज्यम् ।। २३२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। ब्रह्मदः** वेदस्याध्यापकः ब्रह्मसाम्यं तादात्म्यं प्राप्नोति ।। २३२ ।।

(७) **मणिरामः। शाश्वतं सौख्यं** बहुकालिकस्थायिसुखम् **ब्रह्मदः** वेदप्रदः **ब्रह्मसार्ष्टितां** ब्रह्मसमानगतिताम् ।। २३२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। यानशय्याप्रद इति**। खट्वादिप्रदो भार्यां आर्तत्राणकृत् प्रभुत्वं, **धान्यप्रदः** सार्वकालिकं सुखं वेदप्रदः परब्रह्मसमानगतित्वं प्राप्नोति। सर्वत्र चात्र देयद्रव्यसारासारत्वभूयस्त्वाद्यपेक्षाया दृष्टवत्यल्प (दृष्टफलाल्प) स्याल्पबहुत्वकालादितारतम्यं विज्ञेयम् ।। २३२ ।।

**सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।।**
**वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ।।२३३।।**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य विधेरर्थवादः। दीयन्त इति दानानि देयद्रव्याणि। दानक्रियैव वा दानम्। **ब्रह्मदानं** वेदाध्ययनव्याख्याने। वार्यादीनां सर्वदानोत्तमत्वाद् ग्रहणम् ।। २३३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दीयत इति दानं। वार्यादीनि यानि यानि दानानि तेषां दानानां मध्ये ब्रह्म वेदस्तद्रूपम् ।। २३३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। उदकान्नधेनुभूमिवस्त्रतिलसुवर्णघृतादीनां सर्वेषामेव यानि दानानि तेषां मध्यात् वेददानं **विशिष्यते** प्रकृष्टफलदं भवति ।। २३३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वार्याद्यष्टादशदानानां मध्ये वेददानं श्रेष्ठमित्याह **सर्वेषामिति**। वारीत्यादि दिक्प्रदर्शनं। अष्टादशानां सर्वदा येन गृहीतं उभयलोकसाधनत्वाद्वेदस्य ।।२३३।।

(५) **नन्दनः। सर्वेषां** वार्यादीनां प्रदानानां प्रदेयानां मध्ये ।। २३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः। ब्रह्मदानं** वेदाध्ययनं **विशिष्यते** ।। २३३ ।।

(७) **मणिरामः। सर्वेषामिति** ।। २३३ ।।

(८) **गोविन्दराजः। सर्वेषामिति**। जलान्नगोभूवस्त्रतिलसुवर्णघृतादीनां सर्वेषां यानि दानानि तेषां मध्यात् वेददानं फलाधिक्यात् **विशिष्यते** ।। २३३ ।।

**येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ।।२३४।।**

(१) **मेधातिथिः** । भावशब्दोऽयं चित्तधर्मे वर्तते । यादृशेन भावेन प्रसन्नेन चित्तेन श्रद्धयाऽऽदरेण ददाति तादृशेनैव लभते । अथाश्रद्धयाऽवज्ञया क्लिष्टं परिभूय ददाति सोऽपि तथैव प्राप्नोति । यद्यदपि न द्रव्यजात्यभिप्रायम् । किं तर्हि फलं ? एतदुच्यते । तां तां प्रीतिं तत्तद्द्रव्यसाध्यां प्राप्नोति । जात्यभिप्राये ह्यातुरायौषधदाने औषध एवं लभ्येत । तच्चाव्याधितस्यानुपयोगीति सोऽप्याक्षिप्येत । तस्मात् यादृश्युल्लासाद्यस्य प्रीतिस्तादृशीं चैव प्राप्नोति । अतश्च सर्वदैवौषधदान अरोगित्वमुक्तं भवति । अथवा इदं मे स्यादिति या फलकामना स 'भावः' । यत्फलमभिसंधाय यद्यद्द्रव्यं ददाति तत्तत्प्राप्नोति । तेनैव भावेन तयैवेच्छया यदेवेच्छति तदेव लभत इत्युक्तं भवति । सर्वफलत्वं सर्वद्रव्याणां प्रदर्शितं भवति ।।२३४।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । येन येन भावेन** सात्विकराजसादिना **तेन भावेन** तादृग्भावयोग्येन देवादिदेहेन **प्रतिपूजित**स्तत्तल्लोके ।।२३४।।

(३) **कुल्लूकः** । अवधारणे तुशब्दः । **येन येनैव भावेना**भिप्रायेण फलाभिसन्धिकः स्वर्गो मे स्यादिति मुमुक्षुर्मोक्षाभिप्रायेण निष्कामो यद्यद्दानं ददाति **तेनैव भावेनो**पलक्षितस्तत्तद्दानफलद्वारेण जन्मान्तरे पूजितः सन्प्राप्नोति ।।२३४।।

(४) **राघवानन्दः** । 'श्रद्धयैव देय'मित्युपसंहरन् विपर्यये दोषमाह **येनेति** द्वाभ्यां **भावेन** सात्विकादिना ।।२३४।।

(५) **नन्दनः** । न केवलं वार्यादिप्रदाने तृप्त्यादेर्लाभः । किंतु सर्वस्याप्यभिलषितस्येत्याह **येनेति** ।।२३४।।

(७) **मणिरामः । येन येन तु भावेन** येन येनाभिप्रायेण । सकामः स्वर्गो मे स्यादिति, निष्कामो मोक्षाभिप्रायेण, **यद्यद्दानं प्रयच्छति तत्तत्** मनोभिलषितं **तेनैव भावेन** तत्तद्दानफलद्वारेण जन्मांतरे **पूजितः** सन् **प्राप्नोति** ।।२३४।।

(८) **गोविन्दराजः** । **येनेति** । यादृशेन राजसेन सात्विकेन तामसेन वा शुद्धेन वा मध्यमेनाशुद्धेन वा चित्तधर्मेण च यद्यदेव द्रव्यं ददाति तत्तद्द्रव्यं फलद्वारेण तु **तेनैव** दानगत**भावेन** भावानुरूपेणैव सुखं मध्यमदुःखवता चित्तेन (न) च जन्मान्तरे पूजितः सन् प्राप्नोति ।।२३४।।

**योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव वा ।।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ।।२३५।।**

(१) **मेधातिथिः** । पूजापूर्वकं दातव्यम् । तादृशमेव च प्रतिग्रहीतव्यम् । 'नावज्ञया दातव्य'मिति श्लोकस्य तात्पर्यम् । **अर्चितमिति** क्रियाविशेषणम् ।।२३५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अर्चितं** यथा भवति तथा यद्दीयते पात्रपूजापूर्वकमित्यर्थः। अत्र दातुरर्चितानर्चितदानयोः स्वर्गनरकौ, प्रतिग्रहीतुस्तु अर्चितमेव मया ग्राह्यमिति नियमे फलम्। अनर्चितग्रहणे तु दोषोऽस्त्येव ॥२३५॥

(३) **कुल्लूकः। योऽर्चापूर्वकमेव** दाता **ददाति यश्च** प्रतिग्रहीताऽर्चापूर्वकमेव दत्तं **प्रतिगृह्णाति तावुभौ स्वर्गं गच्छतो**ऽनर्चितदानप्रतिग्रहणे **नरकं**। पुरुषार्थे तु प्रतिग्रहेऽनर्चितमेव मया ग्रहीतव्यं नान्यथेति नियमात्फललाभो न विरुद्धः ॥२३५॥

(४) **राघवानन्दः।** भावमेव व्यनक्ति **य इति**। अर्चितादिद्वयं द्रव्यविशेषणं क्रियाविशेषणं च; तेन सत्कृत्य दत्तं सत्कारपुरःसरमवाप्नोति; तदुक्तं (गीता १७।२०)। 'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥ यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृत'मिति ॥२३५॥

(५) **नन्दनः। अर्चितं** द्रव्यमिति शेषः ॥२३५॥

(६) **रामचन्द्रः। अर्चितं** विधिना विध्युक्तप्रकारेण संकल्पितं गृह्णाति ददाति च ॥२३५॥

(७) **मणिरामः। विपर्यये** अनर्चितदानप्रतिग्रहणे ॥२३५॥

(८) **गोविन्दराजः।** तस्माद्यत्नतः [अर्चित]करेण देयम्। **य इति**। यावर्चापूर्वकं दानप्रतिग्रहौ कुरुतः **तौ** द्वावपि दातृप्रतिग्रहीतारौ **स्वर्गं गच्छतः**। अनर्चितेन करेण पुनः **नरकं** व्रजतः। प्रतिग्रहीतुः सत्यपि वृत्त्यर्थत्वेन दृष्टार्थत्वे प्रतिग्रहस्य 'अर्चितमेव मया ग्राह्यं नान्यथा' इत्येवं नियमादृष्टद्वारेण वचनान्न्यायुक्तः स्वर्गलाभः ॥२३५॥

**न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् ॥**
**नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्वा परिकीर्तयेत् ॥ २३६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** तपसाऽनुष्ठितेन विस्मयं न कुर्यात्। अतितीव्रं तपो मया कृतं सुदुश्चरमित्येवं मनसि न कर्तव्यम्। **इष्ट्वा** यागं कृत्वाऽनृतं न वदेत्। अविशेषेण प्रतिषिद्धस्यापि पुरुषार्थतया पुनः प्रतिषेधो यागाङ्गत्वज्ञापनार्थः। प्रतिषेधातिक्रमे हि ज्योतिष्टोमादेरङ्गहीनता भवति।

**आर्तः** पीडितोऽपि ब्राह्मणैर्न **तानपवदेन्न** निन्देत। **दत्वा** गवादिद्रव्यं न कस्यचिदग्रतः परिकीर्तयेदिदं मया दत्तम् ॥ २३६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। न विस्मयेत** अभिमानं न कुर्यात्। **इष्ट्वा** सोमयागं कृत्वा **नानृतं वदेत्। आर्तो**ऽप्यतिपीडितोऽपि (न) **अपवदेत्** निन्देत् ॥ २३६ ॥

(३) **कुल्लूकः।** चान्द्रायणादितपसा कृतेन कथं मयेदं दुष्करमनुष्ठितमिति विस्मयं न कुर्यात्। यागं च कृत्वा नासत्यं वदेत्, कृतेऽपि पुरुषार्थतयाऽनृतवदननिषेधे क्रत्वर्थोऽयं पुन-

निषेधः । ब्राह्मणैः पीडितोऽपि न तान्निन्दयेत् । गवादिकं च दत्वा मयेदं दत्तमिति परस्य न कथयेत् ।। २३६ ।।

(४) राघवानन्दः । विस्मयादिचतुष्टयकर्तव्यतां सार्थवादं निषेधति **न विस्मयेतेति** द्वाभ्यां । **विस्मयेत** कथं मयेदं दुष्करं कृतं तप इति । यद्वा, अहं तपस्वीति गर्वी न स्यात् । व्रीहिभिर्यागं करोमीति संकल्प्य यवैर्न कुर्यात् **नानृतं वदेदिति** श्रुतेरयमर्थो निर्णीतः । नानिष्ट्वा इष्टं मयेति न ब्रूयात् । स्वरसतो यज्वा अनृतवादी न स्यात् । **आर्तः विप्रैः** परिपीडितोऽपि **तान्न** निन्देत् रोगार्तो वा ।। २३६ ।।

(५) **नन्दनः** । बहुभ्यः कीर्तनं स्ववाचा **परिकीर्तनम्** ।। २३६-३७ ।।

(६) **रामचन्द्रः । तपसा न विस्मयेदित्य**भिमानं न कुर्यात् । **इष्ट्वा** यागं कृत्वा **अनृतं** मृषा **न वदेत्** । आर्तो ब्राह्मणैः पीडितोऽपि **विद्वान्**पंडितः । **अपवदेत्** अपवादं न कुर्यात् न वदेत् **विप्रान्दत्वा** दानं **न कीर्तयेत्** ।। २३६ ।।

(७) **मणिरामः** । **तपसा** चांद्रायणादिना **न विस्मयेत मयेदं** दुष्करं कृतमिति । **आर्तः** ब्राह्मणैः पीडितोऽपि । **विप्रान् नापवदेत्** निंदयेत् ।। २३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः । न विस्मयेतेति** । महतापि कृच्छ्रचान्द्रायणादि**तपसा** कृतेन 'मया कियत्तपः कृतं' इत्येवमाश्चर्यं न भजेत् । यागं च कृत्वा असत्यं न वदेत् । सत्यपि पुरुषार्थत्वेनानृतनिषेधे यागाङ्गत्वार्थः पुनरुपदेशः । तथा पीडितोऽपि ब्राह्मणान् न निन्देत् । दानं कृत्वा 'इदं मया दत्तं' इति न कथयेत् ।। २३६ ।।

## यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ।।
## आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ।। २३७ ।।

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वस्य प्रतिषेधस्यार्थवादोऽयम् । **अनृतेन** हेतुना **यज्ञः क्षरति** स्रवति निष्फलो भवति । यदर्थं कृतं तन्न सम्पद्यते । एवं सर्वत्र ।। २३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः । क्षरति** तादृशफलशून्यो भवति ।। २३७ ।।

(३) **कुल्लूकः । अनृतेन** हेतुना **यज्ञः क्षरति** सत्येनैव स्वफलं साधयति । एवं तपसि दाने च योज्यम् । विप्रनिन्दया **चायुः** क्षीयते ।। २३७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । कृते किं स्यात्तत्राह **यज्ञ इति** । **क्षरति** फलमदत्वैव नश्यति तच्चतुष्टयमित्यर्थः ।। २३७ ।।

(६) **रामचन्द्रः । यज्ञोऽनृतेन क्षरति** नश्यति निष्फलो भवति ।। २३७ ।।

(७) **मणिरामः** । तत्फलमाह **यज्ञ इति** ।। २३७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । यस्मात् **यज्ञ इति** । यस्मात् यज्ञादीन्यनृतादिभिः कृतैरकृतसमानि भवन्ति तस्मादेतन्न कर्तव्यम् ।। २३७ ।।

**धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ॥**
**परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २३८ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । महति दाने महति च तपसि महति च यज्ञे ज्योतिष्टोमादौ यद्यसमर्थस्तदा नोदासीनेन भवितव्यम् । किं तर्हि? **शनैः** शनैः स्वल्पेन दानेन स्वल्पेन तपसा यथाशक्ति परोपकारेण जपहोमाभ्यां स्मार्ताभ्यां **धर्मः** सञ्चेतव्यः । यथा मृत्सङ्घातं **पुत्तिकाः** पिपीलिकाः सञ्चिन्वन्ति । **परलोकसहायार्थ**मिति धर्मफलानुवादः । **सर्वभूतान्यपीडयन्** । याच्ञया धर्मार्थया भूतानां पीडा न कर्तव्या ।। २३८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **वल्मीकं** मृद्रूपम् । **पुत्तिका** मृत्कीटाः । पुत्रिकेति क्वचित्पाठः **सहायः** सहगामी । **भूतान्यपीडयन्निति** हिंसाद्यधर्मेषु नात्यन्तं प्रसज्येतेत्यर्थः ।। २३८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । सर्वप्राणिनां पीडां परिहरन्**परलोकसहायार्थं** यथाशक्ति **शनैः शनैर्धर्म**मनुतिष्ठेत् । यथा **पुत्तिकाः** पिपीलिकाप्रभेदाः शनैः शनैः महान्तं मृत्तिकाकूटं संचिन्वन्ति ।। २३८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । धर्मस्यावश्यकर्तव्यतामाह **धर्ममिति षड्भिः** । **पुत्तिकाः** स्वमूत्रेण भूमिमार्द्रीकृत्य सच्छिद्रं मृत्पुञ्जं संचिन्वन्ति याः पिपीलिकाविशेषास्ताः । **वल्मीकं** प्रसिद्धं । तत्किमर्थं तत्राह **परेति** । **अपीडयन्** वैधेतरहिंसामकुर्वाणः 'अहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्य' इति (छां. उप. ८ । १५ । १) श्रुतेः ।। २३८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **पुत्तिकाः** कृमयः पिपीलिकाः । **वल्मीकमिव संञ्चिनुयात्** ।।२३८।।

(७) **मणिरामः** । **संचिनुयात्** अनुतिष्ठेत् । यथा **पुत्तिकाः** पिपीलिकाः **वल्मीकं** महान्तं मृत्तिकाकूटं संचिन्वन्ति ।। २३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **धर्मं शनैरिति** । सर्वप्राणिपीडां परिहरेत् परलोकोपकारार्थं मृद्राशिं यथा पिपीलिकाः संचिन्वन्ति एवं धर्मं **शनैःशनैः** अर्जयेत् ।। २३८ ।।

**नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥**
**न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । भूतानुवादोऽयम् । **अमुत्र** जन्मान्तरे **सहायार्थं** नरकादिदुःखादुद्धरणार्थं न कस्यचित्सुहृद्बान्धवादेः शक्तिरस्ति । **केवल** एव जीवता यो धर्मः कृतः स तमुद्धरति ।। २३९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **धर्मस्तिष्ठति केवलः** कृत्स्नः ।। २३९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यस्मात्परलोके सहायकार्यसिद्धयर्थं न पितृमातृपत्नीज्ञातयस्तिष्ठन्ति, किंतु **धर्म एवैको** द्वितीयभावेनोपकारार्थमवतिष्ठते । तस्मात्पुत्रादिभ्योऽपि महोपकारकं धर्ममनुतिष्ठेत् ।। २३९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अमुत्र परलोके। अतो न धर्मतुल्यः कश्चित्। पुत्राश्च दाराश्च **तत्पुत्रदारम्**।। २३९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **अमुत्र** परलोके **सहायार्थं** पित्रादयो न तिष्ठन्ति **केवलः** एकः धर्मः **सहायार्थं तिष्ठति**।। २३९ ।।

(७) **मणिरामः**। धर्मत्यागः सर्वथा न कर्तव्य इत्याह **एक एवेत्यादिभिः**।। २३९–२४२ ।।

(८) गोविन्दराजः। **नामुत्रेति**। यस्मात् परलोके सहायकार्यसम्पत्त्यर्थं मातृपितृ-पुत्रभार्याबान्धवा न तिष्ठन्ति। अपि तु **धर्म** एव **केवल** उपकारार्थमास्ते तस्मान्न मात्राद्य-पेक्षया धर्ममुत्सृजेत्।। २३९ ।।

**एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।।**
**एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ।।२४०।।**

(१) **मेधातिथिः**। यथा **जन्तुः** प्राण्येक एव **जायते** न सुहृद्बान्धवादिना स **एक एव प्रलीयते**। न सुहृदो बान्धवाः सहमरणमनुभवन्ति। यदि नाम भार्याऽन्यो वा भक्तो जनस्तन्मरणकाल आत्मानं हन्यात्तथापि पृथगेवासौ मरणक्रिया। अनया न गर्भैक्यमत्रि-वदनुभवन्ति। एवं सुकृतदुष्कृते अपि पृथगेवानुभवन्ति। ननु च 'न पुत्रदारम्' इत्युक्तम्, यावता पुत्रः श्राद्धादिक्रियया पितुरुपकरोत्येव मृतस्यैवं भार्याऽपि। सत्यम्। धार्मिकस्यैव तादृशः पुत्रो भवतीति तत्परमेतत्। यथा जीवतः कस्यचिद्धस्तग्राहिकया कश्चित्सहायो भवत्येवं मृतस्य पुत्रो धर्मद्वारेणैवोपकरोति ।। २४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **प्रसूयते** जायते। **प्रलीयते** म्रियते।। २४० ।।

(३) **कुल्लूकः**। **एक एव** प्राण्युत्पद्यते न बान्धवैः सहितः। **एक एव** च म्रियते। सुकृतफलमपि स्वर्गादिकं च दुरितफलं च नरकादिकमेक एव **भुंक्ते** न मात्रादिभिः सह। तस्मान्मात्राद्यपेक्षयाऽपि धर्मं न त्यजेत्।। २४० ।।

(४) **राघवानन्दः**। **एकोऽ**सहायी। **प्रलीयते** म्रियते। सुकृतभोगेऽपि सहायो नास्ति किं दुष्कृतभोग इत्याह **एक इति**।। २४० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **एक इति**। **एक एव** सन् प्राणी उत्पद्यते न बान्धवैः सहैव। **एक एव** म्रियते। सुकृतदुष्कृतफले च **एक एव भुङ्क्ते**। अतो मात्रादीनां जननमरणदुष्कृत-पीडांशभोक्तृत्वाभावात् न तदपेक्षया धर्मं जह्यात्।। २४० ।।

**मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।।**
**विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।।२४१।।**

(१) **मेधातिथिः**। सह गच्छति। इदं प्रत्यक्षसिद्धं प्रसंख्यानार्थमुच्यते। मृतस्य शरीरं **क्षितावुत्सृज्य काष्ठमिव** निष्प्रयोजनं विमुखा **बान्धवाः प्रतिगच्छन्ति**। **धर्मस्तु** केवलं **पुरुषमनुगच्छति**।। २४१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **काष्ठसमं** दाहपक्षे। **लोष्टसमं** भूमिप्रापणपक्षे ।। २४१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मृतशरीरं मनःप्राणादित्यक्तकाष्ठलोष्टवदचेतनं भूमौ त्यक्त्वा पराङ्मुखा बान्धवा यान्ति न मृतं जीवमनुयान्ति। **धर्मस्तु तमनुगच्छति** ।। २४१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **क्षितौ** प्रक्षेपाधारे। **यान्ति** स्वगृहं प्रति। तत्रापि **विमुखाः** अहो कष्टं वर्तते ।। २४१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तं मृतं धर्मः अनुगच्छति ।। २४१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **मृतमिति**। मृतस्य **शरीरं** काष्ठवदवज्ञया भूमौ परित्यज्य पराङ्मुखा **बान्धवा गच्छन्ति** न तत्सहायार्थं वर्तन्ते। **धर्मः** पुनः तं परलोके यान्तं पश्चादनुगच्छति ।। २४१ ।।

**तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ।।**
**धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ।।२४२।।**

(१) **मेधातिथिः**। उपसंहारोऽयम्। **दुस्तरं तमः** कृच्छ्रेण यत्तीर्यते। तमो दुःखम्। तदपि धर्मेण सहायेन सुतरं भवति, न हि तादृशे तमसि मज्जतीत्यर्थः ।। २४२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शनैरिति**। नात्यन्तमात्मानमवसादयेदित्यर्थः ।। २४२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्माद्धर्मेण **सहायेन** दुस्तरं **तमो** नरकादिदुःखं तरति **तस्माद्धर्मं** सहायभावेन **सततं शनैरनु**तिष्ठेत् ।। २४२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। स्वौत्सुक्यमाह **तस्मादिति**। **तमः** नरकं अविद्यां। अन्तःकरण-शुद्धिद्वारा ज्ञानावाप्त्या ।। २४२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **तमः** नरकं **तरति** ।। २४२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **तस्मादिति**। यस्माद्धर्मेण **सहायेन** सता **दुस्तर**नरकादिदुःखं **तरति तस्मात् धर्मं सहायार्थं** सर्वदा **शनैर**र्जयेत् ।। २४२ ।।

**धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ।।**
**परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ।। २४३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। धर्मः प्रधानं यस्यासौ **धर्मप्रधानो** धर्मपरायणो यथाविहितकर्मानुष्ठायी। **तपसा हतकिल्बिषं** कथंचित्प्रमादकृतव्यतिक्रमे तपसा प्रायश्चित्तेन हतकल्मषं शास्त्रव्यतिक्रमे जातोऽसौ दोषस्तस्मिंस्तत्प्रायश्चित्तेन नष्टे **परलोकं नयति भास्वन्तं** परलोकं देवस्थानं स्वर्गादि **नयति** प्रापयति। कः ? प्रकृतत्वाद्धर्म एव। शरीरिणं पुरुषं स्वेन शरीरेण 'स्वशरीरी'। न यथाऽन्येषां पुरुषाणां पाञ्चभौतिकं शरीरमेवं तस्य। किं तर्हि ? स्वमेव शरीरं ब्रह्म। विभुत्वमनेनोच्यते ।। २४३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **तपसा** चान्द्रायणादिना। **नयति धर्मः खशरीरिणं** आकाशवत् क्वचिदप्यप्रतिहतदेहम् ।। २४३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। धर्मपरं पुरुषं दैवादुपजाते पापे प्राजापत्यादितपोरूपप्रायश्चित्तेन हतपापं दीप्तिमन्तं प्रकृतो धर्म एव शीघ्रं ब्रह्मस्वर्गादिरूपं **परलोकं** नयति। 'खं ब्रह्म'-(बृह. ५। १। १)त्याद्युपनिषत्सु खशब्दस्य ब्रह्मणि प्रयोगः **खशरीरिणं** ब्रह्मस्वरूपमित्यर्थः। यद्यपि लिङ्गशरीरावच्छिन्नो जीव एव गच्छति तथापि ब्रह्मांशत्वाद्ब्रह्मस्वरूपमुपपन्नं धर्म एव चेत्परं लोकं नयति ततो धर्ममनुतिष्ठेत्। 'नहि वेदाः स्वधीतास्तु शास्त्राणि विविधानि च। तत्र गच्छन्ति यत्रास्य धर्म एकोऽनुगच्छति'॥ २४३॥

(४) **राघवानन्दः**। अहो धर्मस्यासाध्यं नास्तीत्याह **धर्ममिति**। **धर्मप्रधानं** फलप्रधानं परलोकं परं ब्रह्मैव लोकं आत्मा येषां 'नोऽयमात्मायं लोक' इति श्रुतेः। **स्वशरीरिणं** आकाश-शरीरं **ब्रह्मभूतं** 'आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिते' (छा. ८। १४। १)त्यादौ ब्रह्मण्याकाश-शब्दप्रयोगात्। **नयति** प्रापयति **धर्म एव** परंपरयेति शेषः॥ २४३॥

(६) **रामचन्द्रः**। कीदृशं पुरुषं? **खशरीरिणं** आकाशवदप्रतिहतगतिम्॥ २४३॥

(७) **मणिरामः**। स्वशरीरिणं **परलोकं** ब्रह्मस्वर्गादिरूपं (बृ. उप. ५। १। १) 'खं ब्रह्म'इति श्रुतेः। प्रकृतत्वात् धर्म एव। **आशु नयतीत्यर्थः**॥ २४३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **धर्मप्रधानमिति**। धार्मिकं **पुरुषं** कथञ्चित् प्रमादकृते च व्यति-क्रमे प्रायश्चित्तेनापगतपापं स्वतेजःपुंजोज्ज्वलितं विचरत्वात् ब्रह्मवदाकाशात्मकं सन्तं प्रकृतो धर्मः क्षिप्रं **परलोकं नयति**। तस्मात् धर्मं शनैः सञ्चिनुयात्॥ २४३॥

**उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह॥**
**निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत्॥ २४४॥**

(१) **मेधातिथिः**। बहुप्रकारत्वादुत्तमस्य तदपेक्षा वीप्सा। कश्चिज्जात्योत्कृष्टः कश्चिद्विद्यया कश्चिच्छीलेन। अथवा सम्बन्धिभेदाद्यः कश्चित्सम्बन्धो येन केनचिदुत्तमेन योग्यः। **उत्तमैरुत्तमै**र्जात्यादिभिरुत्कृष्टैः कन्यादानादिलक्षणान्**सम्बन्धानाचरेत्कुर्यान्निनीषु**-र्नेतुं प्रापयितुमिच्छुः **कुलमुत्कर्षं** श्रेष्ठचम्। **अधमानधमांस्त्यजेत्**। उत्तमैरेव विधाना-दधमानां त्यागे सिद्ध उत्तमासम्भवे मध्यमानुज्ञानार्थं त्यागवचनम्। **अधमा** निकृष्टाः॥ २४४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **संबन्धान्** विवाहयाजनमैत्र्यादीन्॥ २४४॥

(३) **कुल्लूकः**। **कुलमुत्कर्षं** नेतुमिच्छन्विद्याचारजन्मादिभिरुत्कृष्टैः सह सर्वदा कन्यादानादिसंबन्धानाचरेत्। अपकृष्टांस्तु **संबन्धांस्त्यजेत्**। उत्तमविधानादेवाधमपरित्यागे सिद्धे यत्पुनः'अधमांस्त्यजेदि'त्यभिधानं तदुत्तमासंभवे स्वतुल्याद्यनुज्ञानार्थम्॥ २४४॥

(४) **राघवानन्दः**। कुलस्योत्कर्षोपायमाह **उत्तमैरिति** द्वाभ्याम्। वेदाचारनिष्ठैः **संबन्धान्**ब्राह्मान्। यौनांश्च **निनीषुः** प्रापयितुमिच्छुः। वीप्साऽत्र जात्युत्कर्षविद्योत्कर्षधर्मो-त्कर्षाद्यपेक्षया। त्यजेदित्यन्यत्यागस्यार्थिकत्वेऽप्युत्तमालाभेऽधमोऽपि ग्राह्य इत्यर्थम्॥ २४४॥

(६) **रामचन्द्रः**। **उत्तमैः** कुलैः सह संबन्धान्कुर्वन् आचरेत् कुलं **उत्कर्षं** **निनीषुः** प्रापयिषुः **अधमांस्त्यजेत्** ।। २४४ ।।

(७) **मणिरामः**। सत्सङ्गः कर्तव्य इत्याह **उत्तमैरिति**। निनीषुः नेतुमिच्छन् ।। २४४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **उत्तमैरुत्तमैः** **सार्धमिति**। कुलमुत्कृष्टतां नेतुमिच्छन् श्रुताभिजनाद्युत्कृष्टैः सह अनवरतं कन्यादानादिसम्बन्धानाचरेत्। अपकृष्टान् तत्सम्बन्धेषु परिहरेत्। उत्तमविधानादेवाधमव्यावृत्तिसिद्धे पृथग्वचनमुत्तमाभावे समाभ्यनुज्ञार्थम् ।। २४४ ।।

**उत्तमानुत्तमानेव गच्छन् हीनांस्तु वर्जयन् ।।**
**ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ।। २४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **उत्तमान्गच्छं**स्तैः सह सम्बन्धं कुर्वन्**ब्राह्मणः** **श्रेष्ठतामेति**। ब्राह्मणग्रहणं क्षत्रियवैश्ययोरपि प्रदर्शनार्थम्। **प्रत्यवायेन** विपरीताचरणेन हीनैः सह सम्बन्धेन प्रातिलोम्येन **शूद्रतां** गच्छति। जातेरनपायात् तत्तुल्यतां प्राप्नोतीत्युक्तं भवति ।। २४५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **प्रत्यवायेन** प्रतिकूलगमनेनाधर्म्यसंबन्धेनेति यावत् ।। २४५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **उत्तमान्गच्छं**स्तैः सह संबन्धं कुर्वन्**ब्राह्मणः** **श्रेष्ठतां** गच्छति। **प्रत्यवायेन** विपरीताचारेण हीनैः सह संबन्धे जातेरपकर्षतया शूद्रतुल्यतामेति ।। २४५।।

(४) **राघवानन्दः**। धर्मानुष्ठानेन **ब्राह्मणो** ब्रह्मबन्धुः **श्रेष्ठतामेति**। **हीनानवरान्**। हीनस्त्रीपाखण्डादिगमनं प्रत्यवायस्तेनावरसंबन्धेन ।। २४५ ।।

(५) **नन्दनः**। **प्रत्यवायेनो**क्तविपर्ययेण क्रियायाम्। **शूद्रतां** शूद्रसमताम् ।। २४५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। उत्तमैः सह संबन्धान्कुर्वन्ब्राह्मणः **श्रेष्ठतामेति**। एवं क्षत्रियवैश्ययोरपि **प्रत्यवायेन** प्रतिकूलाचरणेन **शूद्रतां** ब्राह्मण एति। स्वधर्मेण **श्रेष्ठतां** **एति** ।। २४५ ।।

(७) **मणिरामः**। **प्रत्यवायेन** विपरीताचरणेन ।। २४५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **उत्तमानुत्तमानेव** **गच्छन्** हीनांश्च **वर्जयन्निति** उत्तमसंबन्धेषु उत्तमाननुसरन् निकृष्टांश्च **वर्जयन्** **ब्राह्मणः** **श्रेष्ठत्वं** प्राप्नोति। विपर्ययन् पुनः जातेरनपायात् शूद्रतुल्यतां प्राप्नोति ।। २४५ ।।

**दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।।**
**अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ।।२४६।।**

(१) **मेधातिथिः**। कर्तव्येषु दृढनिश्चयो **दृढकारी**। यत्करोति तदवश्यं समापयति न पुनः कार्यमारभ्यासमाप्य निवर्तते, नानवस्थित इत्यर्थः। तदुक्तं "प्रारब्धस्यान्त-

गमनम्"। **मृदुरनिष्ठुरः**। **क्रूराचारैः** स्तेनादिभिर्न सम्बन्धः। तैः सह सम्बन्धमकुर्वन्। तथा **दमदानाभ्यां स्वर्गं जयेत्**प्राप्नुयात्। **तथाव्रतः**। एतद्व्रतं नियमं धारयन्। दमस्य पृथगुपादानाद्दान्तो द्वन्द्वसहिष्णुर्द्रष्टव्यः ॥ २४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **दृढकारी** यद्धर्मसाधनं कर्तुं प्रवृत्तस्ततो न विरतः **मृदुः** मृदुवाक् **दान्तः** क्लेशसहः। **असंवसन्** सहावसन् दमदानाभ्यामिति दमशब्देन तपःक्लेशसहत्वाभिधायिना तपो लक्ष्यते। व्रतैर्निषिद्धानाचरणनियमैः। क्वचित् 'तथाव्रत' इति पाठस्तत्र तादृक्गृहीतनियम इत्यर्थः ॥ २४६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रारब्धसंपादयिता **दृढकारी**। मृदुरनिष्ठुरः। दमस्य पृथगुपादानाद्दान्त इति शीतातपादिद्वन्द्वसहिष्णुर्ग्रहीतव्यः। **क्रूराचारैः** पुरुषैः संसर्गं परिहरन्नर-हिंसानिवृत्तः। **तथाव्रत** एव नियमदमेन्द्रियसंयमाख्येन च दानेन **स्वर्गं** प्राप्नोति ॥ २४६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **दृढकारीति**। प्रारब्धकर्मसमापयिता। **क्रूराचारैः** क्रूर आचारो विप्रहिंसादिर्येषां **तथाव्रतः** उक्तसाधननिष्ठः। **जयेत्** प्राप्नुयात्। केन? **दमदानाभ्या,** दमो बाह्येन्द्रियनियमः। दानम् प्रसिद्धम् ॥ २४६ ॥

(५) **नन्दनः**। धर्मसमुच्चयमाह **दृढेति** ॥ २४६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **क्रूराचारैः** पुरुषैः **स्तेनादिभिः असंवसन्** वसेत्। **दमः** इन्द्रियनिग्रहः। **समाहितः**। 'तथाव्रत' इति पाठः ॥ २४६ ॥

(७) **मणिरामः**। **दृढकारी** प्रारब्धसंपादयिता। **दांतः** शीतातपसहिष्णुः। **तथाव्रतः** एवं नियमदमेंद्रियसंयमाख्येन च **दानेन स्वर्गं जयेत्** ॥ २४६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **दृढकारीति**। आरब्धसम्पादनशक्तिः अक्रूरः शीतातपादि, द्वन्द्वसहिष्णुः निर्दयाचारैः सहावसन् अहिंसको गः स एवं नियमः सदमेनोपशमेन इन्द्रियसंयमाख्येन दानेन च **स्वर्गं** प्राप्नुयात् ॥ २४६ ॥

**एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥**
**सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ॥२४७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एध** इन्धनं काष्ठादि। **अन्नं** पक्वमामं वा। **अभ्युद्यत**मभिमुखमुपनीतम्। एतत्सर्वतः प्रतिग्रहीतव्यम्। पतिताभिशस्तचण्डालादिप्रतिलोमवर्जं शूद्रादन्यस्माद्वा ईषत्पापकर्मणः।

**मधु** माक्षिकम्। **अभयं दक्षिणेव**। दृष्टान्तार्थमेतत्। प्रतिग्रहो हि परकीयस्य द्रव्यस्य तदिच्छया स्वीकारो न चान्नरूपता। न ह्यत्र कस्यचित्स्वाम्यं निवर्तते; न च कस्यचिदुपजायते। अतः स्तुत्या दक्षिणाशब्दप्रयोगः। यथा चण्डालादिभ्योऽप्यरण्ये कान्तारे वा रक्षा चौरादिभ्योऽङ्गीक्रियमाणा न दोषायैवमेतदेधादि गृह्यमाणं न दोषाय। अनापदि चायं विधिः। आपदि तु चण्डालादिभ्योऽपि वक्ष्यति। अभ्युद्यतशब्दश्चान्नेनैव सह सम्बध्यते प्रत्यासत्त्या, नैधादिभिः। अत एधादिषु याच्ञाऽविरुद्धा। "धार्मिकेभ्यो

द्विजातिभ्यः कर्तव्यस्तु परिग्रहः" इत्यधार्मिकेभ्यो द्विजेभ्यः शूद्राच्चाप्राप्तः। इष्यते च द्रव्यविशेषोपयाच्ञा। तदर्थं मदम् ॥ २४७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्राभयदक्षिणाव्यतिरिक्तेष्वभ्युद्यतमिति सर्वत्र संबध्यते। **अभ्युद्यतमभ्यर्थ्य** दत्तम्। **सर्वतो** प्रतिग्राह्यवित्तादपि **प्रतिगृह्णीयात्** प्रतिगृहीतृवृत्तौ नतु तन्निवृत्तोऽपि याचित्वा ग्रहणे तु दोषः। **अभयरूपां दक्षिणाम्** ॥ २४७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। काष्ठजलफलमूलमधूनि **अन्नं चाभ्युद्यतम**याचितोपनीतम्। 'अन्यत्र कुलटाषण्ढपतितेभ्यस्तथा द्विष' इति (आचार. २१५) **याज्ञवल्क्यव**चनात्कुलटादिवर्जं **सर्वतः** शूद्रादिभ्योऽपि **प्रतिगृह्णीयात्**। 'आममेवाददीतास्मादि' (४। २२३) त्युक्तत्वादामान्नमेव शूद्रात्प्रतिग्राह्यं; **अभयं** चात्मत्राणात्मकं प्रीतिहेतुत्वाद्दक्षिणातुल्यं चण्डालादिभ्योऽपि स्वीकुर्यात् ॥ २४७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। द्रव्याभावे कथं दानमिति चेत्तत्रेदृशीं भिक्षां सार्थवादां सर्वतो ग्राह्यामाह **एध इति चतुर्भिः**। **अभ्युद्यतं** अयाचितोपपन्नं। एध आदिषण्णां विशेषणं। 'अन्यत्र कुलटाषण्ढपतितेभ्यस्तथा द्विष' इति **याज्ञवल्क्यव**चनात्तदन्येभ्यः। शूद्रादिभ्योऽपि **गृह्णीयात्**। **अभयं** स्वात्मत्राणं तदेव दक्षिणा, प्रीतिहेतुत्वात् ॥ २४७ ॥

(५) **नन्दनः**। अथानापद्यपि प्रतिग्राह्याण्याह **एध इति**। **अभयदक्षिणामभय**-दानम् ॥ २४७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ग्राह्यवस्तून्याह **गन्धेति**। गन्धं सुगन्धं कर्पूरादिकं। **यदभ्युदितं** अभ्यर्थ्य दत्तम्। **च** पुनः **उदकादिकं सर्वं प्रतिगृह्णीयात्** ॥ २४७ ॥

(७) **मणिरामः**। **एधः** काष्ठं, **अभ्युद्यतं** अयाचितोपनीतम् ॥ २४७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एधोदकमिति**। काष्ठोदकफलमूलमाक्षिकमन्नं च अयाचितोपनतं अनापत्प्रकरणात् पतिताद्यत्यन्तकुत्सितवर्जं **सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्**। तथा **अभयं** चात्मपरित्राणं अत्यन्तप्रीतिकरं मत्वा दक्षिणातुल्यं आत्मभयरक्षणसमर्थमिति **सर्वतश्च**-ण्डालादेरप्यङ्गीकुर्यात् ॥ २४७ ॥

**आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ॥**
**मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २४८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एधादतिरेकेण यदन्यद्द्रव्यं तस्याप्यनेन विशेषेण ग्राह्यतोच्यते। भिक्षाशब्दश्च प्रशंसायां प्रयुक्तो न भिक्षैव विवक्षिता, यद्यप्ययं सिद्धान्नालपतावचनः। भिक्षा किल स्वल्पत्वान्नातीव दोषावहा। ब्रह्मचारिणश्च सार्ववर्णिकी विहिता। एवमन्यदप्यनेन विशेषेण तत्तुल्यं दृष्टम्। भिक्षाशब्दस्यैवंविधार्थविवक्षया प्रयोगः। तथाहि **महाभारते** (१। २०६। १)

**"गवा हृषुभौ भार्गवकर्मशालां पार्थौ पृथां प्राप्य महानुभावौ।**
**तौ याज्ञसेनीं परमप्रतीतौ भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ" ॥ इति ॥**

आहृतोपहृता तं देशमानीता यत्र प्रतिग्रहीता स्थितः। **अभ्युद्यता**ऽग्रे स्थापिता वचनेनेङ्गितेन वा गृह्यतामिति निवेदिता। **पुरस्तात्**पूर्वम**प्रचोदिता**ऽयाचिता प्रतिग्रहीत्रा। स्वयं परमुखेन वा दात्रा पूर्वं नोक्तमिदं मे द्रव्यमस्ति तत्प्रसादमाश्रित्य गृह्यतामिति केवलमतर्कितोपपादिता तत्काल एव दर्शिताभिप्राया। तादृशीं **भिक्षां प्रजापतिर्हि**रण्यगर्भो **मेने** मन्यते स्म। किमिति? दुष्कृतकर्मणोऽपि सकाशाद्ग्राह्येति। दुष्कृतं पापं कर्म यस्यासौ दुष्कृतकर्मा ।। २४८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** भिक्षां आहृतां स्वगृहं **अभ्युद्यतां** प्रयत्नोपहृतां **पुरस्तात्पूर्वमप्रचोदितां** दास्यामीत्यनिवेदिताम् ।। २४८ ।।

(३) **कुल्लूकः। आहृतां** संप्रदानदेशमानीताम्। **अभ्युद्यताम्**आभिमुख्येन स्थापिताम्! **अप्रचोदितां** प्रतिग्रहीत्रा स्वयमन्यमुखेन वा पूर्वमयाचितां दात्रा च तुभ्यमिदं ददानीति पूर्वमकथितां हिरण्यादिभिक्षां, न तु सिद्धान्नरूपां 'अन्नमभ्युद्यतं चे' (४।२४७)-त्युक्तत्वात्पापकारिणोऽपि पतितादिवर्जं **ग्राह्या** इति विरिञ्चिरमन्यत ।। २४८ ।।

(४) **राघवानन्दः।** किंच **आहृतां** संप्रदानदेशमानीतां **अभ्युदितां** आभिमुख्येन स्थापितां **अप्रचोदितां** प्रतिग्रहीत्रा स्वयमन्यमुखेन वाऽयाचितां दात्रा तुभ्यं ददानीति पूर्वमकथितां च गोहिरण्यादिरूपाम् ।। २४८ ।।

(५) **नन्दनः।** न केवलमभ्युद्यतमन्नं प्रतिग्राह्यमेव किंतु भोज्यमपीत्याह **आहृतेति। आहृतां** दात्रा प्रतिग्रहीत्रे दातुमानीताम्। **उद्यतां** देयत्वेनोत्क्षिप्ताम्। **भिक्षा**मन्नम् ।। २४८ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** आनीतां **अभ्युदितां** अभ्यर्च्य प्रार्थ्य दत्तां **भिक्षां** नोदितां **ग्राह्यां प्रजापतिः मेने** अपि **दुष्कृतकर्मणः सकाशात्** ।। २४८ ।।

(७) **मणिरामः। आहृतां** संप्रदानदेशमानीतां **अभ्युद्यतां** आभिमुख्येन स्थापितां **पुरस्तादप्रणोदितां** प्रतिग्रहीत्रा स्वयमन्यमुखेन वा पूर्वमयाचितां। दात्रा च तुभ्यमिदं ददानीति पूर्वमकथितां हिरण्यादिभिक्षां नतु सिद्धान्नरूपां। 'अन्नमभ्युद्यतं चे'त्युक्तत्वात्। एतादृशीं **दुष्कृतकर्मणोऽपि ग्राह्यां प्रजापतिः मेने** अमन्यत ।। २४८ ।।

(८) **गोविन्दराजः। आहृताभ्युद्यतामिति।** प्रतिग्रहीतृदेशमानीतां दातुं चोद्यमितां 'इदं तुभ्यं दास्यामि' इत्येवं पूर्वमकथितां गोहिरण्यादिभिक्षां दुष्टकर्मकारिणोऽपि अनापत्प्रकरणात् पतिताद्यत्यन्तकुत्सितवर्जं हिरण्यगर्भो ग्राह्यं मन्यते स्म ।। २४८ ।।

**नाश्नन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च ।।**
**न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ।।२४९।।**

**[ चिकित्सककृतघ्नानां शिल्पकर्तुश्च वार्धुषेः ।।**
**षण्ढस्य कुलटायाश्च उद्यतामपि वर्जयेत् ।।१।।* ]**

**[ न विद्यमानमेव वै प्रतिग्राह्यं विजानता ।।**
**विकल्प्याविद्यमाने तु धर्महीनः प्रकीर्तितः ।।२।।* ]**

(१) **मेधातिथिः**। अथाग्रहणनिन्दार्थवादः। अथ यो यत्नैतामवधीरयति **तस्य पितरः श्राद्धं नाश्नन्ति** न प्रतीच्छन्तीति। **अग्निश्च देवेभ्यो हव्यं न वहति**। पित्र्याद्दैवाच्च कर्मणो न फलं लभ्यत इत्यर्थः।

अत्र कश्चिदाह। "अनुपयुज्यमानमपि दातुरनुग्रहार्थमवश्यमीदृशं ग्रहीतव्यम्"।

तत्त्वयुक्तम्। निर्दोषताऽस्यायाचितप्रतिग्रहस्योच्यते। प्रतिप्रसवो ह्ययम्। प्रतिषिद्धस्य च प्रतिप्रसवो भवति। लौकिक्या चार्थितया प्राप्तिः प्रतिषिद्धा सैव प्रतिप्रसूयते॥ २४९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पञ्चदशवर्षाणि** पित्र्यं दैवं च तस्य वृथा भवति **यस्तामवमन्यते** प्रतिक्षिपतीति निन्दार्थवादः। पूर्वविधिविशेषो दोषाणां दृढीकरणार्थः॥ २४९॥

(३) **कुल्लूकः**। तेनोपकल्पितं श्राद्धेषु कव्यं **पञ्चदशवर्षाणि पितरो न भुञ्जते** नच यज्ञेषु तेन दत्तं पुरोडाशादिहव्यमग्निर्वहति देवान्प्रापयति **यस्तां भिक्षां न** स्वीकरोति॥ २४९॥

(४) **राघवानन्दः**। ईदृशीं परित्यजन् हव्यकव्ययोः फलं न प्राप्नोतीत्याह **नेति**। **अभ्यवमन्यते** न स्वीकरोति॥ २४९॥

(५) **नन्दनः**। तस्य दीयमानां भिक्षा**मभ्यवमन्यते** प्रत्याख्यति॥ २४९॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यः** पुरुषः एतादृशीं भिक्षां **अवमन्यते तस्य** पुरुषस्य **पितरः नाश्नन्ति अग्निः हव्यं** न **वहति** न स्वीकरोतीत्युच्यते। भिक्षाशब्दः प्रशंसायां प्रयुक्तो न भिक्षैव, भिक्षैव चेद्ब्रह्मचारिणः सार्ववर्णिकी अभिहिता; तस्मादर्थविशेषे भिक्षाशब्दः अपरत्र च॥ २४९॥

[ ***रामचन्द्रः**। **चिकित्सकेति**। चिकित्सकादिभिः उद्यतां भिक्षां वर्जयेत्॥१॥]

[ ***रामचन्द्रः**। **न विद्येति**। गन्धादिव्यतिरेकेण यदन्यद्द्रव्यं तस्याप्यनेन विशेषेण न ग्राह्यत्वम्॥ २॥]

(७) **मणिरामः**। **तां** भिक्षां, **अवमन्यते** न स्वीकरोति॥ २४९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नाश्नन्तीति**। तदीयं कव्यं **पञ्चदशवर्षाणि पितरो** नादन्ति **हव्यं च** पुरोडाशादि देवान् प्रति **अग्निः** न प्रापयति **यस्तां** भिक्षां प्रत्याचष्टे॥ २४९॥

**शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपः पुष्पं मणीन्दधि॥**
**धाना मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत्॥२५०॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शय्यादी**न्यनाहृतान्यपि **न निर्णुदेन्न** प्रत्याचक्षीत। यदि गृहेऽवस्थितानि द्रव्याणि कैश्चिदुच्यते चेदमिदमाहराम्येतत्प्रतीक्ष्यतां तदा न प्रत्याख्येयानि॥ २५०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पयो** दुग्धं न **निर्णुदेत्** परिहरेत्। एतत्सर्वं प्रतिग्राह्य-द्रव्यादागतं प्रयोजनाभावादिप्रतिसंधानेन न त्याज्यं; त्यागे तु दोष इत्यर्थः ।। २५० ।।

(३) **कुल्लूकः**। **गन्धान्**गन्धवन्ति कर्पूरादीनि। **धानाः** भृष्टयवतण्डुलान्। **पयः** क्षीरं। पूर्वमाहरणोपायनिबन्धनं गवादीनामप्रत्याख्यानमुक्तं शय्यादीनि त्वयाचिता-हृतान्यपि दात्रा स्वगृहस्थितान्ययाचितोपकल्पितानि न प्रत्याचक्षीत ।। २५० ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच गुर्वादीनां पोष्टा नैतान्परित्यजेदित्याह **शय्यामिति**। **मणीन्** मरकतादीन्। **धाना** भृष्टयवान् एतान्न **निर्णुदेत्** न त्यजेत्। गुर्वाद्युपजीवनार्थं सर्वमादेयम् ।। २५० ।।

(५) **नन्दनः**। अन्यदप्यभ्युद्यत प्रतिग्राह्यमाह **शय्यामिति**। **निर्णुदेन्निराकुर्यात्**। निर्णुदेदिति वचनाद्दातुमभ्युद्यतमिति गम्यते ।। २५० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ग्राह्याण्याह **शय्यामिति**। शय्यागृहादीन्न **निर्णुदेत्** न त्यजे-दित्यर्थः ।। २५० ।।

(७) **मणिरामः**। **न निर्णुदेत्** न त्याक्षात् ।। २५० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **शय्यां गृहमिति**। शयनगृहदर्भोदकपुष्परत्नदधिधानामत्स्य. क्षीरमांसशाकानि गन्धवन्ति च कर्पूरादीनि अयाचितोपस्थितानि न प्रत्याचक्षीत। एधो-दकादिवाक्यपठितस्योदकस्येह पुनः पाठः श्लोकद्वयस्य पठितयोः प्रत्याख्याने तुल्यत्वज्ञापनार्थः तथाच **गौतमः** 'एधादीनि शय्यादिभिः सहै'कस्मिन् सूत्रे सह पठितवान् ।। २५० ।।

**गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन् देवतातिथीन् ।।**
**सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ।।२५१।।**

(१) **मेधातिथिः**। **गुरव** उपदेशातिदेशैर्बहवः। **भृत्या** आश्रिताः स्मृत्यन्तरे तु संख्याताः–"वृद्धौ तु मातापितरौ भार्या साध्वी सुतः शिशुः"। तानुद्धर्तुमिच्छुः क्षुधावसन्नान्। **देवतातिथींश्चार्चिष्यन्**नित्यकर्मसम्पत्त्यर्थमित्यर्थः। **सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्**साधुभ्योऽसाधुभ्यश्च। **न तु तृप्येत्स्वयं ततः**। 'तृप्तिः' क्षुन्निवृत्तिरुपभोगश्च, तन्न कुर्यात्। गुर्वादिप्रयोजनमेव तद्ग्रहीतव्यं न त्वात्मार्थम् ।। २५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **गुरून्** मातृपित्राचार्योपाध्यायादीन्। **उज्जिहीर्षन्**वृत्त्या नश्यत उत्तरिष्यन्। **देवता अतिथींश्चार्चिष्यन्निति** प्राक्संकल्पकत्वे सत्यर्चनस्य। **सर्वतो** निन्दितादपि। **तृप्येदु**पयुञ्जीत तस्यांशेन ।। २५१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मातापित्रादिगुरून्**भृत्यांश्च** भार्यादीन् क्षुधावसन्नानुद्धर्तुमिच्छन्पतिता-दिवर्जं **सर्वतः** शूद्रादेरसाधुभ्यश्च **प्रतिगृह्णीयात्**, नतु तेन धनेन स्वयं वर्तेत ।। २५१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अतः कुलटादिभ्योऽपि प्रतिगृह्णीयादित्याह **गुरूनिति**। **गुरूनु**-पदेष्टॄन् भृत्यानाश्रितान् भार्यादींश्चो**ज्जिहीर्षन्** क्षुद्व्याधिभ्य उद्धर्तुमिच्छन् अदृष्टार्थ-**मर्चिष्यन् न तु तृप्येत्** तद्धनं स्वभोगाय नादद्यात् ।। २५१ ।।

(५) **नन्दनः**। एवं द्रव्यविशेषतः सर्वात्मा प्रतिग्रह उक्तः. इदानीमुपयोगविशेषतोऽप्याह **गुरूनिति**। **गुरवः** पित्रादयः। **भृत्याः** पुत्रदारादयः! **उद्धरिष्यन्नापद** इति शेषः। ततः **स्वयं न तृप्येत्तेन** प्रतिगृहीतेन द्रव्येण स्वशरीरं न पोषयेत् ।। २५१ ।।

(६) **रामचन्द्रः! गुरून्भृत्यांश्च उज्जिहीर्षन्** अवृत्त्या नश्यतः उद्धरिष्यन्**सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्** ततः प्रतिग्रहात्स्वयं न तृप्येत् ।। २५१ ।।

(७) **मणिरामः। गुरून्** मातापित्रादीन्। **उज्जिहीर्षन्** क्षुधापीडितान् गुर्वादीन् उद्धर्तुमिच्छन् ।। २५१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। गुरून् भृत्यानिति**। मातापित्रादीन् **गुरून् भृत्यान्** भार्यापुत्रादीनवश्यंभरणीयान् क्षुधादसन्नान् उद्धर्तुमिच्छन् **देवतातिथींश्च** पूजयिष्यन् अनापत्प्रकरणात् पतिपाद्यत्यन्तकुत्सितवर्जं **सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्** न रूपान्तरसद्भावे सति तेन धनेन आत्मनस्तृप्तिं कुर्यात्। मुख्योपायपरिक्षये हि अवृत्तिकर्शितः संसीदन्नित्यापद्धर्मं वक्ष्यति ।।२५१।।

**गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् ।।**
**आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन् गृह्णीयात्साधुतः सदा ।।२५२।।**

(१) **मेधातिथिः**। तर्ह्यात्मा यापयितव्योऽत आह—कथं **अभ्यतीतेष्व**तीतेषु **विना वा तैर्**जीवन्तोऽपि यदि पृथग्वसन्ति। गुरुग्रहणं सर्वेषां च भृत्यानामपि प्रदर्शनार्थम्। **आत्मनो वृत्तिं** जीवनं प्रतीच्छन्नर्थयमानः **साधुभ्यो** धार्मिकेभ्यः **प्रतिगृह्णीयात्**। जातेरत्रानुपादानाच्छूद्रादपि धार्मिकादस्ति परिग्रहः। तदुक्तम् 'नाद्याच्छूद्रस्य" (४। २२३) इत्यादि ।। २५२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः। अत्यभ्यतीतेषु** मृतेषु **विना तै**स्तेषु जीवत्स्वपि। **वृत्तिं** जीवनं साधुतः प्रतिग्राह्यत एव ।। २५२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मातापित्रादिषु मृतेषु **तैर्वा** जीवद्भिरपि स्वयोगावस्थितैर्विना गृहान्तरे वसन्नात्मनो **वृत्तिमन्विच्छन्सर्वदा** साधुभ्यो गृह्णीयादेव ।। २५२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। गुर्वाद्युपरते तु न तथा कुर्यादित्याह **गुरुष्विति**। पितृमात्राचार्येष्व**भ्यतीतेषु** प्रव्रज्यामरणमहापातकाद्यैरसंबद्धेषु ।। २५२ ।।

(५) **नन्दनः**। आत्मार्थं साधुभ्य एव प्रतिगृह्णीयान्नासाधुभ्य इत्याह **गुरुषु त्विति**। **तैर्विना** गुरुभिर्विना स्वप्रतिगृहीतद्रव्यनिरपेक्षेषु गुरुष्वित्यर्थः। **सदा** आपद्यपि ।। २५२ ।।

(६) **रामचन्द्रः। गुरुषु अभ्यतीतेषु** नष्टेषु सत्सु **तैर्**गुर्वादिभि**र्विना गृहे वसन् साधुतः** सकाशात् **आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन् सदा गृह्णीयात्** ।। २५२ ।।

(७) **मणिरामः। अभ्यतीतेषु** मृतेषु ।। २५२ ।।

(८) **गोविन्दराजः। गुरुष्विति**। मात्रादिष्व**तीतेषु तैर्वा विना गृहे** पृथक् **वसन्** आत्मजीवमन्विच्छन् अनापदि सर्वदा **साधुभ्य एव प्रतिगृह्णीयात्** ।। २५२ ।।

**आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ।।**
**एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ।। २५३ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अर्धसीरी **आर्धिकः** कुटुम्बी भूमिकर्षक इति य उच्यते । **गोपाल-दासौ** सम्बन्धिशब्दौ । यो यस्य गाः पालयति स तस्य भोज्यान्नः । **यश्चात्मानं निवेदयेत् ।** अहं त्वच्छरणः त्वयि विश्रब्धो वत्स्यामीत्येवं य आत्मानमर्पयति सोऽपि भोज्यान्नः ।। २५३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः : आर्धिकोऽर्धभागेन** तस्य भूमौ कृषिं कुर्वन् । **कुलमित्रं** कुलपरंपरा मित्रसंततिः । **गोपालः** स्वीयगवां पालकः । **दासो** गर्भदासः । **नापितोऽपि** मुण्डनादिकर्मकारी । **आत्मानं** निवेदयेत्तवाहमिति । **भोज्यान्ना** एषां कन्दुपक्वशूलपक्व-पायसदधिसक्तवः । स्मृत्यन्तरोक्ता भोज्याः ।। २५३ ।।

(३) **कुल्लूकः । आर्धिकः** कार्षिकः संबन्धिशब्दाश्चैते यो यस्य कृषिं करोति स तस्य भोज्यान्नः । एवं स्वकुलस्य मित्रं यो यस्य **गोपालो** यो यस्य **दासो** यो यस्य **नापितः** कर्म करोति यो यस्मिन्नात्मानं **निवेदयति** दुर्गतिरहं त्वदीयसेवां कुर्वन्निति च त्वत्समीपे वसामीति यः शूद्रस्तस्य **भोज्यान्नः** ।। २५३ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** स्वार्थं शूद्रेभ्यो यदि गृह्णीयात्तदा एभ्यः षड्भ्य एवेत्याह **आर्धिक इति । आर्धिकः** कर्षकः । **कुलमित्रं** कुलपरंपरया मित्रतां गतं । **दासः** क्रीतः । **य आत्मा-**नमतिदुर्गतिरहं त्वदीयसेवामेव कुर्वंस्त्वत्समीपे वत्स्यामीति **निवेदयेत्तत्**तस्मादपि ग्राह्यम् ।। २५३ ।।

(५) **नन्दनः ।** शूद्रेष्वपि च कानिचिद्भोज्यान्नान्याह **आर्धिक इति ।** परस्य क्षेत्र-धनादिकमाश्रित्य कृषिवाणिज्यादिना धनमुत्पाद्य तदर्धं क्षेत्रादिस्वामिने दत्त्वा योऽधन जीवति स **आर्धिकः यश्चात्मानं निवेदयेत्** आत्मनिवेदको नाम स्वतः कर्मकरः सोऽपि **भोज्यान्नः** ।। २५३ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** भोज्या(न्न)नाह **आर्धिक इति । आर्धिकः** स्वकृषिफलभागी । **कुल-मित्रं** पितृपितामहादिक्रमागतं । **दासः** गर्भदासः । **नापितः** एते शूद्रेषु भोज्यान्नाः । **यः** पुरुष **आत्मानं निवेदयति** प्रयच्छति वाङ्मनःकायकर्मभिः । इति गृहस्थाश्रमप्रकरणम् ।। २५३ ।।

(७) **मणिरामः ।** शूद्रेषु भोज्यान्नानाह **आर्धिक इति । आर्धिकः** कार्षिकः । कार्षिकादया ये यस्य भवंति ते तस्यैव भोज्यान्नाः, नत्वन्यस्येत्यर्थः । **आत्मानं निवेदयेत्** अहं दुर्गतिस्त्वदीयां सेवां कुर्वन् त्वत्समीपे वसामीत्यात्मानं **यो निवेदयेत्** ।। २५३ ।।

(८) **गोविन्दराजः । आर्धिक इति । शूद्रेषु** मध्यात् कर्षककुलमित्रगोपालदासनापिता **भोज्यान्नाः । यश्च** त्वदाश्रितोऽहमित्येव**मात्मानं** समर्पयेत् । शूद्रश्च नापितादिकर्मणा जीवेत् कारुककर्मभिः इति वक्ष्यति ।। २५३ ।।

**यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ।।**
**यथा चोपचरेदेनं तथाऽऽत्मानं निवेदयेत् ।। २५४ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । आत्मनिवेदनमेव व्यक्तीकरोति । **अस्य** शूद्रस्य **यादृश आत्मा भवेत्** यत्कुलीनो यद्देशो यच्छिल्पश्च । **यच्चिकीर्षितम्** । अनेककार्येण त्वामहमाश्रितो धर्मेण अन्येन वा प्रयोजनेन राजकुलरक्षादिना । **यथा वोपचरे**च्छिल्पेनानेन त्वां पादवन्दनादिगृहकृत्यकरत्वे सर्वस्मिन्निवेदिते आत्मा निवेदितो भवति ।

अन्ये तु "आत्मा वै पुत्रनामासि" (कौषी, उ. २।११) इत्यपत्यवचनमात्मशब्दं मन्यमानाः यस्य शूद्रस्य कामतः प्रवृत्ता दुहिता विवह्यते तस्यानेन भोज्यान्नतोच्यत इत्याहुः । तदयुक्तम्, न तावदयमात्मशब्दो दुहितरि विस्पष्टं प्रयुक्तः । पुत्रशब्दो हि पुंस्येव प्रसिद्धतरः । न च परोक्षशब्दोपदेशेन किंचित्प्रयोजनम् । एतावदेव वक्तुं युक्तं 'दद्याद्दुहितरं च य' इति । अन्ये त्वार्धिकादिग्रहणं शूद्रोपलक्षणार्थं वर्णयन्ति । तेन पारशवस्य श्वशुरस्य च भोज्यान्नता सिद्धा भवति ।। २५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । आत्मनिवेदनप्रकारमाह **यादृश इति** । आत्मदेहो जनितः कुलतः धर्मतश्च । **चिकीर्षितं** तदीयं कर्म । यथा यावद्वृत्तिलाभेन निवेदयेन्मां परिगृह्णाणेति ।। २५४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यथात्मनिवेदनं शूद्रेण कर्तव्यं तदाह **यादृश इति** । अस्य शूद्रस्य कुलशीलादि**भिर्यादृश आत्मा स्वरूपं** यच्चास्य कर्मकर्तुरीप्सितं यथा चानेन सेवा कर्तव्या तेन प्रकारेणात्मानं कथयेत् ।। २५४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । निवेदनप्रकारमाह **यादृश इति** । **आत्मा** कुलशीलादिः । यथा **चोपचरेत्** कृषिं करिष्यामि गृहादिपरिचर्यां वेति ।। २५४ ।।

(५) **नन्दनः** । शूद्रस्यात्मनिवेदनप्रकारं प्रसङ्गादाह **यादृश इति** । **अस्य** शूद्रस्य । **आत्मा यादृशः** कुलीनोऽकुलीनो दक्षोऽदक्षोऽपि वा भवेत् । यादृशमस्य **चिकीर्षित**मात्मनो रक्षणादिप्रयोजनं दृष्टमदृष्टं वा । एनं स्वामिनं **यथोपचरे**देधोदका हरणादिना यथा सेवेत **तथाऽऽत्मानं निवेदयेत्** ।। २५४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । आत्मनिवेदर्नामत्याह **यादृशेति** । **अस्य** शूद्रस्य **यादृशः** यज्जातिविशिष्टः कुलतः कर्मतः **आत्मा** मनः । आत्मा पुत्रो वा यस्य भवेत् **यादृशं चिकीर्षितं** । तदीयं कर्म वाञ्छितं **यथा एनं** द्विजं **उपचरेत् तथात्मानं निवेदयेत्** ।। २५४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । यथा आत्मनिवेदनं तेन कार्यं तथाऽऽह **यादृश इति** । **यादृशोऽस्य भवेदात्मा** कुलशीलादिभि**र्यादृशं** दृष्टार्थमदृष्टातिशयार्थं चोपचरणं कर्तुमिष्टं येन वा प्रकारेण मृदुदकाद्याहरणादिनिमित्तं ब्राह्मणं सेवेत अनेन प्रकारेणात्**मानं निवेदयेत्** ।। २५४ ।।

**योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते ।।**
**स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ।। २५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **अन्यथा**भूतमधार्मिकं **सन्तं सत्सु** शिष्टेष्व**न्यथा भाषते** धार्मिकोऽहमिति । अन्येन वा प्रयोजनेन चाश्रिताऽन्यद् दर्शयति स सर्वेषां पापकृतामधिकतमः

पापकृत् । **स्तेनश्चौरः । आत्मापहारकोऽन्यश्चौरो** द्रव्यमपहरत्ययं पुनरात्मानमेवेति निन्दातिशयः ॥ २५५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** यस्तु जातिमपह्नुते तस्य दोषमाह **योऽन्यथेति । आत्मापहारकः** स्वजातेरात्मन्यपह्नवकर्ता अत **स्तेनः** अतः **पापकृत्तमः** ॥ २५५ ॥

(३) **कुल्लूकः । य** इति सामान्यनिर्देशात्प्रकृतशूद्रादन्योऽपि यः कश्चित्कुलादिभिरन्यथाभूत**मात्मानमन्यथा** साधुषु कथयति **स लोके**ऽतिशयेन पापकारी चौरः । यस्मादात्मापहारकः । अन्यः स्तेनो द्रव्यान्तरमपहरत्ययं तु सर्वप्रधानमात्मानमेवापहरेत् ॥ २५५ ॥

(४) **राघवानन्दः ।** अहो अन्यथा भाषणान्नाधिकं पापमस्तीति मिथ्योक्तौ साक्रोशं दोषमाह **य इति द्वाभ्यां । अन्यथा सन्तं** कुलादिभिः । **सत्स्विति** विशेषणाद्राजदण्डादौ मिथ्यापि कुर्यात् । **आत्मापहारकः** । तदुक्तम् 'किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा । योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यत' इति ॥ २५५ ॥

(५) **नन्दनः ।** आत्मनिवेदने शूद्रेण यथार्थमेव वक्तव्यं नान्यथेत्याह **य इति** ॥ २५५ ॥

(६) **रामचन्द्रः । यः अन्यथासन्तमात्मानम्** स्वयं सत्सु साधु**ष्वन्यथा भाषते सः स्तेन आत्मापहारकः** ॥ २५५ ॥

(८) **गोविन्दराजः ।** यस्मात् **य इति ।** यः कश्चित् प्रकृताच्छूद्रादन्योऽपि कुलादिभिः **अन्यथा** भूत**मात्मानं** इत्थंभूतोऽह**मित्यन्यथा** साधु कथयति स आत्मरूपापलापत एव चोरो लोके अतिशयेन पापकृत् सर्ववस्तुप्रधानात्मापहारित्वात् ॥ २५५ ॥

**वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ॥**
**तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः ।** शब्दार्थयोर्नित्यसम्बन्धाद्वाचि शब्देऽर्था **नियता** उच्यन्ते । **वाङ्मूला** वक्तुः स्वाभिप्रायप्रकाशनस्य तदधीनत्वात्तन्मूला उच्यन्ते । **वाचो विनिःसृताः** संभूताः श्रोतुरपि प्रतिपत्तेस्तुल्यत्वा**द्वाग्विनिःसृता** उच्यन्ते । न चात्र पौनरुक्त्याशङ्कापरिहारे प्रयतितव्यम्; अनुवादत्वादस्य यथाकथंचिद्वस्तुपरिहारभावात् । **तां** वाचं यश्चोरयति मुष्णात्यन्यदुक्त्वाऽन्यदनुतिष्ठत्यन्योन्याभिप्रायेण सङ्गच्छतेऽन्यच्च दर्शयति **स सर्वस्तेयकृत् ।** नास्ति तद्द्रव्यं सुवर्णादि यत्तेन नापहृतं भवतीति निन्दार्थवादोऽनृतवचनस्य ॥ २५६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः । वाचि नियता** अविनाभूताः । सर्वेषां शब्दानुविद्धतयैव प्रतीतेः । **वाङ्मूला** वाचा सूक्ष्मशब्दब्रह्मणा जनिताः **वाग्विनिःसृता** वाक्सहकृतैः स्वकारणैर्जन्याः वागधीनत्वात्सर्वव्यवहाराणाम् । **स्तेनयेन्**मिथ्याभिधानेनान्यरूपां कृत्वोपाददद्यात् ॥ २५६ ॥

(३) **कुल्लूकः । सर्वेऽर्थाः** शब्देषु **नियता** वाच्यत्वेन **नियता वाङ्मूलाश्च** शब्दास्तेषां प्रतिपत्तौ शब्देभ्य एव प्रतीयन्ते । प्रतीतिद्वारेण शब्दमूलत्वं शब्देभ्य एवावगम्य चानुष्ठीयन्त

इति वाग्विनिर्गत इत्युच्यन्ते। अत एव 'वेदशब्देभ्य एवादौ' (१।२१)इति ब्रह्मणोऽपि सृष्टिर्वेदशब्दमूलैवोक्ता। अतो **यस्तां वाचं स्तेनयेत्**स्वार्थव्यभिचारिणीं वाचयति **स नरः सर्वार्थस्तेयकृद्भवति**॥ २५६॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **वाचीति**। वागर्थयोर्नित्यसंबन्धात्तं विना तैस्तत्प्रयोगायोगाद्**वाङ्मूलाः**। तदधीनत्वं वक्तुरभिप्रायादृते एवार्था **वाग्विनिःसृताः** परबुद्धौ संक्रान्ताऽभवन्ति। अतस्तां **यस्तेनयेत्स** सर्वस्तेन एवेति भावः॥ २५६॥

(५) **नन्दनः**। पापकृत्तमत्वमेवोपपादयति **वाच्यर्था इति**! **वाचि** शब्दे **सर्वेऽर्था नियता** अभिधेयतया संबद्धाः। **वाङ्मूला** वाक्परिणामभूताः। **वाग्विनिसृताः** वाचा प्रतिपादिताः। एतैर्हेतुभिः सर्वार्था वाङ्मया इत्यर्थः। **तां** सर्वार्थमयीं वाचं **यः स्तेनयेत्**तत्त्ववचनं तिरस्कृत्यानर्थं ब्रूयात्स **सर्वस्तेयकृत्**सर्वार्थचोरः॥ २५६॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वाग्विनिःसृता** वागिन्द्रियाद्विनिःसृता मुखान्निर्गताः वाचः वाच्यार्थाः। वाच्याश्च ते अर्थाश्च वाच्यार्थाः। **वाङ्मूलाः** वचनमूलाः **नियताः** तद्यथाथा यःवाच्यार्थः स एव मुखान्निःसरतीति भावः। **तु** पुनः यः पुरुषः तां **वाच** स्तेनयेत् विपरीतं वदेत् अन्यदुक्त्वा अन्यदनुतिष्ठति **सः सर्वस्तेयकृ**च्चौर्यकृत्॥ २५६॥

(७) **मणिरामः**। **सर्वे अर्थाः वाचि** शब्देषु नियताः वाच्यत्वेन नियताः। **वाग्विनिःसृताः** शब्देभ्य एव प्रतीयंते **वाङ्मूलाश्च** प्रतीतिद्वारेण शब्दमूलत्वम्॥ २५६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वाच्यर्था इति**। सर्वेऽर्थाः शब्देषु संबद्धाः शब्दार्थसंबधस्य नियतत्वात् शब्दमूलकाश्च यतः शब्देभ्यः प्रतीयन्ते शब्दप्रतीतिपुरस्सरं चार्थसंव्यवहारप्रतीतेः शब्दविनियता इव। अतस्तां वाचं यश्चोरयेत्, अन्यदुक्त्वा अन्यदनुतिष्ठेत् **स सर्ववस्तुस्तेयकृन्नरो** भवति॥ २५६॥

**महर्षिपितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि॥**
**पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमास्थितः॥ २५७॥**

(१) **मेधातिथिः**। गृहस्थस्यैवेदं प्रकारान्तरमुच्यते। महर्षीणामानृण्यं स्वाध्यायेन पितृणामपत्योत्पादनेन देवानां यज्ञैर्यथोक्तं "त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवा" (तैत्ति. सं. ६।३।१०) इति **गत्वा** कृत्वैतत्त्रयं **पुत्रे** प्राप्तव्यवहारे सर्वगेहकुटुंबव्यवहारं **समासज्य** संन्यस्य वसेद् गृह एव।

**माध्यस्थ्यमास्थितस्**त्यक्ताहङ्कारः। इदं मे धनमिदं मे पुत्रदारमिदं मे दासीदासमिति स्वबुद्धिं सन्त्यज्यासीत। नाहं कस्यचिन्न कश्चिन्ममेति त्यक्तस्वतृष्णता **माध्यस्थ्यम्**।

अयं च संन्यासः काम्यानां च दृष्टानां च कर्मणां, न सर्वेषाम्। उत्तरत्र दर्शयिष्यामः॥ २५७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। महर्षीणामध्ययनेन पितॄणां शुद्धसंतानोत्पादनेन देवानां यज्ञेन **माध्यस्थं** प्रवर्त्योदासीन्य**मास्थितो** वेदसन्यासिको भूत्वेत्यर्थः॥ २५७॥

(३) **कुल्लूकः** । गृहस्थस्यैव संन्यासप्रकारोऽयमुच्यते महर्षीणां स्वाध्यायेन पितॄणां पुत्रोत्पादनेन देवतानां यज्ञैर्यथाशास्त्रमानृण्यं गत्वा योग्यपुत्रे सर्वं कुटुम्बचिन्ताभारमारोप्य **माध्यस्थ्यमाश्रितः** पुत्रदारधनादौ त्यक्तममत्वो ब्रह्मबुद्धया सर्वत्र समदर्शनो गृह एव वसेत् ।। २५७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । सर्वाश्रमसाधारणं भक्ष्याभक्ष्यं वक्तुं गृहस्थस्य हितमुपदिशन् कृतकृत्यतामाह **महर्षीति चतुर्भिः** । **आनृण्यमु**क्तेन वेदाध्ययनेन ऋषीणां, पुत्रोत्पादनेन श्राद्धेन पितॄणां, यज्ञेन देवानामिति **समासज्य** 'त्वं ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वं लोक' (कठ० १४) इत्यादि संभाव्य **माध्यस्थमु**दासीनताम् ।। २५७ ।।

(५) **नन्दनः** । पुत्रवतो गृहस्थस्याश्रमान्तरासमर्थस्योत्तरे वयसि कर्तव्यमाह **महर्षीति** । **माध्यस्थ्यं** शोकहर्षादिराहित्यम् ।। २५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **माध्यस्थं** प्रवर्त्योदासीन्यं **आस्थितो** वसेत् । वेदाध्ययनेन सुतोत्पादनेन यज्ञैः **आनृण्यं गत्वा** वनं प्रविशेदित्यर्थः ।। २५७ ।।

(७) **मणिरामः** । गार्हस्थ्यावस्थायामेव संन्यासप्रकारमाह **महर्षीति** । स्वाध्यायेन महर्षीणां, पुत्रोत्पादनेन पितॄणां, यज्ञैर्देवानां **माध्यस्थं आश्रितः** सर्वत्र समदर्शनः ।। २५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **महर्षिपितृदेवानामिति** । महर्षिपितृ**देवानां** स्वाध्यायप्रजायज्ञसंपादनेन यथाशास्त्रं ऋणसंशुद्धिं कृत्वा ततः पुत्रे सर्वां गृहधुरं च संन्यस्य धनार्जनात् दानदीनाश्रितः सन् 'वाच्येके जुह्वति प्राण'मि(४ । २३)त्यादिनीत्या ज्ञानबलान्महायज्ञादीन् सम्पादयन् गृह एव क्वचित् कालं वसेत् ।। २५७ ।।

**एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनि ।।**
**एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ।। २५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । कृते सर्वकर्मसंन्यास इदं तस्य विशेषतः कर्तव्यम् । **एकाक्य**सहायः सन्नविद्यमानसम्भाषणोऽनाकुले **विविक्ते** निर्जने रहसि **चिन्तयेद्ध्यायेद्धितमात्मन्यु**पनिषत्सु या ब्रह्मोपासना विहितास्ता अभ्यस्येत् । तच्चिन्तया तदभ्यासे **परं श्रेयो** मोक्षाख्य**मधिगच्छति** प्राप्नोति ।। २५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **विविक्ते** शुद्धस्थाने । **आत्मनो हितं** आत्मनो हितसाधनम् । **श्रेयो** ब्रह्म ।। २५८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । काम्यकर्मणां धनार्जनस्य च कृतसंन्यासः षष्ठाध्याये वक्ष्यमाणः पुत्रोपकल्पितवृत्ति**रेकाकी** निर्जनदेश आत्महितं जीवस्य ब्रह्मभावं वेदान्तोक्तं सर्वदा ध्यायेत् । यस्मात्तद्ध्यायन्ब्रह्मसाक्षात्कारेण **परं श्रेयो** मोक्षलक्षणं प्राप्नोति ।। २५८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । ततः किं तत्राह **एकाकीति** । **आत्मने हितं** यत्त्वं हिततमं मन्यस इति श्रुतेर्हितं मोक्षः तदुपायमित्यर्थः ।। २५८ ।।

(५) **नन्दनः**। **एकाकी** इन्द्रियमनःप्रभृतिबाह्यसहायनिरपेक्षः। **चिन्तयानः** परमात्मानमिति शेषः। **परं श्रेयः** मोक्षम्॥ २५८॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एकाकी** चिन्तयेदित्यर्थः। **आत्मनः** हितं हितरूपं। **ऐश्वर्यं** चिन्तयेद्यतिरित्यर्थः॥ २५८॥

(७) **मणिरामः**। **परं श्रेयो** मोक्षम्॥ २५८॥

(८) **गोविन्दराजः**। तथाच वसन् **एकाकीति**। निर्जने प्रदेशे **एकाकी** सन् उपनिषदुक्तोपासनादिभिः परमात्मस्वरूपनिरूपणमात्महितं **चिन्तयन्** प्रकृष्टं **श्रेयो** मोक्षाख्यं प्राप्नोति॥ २५८॥

**एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती॥**
**स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः॥२५९॥**

(१) **मेधातिथिः**। अध्यायार्थोपसंहारः। **एषा वृत्तिर्विप्रस्य गृहस्थस्योक्ता**। **शाश्वती** नित्या। अनित्या त्वापदि या वक्ष्यते। विप्रग्रहणाद्ब्राह्मणस्यैव **स्नातकव्रतानां कल्पो** विधिः। **सत्त्वं** नामात्मगुणस्तस्य **वृद्धिकरः**। **शुभः** प्रशस्तः। प्रशंसैषा॥ २५९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वृत्तिर्**जीवनोपायः। **स्नातकव्रतस्य कल्पः** प्रकारः। सच प्रकाशः॥ २५९॥

(३) **कुल्लूकः**। अयमध्यायार्थोपसंहारः। **एषा** ऋतादि**वृत्तिर्गृहस्थस्य** ब्राह्मणस्योक्ता **शाश्वती** नित्या आपदि त्वनित्या वक्ष्यते। **स्नातकव्रत**विधिश्च सत्त्वगुणस्य वृद्धिकरणप्रशस्त उक्तः॥ २५९॥

(४) **राघवानन्दः**। **विप्रस्येति** श्रुतेरुक्तस्नातकव्रतकलापो ब्राह्मणस्यैवासाधारणः॥ २५९॥

(५) **नन्दनः**। **विप्रस्य** वृत्तिरद्रोहेणैव भूतानामित्यादिनोक्ता। **स्नातकव्रतकल्पश्च** 'वेदोदितं स्वकं कर्म' (४।१४) इत्यादिनोक्तः॥ २५९॥

(७) **मणिरामः**। अध्यायार्थोपसंहारमाह **एषेति**॥ २५९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एषेति**। **एषा** ऋतादिका जीविका नित्या अनित्यायाा आपदि विधानात् **गृहस्थस्य** ब्राह्मणस्योक्ता। तथा **स्नातकव्रत**विधिश्च **सत्त्वा**ख्यगुण**वृद्धिकरः** प्रशस्तस्यैवोक्तः॥ २५९॥

**अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन् वेदशास्त्रवित्॥**
**व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते॥ २६०॥**

**इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां मानवधर्मसंहितायां चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥**

(१) **मेधातिथिः**। सर्वस्यास्य फलकथनमेतत्। **अनेन विप्रो वर्तयन्**वर्तमानो **वेदशास्त्रविद्व्यपेतकल्मषः** प्रतिषेधापराधजं पापं **कल्मषं** तद्व्यपेतं व्यपनीतं प्रायश्चित्तैः।

तेनैतदुक्तं भवति—विहितकरणात्प्रतिषिद्धस्यानासेवनात्कथंचित्कृतस्य प्रायश्चित्तैर्निष्क्रीतत्वात् । **ब्रह्मलोके महीयते** ब्रह्मलोके स्थानविशेषे महिमानं प्राप्नोति । दर्शनान्तरं ब्रह्मरूपः सम्पद्यत इति सिद्धम् ।। २६० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **वृत्तेना**चरणेन । **विप्र** इति तस्य प्राधान्यादुक्तम् । **वेदः** श्रुतिः **शास्त्रं** धर्मशास्त्रम् । अत्र स्नातकव्रतमध्ये केषांचिदन्यत्रोक्तानामपि पुनरभिधानं स्नातकव्रतलोपनिमित्तैकाहत्र्यहभोजनप्रायश्चित्तप्राप्त्यर्थमिति द्रष्टव्यम् ।। २६० ।।

**व्याहृतमनुतात्पर्यप्रतिहतकुनिबन्धदर्शितव्याख्यानम् ।**
**नारायणस्य सूक्तिं सर्वज्ञस्यानुसंधत्ते ।। १ ।।**

**इति सर्वज्ञनारायणकृतौ मन्वर्थविवृतौ चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।**

(३) **कुल्लूकः** । सर्वस्योक्तस्य फलकथनमिदं । **अनेन** शास्त्रोक्ताचारेण वेदविद्ब्राह्मणो वर्तमानो नित्यकर्मानुष्ठानात्क्षीणपापः सन्ब्रह्मज्ञानप्रकर्षेण ब्रह्मैव लोकः तस्मिन् लीनो महिमानं सर्वोत्कर्षं प्राप्नोति ।। २६० ।।

**इति कुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।**

(४) **राघवानन्दः** । **अनेन** क्रमेण मोक्षोपायचिन्तनपर्यन्तेन वृत्तेन कृतेनानुष्ठितेन **व्यपेतकल्मषः** विगतं निषेकापराधजं कल्मषं पापं यस्य सः । **महीयते** पूज्यतया व्यवतिष्ठत इति भावः ।। २६० ।।

**इति श्रीराघवानन्दविरचितायां मन्वर्थचन्द्रिकायां चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।**

(५) **नन्दनः** । **अनेनो**क्तेन चरितेन । **वर्तयन्**देहयात्रां यापयन् । **व्यपेतकल्मषः** विमुक्तपुण्यपापः । **ब्रह्मलोके** परब्रह्मसाक्षात्कारे सति । **महीयते** आध्यात्मिकैरिति शेषः ।।

**इति श्रीनन्दनविरचिते मानवव्याख्याने चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।**

(७) **मणिरामः** । फलमाह **अनेने**ति ।। २६० ।।

**इति श्रीमिश्रगंगारामात्मजदीक्षितमणिरामकृतायां**
**सुखबोधिन्यां मनुवृत्तौ चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।**

(८) **गोविन्दराजः** । **अनेने**ति । **अनेन** उक्तशास्त्राचारेण वेदार्थवित् ब्राह्मणः नित्यकर्मानुष्ठानेनोपक्षीणपापः सन् **ब्रह्मलोके** महिमानमश्नुते ।। २६० ।।

**इति श्रीभट्टमाधवात्मजगोविन्दराजविरचितायां मन्वाशयसारिण्यां**
**टीकायां गार्हस्थ्यसदाचारश्चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।**

——०——